आदिकाल
का
हिन्दी जैन साहित्य

[सन् ९५०—१४५० ई०]

हरिशंकर शर्मा 'हरीश'

आदिकाल का हिन्दी जैन साहित्य

[सन् ६५०——१४५० ई०]

हरिशंकर शर्मा 'हरीश'
रिसर्च स्कालर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, ।

शोध निर्देशक :—

डॉ० माताप्रसाद गुप्त
एम० ए०, डी० लिट०, रीडर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी ।

आभार

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग में स्नातकोत्तर शिक्षा ग्रहण करते हुए हिन्दी साहित्य का इतिहास कई बार पढ़ना पड़ा। इस अध्ययन में आदिकाल के संबंध में कई बार निराशा इस लिए हुई कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल अथवा शुक्लजी के शब्दों में वीरगाथा काल के साथ न्याय नहीं किया गया। अतः यह धारणा दृढ़ होती गई कि जिस वीरगाथा काल के पूर्व अपभ्रंश साहित्य की सम्पन्नता विविध काव्य रूपों और परम्परा के रूप में इतनी अधिक सक्षम रही हो, उसी साहित्य का परवर्तीकाल इतना अधिक दरिद्र नहीं हो सकता। यह निराशा इसलिए और भी हुई कि शुक्ल द्वारा जिन बारह वीरगाथा कालीन रचनाओं का उल्लेख किया गया था उनको विभिन्न विद्वानों ने अप्रामाणिक सिद्ध कर दिया। बहुत सम्भव है कि स्वयं शुक्ल जी को भी इनकी प्रामाणिकता में सन्देह रहा हो, परन्तु उ की तत्कालीन परिस्थितियों में इस संदिग्ध सामग्री का आकलन करने के अ और कोई मार्ग भी नहीं था। शुक्लजी ने अपनी विवशता को स्वतः इन श में प्रकट किया है-" इसी संदिग्ध सामग्री को लेकर जो थोड़ा बहुत विचार हो सकता है उसी पर हमें सन्तोष करना पड़ता है"।

इधर वीरगाथा से इतर सामग्री के साथ शुक्लजी का समझौता न ह सका और उन्होंने बहुत सी सामग्री को धर्म निरूपण करने वाली और साम्प्रदायिक कहकर हटा दिया, एवं उनकी प्रवृत्तियों पर विचार नहीं कि उनके शब्दों में सिद्धों, नाथों, तथा जैन कवियों की उपेक्षा स्पष्ट व्यक्त है क्योंकि उन्हें लगा कि उनकी रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सरणियों, अनुभूतियों और दशाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है, वे साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र है, अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकती। उन रचनाओं

की परम्परा को हम काव्य या साहित्य की कोई धारा नहीं कह सकते।

डा० पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ ने अपने शोध प्रबन्ध "हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य" में आदिकाल को अन्धकार काल लिखा। इधर शुक्लजी द्वारा उल्लिखित १२ ग्रन्थों में से लगभग सभी अप्रामाणिक और उस काल से परे के सिद्ध हो चुके थे। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास में लिखा है कि-"आज तक की सामग्री के सहारे रासो को प्रामाणिक ग्रन्थ कहना इतिहास और साहित्य के आदर्शों की उपेक्षा करना है"- इन्हीं संकल्पों विकल्पों से मन में आदिकाल की अप्राप्य सामग्री की शोध करने की प्रेरणा निरन्तर गहरी होती गई और यह अभाव प्राणों में एक तीखी प्यास बनकर समा गया।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश के साहित्य को पुरानी हिन्दी नाम दिया इससे साहस में वृद्धि हुई और अन्त में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ "हिन्दी साहित्य का आदिकाल में उल्लिखित इन विचारों ने समस्त भ्रमों का निराकरण कर ही दिया कि,"उपदेश विषयक उन रचनाओं को जिनमें केवल सूखा धर्मोपदेश मात्र लिखा गया है, साहित्यिक विवेचना के योग्य नहीं समझना उचित ही है, परन्तु यहां जिस सामग्री की चर्चा की गई है, उनमें कई रचनाएं ऐसी है जो धार्मिक तो है परन्तु उनमें साहित्यिक सरसता बनाये रखने का पूरा प्रयास है। धर्म वहां कवि को केवल प्रेरणा दे रहा है जिस साहित्यमें केवल धार्मिक उपदेश हों उससे वह साहित्य निश्चित रूप से भिन्न है जिसमें धर्म भावना प्रेरक शक्ति के रूप में काम कर रही हो और साथ ही जो हमारी सामान्य मनुष्यता को आन्दोलित, मथित और प्रभावित कर रही हो। इस दृष्टि से अपभ्रंश की कई रचनाएं, जो मूलतः जैन धर्म भावना से प्रेरित होकर लिखी गई है, निस्संदेह उत्तम काव्य है।--- इधर जैन अपभ्रंश चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह सिर्फ धार्मिक सम्प्रदाय के मुहर लगने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नहीं है। स्वयंभू, चतुर्मुख,पुष्पदंत

और धनपाल जैसे कवि केवल जैन होने के कारण ही काव्य क्षेत्र से बाहर नहीं चले जाते। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती।-- मध्ययुग के साहित्य की प्रधान प्रेरणा धर्म साधना ही रही है। जो भी पुस्तकें आज संयोग और सौभाग्य से बची रह गई हैं, उनके सुरक्षित रहने का कारण प्रधान रूप से धर्म बुद्धि ही रही है।-- इस प्रकार मेरेविचार से सभी धार्मिक पुस्तकों को साहित्य के इतिहास में त्याज्य ही नहीं मानना चाहिए"-- (हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ११-१३)।

इन्हीं दिनों जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री अगरचन्द नाहटा और डा० हीरालाल जैन के वीरगाथाकाल की कृतियों तथा प्राचीन जैन साहित्य सम्बन्धी लेखों के अध्ययन करने का सौभाग्य मिला। इन्होंने आदिकाल की जैनधारा पर शोध करने की ओर और भी अधिक प्रेरित किया। नई आशा, नई उमंग, इतिहासकारों के ग्रन्थों के द्वारा उत्पन्न प्रतिक्रिया की पूर्ति और अनेक रचनाओं की उपलब्धिकी आशा ने" आदिकाल का हिन्दी जैन साहित्य" इस विषय पर काम करने के लिए बाध्य किया। श्रद्धेय गुरुवर डा० धीरेन्द्र वर्मा ने आदरणीय डा० माता प्रसाद गुप्त के निर्देशन में मुझे यह काम सौंपा और दोनों के आदेशों को कार्य रूप में प्रस्तुत करने का प्रोत्साहन जैन साहित्य और राजस्थान के प्रसिद्ध शोध विद्वान् श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा मिला। पूर्ण मनोयोग से कार्य में जुट गया। अनेक कठिनाइयों, पारिवारिक उलझनों एवं आर्थिक विभीषिकाओं के बीच इस अध्वर का प्रारम्भ नवम्बर सन् १९५९ से हुआ।

विषय की सामग्री के एकत्रीकरण का सबसे बड़ा प्रश्न सामने आया। हस्तलिखित ग्रन्थों की प्राप्ति, भंडारों की शोध तथा प्रतियों के अध्ययन के महत्वपूर्ण प्रश्न बड़े विकट थे। श्रद्धेय डा० माता प्रसाद गुप्त सदैव प्रेरणा-मूलक आदेश और निर्देशन देते रहे। जैन समाज के विविध सम्प्रदायों और बीकानेर, देलवाड़ा, आमेर, पाटण, अहमदाबाद, बड़ौदा, दिल्ली, अजमेर, जयपुर,मेरठ, बड़ौत आदि विभिन्न जैन भंडारों की हस्तलिखित प्रतियों की प्राप्ति और

उनका विश्लेषण कठिन ही नहीं बहुत कुछ दुस्साध्य भी था। इधर आदिकाल का ५०० वर्षों का इतना विशाल परिसर और उसका समापन सभी कार्य एक से एक बढ़कर कठिन और कष्ट साध्य थे। परन्तु इन विषयों में श्रद्धेय अगरचन्द नाहटा तथा पं० चैनसुखदास,न्यायतीर्थ की असाधारण सहायता से ही आज यह प्रबन्ध प्रकट रूप में विद्वानों के हाथ में पहुंच सका है। नाहटा जी ने मुझे लिपियों का अध्ययन कराया, विभिन्न भंडारों से प्रतियां मंगवाईं,प्रतियों की फोटो कापियां, बनवाईं, कई प्रतिलिपियां करवाईं, अपने समीप रखा,और इस कार्य की पूर्णाहुति कराई है। जयपुर और आमेर के समस्त भंडारों की रचनाओं को सुलभ करने की व्यवस्था पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ ने की। श्रद्धेय नाहटाजी एवं पंडित जी का आशीर्वाद न होता तो यह कार्य इतना शीघ्र हो पाना असंभव था। एतदर्थ मैं उक्त दोनों विद्वानों का चिर ऋणी हूं।

प्रस्तुत प्रबन्ध में लगभग शताधिक प्रकाशित अप्रकाशित रचनाओं की हस्त-लिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है। ५०० वर्षों के इस काल में उपलब्ध ४०० से अधिक रचनाओं का समाहारकरना मेरे लिए इस छोटे से ग्रन्थ में किसी भी प्रकार शक्य नहीं था अतः उनमें से कुछ चुने हुए ग्रन्थों का ही आधार ग्रहण किया गया है। शेष रचनाओं की एक विस्तृत नामावली परिशिष्ट में दे दी गई है। इन में हस्त लेख, शिलालेख तथा प्रशस्तियां भी हैं। ये कृतियां इतने अधिक काव्यरूप प्रदान करती हैं, कि इनमें से प्रत्येक काव्य रूप पर स्वतंत्र रूप से एक एक शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है।अनेक रचनाएं गुजराती लिपि में प्रकाशित हैं परन्तु वास्तव में वे पुरानी हिन्दी की हैं।गुजरात और राजस्थान के अनेक जैन भण्डारों से उपलब्ध इन रचनाओं को साम्प्रदायिकता और प्रादेशिक भावना से मुक्त करना भी था ताकि १५वीं शताब्दी से पूर्व दोनों प्रदेशों की भाषाजन्य एकरूपता स्पष्ट हो सके। गुरुजनों के आशीर्वाद मिलते रहे इसलिए परिस्थितियों की यह कालिमा भी अध्ययन के प्रकाश से धुलती गई।

पुरानी हिन्दी का (उत्तर अपभ्रंश) प्राचीन राजस्थानी तथा जूनी गुजराती से सीधा सम्बन्ध स्पष्ट करने में मुझे गुजराती और हिन्दी तथा

राजस्थानी विद्वानों की कुछ कृतियों से पर्याप्त सहायता मिली है। इन कृतियों में गुजराती भाषा नो संक्षिप्त इतिहास, गुजराती भाषा नी उत्क्रान्ति, आपणा कवियो, जैनसाहित्य ना स्वरूपों, ऐतिहासिक जैन काव्य संचय, ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, जैन गुर्जर कविओ भाग १, २, ३ प्रमुख हैं। एतदर्थ मैं उनके लेखकों और सम्पादकों के प्रति अपना विनम्र आभार व्यक्त करता हूं। साथ ही बड़ोदा, पाटण, कलकत्ता, मेरठ, बड़ौत, दिल्ली, जयपुर, जैसलमेर, बीकानेर और पंजाब के जैन अजैन भण्डारों से भी मुझे हस्तलिखित प्रतियां अथवा उनकी प्रतिलिपियां प्राप्त हुई हैं उसके लिए उनके व्यवस्थापकों का हृदय से धन्यवाद करता हूं। इनकी कृपा के बिना इतने विशाल साहित्य का आकलन बिल्कुल असम्भव था। इन भंडारों की सूची परिशिष्ट में दे दी गई है। प्रतियों के चित्रों की सारी व्यवस्था अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर के संचालक श्री अगरचन्द नाहटा, जयपुर तथा आमेर के भण्डारों के संरक्षक श्री चैनसुखदास न्यायतीर्थ एवं व्यवस्थापक श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल ने की। दसवीं शताब्दी के शिलालेख का इस्टाम्पेज डा० मोतीचन्द्र जैन तथा डा० हरिवल्लभ भायाणी के सौजन्य से प्राप्त हुआ। इसके लिए मैं पुनः इन विद्वान सज्जनों का आभारी हूं।

श्रद्धेय डा० माता प्रसाद गुप्त के विषय को प्रस्तुत करने के लिए एक वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की है, वही इस ग्रन्थ के मूल में रहे हैं। उनके निर्देशन तथा आत्मीयता के लिए धन्यवाद सिर्फ औपचारिकता मात्र होगी। क्योंकि वे ही मेरी प्रेरणा के असाधारण स्रोत रहे हैं।

इस शोध में जिन लोगों ने आर्थिक सहायता करके मेरे अवरुद्ध पथ को प्रशस्त किया है एतदर्थ उनको हार्दिक धन्यवाद है।

शोध और अध्ययन के सम्बन्ध में प्रोत्साहन और प्रेरणा देने वाले विद्वानों में, श्रद्धेय गुरुवर डा० धीरेन्द्रवर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी डा० रामकुमार वर्मा, सर्वश्री मुनिजिन विजयजी, श्रद्धेया(श्रीमती) चन्द्रकला वर्मा का मैं विशेष आभारी हूं।

सुश्री कल्पना, एम०ए०, ने प्रस्तुत ग्रन्थ की टंकण सम्बन्धी भूलों को दूर करने, सूचियाँ तैयार करने तथा अन्य विवरणों की तुलना करने में बड़ी सहायता की है। एतदर्थ मैं उनका हार्दिक आभारी हूँ। श्री श्यामशंकर दुबे को हृदय से धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने इस प्रबन्ध को टाइप करके इस रूप में प्रस्तुत किया है तथा श्री शम्भूनाथ त्रिपाठी ने ग्रन्थ की कटाई, छपाई तथा आवरण पृष्ठ की छपाई का प्रबन्ध किया है। इसके लिए मैं उनका परम आभारी हूँ।

इसके बाद दो शब्द प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय में कहना भी समीचीन होगा। प्रबन्ध को तीन भागों में विभक्त कर दिया गया है। प्रथम भाग में विषय प्रवेश, हिन्दी साहित्य के आदिकाल का युग और समाज, जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त तथा उनका प्रचार और प्रतिपादन, अपभ्रंश का जैन साहित्य तथा हिन्दी के आदिकाल का जैनेतर साहित्य शीर्षक पाँच अध्याय हैं जिनमें हिन्दी के आदिकालीन साहित्य के अध्ययन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। द्वितीय भाग में आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य का अध्ययन विविध काव्य तथा गद्य के क्रम से विस्तारपूर्वक किया गया है। साथ ही उसकी विभिन्न परंपराओं का क्रमिक विकास दिखाते हुए उनमें आने वाली रचनाओं का भाव और कला पक्ष सम्बन्धी मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम अथवा तृतीय भाग में कुछ मौलिक अध्यायों का प्रणयन है। वे हैं:- आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की कथा परम्पराएं और कथा रूढ़ियाँ, आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रयुक्त छंद और उनका अध्ययन तथा उपसंहार। इन अध्यायों में सामग्री के साथ दृष्टिकोण और विवेचन की मौलिकता का भी ध्यान किया गया है और कथनों के स्पष्टीकरण के लिए स्थान स्थान पर कृतियों के उद्धरण दिए गए हैं। इनमें अनेक रचनाएं अद्यावधि अप्रकाशित हैं अतः ये उद्धरण, आशा है, अन्य दृष्टियों से भी उपयोगी सिद्ध होंगे। उपसंहार के पश्चात् ग्रन्थ में तीन परिशिष्ट दिए गए हैं। जिनमें प्रथम परिशिष्ट में जैन प्रतियों में प्रयुक्त अक्षरों तथा उनकी लिपि सम्बन्धी महत्वपूर्ण चिन्हों के मानचित्र दिए गए हैं तथा साथ ही ग्रन्थ में प्रयुक्त देश के विभिन्न विभिन्न जैन भंडारों से प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों एवं शिलालेख आदि के

चित्र दिए हुए हैं। इन चित्रों से जैनियों की लिखावट तथा लिपि सम्बन्धी तोड-मरोड़, अक्षरों की बनावट, मात्राएं आदि बातों का स्पष्टीकरण हो जाता है। इन प्रतियों के प्रतिचित्र भी साथ ही साथ दिया गया है। दूसरे और तीसरे परिशिष्टों में तत्कालीन प्रयुक्त हस्तलिखित प्रकाशित अप्रकाशित जैन अजैन प्रतियों की सूची तथा संदर्भ ग्रन्थों की नामावली तथा देशके विभिन्न जैन भंडारों की सूची दी गई है।

आज जबकि यह ग्रन्थ समाप्त प्राय: है, यह जानकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि आचार्य शुक्ल जी द्वारा कही गई साम्प्रदायिक, कोरी धार्मिक और उपदेश प्रधान रचनाओं में भी हिन्दी साहित्य की अनेक ऐसी जैन कृतियां उपलब्ध हुई है जिनका मूल्यांकन कर आदिकाल की सम्पन्नता पर सन्तोष होता है। प्रस्तुत प्रबन्ध से आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य के सम्बन्धी एक बड़े अभाव की पूर्ति होगी, ऐसी आशा है।

(हरिशंकर शर्मा "हरीश")

३४६, शाकम्भरी कुम्भ,
राजापार्क,
जयपुर।

दिनांक २५ जून, १९६९

-----:00:-----

प्रथम भाग

विषय सूची

अध्याय - १

विषय प्रवेश:-

हिन्दी साहित्य के आदिकाल का अध्ययन, संक्रान्तिकाल, रचनाओं की प्राप्ति में बाधाएं, नवोपलब्ध रचनाओं पर विचार- आदिकाल की सम्पन्नता, लोकभाषाओं का आदिकाल से सम्बन्ध-विवेचन युग का नामकरण (अ)वीरगाथाकाल: शुक्ल जी का आधार- तथा अपभ्रंश और देशी भाषा में प्राप्त शुक्ल जी द्वारा कही गई वीरगाथात्मक रचनाओं की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता पर विचार- इन रचनाओं की अप्रामाणिकता- शुक्ल जी की कुछ असंगतियां- धर्मनिरूपण करने वाली सामग्री के प्रति शुक्ल जी की उपेक्षा-उनके इतिहास का महत्व- निष्कर्ष; (आ) चारणकाल:- डा० वर्मा के चारणकाल की कुछ असंगतियां और उन पर विचार- निष्कर्ष; (इ) सिद्ध सामंतकाल और उस पर विचार- निष्कर्ष; (ई)आदिकाल:- विचार और विवेचन-आदिकाल पर डा० द्विवेदी जी महत्वपूर्ण विचार आलोचकों का मत वैभिन्य-निष्कर्ष; (उ) उत्तर अपभ्रंशकाल, आविर्भाव काल अथवा प्रारम्भिक काल- इसकी सीमाओं पर विचार; आदिकाल की सीमाएं:, हिन्दी से तात्पर्य; हिन्दी की सीमाएं- भौगोलिक तथा ऐतिहासिक अपभ्रंश भाषा का वर्तमान भाषाओं की उत्पत्ति में योग, विभिन्न विद्वानों के वर्गीकरण; हिन्दी की उत्पत्ति तथा उसकी सीमाओं का प्रारम्भ १०वीं शताब्दी से आदिकाल सम्बन्धी, सम्बन्धी अब तक हुए कार्य का संक्षिप्त परिचय और विवेचन- प्राचीन गुर्जर

काव्य संग्रह- जैन गूर्जर कवियो भाग १, २, ३, आपणा कवियो- प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ- कवि चरित भाग १-२; गुजराती साहित्य ना स्वरूपों; गुजराती भाषा नी उत्क्रान्ति- गुर्जर रासावली- प्रबन्धावली, ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह- ऐतिहासिक जैन काव्य संचय- जैन साहित्य और इतिहास- हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास- पुरानी हिन्दी- हिन्दी काव्यधारा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा अन्य इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ हिन्दी साहित्य का आदिकाल- राजस्थानी भाषा, पुरानी राजस्थानी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, प्रकाशित संग्रह- प्राचीन फागु संग्रह- अपभ्रंश साहित्य- प्राकृत अपभ्रंश साहित्य और उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव- हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास- हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन भाग १, २ हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग- सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य, श्री प्रो० बेलणकर, श्री अगरचन्द नाहटा तथा डा० हीरालाल जैन के स्फुट लेख; प्रस्तुत प्रबन्ध का अध्ययन और उसकी मौलिकता पिछले अध्ययन से उसकी विशिष्टता- पुरानी हिन्दी की रचनाएं-पुरानी हिन्दी का अर्थ- पुराने भ्रमों का निराकरण-विविध काव्यरूप-प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियां-नई स्थापनाएं वैज्ञानिक वर्गीकरण-केवल जैन कृतियां- कोरा धार्मिक एवं उपदेश प्रधान साहित्य ही नहीं-अजैन कृतियां-कथा परंपराएं- देशी छंद- लोक साहित्य का अध्ययन-प्राचीनतम गद्य रचनाएं-अपभ्रंश साहित्य का हिन्दीके विकास में योग-आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की प्रमुख एवं गौण काव्य परंपराएं- युगीन परिस्थितियां और जैन सिद्धान्तों का परिचय-विविध दृष्टियों से मूल्यांकन-प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की प्रतिनिधि- साहित्यिक और लोक भाषा काव्य-रचनाओं की ऐतिहासिकता- रचनाकार- राज्याश्रित रहित जनता का साहित्य- प्रस्तुत ग्रन्थ की समाज और साहित्य को देन; साहित्यिक आलोचना- भाषा का अध्ययन- कृतियों का पाठ सम्पादन। (पृ० १-५५)।

अध्याय - १

<u>हिन्दी साहित्य के आदिकाल का युग और समाज:-</u>

युग और साहित्य- साहित्य और समाज-युगीन परिस्थितियां- राजनैतिक- धार्मिक- सांस्कृतिक तथा साहित्य परिस्थितियां- राजनैतिक परिस्थितियां- राजवंश युग- और इस्लाम युग; राजवंश युग- मौखरी वंश- वर्मनवंश- आयुध वंश- राष्ट्रकूट वंश- पालवंश; नये वंश- गाहड़वार - चौहान- कलचुरी वंश - चन्देल वंश- परमार वंश - गुजरात के सोलंकी - राजपूत वंश- निष्कर्ष; इस्लाम युग- तुर्कों के आक्रमण और राजपूत वंश - सैयद लोदी वंश- मध्यदेश और तुर्कों के सं० १५०० तक आक्रमण, राजस्थान का आक्रमणों का सामान- राजनैतिक संक्रान्तिक मध्यदेश राजस्थान गुजरात आदि की स्थिति- धार्मिक परिस्थितियां- बौद्ध धर्म, जैनधर्म, ब्राह्मण धर्म, इस्लाम धर्म, बौद्ध धर्म- चार आर्य सत्य, -बारह प्रकार के प्रतीत्य- समुत्पाद - हीनयान महायान शाखाओं का रूप- बौद्ध धर्म का पराभव काल- जैन धर्म- उसके प्रमुख तीर्थंकर महावीर से जैन धर्म का प्रभाव- जैनियों की साहित्यिक सेवा- देश्य भाषा का प्रयोग- दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रयोग- महाकाव्य- खंड काव्य कोश काव्य- कथा काव्य,ब्राह्मण धर्म- राजाओं द्वारा प्रश्रय - शंकर का आंदोलन-शैव सम्प्रदाय- ब्राह्मण धर्म के मूल तत्व- ब्राह्मण धर्म या हिन्दू धर्म- परवर्ती विभिन्न सम्प्रदाय-इस्लाम धर्म और उसका प्रभाव- सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति- जाति व्यवस्था- सामन्त- दास दासी- विवाह आभूषण- खान-पान- धनिक- जुआ तथा वेश्या प्रथा- युद्ध- जनसाधारण- आर्थिक स्थिति - व्यापार - मंदिरों में धन का संग्रह- प्रभाव- सांस्कृतिक स्थिति- चित्रकला- संगीत - संस्कृति का सामाजिक स्वरूप- साहित्यिक परिस्थितियां -परम्परागत साहित्य- अपभ्रंश साहित्य-सिद्धनाथ साहित्य- इतर साहित्य- निष्कर्ष। (पृ० ५१-६९)।

अध्याय - ३

जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त तथा उनका प्रचार:और प्रतिपादन:-

जैन धर्म का उद्भव और विकास- आरम्भकाल- जैनधर्म को राज्याश्रय बिहार में जैन धर्म- उड़ीसा में जैन धर्म- बंगाल में जैन धर्म- राजस्थान में जैन धर्म- गुजरात में जैनधर्म- दक्षिण भारत में जैन धर्म- और दक्षिण के वंशों का जैन धर्म की प्रगति में योग- साहित्य प्रगति निष्कर्ष- श्वेताम्बर- दिगम्बर- यापनीय सम्प्रदाय- अस्तित्व - यापनीय सम्प्रदाय की उपासना और उसका स्वरूप- यापनीय सम्प्रदाय का साहित्य- आदि कालीनहिन्दी जैन कृतियों में प्रयुक्त जैन धर्म के विविध दार्शनिक सिद्धान्त और उनका परिचय- संसार- नीतत्व - आठ कर्म - सम्यक् ज्ञान - सम्यक् चरित्र और सम्यक्त्व- बारह व्रत सम्यक्त्व - आध्यात्मिक भावना -षटकर्म - नियतिवाद- न्याय- अनेकान्त अथवा। स्याद्वाद - कुछ विशिष्ट तत्व - अहिंसा - मुक्ति - जैन धर्म और बुद्ध धर्म के दर्शन का साम्य असाम्य- कुछ प्रमुख जैन कृतियों द्वारा प्रणीत धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्त- प्रमुख कृतियां- जिनदत्त सूरि स्तुति-भरतेश्वर बाहुबली रास- चन्दनबालारास- नेमिनाथ चतुष्पदिका- पेथड़ तथा समरारास- नेमिनाथ तथा स्थूलिभद्र फागु- आर्णंदो- प्रद्युम्न चरित- त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध- जिनोदय सूरि विवाहलो- सुदर्शन सेठ शील प्रबन्ध- गय सुकुमाल रास-विद्धंगवि चौपई- विद्याविलास पवाड़ो और पंच पाण्डव चरित रासु- इनरचनाओं की प्राणधारा धर्म- निष्कर्ष- । (पृ० ६५ - १२७)

अध्याय - ४

अपभ्रंश का जैन साहित्य :-

अपभ्रंश साहित्य की सम्पन्नता; अपभ्रंश साहित्यका वर्गीकरण- प्रारम्भिक काल (५०० ई०-८०० ई० तक; स्वर्णकाल (सन् ८०० ई०-१५०० ई०तक) प्रारम्भिक काल- अपभ्रंश शब्द का इतिहास-विभिन्न विद्वानों के अपभ्रंश

सम्बन्धी विभिन्न मतों का उल्लेख,प्रारम्भिक काल के साहित्य का महत्व आंशिक; स्वर्णकाल: विवेचन; काव्यग्रन्थों का वर्गीकरण प्रबन्ध; मुक्तक; प्रबन्ध- पुराण, महापुराण चरिउ काव्य, रूपक काव्य, कथात्मक ग्रन्थ संधिकाव्य- रास आदि; मुक्तककाव्य- गीत-स्तोत्र-स्तवन-पद तथा उपदेश प्रधान स्फुट रचनाएं; इन रचनाओं की प्रमुख विशेषताएं और उन पर विवेचन (१) रचनाओं की ऐतिहासिकता और उसका परिचय- संस्कृत से उसका तुलनात्मक अध्ययन (२) प्रबंधात्मकता- क्रमिक विकास तथा तुलनात्मक विवेचन; घटना विन्यास, वर्णनक्रम, कथा काव्य रूप, वैविध्य, कौतूहल तथा प्रवाह के रूप में अपभ्रंश काव्यों पर विचार विविध रचनाएं; कला पक्ष भवि पक्ष और उसके विशिष्ठ तत्व; काव्यरूप; लौकिक प्रबन्ध तथा उपदेश प्रधान रचनाएं- आध्यात्मिक तथा स्तोत्रस्तवन सम्बन्धी रचनाएं; बौद्ध सिद्धों की अपभ्रंश रचनाएं इन कृतियों में धर्म प्राणधारा के रूप में विद्यमान होना- प्रबन्ध काव्यों को शिल्प अन्यविधि तत्व और उनका परिचय; रसविधान निष्कर्ष-। (पृ०१२८-१२६)।

अध्याय - ५

हिन्दी के आदिकाल का जैनेतर (लौकिक) साहित्य)

लौकिक काव्य:- धार्मिक दृष्टिकोण से रहित; तत्कालीन प्राप्त जैनेतर साहित्य का वर्गीकरण (१) लौकिक काव्य (२) जैनेतर(लौकिक) गद्य रचनाएं; (१) लौकिक काव्य और उनका विश्लेषण (१) शिलालेख (२) हंसाउली (३) रणमल छंद (४) कान्हड़ दे प्रबन्ध: काव्यात्मक विश्लेषण (५) बसंत विलास फागु और उसका परिचय (६) सदयवत्स चरित: एक परिचय (७)हरिचन्द पुराण (८) रुक्मणी मंगल: एक अध्ययन (९) ढोला मारू रा दोहा- (१०) अचलदास खीची री वचनिका: एक विश्लेषण- (क्रमश:)

(२) जैनेतर(लौकिक) गद्य रचनाएं:-

पृष्ठ भूमि: हिन्दी साहित्य के गद्य की परंपरा- संस्कृत प्राकृत - पाली तथा अपभ्रंश की हिन्दी कृतियों में हिन्दी गद्य के उद्भव के अंकुर; कुवलयमाला- पुरानी कोसली का ग्रन्थ उक्ति व्यक्ति प्रकरण और उसके उद्धरण: १२वीं शताब्दी के रावल समर सिंह और महाराज पृथ्वी सिंहके दो प्रसिद्ध दानपत्र और उनका गद्य; गोरखनाथ के गद्यांश- हठयोग के ग्रन्थ में गद्य- अन्य कृतियां और उनका हिन्दी गद्य की परंपरा के विकास में योग- जैनेतर गद्य कृतियां - १०वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक उपलब्ध, अजैन कृतियों का गद्य परंपरा को पुष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान- मालवी भाषा का शिलालेख और उसका विश्लेषण; मैथिली का वर्ण रत्नाकर और उसके गद्य अवतरण; पद्मनाभिकृत राजस्थानी महाकाव्य कान्हड़ दे प्रबन्ध और उसका गद्य: एक विवेचन: अचल दास खीची री ववनिका- अचल दास खीचीरीवात- इन कृतिओं का विस्तृत विश्लेषण- निष्कर्ष। (पृ० १४० — २१८)।

द्वितीय भाग

अध्याय- ६

आदिकालीनहिन्दी जैन साहित्य(१) प्रमुख काव्य-परम्पराएं

आदिकालीनहिन्दी जैन साहित्य के स्वरूप का वैविध्य- उसके स्वरूप के विभाजन के आधार- प्रमुख परंपराएं-(१) प्रमुख काव्य परंपराएं(२) गौणकाव्य परंपराएं (३) स्तवन काव्य परंपराएं (४) गद्य काव्य परम्पराएं;

(१) प्रमुख काव्य परम्पराएं:- प्राप्त काव्यों में एकार्थ काव्यों की अधिकता: चरित काव्यों का विकास- छंद काव्य, शृंगारिक काव्य इन कृतियों का वर्गीकरण छंद प्रधान तथा विषय प्रधान प्रबन्धकाव्य एवं उनके अध्ययनके आधार;

(अ) रास (ब) फागु (स) चतुष्पदी (द) चर्चरी; (क) प्रबन्ध (ख) चरित (ग) विवाहलो (घ) सन्धि (ङ) पवाड़ो (च) कक्क मातृका; (२) गौणकाव्य परम्पराएं-गौणकाव्य परम्परा-प्रबन्धात्मकता, घटना कौतूहल तथा वस्तुशिल्प- इनमें प्रधान काव्यरूप है- दोहा- छंद, छप्पय, रेलुआ, गाथा; विषयप्रधान काव्य रूप- महात्म्य, चौर,पट्टावली बारहमासा, तलहरा सम्बोध, संवाद आदि; (३) स्तवन काव्य परंपराएं: स्तवन काव्य रूपों में प्रमुख रूप है-उत्साह, गीत, स्तोत्र, स्तवन, बोलिका, स्तुति वीनंती, कलश, नमस्कार,प्रशस्ति, सज्झाय आदि; (४) गद्य परंपराएं जैनगद्य परम्परा उसके विविध रूप; विभाजन; कालक्रम से कृतियों का वर्गीकरण तथा विश्लेषण- निष्कर्ष;

(१) प्रमुख काव्य परम्पराएं- (अ) रास काव्यरासों का अध्ययन- रास परम्परा की प्राचीनता- भरत के नाट्य शास्त्र में रास- भास के नाटक-सरस्वती कंठाभरण- पुराणों में रास- बाणभट्ट, काम सूत्र, अभिनवगुप्त, श्रीमद्भागवत् वागभट्ट के अनुसार रास का शिल्प-निष्कर्ष - अश्लीलरासक पदानि और उस पर विचार- संस्कृत काल के पश्चात् रास- राजस्थान में रास का रूप संस्कृत कालों के रास- रिपुदारण रास की प्राचीनता-अपभ्रंश के रास कालान्तर में रास क्रीड़ा- रास के विविध तत्व- १०वीं ११वीं शताब्दी तक रास की स्थिति- हेमचन्द्र की रास सम्बन्धी मान्यताएं- मसृण उद्धत और मिश्र-रास और- रासक का अन्तर:- ११वीं शताब्दी तक नृत्य,गान और अभिनय ही रास की विषय वस्तु थी १२वीं शताब्दी में रास विषयक वस्तु में परिवर्तन- चर्चरी गीतियों का समावेश- कथा तत्वका समावेश- चरित संकीर्तन का समावेश- रासा बंध; १२वीं से १५वीं शताब्दी तकरास साहित्य के शिल्प उसकी प्रमुख प्रवृत्तियां और विशेषताओं एवं उसके विकास की कड़ियों का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन-संगीत व नृत्यकला के रूप में-छन्दों की दृष्टि से -विषय की दृष्टि से- साहित्यिक रूपों की दृष्टि से तथा धर्म की दृष्टि से- इन विभिन्न दृष्टियों से रास का विश्लेषण, सात्विक रूप एवं निष्कर्ष।

रास की शिल्प योजना-वर्तमान काल में रास की स्थिति-विभिन्न प्रादेशिक नृत्यों में रास- रासक के तत्व- राजस्थान ब्रज और गुजरात में विविध नृत्यों में रास के वास्तविक तत्व- रासों के परवर्ती अर्थ- निष्कर्ष- १२वीं १३वीं शताब्दी के रास- भरतेश्वर बाहुबली रास और उसका अध्ययन- कृति के नाम समय आदि सम्बन्धी पूर्ववर्ती विद्वानों के विचार- कथा रूढ़ि और भरतेश्वर बाहुबली पर विरचित साहित्य कथा भाग-नाटकीय संलाप- विविध वर्णन- अनूठी उक्तियां- भाषा विचार- रस व्यंजना- अलंकार उनके विविध उद्धरण- छंद योजना- विभिन्न प्रयुक्त छन्द-चंदनबाला रास और उसका अध्ययन- जीवदया रास- कथा की कारुण्यता- स्थूलिभद्र रास और उसका परिचय, रेवन्तगिरि रास- नेमिनाथ रास- १४वीं १५वीं शताब्दी के रास- गयसुकुमाल रास, कच्छूली रास- समरारास- मयणरेहारास- श्री जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेक रास- कुमार पाल रास-पं पान्डव चरित रास- गौतम रास- कलिकाल रास- सोलहकारण रास- इन रासों का विस्तृत साहित्यिक विश्लेषण- निष्कर्ष- (ब) फागुकाव्य; फागु काव्यों का विश्लेषण- मानव की उल्लासप्रधान अनुभूतियों का प्रत्येक ऋतु से सम्बन्ध- फागु काव्य परम्परा और उसका अध्ययन- संस्कृत काव्यों मेंफाग, रत्नावली नाटक में फागु-विद्वानों द्वारा फागु की विभिन्न परिभाषायें-विविध आदिकालीन फागुओं के उदाहरण- फागु काव्यों की सामान्य प्रवृत्तियां फागु काव्यों का आधुनिक स्वरूप और डफ के गीतों में उसके तत्व- फागु काव्यों की विशिष्ट शैली अनुप्रासात्मक- कुछ मान्यतायें और उनपर विचार- फागु बंध रचनाओं का भविष्य एवं निष्कर्ष- १४वीं शताब्दी के फागों का साहित्यिक मूल्यांकन- जिनचन्द्र सूरि फाग- नेमिनाथ फागु स्थूलिभद्र फागु- नेमिनाथ फागु- निष्कर्ष- १५वीं शताब्दी के फाग और उनका विश्लेषण- नेमिनाथ फागु-नेमिनाथ फागु (प्रथम, द्वितीय)-राजर्षि पार्श्वनाथ फागु-जम्बूस्वामी फागु-हीरापल्ली पार्श्व नाथ- पुरुषोत्तम पंच पान्डव फागु-भरतेश्वर चक्रवर्ती फाग-वसंत फागु-

नेमिनाथ फागु-देवरत्न सूरि फाग-रंगसागर नेमि फाग-नारी निरास फागु-सुरंगाधिप नेमिफाग- निष्कर्ष- (ख) चउपई संज्ञक रचनाएं और उनका अनुशीलन- नेमिनाथ चउपइ-नेमिनाथ वृत्त पर उपलब्ध ग्रन्थ- ग्रन्थ का रचनाकाल तथा कर्ता- चउपइ संज्ञक रचनाओं की परम्परा- पूर्व प्रचलित मतों पर विचार-नेमिनाथ चतुष्पदिका एक बारहमासा काव्य-बारहमासा और उसकी परंपरा पर विचार- रचना का साहित्यिक विश्लेषण- सुभद्रासती चतुष्पदिका- मातृका चउपई- सम्यकत्व माइ चउपइ- मंगल कलश चउपइ- जिनदत्त चउपई-प्रतिपरिचय काल निर्धारण- कवि परिचय- कथा प्रधान कृति- कथा-प्रबन्ध काव्य के लक्षण और परीक्षण- विविध वर्णन- नखशिख -प्रकृति वर्णन- कवि की बहुज्ञता-छंद- रस- भाषा-निष्कर्ष पद्मावती चौपई-ज्ञान पंचमी चौपई-विग्रंगति चौपाई-निष्कर्ष- (ग) चर्चरी- काव्य; परम्परा उद्भव और विकास, चर्चरी संज्ञक रचनाओं की परम्परा- परिचय-संस्कृत प्राकृत औरअपभ्रंश में चर्चरी के अर्थ-चर्चरी के प्राचीनतम चार उल्लेख- चर्चरी सम्बन्धी सहायक ग्रन्थों में उपलब्ध प्रमाण- अपभ्रंश काव्यत्रयी,कुवलयमाला कथा तथा विभिन्न कोश ग्रन्थों में चर्चरी के अर्थ- विविध अर्थ- चर्चरी एक छन्द विशेष- संदेश रासक, ढोला मारू रा दोहा, संदेश रासक- स्वयंभू छन्द- कुमारपाल प्रतिबोध- हिन्दी भाषा कोश - पुरानी ,हिन्दी- कबीर जायसी- तुलसी आदि में चर्चरी के रूप-पुरातन प्रबन्ध संग्रह और वस्तुपाल प्रबन्ध में प्रयुक्त चर्चरी संज्ञक सार्थक- चर्चरी के विभिन्न अर्थ- चर्चरी के शिल्प सम्बन्धी आवश्यक निर्देश लोकप्रिय गान-उल्लास प्रधानलोक गीत- राजस्थान में चर्चरी का स्वरूप- चांचर, चर्चर का उल्लेख- निष्कर्ष- चर्चरी संज्ञक रचनाएं और उनका परिचय-सोलणकृत चर्चरी-चाचरी-साहित्यिक परिचय निष्कर्ष- (क) प्रबन्ध संज्ञक काव्य; प्रबन्ध काव्यों की परम्परा-मुक्तक और प्रबन्ध रूप में-प्रबन्ध काव्यों के तत्व-प्रमुख प्रबन्ध काव्य त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध और भरतेश्वर बाहुबली प्रबन्ध-सुदर्शन सेठ शील प्रबन्ध और उसका परिचय-त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध और रूपक काव्यों की परम्परा- रूपक काव्यों के तत्व- कथा-काव्यात्मक विश्लेषण-

(ख) चरित काव्य; चरित संज्ञक रचनाओं का विश्लेषण-चरित ग्रन्थों की परम्परा- क्या चरित काव्य रूप है। चरित मूलक काव्यों का विशिष्ट शिल्प क्या है? चरित काव्यों के गुण- प्रमुख चरित संज्ञक ग्रन्थ औरउनका साहित्यिक विश्लेषण- जम्बू स्वामी चरित अन्तर्कथाएं- प्रद्युम्न चरित- प्रति कवि एवं रचनाकाल परिचय- काव्य परीक्षण- कथासार- भाव पक्ष और कला पक्ष/ रस छंद अलंकार विविध वर्णन प्रति प्राकृतिक वर्णन- कथा परम्पराएं और अवान्तर घटनाएं -निष्कर्ष- नेमिश्वर चरित- विराट पर्व- आदिनाथ पुराण -निष्कर्ष- (ग) विवाहलो काव्य; परम्परा और विश्लेषण- परम्परा- ऐतिहासिक विवाहले- रूपक काव्य-प्रमुख कृतियां-जिनेश्वर सूरि विवाहलो-जिनोदय सूरि विवाहलउ- नेमिनाथ विवाहलउ-जिनचन्दसूरि विवाहलउ-सुमति साधु सूरि वीवाहलउ (घ) पवाड़ो काव्य; विश्लेषण-रचयिता लोक आख्यानक गीत-चरित काव्य- विद्याविलास पवाड़ो और उसका साहित्यिक मूल्यांकन (ङ) संधिकाव्य; परम्परा और विश्लेषण- संधिकाव्य-परम्परा-अपभ्रंश मेंसंधि- वर्ण्य विषय- अन्त रंग सन्धि- उपसन्धि-उपदेश सन्धि भावना सन्धि-केशी गौतम सन्धि- विश्लेषण और निष्कर्ष- (च) कक्कमातृका काव्य; मातृका; कक्क-बावनी कक्क मातृका का शिल्प- परम्परा संज्ञक रचनाएं-मातृका प्रथमाक्षर दोहा; सम्यकत्वमाइ चउपइ; मातृका चउपइ- संवेगमातृका-सालिभद्र कक्क - दूहा मातृका- कक्कबंधि चउपइ- अष्टापद तीर्थ बावनी-निष्कर्ष-।(पृ० २१८-७२६)

अध्याय - ७

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य(२) गीतकाव्य परम्पराएं

गीत काव्य रूप:- छंद प्रधान तथा विषय प्रधान- (अ) छंद प्रधान- दोहा-मातृका- दोहा बारहखरीदोहा- छप्पय- उपदेश माला कहाणय छप्पय-

खरतरगुरु गुण छप्पय- छंद- श्री गौतम स्वामी छन्द-(प्रथम द्विवतीय)-अंबिका छन्द- श्री स्थूलिभद्र मुनि छंदासि- सत्कवस्तु-जम्बूस्वामी सत्कवस्तु- द्विवपदिका-क्षेत्रपाल द्विवपदिका-गाथा-मंगल-गाथा- आरात्रिक गाथा- कम्मभूमि गाथा- रेलुआ- जिनचन्द्र सूरि रेलुआ- श्री शालिभद्र रेलुआ- गुरावली रेलुआ- चांद्रायण- जिनप्रबोध सूरि चंद्रायणा- श्री जिनेश्वर सूरि च चन्द्रायणा- अष्टक-जिनभद्रसूरि अष्टक (ब) विषय प्रधान- चैत्य परिपाटी- श्री शत्रुंजय परिवाडी- श्री चैत्य परिपाटी-श्री नगर कोट तीर्थ चैत्य परिपाटी- बारहमासा- नेमिनाथ चतुष्पदिका-नेमिनाथ बारहमासा रासो - थूलिभद्र बारहमासा-नेमिनाथ फाग बारहमासा- पट्टावली-खरतरगच्छ पट्टावली गुणवर्णन- जिनवल्लभसूरि गुण वर्णन-संवाद-कृपणनारी संवाद- कुलक; उत्तम पुरुष कुलक- अनाथी कुलक- महात्म्य- नवकार महात्म्य- घोर; भरतेश्वर बाहुबली घोर- तलहरा- अम्बिकादेवी पूर्वभव वर्णन- तलहरा- संबोध-नरनारी सम्बोध- दो अन्य विषय प्रधान कृतियां-आणंदो-(आध्यात्मिक रचना) तथा मृगापुत्तकम् (उपदेश प्रधान)। (पृ० ७३७-८३०)।

अध्याय - ८

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य(३) स्तवन काव्य परम्परायें:-

संस्कृत मुक्तक काव्य का स्वरूप:- स्तवन संज्ञक काव्यों की परम्परा-स्तवन काव्य: मुक्तक काव्य; -प्राकृत अपभ्रंश- मुक्तक गीत मुक्तक गीति का शिल्प- उर्मिकाव्य- क्या स्तोत्र स्तवन साहित्य नहीं? स्तोत्र स्तवन में गीति काव्यों का वैशिष्ट्य प्राचीन स्तोत्र संग्रह- वेद महाभारत और भागवत पुराण में गीत स्तोत्र- प्रादेशिक भाषाओं में गीत स्तोत्र स्तवन- उत्तर अपभ्रंश काल में गीत स्तोत्र स्तवन- हिन्दी जैन साहित्य और मुक्तक साहित्य- गीत स्तोत्र और स्तवन के प्रमुख प्रकार- अष्टादश- गीत-स्तोत्र-स्तवन-कलश-बोलिका-स्तुति-वीनती- सज्झाय- नमस्कार-प्रशस्ति- लौकिक ऐतिहासिक और धार्मिक मुक्तक-उत्साह-

सत्यपुरीय महावीर उत्साह- रचना स्थान- प्राप्ति स्थान- कथा भाग- कृति का ऐतिहासिक महत्व- साहित्यिक मूल्य- वस्तु विवेचन-सत्यपुरीय महावीर उत्साह की भाषा- कुछ उदाहरण- राजस्थानी- तत्सम रूपों के उदाहरण- देशी भाषाओं-साहित्य का महत्व- प्राचीन राजस्थानी-जूनी गुजराती- अथवा पुरानी हिन्दी की महत्व-गीत जिनपति सूरि धवल गीत-(शाहरयण)-पत्तल- मधुबिंदु- गीतपद- स्थूलिभद्र गीतम्- श्रीवयर स्वामी गीतम्- स्तोत्र-चउवीसजिन स्तोत्र-नेमिनाथ भाव पूजा स्तोत्र-पंच कार नमस्कार तीर्थ-स्तवन-चतुर्विंशतिजिन स्तवन स्तंभनेश पार्श्वनाथ स्तवन (प्रथम, द्वितीय)- श्री सीमंधर स्वामी स्तवनम्- कलश- श्री चन्द्रप्रभ स्वामि कलश- शान्तिनाथ कलश- आदिनाथ कलश- महावीरकलश- बोलिका-वासुपूज्य बोली-आदि नाथ बोलिका-जिन प्रबोध सूरि बोलिका-श्री शत्रुंजय आदिनाथ बोली-नेमिनाथ बोली स्तुति- नेमिनाथ स्तुति- विरहमान स्तुति- विनंती-महावीर बीनंती- श्री वीतराग विनंती- श्री गिरनार मण्डन बीनती-इनका काव्यात्मक महत्व-निष्कर्ष -। (पृ०८३१-८७१)

अध्याय- ९

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य(४) गद्य परम्परायें:

विषय प्रवेश- गद्य साहित्य की प्राचीनतम रचनाओं का श्रेय अधिकाल को आदिकाल के विभिन्न स्त्रोत, विठ्ठलनाथ, जैन- जैन गद्य परंपरा-१४वीं शताब्दी की जिन प्रभसूरि कृत रचना में देशी भाषा में चार नायिकाओं के संवाद-गूजरी, मालवी-एवं पूर्वी नायिकाओं के संवादों के उद्धरण-पूर्वीभाषा के साथ गद्य कासाम्य तथा उसकी प्राचीनता-जैन रचनाओं का कालक्रम-वर्गीकरण १- प्रारम्भिक काल(सं०१३००-१४००) (अ) प्रारम्भिक रचनायें (ब) परवर्ती रचनायें (२) विकास काल (सं० १४००-१५००),(१) प्रौढ गद्य (२) गद्य काव्य, प्रारम्भिक काल तथा उसकी रचनायें-आराधना बाल शिक्षा, अतिचार

नवकारव्याख्यान-सब तीर्थ नमस्कार स्तवन अतिचार-आदि प्रारम्भिक रचनाएं, परवर्ती रचनाएं- धनपाल कथा तत्वविचार प्रकरण आदि, प्रारम्भिक काल तथा उसकी रचनाओं का वर्गीकरण (अ) धार्मिक कृतियां (१) उपासना पद्धति जन्य (२)धार्मिक सिद्धान्त मूलक (ब) साहित्यिक (अ) कथात्मक रचनाएं, धार्मिक कृतियां-उपासना पद्धतिजन्य-शिल्प-गद्य के कुछ उद्धरण-भाषा शैली-अतिचार(प्रथम) अतिचार(द्वितीय) तत्वविचार प्रकरण- आराधना और अतिचार तथा उनके गद्य के उद्धरण- ३-व विचार प्रकरण और उसका अध्ययन (ब) साहित्य गद्य-धनपाल कथा तथा उसका विश्लेषण (२) विकास काल-रचनाएं- बालावबोध संज्ञक विभिन्न ०७ रचनाएं, श्रावक बृहदतिचार-पृथ्वीचंद वाग्विलास तथा इनरचनाओं का परिचय बालवबोध शैली का परिचय-अनुवाद और टीकाओं के दो रूप- टबा एवं बालावबोध, कथा प्रधान शैली-कथाओं के प्रकार मौलिक कथाएं-परम्परागत कथाएं-लोक कथाएं-उपदेशात्मक कथाएं-धार्मिक कथाएं विविध विषयक कथाएं- विकास काल की इन रचनाओं का वर्गीकरण (१) व्याकरणमूलक-मुग्धावबोध औक्तिक, औक्तिक, उक्तिसंग्रह तथा विवेचन (२) कथाप्रधान गद्यसाहित्य- विविध विषयक कथाएं और उसका उद्धरण (३) धर्म सम्बन्धी गद्यसाहित्य, षडावश्यक बालवबोध, ग्रन्थ का शिल्प बालवबोध संज्ञक ८ रचनाएं और उनके उद्धरण-बालवबोध संज्ञक उपलब्ध अन्य रचनाएं, तथा विभिन्न लेखक (४) ऐतिहासिक गद्य साहित्य- गुर्वावली तथा उसका गद्य (५) गद्य काव्य का प्रेरक एवं उद्भावक गद्य साहित्य-गद्य काव्य की परम्परा का उद्भव और विकास-राजस्थानी का गद्य- उसके दो रूप दवावैत और वचनिका दवावैत शुद्ध बंध-गद्य बंध, वचनिका-पदबंध-गद्य बंध-गद्यकाव्य संज्ञक कृतियां पृथ्वीचन्द चरित एवंउसका अध्ययन, बोला विकार और उसका परिचय (६) अन्यविविध विषयक गद्य साहित्य-गणितसार नवपंचविंशति का बालवबोध तथा उनके उद्धरण जैन गद्यपरंपरा की देन- निष्कर्ष-(पृ० ८७२-९४०)

§ तृतीय भाग §

अध्याय- १०

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की कथा परंपराएं और कथा रूढ़ियां:

(अ)- कथा परम्पराएं-

जैन रचनाओं के निर्माण में परम्परा को पुष्ट करने वाली परिपाटियों इन परंपराओं को प्राणान्वित करने के कारण- परम्परा शब्द का यहां अर्थ- अनेक जैन कथा काव्य- शुद्ध कथा तत्व का विकास- परम्पराक्रम, परंपरा का सम्बन्ध कृति की कथात्मकता से -घटना में वैविध्य और मौलिकता के कारण परंपराओं का निर्माण- जैन कथा काव्यों के नायक- महापुरुष- तीर्थंकर और शलाका पुरुष- कथा परम्पराओं का शिल्प- वैविध्य कुतूहल मौलिकता तथा जीवट का समावेश- कथा की रचना में सम्भवतः मौलिकता- एक ही कथा को विभिन्न रूपों में रचने के कारण वर्णन क्रम वस्तु संयोजन और कथा शिल्प में विविध्य के कारण परंपराओं का जन्म- इन कथा परंपराओं का अध्ययन रुचिकर और आवश्यक क्यों ? एक ही महापुरुष पर विभिन्न नामों वाली कृतियां- विभिन्न विषयों पर विभिन्न रूपों में लिखी जाने वाली रचनाएं- विभिन्न कवियों का एक ही घटना पर विभिन्न प्रतिक्रियाएं- मौलिकता- कथा परम्पराओं के मूल में-मौखिक तथा अनुश्रुति बद्ध परंपरा-वातावरण और जन समाज का कथा परंपरा में योग - निष्कर्ष- उपलब्ध प्रमुख कथाएं और घटना -चरित्र प्रधान और घटना प्रधान - चरित्र प्रधान- नेमिनाथ जंबूस्वामी, स्थूलिभद्र- घटना प्रधान रचनाओं में कई रचनाएं- जिनदत्त चौपाई- प्रद्युम्न चरित-सत्यपुरीय उत्साह- श्रीमालारास- सुभद्रासती चउपई- गुणापुत्तकम्- इन कृतियों के पारस्परिक वर्णन क्रम में अन्तर- विभिन्न काव्य रूपों में परस्पर अन्तर रास और फागु में कथा परम्पराओं के शिल्प में अन्तर- प्रबन्ध और चरित में परंपराओं का क्रम और अन्तर- विविध वर्णनों और उद्धरणों द्वारा परंपराओं का मूल्यांकन- विविध रचनाएं- परवर्तीकाल में इन रचनाओं का विकास-(ब) काव्य रूढ़ियां- काव्य रूढ़ियों का इतिहास- कथा रूढ़ियों की परंपरा- हिन्दी जैन रचनाओं की कथा रूढ़ियां

वर्गीकरण-काव्य रूढ़ियाँ- कथा रूढ़ियाँ अनुश्रुतिबद्ध परंपरा-काल्पनिक रूढ़ियाँ-
विविध रूढ़ियाँ- काव्य रूढ़ियाँ- मंगलाचरण- सरस्वती वंदन- जिनवंदन- कवि जन्म
परिचय- प्रारम्भ में खल निंदा साधु पुरुषों की प्रशंसा- अन्त में कवि पदों की नाम की
छाप- इन अभिप्रायों का प्रयोग- काव्य रूढ़ियों का उपयोगिता- काव्य रूढ़ियों
की परंपरा- काव्य रूढ़ियों का परीक्षण- काव्य रूढ़ियाँ- रूपविधान सम्बन्धी-
विविध वर्णन सम्बन्धी- सामाजिक परंपराओं सम्बन्धी- अतिप्राकृतिक तत्वों से युक्त-
इन रूढ़ियों का विश्लेषण-अनुश्रुतिबद्ध कथा रूढ़ियाँ- काल्पनिक- विविध रूढ़ियाँ- हिन्दी
जैन साहित्य में उपलब्ध उक्त सभी रूढ़ियों का विश्लेषण- निष्कर्ष-।(पृ. ६४१-६६६)

अध्याय - ११

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रयुक्त छंद

जैन रचनाओं में अनेक प्रकार के छन्द-मात्रिक और वार्णिक वृत्त -ताल
और वर्ण का महत्व- मात्रिक और ताल वृत्तों में संगीत का समावेश-वर्ण
वृत्त और प्रयुक्त गणगण-अपभ्रंश ग्रन्थों में इन छन्दों का विश्लेषण -आदिकालीन
हिन्दी जैन रचनाओं में प्रयुक्त विभिन्न छंद औरउनका वर्गीकरण-प्रयुक्त छंद-
(५३ छंद) इनका वर्गीकरण-मात्रिक- वर्णिक तथा देशी-वर्णवृत्ती(कुल १९)-देशी
छंद-देशी छन्दों का शिल्प-तालवृत्त तथा संगीत-विविध रागों-राजस्थानमें
विविध ढालों का उपयोग-देशी छन्दों की परम्परा का उद्भव और विकास-
विविध देशी ढालें और उनका छन्दों में प्रयोग-भरतेश्वर बाहुबली रास-
बुद्धिरास-सप्तक्षेत्रीरास, पेथड़ तथा कच्छूली रास- समरा रास- पंच पाण्डव
चरित रास -इनमें प्रयुक्त रास या रासक छंद-वस्तु-त्रोटक या त्रुटक-सरस्वती
धवल-दोहा-चौपाई सोरठा-वरमकुल-देशी बंध-विभिन्न कवियों में प्रयुक्त-रोला-
झूलणा छंद-देशी ढालें-अपभ्रंश-दोहा की देशी अनेक ढालों की देशी ढाल-द्विपदीढाल

त्रिभंगी- त्रिपदी-सोरठा तथा सोरट्ठा-हरिगीतिका-पादाकुल-फागु वर्णिक वृत्त और उनका वर्णन-द्रुतविलंबित-मालिनी-उपजाति- वसंततिलका- रथोद्धता- नाराच-अर्द्धनाराच- रागों से पुष्ट देशी छन्द तथा उनका विकास करने वाली महत्वपूर्ण कृतियां-देशी छन्दों का स्वरूप त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध-फागट्ट- ध्रुपद-आन्दोल- भाषा-अडइया-विद्याविलास पवाड़ो में प्रयुक्त विविध देशी छंद-विभिन्न रागें- राग संधूउ, रामगिरि- वीवाहलउ-भीमपलासी-हिव विधापणउ ढाल राग देशाख-खरतरगच्छ पट्टावली-प्रथम श्री धवल राग- राज वल्लभ सवैया की देशी-राग धन्याश्री- विभिन्न रागों में प्रयुक्त संगीत प्रधान देशी छन्द औरउनका भविष्य- शोध की पर्याप्त अपेक्षा इन छन्दों का परवर्ती कालों पर प्रभाव- ये प्रभाव दो रूपों में- काव्य पद्धतियों तथा छन्द पद्धति में-काव्य पद्धतियोंमें- दोहा पद्धति- दोहा चौपाई पद्धति- छप्पय पद्धति- पद औरगीति पद्धतियां- तथा छंद पद्धति में-वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों द्वारा भक्तिकाल-रीतिकाल- तथा आधुनिक कालों पर प्रभाव- इन छन्दों की देशी लोक परंपराएं और उनका परवर्ती कालों में ग्रहण-निष्कर्ष- ।(पृ० ९७० —१०२०)

अध्याय -- १२

उपसंहार

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन- उसके प्रमुख तथ्य(१) जैन कृतियों के अध्ययन की अपेक्षा-प्रमुख कार्य गुजराती और राजस्थानी विद्वानों द्वारा-हिन्दी के विद्वानों की इस ओर अपेक्षा-इतिहासकारों के लिए आवश्यक सामग्री-प्रस्तुत प्रबन्ध से इस ओर पूर्ति का प्रयास- (२) धर्म और समाज- तत्कालीन स्थितियों का काव्य रचना में योग- समाज ने निर्माण में योग; (३) जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्त- इन सिद्धान्तों का साहित्य ग्रहण में योग, सरस कथाओं एवं काव्यात्मक रूढ़ियों का आधार-रचनाओं में दार्शनिक तत्वों

का विश्लेषण कथाओं के द्वारा;(४) अपभ्रंश का जैन साहित्य- उसकी प्रमुख विशेषताएं तथा उसका अध्ययन (५) आदिकालीन हिन्दी जैनेतर लौकिक साहित्य, भाव एवं कलापक्ष, हंसाउली कान्हड़ दे प्रबन्ध-बसंत विलास फागु- ढोला मारु रा दोहा, रणमल्ल छंद, सदयवत्स-रुक्मणीमंगल-आदि:, (६) काव्यपरंपराएं- प्रमुख गौण, स्तवन और गद्य परंपरा तथा इनके अन्तर्गत आने वाले काव्य रूपों में वैविध्य और विशालता (७) कथा परंपराएं और कथा रूढ़ियां उनका वैविध्य और विश्लेषण (८) आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रयुक्त छंद-तालवृत्त और मात्रावृत्त-संगीत में इन कृतियों का योग देशी छन्दों का विकास और इन कृतियों द्वारा देशी छन्दों के क्षेत्र में मौलिक अनुदान (९) शोध की नई दिशाएं- पुरानी हिन्दी का उद्भव और विकास; आदिकालीन हिन्दी रचनाओं की भाषा-आदिकाल के रास, फागु, प्रबन्ध, चरित मुक्तक काव्य श्रृंगार तथा खंड काव्यों का वैज्ञानिक सम्पादन, मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य की सम्यक शोध की अपेक्षा (१०) हिन्दी साहित्य को इन कृतियों की देन- हिन्दी साहित्य के विविध कालों और उसकी काव्य कृतियों तथा काव्य रूपों पर प्रभाव; भाव और कला पक्ष की सफलता; हिन्दी साहित्य को इन कृतियों की देन- विभिन्न भंडारों की शोध की अपेक्षा-निष्कर्ष (पृ० १०२१ - १०२९)

१- परिशिष्ट- १ : आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रयुक्त अक्षर, अंक एवं प्रतियों के चित्र तथा परिचय - (पृ० १-१७)

२- परिशिष्ट- २ : आदिकालीन हिन्दी जैन (प्रकाशित तथा अप्रकाशित) हस्तलिखित रचनाओं की सूची - (पृ० १८ - ४६)

३- परिशिष्ट- ३ : सन्दर्भ ग्रन्थ सूची - तथा भंडारों की सूची - (पृ० ४७ -५०)।

------::००::------

अध्याय १

विषय- प्रवेश

विषय-प्रवेश

:: हिन्दी साहित्य के आदिकाल का अध्ययन ::

---::००::---

हिन्दी साहित्य का आदिकाल स्वयं अपने में एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। आदिकाल का विवेचन करते समय सम्यक् शोध के अभाव में विद्वानों ने इसकी उपलब्ध रचनाओं की स्थिति को सदैव ही सन्देह की दृष्टि से देखा है। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान इतिहासकार स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल का वीरगाथाकाल नामकरण करके उपलब्ध कुछ ही कृतियों को स्थान दिया, पर शुक्ल जी के सामने सामग्री की उपलब्धि का अभाव, सबसे बड़ा कारण रहा। यही नहीं इस काल में मध्यदेश के विभिन्न प्रदेशों से कोई भी प्राचीनतम रचना नहीं मिली, जिसके आधार पर स्थिति थोड़ी सुलझती। अतः सामग्री का अभाव, शोध की उपेक्षा तथा अन्य अन्तरंग बहिरंग प्रमाणों की अनुपलब्धि के कारण आदिकाल का मार्ग कंटकाकीर्ण होता गया। विद्वानों की इन कठिनाइयों के कारण चाहते हुए भी इस ओर रुचि समृद्ध नहीं हो सकी। विभिन्न प्रवृत्तियों के कारण इस काल के नामकरण भी विभिन्न रूपों में हुए। परन्तु कोई भी नाम इस काल का सही प्रतिनिधित्व नहीं कर सका। अतः यह काल स्वतोव्याघातों का काल ही बना रहा। संघर्षों और संक्रांति का युग होने से इस काल की अनेक महत्वपूर्ण कृतियां विनष्टप्राय हो गईं। फिर भी इस काल का सम्यक् शोध होने पर इसमें अनेकानेक ग्रन्थ रत्न उपलब्ध हो सकते हैं ऐसी विद्वानों की धारणा का धीरे धीरे पोषण होता रहा और हर्ष का विषय है कि यह धारणा परवर्ती शोधों से ठीक ही प्रमाणित हुई। नीचे इस नवोपलब्ध सामग्री के आधार पर हिन्दी साहित्य के आदिकाल पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल को आदिकाल नाम दिया गया है।

यह काल ऐसा संक्रांतिकाल है कि जिसमें एक ओर संस्कृत के प्रतिभाशाली विद्वान हुए, दूसरी ओर अपभ्रंश के महान साहित्यकार हुए, तथा एक ओर बौद्ध सिद्ध, जैन, संत और अन्य धर्म प्रवर्तक कवि उत्पन्न हुए। इन कवियों ने प्रगति और परम्परा का सहज समन्वय उपस्थित किया, संस्कृत ने परम्पराजन्य अलंकृत पद्धतियों पर काव्य रचना की तथा प्राकृत और अपभ्रंश के कृतिकारों ने तत्कालीन प्रचलित देश भाषाओं अर्थात् जनपदीय विभाषाओं में काव्य प्रणयन किया। अतः धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन और समाज आदि लगभग सभी क्षेत्रों में इस काल में क्रान्ति हुई। यही नहीं उत्तर भारत की लगभग सभी वर्तमान भाषाओं के उद्भव, विकास और प्रगति का इतिहास इस काल से सम्बन्धित है। उत्तर अपभ्रंश, प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी, जूनी, गुजराती, प्राचीन ब्रज, आदि भाषाओं के प्राचीन साहित्य की भी सम्पन्नता का सीधा सम्बन्ध इस आदिकाल से ही है। अतः इन सभी दृष्टियों से आदिकाल का विश्लेषण परमावश्यक है।

<u>लोक भाषाओं का आदिकाल से सम्बन्ध:</u>

आदिकाल में जो एक महत्वपूर्ण घटना हुई है वह है उत्तर भारत की वर्तमान लोक भाषाओं की उत्पत्ति। अपभ्रंश का स्वर्णकाल ८वीं से १०वीं शताब्दी तक रहा। अपभ्रंश के साहित्य के रूढ़ हो जाने के बाद बोलचाल की अनेक विभाषाओं ने जन्म पाया। अपभ्रंश जैसी माँ की अनेक सन्तानें हुईं, जिनका फला फूला परिवार आज विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के रूप में हमारे सामने है। यों अपभ्रंश में काव्य-रचना तो १५वीं शताब्दी तक होती रही परन्तु ११वीं शताब्दी से ही लोक भाषाएं उससे भिन्न होने लगीं। भाषा के इस रूप परिवर्तन को बहुत स्पष्टता से तत्कालीन उपलब्ध कृतियों में देखा जा सकता है। इसकी भाषा उत्तर अपभ्रंश, लोक भाषा, देशी बोली, जन भाषा, ग्राम्य विभाषाएं, ग्राम्य अपभ्रंश, अवहट्ट आदि नामों से पुकारी गई और अत्याधुनिक काल में गुलेरी जी तथा राहुलजी जैसे विद्वानों ने इसका नामकरण पुरानी हिन्दी भी कर दिया जो बहुत अंशों में सही और उपयुक्त है।

अपभ्रंश साहित्यिक भाषा के रूप में कब रूढ़ हुई और लोक भाषाओं ने उसका स्थान कब ग्रहण किया यह निश्चित रूप से कहना तो बहुत कठिन है परन्तु रचनाओं

की विविध उपलब्धियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपभ्रंश के उत्तरकाल में लोक भाषाओं और विभिन्न देशीय बोलियों में साहित्य सृजन बड़ी तेजी से होना प्रारम्भ हो गया था। लोक भाषायें साहित्य के क्षेत्र में इतनी शीघ्र क्यों प्रतिष्ठित हुई, उनमें इतनी सरसता और शक्ति इतनी शीघ्र क्यों आ गई उनका साहित्य इतना अधिक लोकप्रिय क्यों हुआ, उत्तर अपभ्रंश में हिन्दी तथा अन्य लोक भाषाओं के विकास का प्राचीन स्वरूप कैसे विद्यमान रहा आदि प्रश्न विचारणीय है।

विवेच्य युग का नामकरण

(अ)- वीरगाथा काल: [1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को वीरगाथा काल कहा है तथा इसकी अवधि सं० १०५० से सं० १३७५ तक रक्खी है। शुक्ल जी को जिस काल में किन्हीं विशेष प्रवृत्ति-मूलक रचनाओं का प्राचुर्य मिला उसे एक पृथक काल के रूप में स्वीकार कर लिया तथा उसका नामकरण भी रचनाओं की उक्त विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही किया। उन्होंके शब्दों में "यदि किसी काल में चार ढंग की रचनायें १०,७,३ और २ के क्रम से मिलती है तो जिस ढंग की १० पुस्तकें प्राप्त है उनकी प्रचुरता कही जायगी यद्यपि अन्य पुस्तकें मिलकर संख्या में १२ है।"

दूसरा आधार ग्रन्थों की प्रसिद्धि है। जिस काल के भीतर जिस समान प्रवृत्ति के बहुत से प्रसिद्ध ग्रन्थ है उस प्रकार के ग्रन्थ उस काल के लक्षण के अन्तर्गत माने जावेंगे फिर चाहे और अनेक प्रकार के अप्रसिद्ध और साधारण कोटि के ग्रंथ इधर उधर पड़े पड़े हों। वास्तव में प्रसिद्धि भी किसी काल की लोक प्रवृत्ति का परिचय देती है।

इन आधारों पर शुक्ल जी ने काल विभाजन कर इस काल का नामकरण वीरगाथाकाल किया है।

१- देखिए हिन्दी साहित्य का इतिहास: आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, आठवाँ पुनर्मुद्रण, सं० २००९।

आदिकाल का यह नाम शुक्ल जी ने इसलिए रक्खा है कि इस में ऐसे वीर गाथात्मक ग्रंथों की प्रचुरता मिलती है जो स समय जनता में पर्याप्त रूप से प्रचलित रहे होंगे। उनके अनुसार वीरगाथा काल के प्रसिद्ध ग्रंथों का वर्गीकरण प्रमुखतः दो श्रेणियों में किया जा सकता है:-

१- <u>अपभ्रंश भाषा:</u>

इस भाषा में लिखे प्रमुख ग्रन्थ हैं:-

(१) विजयपाल रासो (नल्लसिंह कृत सं० १३५५)

(२) हम्मीर रासो (शारंग धर कृत सं० १३५७)

(३) कीर्तिलता और

(४) कीर्तिपताका (विद्यापति कृत सं० १४०७)

२- <u>देशी भाषा:</u>

देशी भाषा में आने वाले ग्रन्थ हैं:-

(५) खुमान रासो (दलपति विजय कृत सं० ११८०-१२०५)

(६) बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह कृत सं० १२१२)

(७) पृथ्वीराज रासो (चन्दबरदाई कृत सं० १२२५-१२४९)

(८) जयचन्द्र प्रकाश (भट्ट केदार कृत सं० १२२५)

(९) जयमयंक जस चन्द्रिका (मधुकर कवि कृत सं० १२४०)

(१०) परमाल रासो (आल्हा का मूल रूप जगनिक कृत सं० १२३०)

(११) खुसरो की पहेलियां (सं० १३४०)

(१२) रणमल्ल छंद (श्रीधर कृत सं० १४५४)

(१३) विद्यापति की पदावली (सं० १४६०)

उपर्युक्त ग्रन्थों में खुसरो की पहेलियां और विद्यापति की पदावली को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थों को उन्होंने वीरगाथात्मक माना है। कुछ विद्वान बीसलदेव रासो को वीर गाथात्मक ग्रन्थों में स्थान न देकर शृंगारिक बतलाते हैं। किन्तु शुक्ल जी ने वीरगाथात्मक प्रवृत्ति की प्रचुरता और प्रधानता के कारण ही वीरगाथा काल कहा है। किन्तु इन रचनाओं का अनेक विद्वानों-मुनिजिनविजय, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

डा० हीरालाल जैन, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री मोतीलाल मेनारिया, तथा स्वामी नरोत्तमदास आदि- ने अध्ययन कर कहा है कि इस काल का वीरगाथाकाल नामकरण एकदम निरर्थक प्रतीत होता है। अपने इस निरर्थक नामकरण का आंशिक आभास बहुत सम्भव है कि उस समय शुक्ल जी को भी हो गया हो।

इस नामकरण के सम्बन्ध में एक विचारणीय बात यह है कि शुक्ल जी ने इन वीरगाथात्मक रचनाओं में सर्व प्रथम खुमान रासो को माना है तथा इसका रचनाकाल सं० ११८० से १२०५ तक माना है, जब यह इस काल का सर्व प्रथम ग्रन्थ है तब इस काल का प्रारम्भ खुमान रासो से ही मानना चाहिए। शुक्ल जी ने वीरगाथा काल का प्रारम्भ सं० १०५० से माना है, अतः १५० वर्ष इस काल की क्रोड़ में घसीट कर लाये जाते हैं वे निरर्थक ही कहे जायेंगे। परन्तु इसके सम्बन्ध में यह कहकर सन्तोष किया जा सकता है कि विशिष्ट प्रवृत्तियों की रचनाओं के अभाव में किसी काल को विशिष्ट काल मान लेना ठीक नहीं है अतः सम्भवतः शुक्ल जी ने सं० १०५० से लेकर खुमान रासो तक की रचना के समय को कोई अन्य नाम न देकर उसे वीरगाथा काल के ही अंतर्भुक्त कर दिया है।

इसी प्रकार का एक प्रश्न विद्यापति के लिए भी विचारणीय है कि उसका रचनाकाल सं० १४६० के लगभग माना गया है और इधर शुक्ल जी इस काल की समाप्ति सं० १३७५ वि० तक ही कर देते हैं ऐसी स्थिति में विद्यापति को वीरगाथा कालीन कवि मानना क्या उचित है? परन्तु सम्भवतः शुक्ल जी की यह मान्यता रही होगी कि विद्यापति अपभ्रंश भाषा के अन्तिम कवि थे। और शुक्ल जी अपभ्रंश की परम्परा की समाप्ति वीरगाथा काल में ही कर देना चाहते रहे होंगे। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि विद्यापति हिन्दी साहित्य में भक्ति और शृंगार की धारा के प्रवर्तक हो गए हैं जिनका पूरी भांति विकास भक्ति काल और रीतिकाल में हुआ अतः यह भी सम्भव है कि शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य की भक्तिमूलक तथा शृंगार जन्य धाराओं का मूल स्रोत वीरगाथा काल में दिखाने के लिए ही विद्यापति को वीरगाथा कालीन मान लिया हो। जो भी हो, स्थिति इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट नहीं प्रतीत होती।

जहां तक शुक्ल जी द्वारा उल्लिखित इन रचनाओं की प्रमाणिकता और प्रवृत्तियों का प्रश्न है, विद्वानों ने अध्ययन द्वारा यह सिद्ध कर दिया है इनमें से अधिकांश अप्रमाणिक और मानी हुई प्रवृत्तियों के प्रतिकूल है।[1] बीसलदेव रासो आद्योपान्त श्रृंगारिक काव्य है इसके श्रृंगारिक वर्णनों में कवि का मन खूब रमा है। इसकी प्रवृत्तियां वीरगाथा की नहीं है तथा इसका रचना काल संदिग्ध है। हम्मीर रासो में हम्मीर शब्द आपत्ति व संदेहजनक है क्योंकि वह एक ही राजा के लिए प्रयुक्त न होकर अनेक राजाओं के लिए हुआ है। जयचन्द्रप्रकाश नोटिस मात्र में प्राप्य है। स्वयं शुक्ल जी ने भी इसका केवल नाम ही सुना था। अतः यह कहना कठिन है कि वह हिन्दी में रची भी गई होगी। यह भी सम्भव है कि इसकी रचना अपभ्रंश में हुई हो क्योंकि उस युग में साहित्य की सामान्य भाषा अपभ्रंश ही थी। हां रणमल्ल छन्द में अवश्य ही वीरगाथात्मक प्रवृत्तियां है परन्तु इसका और विद्यापति का रचनाकाल तो स्वयं शुक्ल जी ने ही वीरगाथाकाल की समाप्ति के क्रमशः ७९ और ८५ वर्ष बाद का स्वीकार किया है अतः इस दृष्टि से तो ये रचनाएं वीरगाथा काल की है ही नहीं।

खुमान रासो और बीसलदेव रासो के रचनाकाल के सम्बन्ध में श्री मोतीलाल मेनारिया ने पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किए है जिनके आधार पर ये रचनाएं क्रमशः १८वीं और १५वीं शताब्दी की सिद्ध हो चुकी है। ये तथ्य विद्वानों द्वारा प्रायः सर्वमान्य है अतः यहां इन पर अधिक विस्तार में विचार नहीं किया है। इस प्रकार शुक्ल जी द्वारा ९ रचनाओं का उल्लेख तो प्रामाणिक नहीं ठहरता। अब रही बात पृथ्वीराज रासो की। अब तक विद्वान इसे तत्कालीन प्रामाणिक रचना मानने को ही तैयार नहीं है। स्वयं शुक्ल जी ने इसे जाली ठहराया है। डा० राम कुमार वर्मा का कहा है कि

१(अ) देखिए- राजस्थानी वर्ष ३ अंक ३ में श्री अगरचन्द नाहटा का बीसलदेव रासो तथा पृथ्वीचन्द रासो शीर्षक लेख।

(ब) नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४४ अंक ४ में श्री अगरचन्द नाहटा का लेख खुमाणरासो।

"आज तक की सामग्री के सहारे रासो को प्रामाणिक ग्रन्थ कहना इतिहास और साहित्य के आदर्शों की उपेक्षा करना है।[1]

डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी चन्द को हिन्दी का आदि कवि मानने की अपेक्षा उत्तरकालीन अपभ्रंश का कवि कहना अधिक युक्ति संगत समझते हैं। यदि हम और सूक्ष्म दृष्टि से इसके अन्तराल में प्रविष्ठ हों तो हम देखेंगे कि रासों की मूल प्रवृत्ति भी वीरता मूलक न होकर शृंगार मूलक है। हां प्रेम और वीरता का सफल समन्वय इसमें है , पर शृंगार भावना के क्रोड़ में वीर भावना पोषित होती है अर्थात् वीर भावना गौण है। युद्ध में भी अनावश्यक वीरता नहीं है।

परन्तु इतना होने पर भी अब पृथ्वीराज रासो प्रामाणिक सिद्ध हो चुका है। रासो को प्रमाणिक मानने वालेविद्वान मुनिजिनविजय जी, श्री अगरचन्द नाहटा, डा॰ दशरथ शर्मा, डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी और डा॰ माता प्रसाद गुप्त है। श्री दशरथ शर्मा और मुनिजिनविजय जी उसे मूलतः अपभ्रंश में विरचित मानते हैं। डा॰ दशरथ शर्मा इसके कुछ अंशों का अपभ्रंश में रूपान्तर भी कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त पुरातन प्रबन्ध संग्रह में उपलब्ध रासो के चार छन्द में इसे मूलतः अपभ्रंश में रचित सिद्ध करते हैं। श्री अगरचन्द नाहटा और डा॰ माता प्रसाद गुप्त ने अपने रासों सम्बन्धी लेखों से पृथ्वीराज रासों की उलझी स्थिति को पर्याप्त सुलझा दिया है तथा अब उसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध कही जासकती है। परन्तु इस प्रामाणिकता की अधिक सार्थकता भी तभी ठीक होगी, जब इसका अधिकांश अंश अपभ्रंश में विरचित माना जाय। अन्यथा उसका वर्तमान रूप तो सोलहवीं शताब्दी से पूर्व का नहीं लगता। जो भी हो, डा॰ माता प्रसाद गुप्त ने रासों के पाठ का वैज्ञानिक सम्पादन कर दिया है और विद्वद् वर्ग के समक्ष इसका मूल पाठ आने पर रासों की प्रामाणिकता पर सम्यक् रूप से विचार किया जा सकेगा। इसी प्रकार अमीर खुसरो की पहेलियां भी मूल रूप में उपलब्ध नहीं होती।

अस्तु तथाकथित वीरगाथा काल की सभी रचनायें या तो परवर्ती युग में रचित सिद्ध हो गई है अथवा मूलतः अपभ्रंश में रचित मानी जाती हैं। इस प्रकार

1- डा॰ रामकुमार वर्मा का आलोचनात्मक इतिहास।

इस प्रकार दोनों ही स्थितियों में हमें उन्हें वीरगाथा काल की रचनाएं कहने में पूर्ण सन्देह होता है। ऐसा लगता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को इस स्थिति का थोड़ा सा अनुमान हो गया था क्योंकि उन्होंने अपनी विवशता निम्नांकित शब्दों में प्रकट की है।" इसी संदिग्ध सामग्री को लेकर जो थोड़ा बहुत विचार हो सकता है उसी पर ही सन्तोष करना पड़ता है।[1]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी वीरगाथा नाम का विरोध करते हुए लिखा है "यह स्पष्ट है कि जिन ग्रन्थों के आधार पर इस काल का नाम वीरगाथा काल रखा गया है उनमें से कुछ नोटिस मात्र से बहुत अधिक महत्वपूर्ण नहीं और कुछ या तो पीछे की रचनाएं हैं या पहले की रचनाओं के विकृत रूप हैं। इन पुस्तकों को नवीन मान लिया गया है।"

शुक्ल जी की एक दूसरी बड़ी भ्रांति यह है कि वे अपभ्रंश और हिन्दी को एक ही समझते हैं। उनके अनुसार अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना रूप तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में मिलता है किन्तु मुंज और भोज के समय (सं० १०५० के लगभग) से तो ऐसी अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का पूरा प्रचार शुद्ध साहित्य या काव्य रचनाओं में भी पाया जाता है अतः शुक्ल जी के अनुसार हिन्दी साहित्य का आदिकाल सं० १०५० से लेकर सं० १३७५ तक अर्थात् महाराजा भोज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय के कुछ पीछे तक माना जा सकता है।

शुक्ल जी को स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे जैन कवियों की साहित्यिक रचनाओं का पता नहीं था और यदि रहा भी होगा तो वे इन्हें साहित्यिक नहीं मानते थे। अन्यथा वे हिन्दी साहित्य का आरम्भ सातवीं शताब्दी से ही स्वीकार कर लेते पर उनके विवेचन में एक दूसरी असंगति यह मिलती है कि वे इस एक अध्याय में अपभ्रंश और हिन्दी को एक मानते हैं और आगे दो अध्यायों में अपभ्रंश और देश भाषा की रचनाओं का परिचय अलग अलग अपभ्रंश काल और वीरगाथा काल- शीर्षक के अन्तर्गत

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - राम चन्द्र शुक्ल।

"देते हैं। साथ ही अपभ्रंश की निश्चित सीमाएं क्या हैं इसका निर्धारण भी उन्होंने नहीं किया किन्तु सं० ८८० से १४५० तक की रचनाओं का इसमें परिचय देते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अपभ्रंश काल और वीरगाथा काल दोनों साथ साथ एक ही समय में चलते हैं। वस्तुतः इन असंगतियों का कोई भी समाधान नहीं मिलता।

इधर शुक्ल जी ने इस काल की बहुत सी सामग्री को धर्म-निरूपण वाली साम्प्रदायिक सामग्री कहकर हटा दिया है एवं उनकी प्रवृत्ति पर ध्यान ही नहीं दिया है। सिद्ध और नाथ साहित्य की उपेक्षा ही निर्गुण कवियों के प्रति उनकी एकांगी धारणाओं का कारण बनी। जिस कबीर को उन्होंने निर्गुण परम्परा का प्रवर्तक कवि माना है, वह वस्तुतः उस परंपरा का बीच का कवि है।रहस्यवाद के विकास की मूल भावना हमें सिद्ध नाथों की वाणियों में मिलती है। जैन कवियों की विशाल साहित्यिक सामग्री उत्तम प्रबंध काव्यों, चरित्रात्मक कथाओं,सन्धियों आदि को स्वयंभू, धनपाल, पुष्पदन्त जैसे महाकवियों की रचनाओं को धार्मिक बताकर उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र से पृथक कर दिया है।

इस तरह यदि जैन साहित्य व इतर साहित्य को तत्कालीन साम्प्रदायिकता का साहित्य कह कर बहिष्कृत कर दिया गया है, तो फिर सूर के पुष्टिमार्गी पद व तुलसी के मानस का स्थान भी संदिग्ध हो जायगा। अतः यह कहा जा सकता है कि वीरगाथा काल नाम बहुत उपयुक्त नहीं है। वास्तव में शुक्लजी उस समय इस दशा में नहीं थे कि सही रूप में नामकरण कर सकते, उन्हें सामग्री ही प्राप्त नहीं थी। विशेष रूप से राजस्थान के जैन सभी भंडार बन्द थे। अतः सही आधार लेना शुक्ल जी के लिए शक्य नहीं था। हिन्दी शब्द सागर की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि "उनके सम्मुख हिन्दी साहित्य की सात आठसौ वर्षों की संचित ग्रन्थ राशि थी"।- वस्तुतः कुछ प्रवृत्तियों व कुछ सामग्री के आधार पर उन्होंने इसका एक व्यवस्थित ढांचा खड़ा कर दिया, जो अवश्य ही एक मील स्तंभ (Mile stone) है। स्वयं आचार्य शुक्ल ने उनसे पूर्व प्रकाशित प्राप्त पुस्तकों को कविवृत्त संग्रह कहा है परन्तु जो भी हो, यह निर्भ्रान्त है कि शुक्ल जी ने समस्त सामग्री को एकत्रित कर उसमें असाधारण प्राणधारा का संचार कर दिया है उन्होंने हिन्दी शब्द सागर की भूमिका (सं० १९६९) में अब तक विकीर्ण लगभग समस्त प्राचीन साहित्य के विषय का व्यवस्थित ढांचा प्रस्तुत कर साहित्य के कंटकाकीर्ण पथ को

प्रशस्त किया है।

(आ)- चारण काल:

आचार्य शुक्ल ने जिसे वीरगाथा काल कहा है ठीक उसी काल को डा० रामकुमार वर्मा ने चारण काल की संज्ञा दी है। सं० ७५० से सं० १००० तक के काल को डा० वर्मा ने संधिकाल कहा है तथा आगे के काल को चारण काल। उनके मतानुसार इस काल के साहित्य की रचना अधिकतर चारणों द्वारा हुई, यद्यपि वर्मा जी ने अपने ग्रंथ की रचना शुक्ल जी के इतिहास के ठीक १० वर्ष बाद की थी और इस १० वर्ष के काल में पर्याप्त नई शोध हो चुकी थी और यह बहुत स्पष्ट है कि वर्मा जी ने अनेक नए तथ्यों और नई उपलब्धियों का समाहार अपने प्रबन्ध में किया भी है। उन्होंने हिन्दी और अपभ्रंश साहित्यों का अलग अलग विश्लेषण किया। डा० वर्मा ने अपभ्रंश के जैन कवियों की रचनाओं को भी साहित्य में स्थान दिया। अतः जहां तक संधिकाल का प्रश्न है उनकी दृष्टि अपभ्रंश के कवियों का मूल्यांकन करने में अधिक प्रशस्त रही है। इस दृष्टि से डा० राम कुमार वर्मा पहले विद्वान हैं, जिन्होंने अपभ्रंश के कवियों को सम्मान दिया।

परन्तु जहां तक उनके चारण काल (सं० १०००-१३५०) काप्रश्न है इसके प्रतिपादन में कुछ असंगतियां मिलती हैं, वे इस प्रकार हैं:-

उन्होंने चारण काल की सीमा सं० १००० से १३५० तक मानी है, परन्तु इस काल के अन्तर्गत आने वाली अनेक रचनाओं का समय उन्होंने इस प्रकार दिया है?

(१) पुंड या पुष्य- आविर्भावकाल (सं० ७७०)[१]

(२) भुवाल- (सं० १०००) [२]

(३) मोहनलाल द्विज-"इस प्रकार मोहनलाल का समय केशव के बाद ही समझना चाहिए-- अतः मोहनलाल का समय १८वीं शताब्दी है"।[३]

(४) <u>बीसलदेव रासो:नरपति नाल्ह</u>-"जो हो, १०७३ इतिहास के अधिक समीप है। यदि रासो की एक प्रति हमें यही सं० देती है और इतिहास बीसलदेव के समय को भी लगभग यही मानता है तो हमें बीसलदेव की रचना १०७३ मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए[४]

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास: डा० राम कुमार वर्मा- पृ० १४४
२- वही पृ० १४५
३- वही पृ०
४- वही पृ० १४७

(५) पृथ्वीराज रासो- " इस समय रासो को प्रामाणिक ग्रन्थ सिद्ध करने की सामग्री बहुत कम है। आज तक की सामग्री के सहारे रासो का प्रामाणिक ग्रंथ कहना इतिहास और साहित्य के आदर्शों की उपेक्षा करना है"। [१]

(६) भट्ट केदार- " जयचन्द्र प्रकाश का परिमाण भी अज्ञात है क्योंकि वह अभी तक अप्राप्य है, उसका केवल निर्देश मात्र राठौड़ा री ख्यात नामक संग्रह ग्रन्थ में मिलता है, जिसका लेखक सिंढायच दयालदास नामक कोई चारण था अतः भट्ट केदारकृत जयचंद प्रकाश हिन्दी साहित्य के केवल स्मरण कर लेने की वस्तु है" [२]

(७) मधुकर - जयमयंक- जस चन्द्रिका - यह ग्रन्थ भी अप्राप्त है। [३]

(८) वीर रामायण- सं० १४३५ विक्रम। [४]

(९) आल्ह खंड- इसका पाठ अत्यन्त विकृत हो गया है।[५]

(१०) हम्मीर रासो - इस ग्रन्थ की एक भी वास्तविक प्रति प्राप्त नहीं है।[६]

(११) विजयपाल रासो- इसकी भाषा अपभ्रंश युक्त है। [६]

(१२) हम्मीर महाकाव्य- विक्रम सं० १४६० के आस पास।[६]

(१३) जैतसी रानै पाबूजी रा छन्द- सं० १५९१ के बीच में। [७]

(१४) अचलदास खीची री वचनिका -सं० १६१५। [८]

(१५) क्रिसन रुक्मिणी री वेल - सं० १६३७। [९]

(१६) सुन्दर सिणगार- सं० १६८८। [१०]

(१७) वचनिका राठौर रतन सिंहजी री- सं० १७१५।[११]

(१८) सोढी नाथी री कविता- सं० १७३०। [१२]

(१९) ढोला मारवणी चउपही -सं० १७०७। [१३]

(२०) महाराज गजसिंह जी रो रूपक -सं० १८०४। [१४]

(२१) ग्रन्थराज माउन गोपीनाथ रो कहियो- सं० १८१०।[१५]

(२२) महाराज रतनसिंह जी री कविता- सं० १८९५। [१६]

१- वही पृ० १७२
२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १७२
३- वही पृ० १७३
४-वही पृ० १७३
५- वही पृ० १७४
६- वही पृ० १७६।
७- वही पृ० १७८।
८- वही पृ० १७८, १७९
९- वही पृ० १८०
१०- वही पृ० १८२
११- वही।
१२- वही।
१३- वही।
१४- वही।
१५- वही पृ० १८४।
१६- वही ग्रन्थ वही पृष्ठ।

उक्त नामावली में यदि ग्रन्थों का परीक्षण किया जाय तो केवल बीसलदेव रासो को छोड़कर और कोई भी रचना चारण काल कीसीमा में नहीं आ पाती। और इसे वे वास्तविक रूप में स्वीकार करते हैं। इधर डा० मोतीलाल मेनारिया ने बीसलदेव रासो का रचनाकाल सं० १५४५-६० के आसपास सिद्ध कर दिया है।[१] ऐसी स्थिति में ऐसा लगने लगता है कि चारण काल का अस्तित्व ही संदिग्ध है। स्वयं वर्मा जी के इतिहास के नवीनतम संस्करण में इस बात का कहींउल्लेख नहीं नहीं है कि इस काल में कोई प्रमाणिक चारण कृति लिखी गई हो। इसके अतिरिक्त उन्होंने चारणकाल में १९वीं शताब्दी की कृतियों तक को स्थान दिया है जबकि शुक्ल जी के अनुसार आदि काल की सीमाएं सं० १३७५ तक ही समाप्त हो जाती है अतः वर्मा जी ने इतनी आगे की शताब्दियों में मिलने वाली जिन रचनाओं का उल्लेख अपने इतिहास ग्रन्थ में किया है उन्हें चारण काव्य के अन्तर्गत आने वाली कृतियों की परम्परा में नहीं लिया जा सकता है। उनका आदिकाल कीसीमाओं में समापन करना कभी संभव नहीं है।

(ड) सिद्ध-सामंत- काल:

महा पंडित राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल का नामकरण सिद्ध-सामान्त-युग किया है। उन्होंने अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी मानते हुए अपभ्रंश के लगभग सभी काव्य ग्रन्थों को सम्मिलित कर लिया है और इस काल की सीमा सन् ७६० से १३०० ई० तक मानी है। अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी मानते हुए राहुलजी लिखते हैं कि - " आपने सुन रक्खा होगा कि इस भाषा को अपभ्रंश कहते हैं शायद इसे आप समझने लगे होंगे कि तब तो यह हिन्दी से बहुत अलग भाषा होगी। लेकिन नाम पर न जाइए, इसका दूसरा नाम देसी भाषा भी है। अपभ्रंश इसे इसीलिए कहते हैं कि इसमें संस्कृत शब्दों के रूप भ्रष्ट नहीं, अपभ्रष्ट, बहुत ही भ्रष्ट हैं, इसलिए संस्कृत पंडितों को ये वाक्शिष्ट शब्द बुरे लगते होंगे। लेकिन शब्दों का रूप बदलते बदलते नया रूप लेना

१- राजस्थानी भाषा और साहित्य: डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ११९।

अपभ्रष्ट होना-दूषण नहीं, भूषण है"।[१]

अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी मान लेने से अन्यप्रान्तीय भाषाओं के अधिकारों का हनन होता है। राहुल जी का यह कथन एतदर्थ द्रष्टव्य है कि- "जब हम पुराने कवियों की भाषा को हिन्दी कहते हैं तो इस पर मराठी, उड़िया, बंगला, आसामी, गोरखा, गुजराती, पंजाबी, गुजराती भाषा भाषियों को आपत्ति हो सकती है, क्योंकि वे भी हिन्दीवत् अपना अधिकार रख सकती हैं।-- वस्तुतः यह सिद्ध सामन्त युगीन कवियों की रचनाएं उपर्युक्त सारी भाषाओं की सम्मिलित निधि है।"[२]

वास्तव में राहुलजी के इस कथन में जो सबसे बड़ी असंगति लगती है वह यह कि वे एक ओर तो अपभ्रंश को सभी अन्य भाषाओं की सम्मिलित सम्पत्ति बतलाते हैं, और दूसरी ओर उसी अपभ्रंश पर हिन्दी का एकछत्र एकाधिपत्य स्वीकार कर उसे पुरानी हिन्दी तक कह डालते हैं।

-राहुल जी का हिन्दी प्रेम सराहनीय है फिर भी हमें यहां दूसरी भाषाओं के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी के साहित्य भंडार को अनुचित रूप में बढ़ाने का लोभ संवरण ही करना पड़ेगा तथा अपभ्रंश को अपभ्रंश कहना ही ज्यादा न्याय संगत होगा।[३]

(ई)- <u>आदिकाल</u>-

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस काल का नामकरण आदिकाल किया है। वस्तुतः आदिकाल नामकरण से स्थिति बहुत कुछ सुलझ जाती है। क्योंकि इसमें प्रारंभ से मिलने वाली लगभग सभी सामग्री का सरलता से समाहार तथा समावेश हो सकता है। अतः आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी साहित्यके आदिकाल के अन्तर्गत आने वाली प्राप्त सामग्री का विश्लेषण करके तथा अप्राप्य सामग्री की ओर संकेत करके आदिकाल का कलेवर पर्याप्त विशाल कर दिया है। परन्तु कुछ आलोचकों ने द्विवेदी जी के आदिकाल में कुछ असंगतियां देखी है। आलोचकों का कहनाहै कि आदिकाल पुकारने से ही इसकी सब असंगतियां दूर नहीं होतीं। इस काल पर अप्रमाणित सामग्री को

१- हिन्दी काव्य धारा: राहुल सांकृत्यायन पृ० ५।
२- हिन्दी काव्य धारा- राहुल सांकृत्यायन पृ० १२
३- हिन्दी काव्य में श्रृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी:परिशिष्ट १- शोध प्रबन्ध (अप्रकाशित) (पंजाब वि०), डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

की इसकी सब असंगतियाँ दूर नहीं होतीं। इस काल पर आधारित सामग्री को ही द्विवेदी जी इस काल की नहीं बतलाते और अपने तर्क की पुष्टि के लिए शुक्ल जी का यह उद्धरण देते हैं कि : "दूसरी बात इस आदिकाल के सम्बन्ध में ध्यान देने की यह है कि इस काल की जो साहित्यिक सामग्री प्राप्त है उसमें कुछ तो असंदिग्ध है और कुछ संदिग्ध। असंदिग्ध सामग्री जो कुछ प्राप्त है उसकी भाषा अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी है।"

इस तरह आचार्य द्विवेदी का अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहने का विचार पूर्ण भाषा- शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक नहीं जंचता। अपभ्रंश को हिन्दी मानने का विरोध वे करते हैं कि- " अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहने का विचार भाषा शास्त्रीय और वैज्ञानिक नहीं है। भाषा शास्त्र के अर्थ में जिसे हम हिन्दी कहते हैं वह इस साहित्यिक अपभ्रंश से सीधे विकसित नहीं हुई है। अपभ्रंश को अब कोई भी पुरानी हिन्दी नहीं कहता"।[१]

दूसरी ओर आचार्य द्विवेदी जैन मुनियों एवं सिद्धों के अपभ्रंश साहित्य के आधार पर हिन्दी के आदिकाल का भव निर्माण करना चाहते हैं+ और वे इस काल की सामग्री को दो वर्गों में विभाजित करते हैं:-

१- एक वह, जो साहित्यिक अपभ्रंश में लिखित है।

२- दूसरी वह, जो लोक भाषा या अपभ्रंश से कुछ आगे बढ़ी हुई भाषा में लिखी गई है।

पर दूसरे वर्ग की रचनाओं के मूल रूप बहुत परिवर्तित और विकृत हो गए हैं। इन्हें संदिग्ध ग्रन्थ कह सकते हैं। इस प्रकार दो रास्ते सामने आते हैं:-

(१) अपभ्रंश को प्राचीन हिन्दी मानकर अपभ्रंश रचनाओं केआधार परआदिकाल का अस्तित्व बनाए रखें।

(२) चाहे वह अपभ्रंश साहित्यिक हो या असाहित्यिक उसे हिन्दी से भिन्न घोषित करके उसकी रचनाओं के आधार पर हिन्दी के आदिकाल को बनाए रखने का विचार छोड़ दें। अतः पहली राह स्वीकार करते हैं तो अपभ्रंश के उस साहित्य को स्वीकार करना पड़ेगा जो ७वीं शताब्दी से १० वी शताब्दी तक लिखा गया है। राहुल जी

१- संदर्भ- हिन्दी साहित्य का आदिकाल: डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- प्रथम प्रवचन।

भी इस तथ्य का समर्थन करते हैं। [१]

परन्तु स्वयं द्विवेदीजी ने अपने उक्त विचारों का परिहार अपने नए प्रवचनों में कर दिया है। अतः इस तथ्य में अब अधिक असंगति की गुंजाइश नहीं रह जाती। फिर भी डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने आदिकाल नामकरण से अपभ्रंश और हिन्दी के प्राचीनतम साहित्य की संभाव्य स्थितियों का समावेश किया है और प्रारम्भिक साहित्य को आदिकाल में स्थानदेकर उलझी गुत्थियों को बहुत कुछ सुलझा दिया है। उन्होंने इसका नाम आदिकाल के अलावा भक्ति युग तक मध्यकाल भी दिया है। जिसमें वे सं० १३०० से सं० १७०० तक के साहित्य का समाहार कर लेते हैं।

वास्तव में आदिकाल की सामग्री अरक्षित क्यों रह गई उसकी कहानी बतलाते हुए डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने विस्तार से लिखा है कि "चौदहवीं शताब्दी से पूर्व जितनी भीप्रामाणिक रचनाएं मिलती हैं, वे सब साहित्यिक अपभ्रंश की हैं। लोक भाषा या हिन्दी भाषी प्रदेश में इस युग की एक भी रचना क्यों नहीं उपलब्ध होती? इसके उत्तर में द्विवेदी जी ने लिखा है कि - "प्राकृत प्रसंग यह है कि गाहड़वार राजा शुरु शुरु में अपने को इस प्रदेश की जनता से भिन्न और विशिष्ट बने रहने की प्रवृत्ति के कारण देशी भाषा और उसके साहित्य को आश्रयनहीं दे सके और यही कारण है कि जहां तक उनका राज्यथा वहां तक कोई देशी भाषा का साहित्य सुरक्षित नहीं रह सका।-- दामोदर भट्ट के उक्ति व्यक्ति प्रकरण की चर्चा प्रथम व्याख्यान में की जा चुकी है। वे प्रसिद्ध गाहड़वार राजा गोविन्द चन्द्र के सभा पंडित थे। ऐसा अनुमान किया गया है कि यह पुस्तक राजकुमारों को काशी- कान्यकुब्ज की भाषा सिखाने के उद्देश्य से लिखी गई थी।--- यहां से इस वंश में देशी भाषा की ओर झुकने की प्रवृत्ति आई थी।--- आदिकालीन हिन्दी साहित्य के अरक्षित रह जाने की यही कहानी है।[२]

परन्तु डा० हजारी प्रसाद जी ने गोविन्दचन्द्र को देशी भाषाओं का आश्रयदाता बताया है क्योंकि इसके सभी पंडित दामोदर भट्ट ने राजकुमारों को देशी

१- हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी: डा० गणपति चन्द्र गुप्त (अप्रकाशित) परिशिष्ट, प्रथम।

२- देखिए- हिन्दी साहित्य का आदिकाल: आचार्य द्विवेदी: द्वितीय प्रवचन।

भाषा सिखानेके लिए उक्ति व्यक्ति प्रकरण की रचना की। गोविन्दचन्द्र का शासन काल सन् १११४-११५४ ई० था। अतः गहड़वार नरेशों की देशी भाषाओं के प्रति उपेक्षा केवल १०९० ई० से १११४ ई० तक अर्थात् २४ वर्ष तक तक रही। पर यह आश्चर्यकारी घटना लगती है कि इस उपेक्षा के कारण दसवीं से १४वीं शताब्दियों तक सारा साहित्य नष्ट हो गया। फिर यह भी तो सम्भव है कि शासक वर्ग ने ही नये साहित्य सृजन के प्रति उपेक्षा की हो, परन्तु रचे हुए साहित्य का यों नष्ट हो जाना अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है।

द्विवेदी जी की यह धारणा भी सम्भवतः पर्याप्त शोध की अपेक्षा रखती है कि इन चार शताब्दियों में मध्यदेश में रचित कुछ भी साहित्य नहीं मिलता। उक्ति व्यक्ति प्रकरण प्राकृत पैंगलम् में आये हुए छन्दों की रचना का तो स्वयं द्विवेदी जी ने ही उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त और भी कवि इस युग में हुए। पर उनकी भाषा देशी न होकर अपभ्रंश ही है। इसके कारण भी स्पष्ट हैं। उस समय देशी या हिन्दी का विकास ही नहीं हुआ था अतः उसमें साहित्य रचना का प्रश्न ही नहीं उठता। उस युग की लोक भाषा का प्रमाण उक्ति व्यक्ति प्रकरण है। जिसकी भाषा अपभ्रंश है। डा० द्विवेदी ने यह स्वीकार किया है कि - "वस्तुतः १४वीं शताब्दी के पहले भी भाषा का रूप हिन्दी भाषी प्रदेशों में क्या और कैसा था, इसका निर्णय करने योग्य साहित्यमात्र उपलब्ध नहीं हो रहा है। कुछ अधिक प्रामाणिक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ और शिलालेख आदि से ही उस भाषा का परिचय मिल सकता है। दुर्भाग्यवश इसका ऐसा साहित्य उपलब्ध नहीं है जो एकाध शिलालेख और ग्रन्थ (जैसे उक्ति व्यक्ति प्रकरण) मिल जाते हैं वे बताते हैं कि यद्यपि मध्य की ओर बोल चाल की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रचार बढ़ने लगा था पर वैदुष्य में अपभ्रंश का ही प्राधान्य था।"[1]

आलोचकों का कथन है कि - दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक रचित अपभ्रंश की शताधिक प्रामाणिक रचनाएं, विभिन्न अपभ्रंश के शिला लेख और हिन्दी की एक भी प्रामाणिक रचना का अभाव यही सिद्ध करता है कि जिसे हम हिन्दी का

१- हिन्दी साहित्य का आदिकाल- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, द्वितीय प्रवचन।

आदिकाल कहने का लोभ कर रहे हैं वह वस्तुतः अपभ्रंश का प्रौढ़काल है।आचार्य हजारी प्रसाद जी हिन्दी की जिन अज्ञात नामारचनाओं के खोजने की चिन्ता में उलझे हुए हैं वस्तुतः वे कभी निर्मित हुई ही नहीं।

परन्तु वास्तव में द्विवेदी जी ने उपलब्ध साहित्यका जितना विश्लेषण किया है वह बहुत वैज्ञानिक और पर्याप्त सुलझा हुआ है। आलोचकों की इन भ्रांतियों का निराकरण प्रस्तुत ग्रन्थ की उपलब्धियों और आचार्य द्विवेदी जी केहिन्दी साहित्य ग्रन्थ के नवीनतम संस्करण में प्रकाशित उनके सुलझे हुए विचारों से हो जाता है।

(उ)- उत्तर अपभ्रंश काल, आविर्भाव काल अथवा प्रारंभिक काल-

वस्तुतः उक्त सभी तर्कों का अध्ययन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उक्त नामों में आदिकाल का सर्वांगीण स्वरूप प्रस्तुत करने वाला और अपभ्रंश तथा देशी भाषाओं के सभी साहित्य का समायन करने वाला कोई नाम नहींप्राप्त होता। वास्तव में आचार्य शुक्ल जी के अनुसार ग्रन्थों की संख्या और उनकी मुख्यप्रवृत्तियों को ही आधार मान कर नामकरण किया जाय, तो आदिकाल की उपलब्ध नवीन सामग्री के आधार पर यह कठिनाई हल हो सकती है।

जहां तक ग्रन्थों की संख्या का प्रश्न है हिन्दी जैन साहित्य की रचनाएं सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध होती हैं और प्रवृत्तियां और ग्रन्थों की प्रसिद्धियों को देखकर आदिकाल का नामकरण करना बहुत ही सहज है। आज आचार्य राम चन्द्र शुक्ल होते तो आदिकाल का नामकरण कदाचित जैन-काल या जैन-युग कर सकते थे, परन्तु इतनी विशाल संख्या में हिन्दी जैन रचनाएं प्राप्त होने पर भी सिद्धों, नाथों, जैनेतर कवियों एवं ब्रज, अवधी तथा मालवी की रचनाओं का सम्यक् मूल्यांकन होना परमावश्यक होता। अतः इस दृष्टि से जैन युग या आदि जैन काल नाम साम्प्रदायिक ही होता। परन्तु क्योंकि अधिकांश रचनाएं देशी भाषा की ही मिलती है और देशी भाषा का ही दूसरा नाम उत्तर अपभ्रंश है अतः आदिकाल का नामकरण उत्तर-अपभ्रंश-काल कर सकते हैं। क्योंकि इसमें अपभ्रंश के उत्तरवर्ती स्वरूप का प्रतिनिधित्व करने वाली सिद्धों, नाथों अवधी, ब्रज, मैथिली, कुन्देली, प्राचीन राजस्थानी और पुरानी गुजराती में लिखी सभी रचनाओं का सरलता से समावेश

किया जासकता है। नामकरण की कठिनाई को और अधिक सरलता देने के लिए आदिकाल का नामकरण- आविर्भाव काल- अथवा प्रारम्भिक काल - भी किया जा सकता है। परन्तु - आविर्भाव काल- और प्रारम्भिक काल आदिकाल के ही पर्याय कहे जायेंगे। अतः उसमें आविर्भाव काल और प्रारम्भिक काल आदि नामों का सरलता से व्यवहार किया जा सकता है।

::आदिकाल की सीमाएं::

उत्तर अपभ्रंश की रचनाओं की उपलब्धियों के आधार पर आदिकाल की सीमाओं का निर्धारण किया जा सकता है। अपभ्रंश अपना निर्मोक १०वीं शताब्दी से ही बदलना प्रारम्भ कर देती है उसमें देशी भाषाओं को गतिशील बनाने के तत्व परिलक्षित होते हैं। साथ ही देशी भाषाओं की लोक प्रियता औरउसमें साहित्य की सर्जना शीघ्रता से प्रारम्भ होने लगती है। इस प्रकारअपभ्रंश के उत्तर काल में आने वाली देशी भाषाओं की सबसे प्राचीन रचनाओं का ११वीं शताब्दी सेही मिलना प्रारम्भ हो जाता है। इसी प्रकार वस्तुतः जहां से विशुद्ध भक्ति कालीन रचनाएं उपलब्ध होती हैं वहीं से भक्तिकाल का प्रारम्भ माना जा सकता है। कबीर के समय के सम्बन्ध में तो स्थिति अभी भी संदिग्ध मानी जाती है परन्तु उनके शिष्य धर्मदास का समय तो सं० १५५६ निश्चित है और क्योंकि कबीर धर्मदास के गुरु थे और कबीर से ही भक्ति आंदोलन का प्रारम्भ माना जाता है। अतः धर्मदास से ५० वर्ष पूर्व से ही भक्तिकाल की प्रवृत्तियों का प्रारम्भ माना जा सकता है। यों लेखक ने भी कबीर को ही भक्तिकाल का प्रारम्भिक कवि माना है वास्तव में आदिकाल की सीमाओं को भक्तिकाल से जोड़ने वाले प्रमुख कवि कबीर ही थे।अतः प्रस्तुत प्रबंध में आदिकाल की सीमाएं सं० १००० से सं० १५०० तक मानी गई हैं। यों सामान्यतः भक्ति की प्रवृत्तियों का पोषण करने वाली कृतियों के बीज तो उत्तर अपभ्रंश की इन रचनाओं में भी मिल जाते हैं क्योंकि जैनियों और सिद्धों आदि के काव्य अधिकतर अध्यात्म भावना और भक्ति प्रधान तत्वों से समन्वित हैं, परन्तु फिर भी उन कृतियों को भक्ति काल में मिलने वाली रचनाओं की भांति विशुद्ध भक्ति काव्य

नहीं कहा जा सकता। आदिकाल में मिलने वाले चारण काव्यों और वीर पूजा मूलक गीतों के सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। अतः उनके सम्बन्ध में किसी भी संशय को स्थान देना ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त उत्तर अपभ्रंश से उद्भूत उन सभी देशी भाषाओं की रचनाओं का विश्लेषण इस काल के अन्तर्गत किया गया है जिनके प्रवृत्तिमूलक तत्व समान हैं और जो आदिकालीन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अतः आदिकाल में पटाक्षेप की सूचक और भक्तिकाल के प्रारम्भ की प्रतीक विभाजन रेखा १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही सरलता से खींची जा सकती है। साथ ही क्योंकि ११वीं शताब्दी से पुरानी हिन्दी के रूपों को प्रस्तुत करने वाली किसी भी प्रदेश की देश्य भाषा में लिखी अद्यावधि कोई काव्यात्मक तथा कलात्मक रचना नहीं उपलब्ध हुई है, अतः देशी भाषाओं के सम्पन्न भविष्य को सूचित करने वाली उत्तर अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का प्रारंभ ११वीं शताब्दी से माना जा सकता है।

: <u>हिन्दी से तात्पर्य</u> :

वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में हिन्दी सबसे प्रमुख भाषा है। सामान्यतः हिन्दी से तात्पर्य मध्यदेश की भाषा से है। मध्य देश वास्तव में अनेक छोटे छोटे जन पदों में विभक्त था और इन जन पदों का व्यक्तित्व हिन्दी की प्रधान बोलियों के रूप में देखा जा सकता है।अतः हिन्दी को समझने के लिए मध्य देश के इन जन पदों को समझना भी आवश्यक है। हिन्दी भाषा के मूल उद्गम पर यदि विचार किया जाय तो खड़ी बोली ही इसका प्रतिनिधित्व कर सकती है परन्तु ऐसा करना हिन्दी के लिए घातक है। वास्तव में हिन्दी अनेक प्रादेशिक एवं देशी विभाषाओं अथवा बोलियों से पुष्ट हुई है। मध्य देश में जो हिन्दी की अनेक बोलियाँ प्रचलित थीं उनका अध्ययन आवश्यक है। साथ ही इन बोलियों के अतिरिक्त मैं प्राचीन विशेषताएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखी जा सकती हैं। मध्य देश के जिन प्रदेशों या जन पदों में हिन्दी की अनेक बोलियों का उपयोग होता था वे प्रधान जन पद थे:-

१- कुरु (खड़ीबोली)

२- पंचाल - (कन्नौजी)

३- शूरसेन - (ब्रज)

४- कोसल - (अवधी)

५- काशी - (भोजपुरी)

६- विदेह - (मैथिली)

७- मगध - (मगही)

८- अंग -

९- दक्षिण कोसल- (छत्तीसगढ़ी)

१०- वत्स- - (बघेली)

११- चैदि - (बुन्देली)

१२- अवंती - (मालवी)

१३- मत्स्य - (जयपुरी)

बहुत सम्भव है कि कुछ प्राचीन जनपद और हों परन्तु उनका उल्लेख ही न मिलता हो साथ ही इन प्राचीन जनपदों में कुछ नाम संदिग्ध भी हों। अब इन जनपदों में हिन्दी के रुप में जो साहित्यिक भाषा मिलती है वह खड़ी बोली है। शेष सब जनपदीय विभाषायें अब हिन्दी की सहायक बोलियां मात्र रह गई हैं। प्रत्येक बोली के पीछे कुछ सांस्कृतिक और ऐतिहासिक कारण उसका इतिहास बनाते चलते हैं।

जहाँ तक हिन्दी शब्द का प्रश्न है यह फारसी शब्द है क्योंकि संस्कृत में -स- ध्वनि फारसी में -ह- हो जाती है। इसी तरह हिन्द, हिन्दी, और हिन्दू तीनों शब्द विदेशियों की देन है।प्राचीन समय में हिन्दी से तात्पर्य मध्यदेश की इन्हीं जनपदीय विभाषाओं से लिया जाता था, पर कालान्तर में खड़ी बोली ही हिन्दी का साहित्यिक स्वरूप बन गई है।

-हिन्दी की सीमायें-

<u>भौगोलिक:-</u>

हिन्दी भाषा का प्रयोग यों तो भारतीय आर्य भाषाकुल की किसी भी

भाषा के लिए किया जासकता है परन्तु जहां तक हिन्दी की भौगोलिक सीमाओं का प्रश्न है, आजकल यह भाषा प्रमुखतः मध्यदेश में ही अधिकतर प्रयुक्त होती है। मोटे रूप में हिन्दी की भौगोलिक सीमाएं इस प्रकार हैं- उत्तर में शिमला नेपाल और पहाड़ी प्रदेश, दक्षिण में रायपुर, पूर्व में भागलपुर और पश्चिम में जैसलमेर को लिया जाता है। इस पूरे भू भाग में प्रमुख भाषा हिन्दी ही है। इन विभिन्न प्रदेशों में अनेक विभाषाएं भी हैं। ये विभाषाएं हिन्दी की उपभाषाएं हैं। हिन्दी भाषी करोड़ों की जन संख्या में है। वास्तव में हिन्दी का परिसर बड़ा विशाल है इसके पास अनेक बोलियां और हिन्दी की उपभाषाएं हैं जिनसे इसके साहित्य ने पर्याप्त सम्पन्नता प्राप्त की है। हिन्दी शब्द का प्रयोग जनतामें इसी भाषा के अर्थ में किया जाता है। किन्तु साथ ही इस भूमि भाग की - ग्रामीण बोलियों- जैसे मारवाड़ी ब्रज, छत्तीसगढ़ी, मैथिली आदि को तथा प्राचीन डिंगल। हिंदवी, ब्रज, अवधी तथा मैथिली आदि साहित्यिक भाषाओं को भी हिन्दी भाषा के ही अन्तर्गत माना जाता है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी भाषा की इन भौगोलिक सीमाओं और हिन्दी की उपबोलियों का अत्यन्त वैज्ञानिक परिचय दिया है। उन्होंने हिन्दी की ग्रामीण बोलियां, उर्दू हिन्दुस्तानी तथा अन्य विभाषाओं खड़ी बोली, बांगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़, भोजपुरी, मैथिली मगही राजस्थानी, मारवाड़ी जयपुरी, मेवाती, मालवी तथा पहाड़ी विभाषाओं का हिन्दी से घनिष्ट सम्पर्क किया है।

वस्तुतः इन वर्तमान भाषाओं की उत्पत्ति के मूल में अपभ्रंश भाषा है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और पहाड़ी भाषाओं का सम्बन्ध बताया है। इनमें से गुजराती राजस्थानी तथा पहाड़ी भाषाओं का सम्पर्क विशेषतया शौरसेनी के नागर अपभ्रंश के रूप से है। बिहारी, बंगला, आसामी, और उड़िया का सम्बन्ध मागध अपभ्रंश से है। पूर्वी हिन्दी का अर्द्धमागधी अपभ्रंश से तथा मराठी का महाराष्ट्री अपभ्रंश से सम्बन्ध है। अब वर्तमान पश्चिमोत्तरी भाषाओं का समूह शेष रह गया। भारत के इस विभाग के लियप्राकृतों का कोई साहित्यिक रूप नहीं मिलता। हिन्दी के लिए वैयाकरणों को प्राकृत, अपभ्रंश का सहारा

अवश्य है। लहंदा के लिए एक कैकय अपभ्रंश की कल्पना की जा सकती है। यह व्राचड़ अपभ्रंश से मिलती जुलती रही होगी। पंजाबी का सम्बन्ध भी कैकय अपभ्रंश से ही माना जाता है किन्तु बाद का इस पर शौरसेनी का प्रभाव बहुत पड़ा है। पहाड़ी भाषाओं के लिए खस अपभ्रंश की कल्पना की गई है। किन्तु बाद को ये राजस्थानी से बहुत प्रभावित हो गई।

इस प्रकार इन उपविभाषाओं और अपभ्रंश के उत्तरकालीन स्वरूपों से हिन्दी की प्राचीन और अर्वाचीन सीमाएं निर्धारित की जासकती है। जहां तक मध्यदेश की सीमाओं का प्रश्न है, दूसरे रूप में वे हिन्दी की ही सीमाएं हैं। भाषा तत्व की दृष्टि से डा० ग्रियर्सन और सुनीतिकुमार चटर्जी ने भी आधुनिक आर्य भाषाओं के वर्गीकरण प्रस्तुतकिए है। डा० ग्रियर्सन ने पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत हिन्दी का विभाजन किया है और पंजाबी,गुजराती,भीली,खानदेशी, राजस्थानी और पश्चिमी हिन्दी को एक वर्ग में रखा है। इसी तरह चटर्जी महोदय ने भी गुजराती को प्रतीच्य के अन्तर्गत, और मध्यदेशीय के अन्तर्गत राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी और पहाड़ी भाषाओं को स्थान दिया है।

वस्तुतः प्रादेशिक विभाषाओं और हिन्दी की बोलियों को परे रखकर हिन्दी भाषा की सीमाएं निर्धारित की जावें, तभी हिन्दी साहित्यिक दृष्टि सेअधिक समृद्ध हो सकती है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने मध्यदेश की सीमाओं में कुमी गुजराती को नहीं लिया है परन्तु गुजरात सदैव से राजस्थान का अंग रहा है और १५वीं शताब्दी के पूर्व गुजरात और राजस्थान में एक ही भाषा बोली जाती रही है। साथ ही आज भी राजस्थान और गुजरात में अनेकों शब्द एक ही प्रकार के हैं। अतः इस दृष्टि से हिन्दी की सीमाएं निर्धारित की जावें तो हिन्दी साहित्य के आदिकाल का साहित्य पर्याप्त समृद्ध हो जाता है। वस्तुतः हिन्दी भाषा की सीमाएं निर्धारित करने के लिए मध्यदेश के प्राचीन जनपदों की विभाषाओं का समावेश करना अत्यावश्यक है।

ऐतिहासिकः

साथ ही यदि हिन्दी की ऐतिहासिक सीमाएं निर्धारित की जाय

तो उत्तर अपभ्रंश काल सं० १००० से ही हिन्दी का उद्भव स्वीकार करना होगा साथ ही संक्रांतिकाल की रचनाएं भी हिन्दी के अन्तर्गत ही ली जाएगीं। सं० १००० से पूर्व की ठोस कोई साहित्यिक कृति उपलब्ध नहीं होती। वस्तुतः हिन्दी की ऐतिहासिक परम्पराएं निर्धारित करने के लिए हिन्दी की प्रादेशिक भाषाओं का मूल्यांकन परम आवश्यक प्रतीत होता है। पुरानी हिन्दी की इन विभाषाओं में हिन्दी के प्रमुख रूप से सम्पन्न बनाने वाली विभाषाओं में प्रमुख है- प्राचीन राजस्थानी, पुरानी गुजराती, खड़ी बोली मालवी, ब्रज और अवधी। ये सब विभाषाएं अपभ्रंश से ही उद्भूत हुई हैं पर डा० धीरेन्द्र वर्मा का कहना है-" शौरसेनी आदि अन्य अपभ्रंशों तथा प्राकृतों के सम्बन्ध में भी मेरी यही कल्पना है ।शौरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रंश से आधुनिक पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती तथा पश्चिमी हिन्दी निकली हो, यह समझ में नहीं आता। शौरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रंश शूरसेन प्रदेश अर्थात् आजकल के ब्रज प्रदेश की उस समय बोलियों के आधार पर बनी हुई साहित्यिक भाषाएं रही होंगी। साथ ही उस काल में अन्य प्रदेशों में भी आजकल की भाषाओं तथा बोलियों के पूर्व रूप प्रचलित रहे होंगे। जिनका प्रयोग साहित्य में न होने के कारण उनके अवशेष अब हमें नहीं मिल सकते। आजकल भी ठीक ऐसी ही परिस्थिति है। आज बीसवीं सदी ईस्वी में भागलपुर तक समस्त गंगा की घाटी में केवल एक साहित्यिक भाषा हिंदी है जिसका मूलाधार मेरठ बिजनौर प्रदेश की खड़ी बोली है किन्तु साथ ही मारवाड़ी, ब्रज भाषा अवधी, भोजपुरी बुन्देली आदि अनेक बोलियां अपने अपने प्रदेशों में मौजूद हैं। साहित्य में प्रयोग न होने के कारण बीसवीं सदी की इन अनेक बोलियों के नमूने भविष्य में नहीं मिल सकेंगे। केवल खड़ी बोली हिन्दी के नमूने ही जीवित रह सकेंगे। किन्तु इस कारण पांच सौ वर्ष बाद यह कहना कहां तक उपयुक्त होगा कि पच्चीसवीं शताब्दी में गंगा की घाटी में पाई जाने वाली समस्त बोलियां खड़ी बोली हिन्दी से निकली हैं। उस समय के उत्तर भारत की समस्त भाषाओं में खड़ी बोली हिन्दी गंगा की घाटी की बोलियों के निकटतम अवश्य रही होगीं, किन्तु यह तो दूसरी बात हुई।[1]

वस्तुतः इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी की सभी बोलियां अपभ्रंश से निकली

१-देखिए हिन्दी भाषा का इतिहास-डा० धीरेन्द्र वर्मा पृ०६० (भूमिका भाग) पाद-टिप्पणी सं०

है। अतः हिन्दी की देशी भाषाओं में प्राचीन राजस्थानी, जूनी गुजराती, मालवी तथा ब्रज, अवधी आदि को स्थान दिया गया है और इसका ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व स्पष्ट है कि अपभ्रंश ज्यों ही साहित्यिक बंधनों में कस गई, पुरानी हिन्दी इन विभिन्न देशी भाषाओं के रूप में उद्भूत हुई। इस दृष्टि से सं० १००० से ही हिन्दी का प्रारम्भ मानना चाहिए। यों विभिन्न विद्वान हिन्दी के उद्भव के सम्बन्ध में १३वीं १४वीं शताब्दी ही बतलाते हैं।[1] परन्तु इन कृतियों और देशी भाषा की इन रचनाओं के आधार पर यह सरलता से कहा जा सकता है। कि हिन्दी की उत्पत्ति

१- (अ) सुनीति कुमार चटर्जी- यह मालूम नहीं पड़ता कि यह हिन्दी ठीक ठीक कौन सी बोलीथी परन्तु बहुत सम्भव है कि यह ब्रज भाषा या पश्चकालीन हिन्दुस्तानी के पद्दृश्य न होकर बारहवीं सदी में प्रचलित सर्व साधारण की साहित्यिक अपभ्रंश ही रही हो, क्योंकि १३वीं १४वीं सदी ईसवीं तक हमें हिन्दी या हिन्दुस्तानी के दर्शन नहीं होते।-भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी- प्रथम संस्करण, पृ० १९० तथा पृ० १७८-१७९।

(ब) श्री राहुल 'सांकृत्यायन- हम जब पुराने कवियों की भाषा को हिन्दी कहते हैं, तो इस पर मराठी, उड़िया, बंगला, आसामी, गोरखा, पंजाबी, गुजराती, भाषा कवि भाषियों को आपत्ति हो सकती है। उन्हें भी उसे अपना कहने का उतना ही अधिकार है जितना हिन्दी भाषा भाषियों को। वस्तुतः ये सारी आधुनिक भाषाएं बारहवीं तेरहवीं शताब्दी में अपभ्रंश से अलग होती दीख पड़ती हैं।

हिन्दी काव्य धारा पृ० ११-१२ (किताब महल) ।

(स) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी-हेमचन्द्राचार्य ने दो प्रकार की अपभ्रंश भाषाओं की चर्चा की है-- दूसरी श्रेणी की भाषा को हेमचन्द्र ने ग्राम्य कहा है। वस्तुतः यही भाषा आगे चलकर आधुनिक देशी भाषाओं के रूप में विकसित हुई।

<u>हिन्दी साहित्य पृ० १७</u>

(द) श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी- पुरानी अपभ्रंश संस्कृत और प्राकृत से मिलती है और पिछली पुरानी हिन्दी से। विक्रम की सातवीं से ग्यारहवीं तक अपभ्रंशों की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणित हो गई।

पुरानी हिन्दी, नया संस्करण, सं० १००५, पृ० -- २९-३०।

(इ) डा० उदय नारायण तिवारी- इस प्रकार चन्द्रहवीं शती तक भारतीय आर्य भाषा आधुनिक काल में पदार्पण कर चुकी थी और आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् तेरहवीं शती के प्रारम्भ से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अभ्युदय के समय चन्द्रहवीं शती के पूर्व तक का काल संक्रान्ति काल था, जिसमें भारतीय आर्य भाषा धीरे धीरे अपभ्रंश की स्थिति को छोड़कर आधुनिक काल की विशेषताओं से युक्त होती जा रही थी।-

हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास-भारती भन्डार, इलाहाबाद-१९५६

(च) डा० राम कुमार वर्मा- अपभ्रंश के जड़ हो जाने की अवस्था का ठीक ठीक समय निर्धारित नहीं किया जासकता। अनुमानतः यह समय १००० ई० के बाद का ही है। अनेक स्थानों में बोले जाने वाले अपभ्रंश अनेक प्रकार की भाषाओं में परिवर्तित हो गए। प्रान्त भेद के अनुसार प्रायः से हिन्दी भाषा का जन्म हुआ। नागर या शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी का विकास हुआ, मागधी अपभ्रंश से बंगला, बिहारी, आसामी, और उड़िया, अर्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी तथा महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी का विकास हुआ।

निश्चित रूप से सं० १००० के लगभग हुई इस तथ्य की पुष्टि में डा० धीरेन्द्र वर्मा का यह मत यहाँ उद्धृत किया जा सकता है।- "किसी भाषा के साहित्य में व्यवहृत होने के योग्य बनने में कुछ समय लगता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं के अन्तिम रूप अपभ्रंशों से तृतीय काल की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का आविर्भाव दसवीं शताब्दी ईसवीं के लगभग हुआ होगा। भारत की राजनीतिक उथल पुथल में इसी समय एक स्मरणीय घटना हुई थी। १००० ई० के लगभग ही महमूद गजनवी ने भारत पर प्रथम आक्रमण किया था। इन आधुनिक भारतीय भाषाओं में हमारी हिन्दी भाषा भी सम्मिलित है, अतः उसका जन्मकाल भी दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग मानना होगा"[1]

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी भाषा की सीमाएं ११वीं शताब्दी से ही प्रारम्भ हो जाती है। यों अपभ्रंश के उत्तर स्वरूप में शौरसेनी अपभ्रंश तथा नागर अपभ्रंश के पुरानी हिन्दी के अन्तर्गत आने वाली देशी विभाषाओं विशेष रूप से प्राचीन राजस्थानी, ब्रज, अवधी और पुरानी गुजराती आदि को जन्म देने में बड़ा योग दिया है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इन सब देशी भाषाओं के साहित्य को पुरानी हिन्दी में स्थान देना समीचीन होगा। दूसरे शब्दों में यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि पुरानी हिन्दी की इन आदिकालीन रचनाओं में प्राचीन राजस्थानी, पुरानी गुजराती, ब्रज, मालवी आदि विभाषाओं की रचनाओं का विश्लेषण किया जाना चाहिए और इस आदिकाल की सभी रचनाओं को हिन्दी के अन्तर्गत के अन्तर्गत लिया जाना अत्यनिवार्य है

हमारा उद्देश्य यहाँ केवल हिन्दी के विकास से है।अपभ्रंश से किस प्रकार हिन्दी का सूत्रपात हुआ, यही हमें देखना है। प्रान्त भेद से तो नागर या शौरसेनी अपभ्रंश अनेक भाषाओं में रूपान्तरित हुई किन्तु काव्य अथवा रीति भेद से वह दो भागों में विभाजित हुई।पहली का नाम डिंगल है और दूसरी का पिंगल। डिंगल राजस्थान की साहित्यिक भाषा का नाम पड़ा,और पिंगल ब्रज प्रदेश की साहित्यिक भाषा का नाम। यहीं से हमारी हिन्दी की उत्पत्ति होती है।- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- पृ० ४३-४४।

१- हिन्दी भाषा का इतिहास- डा० धीरेन्द्र वर्मा- पृ० ५१

जो भी हो, अपभ्रंश और हिन्दी की इन जनपदीय रचनाओं के बीच विभाजन रेखा प्राचीन राजस्थानी, जूनी गुजराती तथा ब्रज की आदिकाल की जैन अजैन कृतियों द्वारा सरलता से खींची जा सकती है। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में इन्हीं रचनाओं को आधार मानकर हिन्दी के उद्भव सूचक साहित्य पर प्रकाश डाला गया है।

॥ आदिकाल सम्बन्धी अब तक हुए कार्य का संक्षिप्त परिचय ॥

आदिकाल पर अनेकविद्वानों ने प्रकाश डाला है। इन विद्वानों द्वारा लिखी आदिकाल सम्बन्धी जितनी भी सामग्री इस समय उपलब्ध है उसे सर्वथा पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि शोध विज्ञान के सिद्धान्तों की तरह स्थिर नहीं होती उसके आयाम बदलते रहते हैं। फिर भी अद्यावधि, आदिकाल सम्बन्धी जो भी प्रकाशित सहायक ग्रन्थ मिलते हैं उनका विश्लेषणात्मक परिचय दिया जा सकता है। इनमें से कुछ ग्रन्थों में आदिकाल सम्बन्धी हिन्दी जैन काव्यों के पाठ प्रकाशित किए गए हैं और कुछ आलोचनात्मक विचारों से परिपूर्ण हैं। इनके द्वारा आदिकाल की सही स्थिति का कितना मूल्यांकन हो सकता है यह कहना तो कठिन है परन्तु इनमें कुछ असंगतियों और अभावों के होते हुए भी ये ग्रन्थ आदिकाल सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री ~~xxxxxx~~ अवश्य कहे जायेंगे। इनमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है:-

(१) प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह:

यहरचना पुरानी हिन्दी की है। इसको स्वर्गीय सी०डी० दलाल ने सम्पादित कर प्रकाशित किया था।[१] यद्यपि श्री दलाल ने इसमें सम्पादित और संकलित पाठों को गुजराती का कहा है परन्तु वास्तव में ये रचनाएं पुरानी हिन्दी या प्राचीन राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती की हैं। प्रस्तुत संकलन को कवि ने पद्य संग्रह, गद्य संग्रह तथा वह परिशिष्टों में विभक्त कर आदिकाल की प्रमुख प्रमुख १५ पद्य रचनाओं ७ गद्य रचनाओं तथा ९ अन्य रचनाओं पर प्रकाश डाला है जिनमें शिलालेख भी सम्मिलित है। रचना पर्याप्त महत्वपूर्ण है। इनमें से अधिकांश रचनाओं का विस्तृत

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह: गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज नं० १३, सन् १९२० ~~xxxx~~ सम्पादक श्री सी०डी० दलाल।

साहित्यिक विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। <u>विवेचन</u>:- इतना होते हुए भी प्रस्तुत रचना के पाठ वैज्ञानिक रूप से सम्पादित नहीं हो सके। अतः कई स्थानों में अर्थ समझना कष्ट साध्य हो जाता है। अतः इसका वैज्ञानिक संस्करण और पाठ सम्पादन होना परम आवश्यक है। यों रचना पर्याप्त महत्व की है।ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका अपना योगदान स्पष्ट है।

(२) <u>जैन गुर्जर कवियों भाग १,२,३:</u>

प्रस्तुत पुस्तक के प्रस्तोता है, श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई। देसाई जी ने इसको तीन भागों में प्रकाशित किया है। तीसरे भाग के दो खण्डों में विभक्त कर दिया है। इस तरह देसाईजी ने इस ग्रन्थ को चार जिल्दों में प्रकाशित किया है। समूह रूप में ये रचनाएं सम्वत् १२०० से उन्नीसवीं शताब्दी तक की विभिन्न जैन अजैन भण्डारों में मिलने वाली रचनाओं की वैज्ञानिक नामावली है जिसमें आदिकाल से १९वीं शताब्दी तक की हस्तलिखित रचनाओं का सुन्दर संकलन है। गुजरात और राजस्थान के लगभग समस्त भण्डारों की कृतियों का सहज संक्षिप्त संकलन प्रस्तुत कर देसाई जी ने शोध के क्षेत्र में बड़ी सहायता की है। देसाई जी ने प्रत्येककृति का प्राप्ति स्थान समय, विवरण आदि वैज्ञानिक ढंग से देकर उसके पाठ के आदि अन्त में अंश प्रस्तुत कर स्थिति को और अधिक सुलझा दिया है। हिन्दी जैन साहित्य के किसी भीकाल की प्राचीन जैन हस्तलिखित प्रतियों की शोध करते समय इन तीनों खंडों की उपेक्षा करना एकदम असम्भव है। प्रस्तुत कृति के तीनों खण्डों में देसाई जी ने सम सामाइयिक प्रतियों का परिवर्द्धनकर रचनाओं को और अधिक सारपूर्ण बना दिया है। वस्तुतः ये तीनों खण्ड देसाई जी के जीवन की साधना के तीन महत्वपूर्ण सोपान हैं।यह तीन ि खण्ड जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस बाम्बे से प्रकाशित हुए हैं।

३- <u>आपणा कवियों</u>:

गुजराती भाषा में लिखी हुईयह कृति आदिकालीन जैन अजैन रचनाओं का आलोचनात्मक परिचय देती है। इसके लेखक केशवराम काशीराम शास्त्री, रचना गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद से प्रकाशित हुई है।

शास्त्रीजी ने नरसिंह युग के पहले के प्राचीन गुजराती के साहित्य गौर्जर अपभ्रंश के प्राचीन गुजरातीसाहित्य, हेमयुग, आचार्य हेमचन्द्र साहित्यिक अपभ्रंश,रासयुग

१४वीं १५वीं शताब्दी का गद्य और गद्यकार तथा विभिन्न परिशिष्टों के अन्तर्गत ग्रन्थ का समापन किया है।

विवेचन:-

(१) शास्त्री जी ने जैन जैनेतर, प्रसिद्ध लगभग सभी रचनाओं पर विवरणात्मक कम प्रकाश डाला है। तथा आदिकालीन लगभग इन सभी कृतियों को जूनी, गुजराती का सिद्ध किया है, जो असंगत है। यह कृति किसी भी शोध स्नातक के लिए निर्देशन तो कर सकती है परन्तु इससे उसे इन कृतियों को विशुद्ध गुजराती मानने का भ्रम भी हो सकता है।

(२) शास्त्री जी ने भंडारों में प्राप्त तत्कालीन प्रमुख कृतियों के प्रमुख उद्धरण दे देकर उसके पाठ की सम्पन्नता की ओर इंगित मात्र तो अवश्य किया है परन्तु वह अपूर्ण है। उन्होंने रचनाओं की ऐतिहासिकता सिद्ध करने का प्रयास अधिक किया है। कुछ आलोचनाएं अवश्य वैज्ञानिक कही जासकती हैं। इन कृतियों का साहित्यिक विश्लेषण और साहित्यिक विशिष्टताओं पर शास्त्री जी ने प्रकाश बिल्कुल नहीं डाला है। अतः कृति विवरणात्मक अधिक हो गई है। कृति के परिशिष्ट बड़े उपयोगी हैं।

(३) शास्त्री जी ने पूरी कृति में जूनी गुजराती भाषा की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया है और गौर्जर अपभ्रंश की महत्ता पर प्रकाश डाला है। के०का० शास्त्री ने सन् १९४२ में ही विक्रम सं० १५वीं शताब्दी तक के प्रमुख कवियों पर प्रकाश डाला है।

(४) जहां तक भाषा का प्रश्न है, हेमचन्द्र की अपभ्रंश के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। डा० ग्रियर्सन के मत ने हेमचन्द्र के मत को नागर अपभ्रंश बताया,[१] डा० भंडारकर अपभ्रंश का जन्म ६ठी ७वीं शताब्दी में व्रज भाषा प्रदेश में हुआ मानते हैं।[२] डा० एल०पी० टेस्सीटोरी ने हेमचन्द्र की अपभ्रंश को शौरसेनी अपभ्रंश माना है[३]

१- George Grierson on the Modern Indo Aryan Vernaculars P 63

२- देखिए-भाषा वैज्ञानिक प्रवचन: कुमारी की विल्सन पृ० ३०१

३- पुरानी राजस्थानी- अनुवादक डा० नामवरसिंह, पृ० ५६-नागरी प्रचारिणी सभा-काशी

के०एम० मुंशी का मत है कि: "एक जमाना था जब शौरसैनी अपभ्रंश गुजरात में भी प्रचलित थी।"[1] डा० सुनीतिकुमार चटर्जी हेमचन्द्र के दोहों को पश्चिमी अपभ्रंश की रचनाएँ मानते हैं। उनका कथन है कि "गुजरात के जैन आचार्य हेमचन्द्र (ई०१०८८-११७२) द्वारा प्रणीत व्याकरण में उदाहृत पश्चिमी अपभ्रंश के प्रचलित साहित्य के कुछ उदाहरणों से हमें इस बात का पता चलता है कि उस काल की भाषा हिन्दी के कितने निकट थी।"[2] अपने ग्रन्थ राजस्थानी भाषा में वे शौरसेनी अपभ्रंश को उस काल की जन प्रचलित भाषा बतलाते हैं।[3]

(५) हेमचन्द्र की भाषा को एक वर्ग के विद्वान शौरसैनी कहते हैं और दूसरी ओर कुछ गुजराती विद्वान इसे गौर्जर अपभ्रंश मानते हैं। इसमत के प्रणेता श्री के०ह० ध्रुव हैं, जिन्होंने इस विकल्प को जन्म देकर पुष्ट किया है।

शास्त्री जी ने भी अपने इस आपणा कवियोग्रन्थ में हेमचन्द्र के व्याकरण के अपभ्रंश को शुद्ध गौर्जर अपभ्रंश सिद्ध करने का प्रबल प्रयास किया है।[4] आपणा कवियों के उपोद्घात् के प्रारम्भ में उनका यह संकल्प कितनी बड़ी चुनौती लिए है कि वे। । इस पुस्तक में हेम चन्द्र के अपभ्रंश को गौर्जर अपभ्रंश सिद्ध करके रहेंगे।[5]

१- गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर- के०एम० मुन्शी, पृ० २०-२१।
२- भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी: डा० सुनीतिकुमार चटर्जी-पृ०१७८-७९
३- राजस्थानी भाषा- डा० चटर्जी पृ० ६३।
४- आपणा कवियो खंड १ नरसिंह युग नी पहेला, उपोद्घातपृ० ३७-४० द्वारा श्री के०का० शास्त्र: प्रकाशक गु०व०ए०अहमदाबाद, १९४२।
५(अ) आम आपणी सामे अनेक भाषा भेदो माणी एक आपणा देश नी भाषा भेद आवी रहे है जे गौर्जर अपभ्रंश है। ये बात चालूग्रन्थ में बताववानो मारो प्रयत्न है।
(ब) आचार्य हेमचन्द्रनो अपभ्रंश एमा साहित्यिकीय (स्टैन्डर्ड) अपभ्रंश कर्त्ता जे काई विशेष है तो आदेशनु है।
(स) एटले आचार्य हेमचन्द्र ना अपभ्रंश ने तैने प्रान्तीय लाक्षणिकता ए गौर्जर अपभ्रंश कहैवा मा बात जनातो नथी। ब्रज भाषा नो सम्बन्ध आपण ने बधुं निकट होवामा आभीर अने गुर्जरप्रजा नो फैलावो कारण भूत है एम मने लागे है, जेनो सम्बन्ध टक्क पंजाब साथे जूनो है। ब्रज भाषा शूरसैन माथुर प्रदेश ने भाषा हाई जैने शौरसेन अपभ्रंश कोई हतो तैमाथी ऊतरी आवेली स्वीकारवा मां आवी है। वस्तु स्थिति ए मध्यदेश शूरसेन जैम एक काले संस्कृत भाषाना साम्राज्य मा हतो, तेम पदी पालीना साम्राज्य मा आवयो, जे पदी थी शौरसेनी महाराष्ट्री द्वारा अपभ्रंश ना साम्राज्य मा आव्यो, आ अपभ्रंश नुं नाम पाड़वुं होय तो शौरसैन तेमज महाराष्ट्र एम बने आपी शकाय। नागर अपभ्रंश एने कहैवो होय तो केवी रीते कहैवो ए कहैवु मुश्कल है। मार्कन्डे सिवाय आपणी पासे बीजो कोई पुरावा छे न थी। बेशक शौरसेनी ना बधा संस्कारो मार्कन्डे ना नागर अपभ्रंश माहे तो महाराष्ट्रीना बधा संस्कारो दिगम्बरोना महा पुराण वगैरे काव्योनी भाषामां छे।--- ब्रजभाषा जेमा थी उतरी आवी है। एने कोईपण नाम आपवुं होय तो मने ऐमा लागे है के -----------

इसी प्रकार वे ब्रज भाषा की उत्पत्ति भी आभीरी अपभ्रंश से मानते हैं ऐसा प्राचीन व्याकरणों का मत है। साथ ही हेमचन्द्र की अपभ्रंश को शौरसेनी कहने वालों पर शास्त्रीजी ने बड़ा रोष प्रकट किया है। डा० शिव प्रसाद सिंह ने शास्त्री जी के तर्कों पर विस्तार से विचार करते हुए उन्हें स्वतोव्याघात दोष से पीड़ित कहा है।[1] जो बहुत अंश तक संगत भी है। इस प्रकार रचना में भाषा अन्य और तत्वान्वेषण तथा तथ्यास्थान आदि बातों की दृष्टि से कुछ असंगतियाँ अवश्य हैं। परन्तु फिर भी जूनी गुजराती अथवा प्राचीन राजस्थानी की १२वीं से पन्द्रहवीं शताब्दी की रचनाओं का प्रारम्भिक अध्ययन करने में यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

(४) प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भः

श्री मुनिजिनविजय जी द्वारा सम्पादित यह कृति आदिकाल के हिन्दी जैन गद्य साहित्य के क्षेत्र में अत्यन्त मौलिक तथ्यों का प्रकाशन करती है। रचना अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा छोटी छोटी कहानियों और कथाओं के प्राचीन उद्धरणों के द्वारा विद्वान सम्पादक ने हिन्दी साहित्य के प्राचीन गद्य साहित्य की सम्पन्नता का परिचय दिया है। मुनि जी की यह कृति प्राचीनतम साहित्य के लिए मीलस्तम्भ का कार्य करती है।

(५) कवि:चरित (भाग १-२):-

गुजरात विद्या सभा अहमदाबाद से सम्वत् १९४२ प्रकाशित यह कृति १२वीं से १८वीं शताब्दी के प्रमुख प्रमुख देशी भाषा के जैन गुजराती कवियों का सामान्यतः अच्छा परिचय देती है। इसके लेखक भी के०का० शास्त्री हैं। रचनाकार ने इसके दोनों भागों का संकलन एक ही में कर दिया है।पुस्तक की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है

आभीर अपभ्रंश नाम आपवु जोइए।-- पहले अनेक प्रांतिक भेदमां मध्यदेश नी आभीर अपभ्रंश हती जेवा थी ब्रज भाषा। उत्तरी आवी जैम गुर्जर प्रदेशनी गौर्जर हती तेमाथी गुजराती उतरी आवी। देखिए- आपणा कवियों- उपोद्घात पृ० ३८, श्री के०का०शास्त्री।

१- सूरपूर्व ब्रजभाषा और साहित्य- डा० शिव प्रसाद सिंह पृ० ४५ अध्याय ३ प्रकाशक हिन्दी प्रचार पुस्तकालयः वाराणसी, १९५८।

कि इसके द्वारा तत्कालीन जैन कवियों के पाठ के साथ इन आदिकालीन अजैन कवियों- असाइत, अब्दुर्रहमान, बसन्त विलासकार श्रीधरव्यास, भीम, नरसीमेहता, आदि कवियों की रचनाओं का सम्यक् तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सके। शास्त्री जी ने इस रूप में गुजराती भाषा की सम्पन्नता दिखाने का प्रयास अवश्य किया है परन्तु विवेचन में साहित्यिक सरसता की कमी, उद्धरणों कीअधिकता तथा तुलनात्मक अध्ययन कीकमियाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। वस्तुतः इस रचना से हिन्दी के साथ गुजराती का सम्बन्ध तथा तादात्म्य स्पष्ट किया जा सकता है और दोनों भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। यों जैनेतर कवियों मात्र पर प्रकाश डालने के कारण लेखक अपने दृष्टिकोण में एकांगी रह गया है। और विस्तार में लिखने का लोभ संवरण नहीं कर सका।

(६) गुजराती साहित्य ना स्वरूपो:-

यह पुस्तक मध्यकाल तथा वर्तमान गुजराती साहित्य के स्वरूपों का विस्तार में परिचय देती है। पुस्तक अभी तक पद्य-विभाग ही प्रकाशित हुआ है। गद्य विभाग अभी प्रकाशित होना बाकी है।यह पुस्तक सन् १९५४ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के प्रकाशक हैं- आचार्य बुकडिपो, बड़ौदा। इसके लेखक प्रोफेसर- मंजुलाल र० मजमूदार हैं रचना को कवि ने दो खण्डों में एवं ३० अध्यायों के अन्तर्गत ८८८ पृष्ठों में सम्पन्न किया है। प्रथम खण्ड में मध्यकालीन काव्य रूपों का सुन्दर परिचय है। इनमें प्रमुख प्रमुख हैं मुक्तक, सुभाषित सुभाषा, समस्या प्रहेलिका, रास रासो, प्रबन्ध, छन्द, पवाड़ो, सलोका, आख्यान,लोक वार्ता, फागु, षड् रितु, बारहमासी, सन्देश काव्य, मद्दली वाक्य, विवाहलु वेलि, रूपक काव्य, गीता काव्य, कक्कीडित तिथि, भजन, छन्द वाणी तथा रास गर्बा-गर्बी आदि का परम्परागत शोधपूर्ण वैज्ञानिक परिचय दिया गया है। साथ ही द्वितीयखण्ड में अर्वाचीन पद्य स्वरूपों उदाहरणार्थ महाकाव्य, खण्ड काव्य, उर्मि काव्य, गजल, कथन प्रशस्ति, देश भक्ति काव्य, बालकाव्य तथा मूर्ति काव्य रूपों का सुन्दर विवेचन किया है। रचना गुजराती में है और अपने में संग्रामपूर्ण है। प्रोफेसर मजमूदार ने रचना को यथाशक्य वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया है किन्तु फिर भी अनेक आदिकालीन काव्य रूपों का समावेश इस

कृति में नहीं हो सका। साथ ही काव्य रूपों के स्वरूप का विस्तृत परिचय नहीं दिया जा सका। लेखक ने जो प्रवेशक नाम से जो प्रस्तावना लिखी है वह पर्याप्त महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक है। अद्यावधि उपलब्ध आदिकालीन तथा मध्यकालीन काव्य रूपों का चित्रण करने वाली रचनाओं में यह कृति पर्याप्त महत्वपूर्ण है हिन्दी के विद्वान इस कृति के अध्ययन में गुजराती लिपि और भाषा में लिखी जाने के कारण ही असमर्थ रहे। यों कृति पर्याप्त सारपूर्ण है।

(७) <u>गुजराती भाषा की उत्क्रांति:</u>

१२वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक की रचनाओं के उद्धरणों द्वारा गुजराती भाषा के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालने वाली यह एक प्रमुख कृति है जिसकी लिपि हिन्दी है तथा भाषा गुजराती। इसमें बेचरदास जीवराज दोशी के अनेक व्याख्यानों का संग्रह है। बम्बई यूनिवर्सिटी द्वारा सन् १९४३ में यह कृति प्रकाशित हुई। व्याख्याता देशीजी ने सिर्फ भाषा वैज्ञानिक रूप में ही इन कृतियों का परीक्षण किया है। लेखक का प्रास्ताविक या आमुख पर्याप्त सारपूर्ण है। देशी भाषाओं तथा अपभ्रंश सम्बन्धी लगभग सभी उपलब्ध तथ्यों का प्रामाणिक स्वरूप प्रस्तुत किया है। रचना प्रामाणिक और गौर्जर अपभ्रंश के विकास पर प्रकाश डालती है। गुजराती भाषा की विभिन्न कालों में जो स्थिति हुईउसके इतिहास को समझने के लिए यह कृति पर्याप्त है।

(८) <u>गुर्जर रासावली:</u>

गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़ से बी०ए०भट्ट ने इसे सम्पादित कर प्रकाशित किया है। सम्पादकों में बी०के ठाकुर मोहनलाल देसाई तथा एम०सी० मोदी का नाम उल्लेखनीय है। यह कृति ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा से १९५६ में प्रकाशित हुई है। इस कृति में सम्पादकों ने आदिकालीन ६ रचनाओं को प्रकाशित किया है, जिनमें पंच पाण्डव चरित रास, विराट पर्व, नेमिनाथ फागु, अर्बुदाचल बीनती, सिहुंगति चउपई, तथा विद्या विलास पवाड़ो है। ये रचनाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसिद्ध तथा प्राचीन राजस्थानी की हैं। रचनाओं में लगभग रचनायें १५ वीं शताब्दी की ही है। अतः इनके द्वारा १५वीं शताब्दी में पुरानी हिन्दी की स्थिति का अध्ययन हो

सकता है। विद्वान सम्पादकों ने इस कृति के प्रारम्भ में प्रस्तावना देकर रचनाओं के समय स्थान और प्रति परिचय आदि दिए हैं। साथ ही अन्त में परिशिष्ट तथा विभिन्न टिप्पणियों द्वारा रचनाओं को समझाकर अधिक कठिन होने से बचा लिया है। रचनाओं के पीछे दिया हुआ संक्षिप्त शब्द कोष भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुतः इसी प्रकार अन्य रचनाओं का सम्पादन होना भी अत्यावश्यक है। वस्तुतः यह प्रयास अपने में पूर्ण तथा एक काल की कुछ प्रमुख रचनाओं का चयन है। ऐसी ही रचनाएं आदिकाल की सम्पन्नता पर प्रकाश डाल सकती हैं।

(९) <u>प्रबंधावली</u>:

प्रस्तुत रचना श्री पूर्णचन्द्र नाहर के लिखे हुए लेखों का संग्रह है। ये लेख स्वर्गीय श्री पूर्णचन्द्र नाहर के सुपुत्र श्री विजयसिंह नाहर ने सन् १९३७ में ४८, इण्डियन मिरर स्ट्रीट, कलकत्ता से प्रकाशित किए। रचना के निबन्ध ४ भागों- साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक, तथा विविध में विभक्त हैं।

इनमें साहित्यिक निबन्धों में प्राचीन जैन हिन्दी साहित्य, वैभारगिरि शिलालेख, राजगृह के दो हिन्दी लेख तथा धार्मिक उदारता लेख महत्वपूर्ण हैं। श्री नाहर जी ने उनके संग्रह की १६वीं शताब्दी की कुछ अप्रकाशित रचनाओं की ओर संकेत भी किया है।

प्रबंधावली में नाहरजी ने पुरानी हिन्दी की १२वीं शताब्दी की एक वृद्ध नवकार तेरहवीं की चार,- जम्बू स्वामी रास, रेवंतगिरि रास नेमिनाथ चउपई, तथा उवएस माला कहाणय छप्पय- चौदहवीं की ५ रचनाएं पन्द्रहवीं की ११, सोलहवीं की २३, सत्रहवीं की २१, तथा १८वीं शताब्दी की ४३ रचनाओं का उल्लेख किया है। हिन्दी जैन साहित्य की रचनाओं का स्मरण दिलाने के लिए इस रचना का महत्व अनुभव किया जा सकता है।

(१०) <u>ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह</u>:

श्री अगरचन्द नाहटा ने सं० १९९४ में सम्पादन कर, शंकरदान शुभैराज नाहटा नं० ५-६, आरमेनियन स्ट्रीट से प्रकाशित की है। प्रस्तुत ग्रन्थ दृष्टिकोण द्वय से विशेष उपयोगी है। एक तो ऐतिहासिक और दूसरा भाषा साहित्य। कतिपय साधारण काव्यों के अतिरिक्त प्रायः सभी काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से संगृहीत किए

है। अद्यावधि प्रकाशित संग्रहों से भाषा साहित्य की दृष्टि से संगृहीत किए हैं।
अद्यावधि प्रकाशित संग्रहों से भाषा साहित्य की दृष्टि से यह संग्रह सर्वाधिक उपयोगी है। क्योंकि इसमें १२वीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक लगभग ८०० वर्षों के प्रत्येक शताब्दी के थोड़े बहुत काव्य अवश्य संग्रहीत हैं। जिसे भाषा विज्ञान के अभ्यासियों को शताब्दीवार भाषाओं के अतिरिक्त कई प्रान्तीय भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान हो सकता है। कतिपय काव्य हिन्दी कई राजस्थानी और कुछ गुजराती प्रभृति के हैं। अपभ्रंश भाषा के लिए तो यह संग्रह विशेष महत्व का है ही किन्तु नमूने के तौर पर कुछ संस्कृत और प्राकृत के काव्य भी दे दिए गए हैं। काव्य की दृष्टि से जिनेश्वर सूरि जिनोदय सूरि जिनकुशल सूरि, जिनपति सूरि, जिनराजसूरि, विजयसिंह-सूरि, आदि के रास विवाहले बड़ी सुन्दर और आलंकारिक भाषा में है जिनको पढ़ने से प्राचीन काव्यों से प्रजन सौष्टव, सुन्दर शब्द विन्यास तथा फबती उपमाओं का अनुभव होता है।

इस प्रकार यह काव्य आदिकालीन अनेक पाठों का संग्रह है। प्रारम्भ में डा० हीरालाल जैनकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुतः आदिकालीन जैन रचनाओं के ऐतिहासिक संग्रह करके नाहटा बंधुओं ने साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की है।

(११) ऐतिहासिक जैन काव्य संचय:

मुनि जिनविजय की द्वारा सम्पादित यह कृति १९५६ में प्रकाशित हुई। इस कृति में भी विद्वान सम्पादक ने अनेक हिन्दी ऐतिहासिक हिन्दी जैन रचनाओं का संकलन तथा सम्पादन किया गया है। रचना देशी भाषा काव्यों के पाठों पर विस्तार में विवेचन किया गया है। रचना का भूमिका भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें रचनाओं के महत्व और उनकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। भाषा काव्यों के संकलन की दृष्टि से प्रस्तुत कृति का अपना विशेषमहत्व है। कृति का सम्पादन एवं सृजन पर्याप्त महत्वपूर्ण एवं सुलझा हुआ है।शोध की दृष्टि से भी कृति महत्वपूर्ण है।

(१२) जैन साहित्य और इतिहास:

श्री नाथूराम प्रेमी ने इस कृति का प्रजन सन् १९५६ में करके हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड बम्बई से प्रकाशित किया। ए०एन० उपाध्ये ने कृति का महत्वपूर्ण परिचय लिखा है। पूरी कृति में प्रेमीजी के ४१ शोध पूर्ण लेखों का संग्रह किया है।

ये समस्त लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आदिकाल से सीधा सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर यद्यपि इस ग्रन्थ में कोई निबन्ध नहीं है फिर भी आदिकाल से सम्बन्धित अनेकों उलझी ग्रंथियों को सुलझाया है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं के विविध जैन ग्रन्थों और उनके रचयिताओं का परिचय और इतिहास प्रेमीजी ने बड़े ही शोधपूर्ण दृष्टिकोण से उपस्थित किया है। इस रचना काजैन साहित्यपर शोध प्रारम्भ करने से पूर्व अध्ययन करना अत्यनिवार्य है।

(१३) हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास:

जैन हितैषी के सम्पादक श्री पं० नाथूराम प्रेमी ने इस छोटी सी कृति को सन् १९१७ में प्रस्तुत किया। वास्तव में यह रचना सप्तम हिन्दी साहित्यसम्मेलन जबलपुर के लिए लिखा गया एक निबन्ध है, जिसको लेखक ने जैन ग्रन्थरत्नाकर बम्बई से छोटी सी पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया है। प्रेमी जी ने प्रस्तुत कृति में जैन साहित्यका महत्व, जैन साहित्य के अप्रकट रहने के कारण, उपलब्ध जैन साहित्य के विषय पर विचार, सामायिक साहित्य, जैनों द्वारा हिन्दी कीउन्नति की चेष्टा, जैन ग्रन्थ प्रकाशक संस्थाएं, हिन्दी का इतिहास हिन्दी का प्रारम्भ तथा १३वीं से लेकर २०वीं शताब्दी के हिन्दी जैन लेखकों की रचनाओं पर प्रकाश डाला है। तथा उनके एक एक उद्धरण देकर जैन साहित्य कीप्राचीनता को सिद्ध किया है। रचना छोटी परन्तु सारपूर्ण है। रचना हिन्दी जैन साहित्य के महत्व की ओर इंगित करने वाली है जिससे शोध स्नातकों को दिशा निर्देश हो सके।

(१४)- पुरानी हिन्दी-

प्रस्तुत कृति श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी का नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग २ में छपा एक विस्तृत निबन्ध है। सभा से यह कृति सं० २००५ में पुस्तक रूप मेंप्रकाशित हुई। गुलेरी जीकीयहकृति अत्यन्त प्रामाणिक शोधपूर्ण तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्तर अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहने का सर्व प्रथम साहस गुलेरी जीने किया। उन्होंने प्रस्तुत कृति में अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी का काल निर्णय, अपभ्रंश की सर्व मान्यता, पुरानी हिन्दी नामकरण का कारण, और पुरानी हिन्दी की रचनाओं पर बहुत ही विद्वत्ता से प्रकाश डाला है। साथ ही पुरानी हिन्दी की पृष्ठ भूमि में अनेक

उत्तर अपभ्रंश के ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। साथ ही हेमचन्द्र, पाणिनी, कुमारपाल चरित, देशी नाम माला आदि अनेक ग्रन्थों पर प्रकाश डाला है। गुलेरी जी का यह कार्य शोध की दृष्टि से एक मील स्तम्भ है। पुरानी हिन्दी नाम देकर गुलेरी जी ने पुरानी बंगला पुरानी गुजराती, पुरानी राजस्थानी, पुरानी मराठी आदि प्रयोगों का भ्रम दूर कर दिया है। देशी भाषाओं के इतिहास का सम्यक् परिचय कराने में पुरानी हिन्दी ने अपूर्व योग दिया तथा आदिकाल के इस महत्वपूर्ण प्रश्न को सुलझा कर, तमसाछन्न मार्ग को प्रकाश देकर प्रशस्त किया है। रचना अपने में सर्वांग पूर्ण तथा उत्कृष्ट है। हो सकता है कि कुछ लोग गुलेरी जी के विचारों से सहमत न हों, परन्तु यह तो दूसरी बात हुई। वास्तव में यह निर्भ्रांत है कि पुरानी-हिन्दी गुलेरी जीकी आदर्श शोध है।

(१५)- <u>हिन्दी काव्य धारा</u>:

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के सन् १९४५ में किताब महल इलाहाबाद से प्रकाशित की है। राहुलजी का यह ग्रन्थ गुलेरी जी की पुरानी हिन्दी की भांति असाधारण है। विद्वान सम्पादक ने पुस्तक में प्रारम्भ में ५० पृष्ठों की विस्तृत अवतरणिका लिखी है तथा अनेक उलझी बातों का परिहार तथा निराकरण किया है। अपभ्रंश भाषा को पुरानी हिन्दी राहुलजी ने ही कहा है, और इस दृष्टि से वे गुलेरी जी से भी एकदम आगे बढ़ जाते हैं। अपभ्रंश को राहुलजी ने हिन्दी कहकर उसे न केवल हिन्दी की ही निधि बताया है बल्कि उसे बंगला, गुजराती, मराठी, हिन्दी, उड़िया, पंजाबी, राजस्थानी, मगही, मैथिली, भोजपुरी आदि भाषाओं की सम्मिलित निधि बतलाई है। हिन्दी काव्य धारा में कवि ने देशी भाषाओं में लिखे काव्यों की पृष्ठभूमि का अध्ययन भूमिका में प्रस्तुत किया है। जिससे रचना के मूल तत्वों का अनुशीलन स्पष्ट हो जाता है।राहुल जी ने आठवीं शताब्दी से ही सिद्ध सामन्त युग के जन भाषा कवियों को लिया है। अपभ्रंश को हिन्दी बतलाते हुये उन्होंने स्वयंभू को हिन्दी का सर्व प्रथम कवि सिद्ध किया है। सबसे प्रथम पूर्ण कार्य इन कृतियों के पाठ के सम्बन्ध में राहुलजी ने प्रस्तुत किया है वह यह कि एक ओर और उन्होंने उत्तर अपभ्रंश के सभी मुख्य मुख्य कवियों का पाठ दियाहै और दूसरी ओर उसकी हिन्दी छाया दे दी है जिससे उसका हिन्दी से घनिष्ट साम्य

स्पष्ट हो सके। ग्रन्थ के पीछे ४ परिशिष्टों में सहायक ग्रन्थ, कवियों का काल क्रम और उनकी रचनाएं, देशाती और तद्भव शब्द तथा समसामयिक राजवंशों की विस्तृत नामावली जोड़ दी है। जिससे कृति के अन्तरंग बहिरंग तत्वों की पुष्टि हो सके।

रचनाकार ने इसमें आठवीं शताब्दी सेही सिद्ध अजैन, जैन, बौद्ध आदि सभी कवियों को लिया है तथा उनके काव्यों के उद्धरणों को विविध शीर्षकों में बाँटकर पद्यावों में वैज्ञानिक निष्कर्षों का समावेश कर दिया है।

<u>विवेचन:-</u> परन्तु एक सबसे बड़ी असंगति हिन्दी काव्य धारा की दिखाई पड़ती है और वह यह है कि राहुलजी ने विशुद्ध अपभ्रंश के कवियों को भी हिन्दी का कहकर उनको हिन्दी में स्थान दिया है। उदाहरणार्थ स्वयंभू, हेमचन्द्राचार्य, अब्दुर्रहमान, सरहपा, शबरपा, पुष्पदंत, योगीन्दु बब्बर, कनकामर मुनि हरिभद्रसूरि लक्खण, अब्जल आदि। वास्तव में ये कवि शुद्ध अपभ्रंश के हैं तथा इनको हिन्दी में स्थान देना कठिन और असम्भव दोनों हैं। आज जबकि अपभ्रंश, उत्तर अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के शब्द, रूप तथा ध्वनियों का समग्र अध्ययन प्रस्तुत कियाजा रहा है, राहुलजी की इसप्रस्तुत कृति को देखकर अपभ्रंश की इन कृतियों का मूल्यांकन हिन्दी कहकर किए जाने का विचार संगत और युक्ति युक्त नहीं कहा जा सकता। क्योंकि देशी भाषाओं की इतनी अधिक कृतियां मिल जाती है किअपभ्रंश और उनके बीच में विभाजन रेखा सरलता से खींची जा सकती है। यह बात दूसरी है कि अपभ्रंश की इन कृतियों में हिन्दी भाषा को जन्म देने के प्रचुर तत्वों का समावेश है। राहुलजी के कथन में दूसरी असंगति यह कि एक ओर तो वे अपभ्रंश को हिन्दी कहते हैं और दूसरी ओर उसे लगभग सभी प्रादेशिक भाषाओं की सम्मिलित निधि बतलाते हैं। स्वयं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का भी कथन है कि अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहने का विचार भाषा शास्त्रीय और वैज्ञानिक नहीं है। अतः राहुलजी ने एक ओर तो अपभ्रंश को सभी अन्य भाषाओं का सम्मिलित निधि मानते है परन्तु दूसरी ओर उस पर हिन्दी का ऐसा एकाधिपत्य स्वीकार करते हैं किउसे पुरानी हिन्दी तक कह डालते हैं, जो असंगत है।

वास्तव मेंराहुलजी का यह हिन्दी प्रेम सराहनीय है फिर भी हमें यहां

दूसरी भाषाओं के अधिकारों को ध्यान मेंरखते हुए हिन्दी को हिन्दी तथा अपभ्रंश को अपभ्रंश कहना ही ज्यादा न्यायसंगत होगा।

(१६) हिन्दी साहित्य का इतिहासः

(१) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी शब्द सागर की भूमिका के रूप में सन् १९२९ में हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया। वास्तव में मिश्रबंधु विनोद की भांति यह कविवृत्त संग्रह नहीं था। पहली बार शुक्ल जी हिन्दी साहित्य के इतिहास को विभिन्न झाड़ झंकारों से मुक्त किया तथा द्विवेदी जी के शब्दों में उसमें मानव के जीवन्त विचारों का स्पन्दन पहली बार सुनाई पड़ा।

विवेचनः आदिकाल की दृष्टि से यह कृति अत्यन्त उपादेय तो अवश्य है परन्तु सामग्री केअभाव के कारण शुक्ल जी ने अपभ्रंश काल और देशी भाषा नामकरण करके कई अप्रामाणिक रचनाओं को स्थान दे दिया है। वास्तव में सामग्री के अभाव में शुक्ल जी को एतदर्थ दोषी ठहराना समीचीन नहीं होगा। शुक्ल जी ने तत्कालीन उपलब्ध लगभग समस्त साहित्य का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। यद्यपि आदिकाल की सामग्री, नामकरण तथा समय के प्रश्न उसमें भीप्रश्न ही बने हुए हैं। जिन पर इसी अध्याय के प्रारम्भिक पृष्ठों में विचार कियाजा चुका है।

(२) हिन्दी साहित्य के इतिहासों के रूप में आदिकाल के सम्बन्ध में सामग्री प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों में शिवसिंह सरोज, मिश्र बंधु विनोद, ग्रियर्सन का माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ नार्दन हिन्दुस्तान तथा डा० राम कुमार वर्मा का हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास तथा आचार्य द्विवेदी जी का हिन्दी साहित्य एवं हिन्दी साहित्य की भूमिका आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों की संगति असंगति के सम्बन्ध में आदिकाल के नामकरण तथा सामग्री आदि पर चर्चा करते हुए विचार विमर्श किया जा चुका है।

(१७)- हिन्दी साहित्यका आदिकालः

बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना ने सन् १९५२ ई० में आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के ५ प्रवचनों को इस ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया है\कि आचार्य द्विवेदी का आदिकाल पर अद्यावधि उपलब्ध यह ग्रन्थ लगभग सभी ग्रन्थों

में उत्कृष्ट तथा सुलझा हुआ है, जिसमें उन्होंने आदिकाल सम्बन्धी प्राप्य अप्राप्य लगभग सभी निधान कलेंव सामग्री का प्रभूत उपयोग किया है। द्विवेदी जी का यह ग्रन्थ सं० १०वीं से १४वीं शताब्दी के साहित्य का वैज्ञानिक विश्लेषण है।उनमें पांचों प्रवचन हिन्दी साहित्य में पांच नये अध्यायों का समावेश करते हैं। उनका इस काल में प्राप्त विविध सामग्री का परीक्षण प्रवृत्तियों का निर्धारण, नये मार्गों का प्रशस्तीकरण और उनका हिन्दी साहित्य सेसम्बन्ध स्थापित करना द्विवेदीजी के विदग्ध शोध सम्बन्धी दृष्टिकोण का परिचायक है। यही नहीं, काव्यात्मक दृष्टि से मार्ग प्रशस्त करने के लिए उन्होंने विभिन्न प्रवचनों में क्रमशः रासो का महत्व, कृतियों का वस्तु सौन्दर्य, आख्यान, कहानी, सबदी, फागु, बसन्त, दोहा आदि के साथ साथ कथा रूढ़ियों का विस्तार में आलेखन कर आदिकाल की प्राणधारा को विशेष गति और वाणी प्रदान की है। इस प्रकार इतिहास से पृष्ठभूमि लेकर द्विवेदी जी ने आदिकालीन काव्य रूपों का पहिली बार वैज्ञानिक ढंग से परिचय किया है।

<u>विवेचन</u>: द्विवेदी जी का ग्रन्थ और प्रयास असाधारण है परन्तु नामकरण सामग्री तथा समय निर्धारण के समय में आलोचकों में कुछ मत भेद अवश्य है। साथ ही जिन काव्य रूपों का द्विवेदी जी ने परिचय दिया है उसमें उनके विकास की दिशा की ओर संकेत मात्र ही हो पाया है। विस्तार से विश्लेषण नहीं हो सका। द्विवेदीजी के आदिकाल के इस अवशेष कार्य की एक धारा विशेष के साहित्य के विस्तृत विश्लेषण करने के कार्यको लेखक ने प्रस्तुत प्रबन्ध में पूरा करने का प्रयास किया है।

<u>राजस्थानी भाषा,पुरानी राजस्थानी, राजस्थानी भाषा और साहित्यः</u>

(१८) <u>राजस्थानी भाषाः</u>

राजस्थान विश्व विद्यापीठ म० पु० प्राचीन साहित्य शोध संस्थान उदयपुर के अन्तर्गत महाकवि सूर्यमल, आसन से दिए हुए उनके तीन भाषण 'राजस्थानी भाषा नाम से सन् १९४९ में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने राजस्थानी की विशेषतायें, राजस्थानी का इतिहास, ऐतिहासिक, भाषाविक आदि अध्यायों के अन्तर्गत प्रकाश डाला है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि डा० चटर्जी

ने १५वीं शताब्दी के पूर्व राजस्थानी और गुजराती दोनों भाषाओं कीएकता सिद्ध की है। इससे राजस्थानी का हिन्दी के विकास और उद्भव में कितना योग है, यह स्पष्ट हो जाता है। प्रस्तुत रचना- से आदिकालीन हिन्दी रचनाओं की भाषा को समझने में योग मिलेगा। डा० चटर्जी ने राजस्थानी भाषा की भाषा वैज्ञानिक विशेषताओं पर प्रकाश डालकर उसके स्वरूप का सही विश्लेषण किया है।

(१९) <u>पुरानी राजस्थानी:</u>

डा० एल०पी० टेस्सीटोरी की इटालियन रचना के अंग्रेजी अनुवाद का यह अनुवाद डा० नामवर सिंह ने पुरानी राजस्थानी के नाम सेप्रस्तुत किया है। डा० टैस्सीटोरी के ग्रन्थ सेभी प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी और पुरानी गुजराती की एकता स्पष्ट होती है। रचना नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई है। रचना राजस्थानी भाषा की भांति ही पुरानी हिन्दी की रचनाओं को समझने में योग देती है। तथा शौरसेनी अपभ्रंश और राजस्थानी तथा ब्रज आदि का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट होता है। हेमचन्द्र के दोहों की भाषा डा० टेस्सीटोरी ने शौरसेनी अपभ्रंश कहा है, जो विवादग्रस्त तो है पर उत्तर अपभ्रंश का राजस्थानी से सम्बन्ध समझने के लिए पर्याप्त महत्व पूर्ण है।

(२०) <u>राजस्थानी भाषा और साहित्य-</u>

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से सं० २००८ में यह रचना प्रकाशित हुई। डा० मोतीलाल मेनारिया की यह कृति राजस्थानी भाषा और साहित्य का प्राचीनतम इतिहास है। डा० मेनारिया ने मोटे रूप में डिंगल, मारवाड़ी, मेवाती, ढुंढारी, बागड़ी मालवी, आदि का परिचय देते हुए प्रारम्भिक काल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल जन्य साहित्य, आधुनिक काल, गद्य और प्राचीन और अर्वाचीन गद्य आदि पर प्रकाश डाला है। रचना में डा० मेनारिया ने रचनाकारों का सामान्य परिचय दिया है।डा० मेनारिया ने अनेक आदिकालीन जैन कवियों का उल्लेख कर नई शोध प्रस्तुत की है। साथ ही बीसलदेव रास, आदि कृतियों के काल निर्धारण आदि के सम्बन्ध में नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

<u>विवेचन:</u> रचना यद्यपि महत्वपूर्ण है परन्तु फिर भी अनेक आदिकालीन जैन अजैन

रचनाओं का समाहार इस ग्रन्थ में नहीं हो पाया है। साथ ही अर्वाचीन पद्य और, अन्य रचनाओं की प्राचीनतम एवं अद्यतन सूचनाएं देने में डा॰ मैनारिया असमर्थ रहे हैं। और डिंगल के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत मेनारिया ने प्रस्तुत नहीं किया। इसके अतिरिक्त आदिकालीन साहित्य की कुछ ही कृतियों की ओर इंगित मात्र करके छोड़ दिया है फिर भी राजस्थानी भाषा और हिन्दी भाषा के सम्बन्धों का अध्ययन करने के लिए रचना उपयोगी है। राजस्थानी भाषा और साहित्य राजस्थानी भाषा के इतिहास का सर्वप्रथम उपादेय ग्रन्थ है।

(२१) <u>प्रशस्ति संग्रह:</u>

सन् १९५० में श्री कस्तूरचंद कासलीवाल एम॰ए॰, शास्त्री के सम्पादकत्व में आमेर शास्त्र भंडार से जयपुर से एक प्रशस्ति संग्रह प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत कृति में ५० अपभ्रंश ग्रन्थों की प्रशस्तियां संग्रहीत हैं। इनमें स्वयंभू, पुष्पदन्त, नयनन्दि वीर, अमरकीर्ति यशःकीर्ति धनपाल, रइधू आदि की यश प्रशस्तियां प्रमुख हैं।

इन प्रशस्तियों के अध्ययन को आदिकालीन रचनाओं की पृष्ठ भूमि के अध्ययन के लिए व्यवहृत किया जा सकता है।

(२२) <u>प्राचीन फागु संग्रह:</u>

डा॰ भोगीलाल सांडेसरा ने महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय, बड़ौदा श्री सोमाभाई पारेख के सहयोग से इस संग्रह को सन् १९५५ में प्रकाशित किया है। रचना में विक्रम की चौदहवीं से १८वीं शताब्दी तक की फागु रचनाओं का संकलन एवं सम्पादन किया गया है। रचना आदिकालीन फागु रचनाओं का पर्याप्त वैज्ञानिक पाठ प्रस्तुत करती है। डा॰ सांडेसरा ने इस रचना में ३८ फागु काव्यों का समावेश किया है। साथ ही प्रति परिचय, शब्दार्थ लेख तथा अन्त में एक कोश देकरप्रति को सर्व ग्राह्य और सर्व सुलभ बना दिया है। रचना १८वीं शताब्दी तक पाटण जैसलमेर, बड़ौदा, बीकानेर आदि स्थानों में उपलब्ध फागु काव्यों के अध्ययन में बड़ा योग देती है।

विवेचन: डा॰ सांडेसरा ने इन्हें प्राचीन गुजराती की रचनाएं कहा है परन्तु वास्तव में ये फाग प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती के हैं। इन फागों में से कुछ का

विश्लेषण प्रस्तुत ग्रन्थ के फागु संज्ञक रचनाओं के अध्याय में किया गया है।

(२३)- अपभ्रंश साहित्य:

डा॰ हरिवंश कौछड़ ने प्रस्तुत शोध प्रबंध को भारतीय साहित्य मन्दिर फव्वारा दिल्ली से सन् १९५६ में प्रकाशित किया है। प्रस्तुत कृति में डा॰ कौछड़ ने अपभ्रंश भाषा का विकास, अपभ्रंश और हिन्दी भाषा, तथा अपभ्रंश साहित्य की पृष्ठभूमि, अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी पर प्रभाव आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य के सम्बन्ध में अवश्य ही सहायता मिलती है। रचना अपभ्रंश साहित्य पर प्रकाश डालती है।

विवेचन:-

(१) प्रस्तुत ग्रन्थ में डा॰ कौछड़ द्वारा कृतियों सम्बन्धी वर्गीकरण ठीक नहीं हो सका है। वास्तव में विषय की दृष्टि से इन रचनाओं का वर्गीकरण नहीं होकर यदि काव्य रूपों की दृष्टि से होता तो अधिक संगत हो सकता।

(२)दूसरी असंगति यह है कि डा॰ कौछड़ ने भंडारों की अधिक शोध या सम्यक् शोध नहीं होने से कई पुरानी हिन्दी की कृतियों को शुद्ध अपभ्रंश की कहकर स्थान दिया है, जो समीचीन नहीं है यदि डा॰ कौछड़ इनकी भाषा को ठीक से अध्ययन करते तो बहुत सम्भव है अनेक प्राचीन राजस्थानी की कृतियों को अपभ्रंश की नहीं लिखते।

(२४)- प्राकृत अपभ्रंश-साहित्य और उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव:

प्रस्तुत ग्रन्थ डा॰ रामसिंह तोमर का शोध प्रबन्ध है। तोमर जी की कृति अपने में पूर्ण तथा आदिकाल पर शोध करने वाले स्नातकों केलिए परम उपयोगी तथा पृष्ठभूमि के लिए पर्याप्त महत्वपूर्ण है। तोमरजी ने अपनी शोध से हिन्दी के प्रत्येक काल की काव्यधारा और मुख्य प्रवृत्तियों पर प्राकृत अपभ्रंश की काव्य धाराओं, मुख्य प्रवृत्तियों तथा अन्य वैशिष्ट्य बातों का प्रभाव बतलाकर हिन्दी साहित्य के विविध रूपों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध अपने में पूर्ण तथा पर्याप्त वैज्ञानिक है। शोध प्रबन्ध अभी तक अप्रकाशित है प्रकाशित होने पर इस रचना से शोध स्नातक लाभ उठा सकेंगे।

(२५) <u>हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास:</u>

भारतीय ज्ञान पीठ काशी से सन् १९४७ में श्री कामता प्रसाद जैन ने इसे प्रकाशित किया है। श्री कामता प्रसाद जैन:वीर- और "जैन-सिद्धान्त"भास्कर के सम्पादक के रूप में हिन्दी जैन साहित्य की सेवा करते रहे हैं। प्रस्तुत कृति मेंहिन्दी के आदिकाल से लेकर मध्यकाल की रचनाओं का सामान्य परिचय दिया है। साथ ही हिन्दी की उत्पत्ति का मूल जैन साहित्यऔर उसका काल विभाग, आदिकाल का साहित्य और गद्य भाषा आदि अध्यायों के अन्तर्गत हिन्दी जैन साहित्य पर प्रकाश डाला है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने कृति का प्राक्कथन लिखा है। जो पर्याप्त सारपूर्ण है।-हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास- पहली कृति है, जिसने प्रेमी जी के निबन्धों की भांति विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया तथा पहली बार श्री कामता प्रसाद जी ने निश्चित रूप रेखा द्वारा इस रचना का प्रकाशन किया।

<u>विवेचन:</u>- इतना होते हुए भी कृति में कई असंगतियां आ गई हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने इस सम्बन्ध में कई भ्रमों का निराकरण किया है। श्री कामता प्रसाद जी ने अपभ्रंश की ही रचनाओं को पुरानी हिन्दी की रचनाएं मानी हैं तथा वे भी १३वीं शताब्दी से पूर्व की कोई पुरानी हिन्दी की रचना प्रस्तुत नहीं कर सके। परन्तु इस रचना से इतना अवश्य हुआ कि विद्वानों का ध्यान हिन्दी जैन साहित्य की ओर गया। रचना में आधुनिक काल (१९वीं शताब्दी) के कतिपय कवियों का भी लेखक ने परिचय दिया है। सामान्यतः रचना उपयोगी है।

(२६) <u>हिन्दी जैन साहित्यपरिशीलन- भाग १,२:</u>

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रथम और द्वितीय दो भागों में लिखा गया है। यह ग्रन्थ भी भारतीय ज्ञानपीठ काशी से ही श्रीनेमिचन्द्र शास्त्री ने १९५६ में प्रकाशित किया है। प्रथम भाग में कवि ने हिन्दी जैन प्रबन्ध काव्यों और महाकाव्यों, देशी भाषा के जैन प्रबन्ध काव्य, तथा हिन्दी जैन साहित्य के परवर्ती काव्यों पर पुरातन काव्य साहित्य के अन्तर्गत विचार किया है।साथ ही हिन्दी जैन गीति काव्य,रूपक, काव्य, रीति साहित्य तथा आत्मकथा काव्य पर विचार किया है तथा दूसरे खण्ड में आधुनिक काव्य धारा, खण्ड काव्यों, गद्य साहित्य का क्रमिक विकास, उपन्यास, कथा और निबन्ध साहित्यतथा हिन्दी जैन साहित्य के शास्त्रीय पक्ष पर पर्याप्त श्रम

के साथ विचार किया है। कृति श्री कामता प्रसाद जैन के संक्षिप्त इतिहास की भांति महत्वपूर्ण है तथा नवीन सामग्री पर भी विद्वानों के सामने संक्षिप्त और सरस रूप में प्रकाश डालती है। शास्त्री जी ने दोनों खण्डों में नवीन अध्यायों के नए आलोक्य स्पष्ट किए हैं और हिन्दी जैन साहित्य की ओर विद्वानों की विशेष रुचि का आह्वान किया है।

विवेचन:- परन्तु इसमें अनेक त्रुटियां रह गई हैं जिसपर अगरचन्द नाहटा विस्तार में विचार कर चुके हैं। साथ ही शास्त्री जी ने जो देशी भाषा के प्रबन्ध काव्य, हिन्दी जैन प्रबन्ध काव्य, अपभ्रंश के बाद की पुरानी हिन्दी के जैन प्रबन्ध काव्य तथा हिन्दी जैन महाकाव्य शीर्षकों के अन्तर्गत जो विचार किए हैं वे अपने में अपर्याप्त हैं। साथ ही ये सब नाम एक ही प्रकार के काव्यों के पर्यायवाची भी हैं तथा ये आदिकाल सम्बन्धी मौलिक सामग्री का समावेश भी अधिक नहीं कर सके। अतः मध्यकाल और आधुनिक काल की दृष्टि से ये दोनों खण्ड विशेष उपयोगी हो सकते हैं परन्तु आदिकाल के सम्बन्ध में नए आलोक्य और तथ्याख्यान करने में रचना सामान्य ही है।

(२७) <u>हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग</u>:

श्री नामवर सिंह (अब डाक्टर) की यह पुस्तक साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद से १९५२ में प्रकाशित हुई। डा० नामवर सिंह ने प्रस्तुत ग्रन्थ को दो खण्डों में विभक्त किया है। प्रथम खण्ड में अपभ्रंश भाषा का उद्भव और विकास, परवर्ती अपभ्रंश और उसमें हिन्दी के बीज, अपभ्रंश से हिन्दी का उद्भव और विकास अध्यायों पर विचार किया है तथा द्वितीय खण्ड में अपभ्रंश साहित्य तथा हिन्दी का अपभ्रंश से साहित्यिक सम्बन्ध स्पष्ट किया है।

रचना पर्याप्त महत्व की है तथा डा० राम सिंह तोमर के शोध प्रबन्ध की भांति हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग निर्धारण करने में उपयोगी है, साथ ही आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की पृष्ठ भूमि के अध्ययन, अपभ्रंश के परिनिष्ठित पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती स्वरूप, का भाषा वैज्ञानिक और साहित्यिक विश्लेषण डा० नामवर सिंह ने पर्याप्त संभार से संजोया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी और उत्तर अपभ्रंश के स्वरूपों का तुलनात्मक अध्ययन करने में परिशिष्ट में अपभ्रंश दोहा

संग्रह भी दिया है।

<u>विवेचनः</u>- फिर भी कृति में कई पुरानी हिन्दी की रचनाओं को अपभ्रंश की कहकर उनका विश्लेषण किया गया है। जिस पर प्रस्तुतप्रबन्ध में आगे विचार किया गया है। फिर भी डा० नामवर सिंह की यह कृति एक स्वतंत्र विचार धारा को पुष्ट करने वाली महत्वपूर्ण रचना है जिसमें अपभ्रंश भाषा और साहित्य को समझने में विशेष सहायता मिलती है।

(२८) <u>सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य</u>-

आदिकाल के सम्बन्ध में अभी हाल ही में यह शोध प्रबन्ध डा० शिवप्रसाद सिंह ने प्रकाशित किया है। यह कृति हिन्दी प्रचार पुस्तकालयवाराणसी से अक्तूबर, १९५८ में प्रकाशित हुई है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में हुए इस शोध कार्यने आदिकाल के जैनेतर ग्रन्थों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। पूरा प्रबन्ध ११ अध्यायों में विभक्त है। सूर पूर्व ब्रज भाषा में उपलब्ध साहित्य के भाषा वैज्ञानिक तथा साहित्यिक दोनों पक्षों पर लेखक ने पर्याप्त वैज्ञानिक रूप में विचार किया है तथा संक्रांतिकालीन ब्रज भाषा, ब्रज भाषा का रिक्थ ब्रजभाषा का उद्गम, ब्रजभाषा का निर्माण- औक्तिक से परिनिष्ठित तक तथा हिन्दीतर प्रान्तों के कवियों आदि का परिचय पर्याप्त शोधपूर्ण एवं वैज्ञानिक है। निस्संदेह डा० शिव प्रसाद सिंह का यह कार्य पूर्ण मनोयोग से सम्पन्न हुआ है।

विवेचनः परन्तु फिर भी रचना में कुछ प्रश्न अभी विचार विमर्श की अपेक्षा रखते हैं। वास्तव में लेखक पर शौरसेनी अपभ्रंश इतनी अधिक छा गई है कि उसे तत्कालीन देशी भाषाओं से उसके सम्बन्ध का और उसमें प्राप्त तत्कालीन साहित्य का बहुत कम स्मरण रहा है। डा० सिंह अपने प्रबन्ध में लिखते हैं कि -"हम गुलेरी जी की तरह बाद की अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी न भी कहें तो भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि पुरानी हिन्दी या ब्रज भाषा के स्वरूप में सहायक भाषिक तत्वों के अन्वेषण के लिए यही बाद की अपभ्रंश ही महत्वपूर्ण है। इस बाद की अपभ्रंश में भी सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण कृतियाँ वे हो सकती हैं जो शौरसेनी अपभ्रंश के निजी क्षेत्र में लिखी गई हों। अभाग्यवश इस तरह की और इस काल की कोईप्रामाणिक कृति जो मध्य देश में

लिखी गई हो प्राप्त नहीं होती। मुसलमानों के निरन्तर आक्रमण से ध्वस्त मध्यदेश में हस्तलेखों की सुरक्षा का कोई प्रयत्न नहीं हुआ। मध्यदेश की अपभ्रंश भाषा सारे भारत की भाषा बनी, किन्तु मध्यदेश में क्या लिखा गया इसका कुछ भी पता नहीं चलता।[१]

(१) डा० सिंह के इन विचारों में पर्याप्त असंगति है। वास्तव में डा० सिंह शौरसेनी अपभ्रंश का सबसे ज्यादा नैकट्य ब्रज भाषा का ही समझते है। यों नागर तथा शौरसैनी अपभ्रंश से हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, ब्रज पंजाबी, आदि की उत्पत्ति की बात पर भी उन्होंने विचार किया होता तो उन्हें मध्यदेश में मिलने वाली सूर पूर्व जैन अजैन सैकड़ों कृतियाँ उपलब्ध होती। परन्तु इस दृष्टिकोण में डा० सिंह संकुचित रह गए है। अतः आदिकालीन लौकिक और धार्मिक दोनों प्रकार की रचनाओं से डा० सिंह स्वयं वंचित रह गए हैं।

(२) इसके अतिरिक्त ऐसा भी लगता है कि उन्होंने मध्यदेश की सीमाओं में प्राचीन राजस्थानी के जनपद को स्थान नहीं दिया है जो एक बहुत विशाल हिन्दी भाषी प्रदेश है। राजस्थानी को मध्यदेश से बाहर निकालना हिन्दी की नींव को हिलाना होगा। अतः डा० सिंह यदि राजस्थान के प्राचीन भंडारों की शोध करते अथवा जूनी गुजराती की आदिकालीन सं० १००० से १५०० तक की कृतियों का परीक्षण करते तो उन्हें अभाग्यवश इस तरह की और इस काल की कोई प्रामाणिक कृति जो मध्यदेश में लिखी गई हों, प्राप्त नहीं होती- ऐसा नहीं लिखना पड़ता। क्योंकि गुजरात और राजस्थान के अनेक राजकीय (अजैन) और जैन भंडारों में हजारों की संख्या में सूर पूर्व का साहित्य मिल सकता था। यह बात दूसरी है कि वह ब्रज भाषा का न हो परन्तु भंडारों की सम्यक् शोध होने पर बहुत सम्भव है कि उन्हें ब्रज भाषा की इन कृतियों से भी प्राचीन और कोई कृति मिल सकती और उनसे मध्यदेश के स्थित भंडारों के साहित्य की प्राचीनता का अनुमान हो सकता।

१- सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्यः पृ० ४३, डा० शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, वाराणसी- १९५८।

(३) डा० शिव प्रसाद सिंह के शोध ग्रन्थ में एक अन्य असंगति यह भी परिलक्षित होती है कि संक्रांतिकालीन ब्रज भाषा अध्याय के अन्तर्गत जिन रचनाओं का परिच दिया है, उदाहरणार्थ जिन पद सुरि का स्थूभिद्र फागु, विनय चंद सूरि की नेमिनाथ चउपई आदि, वास्तव में ये रचनाएं ब्रज भाषा की एक दम नहीं हैं। ये दोनों रचनाएं संक्रांतिकालीन तो अवश्य ही है परन्तु प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती की हैं। इस प्रकार इन कुछ असंगतियों को ठीक किया जा सकता है। इन भ्रमों का निराकरण लेखक ने प्रस्तुत ग्रन्थ में करने का प्रयास किया है।जो भी हो, अद्यावधि आदिकाल पर प्राप्त ग्रन्थों में डा० शिव प्रसाद सिंह की यहकृति एक मौलिक प्र ास और श्रम सापेक्ष वैज्ञानिक शोध है जो आदिकाल के नये तथ्यों का मार्ग दर्शन करती है।

<u>अन्य सामग्री</u>:

इन कृतियों के साथ साथ और भी कई लेख तथा छोटी छोटी कृतियां प्रकाशित रूप में प्राप्त है।[१] इन कृतियों के अतिरिक्त भी आदिकाल के सम्बन्ध में कुछ शोधपूर्ण फुटकर निबन्ध विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखे गए हैं। इस सामग्री में प्रमुख है:-

(२९) <u>श्री अगरचन्द नाहटा के लेख</u>:

श्री अगरचन्द नाहटा ने आदिकाल की सामग्री, आदिकाल की विभिन्न कृतियां, प्राप्त सामग्री का परिचय, तथा वीरगाथा काल की कृतियों की सार्थकता असार्थकता, पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता तथा वीरगाथा काल का भाषा साहित्य, प्राचीन राजस्थानी साहित्य और उसकी कृतियां, रास, फागु, प्रबन्ध-चरित, गीत, स्तोत्र, स्तवन, सलहरा, बारहमासा, विवाहलो मंगल, आदि के सम्बन्ध में अनेक लेखों से आदिकाल को समझने में असाधारण सहायता मिलती है। इन लेखों में नाहटाजी ने प्राचीन राजस्थानी और जूनी गुजराती की कृतियों का निष्पक्षता से मूल्यांकन कर हिन्दी की सम्पन्नता में भी वृद्धि की है।

१- उदाहरणार्थ- भरतेश्वर बाहुबली रास, त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, नरनारी संबोध, प्राचीन गुर्जर काव्य, गुजराती भाषाओं संक्षिप्त इतिहास आदि तथा प्रो०बेलणकर का लेख।

(१०) डा० हीरालाल जैन के लेख:[१]

बिहार यूनिवर्सिटी के प्राकृत जैनेलाजी इन्स्टीट्यूट के अध्यक्ष डा० हीरालाल जैन ने जैन साहित्य की प्राचीनता और आदिकालीन पुरानी हिन्दी और अपभ्रंश के साहित्य पर कई लेख लिखे है। डा० जैन के इन निबन्धों से आदिकाल के साहित्य की पृष्ठभूमि को समझने में सहायता मिलती है। साथ ही डा० हीरालाल जैन ने कारंजा भंडार के २०-२५ अपभ्रंश ग्रन्थों का जो मनोयोग से सम्पादन किया है उसने विद्वानों को प्राचीन हिन्दी जैन साहित्य की शोध की प्रेरणा दी है। डा० जैन की यह साधना अपभ्रंश और प्राचीन हिन्दी जैन साहित्य की महत्ता को समझने के लिए निधान कलश है। साथ ही उसमें परवर्ती साहित्य को समझने और जैन भंडारों में अनेक कृतियां उपलब्ध होने की संभावना और अधिक तीव्र हो जाती है।

॥ प्रस्तुत प्रबन्ध का अध्ययन और उसकी मौलिकता ॥

पिछले अध्ययन से उसकी विशिष्टता:-

उक्त कृतियों के कार्य विवरण को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत प्रबन्ध को देखा जाय तो अनेक रूपों में उसकी मौलिकता स्पष्ट हो जाती है।

(१) पुरानी हिन्दी की रचनाएं:

अद्यावधि जितने विद्वानों ने आदिकाल के अपभ्रंश और उत्तर अपभ्रंश के जितनी रचनाओं का परिचय दिया है उनमें पुरानी हिन्दी की रचनाओं का बहुधा अभाव ही रहा है। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में अनेकों पुरानी हिन्दी कृतियों का विश्लेषण इस कमी को दूर करेगा।

(२) पुरानी हिन्दी का अर्थ:

बहुधा हिन्दी की सीमाओं में विद्वानों ने पुरानी राजस्थानी, जूनी, गुजराती, मालवी और ब्रज को अलग अलग भाषायें मानकर अलग अलग रूप में उनके अस्तित्व की चर्चा की है। लेखक ने प्रस्तुत प्रबन्ध में इन सभी विभाषाओं में प्राप्त

१- देखिए- मनोरमा- जुलाई, १९५४, भाग १ अं० ४ पृ० ३०२(जैन साहित्य में हिन्दी की जड़)।

रचनाओं को पुरानी हिन्दी की सम्पत्ति समझ कर हिन्दी साहित्य की सम्पन्नता स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

(३) पुराने भ्रमों का निराकरण:

प्राचीन राजस्थानी और जूनी गुजराती को अलग अलग भाषाएं कहकर उनकी अनेक कृतियों को हिन्दी की सीमाओं से बाहर निकाल दिया गया था साथ ही गुजराती लिपि में छप जाने के कारण उन्हें हिन्दी कह सकना समीचीन नहीं समझे जाने की जो भ्रांति अब तक प्रचलित रही है, उस धारणा का लेखक ने निराकरण किया है तथा अनेक गुजराती लिपि और भाषा में प्रकाशित प्राचीन राजस्थानी की कृतियों को हिन्दी में स्थान दिया है। यद्यपि १५वीं शताब्दी से पूर्व प्राचीन राजस्थानी तथा जूनी गुजराती एक ही भाषा थी इस तथ्य को अनेक विद्वानों ने अपने ग्रन्थों द्वारा सिद्ध कर दिया है।

(४) विविध काव्य रूप:

आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य में जो विविध काव्य रूप उपलब्ध होते है उन सबकी परम्पराओं का विस्तृत परिचय प्रस्तुत प्रबन्ध में दिया गया है।जिससे उनके उद्भव और विकास की कहानी स्पष्ट हो सके।

(५) प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियां:

प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रामाणिक कृतियां तथा उनकी प्रतिलिपियों पर ही इस ग्रन्थ में प्रकाश डाला गया है।अतः पर्याप्त मौलिक सामग्री एवं नवीन पाण्डुलिपियों का उपयोग उपलब्ध कृतियों के अध्ययन से उसकी विशिष्टता सिद्ध करता है।

(६) नई स्थापनाएं :

देशी भाषाओं में उपलब्ध इन कृतियों के आधार से हिन्दी की सीमाएं, आदिकाल का नामकरण, सामग्री और सीमाओं पर प्रकाश डालने का पहला मौलिक प्रयास है। साथ ही हिन्दी की सीमाओं में प्राचीन राजस्थानी, जूनी गुजराती, ब्रज, मालवी, आदि सभी कृतियों का समावेश कर आदिकाल की सीमा निर्धारण सं० १००० से १५०० तक किया गया है। जिससे उत्तर अपभ्रंश से भक्तिकाल के पूर्व तक की लगभग सभी जैन कृतियों का समाहार हो सके।

(७) वैज्ञानिक वर्गीकरण-

'प्रस्तुत प्रबन्ध में रचनाओं के वर्गीकरण का आधार प्रमुख रूप से काव्य रूपों को दिया गया है। छन्दों और विषयों की दृष्टि से इन काव्य रूपों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ताकि वर्गीकरण में वैज्ञानिकता तथा दृष्टिकोण में मौलिकता आ सके।

(८) केवल जैन कृतियाँ:

प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल मात्र उन्हीं प्राचीन प्रकाशित अप्रकाशित कृतियों को स्थान दिया गया है, जो जैन कृतियाँ हैं अतः अजैन कृतियों का विस्तार में परिचय इस प्रबन्ध की सीमाओं से परे और विषयांतर समझ कर उनका शोधपूर्ण विवेचन प्रस्तुत नहीं किया गया। अतः इतने विशाल जैन साहित्य का समाहार करने वाला यह पहला मौलिक ग्रन्थ है।

(९) कोरा धार्मिक एवं उपदेश प्रधान साहित्य ही नहीं:

अद्यावधि आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के अनुसार जैन साहित्य की साम्प्रदायिक धार्मिक और उपदेश प्रधान कहकर उपेक्षा की जाती रही है। जैन कवियों के प्रति उनकी इस रूखी धारणा का निराकरण प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है। इन रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात हो सकेगा कि यह साहित्य कितना विविध मुखी और सरस है तथा धार्मिक साहित्य और साम्प्रदायिक कहकर इसको साहित्य की सीमाओं से अलग नहीं किया जा सकता।

(१०) अजैन कृतियाँ :

तत्कालीन उपलब्ध कुछ अजैन पद्य तथा गद्य रचनाओं के कुछ अंश आदिकालीन जैन अजैन रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए दिए गए हैं जिनसे अजैन रचनाओं की शोध की ओर विद्वानों का ध्यान जा सके।

(११) कथा परम्पराएं:

हिन्दी जैन साहित्य में प्रयुक्त विविध कथाओं की परम्पराओं (cycles) पर एक संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। अतः कथा परम्पराओं और कथा रूढ़ियों का स्वतंत्र रूप में अनुशीलन हो सकेगा।

(१२) देशी छन्द:

देशी छन्दों के इतिहास एवं परम्परा का प्रारम्भ करने वाले विविध छन्दों पर प्रकाश डालकर संगीत और छन्द के सम्बन्ध में इन आदिकालीन रचनाओं का योग प्रस्तुत प्रबन्ध में स्पष्ट हो जाता है।

(१३) लोक साहित्य का अध्ययन:

इन्हीं रचनाओं में अनेक कृतियाँ लोक कवियों की है जिनके वाग्वैदग्ध एवं प्रवाह के साथ साथ मधुरता तथा प्रासादिकता का अनुमान इन लोक परम्पराजन्य कृतियों से सम्भव हो सकेगा।

(१४) प्राचीनतम गद्य रचनाएं:

प्राचीनतम पद्य रचनाएं ही नहीं, आदिकालीन हिन्दी गद्य रचनाओं का समावेश भी इसमें किया गया है। ताकि हिन्दी गद्य और उद्भव के विकास में प्राचीन राजस्थानी, मालवी, जूनी गुजराती आदि का समन्वय स्पष्ट हो सके। गद्य की रचनाओं का वर्गीकरण तथा प्राचीन प्रतियों का अध्ययन आदिकालीन गद्य की सम्पन्नता पर प्रकाश डालता है।

(१५) अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी के विकास में योग:

अपभ्रंश की प्राचीन रचनाएं, उनका हिन्दी के निर्माण में योग, उत्तर अपभ्रंश की पुरानी हिन्दी की रचनाओं के उद्धरण, आदिकाल की इन काव्य धाराओं का परवर्ती काल में विकास, काव्य रूप,उनकी परम्परा आदि का अध्ययन आदिकालीन रचनाओं की पृष्ठ भूमि का अध्ययन करने में योग देता है। अपभ्रंश की लगभग उपलब्ध सभी कृतियों के मूल तत्वों को लेखक ने समझाने का प्रयास किया है।

(१६) आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की प्रमुख एवं गौण काव्य परम्पराएं:

छन्द और राग की दृष्टि से वर्गीकृत काव्य रूपों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट काव्य रूपों पर स्वतंत्र रूप से प्रकाश डाला गया है साथ ही विविध गीति रूपों का गौण काव्य परम्परा के अन्तर्गत अध्ययन इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है।

(१७) युगीन परिस्थितियां और जैन सिद्धान्तों का परिचय:-

जैन साहित्य के महत्व के अध्ययन का अध्ययन करने के लिए तत्कालीन

युगीन परिस्थितियाँ और जैन धर्म के सिद्धान्तों का सामान्य परिचय देकर कृतियों के प्रयुक्त दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय भी दिया है।

(१८) विविध दृष्टियों से मूल्यांकन:

प्रस्तुत ग्रन्थ में रचनाओं की समग्र साहित्य आलोचना करते समय प्रबन्ध, भाषा संस्कृति, धर्म तथा काव्य रूप एवं शैलियों सम्बन्धी तत्वों का भी मूल्यांकन किया गया है जो जैन साहित्य के स्वरूप, वैविध्य, और लक्ष्य पर प्रकाश डालता है जिससे धर्म नैतिकता तथा चरित्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्यों का स्पष्टीकरण हो जाता है।

(१९) प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की प्रतिनिधि:

ये रचनाएं प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ प्रामाणिक रूप में सुरक्षित मिल जाती हैं। अतः हर शताब्दी की इतनी अधिक रचनाएं एक साथ मिलने से इनकी प्रामाणिकता में कोई संदेह नहीं रह जाता।

(२०) साहित्यिक और लोक भाषा काव्य:

प्रस्तुत ग्रन्थ में जिन कृतियों का विवेचन है वे साहित्यिक तो है ही, साथ ही लोक भाषा मूलक भी। क्योंकि जैन कवि घर-घर, नगर-नगर, ग्राम-ग्राम अपनी रचनाओं का लोक आख्यानों द्वारा प्रचार किया करते थे। अतः प्रस्तुत ग्रंथ में दोनों प्रकार की रचनाओं का विश्लेषण किया गया है।

(२१) रचनाओं की ऐतिहासिकता-

प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक कृतियाँ विशुद्ध ऐतिहासिक है जिनसे ऐतिहासिक स्थानों, पुरुषों यात्राओं, संघों तत्कालीन राजाओं सांस्कृतिक पर्वों ऐतिहासिक घटनाओं आदि का परिचय मिलता है। ये रचनाएं विश्वसनीय हैं तथा इनसे तत्कालीन राजाओं का जैन अजैन कवियों से सम्बन्ध होने के प्रमाण भी प्रस्तुत प्रबन्ध में दिए गए हैं।

(२२) रसराज- शान्त :

प्रस्तुत प्रबन्ध में विवेच्य कृतियों की एक बड़ी मौलिकता यह भी है कि इसमें रसराज श्रृंगार को न मानकर शान्त को माना गया है। प्रत्येक कृति में शम की प्रधानता है। अनेक स्थानों पर श्रृंगार चरम पर पहुंच जाता है तो भी अन्त में जाकर वह निर्वेद की क्रोड़ में मूर्छित लगने लगता है।

(२३) राज्याश्रित रहित: जनता का साहित्य:

इस प्रबन्ध में लेखक ने जिन रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया है वे राज्याश्रय से परे जनता के आंचल और अन्तराल में डूबकर लिखा गया स्वाभाविक साहित्य है अत: इस दृष्टि से इस ग्रन्थ की मौलिकता में वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है।

(२४) प्रस्तुत ग्रन्थ की समाज और साहित्य को देन:

"आदिकाल का हिन्दी जैन साहित्य" ग्रन्थ में उन प्रसिद्ध अप्रसिद्ध कृतियों का विवेचन है जिनका मानवता के निर्माण में गहरा हाथ है। मानव जीवन के स्तर का सद्भावनाओं की ओर उन्नयन (Sublimation) कर अहिंसा शान्ति आदि के संदेश द्वारा मानव की नैतिक निष्ठाओं की जाग्रति और विजयिनी मानवता की विश्व संवेदना इन कृतियों में है अत: प्रस्तुत प्रबन्ध का महत्व एवं समाज और साहित्य को योग दान और अधिक बढ़ जाता है।

(२५) साहित्यिक आलोचना:

प्राप्त सामग्री तथा तथ्याख्यान और तथ्य निरूपण (सत्य) को एक तरफ रखने के बाद लेखक ने कृतियों की साहित्यिक आलोचना प्रस्तुत की है। जिससे कृतियों के भाव पक्ष और कला पक्ष की सुषमा का अध्ययन हो सके। निरपेक्ष दृष्टि से इन रचनाओं का अध्ययन करने से यह ज्ञात हो जाता है कि इनमें से अनेक कृतियां शुद्ध साहित्यिक संकल्प की दृष्टि से लिखी गई हैं।

इन्हीं तत्वों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रबन्ध अपने आप में मौलिक तथा अनेक भ्रमों का निराकरण करने वाला है साथ ही यह आदिकाल के अध्ययन से सम्बन्धित एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करने का प्रयास करता है।

::: भाषा का अध्ययन :::

प्रस्तुत प्रबन्ध में लेखक ने भाषा का अध्ययन नहीं किया है। क्योंकि यह लेखक के लिए विषयांतर का विषय था। भाषा विज्ञान के लिए ये कृतियां पर्याप्त शोध की अपेक्षा रखती हैं। हां विविध काव्य रूपों का अध्ययन करते समय कुछ महत्व पूर्ण कृतियों के शब्दों का विश्लेषण कर उनका वर्गीकरण, परिचय, आदि का सामान्य वर्णन कर दिया है। यद्यपि यह नियम कठोरता से सभी जगह नहीं पाला गया है।

भाषा की दृष्टि से इन रचनाओं की ध्वनि, शब्द, रूप और वाक्य विन्यास आदि का शोध पूर्ण विश्लेषण होना अत्यावश्यक है।

इन कृतियों की भाषा का अध्ययन इसलिए भी अत्यावश्यक हो जाता है कि प्राचीन राजस्थानी जूनी गुजराती, प्राचीन ब्रज, मालवी, आदि विभाषाओं में अपभ्रंश के तत्व कितने हैं, शौरसैनी और नागर अपभ्रंश से देशी भाषाओं में पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, तथा उत्तर अपभ्रंश ने हिन्दी का स्थानकितनी तरह से प्राप्त किया है आदि सभी महत्वपूर्ण प्रश्न इन कृतियों के शब्द, रूप, ध्वनियों आदि के वैज्ञानिकअध्ययन होने पर ही हल हो सकेंगे। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में भाषा के पक्ष को भाषा विज्ञान के स्वतंत्र शोध का विषय समझ कर अनुसंधित्सु स्नातकों के लिए छोड़ दिया गया है।

॥ कृतियों का पाठ सम्पादन ॥

इन रचनाओं का पाठ सम्पादन हिन्दी साहित्य के लिए बहुत बड़ी समस्या बना हुआ है। परम सौभाग्य की बात है कि हमारे देश के विभिन्न विश्व विद्यालयों ने पाठ विज्ञान को शोध का विषय बनाना स्वीकार कर लिया है। अतः अब बहुत सम्भव है कि पाठ सम्पादन पर इन कृतियों के लिए कार्य हो सके।राजस्थान ही नहीं, गुजरात, मालवा, बुन्देलखन्ड, दिल्ली आदि प्रदेशों के जैन अजैन भण्डारों में विशाल संख्या में प्रतियां भरी पड़ी हैं और जब तक उनके सम्यक् वैज्ञानिक सम्पादन होकर पाठ प्रकाशित नहीं हो जायेंगे तब तक इन कृतियों के भविष्य के सम्बन्ध में कुछ भी कह सकना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। जैनियों के भण्डारों में अद्यावधि यह परम्परा प्रचलित रूप में मिलती है कि उनकी प्रतियों का खूब प्रचार हो। अतः यह यशोल्सुक धनी जैन आज भी प्रतिलिपिकारों को आजीविका प्रदान करते हैं और प्रतियों की प्रतिलिपि करवाते हैं। साथ ही एक ही रासा की अनेक प्रतियां राजस्थान, गुजरात के विभिन्न भन्डारों में मिलती हैं जिनपर विभिन्न कलमों से प्रतिलिपि होने के कारण अनेक प्रकार के प्रादेशिक प्रभाव खूब पड़े हैं। अतः इन प्रभावों और प्रक्षेपों से मूल पाठ की रक्षा करना परम आवश्यक प्रतीत होता है। वस्तुतः पाठ

मिश्रण, पाठों के मिलान, लिपिकारों की त्रुटियां, प्रतियों का वंश निर्धारण, पुनर्निमाण तथा पाठ सुधार आदि पाठ विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रयोग करने पर ही इन कृतियों के मूल अथवा सम्भाव्य पाठ तक पहुंचा जा सकता है। आदिकालीन हिन्दी जैन कृतियों में कई कृतियां प्रकाशित हैं उदाहरणार्थ- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भरतेश्वर बाहुबली रास, त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, प्राचीन फागु संग्रह, नर नारी संबोध, गुर्जर रासावली, प्राचीन गुर्जर काव्य, ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, ऐतिहासिक जैन काव्य संचय आदि। परन्तु इनमें कुछ कृतियों को छोड़कर अधिकांश पाठों के सम्पादन अवैज्ञानिक हैं। अतः पाठ विज्ञान के विद्वानों का ध्यान लेखक अत्यन्त विनम्रता से इस ओर आकर्षित करता है। इन कृतियों की भाषा का अध्ययन भी तभी सम्भव हो सकता है जब इन कृतियों का सम्यक् पाठ सम्पादन हो तथा इनकी प्रामाणिकतासन्दिग्ध न हों। यों प्रामाणिकता तो असंदिग्ध है ही क्योंकि एक ही मूल प्रति की अनेक प्रतिलिपियां विभिन्न भण्डारों अथवा शाखाओं से मिलती है। साथ ही अनेक कृतियां ऐसी भी मिलती है जिनकी पुष्पिकाओं में प्रतिलिपिकार का नाम, समय, रचना काल, स्थान सही रूप में मिल जाता है। अतः इन रचनाओं की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिन्ह नहीं लग सकता। साथ ही यह भी सम्भव है कि अनेक रचनाओं की परम्परा श्रुतिबद्ध होने से इनमें अनेक प्रक्षिप्त अंश और भूलें हों। अतः इस ओर पाठ विज्ञान की शोध की प्रत्येक गुंजाइश है।

(अध्याय - २)

। हिन्दी साहित्य के आदिकाल का युग और समाज ।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल का युग और समाज

---::००::---

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य का सम्यक् अध्ययन करने के लिए तत्कालीन युगीन परिस्थितियों से परिचित होना बहुत आवश्यक है। साहित्य युग का प्रतिनिधि होता है। उसके चतुर्दिक समाज में होने वाले छोटे बड़े लगभग सभी हलचलों का उसमें समावेश होता है। अतः युग में होने वाली राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक साहित्यिक आदि सभी घटनाओं का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। अतः साहित्य में समाज तथा इतिहास की प्रत्येक हलचल का प्रभाव संचित रहता है। वास्तव में युगीन परिस्थितियां किसी साहित्य को समझने में मूल तत्वों का कार्य करती है। जिस प्रकार किसी कवि के काव्य का सम्यक् अनुशीलन करने के लिए उसकी युगीन परिस्थितियों वैयक्तिक जीवन तथा दर्शन अर्थात् मूल तत्वों का अध्ययन अत्यावश्यक है ठीक इसी प्रकार उत्तर अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी की इन कृतियों को समझने के लिए उसके मूल में तत्कालीन युग तत्व का अध्ययन करना होगा।

युगीन परिस्थितियां

युगीन परिस्थितियों के अन्तर्गत निम्नांकित बातों पर विचार किया जा सकता है:-

(अ) राजनैतिक परिस्थितियां

(ब) धार्मिक परिस्थितियां

(स) सांस्कृतिक परिस्थितियां

(द) साहित्यिक परिस्थितियां

(२)

(अ)- राजनैतिक परिस्थितियाँ:

आदिकाल की पृष्ठ भूमि जिन राजनैतिक परिस्थितियों के अंचल में पोषित हुई है उनकी संक्रांति असाधारण वैविध्य से परिपूर्ण है। १००० से लेकर संवत् १५०० ई० तक हमारे देश में राजनीति ने अनेक करवटें बदली हैं। राज्य के लिए होने वाली ये अनेक क्रान्तियाँ इतनी अधिक प्रसिद्ध हैं कि एक ओर उत्थान की दृष्टि से इस काल को स्वर्ण काल कहा जाता है तो दूसरी ओर इसे रक्तोल्पातों का काल। वास्तव में ८वीं शताब्दी से लेकर १२वीं शताब्दी तक इस युग को राजवंशीय युग कहा जा सकता है। मध्य देश में ही नहीं भारत के लगभग सभी प्रदेशों में जिस राजनीति के हमें दर्शन होते हैं उसमें जितने भी उथल पुथल हुए वे सब आदिकालीन हिन्दी जैन कृतियों में पृष्ठभूमि की निधि कहे जा सकते हैं। ये राजा लोग इतने अधिक शक्तिशाली थे कि प्रत्येक राजा स्वयं को ईश्वर का अवतार मानता था परन्तु सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात इन राज्यों में यह थी कि ये परस्पर विद्रोह, विरोध और ईर्ष्या तथा महलोलुपता के वशीभूत थे। अतः इन महत्वपूर्ण राजनैतिक परिस्थितियों की क्रोड़ में काव्य रचना किस प्रकार हो रही थी यह बड़ी ही महत्वपूर्ण घटना है। वास्तव में इन राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन निम्नांकित दो रूपों में सामने आता है:-

(क) राजवंश युग

(ख) इस्लाम युग

राजवंश युग में तत्कालीन विभिन्न राज्यों में जो स्थितियाँ थी उन्होंने इस साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। इन राजनैतिक प्रादेशिक परिस्थितियों का अध्ययन विभिन्न प्रदेशों और शासकों के उत्थान पतन का अच्छा इतिहास प्रस्तुत करती हैं। विभिन्न राज्यों से होने वाले इन आंदोलनों का प्रभाव निम्नांकित रूप से दिखा जा सकता है:-

(१)

(क) राजवंश युग :

इस युग का प्रारम्भ यद्यपि ६ठी शताब्दी से होता है, इसी शताब्दी को लेकर १२०० ई० तक देश में अनेक हलचलें प्रारम्भ हुई। घटनाओं की इस थल-पुथल में अनेक साहित्य प्रेमी विद्वान शासकों को भी जन्म दिया है। विभिन्न प्रदेशों में उस समय जिन प्रसिद्ध वंशों का राज्य था उनके पारस्परिक युद्धों और उससे उत्पन्न विभिन्न स्थितियों का परिचय विभिन्न राजपूत राज्यों के रूप में बिखरा पड़ा है। इन वंशों में मौखरी वंश, प्रतिहार वंश, गुर्जर, परमार, पाल, चालुक्य, चौहान, गाहड़वार, और सोलंकी अत्यन्त प्रसिद्ध वंश है ।

मौखरी वंश:

मध्य देश में उस समय अनेक प्रसिद्ध जनपद थे। इन जनपदों में कुरु, पंचाल, शूरसेन, कौशल, काशी विदेह, अंग, दक्षिण कोसल, वत्स, चेदि, अवंति तथा मत्स्य प्रमुख है। इन प्रदेशों में विभिन्न विभिन्न प्रकार की अनेक बोलियाँ हैं। जिनमें प्रमुख प्रमुख है - खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, छत्तीसगढ़ी, बघेली, बुन्देली, मालवी और जयपुरी। इन राज्यों में मध्य देश में मौखरियों का राज्य था। साथ ही पंजाब, गुजरात प्रदेशों में गुर्जर जाति प्रमुख थी। मौखरी वंश वालों ने कन्नौज को खूब ऊँचा उठाया। गुप्त साम्राज्य के पश्चात् प्रभाकर वर्द्धन का लड़का हर्ष गद्दी पर बैठा। हर्ष ने मालव देश के गुप्तों और मगध के शासकों को बार बार हराया। मालव, अवन्ति उसने शीघ्र जीतकर काठियावाड़ में वलभी के राजा को हराकर सम्पूर्ण राजस्थान को अधीनस्थ कर लिया [1]। हर्ष जैसे शक्तिशाली राजा का परिचय प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसांग से मिलता है। हर्ष ने चीन तक अपने कई दूतों को भेजा तथा अपने देश की कीर्ति का प्रकाश फैलाया।

१- हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ९५, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

(४)

<u>वर्मन वंश:</u>

हर्षवर्द्धन के पश्चात् वर्मन वंश(७२७-७५२) का प्रसिद्ध राजा यशोवर्मन हुआ। स्वयं यशोवर्मन को काश्मीर से हार माननी पड़ी। आठवीं शताब्दी भी ७वीं के समान अत्यन्त हलचल प्रधान है। क्योंकि इसी समय ही हमारे देश पर अरबों ने सिन्ध पर विजय प्राप्त की थी। आठवीं शताब्दी के मध्य तक इन अरबों के अनेक आक्रमण हुए। वर्मन वंश के यशोवर्मन के दरबार में उत्तर रामचरित जैसे नाटककार तथा प्राकृत कवि वाक्पति जैसे विद्वान थे।

<u>आयुध वंश:</u>

हर्ष के समृद्धिशाली राज्य की राजधानी कन्नौज को सं० ७८३ आयुधवंश के शासकों ने हाथ में लिया। हर्षवर्धन के साम्राज्य के जो टुकड़े हुए उनमें बिहार बंगाल के पाल, गुजरात और मालवा के प्रतिहार प्रमुख थे इन दोनों की आंखें कन्नौज पर लगी थीं।[1] इधर दक्षिण के राष्ट्रकूट भी कन्नौज को लेना चाहते थे। आयुधवंश के राजा इन्द्रायुध और चक्रायुध दोनों निर्बल थे। वस्तुतः प्रतिहार वत्स राज (सन् ७८१) और गौड़ेश्वर धर्म पाल ने आयुधवंश से कन्नौज लेने के भागीरथ प्रयत्न किए। पर सुदूर दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा ध्रुव (७८०-९४) ने इनकी आशा पर पानी फेर दिया। राष्ट्रकूट ध्रुव के महानता की प्रशंसा जितनी की जाय, कम है क्योंकि उन्हीं की कृपा से अपभ्रंश साहित्य का महाकवि स्वयंभू मिल सका। ध्रुवराज स्वयं अच्छे लेखक थे जिन्होंने कई ग्रन्थ रचे हैं। इससे पाल राष्ट्रकूट और प्रतिहारों के भयंकर आक्रमण की आशंका बनी रहती थी। अतः वे तीनों जन नायक एतदर्थ लड़े हुए।[2] कन्नौज नगरी को राजलक्ष्मी छोड़ना नहीं चाहती थी।

१- हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० २५, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।
२- देखिए हमारा राजस्थान पृ० ५४ पृथ्वी सिंह मेहता। प्रकाशक हिन्दी भवन प्रयाग, १९५०।

(५)

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि "कन्नौज नगरी एक ऐसी स्वयंवर कन्या थी जिसे राष्ट्रकूट, प्रतिहार और पाल तीनों ब्याहना चाहते थे। लेकिन स्वयंवर कन्या सौत बन कर नहीं रहना चाहती थी। अब तीनों उम्मीदवारों को फैसला करना था कि कौन अपना देश छोड़ कान्यकुब्ज जाने को तैयार है। प्रतिहार नागभट्ट ने फैसला किया वह कन्नौज का स्वामी बन गया बाकी दोनों मुंह ताकते रह गए।[१] नागभट्ट मंदौर (जोधपुर) तथा उज्जैन का शासक था। [२] उज्जैन और कन्नौज के दो केन्द्र हाथ आ जाने से प्रतिहारों की शक्ति द्विगुण हो गई। मिहिर भोज प्रतिहारों में प्रसिद्ध शासक (सन् ८३६-८५) हुए हैं। मिहिर भोज का आतंक सारे मध्य देश पर था। मिहिर भोज ने पाल और राष्ट्रकूटों से अनेक युद्ध किए। अरबी लोग उनसे घबराते थे। प्रतिहार नागभट्ट तबसे करीब करीब महमूद के हमले तक कन्नौज उत्तरीभारत और सारे भारत के लिए जबरदस्त ढाल बना रहा।[३] "

मिहिर भोज के बाद महेन्द्र पाल प्रथम (सन् ८८४-९१०) ने साहित्य सेवा में बड़ा योग दिया। प्रसिद्ध महाकवि तथा लेखक राजशेखर उन्हीं के दरबार में थे। महाकवि राजशेखर ने काव्यमीमांसा, कर्पूरमंजरी, बाल भारत, बाल रामायण आदि ग्रन्थों की रचना की है। सन् ९४८ में प्रतिहारों में अंतिम राजा देवपाल हुए हैं, फिर तो प्रतिहारों में कोई बल नहीं रहा और उत्तरी भारत अथवा मध्य देश अनेक स्वतंत्र वंशों में बट गए तथा अनेक नये राजवंश भी बन गए।

राष्ट्रकूट वंश-

इस वंश की स्थापना पुलकेशी के चालुक्य वंश की समाप्ति करने पर सन् ७५३ ई० में हुई। २०० वर्षों तक राष्ट्रकूट राजा बड़े शक्तिशाली बने रहे।

१- हिन्दी काव्य धारा: पृ० ३५, श्री राहुल सांकृत्यायन।
२- कन्नदेव पृ० १९२, डा० धीरेन्द्र वर्मा।
३- हिन्दी काव्य धारा: राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३५।

(६)

नर्मदा से कृष्णा तक और कभी कभी कावेरी तक उनका विशाल राज्य फैला हुआ था और सुदूर दक्षिण रामेश्वर ही नहीं, कभी कभी तो सिंहल भी उनकी आज्ञा को मानता था। कितनी ही बार उनके घोड़ों की टाप जमुना और गंगा के दुआबे (अंतर्वेद) में प्रतिध्वनित हुई थी। कितनी बार उनके सैनिक युक्त प्रान्त के दुर्गों में मालिक बनकर बैठते थे।[१]

पालवंश:

इस वंश में गोपाल और धर्मपाल प्रमुख शासक थे। गौडेश्वर नागभट्ट को हमारे साहित्य को ८४ सिद्धों को देने का श्रेय है। अनेक कवि इनके यहां आश्रय पाते रहे। अतः पालवंश के राजाओं को अपभ्रंश के स्वयंभू और पुष्पदंत जैसे कवि उत्पन्न करने तथा उन्हें आश्रय देने का यश प्राप्त है।

नये वंश:

प्रतिहारों के पश्चात् बने गए राजवंशों में अजमेर के चौहान, बुंदेलखंड के चन्देल, त्रिपुरी के कलचुरी तथा मालवा के परमार प्रमुख थे। कन्नौज में प्रतिहारों का शासन बना था। इस वंश में राज्यपाल- अनंगपाल तथा अंतिम शासक यशपाल हुए। राज्यपाल के समय सुल्तान सुबुक्तगीन ने तथा अनंगपाल के समय महमूद गजनवी के आक्रमण हुए। अंतिम प्रतिहार शासक (सन् १०३६) यशपाल थे, जिन्होंने १०३६ तक राज्य किया।

गाहड़वार

कन्नौज का कुछ वैभवशाली केन्द्र प्रतिहारों के बाद गाहड़वारों के हाथ लगा। गाहड़वारों में चन्द्रदेव, गोविन्द चन्द्र के पश्चात् उनके पुत्र महाराज

१- हिन्दी काव्य धारा, राहुल सांकृत्यायन पृ० २५।

(७)

विजयचंद सन् ११५४ में राजा हुए। गाहड़वार के अन्तिम शासक जयचंद थे। गंगा की घाटी में इनके राज्य का विस्तार अब तक भी गया तक था।एक प्रकार से यह वर्तमान उत्तर प्रदेश और बिहार का सम्मिलित राज्य था। इन्हीं के समय गोरी ने मध्यप्रदेश पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज को हराने के बाद गोरी ने जयचन्द की सेनाओं से पहली बार मुठभेड़ की। सन् ११९२ में इटावा की मुठभेड़ में जयचन्द मारे गए और पहली बार हमारे देश का राज्य स्थायी रूप में सुल्तान शासकों के हाथ में, जो विधर्मी और विभिन्न संस्कृति को मानने वाले थे, चली गई।

जयचंद साहित्यप्रेमी शासक थे। उनके दरबार में श्री हर्ष रहते थे, जिन्होंने नैषध चरित जैसे कठिन काव्यों की रचना की। इस प्रकार वैभव की नगरी कन्नौज ने शताब्दियों तक शासकों को आकर्षित किए रखा। कभी कभी इन मध्यदेश की ये इकाइयाँ अलग हो जाती थीं। मध्यदेश के दक्षिणी भाग में जिन, चौहान कल्चुरी, चन्देल और परमार वंशों पर पहले आंशिक प्रकाश डाला जा, प्रमुख थे।:[1]

<u>चौहान वंश-</u>

यह वंश शाकंभरी (सांभर और अजमेर) में हुआ। अजमेर बसाने वाले अजयराज थे। यह १२वीं शताब्दी में बसाया गया। इसी वंश में बीसलदेव विग्रहराज चतुर्थ (११५३-६४) हुए। इन्होंने दिल्ली कन्नौज को गाहड़वार राजा विजयचंद से छीना।

बीसलदेव काव्य प्रेमी थे। वे स्वयं भी साहित्य रचना करते थे।यही

१- विशेष विस्तार के लिए देखिए-

(क) मध्यदेश पृ० १५०-१६८, डा० धीरेन्द्र वर्मा प्रकाशक बिहारी राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

(ख) हिन्दी साहित्य का आदिकाल: द्वितीय व्याख्यान, पृ०२७-३७, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

नहीं साहित्य प्रेमी होने के साथ साथ वे विद्याप्रेमी तथा विद्यानुरागी भी थे। अजमेर का ढाई दिन का झोपड़ा इन्हीं के द्वारा स्थापित एक विद्यापीठ था। स्वयं बीसलदेव ने हरकेलि नाटक लिखा है जिसके कुछ भाग पत्थर पर खुदे अजमेर की एक मस्जिद में मिले हैं। हिन्दी के प्राचीन काव्य नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासो में इन्हीं बीसलदेव का वर्णन है। महाकवि सोमदेव के ललित विग्रह राज के कुछ भाग भी इसी तरह मिले हैं।

अजमेर दिल्ली पर दूसरे प्रसिद्ध शासक (११७९-९२) पृथ्वीराज हुए इन्होंने कन्नौज के जयचन्द की पुत्री संयोगिता का अपहरण किया। गोरी को इन्होंने कई बार हराया तथा महोबे के चन्देल शासक परमाल पर आक्रमण करके इन्होंने कई किले जीते। ये सन् ११९२ में जयचन्द की सहायता लेकर फिर लड़ने आये और देश की कूटनीति और फूट के कारण अन्त में हारे तथा मारे गए।

कहते हैं कि पृथ्वीराज रासो के लेखक महाकवि चन्द इन्हीं के दरबार में रहते थे। इनकी मृत्यु के पश्चात् दिल्ली अजमेर का शासन विदेशी आक्रमणकारियों (मुसलमानों) के हाथ में चला गया।

कलचुरी वंश:

जबलपुर के कोकल्ल का यह राज्य कलचुरी वंश का था।महाराज गांगेय (१०११-१०४१) अत्यन्त पराक्रमी थे। इनका राज्य प्रयाग,काशी,उत्कल एवं कन्नड़ तक था। अन्त में वे भोज परमार से हार गए। गंगुतेली और राजा भोज की कहावत प्रसिद्ध है। इसके बाद यह वंश समाप्त हो गया।

चंदेल वंश:

इसी समय बुंदेल के चंदेले बड़े प्रसिद्ध थे। प्रसिद्ध शासक जेजा के कारण ही इसे जेजाक भुक्ति कहते हैं। बुंदेल में खजुराहो के प्रसिद्ध मंदिर को कन्नौज के महाराज यशोवर्मन ने बनाया। धंग और गंड के बाद अन्तिम चंदेल राजा परमाल

(९)

थे। (११६५-१२०३)। इन्हें पृथ्वीराज ने हराया। परमार्दि देव ने कुतुबुद्दीन एवक से भारी युद्ध किया। पर अन्त में वे हारे। चंदेल के प्रसिद्ध स्थानों में प्रसिद्ध ~~कलात्मक स्थान~~ शैव मन्दिर तथा खजुराहों और कालिंजर के दुर्गों को नहीं भुलाया जा सकता।

<u>परमार वंश:</u>

अन्तिम वंश मालवा के परमारों का था। पहले परमार शासक उपेन्द्र प्रतिहारों के आधीन थे। उनके निर्बल पड़ते ही (सन् ९५०) में मालवा के परमार राजा स्वतंत्र हो गए। प्रसिद्ध साहित्य प्रेमी महाराज मुंज (९७४-९९८) इसी वंश में हुए। मुंज ने हमारे देश को बड़े बड़े विद्वान साहित्यकार प्रदान किए। इनके दरबार में नाट्यशास्त्र ग्रंथ दशरूपक के प्रसिद्ध लेखक धनंजय तथा दशरूपा व लोक लेखनी के धनिक थे। भट्ठ हलायुध जैसे प्रसिद्ध व्यक्तित्व इन्हीं के दरबार की उपज हैं। मुंज की इस रही सही कमी को इसी वंश में होने वाले महाराज भोज ने पूरी कर दी। इनके राज्य में परमार वंश की प्रगति चरम पर पहुंची।

भोज असाधारण विद्यानुरागी और संस्कृत प्रेमी थे। भोज के भाई उदयादित्य का बनाया हुआ उदयेश्वर का मंदिर उदयपुर के पास खड़ा है। भोज ने अनेक संस्कृत में रचनाएं लिखी हैं। मुंज और भोज दोनों चाचा भतीजे संस्कृत प्राकृत के साथ देशी भाषा के प्रेमी थे। एक भोजशाला नामक प्रसिद्ध विद्यापीठ भी भोज ने बनाया जिसको बाद में मुसलमानों ने मस्जिद बना लिया। अंततः पर (१३०५) पर अलाउद्दीन खिलजी का शासन हो गया।

<u>गुजरात के सोलंकी:</u>

राजा भोज, चेदि के कलचुरि राजा कर्ण ने तुर्कों से कई राज्य वापिस लेकर उत्तरी राजस्थान के रास्ते सिन्ध तक धावे कर उनसे लोहा लिया। अवन्ति के अतिरिक्त डबपुर (भवलीर) और मेवाड़ का अधिकांश भी परमारों

के अधीन था। बागड़ (डूंगरपुर बाँसवाड़ा) पर इनकी दूसरी शाखा सामन्त के रूप में राज्य करती थी। तथा समस्त पश्चिमी राजस्थान और दक्षिणी पूर्वी सिन्ध में छोटे छोटे अनेक परमार सामन्त १५वीं शताब्दी तक रहे। उत्तरी राजस्थान में शाकंभरी का चौहान राज्य भी महमूद के बाद बहुत अधिक प्रमुखता में आया और ११वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अणहिल पाटण का चौलुक्य (सोलंकी) राज्य भी फिर से संभल बैठा। वहां के भीम सोलंकी ने कर्ण की सहायता से भोज पर चढ़ाई की।

भीम सोलंकी के उत्तराधिकारी सिद्धराज जयसिंह हुए और कुमारपाल के समय गुजरात का सोलंकी राज्य बहुत बढ़ गया। जयसिंह ने दवपुर, चित्तौड़ मेवाड़ का पूर्वी प्रदेश एकलिंग जी, और उदयपुर तक प्रदेश जीते। बेडच के पूर्वी तट पर दूर तक फैले खंडहर इसके द्योतक हैं।

मेवाड़ में गुहिल पुत्रों में बाप रावल बहुत प्रसिद्ध हैं जिन्होंने अरब आक्रमण के समय दाहिर की बड़ी सहायता की। अवन्ति विजय के बाद मेवाड़ के गुहिल पुत्र गुजरातवालों के सामन्त हो गए। मेवाड़ के पश्चिम में आबू परमार का राज्य तथा जालौर नाडौल के चौहान आरम्भ से ही गुजरात के सोलंकियों के अधीन थे। कुमार पाल के समय भाटी जज्जल या जैसल, जिसने (११५५) में जैसलमेर नगर की स्थापना की, भी चालुक्यों का सामन्त बना लिया गया। उसके उत्तर जैसलमेर और दक्षिण पूर्व मांडलगढ़ तक का समूचा उत्तरी और मध्य राजस्थान धीरे धीरे करके शाकंभरी सपादलक्ष के चौहान राज्यों में विलीन हो गया।

इन्हीं गुर्जर चालुक्यों (९६१-१२५७) ने अपभ्रंश के अनेक कवियों को जन्म दिया। अपभ्रंश की अनेक कृतियां चालुक्य देश तथा गुर्जर देश में रचित हुई हैं। विद्वानों ने इनके दरबार को जैन कहा है।

उक्त राजपूत वंशों का १३०० ई० तक धीरे धीरे अन्त हो गया।

शेष आर्यावर्त में भी इसी प्रकार के छोटे छोटे अनेक राज्यों की स्थापना हुई। उदाहरणार्थ उत्तरापथ में काबुल तथा पंजाब का प्रसिद्ध राजवंश पूर्व में कामरूप के वंश बंगाल में पाल तथा सेन और कलिंग उड़ीसा के राजवंश, कश्मीर में कर्कोटक तथा उत्पल वंश, दक्षिण में कल्याणी के चालुक्य देवगिरि के यादव तथा वरंगल के काकतीय आदि। इन राज्यों में भी परस्पर मेल नहीं था, पर इनकी सांस्कृतिक स्थिति में अधिक अन्तर नहीं है। इनमें कभी कभी विवाह और युद्धों से भी सम्पर्क मिल जाता है।

इस प्रकार इन विभिन्न वंशों की उक्त स्थिति को देखते हुए राजवंश काल की राजनैतिक स्थिति बहुत संतोषजनक प्रतीत नहीं होती। मध्यदेश में परस्पर युद्ध होते रहे। पारस्परिक स्पर्धा विवाह, आदि युद्ध के कारण थे। साम्राज्यलिप्सा से विभिन्न क्रांतियां हुई। नींव कमजोर होती गई। इन परिस्थितियों के होने पर भी यह स्पष्ट है कि इन राजाओं ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के महाकवि तथा लेखक पैदा किए। स्वयंभू पुष्पदन्त, सिद्धकवि आदि अनेक इनके प्रतिफल ही हैं। परन्तु इन होने वाले युद्धों की क्रोड़ में एक ऐसी भयंकर विदेशी आग फैली जिसने कला संस्कृति तथा साहित्य के अनेक स्रोतों को जलाकर खाक कर दिया। यदि ये राजवंश मिलकर रह सकते तो इस्लाम और तुर्क शासन को कभी प्रश्रय नहीं मिला होता और आज हमारे अनेक कलात्मक स्थान, मन्दिर, पुस्तकालय और ग्रन्थ भंडार ध्वंस नहीं होते। यह विदेशी आग इस्लाम युग थी जिसका परिचय अपेक्षित है।

(२) <u>इस्लाम युग (७१२-१८००):</u>

इस युग की स्थापना ८वीं शताब्दी से ही मानी जाती है इसमें इस्लाम ने सिन्ध पर अधिकार किया। १०वीं और ११वीं शताब्दी में इस्लाम की शक्ति बढ़ी और काबुल ही नहीं लाहौर भी हिन्दुओं के हाथ से निकल गया। इस्लाम युग भारत के इतिहास में एक क्रान्तिकारी घटना है। राहुल

सांकृत्यायन का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि "मुस्लिम राज्य की स्थापना भारत के लिए एक बहुत भारी घटना थी। अभी तक जितने भी विदेशी आक्रमणकारी भारत में आए थे, वह भारतीय संस्कृति को स्वीकार कर- हां उसमें अपनी ओर से कुछ देकर के भी - हजारों जात पातों में बिखरे भारतीय जन समूह में मिलते गए। लेकिन अब जिस संस्कृति और धर्म से वास्ता पड़ा वह काफी सबल था। उसे हजम करने की ताकत ब्राह्मणों के जीर्णशीर्ण ढांचे में नहीं थी।---- संदेश रासक के रचयिता कवि अबुदुल रहमान (१०१० ई० का जुलाहा वंश दसवीं सदी के अन्त से पहले ही मुसलमान हो चुका था।इस्लाम जब भारत के दूसरे क्षेत्रों में फैला तो वहां पर भी हम प्रमुख शिल्पी जातियों को बड़ी खुशी से इस्लाम धर्म स्वीकार करते देखते हैं।[1] "

इस तरह इस्लाम का क्षेत्र बढ़ता गया। १०१४ ई० में महमूद गजनवी ने हिन्दी प्रदेश पर पहला आक्रमण किया। उसने मथुरा और कन्नौज के मंदिरों को लूटा। कन्नौज उस समय शक्तिहीन था। थानेश्वर भी मुसलमानों के हाथ में चला गया था। सन् १०२५ में उसकी सोमनाथ की लूट प्रसिद्ध है।[2] इन तुर्कों का उद्देश्य केवल धन लूटना तथा ध्वंस करना था पर इस लूट ने मूर्तिवाद की पुष्टि की। इससे राहुल सांकृत्यायन के इस कथन का औचित्य स्पष्ट होता है कि - १२वीं शताब्दी के अन्त में दिल्ली और कन्नौज भी इस्लामी झंडे के नीचे चले गए थे। अब हिन्दू सामंत एक एक करके आत्म समर्पणकरने के लिए काल की प्रतीक्षा कर रहे थे। महमूद और दूसरे कितने ही मुस्लिम विजेताओं ने हिन्दुओं के मन्दिरों पर भी प्रहार किया। लेकिन वे इतना श्रम सिर्फ पत्थरों के तोड़ने के लिए ही नहीं किया करते थे। वे जाते थे महन्तों और पुजारियों द्वारा वहां जमा की हुई अपार माया को लूटने। इससे यह लाभ

१- हिन्दी काव्य धारा, पृ० ३०-३१, श्री राहुलसांकृत्यायन।
२- हिन्दी काव्य धारा, पृ० ३१ श्री राहुलसांकृत्यायन।

जरूर हुआ कि मन्दिरों व देवताओं की हजारों वर्षों से स्थापित महिमा बहुत घट गई। कोई ताज्जुब नहीं यदि दिल्ली विजय के बाद तीन सदियों तक हिन्दू संत भी मूर्तियों और देवताओं के पीछे लट्ठ लेकर पड़ गए और चारों ओर निर्गुणवाद की दुंदभी बजने लगी। १०२६ ई० में पंजाब में भी मुसलमानों ने अपना सिक्का जमा T। धीरे धीरे तुर्क सत्ता मध्यदेश तथा अन्य प्रदेशों में फैलती गई। ई० ११९२ में मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण कर पृथ्वीराज व जयचंद को हराया तथा ११९७ ई० में गोरी के एक सेनापति मुहम्मदबिन बख्तियार ने सन् ११९७ में मगध के पाल शासकों और सन् ११९९ में बंगाल के सेन वंश को समाप्त किया। भारत का शासन कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंप कर गोरी पुनः गजनी चला गया। ऐबक ने सन् १२०२ में बुन्देलखंड को जीता। मध्य देश इस तरह सारा तुर्कों के शासन में जकड़ गया। हां मालवा अवश्य १०० वर्ष तक स्वतंत्र रहा। इस तरह मुसलमानों का शासन ६०० वर्ष चला। १२९० ई० तक गुलाम वंश राज्य करता रहा।

राजस्थानमें दिल्ली, अजमेर, नागौर तुर्कों ने ले लिये । रणथंभोर तथा नाडौल जालौर के चौहान तथा गुजरात के सोलंकियों के सामन्त मेवाड़ के गुहिल अब स्वतंत्र हो गए थे वे तुर्कों को मालवा गुजरात की तरफ बढ़ने से रोकते थे। उत्तर पश्चिमी सीमान्त पर इसी तरह जैसलमेर पूंगल का भाटीराज मुल्तान और सिन्ध की तरफ से उनके हमलों को रोके रहा। सन् १२३४ में मेवाड़ के राजा जैत्रसिंह ने सुल्तान इल्तुतमिश को, जो रणथंभौर से उज्जैन को लूट कर एकलिंग जी के रास्ते गुजरात अनहिलवाड़ पाटन पर चढ़ाई करने जा रहा था, करारी हार दी। मेवाड़ का नाम तब से इतिहास में प्रसिद्ध हो गया।[१]

१- हमारा राजस्थान पृ० ६५ श्री पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार।

इसी प्रकार १२३७ ई० में बल्बन को भी मेवाड़ के महारावल समरसिंह से हार खानी पड़ी। मेवाड़ से गुजरात के रास्ते मिले हुए थे। अतः मेवाड़ के मेवातियों ने प्राण प्रण से तुर्कों को इधर बढ़ने से रोका। मेवाती लोग पुराने शकों के वंशज थे। ये बड़े लड़ाके और दुर्दमनीय थे। अतः रणथंभौर और ग्वालियर की रक्षा मेवाड़ के इन्हीं वीरों के कारण हो सकी। १२९० ई० में खिलजी वंश के कारण राजनीति में विविध परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। अलाउद्दीन खिलजी को मेवाड़ के रावल समरसिंह से हार खानी पड़ी, पर उसने फिर मेवाड़ के दक्षिण की परिक्रमा कर सन् १२९८ में गुजरात और पाटन पर अहमदाबाद होकर धावा किया।[१] अब राजस्थान भी इन आक्रमणकारियों द्वारा तीनों तरफ से घिर गया। खिलजी अलाउद्दीन ने १३०१ में रणथंभौर, १३०३ में चित्तौड़ को घेरा। रत्नसिंह की सुन्दरी रानी पद्मावती ने सैकड़ों वीरांगनाओं के साथ जौहर की धधकती लपटों में प्रवेश किया। खिलजी ने इस प्रकार १३११ ई० तक मारवाड़ के जालौर, नाडौल, सिवाना, भीनमाल, सांचौर (सत्यपुर) तथा जैसलमेर जीता। आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की धनपाल रचित कृति सत्यपुरीय महावीर उत्साह में अलाउद्दीन के सांचौर या सत्यपुर पर आक्रमण की कथा स्पष्ट होती है।[२] इस प्रकार १४वीं शताब्दी में राजस्थानमें भी तुर्क आधिपत्य पूर्णतः छा गया। सन् १३२० ई० में तुगलक वंश आया। महाराणा हम्मीर ने तुगलकों को चुनौती देकर चित्तौड़ पुनः ले लिया। तुगलक के कुछ अदूरदर्शी कार्यों से मेवाड़ के महाराणा लाखा ने लाभ उठाया पर सन् १३९८ के तैमूर के हमले ने सब

१- देखिए गुजरात नो सांस्कृतिक इतिहास पृ० १२९-१३० द्वारा श्री रत्नमणि राव भीमराव जोटे प्रकाशक गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी, अहमदाबाद।

२- देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ का आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य (३) स्तवन काव्य परम्पराएं नामक अध्याय।

प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला दी। मेवाड़ के दोनों शत्रुओं पर मालवा और गुजरात में तब दो भारतीय मुस्लिम राज्यों की स्थापना हुई। मालवा के पठान थे और गुजरात के थानेश्वर के पास रहने वाले टांक (तक्षक क्षत्रिय) जो फिरोज़ तुगलक के समय में मुसलमान बने थे तथा दिल्ली सल्तनत के प्रान्तीय शासक थे, अब स्वतंत्र हो गए।[१] पश्चिमी राजस्थान में सिरोही जालौर तथा नागौर पर गुजरातियों का अधिकार था। दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में भाटियों ने जैसलमेर राज्य को पुनः संगठित किया। मध्य मारवाड़ में मन्डोवर का प्रतिहार वंश था जिनका नागौर के तुर्क मुस्लिम थाने से बराबर संघर्ष चलता था।[२] शेष राजस्थान में गुजरात के सोलंकी, परमार राष्ट्रकूट आदि स्वतंत्र जीवन बिताते थे इनमें एकता नहीं थी। इस तरह १२वीं १३वीं शताब्दी तक यह संघर्ष होता रहा।

१४१२ ई० से सैयद लोदी वंश आया। महाराणा कुम्भा की सत्ता माननी पड़ी तथा उन्होंने महाराणा को हिन्दू सुल्तान का विरुद (सन् १४३७) में प्रदान किया। गुजरात और मालवा को तो पहले ही हरा दिया था अतः उन्हें १५६० ई० तक कई लड़ाइयों पर सफलता न मिली। मारवाड़ में राठौर रणमल के पुत्र जोधा को महाराणा ने गुजरात के मुस्लिम केन्द्र नागौर जालौर आदि के मुकाबले में (सन् १४५३ ई० में) सामन्त रूप में खड़ा किया था। नागौर का मुस्लिम केन्द्र पश्चिमी राजस्थान में राजनैतिक षुराफातों का अड्डा बना हुआ था। राणा कुम्भा ने (सन् १४५६-५८ तक) उस पर तीन आक्रमण किए और अन्त में सन् १४५८ में गुजरात के सुल्तान कुतुबुद्दीन की विडंबना करते हुए राजस्थान में शकों (मुस्लिमों तुर्कों) के महाकुल की उस जड़ को खोद, गढ़ ढहा, खाई को पाट और बड़ी मस्जिद समेत सारे नागौर राज्य को जलाकर खाक कर गोचर भूमि में परिवर्तित करके जांगल देश से उखाड़ फेंका। मूल के नष्ट हो जाने पर दूर तक उसकी

१- हमारा राजस्थान पृ० ६८-६९ लेखक श्री पृथ्वी सिंह मेहता।

शाखाओं और पत्तों की तरह फैले अन्य मुस्लिम केन्द्र मानो अपने आप ही मुर्झा गए और नष्ट हो गए। तभी महाराणा की सहमति से राव जोधा ने मंडोवर के समीप ही वर्तमान जोधपुर की नींव (सन् १४५९) में तथा जोधा के एक बेटे ने सन् १४६५-७२ में अपने लिए एक नये राज्य बीकानेर की स्थापना की।[१]

महाराणा कुम्भा बड़ा ही विद्वान था। वह मराठी और कन्नड़ का अच्छा ज्ञाता था। उसने संगीत-रत्नाकर की रचना की जिसकी एक मात्र प्रति बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में है।उसके साथ कन्नड़ी टीका भी है।

इस प्रकार मध्य देश में तो इस्लाम का सर्वत्र बोलबाला रहा।तथा आक्रमणकारियों ने वहां की कला संस्कृति और प्राचीन साहित्यको पूरा पूरा ध्वंस किया। यही कारण है कि मध्य देशीय प्रान्तों की आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्यकी अद्यावधि कोई भी प्राचीनतम रचना १५वीं शताब्दी के पहले की उपलब्ध नहीं होती। बहुत सम्भव है कि वे सब नष्ट हो गई होंगी या यह भी सम्भव है किसी भंडार में दबी पड़ी हों जो कालान्तर में होने वाले शोध में उपलब्ध हों।

इन आक्रमणकारियों से खूब टक्कर लेने तथा उन्हें अपनी शक्तिभर जवाब देने में राजस्थान और गुजरात बराबर जूझते रहे। इसीलिए प्राचीन राजस्थान और गुजरात में आदिकाल की रचनाओं के साथ साथ संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश तक की कृतियां भी सुरक्षित रह सकीं। यहां के सुरक्षित जैन भंडारों ने उक्त तीनों भाषाओं के साथ साथ पुरानी हिन्दी के विपुल साहित्य से लेकर मध्यकालीन साहित्यतक की सैकड़ों हजारों और लाखों प्रतियों

१- हमारा राजस्थान पृ० ७३ श्री पृथ्वीसिंह मेहता।

की सुरक्षा की है। यहाँ तक कि जैन कवियों ने तो अपने काव्य के प्रभाव से इस्लाम शासकों तक को प्रभावित कर दिया था। आदिकाल की एक रास कृति अम्बदेवसूरि कृत समरा रास [१] में तो अलाउद्दीन के सेनापति अलपखान को रास के नायक समरसिंह ने बहुत अधिक प्रभावित कर संघ निकाला था तथा जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया था। इसी प्रकार ऐतिहासिक जैन संग्रह काव्य [२] में प्रकाशित अनेकों आदिकालीन ऐतिहासिक काव्यों में तत्कालीन बादशाहों पर जैन अजैन कवियों का प्रभाव देखा गया है। पेथड़रास [३] कच्छूलीरास [४] आदि में भी ऐसे ही वर्णन हैं। अतः ये प्रतियाँ अनेकों की संख्या में आज मिल रही हैं। विभिन्न इस्लाम शासकों से प्रभावित नागौर भंडार तो अभी तक बंद पड़ा है। बहुत सम्भव है कि उसकी शोध होने पर इस सम्बन्ध में और अधिक नये शातव्य सामने आवेंगे।

इस तरह १५०० ई० तक इस्लाम के इस फौजी शासन ने मध्यदेश दक्षिण गुजरात तथा राजस्थान को पदाक्रांत करके झकझोरा तो अवश्य परन्तु इसके पीछे भी इस्लाम धर्म के प्रचार की भावना कूट कूट कर भरी दिखाई पड़ती है। राजवंशों की पारस्परिक फूट, राजनैतिक चेतना की कमी, एकता का अभाव तुर्कों का सैनिक संगठन आदि सबने साहित्य धर्म तथा सांस्कृतिक मानदण्ड सम्बन्धी नये मूल्यों की स्थापना की। वास्तव में इन्हीं राजनैतिक परिस्थितियों ने हमारे देश की साहित्य, धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में नये चरण स्थापित किये हैं। अतः इस समस्त आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि में इस राजनैतिक संक्रान्ति का असाधारण योग है।

१- देखिए प्राचीन गूर्जर काव्य संग्रह: श्री सी०डी० दलाल पृ० २७।
२- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह : श्री अगरचंद नाहटा प्रकाशक नाहटा ब्रादर्स।
३- प्रा०गू०का०सं०, श्री सी०डी० दलाल, परिशिष्ट १०, पृ० ३४।
४- वही ग्रन्थ, पृ० ५१।

§ (ब) - धार्मिक परिस्थितियाँ §

आदिकाल(ई०१००० से १५०० ई०) में हमारे देश में प्रचलित धर्मों का विश्लेषण इस काल की रचनाओं को समझने के लिए परमावश्यक है। उक्त विभिन्न राजनैतिक परिस्थितियों ने हमारे देश में एक नये धर्म की सृष्टि की है। इस्लाम धर्म वास्तव में इन्हीं विदेशी आक्रमणों का परिणाम है। इसके पूर्व यहाँ अनेक धर्म प्रचलित थे। हमारा देश यों भी धर्मप्राण कहलाता है। अतः इसमें अनेक धर्मों के दर्शन एक ही साथ किए जा सकते हैं।

आदिकाल अर्थात् सं० १००० से १५०० तक हमारे देश में जो विभिन्न धर्म प्रचलित थे वे इस प्रकार हैं:-

१- बौद्ध धर्म

२- जैन धर्म

३- ब्राह्मण धर्म

४- इस्लाम धर्म।

(१)- बौद्ध धर्म:

बौद्ध धर्म इस काल में अधिक प्रगति पर नहीं था। इस काल के आरम्भ में यह धर्म मगध के बौद्ध भिक्षुओं और विद्यापीठों में ही था। ७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही इसकी जड़ें ढीली होने लग गई थी।८वीं शताब्दी में तो शंकराचार्य ने इसका खंडन कर वैदिक धर्म की स्थापना की। साथ ही बौद्धों की साधना और सदाचार में भी दोष आ गए थे। मठों, संघारामों और विहारों में युक्त बीज संबंध के ~~पोषक चक्र-~~संवर आदि देवता बनाये गए। उनके मंत्र, पूजा प्रकार, गुह्य समाज तथा स्त्री साधना में मद्य मैथुन को पूरा स्वातंत्र्य दिया गया। इस तरह अप्राकृतिक तत्वों के कारण लोग इसे ढोंग और ढकोसला समझने लगे। इधर इस्लाम के आक्रमण ने इसे पूर्ण

जर्जरित कर दिया। बौद्ध धर्म के मुख्य सिद्धान्त दो थे:-

१- चार आर्य सत्य

२- बारह प्रकार के प्रतीत्य - समुत्पाद

चार प्रकार के आर्य सत्य हैं:- दुख, समुदय, निरोध और प्रतिपद या मार्ग। तथा बारह प्रकार का प्रतीत्य समुत्पाद है: अविद्या, संस्कार, नामरुप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव जाति, जरा मरण और शोक। संसार के दुःख से मुक्त होना प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है। जीवन परिवर्तन की चार अवस्थायें हैं: उत्पाद, स्थिति, जरा और निरोध। यह सिद्धान्त बौद्धों का क्षणिकवाद है। आत्मा के सम्बन्ध में गौतम बुद्ध ने कुछ भी स्पष्ट नहीं किया।

इन सिद्धान्तों का कालान्तर में हीन यान और महायान शाखाओं में विभाजन हो गया। महायान अनेकों शाखाओंमें बटा। शून्यवाद, विज्ञानवाद, महासुख वाद आदि सब कमजोर होते गए। जनता को वज्रयान का शिल्प और भी घातक और घृणित लगा। यौगिक क्रियायें, महामुद्रायें, मंत्र सबसे इस काल में लोगों की आस्था हट गई। जितने बौद्ध धर्म के पवित्र सिद्धान्त थे वे इन भिक्षुकों और भिक्षुणियों द्वारा कलुषित होने लगे। श्री राहुल सांकृत्यायन ने बौद्ध धर्म के इस पतन का बड़ा ही रोमांचकारी यथार्थ वर्णन किया है- " बौद्ध धर्म ढलावली पर था उसकी भीतरी कितनी ही कमजोरियाँ उसके हित चिन्तकों को मालूम होने लगी थी।-- बौद्ध अब भारत की किसी सामाजिक समस्या का अपने पास हल नहीं रखते थे। अब उन्हें अपनी पुरानी कमाई को बैठकर खाना था। शासन पूरी तौर से ब्राह्मणों के हाथ में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चले गए थे। बौद्ध कभी कभी दिंग-नाग और धर्मकीर्ति के प्रौढ़ दर्शन को सामने रखकर लोगों की आँखों में चकाचौंध पैदा करना चाहते थे। कभी योग समाधि तंत्र, मंत्र, डाकिनी, शाकिनी के चमत्कार

वे लोगों को अपनी ओर खींचना चाहते थे। कभी सिद्धों के विचित्र जीवन और लोक भाषा की कविताओं को भी इस काम के लिए इस्तेमाल करते थे। मगर यह सब हवा में तीर चलाना था। अब भी बहुसंख्यक जनता की कितनी ही समस्यायें सामने थी लेकिन बौद्धों के मस्तिष्क और हथियार कुंठित हो चुके थे।-------- सरहप्पा का सहजयान तंत्र मन्तर, भूत, प्रेत, देवी, देवता सम्बन्धी हजारों मिथ्या विश्वासों और ढोंगों के पैदा करने का कारण बना। ये सारे मिथ्या विश्वासों और ढोंगों के पैदा करने का कारण बना। ये सारे मिथ्या विश्वास सारी दिव्य शक्तियाँ महमूद और मुहम्मद बिन बख्तियार के सामने थोथी निकली और तारा कुरुकुल्ला, लोकेश्वर और मंजु श्री के मन्दिरों और मठों में हजार हजार वर्ष की जमा हुई अपार सम्पत्ति अपने मालिकों और पुजारियों के साथ ध्वस्त हो गई। बौद्ध भिक्षुओं के रहने के लिए अब न कोई विहार रहा न उनके संरक्षक और पोषक सेठ सामन्त पहिली अवस्था में रहे, न साधारण जनता का विश्वास पूर्ववत् रहा तो उन्हें भारत में दिन काटना मुश्किल होने लगा।पश्चिम की धरती तो उनके हाथ से पहले ही निकल चुकी थी। लेकिन उत्तर (तिब्बत) पूरब (बर्मा, चीन) और दक्षिण (सिंहल) में अब भी उनके स्वागत करने वाले मौजूद थे। इस प्रकार बचे खुचे बौद्ध भिक्षु बौद्ध गृहस्थों के अगुआ० बाहर चले गए। भिक्षुओं के अभाव में गृहस्थ बौद्ध धर्म को भूलने लगे। और जिसकी जिधर सींग समाई, उधर चले गए। इस प्रकार नालन्दा विक्रमशिला के ध्वंस के बाद पांच ही पीढ़ियों में बौद्ध धर्म नाम शेष रह गया।[१] "

१- हिन्दी काव्य धारा , पृ० ३५, श्री राहुल सांकृत्यायन।

उक्त विवेचन से इस काल में बौद्ध धर्म के कालुष्य की सच्ची कहानी स्पष्ट होती है। आठवीं शताब्दी में बंगाल में पाल राजा इस धर्म को पालते रहे और कई वर्षों तक बिहार, बंगाल, उड़ीसा में बौद्ध विहार, मारण, उच्चाटन, मोहन तथा वशीकरण की विद्या के केन्द्र बने रहे। इधर ब्राह्मण धर्म ने इस धर्म की रही सही प्रतिष्ठा को भी धूल में मिला दिया। अतः बौद्ध धर्म का अपकर्ष ही इस आदिकाल की पृष्ठ भूमि में स्पष्ट होता है।

हां अपने पराभव काल में साहित्यिक क्षेत्र में बौद्धों का जो योगदान रहा, वह पर्याप्त महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। हारे और नष्टप्राय वर्ग के होने पर भी बौद्ध कवि साहित्य साधना द्वारा ही अपने ग्रुप और पतन का मानो बहिष्कारण करना चाहते हों। उस काल में रचित बौद्धों का साहित्य आदिकाल के पूर्वार्द्ध की सम्पत्ति है जिससे परवर्ती रचनाओं में प्रेरणा के रूप में देखा जा सकता है। भाषा की दृष्टि से बौद्ध आंदोलन का बड़ा महत्व है। बौद्धों ने जन साधारण की भाषा अपनाई। अतः संस्कृत के स्थान पर पाली प्राकृत में उन्होंने रचनाएं की। सरहप्पा और कण्हपा ने तो अपभ्रंश में साहित्य सृजन किया। उनका दोहा कोष अत्यन्त प्रसिद्ध है। लोक भाषा बौद्धों की सम्पति बन गई। परन्तु खेद है उनकी कविताओं का बहुत कम अंश हमारे पास बच रहा। उनकी सैकड़ों छोटी छोटी धार्मिक पुस्तकें ११वीं १२वीं सदी में किए गए तिब्बती भाषा के अनुवादों में मौजूद है मगर उससे भी अधिक संख्या उन पुस्तकों की रही होगी जो शुद्ध सांसारिक दृष्टि से लिखी गई थी। अतएव वह भारत से बाहर नहीं ले जाई गई और बौद्ध धर्म के साथ कहीं नष्ट हो गई।

वास्तव में बौद्धों कासाहित्यआज यदि रह पाता तो अपभ्रंश और मध्यदेश की विभाषाओं तथा पुरानी हिन्दी की अमूल्य निधि होती।

(२) जैन धर्मः

बौद्ध धर्म की भांति जैन धर्म भी आदिकालीन काव्यों की पृष्ठभूमि समझने में पर्याप्त सहायता करता है। जैन धर्म अपने सदाचार के कारण आठवीं सदी के राष्ट्रकूटों के समय से ही प्रगति पर था। गुर्जर सोलंकियों ने इस धर्म में अपूर्व योग दिया। लेकिन युद्ध प्रिय सामन्तों के कारण हेमचन्द्र जैसे विद्वानों को भी जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा को छोड़कर तलवार का गुण गान प्रारम्भ किया। इस्लाम के आक्रमण के समय जैन धर्म ने अपना स्वरूप बदला। पर व्यापारी वर्ग तथा कुछ श्रद्धालु श्रमिकों वैसे ही कट्टर बने रहे। राजाओं में ही नहीं जैनियों में कई वीर जाति के लोग भी थे जिनसे कभी यवन, शक, गुप्त भी हार मान बैठे थे।उदाहरणार्थ ओसवाल, अग्रवाल, आदि वे अब - व्यापारे वसति लक्ष्मी- को ही अपना मूल मंत्र मानने लगे। अनेकों मन्दिर बने आबू, जैसलमेर, बीकानेर पाटण तथा गुजरात के जैन तीर्थ एतदर्थ उद्धृत किए जा सकते हैं। बौद्धों की बिगड़ी साधना के कारण जैन मुनियों में भी निर्वाण कुमारी से पाणिग्रहण की भावना प्रकारान्तर से स्पष्ट होने लगी।

जैन धर्म के प्रमुख तीर्थंकर महावीर ने भी बुद्ध की तरह लोक भाषा प्राकृत और अपभ्रंश को अपनाया। अतः भाषा की दृष्टि से ये दोनों आंदोलन साहित्य में नये अध्याय का प्रारम्भ करते हैं। जैन धर्म इस काल में खूब फैला। श्वेताम्बर सम्प्रदाय राजस्थान तथा उत्तर भारत में औरदिगम्बर का प्रचार दक्षिण में खूब रहा। ब्राह्मण और वैष्णव जैन सब धर्मों के सिद्धान्त जोर पकड़ रहे थे। दक्षिण में चेर पाड्य चोल आदि राजाओं ने जैन धर्म को प्रश्रय दिया। अतः जैन कवियों की अनेक दिगम्बर रचनाएं तेलगू तामिल तथा विशेष रूप से कन्नड़ में मिलती हैं। क्या राजस्थान क्या गुजरात तथा क्या मध्यदेश सभी जैन कवियों की साहित्यिक सेवा से उपकृत हैं।

(२३)

जैन कवियों ने लगभग सभी प्रकार की साहित्यिक सेवा की है। इन्होंने अपभ्रंश साहित्य की रचना और उसकी सुरक्षा में सबसे अधिक काम किया। वे ब्राह्मणों की तरह संस्कृत के अंध भक्त भी नहीं थे। क्योंकि वशिष्ट विश्वामित्र की भाँति उनके मुनियों ने संस्कृत में ही नहीं प्राकृत में भी अपने अमूल्य ग्रन्थ लिखे थे। व्यापारी होने से बहीखाता तथा मातृभाषा में लिखने पढ़ने का ज्ञान होना उनके लिए बहुत जरूरी था। ब्राह्मणों की समाज व्यवस्था के साथ वे बँधे हुए थे। ब्राह्मणों के महाभारत पुराण तथा कथावार्त्ता का हर तरफ से प्रभाव पड़ना जरूरी था। क्योंकि वे समुद्र में बूंद की तरह थे। इस प्रकार जैन धार्मिक नेताओं के लिए यह जरूरी हो पड़ा कि अपने भक्तों को ब्राह्मणों का ग्रास बनने से बचाने के लिए अपने स्वतंत्र कथापुराण तैयार करें। व्यापारी से यह आशा नहीं रखी जासकती कि वह धर्म जानने के लिए कठिन कठिन भाषाएं सीखे। अतः जैनियों ने देश भाषा में कथा साहित्य की सृष्टि की। जिसके कारण स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे अनमोल अद्वितीय कविरत्न हमें मिले। उस साहित्य की रक्षा के लिए हम और हमारी अगली पीढ़ियां उन जैन नर नारियों की हमेशा कृतज्ञ रहेंगी, जिन्होंने इन अमूल्य निधियों को नष्ट होने से बचाया। याद रखिए इन अमूल्य निधियों में सिर्फ जैनियों के ही ग्रन्थ नहीं बल्कि अब्दुर्रहमान के संदेश रासक जैसे ग्रन्थ भी हैं।[१]

यही नहीं, जैन कवियों ने दार्शनिक सिद्धान्तों[२] की व्याख्या

१- हिन्दी काव्य धारा पृ० ३८ श्री राहुल सांकृत्यायन।

२- जैन दर्शन की विस्तृत व्याख्या अगले अध्याय के सिद्धान्त वाले पक्ष में की गई है। एतदर्थ देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ का तृतीय अध्याय।

(क) अध्याय - तृतीय तथा

(ख) विशेष विस्तार के लिए एतदर्थ देखिए जैन दर्शन :लेखक मुनि श्री न्यायविजय जी: प्रकाशक हेमचन्द्राचार्य जैन सभा: पाटण सन् १९५६।

के लिए अनेक ग्रन्थ लिखे किन्तु दार्शनिक ग्रन्थों के अतिरिक्त जैन आचार्यों ने व्याकरण, खगोल, गणित, राजनीति, आयुर्वेद और अलंकार ग्रन्थों पर भी ~~इन जैन कवियों ने~~ लिखा। बौद्धों की अपेक्षा में इस क्षेत्र में अधिक उदार है। प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश गुजराती, हिन्दी, राजस्थानी तेलगू, तामिल और विशेष रूप से कन्नड़ी साहित्य में भी उनका योग अत्याधिक है।[1] यही नहीं आदिकाल का इतना वैविध्यमय विपुल जैन साहित्य तत्कालीन प्रादेशिक भाषाओं की रचनाओं में सबसे अधिक है। अहिंसा ~~को मूल तत्व~~ के जैन धर्म ने हेमचन्द्र जैसे आचार्य प्रदान किए और इससे तत्कालीन खान पान तथा तप त्याग की भावना में भी पर्याप्त परिवर्तन हुए।

साहित्यिक दृष्टि से महाकाव्य रूपक काव्य, खंड काव्य, शृंगारिक तथा वीर काव्य ऐतिहासिक तथा नाटक चम्पू कोष, कथा काव्य सभी जैनाचार्यों की इस काल में देन है। रामायण पुराण और महाभारत के अनेक असत् पात्रों और असद् वृत्तियों के पात्रों को इन्होंने सद् पात्र तथा शान्ति प्रिय बनाया। लोक जीवन को ऊंचा उठाने इन्हें सदाचार और नैतिक निष्ठा के रास्ते चलाने वाला लौकिक तथा धर्म प्राण साहित्य इन कवियों ने रचा। गुजरात, मालवा तथा राजस्थान और मध्य देश में अनेक जैन केन्द्र इस तथ्य के ज्वलन्त उदाहरण है। यहाँ तक कि मुस्लिम संस्कृति को भी इन जैन कवियों ने प्रभावित किया। दक्षिण में भी जैन धर्म बना और उसमें साहित्य सृजन हुआ पर शैव धर्म ने इसको गहरा धक्का दिया। जैन धर्म व साहित्य की इस स्थिति को समझने के लिए अनेक विद्वानों ने इस पर प्रकाश डाला है।[2] वस्तुतः आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की सम्पन्नता के मूल में यही जैन साहित्य प्रेरणा के रूप में विद्यमान है।

१- हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० २२१-२५ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
२-(क) भारतीय संस्कृति पृ० २२० कुमारप्पा की जिनका? अंग्रेजी; प्रकाशक राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
(ख) हिन्दी काव्य धारा राहुल सांकृत्यायन(ग)जैन साहित्य की (?) डा०हरिवंश

(३) ब्राह्मण धर्म:

इस धर्म के हिन्दू धर्म, ब्राह्मण धर्म, वैष्णव धर्म, भागवत धर्म, आदि कई नाम है। सच तो यह है कि यह ब्राह्मण धर्म वासुदेव आन्दोलन का ही स्वरूप है। जहां तक इस धर्म के हिन्दू नाम का सम्बन्ध है यह नाम विदेशियों का दिया हुआ है। जैन और बौद्ध के धारा के अतिरिक्त वासुदेव आन्दोलन ने इस ब्राह्मण धर्म की नींव डाली। यह धर्म पूर्व और उत्तर भारत अर्थात् मध्यदेश में फैला। वैष्णवों और शैवों में भी मत भेद था। यों तो ब्राह्मण धर्म का उद्गम वैदिक काल में था परन्तु वैदिक काल के देवताओं -इन्द्र वरुण अग्नि आदि का स्थान ब्रह्मा विष्णु महेश ने लिया। धीरे धीरे शंकर के दार्शनिक सिद्धान्त ब्राह्मण धर्म की सम्पत्ति समझे जाने लगे। ईश्वर को समझने का मार्ग इसमें भक्ति मार्ग कहा गया। ब्राह्मणों की इस समय बन आई। मन्दिरों की प्रतिष्ठा बढ़ गई। उपासना भजन संकीर्तन आदि का खूब प्रचार हुआ। ब्राह्मणों ने बौद्धों के वाम मार्ग में भी साथ दिया। ब्राह्मणों द्वारा अद्वैत वाद का पोषण हुआ। राहुलजी के शब्दों में -ब्राह्मणों ने मिथ्या विश्वासों को फैलाने वयस्क मानवता को बच्चा बनाने के लिए पुराणों की रचना और कोलाहल को इसी काल में खूब बढ़ाया। बुद्धि रखने वालों पर हथियार नहीं चलता। इसीलिए इस युग में बुद्धि को खूब कुंठित में डालकर शंकर (७८८-८२०), श्री हर्ष (११८० ई०) जैसे दार्शनिकों ने मुंह में राम बगल में छुरी - वाला अद्वैत सिद्धान्त फैलाया।

कई राजाओं ने भी इस धर्म को प्रश्रय दिया। इस धर्मके विविध मार्गों में भक्ति मार्ग भी प्रमुख है। इस प्रकार भक्ति मार्ग से पुष्ट भागवत या वैष्णव सम्प्रदाय भी इस धर्म के गतिशील चरण के स्वरूप हैं। वैष्णव और शैवों की भिन्न भिन्न दार्शनिक धारणाओं ने परस्पर उलझन व भेद भावनाओं को जन्म दिया। भिन्न भिन्न देवी देवता हो गए।

कारण

शंकर ने आठवीं शताब्दी में नास्तिकता के विरुद्ध आन्दोलन में ज्ञान और अहिंसा को आधार भूत मानकर वैराग्य मार्ग का प्रतिपादन भिन्न भिन्न मूर्तियाँ ईश्वर की शक्ति का प्रतीक समझी जाने लगी। इस्ला के विजेताओं से मूर्ति की रक्षा करने के कारण इन ब्राह्मणों ने पूजा में आडंबर बढ़ाया। कर्म काण्ड चरम पर पहुँच गया। धर्म में बाह्याडंबर बढ़ा। संतों के विविध सम्प्रदाय इसी ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रियाके परिणाम हैं।

शैव सम्प्रदाय दक्षिण में अधिक फैला। वैष्णव सम्प्रदाय के साथ शैव सम्प्रदाय भी निरन्तर प्रगति कर रहा था। पुराणों का विकास हुआ।पुराणों ने सम्प्रदायों के धर्म ग्रन्थ का काम दिया। इष्ट देवता की भक्ति, पूजा आदि अत्यन्त विस्तार से करना पुराणों का मुख्य उद्देश्यबन गया। शिव, मत्स्य, गरुड़ भागवत आदि पुराणों द्वारा यह बातें स्पष्ट हो सकती हैं।

इतना होते हुए भी ब्राह्मण धर्म मूलतः कर्मकाण्ड ज्ञान दर्शन तथा ब्राह्माचार को ही प्रधानता देता था अतः जनता के लिए यह सहज ग्राह्य नहीं हो सका। ब्राह्मण शैव दोनों सम्प्रदायों ने यद्यपि बौद्ध और जैन धर्म को गहरा धक्का पहुँचाया पर ब्राह्मण धर्म का महत्व इसलिए अधिक कहा जायगा कि इसी की क्रोड़ से शैव सम्प्रदायों का जन्म हुआ। संतों ने इन भ्रमपूर्ण धाराओं के प्रतिकूल अपना आन्दोलन प्रस्तुत किया और भेद भाव मिटाकर परस्पर स्नेह, भक्ति, सौहार्द, और अन्त में परलोक वाद का उपदेश दिया। वास्तव में ब्राह्मण और शैव धर्मों के दर्शन की क्लिष्टता से जनता को शान्ति नहीं मिली और संतों का आंदोलन चला।

ब्राह्मण धर्म में अनेकानेक क्लिष्टता तथा भिन्नता तो थी परन्तु फिर भी उसमें एकता थी। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने मन के अनुसार देवताओं की पूजा कर सकता था। ब्रह्मा की मूर्ति, विशेष पूजा शक्ति पूजा कौलमत

१- मध्यकालीन धर्म साधना: आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ।

गणेशपूजा, पंचायतन पूजा, स्कंदपूजा, सूर्यपूजा, आदि इसी ब्राह्मण धर्म के कारण प्रारम्भ हुई।[२] कुमारिल भट्ट तथा शंकर के क्लिष्ट सिद्धान्त ऐसी स्थितियों में लोकप्रिय नहीं बन सके। इतिहास ब्राह्मण धर्म के इन प्रवृत्तकों पर सम्यक प्रकाश डालता है।[३] इस धर्म से ब्राह्मणों में अनेक गोत्रों और वर्गों का प्रादुर्भाव बढ़ा। यहाँ तक कि इन ब्राह्मणों का प्रभाव इतना बढ़ा कि विभिन्न जाति के लोगों क्षत्रिय वंश आदि की कन्याओं से विवाह करने तक का वर्णन मिलता है।[४] इतना होते हुए भी इन ब्राह्मणों ने अपने धर्म को सेक्युलर (Secular) बनाने का प्रयास किया। प्रसिद्ध इतिहासकार पं० गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ने लिखा है कि - " प्रत्येक व्यक्ति इच्छानुसार किसी भी देवता की पूजा कर सकता था। सभी देवता ईश्वर की भिन्न भिन्न शक्तियों के प्रतिनिधि थे। कन्नौज के प्रतिहार राजाओं में यदि एक वैष्णव था तो दूसरा परम शैव तीसरा भगवती का उपासक तो चौथा परम आदित्य भक्त।[५]

जो भी हो, ब्राह्मण धर्म ने इस प्रकार लगभग सभी को प्रभावित किया। आगे चलकर इसी का नाम हिन्दू धर्म पड़ गया। विदेशियों ने ही इसका नामकरण हिन्दू धर्म किया। भारतीयों को ये विदेशी शासक हिन्दू कहा करते थे। वस्तुतः हिन्दू किसी धर्म विशेष का नाम नहीं। यह परम्परागत भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रतीक है।[६]

इस प्रकार अपनी साधना विधि, दर्शन, कर्मकाण्ड तथा ज्ञान के सिद्धान्तों के कारण ब्राह्मण धर्म में क्लिष्टता बनी रही। और ~~इस-समय-विशुद्ध~~ नाथ, शैव,

---

२- देखिये मध्यकालीन भारतीय संस्कृति: पृ० १७-१८, द्वारा श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा: प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग, सन् १९२८।

३- सि०वि०वैद्य: हिस्ट्री आफ मिडिवल हिन्दू इण्डिया जिल्द २ पृ०२०१-१३।

४- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० ४९ श्री गौरी शंकर हीराचन्द ओझा।

५- वही ग्रन्थ, पृ० ५७

६- मध्यदेश : डा० धीरेन्द्र वर्मा: पृ० १०४।

आदि विभिन्न सम्प्रदायों की नींव पड़ी [1]। वास्तव में ब्राह्मण धर्म का महत्व इसी दृष्टि से अधिक है।

परवर्ती विभिन्न सम्प्रदाय:

ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया में संत और विविध भक्ति सम्प्रदायों का उदय हुआ। इन संत सम्प्रदायों में भी अनेक धार्मिक भावनाओं का मिश्रण था। विविध आन्दोलन हुए। नाथों ने संत सम्प्रदाय से योग और तप ग्रहण किया। उपनिषदों और वेदों की परम्परा सूफी मुसलमान फकीरों में एकेश्वरवाद बनकर सामने आई। दक्षिण भारत के वैष्णव आन्दोलनों ने भक्तिभाव को दृढ़ किया। बौद्ध जैन तथा इस्लाम धर्म से प्रभावित समाज में ऊँच नीच की प्रवृत्ति हटाने का काम संतों ने किया। इससे अनेक धार्मिक सम्प्रदाय बने वे संत सम्प्रदाय कहलाए। उच्च वर्ग के व्यक्तियों ने राम कृष्ण कृष्ण की भक्ति को अपनाया। साधारण पूजा समाप्त हुई और उसके स्थान पर आत्मसमर्पण और प्रेम की भावना रामानुज, वल्लभाचार्य आदि दक्षिण के चार संतों की देन है। रामभक्ति तथा कृष्ण भक्ति के केन्द्र बने। प्रचार हुए। राधावल्लभी सम्प्रदाय निरंजनी सम्प्रदाय तथा हरिदासी सम्प्रदाय इन्हीं प्रभावों के फल हैं। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म की क्लिष्टता को कम करने के लिए उक्त विभिन्न सम्प्रदायों को जन्म मिला।

(४) इस्लाम धर्म:

इस्लाम धर्म की स्थापना ७वीं शताब्दी में अर्थात् हर्षवर्धन के समय से हो चुकी थी। इस काल में अनेक राज्यों तथा राजपूतों ने इस्लाम स्वीकृत कर लिया था। साथ ही १२ और १३ शताब्दी में दिल्ली और कन्नौज जैसे शक्तिशाली राज्य भी इस्लामी झंडे के नीचे आत्म समर्पण कर चुके थे। ~~कई मुल्ला मुसलमान कम सब~~ मंदिर मूर्तियाँ तोड़ने और धन लूटने के कारण हिन्दू लोग इनसे भयभीत थे। बगदाद के खलीफों ने अनेक भारतीय विद्वानों को बुलाकर शोध लेकर उनसे भारतीय ग्रन्थों, गणित दर्शन, ज्योतिष, गणित, ज्योतिष के ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद कराये गए। इस्लाम का प्रचार इन कवियों मौलवी ख्वाजों द्वारा किया। जायसी कुतबन मंझन आदि इस्लामी कवि इस

१- अपभ्रंश साहित्य : पृ० १०-११ द्वारा श्री डॉ० हरिवंश कोछड़।

समूह के उदाहरण है। इन कवियों ने अपने धर्म प्रचार के लिए हिन्दुओं की प्रेम कथाओं को चुना। यो सामान्यतः इस्लाम में प्रेम को कोई स्थान नहीं। सिद्धान्ततः इस्लाम कट्टर तलवार पर आधारित है। मारो, काटो, और मुसलमान बनाओं ही इनका प्रमुख सूत्र था।

इस्लामी शासक गुणों के पारखी थे, कला-प्रेमी थे। दक्षिण की खड़ी बोली का प्राचीनतम साहित्य इस्लाम की ही देन है। मुस्लिम अरबों ने हिन्दुस्तान को स्वीकार ही नहीं किया बल्कि उन्होंने उसे इन्हें सारे यूरोप में प्रसारित भी किया। अपभ्रंश का संदेश रासक का रचयिता अब्दुलरहमान भारतीय आत्मा का प्रतीक है। संतों ने इस्लाम व वैष्णव धर्म में साम्य स्थापित किया। प्रेमाख्यानक कवि इस्लामी थे। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में मुस्लिम कवि खुसरो का नाम आता है। इन कवियों ने हिन्दी साहित्य में अनेक कथाओं के काव्य निर्मित किए हैं।

इस प्रकार आदिकाल की पृष्ठभूमि में वैविध्य प्रस्तुत करने वाले बौद्ध,जैन, ब्राह्मण तथा इस्लाम धर्मों ने एक शृंखला और संक्रांति प्रस्तुत की है। इन सभी सम्प्रदायों से साहित्य रचना में वैविध्य परिलक्षित होता है।

राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् अब देश की तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों का भी परिशीलन कर लिया जाय। तत्कालीन वैविध्यपूर्ण स्थितियों के लिए मूल तत्व के रूप में इन सांस्कृतिक परिस्थितियों का अध्ययन भी आवश्यक है।

(ख) <u>सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति (सांस्कृतिक परिस्थितियां)</u>:

आदिकाल की सामाजिक स्थिति का अनुमान उसकी राजनैतिक स्थिति को देखकर लगाया जा सकता है। इस काल की सामाजिक स्थिति को अस्तव्यस्त करने में सामन्तों, धनिकों तथा धर्माधिकारियों ने बड़े व्याघात पहुंचाए।

(१) <u>जाति व्यवस्था</u>:

प्राचीन वैदिक जाति व्यवस्था अब भिन्न भिन्न रूपों में परिवर्तित हो गई। जातियां विभिन्न पेशों के अनुसार अनेकों उपजातियों में विभक्त हो गई। ब्राह्मण ;

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रों में परस्पर ऊँच नीच की भावनायें बढ़ गईं। वैश्यवर्ग अधिक सम्पन्न होने लगा। परस्पर भेद भाव का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। सशक्त तथा सम्पन्न निर्बलों को दबाने लगे परन्तु इतना होते हुए भी लोग श्रुति सम्मत मार्ग पर चलते थे। चारों वर्णों में अपने अपने कर्म बंटे हुए थे परन्तु फिर भी ब्राह्मण क्षत्रिय - वैश्य आदि अपने निश्चित कर्मों से अन्य कर्मों में भी भाग लेते थे। यही कारण है कि राजपूतों में अनेक महापंडित तथा विद्वान हुए। धर्मों के अनुसार भी बौद्ध, जैन, इस्लाम, आदि अनेक जातियां बनीं। आठवीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी के इस काल में जातियों के अनेक भेद उपभेदों पर स्वर्गीय इतिहासकार ओझा जी ने प्रकाश डाला है। ब्राह्मणों में अनेक गोत्र हो गए थे। दीक्षित, रावत, पाठक, ठाकुर, उपाध्याय, ओझा, द्विवेदी, चतुर्वेदी, त्रिवेदी, दाधीच, गुर्जर, गौड़, सारस्वत आदि अनेक गोत्रों का उल्लेख मिलता है।[१] उनमें खान पान विवाह, आदि परस्पर कड़े नियम बन गए थे। क्षत्रियों में भी कई वर्ग हो गए ~~महाभारत में चन्द्र तथा सूर्य~~ वंशों का विस्तार है। वैश्यों में पशु पालन, व्यापार, दान, आदि का पेशा था पर कई वैश्यों का राजमंत्री, सेनापति, आदि बनने के भी उल्लेख हैं। पुरानी हिन्दी की रचनाओं में उदाहरणार्थ स्थूलिभद्र फागु में स्थूलिभद्र के पिता शकटार जैन होते हुए भी नंद के मंत्री थे। परन्तु इस जाति व्यवस्था में पारस्परिक भेद भावना से इस्लाम धर्म से टक्कर लेने की शक्ति ~~नहीं थी~~ और यही कारण है कि राजवंश हारते ही गए।

२- सामन्त:

आदिकालीन राज्यों में शासन सामन्तों के हाथ था। उनका वैभव सम्पत्ति का रूप ग्रहण करता गया। सामन्त पारस्परिक युद्ध, राजलिप्सा, द्यूत, सुरा, कामिनी तथा विलास में उत्तरोत्तर डूबते गए। ८वीं से १२वीं शताब्दी का सामन्त समाज अत्यन्त वैभवपूर्ण था। इन राजाओं के लिए अनेक नए उद्यान, उपवन, प्रासाद तथा हीरा मोतियों से जड़ी विविध वस्तुएं बनती रहती थीं। प्रजा का आर्थिक कोष इन्हीं के सुख में खर्च होता था। न्याय तथा शासन व्यवस्था भी इनके हाथ में थी। कन्नौज मान्यखेट, तथा पाटलिपुत्र के विलासपूर्ण वातावरण तत्कालीन राजाओं और सामन्तों के जीवन के ज्वलन्त उदाहरण हैं। राजाओं के लिए विदेशों से बहुमूल्य वस्तुओं का

संचय होता था। कई राजवंशों में चाटुकार हो गए थे, जो थोथी प्रशंसा कर करके राजाओं को अपने कर्तव्य से च्युत तक कर दिया करते थे। मध्यम वर्ग तथा शूद्र वर्ग से वे राजा बेगार लिया करते थे। इतना होते हुए इन तत्कालीन राजाओं एवं सामन्तों में अनेक राजा धर्म परायण तथा कर्तव्य प्रेमी थे। भोज मुंज, जगदेव, बीसलदेव आदि अनेक राजा विद्वान कवि तथा लेखक भी थे। उनके दरबारों में कई कला प्रेमी संगीतज्ञ चित्रकार कवि, विदूषक, मूर्तिकार, वास्तुकला प्रेमी तथा चाटुकार लोगों का भी स्थान था।

३- <u>दास दासी:</u>

राजाओं की सेवा के लिए अनेकों दास दासियाँ रखी जाती थीं। उनका जीवन स्वामी की सेवा के लिए बना था। उन्हें कुछ अधिकार नहीं थे। वे वाणी से मूक बना दिए जाते थे। और स्वामी तथा राजा सामंतों की जंगम सम्पत्ति बने हुए थे। यह प्रथा भारत में १२वीं शताब्दी तक प्रचलित रही। पुरानी हिन्दी की अनेक कृतियों में उदाहरणार्थ जम्बूस्वामी चरित, प्रद्युम्न चरित, विद्याविलास पवाड़ो सुदर्शन प्रबंध आदि में दास दासियों का वर्णन मिलता है।

४- <u>विवाह :</u>

बहु विवाह [1] राजवंश युग में बहुत प्रचलित था। कृष्ण के १६ हजार रानियां थीं। प्रद्युम्न ने अनेक स्त्रियों से विवाह किए। बहु विवाह करने वाले राजा, सामन्त और धनिक सेठ लोगों के आदर्श बने हुए थे। इन हजारों रानियों का जीवन विलास प्रधान हो गया तथा उनके खर्च का सारा प्रबन्ध जनता की गाढ़ी कमाई से शामिल था। राजा तथा सामन्तों में जिस किसी की कन्या सुन्दर होती उसके लिए परस्पर युद्ध होता था। क्षत्रियों में सुन्दरी जीवन का एक अंग बनी हुई थी। विवाह कभी कभी अनमेल भी होते थे। बाल विवाह की [2] प्रथा राजस्थान में आज भी खूब प्रचलित है। हिन्दुओं में विवाह एक संस्कार समझा जाता था पर उसमें किसी कठोर नियम का पालन नहीं किया जाता था।

१- सी०वी० वैद्य- हिस्ट्री आफ मिडीवल हिन्दू इण्डिया भाग २ पृष्ठ १८४-८५।
२- वही पृ० १९०।

आदिकालीन रचनाओं में विवाह की पद्धतियों का रुचिपूर्ण सामाजिक वर्णन मिल जाता है। उदाहरण जम्बूस्वामी का ८ धनिक कन्याओं से विवाह हुआ। प्रद्युम्न चरित में प्रद्युम्न तथा कृष्ण के अनेक रानियां थी। जिनदत्त ने अनेक कन्याओं से विवाह किया। ऐसे उदाहरण अनेक मिल जाते हैं।

५- आभूषण

आभूषण पहनने का शौक स्त्री तथा पुरुषों को खूब था। स्वयं राजा तथा सामन्त हीरा मोतियों से जड़े आभूषण पहनते थे। स्त्रियों के लिए तो बिना आभूषण रहने का प्रश्न ही नहीं था। आभूषण तो उनके सुहाग के अंग हो गए थे। साथ ही विवाह में दहेज प्रथा खूब प्रचलित थी। राजस्थान में यह प्रथा आज भी खूब है। रत्न हीरे मोती, घोड़े, हाथी, दास दासियां आदि दहेज में दिए जाते थे।

६- खान पान:

साधारण जनता का खानपान सामान्य था। राजवंश तथा सामन्त वर्ग का स्तर ऊंचा था। मद्यपान प्रचलित था। साधारण खान पान गेहूं, चावल ज्वार, बाजरा, दूध, घी, गुड़ और शक्कर था। राजवंश मांसाहारी थे। शूद्र तथा चांडाल भी मांसभक्षी थे। दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा मांसाहार कम था। ब्राह्मणों ने भी मांसखाना प्रारम्भ कर दिया था। वस्तुतः खान पान का प्रभाव जीवन के प्रत्येक कार्य पर पड़ता है। इतना होते हुए भी भारतीयों में अनेक शाकाहारी तथा पवित्र सात्विक भोजन करते थे।[2]

७- धनिक-

धनिक लोग सम्पत्ति का एकत्रीकरण तथा व्यवसाय करते थे। सेठों में नगर सेठ, दीवान मंत्री, आदि थे जिनका देश की सम्पत्ति पर पूरा अधिकार था। अनेकों धनिक लोग धर्म में तथा मन्दिर निर्माण में खूब रुपया खर्च करते थे। जैन धनिकों में विशेषकर मन्दिर निर्माण, जैन यात्रा वर्णन, मन्दिर जीर्णोद्धार, उत्सव आदि होते थे जिनमें करोड़ों रुपया खर्च होता था। पुरानी हिन्दी की ऐसी रचनाओं में रेवतगिरि रास, स्थूलिभद्र फागु, पेथड़ रास, समरा रास आदि कृतियों को उद्धृत किया

१- देखिए- गुजरातनी सांस्कृतिक स्थिति पृ० ५८, श्री कांतिलाल गुजराती, प्रकाशित।
२- देखिए- मध्य कालीन भारतीय संस्कृति पृ० ३६, श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

जा सकता है।

८- जुआ तथा वैश्या प्रथा:

तत्कालीन समाज में वैश्या प्रथा के भी कई उदाहरण मिल जाते हैं। समाज में अनेक स्त्रियाँ इस अनीतिपूर्ण पेशे से अपना जीवन चलाती थीं। सामन्त तथा धनिक वर्गों में जुआ खेला जाता था। पुरानी हिन्दी में ऐसी कृतियां मिलती हैं जिनमें जुआरियों तथा वेश्याओं का वर्णन है। उदाहरणार्थ चन्दनबाला रास में चंदन बाला को वैश्या के हाथ बेचा गया। स्थूलिभद्र रास और फागु में स्थूलिभद्र १२ वर्ष तक कोशा वैश्या के यहाँ पड़े रहे। जिनदत्त चउपई में जिनदत्त को सांसारिक कर्मों में डालने तथा स्त्री के काम मोह में फंसाने के लिए अनेकों बार उसके माता पिता ने वैश्यागामी तथा जुआरियों के पास भेजा। पंच पाण्डव चरित रास में भी जुआ वर्णन मिलता है। इस प्रकार के कई उदाहरण हैं।

९- युद्ध

सामन्तों को युद्ध विशेष प्रिय था। युद्ध में होने वाला अपव्यय दिग्विजय के लिए आवश्यक था। सुन्दर स्त्री तथा अटूट धन पर आक्रमण करने के लिए युद्ध करना राजवंश में सांस्कृतिक तथा पारिवारिक प्रधान नियम समझा जाता था। किसान, धनिक तथा दस्तकारों द्वारा उपार्जित धन राजाओं के युद्ध में व्यय होता था। युद्ध की इस प्रवृत्ति ने राजाओं की शक्ति को खोखला बना दिया था। वस्तुतः इसी कारण वे बाहरी शक्ति का सामना करने में असमर्थ रहे। सेठ तथा धनिक प्रायः युद्धों से दूर भागते थे। युद्ध से दूर भागने के लिए वैश्यों ने कृषि कर्म तक अपना लिया। ऐसा भी उल्लेख मिलता है।[1]

१०- जन साधारण-

जन साधारण का जीवन सुखमय नहीं था। उनकी अर्जित गाढ़ी कमाई को वे राजा और सामन्त खर्च करते थे। सभी सुखी सम्पत्ति सेठों के पास वैभव बन जाती थी। राजपुरोहित, सेठ, राजा, नवाब आदि अधिक सम्पन्न थे। सामान्य जनता अभाव से

१- सी०वी० वैद्य : हिस्ट्री आफ मिडीवल हिन्दू इण्डिया भाग २ पृ० १९०।

सदैव पीड़ित थी। जैन धनिक अपने धर्म प्रचार में खुलकर रुपया खर्च करते थे। अतः साधारण जनता के लिए जीवन स्तर का प्रश्न ही नहीं उठता था। इस प्रकार समाज की स्थिति कुल मिलाकर असन्तोषजनक थी।

आर्थिक स्थिति-

देश की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। सम्पत्ति तथा व्यापार के स्वामी सेठ तथा धनिक लोग थे। जैन धनिकों के पास अटूट सम्पत्ति थी विशेषकर वैश्य वर्ग अधिक सम्पन्न समझा जाता था। मध्य वर्ग तथा शूद्र वर्ग गरीब था, जिनके पास सम्पत्ति का अभाव सदैव देखा जाता था।

१- व्यापार -

देश में व्यापार खूब होता था। सेठों, तथा धनिकों ने अपने व्यापार की प्रवृत्तियों को खूब बढ़ाया। राजकीय पुरुषों के लिए बहुमूल्य चीजें बाहर से आती थीं। सेठ तथा व्यापारी वर्ग राजाओं को बहुमूल्य वस्तुएं उपहार स्वरूप देते थे। व्यापार के आकर्षण का केन्द्र सिंहलद्वीप बना हुआ था अतः जैन अजैन अनेक धनिक जहाजों पर माल लादकर अपने देश की चीजों को विदेशों में ले जाकर बेचते थे। तथा वहाँ से खूब धन कमाकर बारह बारह वर्षों तक देश लौटते थे। अन्तःपुर के लिए जो व्यापारी श्रेष्ठ उपहार लाता उसको राजा खूब प्रसन्न होते थे।

२- मंदिरों में धन का संग्रह:

मन्दिरों और देव पूजा गृहों में भी देवदासी प्रथा थी। स्त्रियों का व्यापार भी होता था। मन्दिरों में ईश्वर पूजा के नाम पर अटूट द्रव्य एकत्रित किया जाता था। सोमनाथ का मन्दिर तत्कालीन द्रव्य संचय प्रवृत्ति का प्रमुख उदाहरण है। पुरानी हिन्दी की रचनाओं में विद्युत विलास व्यापारों तथा जिनदत्त चउपई में जिनदत्त का व्यापार के लिए सिंहल जाना, हीरा मोती तथा जवाहरात लाना तत्कालीन व्यापार की स्थिति पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार आर्थिक विषमता के कारण देश को भयानक अकालों का भी कभी कभी सामना करना पड़ता था।

धर्म-

आदिकालीन सामाजिक स्थिति धर्म तथा राजनीति से आक्रान्त थी । देश

की यह स्थिति मुगलों के आक्रमणों तक रही। आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की अनेक कृतियों द्वारा तत्कालीन स्थिति का सही चित्रण प्रस्तुत किया जा सकता है। वास्तव में १०वीं से लेकर १५वीं शताब्दी तक की सामाजिक स्थिति का ढांचा सन्तोषजनक नहीं था। परन्तु इस विषम स्थिति ने देश में साहित्य निर्माण कराने तथा कलाकार उत्पन्न करने में बड़ी सहायता की। उपदेश प्रधान धर्म, बौद्ध तथा जैन साधु नगर नगर धर्म तथा सदाचार प्रचार कर रचनाएं करते थे। इसी प्रवृत्ति ने आगे चलकर भंडारों के निर्माण तथा रक्षा में योग दान दिया। परवर्ती हिन्दी साहित्य में उपदेशक संतों की उद्भावना के मूल में यही उपदेश काम कर रहे होंगे। वास्तव में तत्कालीन समाज का प्रत्येक क्षेत्र प्रत्याशित सामाजिक क्रान्ति का विषय था। इस्लाम और मुगलों ने इस सामाजिकता में अपने आक्रमणों द्वारा विविध परिवर्तन किए।जिससे साहित्य रचना पर भी प्रभाव पड़ा। हिन्दू समाज आक्रांताओं से बराबर टक्कर लेता रहा। समाज ने विदेशियों की संस्कृति का दृढ़ता से सामना किया।

(द) <u>सांस्कृतिक स्थिति:</u>

संस्कृति में धर्म समाज, कला और सभ्यता इन तत्वों का समावेश किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति पर समय समय पर यद्यपि विविध आक्रमण होते रहे, परन्तु फिर भी हमारे देश की संस्कृति अविच्छिन्न रह सकी। यह भारत के ही नहीं संसार के इतिहास में भी महत्वपूर्ण स्मरणीय घटना है।

<u>चित्रकला-</u>

आदिकाल के पूर्व की सांस्कृतिक स्थिति पर्याप्त प्रगति पर थी। क्या चित्र कला, क्या संगीत कला क्या मूर्ति और वास्तुकला सभी खूब प्रगति पर थे। राजा और सामन्तों का यह तत्कालीन कला प्रेम दृष्टव्य है। देश की संस्कृति की रक्षा करने में सच तो यह है कि इन राजाओं ने अभूतपूर्व योग दिया। गुप्त काल संस्कृति के उत्थान से स्वर्णयुग कहा गया। इसके पश्चात् भी गुजरात तथा राजस्थान के राजाओं ने इन उपयोगी तथा ललित दोनों कलाओं को पूर्ण प्रगति पर पहुंचाया। १०वीं शताब्दी के पश्चात् इन कलाओं का ह्रास हुआ। इस्लाम ने शिल्प की सौन्दर्यमयी अनेक मूर्तियों

को मगुन कर डाला। मूर्तिकला के इस क्रमिक विकास पर राहुलजी के ये विचार उल्लेखनीय है - " सातवीं सदी तक पूर्व अर्जित मान बना रहा। आठवीं नवीं सदी में कुछ ह्रास जरूर होने लगा। लेकिन पूरी तौर से १०वीं शताब्दी में दिखाई पड़ता है खासतौर से यह बात चित्र और मूर्तिकला के बारे में बहुत देखी जाती है। दसवीं शताब्दी और उसके बाद की मूर्तियाँ बिल्कुल ही बदसूरत और भाव शून्य हैं। वैसे तो तीर्थंकर की मूर्तियों को बनाने में कलाकार बेगार सी टालते दीख पड़ते थे। पांचवीं छठी, सातवीं शताब्दी की कुछ बुद्ध मूर्तियां बड़ी सुन्दर हैं। मगर आठवीं शताब्दी के बाद तो बुद्ध और तीर्थंकरों की मूर्तियां निरी पाषाण ही रह गई हैं। हां बोधि सत्वों और तारा की मूर्तियां नवीं दसवीं शताब्दी में उतनी बुरी नहीं दीख पड़ती। बल्कि कोई कोई तो बहुत ही सुन्दर हैं। खासकर के कुर्किहार की आठवीं नवीं सदी की कितनी ही पीतल की मूर्तियां बहुत सुन्दर हैं। दसवीं ग्यारवीं शताब्दी के कुछ चित्रपट तिब्बत में मौजूद हैं। लद्दाख और स्पिति के बौद्ध मठों में कुछ भित्ति चित्र भी बहुत अच्छे हैं लेकिन १०वीं ११ वीं शताब्दी के जो चित्र जैन और बौद्ध ताल पोथियों पर मिले हैं वे जरूर भद्दे हैं।-- देलवाड़ा के जैन मन्दिरों में संगमर्मर पर खुदे कमल मधुच्छत्र बहुत सुन्दर है। यद्यपि उनमें अलंकरण की मात्रा जरूरत से ज्यादा दीख पड़ती है जिससे गुप्त कालीन सादे सौन्दर्य की उनमें कमी है।तो भी संगमर्मर को मोम या मक्खन की तरह अपनी छिन्नियों से काट कर कलाकार ने जो कौशल दिखाया है वह सराहनीय है। लेकिन उसी पत्थर में जो मूर्तियां बनी हैं उनसे विश्वास ही नहीं होता कि उतने सुन्दर कमल और मधुच्छत्र बनाने वाले हाथ इतनी भद्दी मूर्तियां भी बना सकते हैं। १२वीं सदी के बाद तो एक तरह चित्र और मूर्ति कला का दिवाला ही निकल जाता है।"[1]

राहुल जी के इस कथन के बावजूद भी अनेक जैन मन्दिरों में १२वीं शताब्दी के बाद की बनी मूर्तियों में सर्वोच्च कलात्मकता मिलती है।जैसलमेर बीकानेर तथा पाटन

१- हिन्दी काव्य धारा, पृ० ४३ श्री राहुल सांकृत्यायन।

के जैन मन्दिरों से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है। दक्षिण के श्रवण बेलगोला में बाहुबली की मूर्ति आदि को पतक्षं उद्धृत किया जा सकता है। इन मन्दिरों की मूर्तियों को गजनवी, खिल्जी आदि इस्लामी आक्रमण कर्त्ताओं ने खूब ध्वस्त किया। मूर्ति कला के साथ साथ जैन भवन निर्माण कला का भी विशिष्ट महत्व है। राजस्थान तथा गुजरात [१] में इस कला का वैचित्र्य अनेक जैन तीर्थों और मन्दिरों में देखने को मिलता है, जिस पर विद्वानों ने पर्याप्त प्रकाश डाला है।[२] इन मन्दिरों में स्थित जैन सरस्वती तथा विभिन्न जैन देवी देवताओं की मूर्तियां भी सुन्दर है जिन पर डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह उपनिर्देशक ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट बड़ौदा का एक विस्तृत शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है। परन्तु यह स्पष्ट है कि मूर्ति कला में अपेक्षाकृत वह प्रगति नहीं मिलती जो पहले थी। आदिकालीन हिन्दी जैन कृतियों में कहीं भी मूर्तिकला का अद्यावधि कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं मिलता ।

संगीतः

संगीत की इस काल में पर्याप्त प्रगति हुई। नृत्य भी अपनी प्रगति पर था। सामन्त वर्ग के दरबारों में संगीत नृत्य तथा कामन्य आवश्यक समझे जाते थे। अपभ्रंश ने संगीत के विकास नये चरण प्रस्तुत किए।वेश्याओं में संगीत नृत्य प्रधान था। परन्तु संगीत के लोकात्मक स्वरूप में अत्यधिक प्रगति हुई। अपभ्रंश ने यह रास्ता खोला। अनेक राग रागनियों का निर्माण हुआ। तत्कालीन गुजरात के कुछ मुस्लिम शासकों- सुल्तान महमूद, सुल्तान बहादुरशाह, महमूद बेगड़ा आदि ने भी संगीत में पूर्ण योग दिया।आज भी मुस्लिम घरानों में संगीत और नृत्य के रचक अनेक प्रसिद्ध गायक मिलते हैं। राजस्थान के शासकों में भी संगीत और नृत्य का राजस्थानी स्वरूप सुरक्षित है।इन दोनों प्रदेशों के अतिरिक्त दक्षिण के तत्कालीन शासकों ने भी इसकी प्रगति में पूर्ण योग दिया।

आदिकालीन हिन्दी जैन रचनाओं में १२वीं से १५वीं शताब्दी तक अनेक संगीत

१- गुजरातनी सांस्कृतिकस्थिति, पृ० १०१- श्री फार्बस गुजराती सभा त्रैमासिक

२- गुजरात नो सांस्कृतिक इतिहास भाग १-२।श्री रत्नमणिराव भीमराव जोटे प्रकाशक गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी, अहमदाबाद।

प्रधान रचनाएं मिल जाती हैं। जिनका देशी स्वरुप, संगीत की देशी छन्द प्रधान ढालें ताल मात्राओं से समन्वित विभिन्न देशी रागों के विकास में आदिकालीन रचनाओं ने महत्वपूर्ण योग दिया है। इन रचनाओं पर विस्तार में प्रकाश प्रस्तुत ग्रन्थ के छंद सम्बन्धी अध्ययन के अध्याय में डाला गया है। इन रचनाओं में प्रधान हैं- रेवंतगिरि रास जिनपति सूरि धवलगीत, विद्या विलास पवाड़ो, खरतर गच्छ पट्टावली, विराट पर्व, रंगसागर नेमि फागु, चर्चरी तथा त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध।

इस प्रकार संगीत कला की प्रगति में आदि कालीन उत्तर अपभ्रंश की रचनाओं ने पर्याप्त योग दिया है। सामन्तों की राजसिक तथा विलास की प्रवृत्ति से कुछ नूतन कलाएं भी पनपी जिनमें रनिवासों की चित्रकला, जल क्रीड़ा के विविध आयोजन, नाट्य रचना, स्नान मंडप स्तंभकला का सामन्तों के विशाल प्रसादों में यह निखार देखा जा सकता है।

संस्कृति का सामाजिक स्वरुप-

सामाजिक तत्वों का सांस्कृतिक विश्लेषण भी तत्कालीन कृतियों का प्रमुख योगदान है। संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश के ग्रन्थों में हमारे सांस्कृतिक विविध उत्सवों का उल्लेख है। हमारे देश के भारतीय उत्सव हमारी संस्कृति के प्राण हैं। वैवाहिक प्रथाओं में मांगलिक उपहार, मंगल कलश राजाओं का नगर की बालाओं द्वारा स्वागत, बरात वर्णन, विवाह में नमक आदि उतारना फागु रास तथा चच्चरी अभिनय गान इन सांस्कृतिक उत्सवों, त्योहारों और पर्वों के प्रतीक हैं। वसंतोत्सव तथा विविध लोकोत्सव समारोहों को भी विस्मृत नहीं भुलाया जा सकता।

भारतीय संस्कृति में मठों का महत्व परिवारों में अतिथि का सत्कार आदि अनेक सांस्कृतिक प्रथाएं हैं जिनका खुलकर वर्णन हिन्दी जैन कवियों ने भारतीय संस्कृति की अक्षुण्णता के स्पष्टीकरण के लिए किया है। रास, फागु, चर्चरी तथा गीत स्तवन संज्ञक अनेक रचनाओं का सहर्ष उल्लेख किया जा सकता है।

(ब) साहित्यिक परिस्थितियां:

परम्परागत साहित्य-

भारतीय साहित्य की परम्परा संस्कृत से ही प्रारम्भ होती है। इस विशाल परम्परा में संस्कृत के बाण हर्ष, अश्वघोष भास, कालिदास, भवभूति आदि प्रमुख हैं।

साहित्य की यही परम्परा प्राकृत तथा अपभ्रंश में अक्षुण्ण रही है। अपभ्रंश काल भी साहित्यिक दृष्टि से बड़ा सम्पन्न रहा। स्वयंभू, धनपाल, पुष्पदन्त, हेमचन्द्र, भोज, मुंज, कुमारपाल, सरहपा, विद्यापति आदि महान साहित्यकारों को नहीं भुलाया जा सकता। वस्तुतः आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की परम्परा और पृष्ठ भूमि के रूप में प्राप्त तत्कालीन अपभ्रंश के महान साहित्यकारों और उनके रचित साहित्य का बल प्राप्त है। ज्यों ज्यों बोल चाल की भाषायें व्याकरण के नियमों में बंधती गईं त्यों त्यों उनमें साहित्य सृजन बढ़ता गया और जन साधारण की भाषायें उनका स्थान ग्रहण करती रहीं। अपभ्रंश का यह साहित्यिक प्रवाह विभिन्न प्रकार की साहित्यिक धाराओं में परिलक्षित होता है। अतः यह सारी साहित्यिक स्थिति संक्रान्तिकालीन है। सिद्ध नाथों का साहित्य, अपभ्रंश कवियों का साहित्य तथा तत्कालीन अजैन कवियों का साहित्य ध्रुव प्रगति पर था। इन सबके इस संक्रान्तिकालीन स्वरूप में पुरानी हिन्दी के इस साहित्य का स्थान निर्धारण अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। वास्तव में अपभ्रंश की यह निधि पुरानी हिन्दी को वसीयत के रूप में मिली है। इस पर पर्याप्त प्रकाश प्रस्तुत ग्रन्थ के अपभ्रंश साहित्य सम्बन्धी परिचय तथा विश्लेषण करने वाले अध्याय में डाला जा चुका है। यहाँ पृष्ठ भूमि के रूप में तत्कालीन प्राप्त साहित्य का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। वास्तव में बुद्ध जैन तथा ब्राह्मण सुधार आन्दोलनों का विशेष महत्व साहित्यिक दृष्टि से अधिक है। ९वीं दसवीं शताब्दी के मध्यदेश के साहित्य पर यदि विचार किया जाय तो हमें सर्व प्रथम सिद्धों और नाथों की अपभ्रंश लिखित कृतियाँ मिलती हैं। दक्षिण मध्यदेश, और गुजरात में भी जैन कवियों की प्राकृत तथा अपभ्रंश लिखित रचनायें पाते हैं। पश्चिमी मध्यदेश में इस समय के भाषा तथा साहित्य की क्या स्थिति थी इसका भी ठीक ठीक पता नहीं चलता। कन्नौज के दरबार में साहित्यिक भाषा संस्कृत ही थी परन्तु उसमें भी देश भाषा के कुछ कवि थे। प्राकृत अपभ्रंश साहित्य में ८वीं से १२वीं शताब्दी तक अनेक विभिन्न महान साहित्य कार उद्योतन सूरि स्वयंभू, धनपाल, त्रिभुवन, स्वयंभू, पुष्पदंत हेमचन्द्र, देवसेन विद्यापति आदि अनेक प्रसिद्ध काव्यकार हो चुके हैं।

१२वीं शताब्दी की प्राप्त अजैन रचनाओं में हिन्दी की तीन कृतियाँ प्रमुख रूप में मिलती हैं:-

१- बीसलदेव रास (अजमेर)

२- पृथ्वीराज रासो (दिल्ली)

३- आल्हा खंड (महोबा)

परन्तु इन ग्रन्थों की परंपरा अनुश्रुति बद्ध थी अतः इसमें अनेक परिवर्तन होते रहे।

सिद्धनाथ साहित्य-

बुद्ध धर्म ने सिद्धों और नाथों की रचनाओं को बल प्रदान किया। महात्मा बुद्ध तथा महावीर ने जन भाषा में अपने उपदेश दिए। गीतिकाव्य उनका माध्यम रहा। अतः उनके प्रचार में सरलता बनी रही। साथ ही इनमें दार्शनिक क्लिष्टता भी अधिक नहीं थी। साथ ही साथ राजनीति की विविध करवटों ने भीभक्ति साहित्य को बल दिया। अतः १४वीं १५वीं शताब्दी में भक्ति के ये विविध सम्प्रदाय बने जो आज तक मिल जाते हैं।

मध्य देश के १३वीं से १५वीं शताब्दी की प्रामाणिक प्राप्त साहित्यिक रचनाओं पर हुईशोध में अद्यावधि कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हुई। बहुत सम्भव है भौगोलिक वातावरण, आक्रमणकारियों के हमलों तथा शासन और कृतियों की सुरक्षा की परम्परा दुर्बल होने से ही तत्कालीन साहित्य नष्ट भ्रष्ट हो गया हो।

इतर साहित्य-

१३वीं शताब्दी के बाद तो हिन्दी साहित्य में संतों तथा भक्तों की परम्परा मिल जाती है। इस परम्परा का साहित्य भी हिन्दी की विविध बोलियों में लिखा गया है। रामचरित मानस और प्रेमाख्यान आदि की सम्पत्ति हैं। कृष्णकाव्य ने ब्रज को माध्यम बनाया। अन्य प्रादेशिक भाषाओं में प्राचीन राजस्थानी और पूर्वी गुजराती तथा मैथिली के साहित्य का सहारा मिलता है। दक्षिण में हिंदवी (प्राचीन मराठी बोली) की कुछ मुसलमान कवियों की रचनाएं मिलती हैं। रचनाओं की ऐसी आवागमन उपलब्धियों में अनेक विद्याप्रेमी, भोज, मुंज, कुमारपाल, सिद्धराज, वस्तुपाल, जयंतम, पृथ्वीराज तथा कुंभा आदि राजस्थानी और गुजराती राजाओं तथा

कलभी पाटण अनहिलवाड, आबू, अजमेर, दिल्ली, जयपुर, नागौर आदि विविध नगरों का महत्व है।

निष्कर्ष-

इन्हीं परिस्थितियों में आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की स्थिति पर विचार किया जा सकता है। वस्तुतः इस स्वतोव्यापारों के आदिकाल (१०००- १५०० ई० के इस उपलब्ध हिन्दी जैन साहित्य का अध्ययन, उसकी पृष्ठ भूमि सेप्राप्त जैन अजैन रचनाओं की मुख्य प्रवृत्तियों तथा समसामायिक विवेच्य परिस्थितियों के अध्ययन से किया जा सकेगा।

। अध्याय - ३ ।

। जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त: उनका प्रचार और प्रति-पादन ।

---:००:---

-:: जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त: उनका प्रचार और प्रतिपादन ::-

--::००::--

आदिकालीन हिन्दी जैन कृतियों के शिल्प का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन रचनाओं में जैन धर्म प्राणधारा के रूप में विद्यमान है। जैन धर्म के प्रचार प्रसार तथा जीवन में सदाचार का मूल्य समझने और उसे जनता के सामने रख कर उसमें घुलजाने के लिए ही इन जैन कवियों ने इस विशाल साहित्य का सृजन किया है, तथा प्रकारान्तर से जैन धर्म और दर्शन के सिद्धान्तों को जनता तक पहुंचाया है। अतः इन रचनाओं के मूल में प्रेरणा के रूप में विद्यमान जैन धर्म तथा उसके प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय कर लेना परमावश्यक है।

संक्षेपमें जैन धर्म और उसके दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय इस प्रकार है:-

।जैन धर्म का उद्भव और विकास।

आरम्भ काल:

जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन धर्म है। जैन धर्म के २४वें तथा अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी से भी २०० वर्ष पूर्व होने वाले श्री पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक महापुरुष मान लिया गया है।[१] कई पहले जैन धर्म को बौद्ध धर्म की एक शाखा मात्र ही मान लिया गया है पर अब इस भ्रान्ति का निराकरण हो चुका है। अतः इस दृष्टि से जैन धर्म का आरम्भ काल ८०० वर्ष ई० पूर्व मान लिया गया है। पर डा० हर्मन जेकोबी[२] और

१- There can no longer be any doubt that Parshva was a historical personage. According to Jain tradition he must have lived a hundred years and died 250 years before Mahavir. His period of activity therefore corresponds to the 8th century B.C.
डा०जेकोबी-इन्ट्रोडक्शन टू पसे आफ् जैन बिब्लिओग्राफी।

२- "There is nothing to prove that Parshva was the founder of Jainism. Jain tradition is unanimous in making Rishabha the first Tirthankar (as its founder) there may be some thing historical in the tradition which makes him the first Tirthankar1. See - Indian Antiquary Volume IX. page 162-163.

डा० राधाकृष्णन[१] का जैन धर्म के प्रथम संस्थापक के लिए मतैक्य नहीं है। एक पार्श्वनाथ को मानते हैं तथा दूसरे रिषभ देव को, पर आज अधिकतर जैनी रिषभदेव को ही यह मान्यता देते हैं। रिषभदेव से महावीर तक जैन धर्म भारत के विभिन्न प्रदेशों में विद्यमान था परन्तु इस धर्म ने अधिक ज़ोर अन्तिम तीर्थंकर स्वामी महावीर से ही पकड़ा। बौद्ध धर्म की भांति जैन धर्म भी राजाओं द्वारा सम्मान प्राप्त करता रहा। जैन तीर्थंकरों में सबसे प्रसिद्ध तीर्थंकर रिषभदेव, पार्श्वनाथ और नेमिनाथ, तथा महावीर ही माने जाते हैं जिन पर अनेक काव्य रचे गए हैं। कवियों ने इन्हीं तीर्थंकरों को अपने काव्यों का विषय बनाया है। महावीर का प्रादुर्भाव बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध के साथ ही हुआ, अतः दोनों धर्म समान रूप से प्रगति करते रहे। यों सिद्धान्त रूप में भी दोनों धर्मों में पर्याप्त समानता रही है। महावीर से पहले हुए २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ पर हिन्दी जैन काव्यों में फागु रासु चरित प्रबन्ध आदि अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं। महावीर का जन्म ६०० ई० पू० बिहार प्रान्त में हुआ। ३० वर्ष की अवस्था में ये वीतरागी हो गए। महात्मा बुद्ध ने और महावीर ने लगभग एक ही अवस्था में संसार त्याग किया। संसार का दुख तथा प्राणि मात्र की पीड़ा का निराकरण उनके प्राणों में गहरी प्यास बनकर समा गया था। १२ वर्ष के कड़े तप के पश्चात् उन्होंने आत्म शुद्धि को समझा। तीस वर्ष तक महावीर ने अनेकों उपदेश दिए। उनके उपदेश व्याख्यान समवसरण कहलाते थे। जाति भेद की बात तो दूर, उनके उपदेशों से पशु भी पूर्णतया प्रभावित थे।

१— (i) There is evidence to show that so far back as the first century B.C. there were people who were worshiping Rishabhdeo the first Tirthankar. There is no doubt th t Jainism prevailed even before Vardhamana or Parasnath. The Yajurveda mentions the names of three Tirthankars- Rishabha, Ajitnath and Aristhanemi. The Bhagwata Puran endorses the views that Rishabha was the founder of Jainsim - See Indian Philosophy Vol. I page 285.

(ii) Jainism prevailed even before Vardhamana (Mahavira) or Parshva Nath. The Yajurveda mentions the names of three Tirthankars Rishabha Ajit Nath and Aristhnemi - See Indian Philosophy Vol. I page 287 by Dr. S. Radhakrishnan

अनेक राजवंशों ने जैन धर्म को माना। महावीर के पश्चात् जैन धर्म के तीन सम्प्रदाय हो गए। श्वेताम्बर, २- दिगम्बर, ३- यापनीय। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अधिकतर अनुयायी उत्तर प्रदेश, राजस्थान और गुजरात के प्रदेशों में हैं तथा दिगम्बर सम्प्रदाय दक्षिण में अधिक फैला। आंशिक रूप में दिगम्बर सम्प्रदाय के कुछ अनुयायी राजस्थान में भी मिल जाते हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के साधुओं ने प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती अथवा उत्तर अपभ्रंश में अधिक काव्य रचना की है तथा दिगम्बर सम्प्रदाय वाले साधुओं ने हिन्दी भाषा में काव्य रचना की। तीसरा सम्प्रदाय यापनीय सम्प्रदाय है। यद्यपि यह सम्प्रदाय दिगम्बर सम्प्रदाय से अधिक मिलता है परन्तु इसके मानने वालों की संख्या बहुत कम है। अपभ्रंश के महाकवि स्वयंभू भी इसी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में दिगम्बर मत से पर्याप्त साम्य है।

:जैन धर्म को राज्याश्रय:

१- बिहार में जैन धर्म:

उत्तर भारत में सातवीं शताब्दी तक जैन धर्म का खूब प्रचार रहा। मगध के महाराज नंद के मंत्री शकटार जैन धर्म के अनुयायी थे। शकटार का पुत्र स्थूलिभद्र जैन विख्यात शलाका पुरुषों में से एक है जिस पर अनेक रास, फागु प्रबन्ध और चरित काव्य लिखे गए हैं। मगध का राजा श्रेणिक (बिंबिसार) उसका लड़का अजातशत्रु (कुणिक) भी जैन धर्म को मानते थे। वैशाली का शासक चेटक जैन धर्म का बहुत प्रेमी था। डा० याकोबी का कथन है कि - चेटक जैन धर्म का महान आश्रयदाता था। इसके कारण वैशाली जैन धर्म का एक महान केन्द्र बना हुआ था। इसी से बौद्धों ने उसे पाखंडियों का गढ़ बतलाया है। इस तरह मगध में अजातशत्रु (५५२-५१८ ई० पूर्व) लगभग ई० पूर्व ३०६ वर्ष सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य आदि ने इस धर्म की प्रगति में बड़ा योग दिया। चन्द्रगुप्त स्वयं जैन थे ऐसा विद्वानों का मत है।[1] इसी प्रकार सम्राट

१- देखिए जरनल आफ दी रॉयल सिरीज में श्री जैचन्द का मत- लेख संख्या ८

अशोक के लिए भी - देवनाम् प्रियदर्शी - से स्पष्ट होता है कि वह पहले जैन धर्म का उपासक था फिर बौद्ध हो गया।[१] अशोक का पौत्र सम्प्रति भी उज्जैन में जैन धर्म में दीक्षित हो गया था।[२]

२- उड़ीसा में जैन धर्म:

उड़ीसा में जैन धर्म का महान उपासक कलिंग का राजा खारवेल था। प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसांग कलिंग देश को जैनियों का मुख्य स्थान कहता है। इससे स्पष्ट होता है कि खारवेल के बाद भी अनेक वर्षों तक जैन धर्म कलिंग में बना रहा। खारवेल पूरी तरह से जैन था। खारवेल के बाद ऐसा प्रतापी राजा अन्य नहीं हुआ। उसने भारत भर के जैन यतियों, जैन तपस्वियों, जैन ऋषियों और पंडितों को बुलाकर एक धर्म सम्मेलन किया। जैन संघ ने खारवेल को -महाविजयी - की पदवी के लिए "क्षेम राजा" "भिक्षुराज" और "धर्म राजा" की पदवी दी।[३] इस तरह जैन धर्म को उड़ीसा में बड़ा प्रश्रय मिला।

३- बंगाल में जैन धर्म:

बंगाल में भी जैन धर्म की प्रगति का इतिहास मिल जाता है। मानभूम, वीरभूम और वर्द्धमान आदि वहां के जिलों के नाम करण महावीर तथा वर्द्धमान के आधार पर ही हुए हैं। सुन्दर वन में कई जैन मूर्तियां मिली हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि - परीक्षा करने से बंगाल में धर्म में, आचार में और व्रत में जैन धर्म का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैनों के अनेक शब्द बंगाल में प्रचलित हैं। प्राचीन बंगाली लिपि के बहुत से अक्षर विशेष तौर से युक्ताक्षर देवनागरी के साथ नहीं मिलते, परन्तु प्राचीन जैन लिपि से मेल खाते हैं।[४]

१- इण्डियन एण्टीक्वेरी जिल्द ५ तथा जर्नल आफ दी बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी जिल्द ३।

२- भारतीय इतिहास की रूपरेखा - पृ० ५१५-१६।

३- जैन धर्म, पृ० ३८, पंडित कैलाशचन्द्र शास्त्री प्रकाशक भारतीय दि० जै०संघ।

४- विश्व वाणी, जैन संस्कृति अंक पृ० २०३-२०४।

४- राजस्थान में जैन धर्मः

अशोक के पहले से राजस्थान में जैन धर्म के प्रचार के प्रमाण मिलते हैं।[१] यह भी बहुत सम्भव है कि अशोक के पौत्र सम्प्रति ने राजस्थान में कुछ जैन मन्दिर बनवाये हों। ओझा जी ने राजपूताने में जैन धर्म की स्थिति को अजमेर के बड़ली ग्राम के शिला लेख के द्वारा वि० सं० ३८६ पूर्व की सिद्ध की है।

राजस्थान में अनेक जैन जातियाँ ओसवाल, खंडेलवाल, पालीवाल, बघेरवाल, श्रावकीय, आदि प्रचलित हैं। चित्तौड़ के प्राचीन कीर्ति स्तम्भ का निर्माण जैनियों ने ही करवाया था। उदयपुर का केशरिया नाथ जैनियों का प्राचीन तीर्थ है। जैन धर्म की सेवा राजस्थान ने खूब की जिससे इस धर्म को यहाँ बड़ा प्रश्रय मिला। जैन साधुओं प्रचारकों और कवियों में बड़ी जागृति रही। साहित्य सृजन खूब हुआ। अनेक भंडारों की स्थापना हुई।

जैनियों ने राजस्थान में राजकीय पद, मंत्री, दीवान, सेनापति, आदि प्राप्त कर जैन धर्म की बड़ी सेवा की। आबू, जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर, अजमेर, जयपुर आदि प्रसिद्ध नगरों में अनेकराज्याश्रय प्राप्त जैनियों ने अनेक मन्दिर बनवाये। अनेक ग्रन्थों की टीकाएं लिखीं तथा जैसलमेर नागोर, जयपुर, आमेर, बीकानेर आदि स्थानों से प्राप्त हुए समस्त प्रच्छन्न भंडारों के मूल में यही जैन धर्म रहा है। यहाँ श्वेताम्बर जैनियों की ही अधिकता रही। दिगम्बरों की संख्या श्वेताम्बरों से कम है।

५- गुजरात में जैन धर्मः

राजस्थान की ही भाँति जैन धर्म की प्रगति शील परम्परा गुजरात में रही है। गुजरात का गिरनार तीर्थ प्रसिद्ध २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ की समाधि है। गुजरात के वल्लभीनगर में श्वेताम्बरों के आगम ग्रन्थ लिपिबद्ध हुए। श्वेताम्बरों की यहाँ अधिकता रही है। गुजरात के राष्ट्रकूट राजाओं में अमोघवर्ष जैन धर्म के महान प्रेमी

१- राजपूताने का इतिहास, प्रथम खंड पृ० ११-१२ द्वारा श्री गौरी शंकर हीराचंद ओझा।

थे। राष्ट्रकूटों के बाद चालुक्यों और चालुक्यों के पश्चात बघेल वंश के पास जैन धर्म की बाग डोर गई। बघेल और चालुक्य दोनों जैन धर्म से प्रेम करते थे। चालुक्यों में मूलराज ने अणहिलवाड़ा में जैन मन्दिर का निर्माण कराया। भीम प्रथम के सेनापति विमल ने आबू पर एक जैन मन्दिर बनवाया जिसे आजकल विमलवसही कहते हैं। सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल पर आचार्य हेमचन्द्र का भारी प्रभाव पड़ा। आचार्य ने सिद्धराज जयसिंह के नाम पर अपना सिद्धहेम व्याकरण रचा। सिद्धराज ने महावीर स्वामी का सिद्धपुर में बड़ा भारी मन्दिर बनाया। कुमारपाल ने जैन धर्म स्वीकार कर मांस मद्य आदि सब बन्द करवा दिया। अनेक जैन मन्दिरों की स्थापना व रचना कुमार पाल ने की। हेमचन्द्र ने इनके समय में अनेक ग्रन्थों की रचना की। १३वीं शताब्दी में बघेलों का राज्य होने पर उनके मंत्रियों वस्तुपाल और तेजपाल ने आबू पर अनेक जैन मन्दिर बनाए। शत्रुंजय और गिरनार पर उनके बनाए मन्दिरों की स्मृतियाँ आज भी सुरक्षित हैं।

इस प्रकार वलभी, पाटन, अणहिलवाड़, गिरनार आदि स्थानों में उपलब्ध अनेक विशाल भंडार तथा उनसे प्राप्त विविध प्राचीन साहित्य भारतीय जैन श्रमण संस्कृति और उसकी लेखन कला के सबल प्रमाण हैं।

६- <u>उत्तर प्रदेश में जैन धर्म</u> -

शिलालेखों से प्राप्त साक्ष्यों तथा पुरातत्व जन्य विवरणों और विविध सामग्री द्वारा यह स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश में जैन धर्म की क्या स्थिति थी। मथुरा नगरी जैन धर्म का प्रधान केन्द्र थी। अनेक शिला लेख तथा कंकाली टीला की खुदाई से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दूसरी से पांचवीं शताब्दी तक के प्राचीन जैन अवशेष मथुरा में विद्यमान थे।

हर्षवर्द्धन ने प्रयाग में धार्मिक महोत्सव कराया। साथ ही गोरखपुर और बहराइच में भी जैन धर्म के अनेक प्रकार के प्राचीन प्रमाण मिलते हैं। ११वीं शताब्दी में श्रावस्ती में जैन धर्म की असाधारण प्रगति हुई। इसकी खुदाई में अनेक ऐसे तीर्थंकरों की मूर्तियाँ मिली हैं जिन पर ई० १११९ से ११३३ खुदा हुआ मिलता है। बरेली जिले से जैन धर्म की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में भी जैन धर्म के इसने

प्राचीन अवशेष तो मिलते हैं परन्तु अद्यावधि प्राचीन साहित्य की कोई रचना उपलब्ध नहीं हो सकी।

७- <u>मध्य प्रदेश में जैन धर्म:</u>

इस प्रदेश में जैन धर्म ने पर्याप्त प्रगति की। गुवालियर के जिले में विशाल जैन मूर्तियों की बहुलता वहां के प्राचीन राज घरानों का, जैन धर्म से सम्बन्ध सूचित करती है। ८वीं ९वीं शताब्दी के कलचुरी वंश के कलश राजा जैन धर्म के पक्के अनुयायी थे ऐसा आलोचकों का मत है।[1] कलशों का सम्बन्ध राष्ट्रकूट नरेशों से था। जो जैन धर्म के उपासक थे। कलचुरी की राजधानी में त्रिपुरी और रत्नपुर अभी भी जैन अवशेषों के लिए प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश में अनेक जैन तीर्थ हैं। मुक्तागिरि कुण्डलपुर और पेलवा का श्री श्रीसमगर प्रसिद्ध जैन तीर्थ है।

बुन्देलखंड जैन धर्म के तीर्थों के लिए प्रसिद्ध है। खजुराहों के जैन मन्दिर दर्शनीय हैं। इसके अतिरिक्त देवगढ़ नयनागिर, सोनागिर और द्रोणगिर के तीर्थ अनेक जैनियों की श्रद्धा के केन्द्र हैं। १२वीं शताब्दी तक मध्य प्रदेश में जैन धर्म पर्याप्त प्रगति पर रहा। परन्तु उत्तर प्रदेश की तरह इस प्रदेश से भी अद्यावधि भंडारों में कोई प्राचीन साहित्यिक रचना उपलब्ध नहीं हो सकी। वस्तुतः इन क्षेत्रों की सम्यक शोध होना अत्यावश्यक है।

८- <u>दक्षिण भारत में जैन धर्म:</u>

विशेषकर दिगम्बर सम्प्रदाय का दक्षिण में खूब प्रचार हुआ। प्रसिद्ध विद्वान प्रो० रामस्वामी आयंगर ने लिखा है कि "सुशिक्षित जैन साधु छोटे छोटे समूह बनाकर समस्त दक्षिण भारत में फैल गए और दक्षिण की भाषाओं में अपने धार्मिक साहित्य का निर्माण करके उसके द्वारा अपने धार्मिक विचारों को धीरे धीरे किन्तु स्थायी रूप में जनता में फैलाने लगे। किन्तु यह समझना कल्पना कि ये साधु साधारणतया

१- स्टडीज इन साउथ इण्डियन जैनिज्म, पृ० ५४-५६, प्रो० रामा स्वामी आयंगर।

लौकिक कार्यों में उदासीन रहते थे, गलत है। एक सीमा तक यह सत्य है कि वे संसार में सम्बन्ध नहीं होते थे। परन्तु मेगास्थनीज़ के विवरण से हम जानते हैं कि ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी तक राजा लोग अपने दूतों के द्वारा वनवासी जैन श्रमणों से राजकीय मामलों में स्वतंत्रता पूर्वक सलाह मशविरा करते थे। जैन गुरुओं ने राज्यों की स्थापना की थी और वे राज्य शताब्दियों तक जैन धर्म के प्रति सहिष्णु बने रहे। किन्तु जैन धर्म ग्रन्थों में रक्तपात के निषेध पर जो जोर दिया गया उससे यह जाति राजनैतिक अधोगति को प्राप्त हो गई[1]

उक्त उद्धरण में जैन कवियों, गुरुओं व साधुओं के लोक भाषा प्रेम तथा राजकी कार्यों में उनकी प्रगति पर, प्रकाश पड़ता है। दक्षिण में ऐसे ही प्रचारकों ने जैन धर्म की बहुमुखी सेवा तथा प्रगति की। प्रमुखतः दक्षिण में यह साहित्य दो प्रदेशों में मिलता है- तामिल और कर्नाटक। तामिल के चोल तथा पांड्य नरेश जैन धर्म के महान भक्त थे। तमिल ग्रन्थ नालडियार - आठ हजार जैन साधुओं द्वारा प्रणीत एक एक श्लोक का प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ है। मदुरा जैन धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचे कुरल नामक प्रसिद्ध नीति ग्रन्थ की प्रसिद्धि सर्व विदित है। ह्वेनसांग के वर्णनों में भी जैन धर्म का वर्णन मिल जाता है। सर वाल्टर इलीयट ने अपने ग्रन्थ में दक्षिण की कला और कारीगरी पर जैनियों का प्रभाव बताया है। विशप काल्डवेल ने लिखा है कि "जैनियों की उन्नति का युग ही तामिल साहित्य का महान युग है। जैनियों ने तामिल कन्नड़ी और अन्य लोक भाषाओं का उपयोग किया। इससे जनता के सम्पर्क में वे अधिक आये और जैन धर्म के सिद्धान्तों का भी जनता में खूब प्रचार हुआ।[2] दक्षिण में कदम्ब कलचुरि और राष्ट्रकूट वंश भी जैन धर्म के

१- स्टडीज इन साउथ इण्डियन जैनिज्म, पृ० १०४-१०६, प्रो० रामा स्वामी आयंगर।

२- Comparative Grammar of the Dravidian or south Indian Family Languages Vol. III Edition (London 1913).

प्रश्रयदाता थे। चालुक्यों ने अनेक जैन मन्दिर बनवाये। कर्नाटक में तो राजकीय महिलाओं ने भी जैन धर्म में भाग लिया। १०वीं शताब्दी में चालुक्य के राजा तैलप के सेनापति मल्लप की पुत्री अत्तिमब्बे आदर्श जैन धर्माचारिणी थी जिसने सोने और कीमती पत्थरों की डेढ़ हजार मूर्तियाँ बनवाई थीं। कदम्बराजा कीर्तिदेव की पत्नी माललदेवी का स्थान भी धर्म प्रेमी जैन महिलाओं में अत्यन्त ऊंचा है जिसने पार्श्वनाथ चैत्यालय और ब्रह्मजिनालय बनवाया।

यही नहीं दक्षिण के अन्य अनेक वंशों ने जैन धर्म की प्रगति में योग दिया। गंगवंश में जैन धर्म को राज धर्म बनाया गया गंगवंश के शासकों ने जैन मन्दिर बनाए, जैन प्रतिमाओं की स्थापना की, जैन तपस्वियों के लिए गुफाएं बनवाईं और जैनाचार्यों को दान दिया। माधव, अवनीत, मारसिंह द्वितीय तथा चामुण्डराय प्रसिद्ध जैन धर्म प्रेमी शासक थे। दक्षिण में मैसूर (श्रवणबेलगोला) के विन्ध्यगिरि पर गोमटेश की विशालकाय मूर्ति चामुण्डराय ने ही स्थापित कराई थी जो आज विश्व के लिए आश्चर्य की वस्तु है। स्वयं चामुण्डराय प्रसिद्ध विद्वान एवं लेखक थे। जैनियों का प्रसिद्ध ग्रन्थ - गोमट्टराय- इन्हीं के लिए लिखा गया। प्रसिद्ध कन्नड़ी जैन कवि रत्न भी इन्हीं के दरबार में रहते थे। गंगवंश की भांति होयसल वंश ने भी जैन धर्म में योग दिया पर ब्राह्मण और शैव धर्मों की प्रगति और आक्रमण ने १८वीं शताब्दी तक जैन धर्म की जड़ें हिला दीं।

<u>जैन साहित्य की प्रगति:</u>

दक्षिण के राष्ट्रकूट वंश को जैन धर्म और साहित्य की प्रगति पर विचार करते नहीं भुलाया जा सकता। मान्यखेट इनकी राजधानी थी। अमोघवर्ष इस वंश का प्रथम जैन धर्मी राजा था। अमोघवर्ष के गुरु प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेन थे। अमोघवर्ष के समय में जैन साहित्य की खूब प्रगति हुई। दिगम्बर सिद्धान्त ग्रन्थों की धवला और जयधवला टीका लिखी गई। शाकटायन वैयाकरण ने अपने जैन व्याकरण पर अमोघवृत्ति नामक टीका रची। इसी के समय में जैनाचार्य महावीर ने गणितसार संग्रह नामक ग्रन्थ की रचना की। अमोघवर्ष ने स्वयं भी प्रश्नोत्तर रत्नमाला पुस्तक लिखी। आचार्य जिनसेन के शिष्य गुणभद्र को अमोघवर्ष ने पूर्ण प्रश्रय दिया। गुणभद्र ने जिनसेन के

अधूरे ग्रन्थ- आदि पुराण- को पूरा किया। अमोघवर्ष के पुत्र अकालवर्ष के समय में गुणभद्र ने अपना उत्तर पुराण समाप्त किया। राष्ट्रकूटों के पश्चात् चालुक्यों के हाथ में राज्य शक्ति आते ही जैन धर्म का ह्रास प्रारम्भ हो गया। जैन मन्दिरों में से जैन मूर्तियाँ उठाकर फेंक दी गईं और उनके स्थान पर पौराणिक देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित कर दी गईं, ऐसा विवरण भी मिलता है। इसके मूल में शैव और वैष्णव धर्म का प्राधान्य ही कारण था।

दक्षिण भारत में जैन धर्म पर जब भारी आघात होने लगे थे ठीक उसी समय में दक्षिण के विजयनगर राज्य ने जैन धर्म की प्रगति में योग दान दिया। इस राज्य के उच्च पदस्थ कर्मचारी जैन धर्मावलम्बी थे। हरिहर द्वितीय के सेनापति इरुगप जैन के कट्टर प्रशंसक तथा अनुयायी थे। यही नहीं विजयनगर की रानियाँ भी जैन धर्म पालती थी। श्रवण बेलगोल के एक शिलालेख से देवराय महाराज की रानी भीमादेवी का जैन होना प्रकट है।

इस प्रकार दक्षिण भारत के लगभग सभी राजाओं ने प्रमुख अप्रमुख रूप में जैन धर्म की सेवा की और उसकी प्रगति में असाधारण योग दिया। यद्यपि १४वीं शताब्दी तक दक्षिण में विभिन्न धर्मों के प्रचार तथा साम्प्रदायिक द्वेष के कारण जैन धर्म दक्षिण से क्षीण तो हो गया परन्तु फिर भी वह अपना गहरा स्थान बना गया एवं रचित साहित्य की महान निधि छोड़ गया। वस्तुतः दक्षिण की भाषाओं में विरचित जैन साहित्य का अध्ययन एवं शोध परम आवश्यक है। विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में विरचित जैन साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन होने पर ही हिन्दी जैन साहित्य की पृष्ठभूमि और अधिक पुष्ट हो सकेगी।

निष्कर्षतः मध्यदेश में अधिकतर निवासी भी जैन कवि और साधु थे, उन्होंने प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन ब्रज तथा प्राचीन गुजराती और मालवी भाषा में रचनाएं की, तथा दिगम्बरी विद्वानों ने दक्षिण का क्षेत्र अपनाया। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उत्तरी भारत में दिगम्बर मत फैला ही नहीं। आमेर, सांगानेर, नागौर, दिल्ली, मेरठ, सहारनपुर आदि अनेक स्थानों में दिगम्बर जैन कवियों द्वारा प्रणीत अनेकों रचनाएं मिलती हैं। अनेक दिगम्बर भंडार तो अभी तक

भी नहीं है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय का प्रचार गुजरात में अधिक रहा। राजस्थान में बीकानेर, जैसलमेर, आबू, जयपुर आदि अनेक भंडार श्वेताम्बरिक जैन कवियों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों के भंडार हैं। जिनकी अनेक कृतियाँ पुरानी हिन्दी की सम्पत्ति हैं।

वस्तुतः उत्तर और दक्षिण भारत में जैन धर्म के श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय की प्रगति की संक्षेप में यही कहानी है क्योंकि श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों पर अनेक विद्वान पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं अतः यहाँ इन सम्प्रदायों पर अधिक लिखना पुष्टपेषण मात्र होगा। श्वेताम्बर, दिगम्बर, सम्प्रदायों के अतिरिक्त भी एक तीसरा सम्प्रदाय -यापनीय सम्प्रदाय है। यह सम्प्रदाय दिगम्बर सम्प्रदाय का ही दूसरा स्वरूप है। इस सम्प्रदाय की विशिष्ट अन्य विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:

:यापनीय सम्प्रदाय:

दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों के अतिरिक्त जैन धर्म का एक तृतीय एवंमहत्वपूर्ण सम्प्रदाय यापनीय सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय को यापनीय आपुलीय या गोप्य संघ कहते थे। इस सम्प्रदाय का इस समय एक भी अनुयायी नहीं है। दिगम्बर श्वेताम्बर और यापनीय ये तीनों सम्प्रदाय समकालीन हैं।

अस्तित्व:

एक समय था जब यह सम्प्रदाय कर्नाटक और उसके आस पास बहुत प्रभावशाली रहा है। कदम्ब राष्ट्रकूट आदि राजाओं ने यापनीय सम्प्रदाय वालों को अनेक भूमिदान आदि दिए थे।[१] हरिभद्र ने अपने ललित विस्तार में यापनीय संघ का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है।[२] शाकटायन जैसे वैयाकरण अपभ्रंश के पउमचरिउ और रिट्ठणेमि चरिउ के रचयिता स्वयंभू और त्रिभुवन स्वयंभू इसी सम्प्रदाय के थे। यह सम्प्रदाय कब तक चला यह कहना कठिन है। परन्तु १५वीं शताब्दी तक यह अवश्य जीवित रहा होगा,[४]

१- देखिए जैनहितैषी भाग १४ अंक ७-८।

२- जैन साहित्य और इतिहास पृ० ५७ श्री नाथूराम प्रेमी: प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, सन् १९५६।

३- वही।

४- देखिए जैन दर्शन वर्ष ४ अंक ७ में श्री प्रो० ए०एन० उपाध्ये के यापनीय संघ लेख का अनुदित रूप।

ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है, क्योंकि वि० सं० १४५१ के कागवाड़े के शिलालेख[1] में यापनीय सम्प्रदाय के धर्म कीर्ति और नागचन्द्र के समाधि लेखों का उल्लेख श्री नाथू राम प्रेमी ने अपने ग्रन्थ में किया है।[2]

यापनीय

<u>यापनीय सम्प्रदाय की उपासना और उसका स्वरूप:</u>

यापनीय संघ वाले भी दिगम्बरों से पर्याप्त मेल खाते हैं। उनकी प्रतिमाएं निर्वस्त्र होती हैं। अतः दिगम्बर और यापनीयों की प्रतिमाओं के सूक्ष्म अन्तर को समझना कठिन है। इसी तरह यापनीय संघ का बहुत सा साहित्य भी स्थूल दृष्टि से दिगम्बर सम्प्रदाय जैसा ही मालूम होता है। ललित विस्तर के कर्ता हरिभद्र और षट्दर्शन समुच्चय के टीकाकार ने इस संघ की उपासना और स्वरूप का वर्णन किया है। उनके अनुसार इस संघ के मुनि नग्न रहते थे। मोर की पिच्छि रखते थे। पाणितल भोजी थे, नग्न मूर्तियाँ पूजते थे और वंदना करने वाले श्रावकों को धर्मलाभ देते थे। ये सब बातें दिगम्बरियों जैसी थी, परन्तु साथ ही वे मानते थे कि स्त्रियों को भी भव में मोक्ष हो सकता है, केवली भोजन करते हैं और सग्रन्थावस्था और परशासन से भी मुक्त होना सम्भव है। इसके सिवाय शाकटायन की अमोघवृत्ति के कुछ उदाहरणों से मालूम होता है कि यापनीय संघ में आवश्यक छेदसूत्र निर्युक्ति और दश वैकालिक आदि ग्रन्थों का पठन पाठन होता था अर्थात् इन बातों में वे श्वेताम्बरियों के समान थे।[3] प्रेमी जी ने स्त्रियों को भी यापनीय संघ का ही सिद्ध किया है।[4]

<u>यापनीय सम्प्रदाय का साहित्य:</u>

यापनीय सम्प्रदाय का साहित्य सुरक्षित नहीं रह सका। यही कारण है कि शाकटायन के व्याकरण और एक दो अन्य ग्रन्थ स्त्री मुक्ति प्रकरण और केवली भुक्तिप्रकरण ग्रन्थों के अतिरिक्त अधिक रचनाएं नहीं मिल सकीं। ये रचनाएं भी

१- देखिए जैन दर्शन वर्ष ४ अंक ७ में श्री प्रो० ए०एन०उपाध्ये के यापनीय संघ लेख का अनुदित रूप।

२- जैन साहित्य और इतिहास: श्री प्रेमी पृ० ५७।

३- जैन हितैषी भाग १३ अंक ५-६, ९-१०।

४- जैन साहित्य और इतिहास पृ० ७३।

श्वेताम्बर भंडारों में मिली है। यापनीय संघ आगम ग्रन्थों को भी मानता था और उनके आगमो की वाचना श्वेताम्बर सम्प्रदाय की उपलब्ध वल्लभी वाचना से भिन्न थी। उस पर उनकी स्वतंत्र टीकायें भी होंगी जैसी की अपराजित की दस वैकालिक पर एक टीका थी जो अब अप्राप्य है। वस्तुतः यापनीयों के प्राप्त साहित्य के आधार पर हमें श्री नाथूरामजी प्रेमी के इन निष्कर्षों का ही सहारा लेना पड़ता है " जिस सम्प्रदाय के अस्तित्व का १५वीं शताब्दी तक पता लगता है और जिसमें शाक्टायन और स्वयंभू जैसे प्रतिभाशाली विद्वान हुए हैं उसका साहित्य सर्वथा ही नष्ट हो गया हो इस बात पर सहसा विश्वास नहीं होता यह अवश्य होगा और प्राचीन ग्रन्थ भंडारों में ज्ञात अज्ञात रूप में पड़ा होगा। विक्रम की १२वीं १३वीं शताब्दी तक कन्नड़ी साहित्य में जैन विद्वानों ने एक से एक बढ़कर सैकड़ों ग्रन्थ लिखे हैं, कोई कारण नहीं है कि जब उस समय तक यापनीय संघ के विद्वानों की परम्परा चली आ रही थी, तब उन्होंने भी कन्नड़ी साहित्य को दस बीस ग्रन्थ भेंट न किए हों। कन्नड़ी में जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, किसने सूक्ष्मता से जांच की है कि उनके कर्त्ताओं में कितने यापनीय थे ? यापनीय संघ के साहित्य से जैन धर्म के तुलनात्मक अध्ययन करने वालों को बड़ी सहायता मिलेगी। दिगम्बर श्वेताम्बर मतभेदों के मूल का पता लगाने के लिए यह दोनों के बीच का और दोनों को परस्पर जोड़ने वाला साहित्य है और इसके प्रकाश में आये बिना जैन धर्म का प्रारम्भिक इतिहास एक तरह से अपूर्ण ही रहेगा[1]

उक्त सम्प्रदायों के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि इनके अनुसार इनके अनुयायियों में भी अनेक प्रकार के वर्ग उत्पन्न होंगे, और यह सही भी है। श्वेताम्बर जैनियों में दिगम्बर मार्गी, साधुवृक्ष, तेरापन्थी, ढुढंधी प्रवोचता हरे बीसे, छोटे साजन, बड़े साजन साइसवी आदि अनेक वर्ग हैं, इसी तरह दिगम्बरों में भी। इन वर्गों से जैन धर्म की अभिव्यक्ति में भारी बाधा प्रस्तुत हुई है तथा आज प्राचीन काल की साहित्य रचना की गति भी जैन समाज में उत्तरोत्तर कमजोर होता जा रही है।

१- जैन साहित्य और इतिहास पृ० ७३।

निष्कर्षतः जैन धर्म बौद्ध धर्म की ही भांति शक्तिशाली प्रादुर्भाव लेकर आगे बढ़ा, पर १२वीं १३वीं शताब्दी तक इस धर्म को तत्कालीन अन्य धर्मों के प्रवर्तकों से, एवं जैन धर्म के कठिन साध्य नियमों से इस धर्म को गहरे धक्के लगे।

आदिकालीन हिन्दी जैन कृतियों में प्रयुक्त जैन धर्म के विविध दार्शनिक सिद्धान्त और उनका परिचय:

अद्यावधि जैन कवियों द्वारा प्रयुक्त जितनी कृतियां मिली हैं, उन सबमें इस धर्म के प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यंजना सर्वत्र देखी जा सकती है। सच तो यह है कि इन कृतियों में अधिकांश समाज के सामने धार्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। धर्म का सम्बन्ध सदाचार और सेवा से है तथा बिना समाज के सेवा का अस्तित्व नहीं। अतः शांति और सदाचार से इन कृतियों में कवियों ने आत्म शुद्धि और आत्म शोधन को लक्ष्य बनाया है। इन कृतियों में जैन धर्म के निम्नांकित प्रमुख सिद्धान्तों को देखा जा सकता है:

(१) संसार-

संसार नश्वर है, जिन और जैन ही सार है, तीर्थंकर संसार की नश्वरता का बोध देते हैं। अतः संसार को नश्वर समझ प्रत्येक व्यक्ति को आत्म साधना में तत्पर होना चाहिए। सद् कर्मों और आत्म शुद्धि के द्वारा ही मनुष्य संसार से निर्लिप्त रह सकता है। जैन मुनियों ने संसार की नश्वरता का उपदेश खूब दिया है। अतः पहले संसार, को समझ कर फिर केवल आत्मा को समझना चाहिए। भरतेश्वर बाहुबली रास, चंदनबाला रास, नवकारी संबोध, तथा स्थूलिभद्र फागु में संसार की नश्वरता पर बहुत कुछ लिखा गया है।

(२) जीवतत्व:

जैन कवियों ने प्रमुख नौ तत्व माने हैं। ये प्रमुख तत्व जीव, अजीव, निर्जरा, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, बंध और मोक्ष आदि हैं। इनमें आठ तत्वों को जब जीव साथ लेता है तो नवें मोक्षतत्व की प्राप्ति उसे स्वतः हो जाती है। मनुष्य का जीवन काव्यकारों ने इन ९ तत्वों में बांट दिया है। जीवों में मनुष्य और पशु

स्वर्ग के देवता, तथा नरक सब आ जाते हैं। बंधन सबको कर्मों के आवर्त में बांध देता है। अतः परमाणु से लेकर स्थूल, अतिस्थूल और महा स्थूल सब पदार्थ पुद्गल हैं पुद्गल का मूल परमाणु है। ये परमाणु अनन्त हैं। परमाणु की प्रथम स्थिति प्रदेश कहलाती है। पुद्गल के संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं अतः प्रदेशात्मक समूह के कारण ये अस्तिकाय कहलाते हैं। पाप और पुण्य इन्हीं अस्तिकायों से सम्बन्धित हैं। जिन कारणों से आत्मा के साथ पाप पुण्य सम्बन्धी विविध कर्मों का सम्बन्ध होता है, वे कारण आस्रव कहलाते हैं। कर्म बंधन में मनोव्यापारों का स्थान प्रमुख है।अतः शरीर को विभिन्न कर्मों के बंधन से रोकने वाले आत्मा के निर्मल भावों को संवर कहा गया है। कर्म का आत्मा के साथ दूध और पानी की भांति सम्बन्ध होने का नाम बंधन है। मन को इन्हीं बंधनों से बचाना मोक्ष की प्राप्ति करना है।

(२) <u>आठ कर्म</u> :

मनुष्य को आवागमन के बंधन में बांधने वाले ये आठ कर्म हैं। जिनमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय,मोहनीय,आयु, नाम, गोत्र और अंतराय, आ जाते हैं। इनमें से दर्शनावरण, वेदनीय मोहनीय और अन्तराय पाप कर्म हैं। शेष चार कर्म भी इन्हीं केआधीन हैं। इन आठों कर्मों में मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही उसका फल भी भोगता है। ज्ञानावरण ज्ञान शक्ति को दबाता है, दर्शनावरण दर्शन शक्ति का अवरोधक है मोहनीय कर्म मोह उत्पन्न करता है। अन्तराय इष्ट साधन में बाधा उपस्थित करता है।आयुष्य कर्म में देवता आयु, मनुष्य आयु, तिर्यंच आयु तथा नारक जीवों की आयु आती है। नाम कर्म पर अच्छा या बुरा शरीर, अच्छा या बुरा रूप, सुस्वर अथवा दुःस्वर, यश अथवा अपयश आदि आते हैं। गोत्र कर्म में उच्च नीच दो भेद होते हैं। संस्कारी अथवा असंस्कारी कुटुम्ब में जन्म होना इस कर्म का परिणाम है। अन्तिम कर्म अन्तराय है जिसका कार्य केवल विघ्न उपस्थित करना है।ये सब कर्म बंधन में बांध लेते हैं। ये बंध प्रकृतिबंध, स्थिति बंध , अनुभाग बंध और प्रदेश बंध चार प्रकार के होते हैं। बंधनों के अनेक कारण होते हैं जिनमें मनुष्य जानकर भी उलझा जाता है। ये हैं अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। इन कर्म बंधों के हेतुओं को रोकने का नाम संवर है तथा बंधे हुए कर्मों के नाश का नाम है निर्जरा। यह निर्जरा सकाम निर्जरा और

अकाम निर्जरा दो प्रकार की होती है। यदि निर्जरा के कारण बंधन तथा कर्म विनष्ट हो गए तो मोक्ष की प्राप्ति होती है। अन्यथा यह कर्म चक्र अत्यन्त प्रबल है। मोक्ष से सब कर्मों का क्षय हो सकता है। मोक्ष से केवल ज्ञान की सिद्धि हो जाती है।

(४) <u>सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र, और सम्यक्त्व-</u>

आत्मतत्व को पहिचानना ही सम्यक् ज्ञान (Right Knowledge) है। आत्म स्थिति कर्म के आवरण को हटाये बिना स्पष्ट नहीं हो सकती। संसार की सम्पूर्ण पीड़ा तथा सब क्लेश मात्र आत्मा की अज्ञानता पर अवलम्बित है। अतः आत्माभिमुख होना ही जीवन को आध्यात्मिक बनाना है।

सत्य ज्ञान का फल पाप कर्मों से दूर रहना होता है यही सम्यक चरित्र (Right Conduct) है, पर सेवा में जीवन का उत्सर्ग करना तथा पाप कर्मों से दूर रहना सच्ची चारित्रिक सम्यकता प्राप्त करना है। इस चारित्र्य में साधुओं और गृहस्थों दोनों का चारित्र्य शामिल है।

राग द्वेष की वृत्तियों को दबाना और उन्हें जीतना ही साधु धर्म का प्रमुख स्वरूप है। साधु धर्म विश्व बंधुत्व का व्रत है। साधु जन्म जरा मृत्यु, आधिव्याधि उपाधि आदि सब दुखों से रहित परमानन्द स्वरूप मोक्ष होता है।

गृहस्थ धर्म का दूसरा नाम श्रावक धर्म भी कहा गया है। श्रावक वह है जो आत्म कल्याण-परक बातें श्रवण करे। श्रावक उपासक को भी कहते हैं। गृहस्थ धर्म में अनेक व्रतों का निरूपण किया गया है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:-

<u>बारह व्रत:</u>

ये व्रत १२ हैं: १- <u>प्राणों के अतिपात से विरमण:-</u> प्राणों के अतिपात का तात्पर्य है किसी के प्राण लेना। अतः स्थूल रूप में किसी की हत्या नहीं करनी चाहिए। २- <u>असत्य से दूरी:</u> गृहस्थों को स्थूल असत्यों का त्याग करना चाहिए यही अणुव्रत भी कहा जा सकता है। ३- <u>चोरी नहीं करना-</u> तृणादि तुल्य भी चोरी करने की भावना अत्यन्त बुरी है। गृहस्थ के लिए चोरी का त्याग परम आवश्यक है। ४- <u>पर स्त्री त्याग-</u> यह व्रत बड़ा महत्वपूर्ण है। आचार्य हेमचन्द्र ने इस व्रत का

वर्णन किया है। अपनी पत्नी की मर्यादित संगति के अतिरिक्त प्रत्येक की कामचेष्टा हेय है। ५- अपरिग्रह: अपनी आवश्यकताओं को जितना कम किया जाय उतना ही ठीक है। अनावश्यक वस्तु संग्रह से बचने को अपरिग्रह कहा जाता है। ६- दिशाओं का व्रत: जैनियों ने पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाएं ईशान, आग्नेय, नैरित्य, वायव्यये चार विदिशाएं, सिर के ऊपर की उर्ध्व दिशा और पैरों के नीचे की अधोदिशा इस तरह कुल दस दिशाएं मानी हैं। इनकी प्रवृत्ति के अनुकूल चलने से कार्यों में अवरोध नहीं होता। कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जाते हैं। ७- भोगों का फल- भोगों का फल मिलना अनिवार्य है। जैन मत के अनुसार एक बार जनका उपभोग किया जाता है, वे पदार्थ भोग कहलाते है जैसे अन्न, जल, धूप, आदि। तथा जो पदार्थबार बार उपभोग में आते हैं वे उपभोग कहलाते है। मद्याभक्ष्य का निषेध भी इसी व्रत में शामिल है।
८- निरर्थक पापाचरण: इसका नाम अनर्थ दण्ड भी है। अनावश्यक कई पाप मनुष्य कर बैठता है। उसे पाप का उपदेश नहीं करना चाहिए। हिंसा पाप का मूल है, इससे वह दूर रहे। बुरी वस्तुओं को उसे भूलकर भी ध्यान नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे अनेक प्रकार के प्रमाद बढ़ते हैं। ९- सामयिक व्रत: २ घड़ी तक एक आसन पर बैठकर ध्यान करने को सामायिक कहते हैं। अतः आलस्य में समय नहीं खोकर धर्म शास्त्रों का अनुशीलन तथा परमात्मा को प्रणिधान करना चाहिए। १०- पोषधव्रत- इस व्रत में धर्म का परिपोषण होता है। मनुष्य को चाहिए कि वह धर्म परायण बने। ब्रह्मचर्य से रहे। ११- देशावकाशिक व्रत- विभिन्न व्रतों में रहे विविध नियमों में थोड़ी छूट या संक्षेप कर देना देशावकाशिक व्रत कहलाता है। १२- अतिथिव्रत : बारहवां और अन्तिम व्रत है- अतिथि सत्कार- इसमें दीन दुखियों की सहायता करना भी आ जाता है। इस व्रत में भारतीय संस्कृति की झलक मिलती है। आतिथ्य सत्कार का यह आदर्श इन जैन कृतियों में सर्वत्र मिल जाता है। इन बारह व्रतों में प्रारम्भ के पांच व्रतों को यदि शिक्षा दिया जाय तो वे अणुव्रत कहलाते हैं। आगे के तीन गुणव्रत और शेष चार शिक्षा व्रत कहलाते हैं।

सम्यक्त्व-

सम्यक् दर्शन का नाम ही सम्यक्त्व है। सच्चाई, सफाई तथा निर्मल भाव का दृष्टिदर्शन ही सम्यक्त्व है। सम्यक् दर्शन से ही सम्यक् चारित्र और सम्यक्त्व दृष्टि

की पुष्टि होती है। तीर्थंकरों और महापुरुषों के चरित्र में सम्यक्त्व का पूर्ण समावेश होता है। सम्यक् दर्शन और सम्यक्त्व की शास्त्राभ्यास में भी प्राप्ति होती है। शास्त्रों में सम्यक्त्व की परिभाषा में इन बातों का समावेश हो जाता है।[1] इसी प्रकार ज्ञान और गुण स्थानों का भी सूक्ष्म व्याख्यान किया गया है।[2] तथा जैन दर्शन में १४ गुण श्रेणियाँ मानी गई हैं। जैन दर्शन में प्रयुक्त सभी शब्द पारिभाषिक और युक्ति युक्त हैं।

आध्यात्म भावना:

उक्त विवेचन के आधार पर जैन कवियों की आध्यात्म भावना का परिचय मिल जाता है। संसार को जैन कवि अनित्य समझते हैं। आध्यात्म के प्रति जैन दर्शन का भावन विविध रूपों में देखा जा सकता है। इनभाव व तत्वों में लोक भावना, बोधि दुर्लभत्व भाव, धर्म स्वाख्या-भावना, एकत्व भावना, संसार भावना तथा अशरण भावनाओं को लिया जा सकता है।इनका जैन दर्शन में विस्तृत परिचय मिल जाता है।

षट् कर्म:

जैनियों ने ६ कर्मों को प्रधानता दी है वे हैं- देवपूजा, तप, गुरु की उपासना स्वाध्याय, दान और संयम। ये तप आर्तध्यान, शुक्ल ध्यान, रौद्रध्यान, धर्म ध्यान आदि ध्यानों से साधे जा सकते हैं। जहाँ तक कर्म वैशिष्ट्य का प्रश्न है वे पारमार्थ पाप और पुण्य दो अनुबंधों में विभक्त हो सकते हैं। इस प्रकार कर्म का वैशिष्ट्य पुण्यानुबंधी

१- या देव देवता बुद्धिर्गुरौ च गुरुता मतिः
धर्मे च धर्मधीः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते- देखिए योग शास्त्रप्रकाश-श्लोक- २

२- १- मिथ्या दृष्टि, २- सासादन, ३- मिश्र, ४- अविरति सम्यक् दृष्टि ५- देशविरति ६- प्रमत्त, ७- अप्रमत्त ८- अपूर्वकरण, ९- अनिवृत्तिकरण १०- सूक्ष्म सम्पराय, ११- उपशान्त मोह, १२- क्षीणमोह, १३- सयोगकेवली १४- अयोग केवली। ये १४ गुण श्रेणियाँ हैं। देखिए जैन दर्शन पृ० १०९ मुनि श्री न्याय विजय, अनुवादक शांतिलाल वनमाली, प्रकाशकः हेमचन्द्राचार्य जैन सभा, पाटन ।

पाप, पापानुबंधी पुण्य, और पापानुबंधी पुण्य।

इन तत्वों के अतिरिक्त इन कर्मों की १० अवस्थाएं हैं।[1] जिनका व्यवहार जन जीवन में दीख पड़ता है। साथ ही कुछ आवश्यक दार्शनिक तत्व ऐसे हैं जिनसे जैन धर्म की व्यावहारिकता, धर्म भावना, कल्याण मोक्ष, संसार, हिंसा, विश्व शांति आदि की प्रभावना होती है। जैन कवियों और दार्शनिकों ने यह स्पष्ट किया है कि कल्याण का मार्ग सबके लिए खुला हुआ है। गुरु में अपार श्रद्धा, धर्म प्रभावना के लिए परमावश्यक है। भगवान की प्रतिमा के दर्शन से मन का समस्त कालुष्य धुल जाता है। जीवन को गतिशील बनाने के लिए अहिंसा का अनुगमन करना चाहिए। इसके लिए तप की आवश्यकता है, तप का माध्यम भी शरीर है। मनुष्य को दयार्द्र तथा दान शील होना चाहिए। क्योंकि शरीर से ही ये दयालुता और दानशीलता सम्पन्न होती है। मैत्री सबसे वंदनीय है। मैत्री में मध्यस्थ, प्रमोद करुणा तथा मैत्री इन चार भावनाओं की अवधारणा हुई है। अन्तर की अशुभ वृत्तियों के निराकरण में ये मैत्री भावनाएं तथा अन्य प्रवृत्तियों से शुद्ध करने मन शुद्धि कर मनुष्य को राग से छुड़ाकर वीतरागी बनाने में पूर्ण सहायक है। अतः जैन मुनियों में आवश्यक है इससे मनुष्य का तप बढ़ता है। और वह ईश्वर कृपा के प्रति निष्ठावान बनता है। इस तरह ईश्वर कृपा की प्राप्ति के लिए ये भावनाएं अत्यन्त सरल मार्ग प्रस्तुत करती हैं। इन्हीं कारणों से जैन दर्शन वेत्ताओं ने आत्मा का अनेक ही प्रकार से विवेचन किया है तथा ज्ञान को पांच भेदों में बांट दिया है। इसी प्रकार मतिज्ञान और बुद्धि के भी ४ भेद प्रभेद हैं।[2] मन का विश्लेषण लेश्या के रूप में मिलता है। लेश्या मन के विविध अध्यवसायों को कहते हैं। मन के जो अध्यवसाय विविध स्थितियों और परिणामों में हमारे सामने आते

१- १- बन्ध, २- अपवर्तना, ३- सत्ता, ४- उदय, ५- उदीरण ६- संक्रमण
७- निधत्ति, ८- निकाचना, ९- उपशमन, १०- उद्वर्तना।

२- मतिज्ञान के चार भेद हैं:- अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा।
बुद्धि के ४ प्रकार हैं :- औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा, पारिणामिकी।

है उन्हें लेश्या कहते हैं। विविध रंगों के साथ इसकी संगति बैठाकर शास्त्रकारों ने इसकी परिभाषा दी है।[1] रंगों में मन के साथ जीव के भी विविध वर्ण बतलाए गए हैं। इसी लेश्या से मनुष्य का मन प्रभावक और लोक कल्याण कारक, शुद्ध तथा तेजस्वी-प्रवृत्तिमय बनता है। इन तत्वों के अतिरिक्त अहं का विनाश भी परमावश्यक है। कार्य कारण भाव को समझ कर ही मनुष्य को प्रत्येक कार्य का भावना करना चाहिए।

<u>नियतिवाद-</u>

जैन दर्शन में नियति का विवेचन भी मिलता है। इसे दैववाद तथा भवितव्यता वाद एवं भाग्यवाद भी कहा गया है। नियति को जैन दर्शन अधिक प्रश्रय नहीं देता। महावीर ने भी अनेक स्थलों पर अपने सूत्रों में नियति का विरोध किया है। महावीर के उपदेशों से स्पष्ट है कि नियतिवाद एक प्रकार की जड़ता का मार्ग है।प्रत्येक कार्य क्रियान्वित होने में क्रिया की भावना पहले है नियति बहुधा की बाद में। वास्तव में उनके अनुसार नियतिवाद अथवा दैववाद जीवन सुधार का शत्रु है। यह तो पापियों को अपना पाप छुपाने का और कायरों को अपनी कायरता छुपाने का सहारा है। दैववाद का सहारा लेने से शान्ति मिलती है ऐसा कहा जाता है परन्तु वस्तुतः शान्ति नहीं है, वह तो जड़ता है, जीवन का पतन है। वस्तुतः नियतिवाद, एक प्रकार की जड़ता का मार्ग है, दम्भ है, अपने पापमय और पतनमय जीवन के उत्तरदायित्व से बचने के लिए ओट है वह तो बहुत बड़ी आत्मवंचना है और परवंचना भी है।-- आत्मवंचना से अपनी आंखों में धूल डाली जा सकती है और परवंचना से दूसरों की आंखों में धूल झोंकी जा सकती है। परन्तु जगत की कार्यकारण की व्यवस्था की दृष्टि में धूल नहीं झोंकी जा सकती।[2] महावीर के उक्त विचारों में नियति का विरोध है और कार्यकारण की महत्ता पर ही अधिक जोर दिया गया है परन्तु परवर्ती कुछ

१: कृष्णादि द्रव्य साचिव्यात् परिणामो य आत्मनः।
स्फटिकस्येव तत्राय लेश्या शब्द प्रवर्तते।।- जैन दर्शन पृ० ११४

२: देखिए जैन दर्शन पृ० ३५२, मूल लेखक श्री मुनि न्याय विजय जी, अनुवादक शोभाचन्द्र भारिल्ल, बी०ए० सन् १९५६- प्रकाशक- हेमचन्द्राचार्य जैन सभा पीपलाने शेर (पाटन) गुजरात।

जैन दार्शनिकों की दृष्टि से नियति के कुछ तत्वों का समाहार भी कर लिया गया है। इस प्रकार कार्यकारण के साथ साथ जाति-कुल-मद, ज्ञान भक्तिकर्म, अद्भुत शास्त्र वैराग्य और मुक्ति को भी पूरा पूरा स्थान दिया गया है।

इन रचनाओं में जैन न्याय का भी बहुत बड़ा अंश मिल जाता है। प्रमाणों में प्रत्यक्ष और परोक्ष को प्रमुख स्थान दिया गया है। स्मरण प्रत्यभिज्ञान तर्क और अनुमान परोक्ष प्रमाण के चार भेद है। इसी तरह नय के भी सात भेद किए गए है। जैनागमों में इनका विशद स्वरूप स्पष्ट होता है।

उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त जैन मुनियों के प्रमुख आधार भूत सिद्धान्तों को भी जानना आवश्यक है।

: <u>अनेकान्त अथवा स्याद्वाद</u>:

स्याद्वाद शब्द स्यात् और वाद दो शब्दों से बना है। स्यात् शब्द किसी निश्चित दृष्टिकोण का द्योतक है। यही स्यात शब्द अनेकान्त का सूचक है अतः अनेकान्त रूप से कथन यह अर्थ स्याद्वाद का हुआ। अतः स्याद्वाद् का दूसरा नाम अनेकांत वाद भी है। आचार्य हेमचन्द्र ने स्याद्वाद को अनेकान्त अर्थ का द्योतक बतलाते हुए वस्तुओं के नित्यानित्य अनेक धर्मों से युक्त स्वरूप को स्वीकार किया है।[1] अनेकान्त में अनेक और अन्त ऐसे दो शब्द है इनमें से अन्त का अर्थ धर्म, दृष्टि, दिशा अपेक्षा- ऐसा करने का है। अतः एक ही दृष्टि से, एक ही पक्ष से वस्तु को देखना इसे अनेकान्त दृष्टि कहते है। जबकि अनेक दिशाओं से भिन्न भिन्न दृष्टि बिंदुओं से वस्तु का अवलोकन करने

१- स्यात् इत्यव्ययमनेकान्त द्योतकम्। ततः स्याद्वादः अनेकान्तवादः नित्यानि त्याद्येक धर्म शबलैक वस्त्वभ्युपगम इति अव्यय-स्यात् यह अव्यय है और यह अनेकान्त अर्थ का द्योतक है अतः स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद अर्थात् नित्यानित्य आदि अनेक धर्मा वस्तु स्वरूपों का द्योतक एवं स्वीकार- देखिए- सिद्ध हेम शब्दानुशासन- आचार्य हेमचंद्र - द्वितीय सूत्र।

[2] "The form of things may change but their substance call it the soul or the primal matter, continues to subsist. Nothing that is can be annihilated-
See Jainism (Introduction by Dr. Hiralal Jain) page 3, by Shri Vallabh Suri Jain literature series puspa 2 Shri Vallabh Suri Smark Nidhi 89 Tamba Kanta, Bombay-3, 1957.

वाली दृष्टि अनेकान्त दृष्टि है। इसी से वस्तु का यथार्थ स्वरूप ज्ञात होता है। उदाहरणार्थ हाथी के किसी अंग विशेष को हाथी नहीं कहेंगे। सम्पूर्ण अंगों को मिलाकर हाथी संज्ञा दी जा सकती है। अतः अनेकान्त या स्याद्वाद वस्तु है, नहीं है, एक है अनेक है, आदि दोनों रूपों में उसका अध्ययन करता है। वस्तुओं का स्वरूप बदल सकता है परन्तु उनका तत्व वही है।[1] इस प्रकार एक ही तत्व अनेक रूपों में विद्यमान रहता है। उसको विभिन्न स्वरूपों में हम देखते हैं पर उसका मूल रूप एक है इसे इन्कार नहीं किया जा सकता। इस तरह विविध दृष्टि बिन्दुओं द्वारा उनका समन्वय करके भिन्न अथवा विरुद्ध दिखाई देने वाले मतों में समुचित सामंजस्य स्थापित करना यह अनेकांत दृष्टि का स्वरूप है। इस पर से इस दृष्टि की व्यापकता महत्ता और उपयोगिता समझी जा सकती है। इस उदार दृष्टि के पवित्र बल से ही मत संघर्ष जन्य कोलाहल शान्त होकर मानव समाज में परस्पर समभाव बढ़ता है। इस समभाव अथवा साम्य प्रसार का ही अनेकांतवाद उद्देश्य है। अतः इस सबका निष्कर्ष यही निकलता है कि अनेकान्तवाद समन्वयवाद है और उसमें से उत्पन्न होने वाला जो कल्याणपूत फल वह साम्यवाद अर्थात् समभाव है। इस समभाव में से व्यापक मैत्री भाव फलित होने पर मनुष्य भूमि कल्याण भूमि बन सकती है।[2]

अनेकान्त की स्थिति में पुद्गल के सब स्वरूप आ जाते हैं। जहां वस्तुएं अनेक रूपोंमें विद्यमान होते हुए भी एक रूप प्रस्तुत करती हैं। अनेकान्त को जैन न्यायाचार्यों ने सप्तभंगी के रूप में प्रस्तुत किया है। जिसमें उसकी सब संभाव्य परिस्थितियों का

१- The form of things may change but their substance call it the soul or the prinial matter, continues to subsist. Nothing that is can be annihilated.-

See Jainsim (Introduction by Dr. Hiralal Jain) page 3, by Shri Vallabh Suri Jain literature series Puspa-2 Shri Vallabh Suri Smark Nidhi 89 Tamba Kanta, Bombay-3, 1957.

२- देखिए जैन दर्शन पृ० ५३५- ५३६।

जाती है। वस्तुतः अनेकान्त या स्याद्वाद [1] का ...दसारा शिल्प वैशिष्ट्य उसके सप्त भंगी [2] स्वरूप में देखा जा सकता है। अनेकान्त को समझने से जैन हिन्दी कृतियों को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

: कुछ विशिष्ट तत्व :

अहिंसा :-

अहिंसा का अनुपालन जैन कवियों का प्रमुख उद्देश्य रहा है। अहिंसा जैन धर्म का मूलमंत्र है। हिंसात्मक प्रवृत्तियों का मूलोच्छेदन करके इस प्रवृत्ति का प्रचार प्रत्येक जैन कवि ने किया है। अतः जैन कृतियों में हर प्रकार से अहिंसा का प्रचार प्रसार और विवेचन मिलता है। अहिंसा से ही मानव अपने जीवन को कालुष्य से बचा सकता है। अतः हिंसात्मक प्रक्रियाओं से मनुष्य को बचना चाहिए। जैन कवियों की यह विशेषता तो यहाँ तक कि युद्ध वर्णन में भी देखी गई है। विविध विद्याओं के प्रयोग से योद्धाओं को मूर्छित कर उन्हें पराजित कर जैन कवियों ने रक्त को रक्तपात से बचा लिया है वस्तुतः जैन धर्म और दर्शन का मूल सूत्र और स्तम्भ अहिंसा है।[3] अनेक कृतियों में जैन कवियों ने तीर्थंकरों के समवशरण में पशुओं तक को आने का वर्णन किया है। अतः जैन धर्म अहिंसा का कई रूपों में प्रतिपादन करता है।

1- The doctrine of 'ANEKANT' draws atte tion to the fact that there are innumerable qualities in things and being that exist, and ever somany sides to every question that may arise. We can talk about or discuss only one of them at a time. The seeming differences in statements vanish when we understand the parti-cular point of view See Jainism page 2.

2- सप्तभंगी का स्वरूप इस प्रकार है:
प्रथम भाग: अस्ति, द्वितीय भाग: नास्ति, तृतीय भाग: अस्ति-नास्ति ,
चतुर्थ भाग- अवक्तव्य, पंचम भाग: अस्ति अवक्तव्य, षष्ट भाग: नास्ति अवक्तव्य
सप्तम भंग: अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य- देखिए-जैन दर्शन पृ० ५३९-५५९

3. Jain saints emphasised AHIMSA as the rule of good conduct. Briefly stated it comes to mean this ; life is saved in what so ever form it may exist. Therefore injure no life, and let this be the highest ethical principal. Be a gentleman, a gentleman is one who has no tendency to do violence. Every religion worth counting recognises the sanctity of human life. Jainism wants the same feeling to be extended to the other forms of life as well namely, beasts, birds and smaller creatures See Jainsm page 8.

<u>मुक्ति:</u>

कैवल्य- उक्त सिद्धान्तों के आधार पर धर्माचरण करने से ही प्राप्त हो सकता है और यही कैवल्य जैन मुनियों को मुक्ति की ओर अग्रसर करता है। विदेह की भांति कैवल्य भी जैन मुनियों की आध्यात्मिक साधना का रहस्य है। कैवल्य पद प्राप्त होने पर तपस्वी साधक मुक्ति की ओर अग्रसर हो जाता है। सत्य, धार्मिक सहिष्णुता, सह अस्तित्व, अपरिग्रह और शान्ति इसके मूलसहायक होते हैं। स्याद्वाद उसे अतिवादी बनने से रोकता है और तपस्या की तितिक्षा उसे ज्ञान के स्वरूप और आत्मसिद्धि जैसे कठिन स्तरों से पार कराने वाले सहायक तत्व हैं। यही जैन धर्म दर्शन का सार है।[1] इस प्रकार इन सभी कृतियों में साहित्य के माध्यम से प्रकट दर्शन असाम्प्रदायिकता और उदारतावाद का प्रतीक है। यदि निरपेक्ष भाव से देखा जाय तो प्रकृतिवाद, क्षणिकवाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद, अद्वैतवाद, ईश्वर-कर्तृत्व-वाद आदि सभी वादों की प्रामाणिकता से जैन दर्शन समझौता करके चला है। सत्यासत्य दोनों को जैन धर्म का दर्शन स्वीकार करता है[2]

जैन धर्म के समानान्तर चलने वाला बौद्ध धर्म अनेक रूपों में जैन धर्म के दर्शन से मेल खाता है। कुछ साधनात्मक पद्धतियों को छोड़कर बौद्ध धर्म का जैन धर्म से साम्य देखा जा सकता है। बौद्ध धर्म से ही नहीं अन्य धर्मों के मूल तत्वों से भी उसने समझौता किया है। अतः उसमें मानव कल्याण और विश्वजनी मानवता के प्रति संदेश भरा है। यही कारण है कि वह संसार में अनेक स्थानों पर आज भी अपना

---

1. In the Jain system the principal is always kept in the fore front and hence religious toleration fellowship and co-existence is the essence of Jain Philosophy - See Jainsm page 7.
   The forword written by Dr. Hiralal Jain."

2. Jainism mentions that truth and untruth have been existing and will continue to exist side by side" See Jainism page 23.

अस्तित्वबनाए रखने में सक्षम है।[1] तथा अपने अनेकान्त सिद्धान्त द्वारा अनेक वादों के विवादों के साथ समझौता प्रस्तुत किया है।[2] वह बाह्यवेश, बाह्याडंबर, पर ही बल नहीं देता। अपरिग्रह, अहिंसा और अनेकान्त पर भी असाधारण बल देता है। अन्तर्शुद्धि ही उसके दर्शन का प्रमुख लक्ष्य है। वस्तुतः जैन दर्शन आत्मा की सफलता में विश्वास करता है।वह मनुष्य को स्वावलम्बी बनाना चाहता है। उसके अनुसार केवल आत्मा ही पवित्रता और पूर्णता की ओर बढ़ती है। आत्मा को पूर्णता की ओर बढ़ाने में बाह्याचारों से दूर होकर मनुष्य को अन्तर गमन करना होगा। साधना में तपने के बाद ही मनुष्य की आत्मशुद्धि हो सकती है। इन्हीं भावनाओं को (आचारंग सूत्र १११-१७) में सम्यक् प्रकार से समझाया है। वह मनुष्य को एक ही शक्ति में विश्वास रखने का उपदेश देता है।सूत्र कृतांग में तो यहां तक लिखा है कि हे मनुष्य। अपने शरीर से लड़ो अन्य किसी से लड़ने में कोई लाभ नहीं। मनुष्य ही उसका सबसे अच्छा मित्र

१: According to the Jainas their religion as propounded by their omniscient TIRTHANKARA is nothing but truth and hence they are inclined to believe that there has never been an age when Jainism did not exist at least in some part of the world and that there will never come an age, when it will be completely wiped off from the surface of our globe. – See The Jain religion and literature, Vol. I – page 7-8 by Dr. H.R. Kapadia.

२- ये विवाद क्रमशः इस प्रकार हैं-
१-अवतारवाद, २- मूर्तिवाद, ३- ब्राह्मणवाद, ४- ईश्वर कर्तृत्ववाद, ५- नियतिवाद,
६- पुरुषार्थवाद, ७- कर्तृत्ववाद, ८-अकर्तृत्ववाद, ९-क्रियावाद, १०-दिगम्बर श्वेताम्बरवाद
११-साकार निराकार वाद, १२-एकान्त आत्मवाद, १३- आत्म विभुत्ववाद, १४-व्यवहार-वाद, १५- [illegible] इन वादों से जैन धर्म ने अपना समझौता किया है तथा उनके साथ उदार दृष्टि से विचार है।

भिन्न होता है।[1] वास्तव में जैन धर्म के इस वैशिष्ट्य में आध्यात्मिक चेतना भरी है, सत्य का सौन्दर्य निहित है जैन धर्म दर्शन और निहित सत्य अन्तर्दर्शन द्वारा अनुभूत करने की वस्तु है। डा॰ राधाकृष्णन हर्मन जेकोबी[2] जैसे विद्वानों ने जैन दर्शन के विलक्ष वैशिष्ट्य पर विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला है।[3] इन दार्शनिक सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय

---

1 (i) The foremo t peculiarity of Jainism is that it claims no non-human source Its tenets are based on the knowledge of the metors, who have attained perfectionby their own efforts in this very universe. According to Jainism it is the human soul alone which can reach the highest degree of purification. All souls are passessed of fulness and perfection. Jainsm is totally against offering devotion to any being human or devine, in the hope of gaining bliss, immortality or perfection through the mercy of that being the full development of the soul can not be gained through out side and Lord Mahavir emphatically declared "Man, thou are thine own friend, why whishest thou for a friend beyond thyself. One has to struggle with one's own enimies, having faith in one's own strength. The true victor is expected to defeat his passi ns and sense cravings and not his fellow beings.
इस आचरंग सूत्र ११४

(ii) Fight wi h your own body, why should you fight with any thing else. - सूत्रकृतांग - १५४

(iii) Fight with yourself, why fight with external foes. He who conquers himself, through himself will obtain happiness. - उत्तराध्ययन सूत्र (IX) ३५।

2. In conclusion let me assert my conviction that Jainism is an original system, quite distinct and independent from all others and that, therefore, it is of great importance for the study of Philosophical thought and religious life in ancient India - See Congress of the History of Religions-page 102 by Dr. Hiralal Jain.

3. The philosophy of the Jainas is not essentially founded on any particular writing or external revealation butk on the unfoldment of spiritual consciousness and which is the birth right of every sold book , writing and scriptures may illustrate, wholly or in part, this truth, but the ultimate fact remains that no mere words can give full expression to the truths of Jai ism which must be felt and reali ed within.

See - The Jaina Philosophy, page 15-16, By Dr. S. Radhakrishnan.

इस अध्याय में करने का मूल उद्देश्य लेखक का केवल यही रहा है कि हिन्दी जैन कृतियों के मूल में धर्म भावधारा या प्रेरणा के रूप में विद्यमान है। अतः इन रचनाओं का अध्ययन करने से पूर्व उनमें प्रयुक्त उक्त दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय भी पर्याप्त अपेक्षित है। अन्यथा कई स्थल उलझन बनकर रह जायेंगे। आगे कुछ कृतियों में प्रयुक्त कुछ बड़े मोटे मोटे जैन दार्शनिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। यों तो इन रचनाओं में सामान्यतः जैन धर्म के तत्व सर्वत्र मिल जाते हैं क्योंकि ये कृतियां जैन मुनियों, बहुधावान श्रावकों, जैन साधुओं तथा वीतरागी गृहस्थों(कुछ छोड़कर) द्वारा लिखी गई है। फिर भी यहां कुछ प्रमुख कृतियों के जैन सिद्धान्तों का परिचय दिया जा रहा है।

: कुछ प्रमुख हिन्दी जैन कृतियों द्वारा प्रणीत धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्त:

कृतियों में धार्मिक दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रवचन की परम्परा जैन धर्म की प्राचीनता की भांति ही चिर प्राचीन है। प्राकृत से लेकर पुरानी हिन्दी तक की लगभग सभी रचनाओं में किसी न किसी प्रकार जैन धर्म तथा दर्शन के स्थूल सिद्धान्तों का प्रवचन मिल जाता है। महावीर और बुद्ध ने प्राकृत भाषा को धर्म प्रचार का साधन बनाया। संस्कृत साहित्य भी जैनियों द्वारा प्रचुर मात्रा में रचा गया है। डा० हर्टल ने जैन संस्कृत साहित्य की महत्ता पर खूब प्रकाश डाला है।[1] इसी प्रकार संस्कृत के पश्चात् जैन प्राकृत साहित्य की लोक प्रियता पर डा० हर्मन जैकोबी और

---

1. Now what would Sanskrit poetry be without the large Sanskrit literature of the Jainas. The more I learn to know it the more my admiration rises - Jaina hasana Vol. I- No. 21 by Dr. Hartel.

डा० बार्नेट के विचार उल्लेखनीय है। [1]जैन धर्म एवं दर्शन का प्रचयन इन ग्रन्थों में ही नहीं शिला लेखों में भी मिलता है। डा० गोरिनों ने अपने ग्रन्थ में इन शिला लेखों का पर्याप्त विवेचन किया है। वस्तुतः पुरानी हिन्दी अथवा अपभ्रंशेतर रचनाओं में आये कुछ सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है:-

(१) <u>जिनदत्त सूरि स्तुतिः</u>

पल्ह की सं० ११७० की इस रचना में -गुरु का महत्व स्पष्ट होता है। जैन कवि गुरु की वन्दना और स्तुति को काव्य में आवश्यक समझते थे। इससे साधना के क्षेत्र में गुरु का स्थान जाना जा सकता है।

(२) <u>भरतेश्वर बाहुबली रास-</u>

शालिभद्र की सं० १२४१ की इस रचना में कर्मवाद, अहिंसा और सम्यकत्व तथा संसार की नश्वरता और वैराग्य का वर्णन किया गया है।स्याद्वाद भी इसमें देखा जा सकता है।

(३) <u>चन्दनबाला रास:</u>

आसगु ने इस कृति में उपासना के क्षेत्र में छही तिथिया और बारह व्रत, तथा षट कर्मों का महत्व बताया है। पूर्वभव का भी इसमें वर्णन मिलता है।

(४) <u>नेमिनाथ चतुष्पदिका-</u>

सं० १३२५ की इस कृति में कवि विनयचन्द ने राजुल के पूर्वभव और उसके कर्मों के कारण इस जन्म में पाये जाने वाले कष्ट का परिचय दिया है। नेमिनाथ का वैराग्य

---

1. (i) Had there not been Jain books belonging to the prakrit literature We should not be able now to form an idea of what Prakrita literature was which once was the rival of Sanskrit literature and certainly more popular than Sanskrit literature. We are much indeted to the Jainas for all the glimpses we get of the popular Prakrit literature - See Jaina Darshan page 24.

   (ii) Some day when the whole of the Jain scrip ures will have been critically edited and their contents lexically tabulated together with their ancient glosses, they will throw many lights on the dark places of ancient and modern Indian languages and literature - Jain Darshan page 24-25.

लेखा जैन दीक्षा, तप, कैवल्य, अहिंसा तथा मोक्ष पर प्रकाश डालता है।

(५) <u>पेथड़ तथा समरारास</u>-

१४वीं शताब्दी की इन कृतियों में वर्णित धर्म, मूर्तिपूजा तथा विविध व्रतों का विवेचन है। संघ वर्णन में भक्ति तथा श्रावकों के श्रद्धापूर्ण व्रत का विवेचन है।

(६) <u>नेमिनाथ तथा स्थूलिभद्र फागु</u>:

इन दोनों कृतियों में आत्म शुद्धि, तप तथा संसार की नश्वरता एवं आत्मा की शक्ति का परिचय मिलता है। निर्वेद तथा संयम की शिक्षा पर कवि ने पर्याप्त बल दियाहै। नियतिवाद की भी एक सफल झांकी इसमें प्रस्तुत है।

(७) <u>आणंदो</u>:

शुद्ध आध्यात्मिक काव्य है जिसमें, मन, उसकी वृत्तियाँ, शुद्धाचारण, विषय कैवल्य तथा उसके समानता पर पर्याप्त बल दिया गया है। विविध कर्मों, विविध व्रतों, नौ तत्वों, सम्यक्त्व, आध्यात्म भावना भक्ति, देवपूजा, स्वाध्याय, शाश्वत शान्ति, कैवल्य तथा मोक्ष वर्णित है। इसी प्रकार गुणाणुकुलकु में तप की शिक्षा का स्वरूप दिया गया है।

(८) <u>प्रद्युम्न चरित्र</u>:

अहिंसा तथा पूर्णभव का साकार रूप है। मोक्ष और कैवल्य के साथ संसार की नश्वरता, दीक्षा, तप और भव पाश का बंधन आदि तत्वों पर प्रकाश पड़ता है।

(९) <u>त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध</u>:

में रूपक पद्धति द्वारा कवि ने जितेन्द्रिय बनकर संसार की उपेक्षा की है। आत्म शुद्धि के बिना मोक्ष पाना कठिन है। स्याद्वाद अथवा अनेकान्त एवं अणुव्रत के सिद्धान्तों का प्रसार इस कृति में मिल जाता है। साथ ही बड़े मन के सिद्धान्तों को भी देखा जा सकता है।

(१०) <u>जिनोदय सूरि विवाहलो</u>-

विवाहलो संज्ञक रचनाओं में आध्यात्म विवाह की चर्चा है। दीक्षा के समय के कवि संयम श्री से विधिवत् विवाह करते थे। इसमें निरर्थक पापाचरण, निर्भरता, वैराग्य तथा संयम एवं जितेन्द्रिय बनने का उपदेश है।

(११) सुदर्शन सेठ शील प्रबंध-

१५वीं शताब्दी की इस कृति में कवि ने आठ कर्म, बारह व्रत, नौ तत्व, षट कर्म, पूर्व भव, गुण सेवी संसार नश्वरता, सम्यक शील, प्रत्यक्ष परोक्ष तथा मुक्ति के सिद्धान्तों को जनता में प्रचारित किया है।

(१२) गयसुकुमाल रास-

इस कृति में साधना की विविध स्थितियाँ, तप क्रिया, धर्मोपाख्यान पापाचरण, मिथ्या दृष्टि राग आदि सिद्धान्त मिल जाते हैं।

(१३) चिहुंगति चौपाई-

प्रस्तुत रचना संसार की नश्वरता, कर्मचक्र, ऊहापोह तथा भवछिन्दि के प्रति कराता अभिमुख है। आध्यात्म जीवन और आत्मा के प्रति राग को स्पष्ट करना इसका प्रमुख लक्ष्य है। कर्मों द्वारा प्राप्त विविध नरकों का वर्णन परलोक की स्थिति स्पष्ट करते हैं।

(१४) सिद्धाविलास पवाड़ों और पंच पांडव चरित रासु-

इन दोनों रचनाओं में विविध कर्मों से पाये कष्टों, पूर्व भव वृत्तों, दीक्षा संसार की नश्वरता, तथा अहिंसा, शान्ति और आध्यात्म चिंतन का उल्लेख है।

इस प्रकार अनेकानेक कृतियों में साहित्य के माध्यम से जन भाषा में इन रचनाकारों ने जैन धर्म का प्रचार किया है। जैन कवि धर्म प्रचारक पहले हैं साधक और कवि बाद में। इन दार्शनिक सिद्धान्तों की क्लिष्टता को समझने के लिए इन कवियों ने सरल रासों, सरल कथाओं तथा विविध दृष्टान्तों को अपना माध्यम चुना है। ताकि जनता इनका महत्व समझ कर जैन धर्म की ओर आकर्षित एवं दीक्षित हो।

इन सब कृतियों की प्राणधारा धर्म है। प्रकारान्तर से अन्त में कृत में शम या निर्वेद को प्रधान किया गया है। ताकि शृंगार, वीर आदि रसों का शम में समाहार हो सके।वस्तुतः इन सभी जैन सिद्धान्तों का अध्ययन इन रचनाओं द्वारा किया जा सकता है।

इस प्रकार युग की तत्कालीन परिस्थितियों को समझ कर जैन धर्म के इन दार्शनिक सिद्धान्तों का अध्ययन करने से इनरचनाओं के साहित्य की सम्पन्नता और काव्य के गुणों का मूल्यांकन हो सकता है। अतः हिन्दी जैन कृतियों के अध्ययन के पूर्व पृष्ठभूमि के रूप में जैन दर्शन के सिद्धान्तों का अध्ययन परम आवश्यक है।

अध्याय - ४

। अपभ्रंश का जैन साहित्य ।

॥ अपभ्रंश का जैन साहित्य ॥

अपभ्रंश का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। इस साहित्य का विशाल अंश जैन भंडारों में सुरक्षित है।अब जैन भण्डारों की पर्याप्त शोध हो रही है। अतः इस साहित्य की समृद्धि उत्तरोत्तर अधिक होती जा रही है। शोध के अभाव में एक बार प्रसिद्ध जर्मन विद्वान पिशल को को कहना पड़ा था कि "अपभ्रंश का विपुल साहित्य खो गया है"। वास्तव में उस समय सम्यक् शोध की कठिनाइयाँ चरम पर थीं। साथ ही जैनी लोग भी अपने भंडारों को दिखाना अपना अपमान समझते थे। सौभाग्यवश अब ऐसी बात नहीं है। गुजरात, दिल्ली, जयपुर, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, के भण्डारों से अपभ्रंश की अनेकों कृतियाँ मिलीं, और मिलती जा रही हैं। कारंजा के जैन भंडार से उपलब्ध रचनाओं के आधार पर अपभ्रंश भाषा में विरचित जैन साहित्य की सम्पन्नता निर्भ्रान्त सिद्ध हो जाती है।

अपभ्रंश भाषा के साहित्य का समय यद्यपि विद्वानों ने चौथी पांचवीं शताब्दी से १००० ई० तक निर्धारित किया है परन्तु वास्तव में इस साहित्य का एक सिंहावलोकन करने पर उद्भव काल में उपलब्ध रचनाएं बहुत पुष्ट नहीं प्रतीत होती। अपभ्रंश साहित्य के परिशीलन के लिए इसके इतिहास को दो काल में विभक्त किया जा सकता है:-

१- प्रारम्भिक काल (५०० ई० - ८०० ई० तक)

२- स्वर्णकाल - (८०० ई० -१५०० ई० तक)

१- प्रारम्भिक काल:

अपभ्रंश भाषा का उद्भव कब हुआ, यह तो ठीक से नहीं कहा जा सकता परन्तु सर्व प्रथम महर्षि पतंजलि रचित पाणिनी टीका में अपभ्रंश का उल्लेख मिलता है।[1]

१: भूयांसोपशब्दाः अल्पीयांसः शब्दा इति।एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोपभ्रंशा।तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोकेत्यादयो बहवोपभ्रंशाः

देखिए- पतंजलि कृत पाणिनी भाष्य निर्णयसागर संस्करण- पृ० १०-११।

साथ ही ई० पू० दूसरी शताब्दी में पतंजलि ने अनेक त्याज्य अपशब्दों का उल्लेख भी किया है। ऐसे शब्दों को अपभ्रंश कहा गया है। इधर दूसरी या तीसरी शताब्दी में हुए भरतमुनि ने अपभ्रंश को स्वतंत्र भाषा सिद्ध किया है। नाट्य शास्त्र में यह उल्लेख द्रष्टव्य है।[१] भरत ने साथ ही अपभ्रंश भाषा का क्षेत्र भी निर्धारित किया है।[२] इनके बाद अपभ्रंश के कुछ उकार बहुल शब्दों के प्रयोग- ललित विस्तार [३]नामक प्राचीन ग्रन्थ में भी मिलते हैं। नाट्यशास्त्र कारों ने अवश्य प्राकृत को ही भाषा कहा है और प्राकृत भाषा को भिन्न देशों के अनुसार लिखा है। वलभी के राजा धरसेन२ के शिला लेख में भी अपभ्रंश का उल्लेख मिलता है। साथ ही संस्कृत के प्राचीन विद्वानों - दंडी, भामह आदि द्वारा भी अपभ्रंश नाम के विविध प्रमाण मिलते हैं।

उद्योतन सूरि अपनी कुवलय माला में ९वीं शताब्दी के अपभ्रंश की प्रशंसा करते हैं। वाग्भट तो अपभ्रंश भाषा को देशी भाषा ही स्वीकार करते हैं।[५]

इसी तरह पुष्पदंत, नमि साधु, मम्मट, हेमचन्द्र आदि अपभ्रंश भाषा पर अपने मत दिए हैं जिनपर विस्तार में प्रकाश डाला जा चुका है।[६] किन्तु अपभ्रंश नाम का उल्लेख जितना प्राचीन मिलता है उतना उसका साहित्य नहीं मिलता। हाँ इन प्रमाणों के आधार पर इसके साहित्य का प्रारम्भ ५वीं शताब्दी से माना तो जा सकता है परन्तु ५वीं से ७वीं शताब्दी तक अपभ्रंश का उल्लेखनीय साहित्य अद्यावधि उपलब्ध नहीं होता। वस्तुतः ५वीं से ७वीं शताब्दी में अपभ्रंश का विपुल

१- शबराभीर चण्डाल सचरद्रविडोड्रजाः। हीना वनेचराणांच विभाषा नाटके स्मृताः नाट्यशास्त्र (१६-५०) इनमें आभीरी ही अपभ्रंश सिद्ध हुई है।
२- हिमवत्सिंधु सौवीरान्ये जनाः समाश्रिताः उकार बहुला तज्ज्ञेस्तेषु भाषां प्रयोजयेत्।। वही ग्रन्थ।
३- निर्वायमाडु, सुद्ध, पडु, स्थिदु वरदु, बंधु- आदि; आयणाकथियों-पृ० १५(१७-६१)
४- अपभ्रंश काव्यत्रयी: श्री लालचन्द्र भगवान गांधी
५- वाग्भटालंकार २,१ अपभ्रंशस्तु यच्छुद्धं तत्तद्देशेषु।
६- अपभ्रंश साहित्य - हरिवंश कोछड़- पृ० ४-५।

साहित्य लिखा गया होगा जो सम्भवतः शोध होने पर उपलब्ध हो। अतः ऐसी स्थिति में ८वीं से १३वीं शताब्दी में उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य के आधार पर ही इस साहित्य का मूल्यांकन किया जा सकताहै।वस्तुतः यह साहित्य ८वीं शताब्दी से ही उपलब्ध होता है।

२- स्वर्णकाल-

अपभ्रंश के ८वीं से १३वीं शताब्दी के इस काल को उपलब्ध -साहित्यके आधार पर स्वर्णकाल कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में स्वयंभू पुष्पदन्त, धनपाल, नयनंदी, धाहिल, धवल आदि अनेक महाकवि पैदा हुए हैं। अतः इस काल में उपलब्ध साहित्य बड़ा विपुल है। स्वयंभू अपभ्रंश के पहले कवि घोषित किए जा सकते हैं।स्वयंभू के पश्चात् तो अपभ्रंश काव्यों की परम्परा अत्यन्त समृद्ध होती गई और अपभ्रंश काव्यों की रचना १७वीं शताब्दी तक भी मिलती है। परन्तु १२वीं शताब्दी से ही अपभ्रंश के रूपों में पर्याप्त परिवर्तन होने लग गया था अतः ये परिवर्ती अपभ्रंश रचनाएं अधिक सबल और सशक्त नहीं प्रतीत होती।

स्वर्णकाल में प्रयुक्त अपभ्रंश के काव्य ग्रन्थों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है।
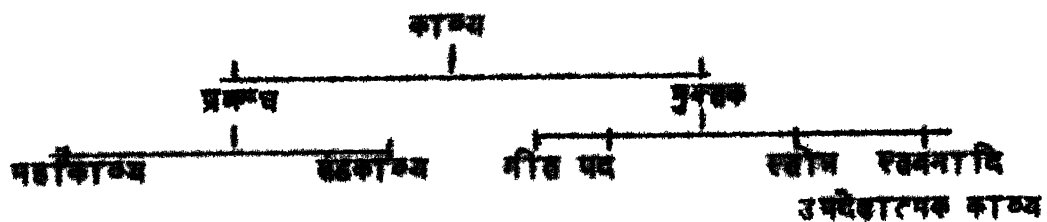
प्रबन्ध काव्यों की श्रेणी में आने वाले काव्य हैं:-

१- महापुराण

२- पुराण

३- चरित काव्य

४- रूपक काव्य

५- कथात्मक ग्रन्थ

६- संधि काव्य

७- रास

मुक्तक काव्य के अन्तर्गत आनेवाले काव्य हैं:-

१- गीत स्तोत्र स्तवन और पद

तथा

२- उपदेशात्मक स्फुट रचनाएं।

यहां इन समस्त प्रकार की रचनाओं का विवेचन संक्षेप में भी संभव नहीं है और न आवश्यक ही है, अतः इन रचनाओं की प्रमुख विशेषताओं पर हमें संक्षेप में विचार किया जा सकता है। वे इस प्रकार हैं:-

(१) रचनाओं की ऐतिहासिकता:

अपभ्रंश की रचनाएं प्रायः ऐतिहासिकता का प्रतिपादन भी करती हैं।इन रचनाओं के द्वारा तत्कालीन भाषा, समाज और संस्कृति के सभी तत्वों का ऐतिहासिक महत्व आंका जा सकता है। अपभ्रंश की कथा रूढ़ियाँ,वस्तु विन्यास, भक्ति और सौन्दर्य की सार्थकता और लोक जीवन से उसका सम्पर्क तथा संस्कृत की सभी परम्पराओं का निर्वाह अपभ्रंश की इन रचनाओं में मिलता है। अपनी प्राप्त थाती का इतिहास अपभ्रंश ने सुरक्षित रखा। भाषा के शास्त्रीय बंधनों में आकंठ निमग्न यह साहित्य देशी भाषाओं से सहज सम्पर्क स्थापित करने का अवसर प्राप्त कर सका। यद्यपि वर्णन की ये परम्पराएँ संस्कृत से शिथिल थीं परन्तु ऐतिहासिक पुरुषों, स्थानों तथा अन्य सामाजिक स्वरूपों से सीधे सम्पर्क स्थापित कर अपभ्रंश साहित्य ने वर्णन की लगभग सभी परम्पराओं की ऐतिहासिकता को अनुप्राणित रखा। अतः अपभ्रंश का संस्कृत के पश्चात् बंधन मुक्त होकर अपनी बाह्य स्वतंत्रता से कहना, एक ऐतिहासिक परिवर्तन का द्योतक है। संस्कृत में साहित्य के सभी अंग वर्णन की शास्त्रीय परम्पराओं से बोझिल हो चुके थे। डा० नामवरसिंह ने तत्कालीन इस स्थिति का पर्याप्त वर्णन कर दिया है। डा० नामवर सिंह के इन शब्दों से अपभ्रंश साहित्य की क्षमता की पूरी पूरी पुष्टि होती है कि - अपभ्रंश कालीन संस्कृत साहित्य उस नागर समाज की थकी हुई विचार धारा को प्रतिबिम्बित करता है जो अपना ऐतिहासिक महत्व समाप्त कर चुकने पर सामाजिक विकास में बाधक हो रहा था।इस अनुपात से तत्कालीन

संस्कृत साहित्य भी ग्रस्त दिखाई पड़ता है। क्या दर्शन क्या काव्य सर्वत्र पुराने तथ्यों की पुनरावृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। मौलिक उद्भावना की अपेक्षा टीका और व्याख्याओं में रस लिया जा रहा था, प्रमेय दूर था, प्रमाण चर्चा अधिक थी. दार्शनिक दुरूहता नव्य न्याय के बाद विवादों में मुखरित हो रही थी। समस्त चिन्तन तर्क जाल में उलझा था संस्कृत काव्य हृदय के सहज उच्छवास को छोड़कर पांडित्य प्रदर्शन तथा श्रम साध्य आलंकारिक चेष्टाओं में लीन था। लक्षण ग्रन्थों का बाहुल्य था। रस के मान दण्ड अद्भुत उक्तियों से आक्रान्त थे। प्रकृति चित्र, नाम परिगणन, और औपम्य विधान से बोझिल था। मानव अनुभूतियों की अर्थभूमि संकुचित होकर श्रृंगारिक लीलाओं से पंकिल हो रही थी। राजदरबार के उजड़े वैभव की बासी पुनरावृत्ति से वस्तु वर्णन धूमिल हो रहा था। चरित काव्यों में चरित्रों का व्यक्तित्व बंधे बंधाए टाइपों के रूप में ही हो रहा था, मुक्तक काव्य कृत्रिम और अलंकृत थे। प्रबन्ध काव्य आकार में विपुल होते हुए भी जीवन हीन थे।[1]

अपभ्रंश ने इन सभी रूढ़ियों का प्रयोग कर संस्कृत साहित्य की उलझी ग्रन्थियों को खोला है। इस संक्रांतिकालीन सभी सामग्री ने ऐतिहासिकता को अक्षुण्ण बनाए रखा है अतः इन ग्रन्थों की ऐतिहासिकता निर्भ्रान्त हो जाती है। ये कृतियाँ साहित्य के क्षेत्र में एक जागरुक परिवर्तन तथा ऐतिहासिक संक्रांति प्रस्तुत करती हैं। स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल और हेमचन्द्र इतिहास प्रसिद्ध कवि इतिहास में क्रांति उपस्थित करने वाले हैं। अतः इन कृतियों के ऐतिहासिक महत्व पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगा सकता।

(२) <u>प्रबन्धात्मकता</u>-

अपभ्रंश काव्यों में अनेक प्रबन्ध विद्यमान हैं, जिसप्रकार संस्कृत और प्राकृत के प्रबन्ध काव्यों ने राम और कृष्ण के जीवन को काव्य का आधार बना कर प्रबन्ध चातुर्य दिखाया और महाभारत और पुराण इन कवियों के आदर्श बने रहे, ठीक इसी प्रकार अपभ्रंश ने प्राकृत का अनुगमन किया व प्रबन्धों ने अलौकिक कथाओं को भी लौकिक रूप में ढाला है। ये जन समाज से गहरा सम्पर्क करने वाले हैं। संस्कृत की भारी रूप रेखा इन प्रबन्ध काव्यों में भी यत्र-तत्र वह छूटी नहीं रही। ऐसा लगता था जैसे प्रबन्ध के इस पक्ष को किसी पूर्व से विरासत पा लिया हो, जैसे कोई [illegible]

पुरुष शिथिल होकर पुनः शक्ति लाभ करता है ठीक इसी प्रकार अपभ्रंश के इन प्रबन्धों की स्थिति थी। धर्म प्रचार और महापुरुषों के चरित्र वर्णन में इन्होंने वैविध्य तो प्रस्तुत किया, परन्तु संस्कृत की एकरूपता तथा प्रभावान्विति की सम्यक् सुरक्षा कर सकने में ये काव्य सक्षम नहीं थे। हां इन प्रबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता है, इनका वैविध्य एवं इनका लौकिक परम्पराओं से समझौता। ये काव्य जन समाज के सच्चे लिये हैं। इनमें विभिन्न रूपों में वर्णित सामाजिक स्वरूप तथा मानव की लोकमूलक क्रियाओं और विभिन्न दृश्यों के सुन्दर चित्र प्राप्त होते हैं।[१]

घटना में वैविध्य, कौतूहल तथा कथात्मकता में विविध चमत्कार एवं आरोह अवरोह लगभग सभी द्रष्टव्य हैं। इन प्रबन्ध ग्रंथों को महाकाव्य के तत्वों की कसौटी पर देखने पर इनमें नायक वर्णन, लक्ष्य तथा वैविध्य, रस और अन्य सभी बातों का सम्यक् निर्वाह मिलता है परन्तु थोड़े थोड़े परिवर्तन के साथ। यद्यपि मूलतः इनके वर्णनक्रम, काव्य पद्धतियों घटना-विन्यास तथा आधार भूत तत्वों में पर्याप्त समानता है। परन्तु साहित्य की इस संक्रांति कालीन स्थिति ने महाकाव्य को लड़खड़ा दिया। उसमें जीवन्तपन संस्कृत की तुलना में कम हो गया। संस्कृत की ह्रासोन्मुख प्रकृति का प्रभाव इन पर पड़े बिना नहीं रह सका। और यही कारण है कि वही कथा रूढ़ियां, वही काव्य रूढ़िया, वही वर्णन क्रम, वही पारम्परिक घटनाक्रम और वही कथा का तारतम्य बना रहा। फिर भी धार्मिकता, प्रचार एवं जन समाज से सम्पर्क होने के कारण अपभ्रंश के प्रबन्धों में लोक जीवन का संस्पर्श सौन्दर्य, आध्यात्मिकता, कथात्मकता शक्ति, सौन्दर्य प्रवाह, सरलता और शृंखला बद्धता आदि गुण विद्यमान हैं। अपभ्रंश साहित्य पर शोध करने वाले विद्वानों ने यद्यपि अपभ्रंश काव्यों की प्रबन्धात्मकता और साहित्य सौन्दर्य को संस्कृत के काव्यों की अपेक्षा दुर्बल कहकर संदेह की दृष्टि से देखा है परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। इस साहित्य का मन्थन अभी तक नहीं हो सका है। संस्कृत की परम्पराएं तो उनमें अवश्य सुरक्षित

१- देखिए हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग पृ० ९-७ द्वारा डा० नामवर सिंह

२- देखिए हिन्दी साहित्य का आदिकाल- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा दिए हुए कवि तत्वों का विस्तृत परिचय।

३- साहित्य संदेश, वर्ष १६ अंक १, पृ० ९०-९२।

है परन्तु ८वीं से १३वीं शताब्दी के संक्रातिकालीन समय में ऐसे सुन्दर महाकाव्य खंडकाव्य, रोमांटिक काव्य तथा मुक्तक काव्य ग्रन्थ मिलना हमारे प्राचीन साहित्य की अपूर्व सम्पन्नता का द्योतक है। वर्णन परंपरा की काव्यात्मकता, छन्द, अलंकार रस किसी भी दृष्टि से ये काव्य कमजोर नहीं पड़ते। हां संस्कृत काव्यों से तुलना करने पर इनमें अपेक्षाकृत दोष दर्शन का आरोप लगाया जा सकता है। कथा और चरित्र ग्रन्थों में स्वयंभू का पउम चरिउ हरिवंश पुराण, महापुराण [1] धनपाल की भविसयत्त कहा [2] हेमचन्द्र कृत त्रिषष्ठि शलाका चरित, धवल कवि का हरिवंश पुराण [3] अजैन कृतियों में पृथ्वीराज रासो के अपभ्रंश के अंश, रइधू के पद्म और बलभद्र पुराण [4] यशःकीर्ति का पाण्डु-पुराण तथा हरिवंश पुराण [5] और श्रुतिकीर्ति का हरिवंश पुराण पुष्पदन्त का जयकुमार चरिउ, जसहर चरिउ [6], वीर कवि का जंबूस्वामी चरिउ, [7] नयनंदी का सुदंसण चरिउ [8] कनकामर का करकंड चरिउ, सागरदत्त का जम्बूस्वामी चरिउ [9] प्राकृत के सुपासनाह चरिउ में अपभ्रंश के अंश, देवचन्द के सुलसाख्यान [10] और वर्धमानसूरि का वर्धमान चरित, धाहिल कवि का पउमसिरि चरिउ [11]; श्रीधर कवि का पासनाह चरिउ, सुकुमाल चरिउ, भविसयत्त चरिउ, तथा सुलोचना चरिउ; [12] कवि सिंह रचित पुज्जुण्ण चरिउ(प्रद्युम्न चरित) हरिभद्र विरचित सनत्कुमार चरित [13]

१- देखिए: अपभ्रंश साहित्य: डा० हरिवंश कोछड़ पृ० ५३-९४।

२- गायकवाड़ ओ०सी०-सम्पादक श्री सी०डी०दलाल और गुणे तथा हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग पृ० २२९ डा० नामवर सिंह।

३- दिगम्बर जैन मन्दिर बड़ा तेरह पंथियों का भंडार-जयपुर में सुरक्षित तथा इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़ भाग १, १९२५ प्रो०हीरालाल जैन का निर्देश।

४- आमेर शास्त्र भंडार जयपुर,।

५- अपभ्रंश साहित्य: डा० कोछड़- पृ० ११८-१२७

६: वही पृ० १३०-१३१

७- आमेर शास्त्र भंडार जैन शोध संस्थान, जयपुर।

८- अपभ्रंश प्रकाश: पृ० ३० देवेन्द्र कुमार,एम०ए०,प्रकाशक वर्णीग्रन्थमाला,काशी-१९५६

९- अपभ्रंश प्रकाश, पृ० ९९-३० देवेन्द्रकुमार एम०ए०,प्रकाशक वर्णीग्रन्थमाला काशी।

१०- वही।

११- अपभ्रंश साहित्य पृ० २०७-२०८ डा० कोछड़।

१२- वही, आमेर भंडार, जयपुर।

१३- अपभ्रंश साहित्य, पृ० २२३।

लखमदेव कृत णिमिणाह चरिउ, बाहुबली चरिउ तथा यशःकीर्ति का चन्दप्पहं चरिउ [1] तथा रयधू का सुकोश चरित, सन्मति नाथ चरित तथा १७वीं शताब्दी का भगवतीदास का मृगांक लेखा चरित तथा और भी अनेक अप्रकाशित रचनाएं जो लेखक को उत्तर अपभ्रंश के साहित्य की शोध करते समय उपलब्ध हुई हैं, अपभ्रंश की प्रौढ़ काव्यात्मकता की प्रतीक हैं। वस्तुतः प्रबन्ध-शृंखला और उसके तत्वों के आधार पर इन अपभ्रंश काव्यों का भाव और कलापक्ष उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जासकता। क्योंकि परवर्ती पुरानी हिन्दी के सारे काव्यों का प्रसाद अपभ्रंश की इन वर्णन परम्परा, काव्यात्मकता तथा वैविध्य पर ही निर्भर है।

अस्तु अपभ्रंश प्रबन्धों में जैन कवियों ने कथा नायक किसी तीर्थंकर को अथवा महापुरुष को ही चुना है। इन प्रबन्ध काव्यों में से अनेक काव्यों की रचना के मूल में साहित्यिक संकल्प है।

<u>कला पक्ष-</u>

अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों, तथा उपदेश प्रधान अन्य सभी कृतियों का कलापक्ष, छंद, अलंकार, शब्द चयन भाषा आदि सभी रूपों में पुष्ट है। ये कवि कला के सच्चे पारखी थे। जैन कवियों को काव्य ग्रन्थों सेइतना अधिकप्रेम था कि अनेक अजैन कवियों के ग्रन्थों को भी इन कवियों ने अपने भंडार में सुरक्षित रक्खा है। बौद्ध रचनाएं, अब्दुल रहमान का संदेश रासक, तथा बीसलदेव रास ग्रन्थ इस बात के ज्वलंत उदाहरण है।

अपभ्रंश काव्य पद्धतियों में दोहा चौपाई पद्धति को प्राधान्य मिला है। इन काव्यों में-दोहक, दोधक, अडिल्ल, दोहा, इड्डलिका पद्धड़िका, रास, कुण्डली, वस्तु, चच्चर, रड्डा, रासाकुल मात्राकुलक, पज्झटिका, प्लवंग भुजंगप्रयात आदि अनेक छन्द मिलते हैं। यही नहीं, छन्दों और वर्णन की काव्य पद्धतियों ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल तक को प्रभावित किया है।

इसी प्रकार कला-पक्ष में स्वाभाविक अलंकारों, शब्द चयन की अनुप्रासात्मिकता नादात्मकता तथा चमत्कारात्मकता का अनुरंजन दृष्टव्य है। इस प्रकार स्वयंभू, योगीन्दु हेमचंद्र धनपाल, अब्दुल रहमान, के साथ साथ बौद्धों ने बौद्धगान और दोहा,

---

1- वही, पृ० [illegible]।

चर्यापद, दोहाकोश तथा ब्राह्मणों तक ने अपभ्रंश में काव्य रचना की है।अतः इनका कला पक्ष भावपक्ष से निर्बल नहीं है। छंद की चारण शैली में लिखे अपभ्रंश के अंशों से अपभ्रंश भाषा की क्षमता का परिचय मिलता है।

काव्य रूप:

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में जिस प्रकार काव्य पद्धति और काव्य रूपों में वैविध्य मिलता है ठीक उसी प्रकार अपभ्रंश में भी काव्य रूपों का वैविध्य मिल जाता है। चरित, रास, आख्यान, चर्चरी, कहा, सन्धि काव्य लोक कथा काव्य आदि काव्य रूप मिलते हैं। अपभ्रंश के इन काव्य रूपों का मूल इन पुरानी हिन्दी के काव्य रूपों में दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि इसमें से अनेक काव्य रूप अपभ्रंश में नहीं मिलते परन्तु उनमें से प्रकारान्तर से उनका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। काव्य पद्धतियों में भी अपभ्रंश की इन वर्णन पद्धतियों का वर्णन पुरानी हिन्दी की रचनाओं के मूल में है। रूपक काव्य, संधिकाव्य तथा चरित काव्यों में ये काव्य रूप स्पष्ट दृष्टव्य हैं। मुक्तक काव्यों में गीति, स्तोत्र स्तवन, दोहा, सज्झाय आदि अनेक काव्य रुप मिल जाते हैं। इस तरह वैविध्य मूलक काव्य रूप अपभ्रंश की इन कृतियों में देखने को मिलते हैं। काव्य रूपोंका यह वैशिष्ट्य अपभ्रंश की अपनी विशेषता है। पुरानी हिन्दी में जो सैकड़ों प्रकार के काव्य रूप मिलते हैं उनमें वैविध्य प्रस्तुत करने की प्रेरणा अपभ्रंश के इन्हीं काव्य रूपों ने दी है।

लौकिक प्रबन्ध और उपदेश प्रधान रचनाएं।

अपभ्रंश में कुछ लौकिक प्रबन्ध भी मिल जाते हैं परन्तु वे संख्या में बहुत कम हैं। इन धर्मनिरपेक्ष प्रबन्धों में विप्रलंभ शृंगार का प्रसिद्ध काव्य संदेशरासकलिखा जासकता है।इस काव्य में कवि ने विरहिणी नायिका के हृदय के समस्त दर्द को विरह के रूप में वाणी दी है। पूरा काव्य एक सुन्दर लौकिक प्रबन्ध है जो विरहमयी नायिका की वेदनाओं का स्पन्दन है। विद्यापति की कीर्तिलता को भी इस प्रकार की रचनाओं में स्थानदिया जा सकता है। इनरचनाओं को रस प्रधान लौकिक एवं ऐतिहासिक प्रबन्ध कहा जा सकता है। ऐसे काव्यों में कवि की भावुकता तथा स्वाभाविक रंगों का सुन्दर चित्रण मिलता है।

उपदेश प्रधान रचनाओं में आध्यात्मिक रचनाएं प्रमुख हैं। इनमें कवि ने

संसार की नश्वरता मुक्ति का स्वरूप, आत्म दर्शन, आत्म ज्ञान, कर्म विपाक, विषय निवृत्ति और कैवल्य का सुन्दर वर्णन किया है। ऐसी रचनाओं में योगीन्दु का परमात्म प्रकाश और मुनिराम सिंह कृत पाहुड़ दोहा प्रमुख कृतियाँ हैं। आध्यात्मिक उपदेशों के साथ जैन कवियों ने आत्म शुद्धि और सदाचार को भी पूर्ण महत्व दिया है। नीति और सदाचार से ही मनुष्य जितना आत्मनिष्ठ साधक बनकर मनोविकारों को दूर कर सकता है उतना तप और तितिक्षा तथा बाह्याडंबर से नहीं। ऐसी रचनाओं में देवसेन का सावयधम्म दोहा, जिनदत्त सूरि का काल स्वरूप कुलक और उपदेश रसायन रास प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य धर्म विश्लेषण तथा प्रचार करना है।

उपदेश प्रधान रचनाओं में दूसरा स्थान स्तोत्र स्तवन सम्बन्धी रचनाओं का आता है। अपभ्रंश के संधिग्रन्थ, अभय देवसूरकृत त्रिभुवन स्तोत्र तथा धर्मसूरि स्तुति ऐसी ही रचनायें हैं। जिनदत्त सूरि चर्चरी भी प्रशस्ति गान तथा स्तुति है।

अपभ्रंश में रची कुछ उपदेश प्रधान रचनायें बौद्धों और सिद्धों की भी मिलती हैं। जिनमें केवल बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। बौद्धों ने इन मुक्तक रचनाओं में कर्मकाण्ड रूढ़िवादी दृष्टिकोण तथा बाह्याडंबर की खूब निंदा की है। इन्हीं बौद्धों में दोहाकोश, चर्यापद तथा कश्मीर दर्शन पर लिखे कुछ शैवों के सिद्धान्त भी मिलते हैं। जिनमें कई फुटकर पदों में विषय वैविध्य, भावों की तीव्रता तथा अभिव्यंजना की क्षमता मिलती है। इस प्रकार जैन अजैन दोनों अपभ्रंश प्रधान काव्यों में उपदेश प्रधान, धर्म प्रधान, नीति तथा सदाचार प्रधान, भावनायें ही अधिक मिलती हैं। ये सब उपदेश जनता को सदाचारी बनाने के लिए जनता की ही भाषा में लिखे गये थे अतः जैन कवियों ने अपभ्रंश भाषा को ही अपनाया। क्योंकि अपभ्रंश उस समय जन साधारण की बोल चाल की भाषा थी।

जैन कवियों ने जितने भी काव्य लिखे हैं उन सभी में धर्म प्राणधारा के रूप में विद्यमान है। उदाहरणार्थ चरित काव्यों को ही लें इनमें कथात्मकता प्रेमाख्यान एवं लोक भावनायें हो रहती ही हैं, कवियों ने उनमें स्थानीय रंग, समाज की परंपरायें, प्रेम तथा लोक कथानकों की शैलियों द्वारा वर्णन बना डाला है। धर्म

उनके मूल में है। प्रेरणा के रूप में यह धर्म इन रचनाओं में विद्यमान है।कहीं कहीं तो यह धर्म रचनाओं की पृष्ट भूमि तक बन जाता है। कर्म विपाक, पुनर्जन्म आदि जैन दर्शन की विविध धाराओं का जन समाज में प्रचार करने के लिए जैन कवियों काव्यों में अनेक स्थलों पर उपदेष्टा बनता दीख पड़ता है। उपदेश और जैन दर्शन के ये तत्वउसे कवि से प्रचारक बना देते हैं। डा० कोछड़ के अनुसार "रचना का आधार जैनियों के कर्म विपाक का सिद्धान्त प्रतीत होताहै। इसी को सिद्ध करने के लिए जैन कवि इतिहास के इतिवृत्त कीउपेक्षा कर उसे स्वेच्छा से तोड़ मोड़ देते हैं। इसी कर्म सिद्धान्त की पुष्टि के लिए जैन कवि स्थल स्थल पर पुनर्जन्मवाद का सहारा लेता है।अपभ्रंश साहित्य की रचना की पृष्ट भूमि प्रायः धर्म प्रचार है। जैन लेखक प्रथम प्रचारक है फिर कवि"।

यह कहां तक अक्षरशः सत्य पर आधारित है, नहीं कहा सकता, हां यह कहा जा सकता है कि प्रचारक होते हुए भी जैन कवियों ने समाज के उत्थान में सदाचार तथा नैतिक निष्ठाओं की स्थापना की है, तथा उन निष्ठाओं को कवि ने विविध कथाओं और काव्य के आधार पर ढाला है।

इस प्रकार इन रचनाओं के मूल में धर्म भावधारा बनकर आता है।येकेवल काव्य ही नहीं है इनमें रचनाकारों का साहित्य-सृजन-संकल्प मिल जाता है।परन्तु फिर भी ये काव्य धर्म से अलग कदापि नहीं किए जा सकते।

अपभ्रंश काव्यों में जैन कवियों ने प्रेम का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया है। प्रेम के कामी प्रतिनायक का विधान भी पर्याप्त मिल जाता है। कवि ने कथा विन्यास और घटनाओं को चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए विद्याधरों, गंधर्वों, यक्षों,आदि की सृष्टि की है, जो कवियों की काल्पनिक तथा मौलिक सृष्टि है। महाभारत और पुराणों की विभिन्न प्रचलित कथाओं में जैन कवियों ने अपने मौलिक परिवर्तन किए हैं, तथा उन प्रचलित रूपों से उनके कथानक सम्बन्धी प्रयास मौलिक तथा अभिनूतन हैं। रामायण और महाभारत के अनेक दुष्ट प्रवृत्ति वाले अनेकों पात्रों को इन जैन कवियों ने सहानुभूति और स्नेह की दृष्टि से देखकर ऊंचा उठाया है, अतः उनके खल पात्र भी आदर्श बन गए हैं।

रस:

अपभ्रंश रचनाओं में प्रधानतः तीन रसों का ही वर्णन मिलता है:-

(१) शान्त,

(२) वीर और

(३) शृंगार।

शान्त रस अपभ्रंश रचनाओं का रस राज है। शेष रसों में कवि ने यौवन में शृंगार, युद्ध में वीर तथा त्याग वैराग्य और शम में निर्वेद आदि रसों की निष्पत्ति की है। इन रचनाओं की भाषा ध्वन्यात्मक, माधुर्य प्रवीन, रसीले सरस तथा भावनापूर्ण है। अलंकारिक योजना भी पूर्णतया वैज्ञानिक है। उपमान में भी कवियों ने परम्परा और रूढ़ि को तोड़ा है तथा लोक जीवन में घुले हुए उपमानों, आवृत्ति मूलक सरस शब्दों तथा लोक प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग किया है अतः जैन कवि यदि एक ओर धार्मिक और उपदेश प्रधान हैं तो दूसरी तरफ लौकिक जीवन के परिप्लावित स्वाभाविक अनुभूतियों से भी युक्त हैं। अतः अपभ्रंश की ये रचनाएं भाव और कला दोनों ही पक्षों में उत्कृष्ट हैं।

अध्याय:- ५

।। हिन्दी के आदिकाल का जैनेतर(लौकिक) साहित्य ।।

---::००::---

॥ हिन्दी के आदिकाल का जैनेतर(लौकिक) - साहित्य ॥

आदिकालीन रचनाओं में लौकिक काव्य दृष्टि से रची हुई कृतियां भी उपलब्ध होती है। जैन कवियों द्वारा प्रणीत अद्यावधि जितने काव्य उपलब्ध हुए है उनके काव्य सौष्ठव और भाषा शिल्प का अनुमान करने के लिए इन जैनेतर कवियों के काव्यों का यहां एक संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। इन काव्यों की रचना के मूल में धर्म प्रधान दृष्टिकोण बहुधा उपलब्ध नहीं होता। इन रचनाओं में लगभग सभी सुन्दर प्रबन्ध है। इन कृतियों की विषय वस्तु सुगठित है। इनका पद-लालित्य द्रष्टव्य है। अलंकार तथा छन्दो की दृष्टि से भी ये जैनेतर (लौकिक) कृतियां तत्कालीन वर्णन पद्धतियों तथा काव्य परम्पराओं में पर्याप्त साम्य रखती है। प्रायः ये सभी रचनायें प्राचीन राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती की है।कुछ रचनायें प्राचीन ब्रज की भी मिलती है।यह भी सम्भव है कि इन जैनेतर और जैन कृतियों ने एक दूसरे को प्रभावित भी किया हो। इसलिए संक्षेप में हिन्दी के इस जैनेतर साहित्य का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। इस लौकिक साहित्य का अध्ययन दो रूपों में किया जा सकता है:-

(१) जैनेतर/लौकिक काव्य तथा

(२) (लौकिक) गद्य रचनायें।

(१) लौकिक काव्य के अन्तर्गत आने वाले काव्य इस प्रकार है:

<u>शिलालेख</u>-[१]

आदिकालीन हिन्दी जैन विशिष्ट काव्य रूपों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान दसवीं शताब्दी के बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूज़ियम के एक शिलालेख का है। आदिकालीन रचनाओं का प्रारम्भ दसवीं शताब्दी से ही करने का प्रमुख भेद इसी

१- मूल रूप बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्युज़ियम में सुरक्षित।

शिलालेख की है। इस शिलालेख का उल्लेख आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी [1] और डा० हरिवंश कोछड़ [2] ने अपने ग्रन्थों में किया है। डा० हरिवंश कोछड़ ने लिखा है- "संस्कृत और प्राकृत में लिखे गए अनेक शिलालेख उपलब्ध होते हैं किन्तु अपभ्रंश में लिखा हुआ कोई शिलालेख अभी तक प्रकाश में नहीं आ सका। बम्बई के संग्रहालय में धारा से प्राप्त एक अपभ्रंश शिलालेख विद्यमान है।[3]"

डा० कोछड़ का शिलालेख के अस्तित्व सम्बन्धी यह कथन तो सही है परन्तु उनका यह कहना युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता कि यह शिलालेख अपभ्रंश का है। डा० कोछड़ को इस शिलालेख का पाठ सम्भवतः उपलब्ध नहीं हो सका होगा। इसीलिए उन्होंने इसे अपभ्रंश का लिख दिया है। वास्तव में यह शिलालेख पुरानी हिन्दी का है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपने ग्रन्थ में इस शिलालेख को अपभ्रंश का लिख दिया है। वास्तव में सम्प्रति इस उपलब्ध पाठ से शिला लेख सम्बन्धी तथाकथित बातों का सहज ही निराकरण हो जाता है।

लेखक को प्रस्तुत शिलालेख प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई के संचालक डा० मोतीचन्द्र की कृपा से प्राप्त हुआ। प्रस्तुत शिलालेख का अलग अलग डा० हरिवल्लभ भायाणी तथा डा० माता प्रसाद गुप्त सम्पादन कर रहे हैं। लेखक को इसके पाठ के अंश डा० माता प्रसाद गुप्त और डा० भायाणी से प्राप्त हुए हैं। एतदर्थ लेखक उनका आभारी है। श्री डा० मोतीचन्द्र का विचार है कि इसमें एक देशी बैन भाषा का वर्णन जिसमें देश के विभिन्न भागों से विभिन्न प्रकार की स्त्रियों ने भाग लिया इसका लेखक रोडराउल (Roderavel) है तथा यह शिलालेख देशी भाषा के विभिन्न रूपों में लिखा गया है और इसका पाठ समकालीन प्रचलित देशी भाषाओं के विभिन्न

१- हिन्दी साहित्य की भूमिका; डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २२ सन् १९४८
२- अपभ्रंश साहित्य: डा० हरिवंश कोछड़, पृ० ३५ सन् १९५६।
३- वही ग्रन्थ वही पृष्ठ।

कठिन और अस्पष्ट शब्दों से भरा हुआ है। डा० मोतीचन्द्र का पत्र यहाँ अविकल रूप से उद्धृत किया जारहा है।[१] डा० मोतीचन्द्र को उक्त सूचना डा० भायाणी से प्राप्त हुई, ऐसा उनके लेखन से स्पष्ट होता है।

डा० भायाणी के अनुसार भी इस शिलालेख में विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं के शब्द हैं। उनका मत है कि म्यूजियम के शिलालेख की भाषा अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। अनेक स्थलों पर अर्थ अस्पष्ट है। बीच में एक कोने से दूसरे कोने तक हर पंक्ति में कुछ अक्षर त्रुटित हैं।[२]

डा० मोतीचन्द्र तथा डा० भायाणी के उक्त मतों में अपेक्षाकृत असंगति प्रतीत होती है। वास्तव में ये शिलालेख विभिन्न प्रकार की देशी भाषाओं में नहीं लिखा गया है न तो कवि का नाम ही रूद्रावल है। साथ ही इसमें किसी भी ऐसी जैन यात्रा का वर्णन नहीं है, जिसमें विभिन्न प्रादेशिक स्त्रियों ने भाग लिया हो। लेखक के शोध निर्देशक डा० माता प्रसाद गुप्त ने इस शिलालेख के पाठ का सम्पादन कर दिया है। उन्हीं के द्वारा लेखक को इसके पाठ तथा भाषा के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

१- I am in receipt of your letter dated 28th Aug.,1958. The inscription in question, is really a difficult one and,therefore, I do not wonder theat you have not been able to make out any thing of it. It deals with a Jaina Yatra in which women from different parts of the country participated. It is remarkable that the poet who is perhaps, named as Rodaraval uses different forms of Desi-bhasha prevalent in these parts of the country for describing women folk. The difficulty of interpretation as Dr.Bhayani has informed me, is due to the fact that the text is full of obscure words and terms derived from the contemporary. Desi-bhashas. Perhaps Dr.Bhayani may be able to enlighten you more on the this subject.

Sd/. Motichandra-Director, Prince of Wales Museum of Western India. letter No. 73(1)/70/Bombay 3rd September,1958.

२- देखिए डा० [illegible] भायाणी का दिनांक ४-१-५८ का भारतीय विद्याभवन बम्बई से श्री अगरचन्द नाहटा को लिखा पत्र, जिसकी मूल प्रति लेखक के पास सुरक्षित है।

वास्तव में यह शिलालेख दसवीं शताब्दी का है। इसका प्राप्ति स्थान सम्भवतः धार ही रहा होगा।क्योंकि इसमें जितना भी वर्णन मिलता है वह सब मालव का ही है। प्रस्तुत शिलालेख में कवि का कहीं भी पता नहीं चलता। इस शिलालेख की नायिका का नाम राउल है।बहुत सम्भव है कि डा० भायाणी तथा डा० मोतीचन्द्र ने इस राउल शब्द को रोहावल पढ़ लिया हो। क्योंकि रोहावल और राउल शब्द में पर्याप्त साम्य है।

शिलालेख की वर्ण्य वस्तु श्रृंगारिक है। इसकी नायिका राउल नवयौवना है तथा विवाह करके अपने पति के घर जाती है। कवि ने विवाह से पूर्व और पश्चात् आद्योपान्त उसके श्रृंगार का अपूर्व काव्यात्मक कलात्मक एवं चमत्कार पूर्ण वर्णन किया है। अतः राउल का नखशिख वर्णन ही पूरे शिलालेख की वर्ण्यवस्तु है। आधा शिलालेख पद्य में तथा आधा गद्य में उपलब्ध होता है। गद्य में उपलब्ध वर्णन से उसके पद्य के वर्ण्य अन्य साम्य का अनुशीलन किया जा सकता है। डा० माता प्रसाद गुप्त का मत लेखक के मत की पुष्टि में उद्धृत किया जा सकता है।

डा० गुप्त का इस शिलालेख की भाषा के सम्बन्ध में मत है कि इसकी भाषा पुरानी -हिन्दी है। उनके मत से इसमें विभिन्न प्रदेशों की देशी विभाषाओं के विभिन्न अस्पष्ट शब्दों का चयन बिल्कुल नहीं है। ये शब्द सरल, सरस तथा सहज ग्राह्य हैं। कुछ शब्द अवश्य ही दुरूह हैं, जिनका अर्थ कुछ अस्पष्ट तथा सहज ग्राह्य नहीं है। जो भी हो डा० माता प्रसाद गुप्त और डा० हरिवल्लभ भायाणी दोनों विद्वान जब इस शिलालेख का सम्पादन प्रकाशित करेंगे तभी इस सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्यों को जाना जा

सकेगा। डा० गुप्त शीघ्र ही इसका पाठ, अर्थ तथा टिप्पणियां प्रकाशित करने वाले हैं।

शिलालेख के कोने त्रुटितऔर खंडित हो गए हैं। शिलालेख का प्रतिबिम्ब (Estampage) बहुत खंडित है तथा स्पष्ट नहीं आ पाया है। अनेक पंक्तियां त्रुटित हैं अतः पाठ स्पष्ट तथा सार्थक नहीं बन पाता फिर भी प्राप्त पंक्तियों के आधार पर काव्य और गद्य दोनों अंशों की सम्पन्नता, कलात्मकता, अर्थों की प्रभविष्णुता, प्रेषणीयता तथा पदलालित्य और काव्यात्मक सरसता की परीक्षा की जा सकती है। कलात्मक गद्य और गद्यकाव्य पर विचार करते हुए लेखक ने गद्य की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत ग्रन्थ में उद्धृत की हैं उनसे इससे गद्य की सम्पन्नता, काव्य के उपमान, मौलिक वर्णन तथा सुन्दर चित्रों का परिचय मिल सकेगा।[1]

कवि ने काव्य तथा गद्य में वर्णन की पुनरावृत्ति की है दोनों में लगभग उसी प्रकार का मिलता जुलता वर्णन है। नायिका राउल के केश, कपोल, नाक, दांत, आभूषण, नूपुर आदि सभी के वर्णन अत्यन्त सरस तथा स्पृहणीय हैं। काव्य की दृष्टि से कवि केउपमान सर्वथा मौलिक तथा अछूते हैं। वर्णन अपने में प्रासादिक तथा सांगोपांग है जिसे दृश्यकारी वर्णन का श्रृंगार दृष्टव्य है। भाषा तथा काव्य की प्रवाहिकता के लिए इस विशिष्ट काव्य रूप का एक उद्धरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है:-

> पहु कानोडउं काइसउ फांफइ, बेहु बम्हणपउं ना जउ देखइ
> बाउं डब वो राउ (लु वो) हइ, थइनउ सो पथ कोन्हु न मोहइ
> डवरउ आंखिहिं काचहु दीमइ, जो जाणइ सो थइ नउ वानउ
> करडिम्ब अहुंका वडिअइ कानहिं, काइं करेवउ सोहहिं मानहिं।

१- देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ का अध्याय ५- हिन्दी के आदिकाल का अवहट्ट(लौकिक) साहित्य- में लौकिक गद्य रचनाएं, विवरण

२- प्रस्तुत उद्धरण तथा उसका अर्थ लेखक को डा० माताप्रसाद गुप्त के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।

(अर्थ:- इस प्रकार कमलावद्ध होने को किसलिये, यदि तू हमारे वेश को नहीं देखती है। हे राउल, जो (तू ऐसी) आपूर्ण शोभित हो रही है, यहाँ वह व्यक्ति नहीं है जो (तू ही) बता मोहित न हो जाय।(तेरी) आँखों में जो अन्य काजल दिया हुआ है, जो कुछ मात(?) है वह उसका सवर्ण नहीं है।(तेरे) कानों में बांकी करडिम (करपत्रिका) इस प्रकार चढ़ी हुई है कि अन्यों (अन्य अंगों) को शोभा के लिए क्या कर्तव्य है?)

उक्त उद्धरण से भाषा की सरलता,अपभ्रंश की उकार बहुला प्रवृत्ति तथा वर्णन की प्रासादिकता तथा नखशिख की सम्पन्नता स्पष्ट है।इसी तरह के अन्य कई उद्धरण दिए जा सकते हैं। इस तरह यह शिलालेख १०वीं शताब्दी की आदिकालीन रचनाओं की सबसे प्राचीन सरस एवंकाव्यात्मक प्रवाह से परिपूर्ण है। गद्य तथा पद्य दोनों रूपों में इस शिला लेख का महत्वपूर्ण योग है।

प्रस्तुत शिलालेख का कवि अजैन है। इसका पूरा पाठ प्रकाशित हो जाने पर सम्भवतः विद्वान लोग इसके लेखक के सम्बन्ध में अन्य मत प्रस्तुत कर सकें। यों जैन परम्परा का इसमें पूर्ण निर्वाह भी नहीं मिलता तथा अजैन शैली के वर्णन शिल्प के विशिष्ट तत्वों का भी उल्लेख नहीं किया जा सकता। हां अनुमान से यह कहा जा सकता है कि जैन कवि ऐसे उद्दाम रूप में नखशिख वर्णन करते नहीं देखे गए हैं क्योंकि उनकी वर्णन प्रवृत्ति प्रकृत्या भिन्न होती है पर फिर भी रास, फागु तथा अन्य रचनाओं में जैन कवियों के नखशिख एवं अन्य शृंगारिक वर्णनों को देखकर इस धारणा पर भी सन्देह होने लगता है। यों डा० माता प्रसाद गुप्त का मत है कि यह अजैन रचना है। नायिका राउल एक सम्पन्न सेठी के परिवार की नवीन लड़की है ऐसा प्रतीत होता है। यद्यपि उसकी वेश भूषा, परिधानों एवं आभूषणों में किसी प्रकार की सामन्ती रंगीनी नहीं है परन्तु कवि ने वर्णन के प्रसंगों में नायिका के नैसर्गिक सौन्दर्य, रूप एवं आभूषणों का रंग भर उनमें अपूर्व आलंकारिकता तथा लास्य भर कर सहज निखार दिया है।

<u>हंसाउली</u>[१]

सं० १४१० में विरचित इस कृति के रचयिता असाइत हैं।रचना का नाम हंसाउली है। कवि असाइत ने हंस और वच्छ के चरित्र को लेकर इस प्रबन्ध की रचना की है।

कवि ने रचना का समय और विषय का परिचय प्रारम्भिक पंक्तियों में बड़ी ही कूट शैली मेंदिया है। रचना की कथा लोक आख्यान पर आधारित है।रचना प्रकाशित है श्री मोहन लाल दली चंद देसाई ने भी इस रचना विषय में अपने ग्रन्थ में चर्चा की है।[1]

संवत् १४ चक्र (?) चंद्रमुनि अंक, वद हंसवर- चरित अबंध।

बावन वीर कथा रस लीज, यह पवाडु असाइत कहिउ।

इस प्रकारइसका रचना काल १४ चंद -१ मुनि = ७ = सं० १४१७ है परन्तु चक्र =३और मुनि = ७ लेने पर इसके रचना की सम्भावना सं० १४३७ भी हो सकती है। कवि के अजैन होने का प्रमाण यहमिलता है कि उसने प्रारम्भ में ही शंभू और शक्ति की वंदना की है।वस्तु छन्द में यह वंदना देखिए:-

सकति संभूअ सकति संभूअ पत्त परमेसु।

सिद्धध बुद्धिधवर विघन हर कउं कवित्त मन धउं आदिहि।

कासमीर मुखमंडणी हंस गमणि सरसती समिणि।

तास प्रसादि वेद व्यास वाल्मीक रचि इम पहनु उपदेस।

तास प्रसादिर्ं असाइत मणि वीर कथा वरण क्योरा।।१ ।।

यह काव्य चार छन्दों में विभक्त है तथा ४४० कड़ियों में लिखा हुआ एक रस प्रधान काव्य है। पूरा काव्य कवि ने श्रृंगार रस में लिखा है। अनेक स्थानों पर करुण और हास्य कीप्रभावना भी हुई है। कवि ने दूहा बंध में जहाँ विप्रलंभ की पुष्टि की है उसमें विविध रागों में निर्वाह उल्लेखनीय है। राग गिरि राग में नायिका हंसाउली का विरह पक्ष का एक भाव पूर्ण चित्र देखिए जिसमें वह अपने प्रोषट पति के लिए हाल बहुचरि में विलाप करती है:-

राजकुंवरि ही अहुलणि पूरव प्रेम प्रबंध

आगि दावानल दहि बली हुइ दाधि अंग

प्रोषट चंदीआ नयन नेह नरनाथ

जिम जन मुंकी हरणली तिमई साभी साथ --- प्रोषट।

1- जैन गुर्जर कवियों: श्री मोहन लाल दली चन्द देसाई भाग १ पृ० ३८-३६।

किलकिलति वन विचरती वेली वर वीसास
सधि सामी साहस कीउ हूं एकली निरास --- पोपट।
भणि असाइत भव अरि समरि सामणि कंत
हंसाउली धरती ढली प्रिउ प्रिउ मुखि भणंत --- पोपट।

इसी प्रकार के दूसरे विरह पद राग गूढ़ देशाख और रागबैराडी के द्रष्टव्य हैं। कवि की छाप सर्वत्र वर्तमान है। वर्णन में छंदों का साम्य है। इसी प्रकार की रचना सं० १४८५ में रचित जैन कृति श्री हीरानंद सूरि विरचित विद्या विलास पावाड़ो है जिससे इसकी वर्णन पद्धतियों तथा अन्य विविध साम्यों की तुलना की जासकती है। विद्या विलास पवाड़ो का वस्तु शिल्प भी लोक कथानक पर आधारित है तथा उसमें भी अनेक बार कवि ने पदों में अपनी छाप छोड़ी है। छंदों के वर्णन में देशी रागों का महत्व पर्याप्त साम्य स्पष्ट करता है।छन्दों में दोहा चौपाईहंसाउली के प्रमुख छन्द हैं। कवि ने नायक हंस और वच्छ धीरोदात्त के गुणों का आद्योपान्त निर्वाह किया है।

सुमन सेठ और रानी चित्र लेखा हंस के दरबार में आते हैं।अपने बड़े भाई का पता ज्ञात करने के लिए हंस ने आने का जो प्रयास किया था उसी को कवि ने बड़े सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है :-

पुष्पदंत कीधउ सुंगार सुमन सेठि सहित परवार
राज काज सवणो संभलिउं,सइसकारीया माहाजन मलिउं
सहुनू सुकन मिलिया सवी, छाडउ पाछउ नियमनवी
कहूउ केहु नि कर्मसी, वाङउ चीतु नि धर्मसी
मस्तु वीकम भणि स सेठि प्रभु पूछु केमठ सेठि
विरूउ बेरूउ मलवीय, छाडु माडु मीम
भणि कवि कहाई केसा नाम, मावन माहि सेठि सवि सामि
सुमन सेठि मानसु सुखि, सुन चीतु को मली पहरथी
काहु भणि हुइ कीधुं वरिउ,तीणि काज अन्हारु सरिउं
न्हाति उतारि इरना सहसने, सीसिनावरि समा छंड भने
सेठ सुनावणि पूठि रहुं, राइ मोकलणि सुकि,करियउं

इस प्रकार उक्त उद्धरणों कीभाषा में प्राचीन राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती के स्वरूप दिखाई पड़ते हैं। पूरी रचना एक सुन्दर लोक प्रबन्ध है। अतः लोक परम्परा और कथा की दृष्टि से प्रस्तुत रचना विद्याविलास पवाड़ो से पूर्ण साम्य रखती है।

रणमल्ल छंद

ऐतिहासिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण जैनतर काव्य श्रीधर व्यास कृत रणमल छन्द है। तैमूरलंग ने वि०सं० १४५५ में जब हमारे देश पर आक्रमण किया उसी समय कवि ने इसकाव्य की रचना की थी। श्रीधर ईडर के अधिपति राव रणमल्ल के राज्याश्रित कवि थे। रचनाकार श्रीधर ने काव्य के प्रारम्भ मेंसंस्कृत के १० आर्याछंद दिए हैं, इससे स्पष्ट होता है कि वह संस्कृत का भी सक्षम कवि था। रणमल्ल छन्द पूरा काव्य वीर रस प्रधान है। रचना ऐतिहासिक है तथा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में रची गई है। विशुद्ध वीर रस कृति में आद्योपान्त निष्पन्न है। अन्य किसी भी रस को कवि ने निष्पन्न नहीं होने दिया, यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। वीर रस का वर्णन करते हुए भी कवि के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है उसने कहीं भी अतिरंजना को स्थान नहीं दिया। सारा का सारा काव्य स्वभावोक्ति का अनूठा उदाहरण है। रचना में विभिन्न छन्द, स्वाभावोक्तियां, शब्दों की अनुरणनात्मकता उत्तर अपभ्रंश के स्वरूप का वैशिष्ट्य तथा प्रवाह स्पष्ट करती हैं। स्थान स्थान पर वीर रस के मर्मस्पर्शी स्वाभाविक वर्णन दृष्टव्य हैं। मरहट्ठा छन्द में युद्ध का एक सुन्दर चित्र देखिए:

> खलकट्टइ खेल्लवि खरख दुरक्की ढारवढार तुरंग
> उल्लटिय असपति अहमिम बायरि बायर बेढि सरंग
> छक छक झिमरी झिमरी, बोलन्ति असीरह हरि छिल्लन्त
> रण झल्लहि कट्टइ खिल्लावय कायर नर रेल्लन्त
> हेकारवि हयभर हक्कारि कुररवि असपति कि पाय खल्लन्त
> रहूबहवि कथा कवि, अविसरवर सिरि धसमाडि धसमि खेलन्त:

भूमण्डलि मड कमधज्ज मडोहडि भुजबलि भिडस भिडन्त
रणमल्ल रणकुल रमि रौताख्त भुषस्तणि भुवरंत
उल्लालवि भालवि भुज्भ कमलह लथबथि लोथिलडन्त
धाउक्कट धारि धगड़ धर धसमसि धसमसि धुंधुंबपडन्त
कमधज्ज उदयगिरि मन्डन सविता भलमल भलल भडन्त
धुरियवि धवि धूंस धरई, धगडायवि, धरवरि रुन्ड रलन्त

(४१-४३)

शब्दों की अनुरणनात्मकता, ध्वन्यात्मकता एवं नादात्मकता और अनुप्रास अलंकार की सुन्दरता देखते ही बनती है। जैन कृतियों में युद्ध का ऐसा रोमांचक वर्णन शालिभद्र सूरि विरचित भरतेश्वर बाहुबली रास में देखने को मिलता है परन्तु उसमें भी काव्य का प्रवाह इतना सबल और सौन्दर्यपूर्ण नहीं मिलता जितना रणमल्ल छन्द में उपलब्ध होता है। अतिशयोक्ति कहीं दिखाई नहीं पड़ती। युद्ध भूमि का इतना स्वाभाविक और छटापूर्ण वर्णन आदिकालीन जैन अजैन कवियों में कहीं भी मिलना असम्भव है।

शब्द चयन के लिए भारती के अन्तर्गतवर्णित निम्नांकित उदाहरण देखिए:-

डम डमई डमडमकरि, डुंडुकर ढोल ढोली जंगिया
सुरकर्रडि रण करणाइ समुहरि सरस रवि समरंडि गया
कलकलहि काहल कोडि कलरवि कुमल कायर थरथरइ
संचरइ सक सुरताण साहण साहसी सवि संचरइ [1]

उत्प्रेक्षाओं का सुन्दर वर्णन भी उल्लेखनीय है। शब्द चयन का सौन्दर्य देखिए:-

कुहवार वार ववार केवी, तरक तिक्ख तुरकमना
पक्खरिय पक्खर पवन वेगी पवरि पवरि भिडप्पमा
असवार भासुर भंग भड, छीह भवपि भसुहड डेरई
संचरइ सक सुरताण साहण साहसी सवि संचरइ [2]

इस प्रकार रणमल्ल छन्द एक सुन्दर ऐतिहासिक काव्य है जिसमें वीर रस का सौष्ठव उल्लेखनीय है। जैन कवियों में ऐसे काव्य बहुधा नहीं मिलते। वर्णन की यह ईमानदारी काव्य को और अधिक ऊँचा उठाती है। पूरा काव्य युद्ध वर्णन प्रधान,

---

१- प्राचीन गुर्जर काव्य, प्रस्तावना पृ० [illegible] - वही पृ० २

विशुद्ध तथा अनुरणनात्मक शब्द-चयन काव्य की कलात्मकता के जागरूक उदाहरण है। हरिगीतिका सारसी भुजंग प्रयात आदि छन्दों का सफल निर्वाह है। रचना प्रकाशित है।

: कान्हड़ दे प्रबंध :

प्राचीन राजस्थानी का एक उत्कृष्ट महाकाव्य कान्हड़ दे प्रबन्ध है।इसके रचयिता कवि पद्मनाभ है। यह रचना प्राचीन राजस्थानी भाषा का एक महाकाव्य है, जो अद्यावधि उपलब्ध रचनाओं में एक अपवाद है। क्योंकि जैन रचनाओं में एक भी कृति महाकाव्य के रूप में उपलब्ध नहीं होती। अजैन रचनाओं में इस महाकाव्य के कारण आदिकाल की सम्पन्नता और भी स्पष्ट हो जाती है।

पंडित कवि पद्मनाभ का यह काव्य प्रबन्ध एक विशुद्ध ऐतिहासिक काव्य है। इसमें वर्णित घटनाएं बहुत अंशों में इतिहास समर्थित है। प्रस्तुत प्रबन्ध का नायक कान्हड़दे है। स्वयं कवि भी कान्हड़ दे के नगर जालौर का रहने वाला था। कवि को इसरचना में प्रेरित करने वाला चहुआण वीर राजवंश ही था जो कान्हड़दे से केवल ५वीं पीढ़ी में उसके राज्य सिंहासन का शायद अन्तिम उत्तराधिकारी था। इसका नाम अखैराज सोनगरा था।कवि के कथनानुसार वह बड़ा धर्मात्मा, सदाचारी दानशील और ईश्वर भक्त था। उसके सद्गुणों पर कवि ने प्रकाश डाला है:-

अखइ राज उत्तम अवतार, जेहना गुणमन लाभइ पार
दीपइ कीरति कान्हड़दे तणी, अखइ राजि अपाराकीघणी

ज्ञात होता है कि कवि के कुल का सम्बन्ध ईडराज घराने के साथ वंशानुक्रम से चला आ रहा था और इसीलिए उसने अपने आश्रयदाता राजवंश के एक महान वीर की कीर्ति- कथा इतने उत्साह और इतनी श्रद्धा के साथ गाई है। वीसल नगर नागर, ब्राह्मण महा कवि पद्मनाभ भारत का कुशल भक्त दुर्ग का सच्चा संरक्षक,उदात्त, राष्ट्रप्रेमी तथा आदर्श राष्ट्र कवि था। उसकी कवि प्रतिभा ने जिस वह कविता का सृजन किया है वह अन्यान्य हजारों कवियों की लाखों कविताओं से भी बढ़कर बहुत उन्नत भाव वाली और बहुत सुखदायिनी है। कवि को स्वयं इस कृति पर अभिमान

है-

(१) माइभारती तणइ पसाइ, अक्षरबंध बुद्धि रस थाइ।

(२) कन्हडचरिय जिको नर भणइ, एक चित्ति जिको नरसुणइ।

तीरथ फल बोल्यु जेतलुं पामइ पुण्य सेव तेतलु। (३५१)

कान्हड़दे प्रबन्ध को प्रो० के०बी० व्यास ने सम्पादित तथा प्रकाशित किया है। पुस्तक माला के विद्वान् सम्पादक मुनि जिन विजय जी ने इस ऐतिहासिक महाकाव्य को प्राचीन राजस्थानी की सर्व श्रेष्ठ कृति कहा है। मुनि जिन विजय जी की की इस उक्ति से प्रस्तुत कृति के भाषा और विषय सम्बन्धी दोनों पक्षों की क्षमता स्पष्ट हो जाती है। हमने ऊपर प्रारम्भ में इस प्रबन्ध को राजस्थानी महाकाव्य कहा है। उसके पीछे दो अर्थ लक्षित हैं एक तो यह है कि इस काव्य में एक राजस्थानी वीर की पुनीत गाथा गाई गई है और दूसरा यह कि प्राचीन राजस्थानी की श्रेष्ठ कृति है अतः विषय और भाषा दोनों दृष्टि से यह काव्य राजस्थानी है।

१५वीं शताब्दी के पूर्वराजस्थान और गुजराती में जो एक ही भाषा बोली जाती थी उसी का प्रतिनिधित्व यह रचना करती है। प्रस्तुत कान्हड़दे प्रबंध आज तक गुजराती भाषा की सर्वमान्य एवं सर्वज्ञ कृति मानी जाती रही है। परन्तु श्री मुनिजिनविजय जी ने इसे प्राचीन राजस्थानी भाषा की कृति सिद्ध कर १५वीं शताब्दी पूर्व राजस्थानी और जूनी गुजराती का एकत्व सिद्ध किया है।[२] ऐतिहासिकता की

१- देखिए कान्हड़दे प्रबन्ध राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, ग्रंथांक ११, प्रकाशक राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर (राजस्थान)।

२-(अ) वास्तविकता तो यह है कि प्रस्तुत काव्य के जैसी भाषा रचनाएं, जिस समय के अन्तर्गत निर्मित हुई, उस समय राजस्थानी और गुजराती ऐसा भाषा भेद सूचक कोई नाम निर्धारण नहीं हुआ था। राजस्थानी और गुजराती ये नाम मुगलों के शासन काल के परिणाम से उत्पन्न हुए हैं परन्तु अब इस नूतन युग में साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक आदि सर्व प्रकार की नूतन परिस्थितियों के के फल स्वरूप आधुनिक गुजरात एवं राजस्थान के नाम सेप्रसिद्ध और प्रस्थापित होने वाले प्रदेशों के निवासियों के मन में संस्कृति, साहित्य, और भाषा के इतिहास का अवलोकन और अन्वेषण भी जिनके अंशों में भिन्न भाव के रूप में विकसित हो रहा है, पर यह तो परिवर्तित समय की परिस्थिति का अनिवार्य परिणाम है।

(ब) मैं यहां प्रस्तुत प्रबन्ध को राजस्थानी का काव्य कहना पसन्द करता हूं तो उसका कारण भाषा वैज्ञानिकों ने इसमें प्रयुक्त भाषा का जैसा जो शास्त्रीय नाम निश्चित किया है वह है। हमारे गुजराती साहित्य के इतिहास में, इसको गुजराती

दृष्टि से भी यह रचना तत्कालीन उपलब्ध रचनाओं में प्रमाणिक सिद्ध होती है।

पूरे काव्य में हमारे देश में होने वाले दुर्दान्त युद्ध का वर्णन है। कान्हड़दे ऐसा नायक था जिसने अनुपम आत्मोत्सर्ग किया। कान्हड़दे की कीर्ति को प्रकाश में लाने वाला उसका वंशज अखैराज सोनगरा था। अतः कान्हड़दे प्रबन्ध में पूर्व देश के पाल राज्य मध्यदेश के गाहड़वाल, दिल्ली लाहौर के तोमर, अजमेर के चौहान, अवंती के परमार और देवगिरि के यादव आदि राजवंशों के शासक कुछ ही दिनों में किस प्रकार नष्ट हो गए। हजारों वर्षों की गगनचुंबी और ~~पाताल कंपी महान राजप्रासाद एवं~~ देवमन्दिर और पाताल कंपी राज प्रसाद धराशायी हो गए। ऐसे समय में राजस्थान के वीर वीरांगनाओं

काव्य कहा गया है तो उसका कारण है कि जिस समय यह काव्य रचा-गया उस समय आधुनिक राजस्थान और भाषा विषयक कोई खास भिन्नता थी ही नहीं थोड़ी बहुत जो भिन्नता थी वह केवल राजकीय सीमाओं के सम्बन्ध की दृष्टि से थी। बाकी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक दृष्टि से इन दोनों प्रदेशों के बीच कोई सीमा भेद नहीं था। वे परस्पर एक रूप थे। चालुक्यों की राजधानी अणहिलपुर में बसने वाले लोग जैसी भाषा बोलते थे प्रायः ऐसी ही भाषा चाहमानों की राजधानी अजमेर में रहने

वाले लोग बोलते थे। चाहे उनके स्थानिक उच्चार और वाग् व्यवहार में कुछ थोड़ी बहुत भिन्नता भले ही रहती हो, परन्तु उनकी साहित्यिक भाषा लिखित भाषा एक सी थी। अतः इस ऐतिहासिक तथ्य को लक्ष्य कर हम इसे गुजराती महाकाव्य भी उतने ही अंश में कह सकते हैं जितने अंश में इसे राजस्थानी कहना चाहते हैं। कवि तो स्वयं इसे प्राकृत बन्ध कहता है जो उस युग में प्रान्तीय देश भाषा के कवियों की एक सामान्य रूढ़ि चली आ रही थी।-- भाषा के कवियों ने ~~तो नहीं लेकिन~~ व्याकरण के विद्वानों ने इन लोक भाषा को लक्ष्य कर, प्राचीन प्राकृत और तद्भव अपभ्रंश भाषा भेदों के जो कुछ नाम निर्दिष्ट किए हैं उनमें एक गौर्जर अपभ्रंश भी नाम मिलता है इस दृष्टि से हम इस प्रबन्ध की भाषा को गौर्जर अपभ्रंश भी कहें, तो उसमें कोई असंगति नहीं प्रतीत होती।-- इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध की भाषा भी प्राचीन राजस्थानी, अथवा प्राचीन गुजराती अथवा तो गुर्जर अपभ्रंश चाहे जिस भाषा की रचना कही जाय या मानी जाय इसमें वाद विवाद का कोई कारण हमें नहीं लगता। वास्तव में यह रचना समूचे पश्चिमी भारत की मूल भारत- आर्य भाषा कुल की एक प्रतिनिधि रूप और प्रभावपूर्ण उत्तम साहित्यिक कृति है।

देखिए- कान्हड़दे प्रबन्ध प्रस्ताविक वक्तव्य पृ० ४- ५

सम्पादक मुनि जिन विजय: प्रकाशक राजस्थान पुरातत्वमंदिर, जयपुर

के शौर्य का सच्चा और मर्मान्तक वर्णन इस काव्य में मिलता है।वास्तव में इस महाकाव्य की ऐतिहासिकता सर्व सिद्ध है।[1]

भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी प्रस्तुत रचना का अध्ययन परमावश्यक है।हिन्दी भाषा के विकास में ऐसी रचनाओं का बड़ा योग है। भाषा, काव्य-सौष्ठव, संगीत, प्रबन्ध, कला,पद-लालित्य और रस सभी दृष्टियों से रचना महत्वपूर्ण है। पूरी कृति ४ खंडों में विभक्त है।रचना सौकर्य की दृष्टि से इसका महत्व इसलिए और अधिक बढ़ जाता है कि कवि ने दोहा चौपाई के अतिरिक्त विविध रागों में ढालकर काव्य रचना की है तथा गाथ पवाड़ा शीर्षक के अन्तर्गत वीर काव्य की सर्जना की है।यही नहीं, एक विशिष्ट बात यह है कि भडाउली- शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने गद्य में वर्णन किया है। कुछ उदाहरण देखिए:-

ऊठी केइ थयूं घाउ, गयणि न सूझइ भाण
चाली दल मुहडासइ आव्यां ढम ढमीया नीसाण
आव्या सुणी म्लेच्छ मूँछाला रणि राउतवट कीधी
वतउ भणइ पहिला घाउ लेसूं, अन्न प्रतन्या लीधी
बागइ अन्ह बरासउं वीछउ, हिवडौं छकनवि छाडूं
असपति ना दल साहमउ चाल्यउ लेइ अणाडउं काढूं
दीघ तुरक रहुयारिय वोधी, पहिलूं कामा वारइ
वडउ रोसि रिम वेरम मांडइ मारी माग विदारइ
चडी विभ्यारि चमंउ दल थोभ्यउ वीर वावरइ कोड
तुरक बचा भूंगल करकटीया ऊपरि पडूंवा जोड

(प्रथम खंड पृ० ११) छंद ५१-५२)

---

1. From the historical point of view, also the Kanhardade Prabandha is without a parallel in the entire old western,Rajasthani literature, It is perhaps the only our prabandha that gives an accurate account of his historical events. There is hardly any doubt that the poet has drawn at first hand on court records and chronicles as well as the current historical traditions of Rajasthani. His references to the contemporary geography of India are always accurate. The value of this work as a source book of the history of the period,therefore must be rated very high indeed. More over the work is a mine of information on the social customs and manners of the period. It is the work of the utmost importance, therefore to the social historian as well. And

उक्त उद्धरण में विदेशी शब्द तथा सिन्धी भाषा के थयूं, उडी, आदि शब्द द्रष्टव्य हैं। अत्याचारी आक्रमण कर्ता की नृशंसता का एक मर्मान्तिक चित्र देखिए:-

एक जूजूआ डालरां कीधां बाग्रइ बांध्यां आलइ

एक लोरु माय बाप विछोहया एक पाडीआ गालइ

करी विछोह जूजूआं कीधां सवि नारि नइ नाह

बालवृद्ध टलवलता दीठं कटकि ऊछली धाह

एक भणइ अम्हे जनमि आगिलइ डीडया किस्यूं आपूरुं

तुरका पाखि पाडीआ दैवि बहरी दीधउं पूरुं

कूडी साखि कइ अम्हे दीधी कइ चडाव्यां आल

कइ जणणी उछरंगि रमता थान विछोहया बाल

गाइतणां कइ गोचर बेडयां कइ लोप्या आघाट

कइ मम्हे जई जंगलि मुप लीधां कइ किहां पाडी वाट (१५७-१६१)

बादशाह के दल का वर्णन कवि की प्रबंधात्मकता एवं आलंकरिकता का प्रतीक है। वर्णन का प्रवाह देखिए:-

गमे गमे सहूइ दलि आव्यइं चढी बाल्यउ सुरतांण

जिहां मुकाम दीइ तिहां रूंधइ सात कोस मेल्हाण

हाथी सहस विख्यारि पाखरीया घंटा घूघरमाल

पाय सांकलां करइ चहुका कुंभस्थल सुविसाल

---

lastly the Kanhadade Prabhandha can claim a high place of honour as a work of art, It is an epic poem, grand wits design, vigorous in the partrayal of its charecters, and masterly in its treatment of the sentiments. The flow of its narative, punctuated by descriptions lively, sombre or gay-and its songs filled with rate charm, make this work a classic ornament of old western Rajasthani literature-- Page 2, In-troduction by Pro. K.B. Vyas.

श्रावण मासि ऊनया दीसइ जेहवा काला मेह
गयवर ठाठ चालतां दीसइ जोतां नाव लेह
सालि होत्र जेहनी कसंटी तेहवा कोडि केकाण
गढ़ जालहुर भणी संचरीउ, साव दलइ सुरताण (८३-८६)

बादशाह ने प्रजा को तबाह करने के लिए कुओं में गायों का रक्त डलवा दिया जिससे हिन्दू बाल वृद्ध नर, नारी, प्यासे मरने लगे। वर्णन की कारुण्य धारा अत्यन्त मार्मिक है:-

थयुं प्रभात तव तुरणी नारि, गई सरोवरि पाणीहारि
आगइ माछउं हूउं निरवर्ण, दीठउपाणी लोही वर्ण
गाइ तणां मस्तक जलि तरइ, काठइ कोइ न दांतण करइ
पाणी मांहि दोष पखडउ, पाणी हारि भरइ नवि घड़उ
पालि आवी जोइ लोक, हईइ आणइ अतिइ घण सोक
पाणी विश्वतणउ आधार, पाणी सविह जीवाडण हार
जे हुइ मोटा राणा राइ तेहै जल विण खिण न रहाइ
रावल इसं विमासी करी तेहीं पूछी अंतेउरी
राणी भणइ विमासउ किस्यं अम्हे सवे जयहरि पइसिस्यूं
हींदू तणइ मारीइ गाइ, तेहै तणउं लोही जल माहि
जीवतव्यनी आस्या टली, ए पाणी नहींपीवइ पली
राणी वात विमासी घणी हिम्या हेम कान्हडदे भणी
(१४४२ -१४७)

अश्वपति की शक्ति एवं दल का काव्यात्मक वर्णन कवि के काव्य लालित्य का परिचायक है।वर्णन की चित्रात्मक चमत्कारिता दृष्टव्य है:-

चहुटकूल मेघवन्ना करयां, कोठइ कोठइ विमणां वरयां
रत्न जड़ित चहुआ किंकां, दीसइ मोतीना झूंबखां
ऊपरिवली चिकलीं वर्णां झलकत दीसइ सोनातणां
तारातणां किरण तू मिलइ कौसीसे दीवा झलहलइ
गीत गान सांभलीइ घणां कोठइ कोठइ हुइ वेषणा
को वर्णवी न सकइ मान वेसई इन्द्र तणउं विमान (१५०-१५२)

शब्दों की आवृत्ति से सम्पन्न एक काव्यात्मक अंश देखिए, जिसमें कवि ने लोभ का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है:-

लोभइ एक विटालइ आप लोभइ एक करइ घण पाप
लोभइ ऐक नर लोपइ धर्म, लोभइ करइ पाडूआं कर्म
लोभइ मिली माल आथडइ लोभइ एक नर वाहणि वहइ
लोभइ एक विदेसइ, लोभइ एक नर पाला पुलइ
लोभइ एक दाखवइ अणाथि, लोभइ बूंदा वालइ हाथि
लोभइ एक करइ दारिद्र, लोभइ चोर न आवइ निंद्र
लोभइ काजि पियारड मरइ,लोभइ कन्या विक्रय करइ
लोभइ जमलउ वासि न वसइ,लोभइ एक बुंटाइ खाडंसइ
लोभइ एक थाइ अग्यान लोभइ एकै ऊपाडइ बान
लोभइ धर्मलोप आदरइ,लोभ सगा सहोदर मरइ
लोभइ एक नर पाडइ वाट,मारइ विप्रनगारी भाट (१८६:१८६)

रागों की दृष्टि से भी रचना का देशीय स्वरूप स्पष्ट हो जाता है कवि ने स्थान स्थान पर विविध राग, पवाडु आदि नामों के अन्तरंग सुन्दर काव्य प्रस्तुत किया है। रागों और पवाडु के कुछ उदाहरण दे-खिए:-

पवाडु-आसापुरी आखिका आपी चंबकि वाजी खाग
ढोल प्रसूकइ डूंगर कंपइ, चढीत राउत काछ
ऊपरिथिका सायरइ खाडम वेगि पुहता घाटी
मह वाजी धमधमी वाग्णी, सरवरीयां झलटी (१९२-१९३)

राग धन्यासी,धुल में वर्णितगीत में -घ-की आवृत्ति विशेष द्रष्टव्य है जो पद की गेयता में पूर्ण योग देती है। इसी तरह राग रामगिरि में पिछले पद की बिलवइ से सही- पद की आवृत्ति उल्लेखनीय है:-

<u>राग रामगिरि</u>:

(१) वे अबला बोलइ इस्त्रू वे ब्रहुर अवंमन कीच
बीच लोक स्वामी प्रहृय वे प्राणि पेवंता कीच

।।ध्रुपद।। विलवइ जे सत्ती कीजइ कंकण भंग

उछइ नीरि जिम माछली तिम विरह दहइ अम्ह अंग ।।

विलवइ बे सती।।

जिको बंधन छोडवइ स्वामी ते पातक छंडइ पूठि।

वेद वचन अम्हे सामल्यां तू कान्हड़दे ऊठि।।

विलवइ बे सती (१२३+१२४)

(२) राग धन्यासी,धुल

मंडवि मिलिय सुहासणी सखी उढणि नवंर गपाटकि

जीतउ सहीय बधामणूं ए ।।२४३।।

हियडइ हरख अपार कि, सखी बोलइ मालदे वीर कि।

जीतउ सहीय बधामणूं ए ।।आंचली।। ।।२४४।।

हार निगोद बहिरखा, सखी नेउर रणझणकार कि

जीतउ सहीय बधामणूं ए।। २४५।।

इसी तरह राग सिघडउ (पद १५४-१५८) राग अंदोला, धन्यासी (पद १५३-१५७) राग खिवरी (पद २३२-२३५ हु०ग्रं०) आदि प्रसिद्ध रागों का प्रयोग हुआ है। बहुत सम्भव है कि कवि ने अपनी लोक संगीत मूलक प्रवृत्ति का भी विकास किया हो। छाहुली राग का एक उदाहरण देखिए:-

रूपइ लहूणडी सवे साहेलडी,

वेलडी रहीम रा निहालवी ए

टोडहे आवीय, आइं रोहावीय

जालउर परवत बधावीउ ए

सुंदरी सोहामणी परवत मइ कहइ सखी

आणइ बनारइ मोकलावणी ए

सर्वगुण आणइ, बंधिवली भावनइ

वीर अवसर ज्यौं बधाव आवनइ ए

वली रत्नीयामणूं अरथाइन मीरम सम्बं

पामिस्यूं सोनिगिर मूं मइहम्बंए (३००-३०४)

कवि रचना की फलश्रुति के साथ उसकी समाप्ति इस प्रकार करता है:-

जे फल हुई तप कीधइ सदा, जेफल हुइ दर्शनि नरबदा
जे फल सत्य वचन प्रमाण, जे फल हुई सांभलीइ पुराण
जे फल पामइ तपसी सवे, जे फल हुइ वाद छोड़वे,
जे फल पामइ कीधइ यागि, जे फल भेटयां हुई प्रियागि
जे फल पामइ गंगा द्वारि, जे फल हुइ भेटि केदारि
जे फल हुई विछुवा उद्धरी जे फल भेटयां गोदावरी
जे फल नारायण दीठइ नेत्रि, जे फल हुई दानि कुरुक्षेत्रि
जे फल नावइसाडसि सती जे फल हुइ नाता गोमती
जे फल लहइ द्वारिका छमाछि जे फल भेटयां हुइ प्रभाछि
जे फल हुइ मुगति पुरी साछि रामनाम उच्चरइ प्रभाछि
कान्हड़ चरिय जि नो नर भणइ, एक चित्ति जि को नर सुणइ
तीरथ फल बोल्युं जे तलूं पामइ पुण्य सवे तेतलूं (३४६-३५१ च०ख०)

इस प्रकार पूरा काव्य चार खंडों में रचकर रचनाकार पद्मनाभ ने कान्हड़दे के चरित्र को धीरोदात्त नायक के रूप में अभूतपूर्व सफलता से ऊंचा उठाया है। प्रत्येक सर्ग के पहले छंद में ही कवि उससर्ग की कथा की ओर संकेत कर देता है। रचना में अरबी, फारसी तथा सिन्धी शब्दों का बहुलता से प्रयोग मिलता है। वस्तुतः पुरानी राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती में लिखी अजैन कृतियों में कान्हड़दे प्रबंध एक उत्कृष्ट ऐतिहासिक काव्य है, जिसके अध्ययन से तत्कालीन अजैन रचनाओं का शिल्प वैशिष्ट्य स्पष्ट होता है।

:<u>बसंत विलास फागु</u>:[१]

१५वीं शताब्दी की फागु रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण अजैन रचना अज्ञात कवि कृत बसंत-विलास-फागु है। रचना प्रो० के०बी०व्यास ने सम्पादित करके प्रकाशित कर दी है। यह कृति तत्कालीन फागु संज्ञक रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट है। कृति का शिल्प, पदचयन वर्णन, क्रम छंद तथा वस्तु विधान देखिए

१- बसंत विलास फागु: सम्पादक के०बी० व्यास।

अलिजन वसइ अनंतरे वसंतु सिहां परधान

तरुवर वास निकेतन केतन विवल संतान

वनि विरचइ श्री मंदनु वंदनु वंदवउ मीतु

रति अमई प्रीति पिउं सोहए मोहए त्रिभुवन वीतु (१६-१८)

... ...

कोइलि आंबुला डालिहिं आलिहिं करइ निनादु

कामहणु करि आइसि आइसि पाठए सादु

थमण थिय न पयोहर मोह रवउ मग मारि

मान रवउ किस्या कारण तारुण दीह विच्यारि

नाहु निठी छिम गामटि सामटि मइहुं अवाणि

मयुणु महामड न सहीइ सहीइ हणइ प वाणि

इण परि कोइलि कूजइ पूजइ युवति मनोर

विधुर वियोगिनी धूजइ ॥...॥ मयणकिशोर (२३-२६)

... ...

आंबहुइ मार्जरि लागीय जागीय मधुकर माल

मूकइ मारु कि विरहिय हीयइ स धुमवराल

कुसुम कली अति वांकुडी आंकुडी मयणची जाणि

विरहिणीना इणि कालिज कालिज काढइ ताणि

वीर पुष्पकुसुमायुध आयुध शाल सशोक

विकसत सिक्या अति कमकइ विरहिणी लोक (३३-३५)

उज्ज्वल शृंगार के प्रभावपूर्ण वर्णनों को देखकर कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है। विरहिणी नायिका का सखी से वार्तालाप, नायिका के अंगों का फड़कना, वायस से उसकी सहानुभूति और शकुन विचार का प्रभावपूर्ण आलंकारिक वर्णन देखिए:-

कहि सखि मुझ प्रिय वातड़ी रातड़ी किमइ न जाइ

दोहिलउ नयर निकेतन येहु नहीं मुझ ठाइ

सखि मुझ फरकइ बांघड़ी ता वड़ी मिलसिइ नाहु

मूक सबे जिम वाधिसु वाधिसुं जिम मयणं राउ

विरहु सहु तिहिं भागलउ कायलउ कुरलतउ पेखि
आयस ना गुण रूँ सरसप आणप त्यजीय विशेषि
घन घनवायस सूधर मुंबरवस हूं वेश
योजनि कर करवलउ आंवलउ जइ फुलकेसु
देखु कपूरची वाधिरे अखिवली सवरउ
सोवन वीच निरूपम स्वम पांखडीउ बैठ
सकुन विचारि संभावीय अविमासीक वालंभ
रविभरि जिन प्रिय निरखीय हरिखिय दिई परिरंभ

लगभग सभी जैन फागु रचनाओं की तरह ही है, परन्तु फिर भी वर्णन परम्पराओं की दृष्टि से इसमें जैन क्रम स्पष्ट परिलक्षित नहीं होता।

वसन्त विलास फागु एक सुन्दर कृति है जिसमें कवि ने वसंत के मादक उल्लास वसंत की की मधुर पदचाप, काम का मधुमय आगमन, अमराइयों का उल्लास, उद्यानों की श्री-सुषमा, कानन की उद्दाम अंगड़ाइयाँ और कुसुमायुध के सम्मोहन अस्त्र के विविध प्रयोगों का वर्णन किया है, जिससे कवि की वाणी विच्छित्ति और शृंगार-वर्णन-कौशल का परिचय मिलता है। शृंगार का इतना अधिक उद्दाम वर्णन तत्कालीन जैन कवियों में नहीं मिलता क्योंकि वे शृंगार वर्णन के अभ्यासी कम थे। अतः वसन्त विलास का उत्कट शृंगार देखकर इसका रचयिता कोई जैन कवि नहीं लगता है।

पूरी रचना ८४ फागु छंदों में लिखी गई है। रचनाकार ने रचना का प्रारम्भ सरस्वती की अर्चना से किया है:-

पहिलउं सरसति अरचुं रचिसु वसन्त विलासु
वीणु धरइ करि दाहिणि वाहिणि हंसला वासु (१)

पूरी कृति यमक प्रधान अनुप्रास शैली में लिखी गई है। भाषा सरल, सरस, अलंकार एवं प्रवाहपूर्ण बना हुआ है। शब्दावली का चयन बड़ा कोमलकान्त है। कवि ने विरहिणी नायिका के मन के कोपल से कोमलतम सूक्ष्म भावों की सृष्टि की है। पूरे काव्य में वसंत का एक रूपक के रूप में चित्रित किया गया है। विरहिणी नायिकाओं

के पतियों का प्रवास अंगों की फड़कन, धड़कन और परेशानी, शकुन वर्णन, वायस से नेह और इस पर वसंतश्री का आगमन, रितुराज के साथी मार और उसका सम्मोहन कोयल की कूक, आम्र मंजरियों का बौराना नायिकाओं की विरह तथा पीड़ाजन्य स्थिति आदि लगभग सभी चित्र प्रस्तुत काव्य की अनुप्रासबद्ध शैली का अनूठा स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। वर्णन की आलंकारिकता और स्पृहणीय शैली अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। कवि का एक एक शब्द अत्यन्त सार्थक तथा गेय है। अजैन कृतियों का अध्ययन करने पर यह सरलता से जाना जा सकता है कि जैन कृतियों की तुलना में काव्यात्मकता और अन्य शिल्प जन्य विशेषताओं में वे किसी भी प्रकार कम नहीं है। कदाचित अधिक ही है।

काव्यात्मक उद्धरण देखिए:-

> कामुक जनमन जीवनु सीवनु नगर सुरंग
>
> राजु करइ अवयंगहि रंगिहि राउ अनुगुं
>
> रंगि रमइं मनि हरिसीय सरिसीय निज भरतारि
>
> दीसइ ते गणगमणीय नमणीय कुच भरी भारि (४५-५१)

साथ ही बसन्त का अपने मित्र कामदेव के साथ सज धज कर आगमन, और ऐसे समय में नारियों के अंगों से उड़ती हुई यौवन की मादकगंध से प्राणों का व्याकुल हो जाना, कवि को ऐसी नारियों के नखशिख वर्णन प्रस्तुत करने को बाध्य कर देता है। कवि ने विविध उपमानों के एक से एक बढ़कर चित्र प्रस्तुत किए हैं। वर्णन की कोमलकान्त पदावली, रसात्मकता और सुबद्ध प्रवाह अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है।कुछ नखशिख की पंक्तियाँ देखिए :-

> सीहं कुचि सुनि ताळक चाळय रथ कि अनंगु
>
> सुरवमनि कि कुंडल मंडल विभीरच अंग
>
> धमइ कि मनमथ कुमठीव गुमठीव वरवतु हाव
>
> बाम कि मकब रे मौतई मोहई सकल संसार
>
> हरिण हरोवह लोवीव मोहीव ना वरि जाल
>
> रंगि मिश्रण अधरे अधर किमां परवाल

तिल कुसुमोपम नाकु रे लांकु रे लीजइ मूठि

किसलय कोमल पाणिरे जाणि रे बोल मंजीठि

बाहुलता अति कोमल कमल मृणाल समान

जीपइ उदरि पंचानन आनन नहीं उपमानु

कुचनि अमीय कलशपणि पांथणि तणीय अनंग

सीहंकऊ रावण हाड कि हाड ति धवल भुजंग

नमिणि करई न पयोधरि योधर कुरई समाणि

कंचुक त्यजइ सनाहुरे नाहु महामुहु माणि

नाभि गंभीर सरोवर उअरि त्रिवलि तरंग

जघन सबेसल पीवर पीकर वहिरिणि चंग

निरुपम घणइ विधि तां घड़ी जांघड़ी उपम न जाइ

करि कंकण पइ नेउर केउर बांहडी भाई (६०-६८)

इस प्रकार इन काव्यात्मक वर्णनों के आधार पर प्रस्तुत काव्य की अभिव्यंजनात्मक ऊंचाई इस का अनुमान लगाया जासकता है। वसंत विलास फागु मधुमास का गेय एवं उल्लास प्रधान गानहै जिसमें कवि ने वसंतश्री के मधुर एवं मोहक काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत किए है। अस्तु अजैन कृतियों में वसन्त विलास का महत्व काव्य की दृष्टि से अप्रमेय है।

-सदयवत्स चरित-[1]

असाइत की हंसाउली की भाँति पुरानी हिन्दी में लोक कथात्मक आख्यान के रूप में उपलब्ध होने वाली एक सरस अजैन रचना सदयवत्स चरित है। रचनाकार भीम है तथा भीम ने इस काव्य की रचना सं० १४६६ में की थी। कवि का जन्म स्थान, जाति आदि का कुछ पता नहीं चलता। हां कामसेना की व्याधि का उपचार कवि ने गुजराती वैद्य से कराया है अतः बहुत सम्भव है कि वह गुजराती होगा अथवा राजस्थानी और रचना के कुछ प्रमाणों द्वारा भी यह कहा जा सकता है कि वह अजैन था। कवि ने जब सावलिंगा सती होती है तब शिव की स्तुति कराई गई

---

[1] देखिए वरदा, वर्ष १४, पृ० २११-१२ [illegible] का-सदयवत्स अने सावलिंगा नी लोक कथा लेख।

है अतः वह जैन रहा होगा। कवि ने चाचर स्थल का उल्लेख भी किया है जो पाटण का है,अतः सम्भव है वह पाटण का निवासी रहा हो।

सदयवत्स चरित एक आदिकालीन सुन्दर अजैन प्रबन्ध है जिसमें कवि ने वीर तथा अद्भुत रस को ही प्रमुख स्थान दिया है। श्रृंगार उसमें गौण रूप में है। यों सामान्यतः तो कवि ने नवों रसों के वर्णन का कृति में उल्लेख किया है:-

> सिंगार हास करुणा रुद्दो वीरो भयान बीभत्थो
>
> अद्भुत संत नवइ रसि जंपिसु सुदयवच्छस्स ।।५।।

कवि भीम ने रचना में विविध रागों की देशी ढालों के प्रयोग के साथ छंद वैविध्य प्रस्तुत किया है तथा विभिन्न दोहों, पद्धडी,छप्पय, वस्तु, कुंडलियां भी सिद्धदाम आदि मात्रावृत्तों में कुल ६७३ कड़ियों में काव्य पूरा किया है। छंदों का यह वैविध्य रचना की काव्य शैली और वर्णन की प्रासादिकता स्पष्ट करता है। कुछ उदाहरण भाषा शैली लोक आख्यान मूलक वस्तु तथा छंदों के वैविध्य के लिए चाचर और बाहु पदों के देखे जा सकते हैं।

(१) चाचर-

> करंति वंदिणा अभि कक मंगलिक्क मालयं
>
> विचित्त चित्रित्त चम चाडरारंग तालयं
>
> वडी तुरंगी चंगि सिंह अंगि चार सुंदरी रसे
>
> ति बालवाडि नारि भ्याडि-चाचरंपिहु दिसे

(२) बध बाहु

> वर आगलि विडि बैसरइ ए आगा राय ले ए हरिकड राउ
>
> पायइल पार न पामीइ ए आगा महीकढ ए मीडाम ए घाउ
>
> इम बोलइ नवराय हारवी ए (९७-९८)

धुव पाढ राग धन्यासी-

(३) आरम्भ तबड अम्बिड ए नरवरइ तरल तुरंग
>
> वाहणपति पलाणिड ए पलाण पवंग
>
> बोलइ नरराउ चलाविड ए

चामर

खेति खंवि जे जुडंति ते तुरंग आगयू

जे सुदुष चित्त चालितुरत लक्षणे बखाणिउ

पाया लहंति फीकी मयड होमदीउ आसणो

पद चालु-

चिहु दिसि चामर ढलइ ए सिरवरि ए सोहइ छात्र

विप्र वेउधुनि उच्चरइ ए आगा आगलि ए नानाविध पात्र

बहु बंदिय कलरव करइ ए (९४-९६)

चामर

करिंति सारसी गइंद संडि डुंडि डंबर

नीसाण ढोल ढक्कयाउ हूअ साव अंबर

उचित्त चाउ दिंति राउ वेगि साव रइ करो

प्रेमि सुदयवच्छवीर परत तोरणइ वरो (९९)

पद चालु

गय गामिणि गुण विन्नवइ ए आगावलि सुती ए करइ सिणगार

हार एकाउलि उरि ठवइ आगा कंदर्प समउ कुमार

अहिमउ इंद नारिववरो (१००)

चामर

नरिंद इंद मरतलोइ लोय भक्ति सोहए

अदिट्ठ दिट्ठ नाभिणि वर्णत रंगि मोहए

यवानिमति पाय भक्ति कंकणुम कामिनी

ते सुदयवीर कन्नकंठि (?) गयंदगामिनी (१०१) [१]

कवि ने सावलिंगा का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। सावलिंगा के शरीर के विविध उपमान उसके कार्य व्यापारों द्वारा उसकी शोभा द्विगुणित कर देते हैं।

१- देखिए बहन्त वर्ष १५ पृ० २६०-२६२।

कवि ने उसके नखशिख सौन्दर्य में उलझकर पारंपरिक उपमाओं के साथ आलंकारिक शैली में मौलिकता उपस्थित की है। वर्णन की सजीवता देखिए:-

<u>(पद्धडी)</u>

गय गमणि रमणि तुरगय गर्मति, भड अनिल लग्ग अंग न नमति
पय पंकय लकतलि चिहरंडित, पति मक्ति चित्तधरि चडवडंति
जस जंघ जुगल वरदंम थंभ, पिथलकि उरयल करिण कुंभ
कर पल्लव नव शाखा अशोक, सौकन्नवन्न शरीर रोक ।।४८।।
मुख कमल अमल शशिहर सरित्थ, निलवटि तिलय ताडीकमच्छ
कुंडल कि किन्न पायार भार, कोडीस निकर परिगर अपार ।।४९।।

तिलफुल्ल नाम चंजुल्ल भत्त, अहि दाडिम दंत अहरा रगत
अंजन सह खंजन सरिस नित्त, सीमंत कुंत किरि मयरक्ति।।५०।।

हुंइ भमह कामकोदंड चंड, कटि चिवं प्रलंबित वेणीदंड
उरि हारतारश्रेणी समान, तनमंडल अवर न उपमान ।।५१।।[१]

इस प्रकार पद्धडि छन्द में कवि ने सावलिंगा के शरीर का सुन्दर चित्र खींचा है। इसके अतिरिक्त और भी कई काव्यात्मक वर्णन कवि ने बड़े ही संभार के साथ संवारे हैं। वर्णन काव्यपूर्ण सरस तथा साहित्यिक सुषमा से परिपूर्ण है, वर्णन की चामत्कारिता देखिए:-

गलि कउडउ वइ मोतिह माह, पान वर्णा बम हाथ्यौ लाह
कूलखंधौ हथि पूंबा भगर, महमकि माथि कीधूं मगर।।३५।।
मुकल वेणी कुलंजीकणी, राजहंस वेशी रेवणी
हाथिइ केसर मह कपूर, वारवौ तेल वहाथ्यौ पूर।।३६।।
होयइ पीठइ पीठी हथवडइ, पारिधिनइ पगि पींडी चडइ
खडीया कौकहिला कुलार, माठा ठोक न वाचइ सार।।३७।।
हाट पौरि हरं हाक कमोल, किरि कनहावलि करइ कमोल
पीखइ हाथ्या पारिधि बणा, कायडि वरिस किरियाडी पर्णा।।३८।।

१- देखिए वर्णक, वर्ष १५, पृ० ३६०-३६१।

एकि अटालि मालि गढि बइठा इकि मापरि दसादिसि दडवडयां
इकि छावंडा अछइ छइलोक.ते सीकिइधुया लूसइ लोक।।३९।।

इस प्रकार भीम द्वारा विरचित इस लोक कथात्मक प्रेमाख्यान की सरसता और सम्पन्नता उक्त उद्धरणों द्वारा स्पष्ट हो जाती है। अजैन कृतियों में इस प्रकार की लोक आख्यान मूलक रचनाओं का महत्व अनुभव किया जा सकता है। पूरी रचना प्राचीन राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती की सुन्दर कृति है।

-हरिवंद पुराण -[1]

(सं० १४५३)

हरिवंद पुराण की प्रति अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है। प्रस्तुत रचना ब्रज भाषा की है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इस कृति की सूचना प्रकाशित हुई थी।[2] ग्रन्थ की प्रति विद्या प्रचारिणी सभा जयपुर में थी, पर वह भंडार नष्ट भ्रष्ट हो गया और इसकी कुछ प्रतियां श्री नाहटाजी ने इधर उधर बिकती हुई खरीदी। नाहटा जी ने संग्रह की प्रति का आकार प्रकार तथा उसकी छंद-संख्या पूर्णतः वही है जो विद्या प्रचारिणी सभा की उक्त प्रति की नागरी प्रचारिणी सभी की खोज रिपोर्ट में बताई गई है, अतः नाहटा जी कीप्रति भी संभवतया वही है।

कृति का रचयिता जाखू मणिहार था। डा० शिव प्रसाद सिंह ने भी इस कृति के कवि के सम्बन्ध में प्रचलित निराधार तथ्यों का अपने प्रबन्ध में निराकरण कर दिया है।[3] डा० सिंह ने अंतरी के अन्तर्गत निम्नांकित पद द्वारा कवि का नामकरण जाखू या जाखू किया है जो सर्वांश ठीक जान पड़ता है:-

---

१- अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित, गुटका में संकलित प्रति

२- खोज रिपोर्ट सन् १९०० पृ० ७४-७७

३- देखिए सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य-डा०शिव प्रसाद सिंह पृ० १४८ प्रकाशक हिन्दी प्रचार पुस्तकालय वाराणसी सन् १९५८।

<u>आंचली</u>

पुरिज वंस राज सपवित्त, धन हरिचन्द न मेल्हो चित्त
सुणी भाव धरि जाडू कहे, नासै पाप न पीछो रहै।।८ ।।

कवि ने वस्तु छन्द में बड़े सुन्दर पद लिखे है। हरिचंद पुराण में हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्व की कथा है।रचनाकार जाडू ने रोहिताश्व और शैव्या का वियोग, रोहिताश्व की मृत्यु पर शैव्या का करुण रुदन रचनाकार की वाणी विच्छित्ति के सुन्दर उदाहरण है। रचना की भाषा सरल, सरस और लोकप्रिय है।

(१) अवधि न चूकै जाइ पराण, काटे किया पतीजो थाण
रोहितास मन फुरे घणे, भागो लाण कष्ठ तोडि तणो
धरि वाहडी नीरालो करइ,तब सब बालक हो आगे सरइ
कलीयल कोयल करै अति घणें, बीरन मेल्हे माई तणे
मारयो थाप पड्यो मुरझाइ, पडता सामल्यो बापड माय
प्रगु प्रगु दुख परयो अतिदाह, जाणे चन्द्र मिल्यो जिमि राह

पुत्र के वियोग में शैव्या की व्याकुलता चरम पर पहुंच जाती है और वह कारुण्यमय विलाप करती है। एक चित्र देखिए:-

(२) <u>वस्तु</u>

मधम नीर झुरइ अपार
धवण ताल कर कंवल चुवइ,परय हंसउ तीस मेल्हे
एक कुंवर होती सबै विसहर हस्यो पचारि
दइव अनहरिक सिर किव मम आणवइ विचारि

इस प्रकार शैव्या का बच्चे के लिए किया गया विलाप अत्यन्त प्रवाहपूर्ण आलंकारिक तथा सुन्दर काव्यांश है।वर्णन की स्वाभाविकता देखिए:-

हाक्रिम हाक्रिम करै डंबार, काढइ किधो अविकरइ पुकार
तोडइ हार अरु फाडइ चीर, वेले मुख अरु सीचे नीर
छीडे पडियो जीवन आधार, सूनी आज भयो संसार

१- वही।

धरि उछंग मुख चूमादेय, अरे वच्छ किम धाम न पेय
दीपउ करि दीनेउ अँधियार चन्द विहणि निसि घोर अंधार
वच्छ बिण गौ जिमि कारही आहि, रोहितास बिनु जीवोकाहि
तेहि बिनु भोजनु पालट भयौ, तोहि बिनु जीवतह मारउ गयौ
तोहि बिनु मैं दुख दीठ अपार, रोहितास लायो अंकवार
तोहिबिनु नयन ढलै को नीर, तोहि बिनु सांस ज्यौं मुके सरीर
तोहि बिनु बात न श्रवण सुनेइ, तोहि बिनु जीउ पयाणेदेइ

इस प्रकार यह कृति ब्रजभाषा की जन बोली की सुन्दर रचना है। तथा इसमें संक्रांतिकालीन रुप के एवं संधि काल में लिखे काव्य की सरस जन भाषा का प्रतीक काव्य जाखूमणिहार का हरिवंश पुराण है।

:रुक्मणी मंगल:[1]

कवि विष्णु दास की लिखी ब्रजभाषामें ऐसी ही एक सुन्दर कृति रुक्मणी मंगल है। रचना सं० १४९२ मेंलिखी गई है। विष्णुदास ने अपने काव्य को कृष्ण के रंग में डूबकर पुरा किया है। विष्णुदास की इस कृति का विवरण भी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टें।[2] में है। स्वर्गारोहण, महाभारत कथा, स्वर्गारोहण पर्व[3] भी इन्हीं की रचनायें हैं। निम्नलिखित सुन्दर पद कवि के कला सौष्ठव का ज्वलन्त उदाहरण है:-

मोहन महलन करत बिलास
कनक मंदिर में केलि करत है और कोउ नहि पास
रुक्मनी पद सिरावै पीके, पूजी मन की आस
यो चाहो सो अबै पायो हरि पति देवकि सास
तुम बिनु और न कोऊ मेरो चरित्र पताल अकास
निस दिन सुमिरन करत तिहारो सब पूरन परकास

१- खोज रिपोर्ट सन् १९४४:४६ पृ० ७५१।
२- खोज रिपोर्ट सन् १९२९-३१ पृ० ५५३।
३- वही पृ०।

घट घट व्यापक अंतरजामी त्रिभुवन स्वामी सब सुखरास

विष्णुदास एकमन अनाई जन्म जनम की दास।[1]

महाभारत कथा में से कवि का एक आवृत्ति मूलक सुन्दर उद्धरण कवि की काव्यात्मक क्षमता का परिचायक है। अनुप्रास की छटा भी द्रष्टव्य है।कवि की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों पूर्णतया सबल है। डूबे हुए गंभीर चिन्तन के परिणाम स्वरूप निम्नांकित उद्धरण को देखा जा सकता है:-

विनसै राउं पढाये पांडे, विनसै खेले ज्वारी डांडे

विनसै नीच हने उपजारु, विनसै बूत पुराने हाऊ

विनसै मांगवों जरे बुलाये, विनसै भूक होय बिन खाजे

विनसै रोगी कुपथ जो करई, विनसै घर होते रनधरमी

विनसै राजा मंत्र जु हीन, विनसै नट्टक कला बिनु हीनु

विनसै मंदिर रावर पासो, विनसै काज पराइ आसा

विनसै विद्या कुशिषि पढाई, विनसै सुन्दरि घर घर जाई

विनसै यति गति कीने ब्याहू विनसै अति लोभी मा नाहू

विनसै पूत होनें जु अंगारु, विनसै मंदो करै अटारु

विनसै सोनू छोड चढायें, विनसै खेत करै अनभाये

विनसै तिरिया पुरिख उघारी, विनसै मनहि होय बिन हांसी[2]

इस प्रकार ब्रज भाषा की इन रचनाओं द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि प्रादेशिक विभाषाओं की अन्य आदिकालीन अजैन कृतियों की अभी सम्यक् शोध होना बाकी है। वास्तव में मध्यदेश की इन अजैन रचनाओं की शोध परमावश्यक है।

३- <u>ढोला मारु रा दोहा</u>:-[3]

१५वीं शताब्दी का एक सबसे प्राचीन अजैन भाषा काव्य ढोला मारु रा दोहा-

---

१- सूरेपर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य पृ० १५०।

२- वही ग्रन्थ पृ० १५९

३- देखिए- ढोला मारु रा दूहा-प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं० १९९१ सम्पादक श्री रामसिंह, सूर्यकरण पारीक और नरोत्तमदास स्वामी।

उपलब्ध होता है। प्रस्तुत रचना एक सुन्दर प्रेम काव्य है। ढोला और मारु संसार प्रसिद्ध प्रेमी रहे है। अतः उनके जीवन पर लिखे गए ये दोहे उनके शाश्वत प्रेम की कहानी प्रस्तुत करते है। प्रस्तुत ग्रन्थ प्राचीन राजस्थानी का एक प्रेमाख्यान गीत है इसकी नागरी प्रचारिणी सभी काशी ने सं० १९९१ में प्रकाशित किया था। अतः इसका सुव्यवस्थित पाठ सर्व सुलभ है।

ढोला मारु रा दोहा एक लोकगीत (Ballad) है। इसकी परम्परा अनुश्रुतिबद्ध रही है यह काव्य अत्यधिक लोक प्रचलित रहा है जो धरती की गोद में ही बढ़ता, बनता, बिगड़ता और फलता फूलता रहा। इसका फल यह हुआ कि इसमें अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन हो गए। नये दूहे और नई घटनाएं समय समय पर जुड़ती गई और पुराने दोहे और पुरानी घटनाएं कभी कभी लुप्त भी होती गई। आरम्भ में यह किसी एक लेखक की सम्भवतः ढोली, चारण या ढाढी आदि किसी जाति की रचना रही हो पर इसके वर्तमान रुप में निर्माता तो कोई एक कवि न होकर समस्त जनता ही है। आरम्भ में यह कृति दूहा छन्द में लिखी गई।

प्रस्तुत रचना एक सुन्दर गीति मुक्तक है, जिसमें ढोला और मारु की प्रेम कथा वर्णित है। प्रेम के तूफानी दिन जब आते हैं तब वह गणित के सब नियमों को तोड़कर आते है। उसमें जाति पांति, सुन्दर, असुन्दर भला बुरा, आदि कुछ नहीं दिखाई पड़ता है। प्रेमी को केवल अपने प्राप्य की ऐसी कामना रहती है कि सूर्य भी सम्भवतः उसकी निष्ठा से गिर पड़े धरती गोलायमान हो जाय, समुद्र बिखर जाय। वैवाहिनी की उत्कट तरंगों की भांति ही प्रेम का यह सरोवर ढोला के जीवन में उमड़ पड़ा। भयानक बनकर। जीवन और प्रलय का खेला बनकर। मरवण ढोला की बचपन की परिणीता थी। बीच में उसको भुलाकर ढोला के माता पिताओं ने उसका विवाह मालव की मालवणी के साथ कर दिया। पर स्मरण दिलाए जाने पर उसको पुनः सब कुछ स्मरण होता है। वह मरवण के पास रोज रात को जाता था। अन्त में मारु को लाते समय बीच में उमरा सूमरा नामक सरदारों से जूझ कर बीच में ही दोनों प्रेमी मारे जाते है। यही इस काव्य की संक्षिप्त प्रेम कथा है।

काव्य की कथा का मूल आधार ऐतिहासिक है। पूंगल, नरवर, मालव आदि सर्व प्रसिद्ध स्थान है। ढोला कछवाहा राजपूत था। मारवाणी का विवाह ढोला के साथ हुआ था इसका उल्लेख ऐतिहासिक ग्रन्थों एवं लोक कथाओं में यत्र तत्र मिल जाता है। कछवाहों की ख्यातों में ये वर्णन विस्तार से मिलते हैं। प्रस्तुत काव्य की कथा में अनेक प्रक्षेप मिलते हैं। किसी में पूरा काव्य गाहा, दूहा और सोरठा छन्दों में लिखा गया है।प्रस्तुत कृति कुल ६७४ छन्दों में पूरी हुई है पर विद्वान सम्पादकों ने इसके परिशिष्ट में विभिन्न प्रतियों में प्राप्त लगभग सभी पाठ दे दिए हैं।

जहां तक रचना की प्रबन्ध कल्पना और वर्णन सौन्दर्य का प्रश्न है ढोला मारु रा दोहा एक उत्कृष्ट रचना है। कवि को मार्मिक स्थलों की पहिचान खूब थी रितु वर्णन, करहावर्णन एवं प्रेमवर्णन,बड़े ही सरस बन पड़े हैं। ढोला मारु के वियोग श्रृंगार की तुलना जायसी की नागमती के विरह वर्णन की भांति सरस है। पपीहा "पी कहां," पी कहा की पुकार, बिजलियों काप्रेमी घन से मिलन, मालवणी का बादलों की शरण जाना, आदि सबका स्वाभाविक वर्णन है। पी कहां के कारण उत्पन्न वेदना का वर्णन देखिए:-

बाबहियउ नइ विरहिणी दुहुवा एक सहाव
जबही बरसइ घण घणउ तबही कहइ प्रिवाव।।२७।।

पदुमावत की नागमती की यह पंक्ति सहसा स्मरण हो आती है

पिय वियोग अस बाउर जीउ।पपिहा निउ बोलै पिउ पीउ

बिजलियों का बादलों से आलिंगन सारों मालवणी को चुनौती दे रहा हो-

बीजुलियां चहलावहलि आभय आभय कोडि
कदे मिलूंली सज्जना कस कंचुकी छोड़ि।।४६।।
बीजुलियां बहका बहलि आभइ आभइ च्यारि
कद रे मिलउंली सज्जणा, लाजी बांह पसारि।।४७।।

और मालवणी क्रोंचों और सारसों का करुण क्रंदन सुनकर दुख से बिजलियों की शरण में जाती है।करुणी के करुण स्वर में प्रार्थना करती है। काव्य का प्रवाह, वर्णन

सौन्दर्य, प्रासादिकता, तथा अभिव्यंजना की उत्कृष्टता सर्वांग सुन्दर है:-

(१) कुंझड़ियां कलरव कियउ धरि पाछिले बगेहि

सूती साजण सम्रंया द्रह भरिया नयणेहि

कुंझड़ियां कलयल कियउ, सरवर पइलइ तीर

निसभरि सज्जण संभरियां, नयणे वूहा नीर (५४-५९)

--- --- ---

(२) राति सखि इणि ताल मई काइज कुरली पंखि

उबै सरि हूं धरि आपणइ बिहूं न मेली अंखि

(३) बिज्जुलियां नीलज्जियां, जलहर तूही लज्जि

सूनी सेज, विदेस प्रिव, मधरइ मधुरइ गज्जि (५०)

(४) कुंझा द्यउ नइ पंखड़ी, थांकउ विनउ बिसेखि

सायर लंघी प्री मिलउ, प्री मिलि पाछी देखि (६२)

उत्तरदिसि उपराठियां दखिण सांमहियांह

कुरझां, एक संदेसड़उ ढोला नइ कहियांह (६४)

कुरजों के साथ संदेश भेजने को उत्सुक मारवणी अनेक प्रकार से व्यथित होती है जिसे कवि ने बड़े संभार के साथ संजोया है। मारवणी के एक निष्ठ सात्विक प्रेम की व्यंजना देखिये:-

जिम लाहुरां सरवरां, जिम धरणी अर मेह

चंपावरणी बालहा, इमपालीजइ नेह ।।१६८ ।।

कुंदी बे सज्जण चित्त हूं, प्रीतम हूं परिवाण

हियड़इ भीतरि तू वसइ, भावइ जाण म जाण।।१७५।।

हूं बलिहारी सज्जणा सज्जण मो बलिहार

हूं सज्जण पग पानही सज्जण मो गलहार।।१७६।।

कवि का मनोविज्ञान निम्नांकित दोहों में द्रष्टव्य है जहां ढाढियों को विदाई देती हुई मारवणी का कवि ने चित्र प्रस्तुत किया है:-

ढाढ़ीड़ा ढंढार मीठड़िया न बोलइ

कालेवा लिपि आप पत्थर हूं फाडइ नहीं

भरइ पलट्टइ भी भरइ, भी भरि भी पलटेहि

डाढी हाथ संदेसड़ा धण विललंती देहि

मरवण की भाँति मालवणी का विरह वर्णन भी कवि ने बड़ी क्षमता से किया है। वर्षा काल के सारे दृश्य मालवी की कुमारी के लिए असह्य है:-

फौज घटा खग दामणी बूंद लगइ सडजेम

पावस पिउ विण वल्लहा कहि जीवीजइ केम ॥२५५॥

काली कंठलि बादली वरसि ज मेल्हइ वाउ

प्री बिण लागइ बूंदड़ी जाणि कटारी घाउ ॥२६७॥

जिण रुति बहु बादल भरइ, नदियां नीर प्रवाह

तिण रुति साहिब वल्लहा मो किम रयण विहाय ॥२५९॥

महि मोरां मंडल करइ मन्मथ अंगि न माइ

हूं एकलड़ी किम रहउं, मेह पधारउ माइ ॥२६३॥

जायसी की नागमती के विरह का साम्य भी इससे किया जा सकता है। वर्णन एक समता देखिए:-

खड्ग बीज चमकै चहुं ओरा, बुंद बान बरसहिं घनघोरा

ब ओनई घटा आइ चहुं फेरी, कंत उबारु मदन हौं घेरी

मालवणी के लिए सुख के साज प्रसाद श्मशान में बदल जाते हैं। वर्णन की स्मरणीयता उल्लेखनीय है:-

उज्जल वाल्ह्या हे सखी, वाल्ह्या विरह-निवाण

पालंकी विसहर भई मंदिर भवल मसाण ॥३६२॥

सज्जणियां अलगाइ कइ मंदिर बइठी आइ

मंदिर काळउ नाग जिउं डसि डसि है है खाइ ॥३७१॥

चंपा केरी पांखड़ी गूंथूं नवसर हार

जउ गळ घालउं पीव बिन, लागे अंगार

यही नहीं काव्य में संयोग शृंगार के मधुर मधुर चित्र भी कवि ने उतारे हैं शृंगार का यह वर्णन बहुत संयत, शिष्ट और मर्यादानुकूल है:-

इस प्रकार लोक काव्यानक प्रेम गाथाओं में ढोला मारु रा दोहा काव्य का स्थान अप्रतिम है।

अचलदास खीची री वचनिका[1]

जैनेतर काव्यों में १५वीं शताब्दी में लिखी प्राचीन राजस्थानी की एक विशिष्ट कृति अचलदास खीची री वचनिका है।इस वचनिका की हस्त लिखित प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में सुरक्षित है। पूरी रचना एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें कवि ने वात शैली का प्रयोग भी किया है।काव्य की भाँति वात शैली के अन्तर्गत आने वाला यह गद्य भाग भी पर्याप्त महत्व का है जिस पर आगे प्रकाश डाला जायगा। यहाँ कृति का काव्य की दृष्टि से ही परिचय किया जा रहा है।

अचलदास खीची री वचनिका के रचयिता श्री शिवदास है शिवदास चारण थे तथा राज्याश्रयमें रहकर ही उन्होंने यह वचनिका लिखी। कोटा राज्य के अन्तर्गत गागरोण के शासक श्री अचलदास खीची ही इनके आश्रयदाता थे।कवि शिवदास का समय टाड तथा टेस्सीटोरी सं० १४७५ मानते है और मोतीलाल मेनारिया सं० १४८५। जो भी हो, यह निर्भ्रांत है कि रचना १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के तृतीय चरण की है।इस रचना की प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय में भी है। रचना १२१ छन्दों में पूरी हुई है।

अचलदास खीची री वचनिका एक ओजस्वी वीरगाथा काव्य है अतः वीररस प्रधान काव्य है जिसमें कवि शिवदास ने अपने आश्रयदाता के स्वयं युद्ध में उपस्थित रहकर आखों देखे रोमांचक चित्र यथार्थ से गहरा समन्वय करके किया है।

कथा भाग:

प्रस्तुत वचनिका एक युद्ध प्रधान खन्ड काव्य हैजिसकी कथा ऐतिहासिक है। पूरे काव्य से कृति कार ने शिवदास की आदर्श वीरता के अनूठे चित्र उरेहे है। मांडू के मुसलमान सुल्तान ने गागरोण को अपने अधिकार में करना चाहा।अचलदास

१- प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर में सुरक्षित।

को आधीनता स्वीकार करने को बाध्य किया। राजपूती खून उबल पड़ा।मर्यादा की मुस्कान और जननी जन्म भूमि की रक्षा में राजपूत तत्पर हो गए।अचलदास ने युद्ध के लिए ललकारने का संदेश भेजा तथा आक्रमण को रोकने के लिए किले के दुवार बंद करवा दिए।

दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ।भयंकर मारकाट के बाद अचलदास स्वयं वीर गति को प्राप्त हुए।अचलदास के बलिदान से भूमि रंग गई। शेष सभी राजपूतों ने जौहर कर अपने प्राणों आहुति दी।कवि श्री शिवदास चरण भी युद्ध में अपने आश्रय दाता के साथ थे। अन्य राजपूतों को जौहर करना पड़ा परन्तु राजकुमारों के जीवन निर्माण के लिए तथा अपने आश्रयदाता की इस वीर गति को वाणी देकर अमर कर देने के लिए शिवदास को जौहर से मुक्त होना पड़ा। औरक्योंकि यह युद्ध वि०सं० १४७५ के आसपास ही हुआ था अतः इस रचना का प्रणयन भी इसी समय में हुआ होगा।

अचलदास खीची री वचनिका का कथानक इस दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक तो युद्ध भाग और दूसरा जौहर।इतिहास से सामान्यतः कई भ्रम फैलाये जा सकते हैं परन्तु कवि शिवदास ने स्थान स्थान पर ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा कर कृति का महत्व और अधिक बढ़ा दिया है। यही नहीं उसने अपनी अभिव्यक्ति को ईमानदारी से वाणी देने के लिए मांडू के बादशाह की सेना का वर्णन पहले किया है। ऐतिहासिक एवं वीरगाथा का वर्णन करने वाली यह वचनिका अपने ढंग प्रकार की अनूठी रचना है।

पूरी कृति कविता और बात दोनों शैलियों में लिखी गई है। यों वचनिका भी स्वयं गद्य की एक शैली विशेष ही है। बात शीर्षक से कवि ने जहां जहां रोमांचक चित्र खींचे हैं, वे उसके गद्य की काव्यात्मकता के जागरूक उदाहरण हैं। पूरी रचना चारणशैली में लिखी गई है। तत्कालीन रचनाएं वर्णन की चारण और जैन इन दो शैलियोंमें विभक्त की जा सकती है। अजैन लेखकों ने भी जैन शैली में और जैन लेखकों ने चारण शैली में भी लिखा है।

वचनिका शैली में लिखा गया जैन ग्रन्थ पृथ्वीचन्द वाग्विलास अपने ही प्रकार का अनूठा गद्यग्रन्थ है, जिसमें किसी काव्यात्मक रस से कम आनन्द नहीं।साथ ही जो गद्य काव्य की शैली का उद्भवकहा जा सकता है।परन्तु अधिकतर जैन लेखकों ने वर्णन की चारण शैली नहीं अपनाई है और इस ओर उदासीनता रखने से वे जैनेतर लेखकों से इस क्षेत्र में शिथिल दिखाई पड़ते हैं।

अचलदास खीची री वचनिका इस दृष्टि से चारण शैली में लिखा एक सफल काव्य है जिसमें कवि का गद्यात्मक काव्य और काव्यात्मक गद्य समान रूप से परिलक्षित होता है। १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ऐसी कृतियों का मिलना आदिकालीन साहित्य की श्री सुषमा की वृद्धि में अत्यन्त महत्व पूर्ण चरण है।

पूरी रचना काव्य गाहा,दूहड़ा,सोरठा- तथा गद्य- बात आदि में लिखी गई है।रचना अद्यावधि अप्रकाशित है।

रचना का प्रारम्भ कवि युद्ध की स्वामिनी महिषासुरमर्दिनी महादेवी भैरवी तथा सरस्वती दोनों को नमन करके करता है।कवि ने सरस्वती से पहले दुर्गा को सिर नवाया है इससे काव्य की युद्ध प्रधान प्रवृत्ति और शैली का ~~चारण पनस्पष्ट~~ होता है। रचना की प्रारम्भिक वंदना देखिए:-

> सउ सीस हथि सिरोलिवै सीस सय सिरोलिवै
> सावठि भाथै सु समहडि ज्यों सुकाइ ही सौंकि
> पइठिम परहसियाइ आरंभ करि ऊपरि अयुध
> देखि सुवारिधि आइ वोमति सा इस सीस हथि
> महिखासुरि सु साइ, मरजइ महिखासुर मरै
> सुर छूटै सु साखिइ सार सुवारी सीस हथि
> जयइ सुकाल इकालि डकडहिया डमरूणा
> काढै असुरि सु सालि है बाजा रथि सीस हथि
> रामायण ही राखि कीधी जे सूती कन्है सकति
> विसूणी साखि विहण न होई सीस हथि (१-५)

कवि सरस्वती को गीत नाद, गुण युक्ति तथा कवियों की दीप्त करने वाली कहता है तथा उसी की कृपा से इस कथा का ग्रन्थ रूप में निबंधन करना चाहता है:-

* अथ गाहा *

सास गणवै नमो सलणाइ सेणा पुसितक धारणीकासमीर कंदरिवसंती
गीत नाद गुण गाह दियण, देस कवियण दिपंती
साइधार दामनि संभरी बाधउ ग्रंथ अपार
पूरत राख्उ अचल कउ सउ दाखम सिकार (७)

अचल दास की कथा मे कवि के काव्यगुण में "सोना और सुगंधि" गुण को साकार कर दिया है ऐसा कवि शिवदास का कहना है। गुणियों में श्रेष्ठ अचलदास ही शिवदास चारण कवि का सच्चामूल्यांकन कर सकता है। रचनाकार ने शिवसिंह के आश्रयदाता से युद्ध करने वाले मांडू के बादशाह की सेना का प्रारम्भ ही में वर्णन किया है सैन्य वर्णन में प्रासादिकता और प्रवाह का सफल समन्वय देखिए:-

अथदूहड़ा

उत्तर दखिण देस पूरब नै पछिमतण
चढिया सउ दखिण कटक, मगिया सकल नरेस
हर कंपइ हुकार, घरघर प्रति हुआै घणा
मिलिवै मंडव राइ कइ कुण उमरै संसार
सै पतसाह समोह पायापै पारस पमीह
सह कडियाह कैकाण सै मडपति गमे मेह
सइ संचलै सुर धुणिया धर धण धणी
---- हींची दिसै कीआ पयाण गुण (१०-१२)

मुसलमान सैन्य के साथ साथ कवि ने हिन्दू राजाओं के बल का भी वीर रस पूर्ण ढंग वर्णन किया है।राम राजा भुवेन्द्र की भांति शौर्यवान नृसिंह दास का कटक भी वर्णनीय था।कवि ने"कल बूढा एक कुंडलिया एक" लिखकर व दोनें

और एक कुंडलिया छंद में नृसिंह दास के कटक का वर्णन किया है। एक ही वन में निवास करने वाले मृगेन्द्र और हाथी के शौर्य की पारस्परिक भला क्या तुलना? हाथी तो बिककर गली गली घूमता है पर क्या सिंह को इस मोल कभी कोई खरीद सकेगा?

" अथ दूहा एक १ कुन्डलिया एक १.

अेकइ वनि वसंतड़ा एवड़ अन्तर काइ
सीह कवडी न लहै गैवर लाखि विकाइ
गैवर गलइ गलथियो जेइ खंचे तेह जाइ
सीह गलथण जे सहै तउ दह लखि विकाइ
तउ दह लखि विकाइ मोल जाण विमुह गेरा
कडुवा कारणि कथिन कोपि कउ दालिम केरा
पेटि कीध पडियारनि हथि कटारउ दुहु कर
राइ न ग्रहण नरसंघ गलइ गलथण जउ गैवर (१७-१९)

युद्ध में खीची परिवार के समस्त सिंह आजुटे, आसपास केराजा भी स्वामी पर आई इस आपत्ति को सहन करने को तैयार नहीं थे।छत्तीसकुलों के सब भाई जुझाये। हम्मीर की भांति युद्ध के हठी अनेक राजाओं ने आकर इस युद्ध स्थल को सुशोभित किया।समस्त सैनिक सजग थे। एक दिशा से असुर दल आया और दूसरी दिशा से मानो सम्पूर्ण ही परिवार ही सर्वांगण के अर्पित कर दिया गया हो।अचलेसर के साथी सैनिकों का वर्णन कवि ने बहुत ही सजीव तथा सरस किया है:

आलम का अहुवाल इसि सुकर आवना
गढ़ कागा गढपति कन्है युद्ध अस सरणा मा
हम साहिबो न होइ मरण सुबै गढ मेल्हिबो
बाजइ अचलेसर इसउ सुंह मधुर सह कोइ
मढ मरवाई माथ लेखइ जाइ लेकाल गइ
चांवड ही चालइनही मढ वजि सोरी राव
ऊंचा तुरग अकेल उलिमकि किन्ही न छूट की

नाह तणउ नरलोइ ध्रुव जाणियौ महावती
अम मेल्ही मेल्हउ उदक तूंबरिणि दिनि तोइ
अति लडवौ तद आप, डरपायौ डरपी करी
वांदउ ही चालइनहीं बेटउ अवछडि बाप
मीमणि ऊमनि नाह भाई घरि भोजा तणइ
प्रजा कीध मन पाधरा मरण देखि मरिवाह
बापैतामिरवइत छलि, धरिकुली छतीस की
बाल्या स्वामि समाध, सीखउ मागउ साव इस
एकि माल्हा की पूठि, पूठि एकि पातलतणी
उलि मागा आगी हूवा अउ दिन बेल उठि (४८-५४)

--- --- ---

मिरखै अवल निढार सूरा गुरु सुरिज उदै
एकिणि दिसि आया असुर पह दूजी परिवार
कलि पालट करणीक सीतल सोम हमीर जिम
गढ अनियै गांवां तणा मिलै राइ मरणीक
मिलवै मेछिक धारि पह मिलवै परिवार के
ऊपलउ पर सीकम तणउ बाइ अहुवौं हकार (५१-५८)

कवि ने आलमशाह की सेना की अनुमान से गणना हाथी, घोडे, पैदल आदि सभी को देखकर प्रस्तुत की है। सुल्तान मानो दूसरे अलाउद्दीन की भांति दिखाई पड़ता था।

<u>अब पाघा</u>

घारै बारह लाख लेकड पैदल मयिमरिय ववरायी मइगल
वाजूल सहस वीस अर वेरह, आलम शाह अडीवड केरह (६७)

युद्ध में दोनों दल आ जुटे, भयंकर मोर्चाबंदी हुई। राजपूतों की योद्धा रानियां अपने वीर पतियों के हाथों के असाधारण वारों को देखकर युद्ध को जाती थीं। यही नहीं, बूढ़ी रानियां, भोली बालाएं तथा प्रौढ़ा स्त्रियां भी अपने

अपने देवर, जेठ, भर्तार आदि के पुरुषार्थ को मुग्ध नयनों से देखती फिरती थी। गागुरुणि इस समय युद्धस्थल अथवा वैतालपुरि की भांति हो रही थी। युद्ध स्थल का नायक अचलदास युद्ध भूमि में छत्र चँवर सहित इस प्रकार का बाका वीर दिखाई पड़ता था मानो साक्षात् हम्मीर ही बैठा हो।दोनों ओर की सेनाओं की समरांगण में मोर्चाबन्दी तथा भीषण मारकाट के वर्णन कवि की शौर्यपूर्ण, उत्साह पूर्ण तथा गहन अथच सजीव अनुभूति के चित्र हैं। कवि ने योद्धाओं की वीरतापूर्ण भयंकर मारकाट के अनेकों साकार एवं रोमांचक चित्र उतारे हैं। वर्णन की चित्रात्मकता तथा सजीवता कवि के रसावला एवं गाहा छंदों में स्पष्ट दृष्टव्य है:-

अथ रसावला

बिहू छेहि नांगांवली।सर पुडिंग सली
अणी अणी अडुली।खग खगा खली
रुधिर धर रलतली,नडुनावै कुंमुद महाबली
आलूझै आंभावली।आलम अचलेसर पहुआसेन विमै इम संमिली
सहै कुम भुगरी।घक धक झरी
लागइ लागइ लरी।लाइ नइ हठ हरी
खिन राव न बाग्इ कुरी।नींद भूख तिस वीसरी
सीदा लगि सीची सरी।वैन मिलै इम वैगिरी (७०-७१)

अथ गाहा

इम परि सबद हुँव हूँ
पब पग अड़ै न पग मव हटै
आलम अचल ईम अभाटै
अनक मिड़ि रढि रढि कलम है (७२)

अथ दूहड़ा

आलमि अचलै हरि चड़यां स ही एक अनेक
भिड़ीयै सेसा हींदू घड़ै सेसा सबल तुरक (७३)

उक्त वर्णन दुवारा रचना वीर रौद्र तथा बीभत्स रस की निष्पत्ति स्पष्ट है।वर्णन की ध्वन्यात्मकता तथा आलंकारिकता विभिन्न दृष्टान्तों और वर्णनों की साकारता तथा चित्रात्मकता से यथार्थ एवं साकार हो उठती है।युद्ध में विक्रम अचलेश्वर को वीर रस के छलकते प्याले पिलाते थे।उनकी इस प्रकार की उक्तियों में से एक को देखा जा सकता है:-

" जस चावड मल याइ पूत न होइ पाडरु

तिर्थ ढाटी हर ढाइ वलियो जाइल हर पथी। (८४)

बहुत भयंकर सामना किया गया।रणांगण में विविध प्रयोगों दुवारा दोनों के सैनिकों ने शौर्य दिखाया झुकझुक कर मुड,-मुड कर, मानो जुड़े हुए किंवाड खोलदिए गए हों वर्णन कवित्त शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।पाल्हण सिंह के खेत रहते ही राय का हृदय भर आया अश्रुधारा बह चली:-

पाल्हणसी पुहविहि रह्यो अनिसमस्या सरणी

तिणि वेला हीया भरी राइ राइ रोवण लागि ।।९०।।

--- --- ---

।। अथकवित्त।।

पाल्हो कवण पडै कवण वन वाडी बारै

कवण सइ केलिवी, कवण सिरि बीच [illegible]

[illegible] किणि [illegible], आप कुं [illegible] बापड

[illegible] उच [illegible], कवण [illegible] बोपड

पडरी [illegible] कुन [illegible] कवण वन [illegible] पुडै

नाकाउड [illegible] [illegible] किलक कौण [illegible] वकि [illegible]।।९२।।

भयंकर मारकाट करने पर भी,राजपूतों के प्राण प्रण से युद्ध करने पर भी सुलतान की सेना को विजय हाथ लगती दिखाईपड़ी। डूंगर सिंह मोकलसिंह, पाल्हणसिंह जैसे विकटयोद्धाओं को भी युद्धभागी युद्ध मद तरीकों के सामने झुक जाना पड़ा।अचलेश्वर स्वयं वीरगति को प्राप्त हुए। पर मरते समय भी उनके

कान में यही स्वर थे कि राजपूत पुरुष और स्त्रियाँ जीवित रूप में मुसलमानों को आत्मसमर्पण नहीं करेंगी। अन्तःपुर से जौहर के धुंए की लपटें मुसलमानों को इस हार का आत्म सम्मान पूर्ण करारा उत्तर देंगी। अतः भी यहीं।कवि ने अचलदास की मृत्यु का तथा राजपूतों की इस धूमिल एवं असंगत स्थिति का बड़ा ही मार्मिक एवं काव्यात्मक वर्णन किया है:-

सींधवियो चढ वाणि जउहर की मांडउ जुगति
हव कुंवरां हरपुर दिसा वेगा वेगि सिहाणि (१४)

--- --- ---

हाडा खीची टेक गोलीकी सूरिज वंसी
कुणिस्यै मुत माडरी सदा अंदेर राइ अनेक
सदा भाइस जगीस कहि कहि अचलेसर कहै
बहुयह मुंड वहाणिस्यै कुणिया वंस छतीस

यही नहीं, अन्त में कवि ने समस्त रानियों को जौहर की धधकती ज्वाला का श्रृंगार कराया है वर्णन का सौन्दर्य और वीर रस का काव्यूप दृश्य वहां प्रस्तुत होता है जहां कुमुदी षोडषी बालायें हंसती हंसती जौहर के स्फुलिंगों से अपनी मांग को सजा लेती है। वर्णन की प्रवाह रचना के उत्साह को वीरोक्तियों का छलकता समुद्र बना देता है।जौहर का साकार वरसापूर्ण रोमांटिक तथा स्पृहणीय वर्णन पर्याप्त सरस एवं सजीव बन पड़ा है। कवि का काव्य सौष्ठव वर्णन के इस सौकर्य में सहज लभ्य है:-

"हई सब हीकी होडि, मानिणि तब साईं नहीं
डसव मंडिया सब साकीया जउहर कोडि
लगोडो मरवरि धरि धरि सद देवे धमड
कालीराह हरि आभरह समहरि अचलय धीर
मोटै सब मंडिमाडि अवल धरि आयै तुबै
हींचण हरि तुई तेजुडी बहु माह फिरि फिराहि
वेहा सिमिष कुराणि महकड़ी धूंबा धरबड

तणै अंतेवर उठिसी अंगहू जाणै आगि
आपणा कुंवर अजीत माहे माहे मलपती
कुल बहुवां दीसै कंवल ऊगा किरि आदीत (१०१-१०५)

--- --- ---

ते वाली तिणि ठाहि, आइसि अचलेसर तणै
ससिवयणि सिव सिवकरे, पइसै पावक मांहि
छूटि न जांई तेहि माहे जउहर मेल्हे
आइ आइ चडै उतावली पटराणी पागे हि
जउहर मइ जलि बाह इसइ तेजि पैसे अचल
पहिली थी रहि पाछिली पग एकि पडावे नाह (१०६-१०८)

--- --- ---

जउहर जालण हार अगइ जलइ ताइ ऊबरै
हरि हरि हरि होई रह्यौ विसन विसन विणिवार
पुहवि न पारावार गढ अंनियै गीदां तणा
सुर तेतीसइ समधरणि दणियर देखणहार
सीचण हरै छ छोडि, आमोलकि परि आवण्ड
जीहरि आपड जाळिसी, छछ्यो आपौ छोडि (११०-११२)

--- --- ---

हाकल होम हमीर जिम जीहर वालिय
वडिय हेत वखाण आदि कुळवट अवालिय
सुमत चिहुर विरि मंडियणि केठि कुळसी वासी
सोवाइ ति भुव बलहि करिहि करि पर कालासी (१२१)

अन्त में कवि ने अचल दास की कीर्ति को अचल कर काव्य की समाप्ति की है

"गढि संढि पढंती मागुरणि, विढ रासे सुरिताण कड
संधारिनाम आतम सरंगि, अचल वेवि कीधा अचल (१२१)

रचना की प्रतिलिपि का प्रमाणिक वर्णन रचना की पुष्पिका मे मिल जाता है[1]। इस प्रकार पूरी रचना १२१ पद्यों में पूरी हुई है।बीच बीच में कवि गद्य शैली में भी पर्याप्त वर्णन करता है।वस्तुतः पूरा काव्य वीर रस की एक उत्कृष्ट रचना है जिसमें कवि ने वीरपूजा और जौहर द्वारा तत्कालीन समाज की पारंपरिक युद्ध नीति राजपूतों की स्थिति, आत्मसम्मान की रक्षा के लिए जौहर एवं मृत्यु वरण, युद्ध प्रेम आदि प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया है।वास्तवमें अचलदासखीचीरी वचनिका ओजपूर्ण वीर गाथा का जैनेतर(लौकिक) काव्य है।

अद्यावधि जैनेतर जितने भी काव्य मिले हैं, उनका विवेचन उक्तपृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है।जैनेतर रचनाओं को वस्तु शिल्प भाव सौन्दर्य,भाषा तथा वर्णन की विविध पद्धतियों की तुलना आदिकालीन जैन कृतियों के साथ सफलता से की जा सकती है। वास्तव में उपलब्ध जैनेतर (लौकिक) काव्यों का शिल्प, वर्ण्य प्रवाह,भाषा तथा विषय का सुन्दर समाहार एवं प्रतिपादन की क्षमता इन काव्यों में परिलक्षित होता है।शोध होने पर हिन्दी की प्रादेशिक बोलियोंमें और भी अनेक आदिकालीन जैनेतर काव्य मिल सकेंगे, ऐसी आशा ,है।

१- संवत् १६३१ वर्षे श्रावण सुदि ८ सोम दिने घटि १९ पल ३५ विशाखा नक्षत्र घटी ३१।३४।शुक्लनामा योग घटी ५४।।१•अचलदास खीची री वचनिका महाराजा धिराज महाराज श्री राय सिंह जी विजैराज्ये।जांगिलायाँ ग्राम मध्ये महाराजा धिराज महाराइ श्री जोधा तत्पुत्र राज श्री बीदा तत्पुत्रराज श्री संसार चंद तत्पुत्र राज श्री सांगा तत्पुत्र राव श्री [illegible] दास लिखितं।आत्म पठनार्थं। शुभं भवतु।कल्याणमस्तु।। श्रीरामचन्द्र जी(प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय,बीकानेर के सौजन्य से)।

(२) आदिकाल की जैनेतर (लौकिक)गद्य रचनाएं ।

पृष्ठभूमि:-

हिन्दी साहित्यमें गद्य के उद्भव का प्रश्न अभी तक समस्या बना हुआ है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य की जैनेतर (लौकिक) गद्य रचनाओं पर विचार करने के लिए हिन्दी साहित्य की गद्यपरंपरा का पृष्ठभूमि के रूप में परिचय प्राप्त करना आवश्यक प्रतीत होता है। इसके लिए हमें अजैन और जैन सभी विविध स्रोतों द्वारा हिन्दी साहित्य के गद्यके उद्भव के अंकुर खोजने होंगे।अद्यावधि हिन्दीगद्य साहित्य का उद्भव १४वीं शताब्दी से ही माना जाता रहा है।परन्तु आदिकालीन साहित्य की इस शोध द्वारा प्राप्त १०वीं शताब्दी के शिलालेख (अजैन) और ११वीं शताब्दी की धनपाल कथा(जैन) आदि प्रौढ़ रचनाओं के आधार पर हिन्दी गद्य की परम्परा का प्रारम्भ १०वीं शताब्दी से ही माना जा सकता है।अद्यावधि विद्वानों में जो पूर्व मान्यताएं गद्य के उदभव के सम्बन्ध में रही हैं उन पर पृष्ठ भूमि के रूप में यही संक्षेप में विचार किया जारहा है।जिससे आशा है गद्य की पंरम्परा के उद्भव को समझने में सहायता मिलेगी ।

हिन्दी साहित्य के गद्य की परम्परा

हिन्दी साहित्य के प्राचीनतम गद्य की परंपराके मूल स्त्रोत हमें संस्कृत और प्राकृत की रचनाओं में मिलते है।संस्कृत में गद्य, वैदिक संस्कृत के साहित्य से ही मिलने लगता है।वैदिक काल में गद्य की रचनाएं हुईऔर उसका महत्व पूर्ण स्थान भी था। संहिताओं ने पद्य को प्रधानता दी है।ब्राह्मण ग्रन्थों में हमें पद्य का स्थान गद्य लेता हुआ दिखाईपड़ता है जबकि उपनिषदों में पद्य फिर जोर पकड़ लेता है।

स्थिति यह है कि लौकिक संस्कृत में गद्य की प्रगति नहीं मिलती। रामायण और महाभारत में भी पद्य को प्रधानता मिली।परन्तु उसके बाद अधिकांश साहित्य पद्य में मिलता है।सूत्र साहित्य में जो पद्य के

कहीं दर्शन ही नहीं होते।

संस्कृत के पश्चात प्राकृत पाली में अर्थात् जैन और बौद्ध रचनाओं में हमें गद्य की प्रगति पुनः मिलने लगती है। प्राकृत अपभ्रंश की रचनाएं तो हिन्दी साहित्य के प्राचीनतम गद्य रचनाओं की जन्मदात्री कही जा सकती है। बीज रूप में इन रचनाओं में गद्य के प्राचीनतम उदाहरण हमें उपलब्ध होते हैं। गद्य का प्राचीनतम स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत करने में इन प्रान्तीय भाषाओं और बोलचाल की देशी भाषाओं का बहुत हाथ है। देशी भाषाओं पर अपभ्रंश का प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। यहाँ तक कि उत्तर की भारत की वर्तमान सभी प्रान्तीय भाषाओं का विकास अपभ्रंश से ही हुआ है। प्राकृत और संस्कृत में तो गद्य के सैकड़ों हजारो ग्रन्थ हैं, पर अपभ्रंश की प्रधानता के समय पद्य का आकर्षण इतना अधिक बढ़ गया था कि अपभ्रंश में यत्रतत्र तो विविध प्रकार की सैकड़ों छोटी बड़ी रचनाएं मिलती हैं, परन्तु गद्य में लिखा गया कोईभी तत्कालीन गद्दीय ग्रन्थ स्वतंत्र रूप में उपलब्ध नहीं होता।[1] अपभ्रंश के नवीं शताब्द में रचित कुवलयमाला ग्रन्थ में हमें गद्य के छोटे छोटे वाक्य देखने को मिलते है। प्रसिद्ध विद्वान श्री लालचंद भगवान गांधी ने अपने ग्रन्थ अपभ्रंश काव्यत्रयी में कुवलयमाला के कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किए हैं।[2] अतः हिन्दी गद्य साहित्य की परम्परा के उद्भव के बीज इसी रचना से हमें मिलने लगते है। कुवलयमाला के कुछ उद्धरण डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी हिन्दी साहित्य के आदिकाल में उद्धृत किए है। वे लिखते है कि नवीं शताब्दी की कुवलयमाला कथा में कुछ ऐसे प्रसंग है जिनमें की तत्काल प्रचलित भाषा के सुन्दर नमूने आ गए हैं।[3] प्राकृत के इस प्रसिद्ध ग्रन्थ में प्रसंगवश जहाँ जहाँ अपभ्रंश का प्रयोग मिलता है उस समय के बोलचाल की भाषा पर छोटे छोटे गद्यात्मक वाक्यों में उस पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इन

१- देखिए शोध पत्रिका में श्री नाहटा लिखित प्राचीन जैनराजस्थानी गद्य साहित्य लेख पृ० ४१।
२- देखिए अपभ्रंश काव्यत्रयी: श्री लालचन्द भगवान गांधी पृ० १०४-१०९
३- हिन्दी साहित्य का आदिकाल-आचार्य द्विवेदी पृ० १६।

छोटे छोटे कथोपकथनों द्वारा हम गद्य की प्राचीनतम स्थिति का सहज अनुमान लगा सकते है इस प्रकार विक्रम सं० ८३५ में लिखे हुए कुवलयमाला कथा ग्रन्थ से अपभ्रंश की परिवर्तित स्थिति और तत्सम शब्दों के बाहुल्य को स्पष्ट करने वाले इन प्रासंगिक गद्यांशों के गद्य की परंपरा समझने में योग मिलता है। इसके बाद पुरानी कोसली का एक ग्रन्थ उक्तिव्यक्ति प्रकरण ११वीं शताब्दी का कवि श्री दामोदर शर्मा द्वारा लिखित उपलब्ध होता है।[१] यह ग्रन्थ बनारस और उसके आस पास के भाषा रूपों को समझने में योग देता है। तत्सम शब्दों की ओर तेजी से प्रतिक्रमण हमें इस रचना में उपलब्ध होने लगता है। यह ग्रन्थ एक बात यह भी सिद्ध करता है कि देशी भाषा में क्रम तहाम्शिों की रचना प्रारम्भ हो गई थी। यह ग्रन्थ देशी भाषा के गद्य ग्रन्थों में अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है। इस ग्रन्थ के रचयिता दामोदर राजा गोविन्दचन्द्र के सभा पंडित थे।वे काशी के राजकुमारों के शिक्षक थे। ग्रन्थ का रचनाकाल सन् ११५४ है अतः भाषा १२वीं शताब्दी की बनारस के आस पास की देशी भाषा की ओर झुकने की प्रवृत्ति आ गईथी, यह भी इससे पर्याप्त स्पष्ट है। ग्रन्थों के कुछ उद्धरण उदाहरणार्थ देखे जा सकते हैंउक्ति व्यक्ति प्रकरण में पुरानी कोसली को देशी अपभ्रंश कहते हुए कहा गया है कि:-

> देशे देशे लोकोक्ति गिरा भ्रष्टया यथाकिंचित
>
> सा शमैव हि संस्कृत रचिता वाच्यत्व मायाति (६)
>
> --- --- ---
>
> आथि इति कर्तृनिर्देश कीज इति साध्यता क्रियावलनात्
>
> जीवतां वृद्धयते तावत् सायंहां पीवहां शौः
>
> जीवात्मा पृथ्वितो आ(ढ्)दस्यावहरः पुनः

इस ग्रन्थ में व्याकरण के नियमों को स्पष्ट करते हुए गद्य के प्रचुर उदाहरण मिल जाते हैं जैसे:-

१- गीतन्हाए धर्म हो पापुआ

२- धर्म बाढ़इ पापु औ घट

३- वेहें बरिस

४- बोधि लेख, बोधि देखत बाक।

५- जीमे चाल, जीमे वालत आउ।

६- नाकें धूंघ।

७- हाथे बुआ, काने सुण, बोले बोलैं , हाथे ले पायं जा।

२- (अ) के ईहां काह पड, को काहे पड

(ब) काह करलको कह कर काहें

(स) काहे का किंह का पास हानुपठ - पृ० २७-२९)

३- १- जस जस धर्म बाड तसु तसु पाप घाट

२- जाहां जाहां धर्मु नांद ताहां ताहां पापु मान्द

आदि उदाहरणों में प्राचीन गद्य के उदाहरण मिल जाते है जो आदिकालीन गद्य रचनाओं की पृष्ट भूमि निर्मित करने में सहायक तत्व है। इनउद्धरणों के अतिरिक्त प्राचीन राजस्थानी भाषा में १२वीं शताब्दी के कुछ राजघरानों के शिलालेख भी उपलब्ध होते है जिनमें दो प्रमुख दानपत्रों को यहां उद्धृत किया जा रहा है। ये दानपत्र रावल समर सिंह और महाराज पृथ्वी सिंह के है तथा दोनों कासमय क्रमशः सन् ११७२ व सन् ११७८ है।भाषा प्रश्नीय प्राचीन राजस्थानी है। रावल समरसिंह और पृथ्वी सिंह के दोनों दान पत्रों के उद्धरण क्रमशः इस प्रकार है:-

<u>रावल समरसिंह:-</u> " स्वस्ति श्री चीत्रकोट महाराजाधिराज तपेराज श्री श्री रावलजी श्री समरसिंह जी वचनातु दा अमा आचारज ठाकुर रुषी केष कस्य डेल वली दु डायजेलाया।ज्ञमीराज में ओषद थारी लेवेगा ओषद उपरे मालकी थाकी है।ओजनाना में थारा वंस रा टाल ओ दूजो जावेगा नहीं और थारी बैठक दली में ही जी प्रमाणे परधान बरोबर कारण देवेगा और थारा वंस क सपूत कपूत

१- शोध पत्रिका भाग ७ अंक २,३। २- उक्तिव्यक्ति प्रकरण:प्रकाशक सिंघी जैन ग्रंथमाला
३- वही, ग्रन्थ, वही पृ० ।

वेगा जी ने गाय गोणो अणी राज में झायया पायया जायेगा और थारा बाकर पीढ़ा को कायो कोर्णर सूं चलावेगा और थूं जमा खातरी रीजो कोई में राजयान बाद जो अणी परवाना री कोई उलंघण करेगा जीने श्रीयकलिंग जी की आण है।दुबे पंचोली जानकीदास।

सन् ११७२ विक्रम सं० ११३९ ● ९० = १२२९।[१]

(२) महाराज पृथ्वी सिंह:-

" श्री श्री दलील महाराजं धीराजं नं हिन्दुस्थान राजधानं संभरी नरेस पुर बदली तखत श्री श्री माहनं राजं धीराजनं श्री पृथ्वी राजी सुसाधनं आचारज रूषी कोष धनंत्रि अन्तम सम ने काकाजी नं● के दुवा की आरामं बओजीन के राज में रोकड रुपीया ५००) तुमरे आहाती गोड़े का परचा खीवाम आवेंगे स्थान वे इनको कोई भाफ करेगे जीमको नेरको के अधंकारी होवेंगे दईदुबे हुकुम के हहमंत राआ।सन् ११७८ विक्रम सं० ११४३ + ९० = १२३३।[२]

इन दोनों दान पत्रों को श्री हरिऔध जी ने अपने ग्रन्थ हिन्दी भाषा और साहित्यके विकास में उद्धृत किया हैपरन्तु दोनों की भाषा में क्रियाओं के खड़ी बोली के प्रयोग तथा उदयपुर के आसपास बोली जाने वाली इधरावीन राजस्थानी भाषा में अति आधुनिक भाषा के शब्दों के प्रयोग देखकर इन दान पत्रों के पाठ की प्राचीनता पर संदेह होनेलगता है।~~अन्यत्र~~ उपलब्ध होने के कारण इनको यहां उद्धृत कर दिया गया है।इनके अस्तित्व में यथार्थ कितना है यह कहना पर्याप्त कठिन है। १२वीं शताब्दी के उद्धरणों के बाद हमारी दृष्टि गोरखनाथ के गद्य पर पड़ जाती है आचार्य शुक्ल जी ने भी इसे सं० १४०० के आसपास के ब्रजभाषा गद्य

१- हरिऔध- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास(द्वितीय संस्करण) पृ० १२८-२९ संवत् १९९७।

२- वही।

का उदाहरण मान लेने को लिखा है।[1] मिश्रबन्धु गोरखनाथ का समय सं० १४०७ मानते हैं।[2] राहुल सांकृत्यायन उन्हें १०वीं शताब्दी का ही कहते हैं। इस प्रकार गोरखनाथ का समय निश्चित नहीं है और उसके नाम से उपलब्ध गद्य कृतियां भी असंदिग्ध नहीं है। परन्तु गोरखनाथ की कृतियों की प्रामाणिकता पर आलोचक विद्वानों ने शंकाएं की है कि गोरखनाथ की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियां १८वीं शताब्दी से पहले की प्राप्त नहीं होती और जो रचनाएं गोरखनाथ के नाम से प्राप्त है वे विश्वसनीय नहीं है।[3] परन्तु इतना होने पर भी इसे अवश्य माना जायगा।कि गोरखनाथ की रचनाएं आदिकाल के गद्य साहित्य में अपना स्थान अवश्य रखती है। वास्तवमें यदि गोरखनाथ की ये रचनाएं उसकी अपनी हों तो भी वे अपने मूल रूप में सुरक्षित है इस पर संदेह किया जा सकता है।असंभव नहीं कि उनका प्राप्त रूप गोरखनाथ के बहुत बाद का हो।यही कारण हैकि आलोचकों ने ब्रजभाषा के वल्लभाचार्य के गद्य ग्रन्थों को ही हिन्दी के प्राचीन गद्यमान लिया है।[4] जो भी हो, स्थिति इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट नहीं है। गोरखनाथ को मिश्रबन्धु हिन्दी का प्रारम्भिक गद्य लेखक मानते हैं।[5] गोरखनाथ के नाम से उपलब्ध होनेवाले गद्य के इन अवतरणों को श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध नेभी अपने इतिहास ग्रन्थ में गोरखनाथ के नाम से उपलब्ध गद्य कहकर उद्धृत किया है। तथा इनको १४०० ई० के आसपास का गद्य मानाहै:-

१- सो वह पुरुष संपूर्ण तीर्थ अस्नान करि चुकौ अरु संपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि को दै चुकौ, अरु सहस्त्र जग्य करि चुकौ अरु देवता सर्व पूजि चुकौ अरु पितरनि को संतुष्ट

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास:श्री रामचन्द्र शुक्ल पृ० ४५८।
२- मिश्रबन्धु विनोद: भाग १: मिश्रबन्धु: पृ० २११।
३- देखिए कल्पना: मार्च १९५३ पृ० २११ पर श्री अगरचन्द नाहटा का"राजस्थानी गद्य काव्य की परंपरा-लेख ४- वही। ५- मिश्रबन्धु विनोद:भाग १ प्रस्तावना भाग।

करि चुकौ स्वर्ग लोक प्राप्त करि चुकौ जा मनुष्य के मन छन मात्र ब्रह्म के विचार बैठो।------- पराधीन उपरांति बंधननो ही छु आधीन उपरांति मुकुत नाही, चाहि उपरांति पाप नांही, अचाहि उपरांति पुन्नि नांही क्रम उपरांति मल नांही, निहि क्रम उपरांति निरमल नांही, कुब उपरांति कुबुधि नाहीं निरदोष उपरांति सुबुधि नांही, चोर उपरांति बंत नांही, नारायण उपरांति ईसर नांही, निरंजन उपरांति ध्यान नांही[1]

२- श्री गुरु परमानन्द तिनको दंडवत है। है कैसे परमानंद? आनंद स्वरूप है शरीर जिन्हि को जिन्हीं के नित्य गावै है सरीर चेतन्नि अरु आनंदमय होतु है।मैं जु हौं गोरख सो मछंदर नाथ को दंडवत करत हैं कैसे वे मछंदर नाथ? आत्माजोति निश्चल, अंतह करन जिन्ह को अरुमूल दुवार है छह चक्र जिन्हि नीकी तरह जानै।अरु गुज काल कल्प इनि की रचना तत्व जिनि गायो।सुगंध को समुद्र तिन्हि को मेरी दंडवत।स्वामी तुम्हें तो सतगुरु अम्हे तो सिष सबद एक पूछिबा दया करि कहिबा मनिन करिबा रोस[2]

उक्त उद्धरणों को १४वी शताब्दी का गद्य माना जा सकता है परन्तु आलोचकों को जब तक गोरखनाथ के विषय में पुष्ट तथा प्रामाणिक तथ्य नहीं मिल जावे, गोरखनाथ के गद्य को संदिग्ध ही कहते है।जो भी हो, इन गद्यांशों को हिन्दी के प्राचीन गद्य की परंपरा में योग देने वालेनकाककहरचोकि उनमें ग्रहण किया जा सकता है।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के एक वार्षिक विवरण[3] में कुमुटि पाव के नाम पर मिला एक अन्य ग्रन्थ ज्ञानयोग का है।इस ग्रन्थ का रचनाकाल अज्ञात है तथा लिपिकाल सन् १८४० है।ग्रन्थ में षट्चक्र और पंच मुद्राओं का वर्णन है।एक उद्धरण देखिए- अवधा अवंती महामुनि इहि ब्रह्मचक्र बाय प्रभावबोलीये।ब्रह्म चक्र ऊपर गुह्य चक्र दीपमंडल स्थाने बसै इक ईस ब्रह्मांड बोलीये।--।परम शून्य स्थान ऊपर वे स

१- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास: हरिऔध द्वितीय सं०ई० १९५०पृ०२३०
२- वही।
३- वार्षिक विवरण ४८,ई० १९५० पृ० १०, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

विनसे न आवै न जाई योग योगेन्द्रे समाई,सुनी देवी पार्वती ईश्वर कथितं महाज्ञानं[1]

उक्त उद्धरण की भाषा १४वीं शताब्दी की लगती है परन्तु यह ग्रन्थ भी पूर्ण प्रामाणिक है यह कहना कठिन है।उक्त सभी उद्धरण १४वीं शताब्दी की प्रादेशिक भाषाओं के गद्य के हैं ऐसा विद्वानों का मत है परन्तु इनके सम्बन्ध में पर्याप्त ठोस प्रमाणों की अपेक्षा है।

एक उत्कृष्ट रचना विद्यापति की कीर्तिलता भी मानी जाती है। यहरचना १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की है।डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी भी इस रचना को गद्य की रचना स्वीकार करते हैं।[2]

परन्तु १५वीं शताब्दी में तो हिन्दी साहित्यके गद्य की उत्कृष्ट अजैन और जैन कृतियाँ मिल जाती हैं।

श्री अगरचन्द नाहटा ने तरुण प्रभसूरि की १४वीं शताब्दी की एक जैन विद्वान की गद्य रचना की सूचना दी है जो तत्सम शब्दों से पूर्ण है तथा पर्याप्त प्राचीन है।[3]

जो हो,अद्यावधि उपलब्ध इन कृतियों के आधार पर हिन्दी साहित्य की गद्य परंपरा का तारतम्य यद्यपि संस्कृत से जोड़ा जा सकता है परन्तु स्थिति फिर भी इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट नहीं हो पाई है।१०वीं शताब्दी से सोहमें सुन्दर काव्यात्मक गद्य का अंश उपलब्ध हुआ है परन्तु इसके पूर्व हिन्दी की गद्य परंपरा किस रूप में थी यह बहुत स्पष्टनहीं हो पाता।इधर गोरख नाथ आदि का समय भी अभी विवाद का विषय बना हुआ है।ऐसी स्थिति में प्राचीन राजस्थानी की कई जैन कृतियाँ ही बच जाती हैं जिनमें १०वीं शताब्दी से ही गद्य की महत्वपूर्ण कथात्मक तथाविविधविषयक रचनाएं उपलब्ध होने लगती हैं। इन रचनाओं पर प्रस्तुत ग्रन्थ में आगे विस्तार में जैन गद्य परंपराएं के अन्तर्गत विचार किया जायगा।अबतक

१- हिन्दी साहित्यका इतिहास आचार्य शुक्लपृ० ६६
२- देखिए हिन्दी साहित्यका आदिकाल-डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
३- जर्नल आफ दी यू०पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी जिल्द १२, पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

सबसे प्राचीन गद्य रचनाओं के रूप में अनेक उद्धरण विभिन्न लेखकों ने दिए हैं जिनमें अधिकांश उद्धरण प्राचीन राजस्थानी के जैन गद्यकारों के हैं।[1] ये सभी उद्धरण प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ में प्रकाशित[2] विविध जैन कृतिकारों की कथाओं के हैं। वस्तुतः हिन्दीसाहित्य की गद्य परंपरा का प्रारम्भ जैनेतर और अजैन रचनाओं से १०वीं शताब्दी माना जा सकता है। १०वीं से १५वीं शताब्दी तक आदिकालीन हिन्दी साहित्य में गद्य की अनेक अजैन और जैन कृतियां उपलब्ध होती हैं। यहां आदिकालीन प्राप्त अजैन कृतियों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

जैनेतर रचनाओं में अद्यावधि जो कृतियां उपलब्ध हुई हैं उनमें मालवी, मैथिली, राजस्थानी आदि विभाषाओं की हैं। मैथिली में प्राप्त गद्य की रचनाओं में सिर्फ वर्णरत्नाकर पर ही प्रकाश डाला गया है। बहुत संभव है वर्ण रत्नाकर की भांति मैथिली में लिखी गई और सम्पन्न गद्य की कृतियां कथा नाटक आदि रूपों में प्राप्त हों। अतः यहां उपलब्ध अजैन अथवा लौकिक गद्य की कृतियों में से कुछ प्रमुख प्रमुख रचनाओं का ही परिचय दिया गया है। इन रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य के आदिकालीन गद्य की परंपरा में १०वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी तकके गद्य के स्वरूप का अनुमान सहज ही लगाया जा सकेगा। रचनाओं के विश्लेषण में अधिक उद्धरण इसलिए आवश्यक समझकर दिए जा रहे हैं क्योंकि इनमें कुछ विशिष्ट कृतियां अद्यावधि भी अप्रकाशित और भंडारों में बन्द हैं।

जो भी हो, हिन्दी साहित्य के आदिकालीन गद्य परंपरा पर उक्त जितना प्रकाश डाला गया है उसके क्रमिक विकास को इनजैनेतर गद्य रचनाओं से सम्यक् प्रकार से समझा जा सकता है।

१: देखिए- हिन्दुस्तानी भाग ५ अंक ३ सन् १९३५ हिन्दी का गद्य साहित्य लेख द्वारा श्री नरोत्तमदास एम०ए०, परिशिष्ट में उद्धृत विविध प्रादेशिक भाषाओं के गद्य के विविध उदाहरण पृ० २४८-४९

२- प्रा०गु०म०सं० सम्पादक मुनि जिनविजय।

आगे जिन जैनेतर कृतियों का विश्लेषण किया जा रहा है उनमें अधिकतर कृतियां अंत्यानुप्रास शैली अथवा गद्य काव्यात्मक वचनिका शैली में लिखी गई हैं, अतः इन रचनाओं पर गद्य काव्य मूलक शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाश डाला गया है। उपलब्ध जैनेतर कृतियों का परिचय अग्रांकित है:-

जैनेतर (लौकिक) गद्य रचनाएं

गद्य काव्य मूलक:-

जैनगद्य कृतियों में गद्य काव्य की शैली में लिखी कई महत्वपूर्ण रचनाएं उपलब्ध होती है। गद्य काव्य की यह परंपरा १०वीं शताब्दी से ही प्रारम्भ होती है और १०वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी तक हिन्दी की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में अनेक रचनाएं गद्य काव्य की शैली में लिखी गई है। इन रचनाओं में प्रयुक्त गद्य (जैन कवियों द्वारा रचित कुछ ही रचनाओं को छोड़कर) अत्यन्त, सरस, सबल तथा पर्याप्त महत्वका है। जैनेतर गद्य के अन्तर्गत अद्यावधि जितनी भी रचनाएं मिली है उनमें से किसी भी रचना का पाठ जैन रचनाओं के पाठ से कमजोर अथवा शिथिल नहीं है। इस ओर जितनी भी रचनाएं मिली है उनमें वर्णन का शिल्प जैन कृतियों से भी ठोस प्रतीत होता है अतः इस ओर पर्याप्त शोध की अपेक्षा परिलक्षित होती है। गद्य काव्य की शैली में अद्यावधि जितनी अजैन रचनाएं उपलब्ध होती है उनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है। इन रचनाओं में हिन्दी की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं -मालवी- मैथिली तथा राजस्थानी- आदि सभी की लौकिक रचनाएं है।

विकादित

आदिकालीन हिन्दी गद्य साहित्य में गद्य काव्य की परम्परा [1] को

१- गद्य काव्य की परम्परा- के लिए देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ का अध्याय १।

पुष्ट करने वाली अजैन रचनाओं में अद्यावधि उपलब्ध लगभग सभी रचनाओं में प्राचीन १०वीं शताब्दी का एक शिला लेख है। यह शिला लेख हिन्दी साहित्य में गद्य काव्य की परम्परा का श्री गणेश करता है तथा हिन्दी साहित्य में पद्य और गद्य की रचनाओं में सबसे प्राचीनतम है।गद्य काव्य के रूप में इस शिला लेख का गद्य भाग लिया जा सकता है। रचना राउल नायिका के नखशिख के सम्बन्ध में है। इसका गद्य काव्यात्मक प्रवाह से ओतप्रोत है। गद्य काव्य की परम्परा के उद्भव और विकास सूचक रचनाओं में यही शिलालेख सबसे प्राचीनतम है।अतः हिन्दी साहित्य गद्य काव्य का प्रारम्भ करने वाला यही शिला-लेख कहा जा सकता है। रचना का गद्य राजस्थानी भाषा की एक उप बोली मालवी में है।इस रचना का में अधिकांश शब्द मालवी के है तथा अपभ्रंश का आंशिक प्रभाव मिलता है जो परम्परा का प्रभाव कहा जा सकता है।

गद्य की प्राचीनता और सम्पन्नता की दृष्टि से आदिकालीन की हिन्दी अजैन रचनाओं को परम्परा के रूप में प्राप्त होनेवाला सबसे सम्पन्न यही गद्यांश है जो बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय के १०वीं शताब्दी के एक शिला लेख से उपलब्ध हुआ है। यह शिला लेख अद्यावधि प्राप्त होने वाली गद्य औरपद्यात्मक रचनाओं में सबसे प्राचीन है। इसकी भाषा को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि यह रचना १०वीं शताब्दी की ही है। यह शिला लेख राउल नामकी एक नायिका के सज्जा वर्णन का है और वर्णन कार ने विवाह करके आई हुई नायिका के नखशिख का वर्णन किया है। इस शिला लेख के द्वारा उसके लेखक के विषय में कोई भी तथ्य नहीं मिलता।

कवि ने पहले राउल का सौन्दर्य तथा नखशिख वर्णन पद्य में किया है और फिरगद्य में। गद्य का वर्णन भी पद्य के वर्णन से पर्याप्त साम्य रखता है।

१- शिलालेख के विस्तृत परिचय के लिए देखिए-प्रस्तुत ग्रन्थका अध्याय ५।

अद्यावधि गद्य की जो १३वीं शताब्दी से रचनाएं मिली हैं, उनका गद्य काव्य की दृष्टि से एक दम साधारण है परन्तु राउल नायिका के नखशिख का वर्णन करने वालेइस शिला लेख का गद्य काव्यात्मक दृष्टि से बहुत ही सम्पन्न है। गद्य की परम्परा के कलात्मक पक्ष का श्री गणेश इसी गद्यांश से माना जा सकता है। यह गद्यांश पर्याप्त कलात्मक है। शिला लेख में यह गद्य भाग पद्य भाग से यद्यपि कम है परन्तु जितना भी है वह बहुत ही पुष्ट और सशक्त है। आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्यमें गद्य काव्य का उन्मेष करने वाली रचना पृथ्वी चन्द्र चरित का वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ के जैन गद्य परम्पराएं नामक ९वें अध्याय में किया जायगा। गद्य काव्य का प्रारम्भ इसी रचना से हुआ है।परन्तु १०वीं शताब्दी के इस अजैन शिला लेख के गद्य का परिशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह गद्य १५वीं शताब्दी में गद्य काव्य की परम्परा का श्री गणेश करने वाली रचना पृथ्वी चन्द्र चरित्र से भी लगभग ४०० वर्ष प्राचीन तथा काव्यात्मक है। शिला लेख का गद्य कलात्मक है तथा तुकान्त है। गद्य की भाषा में मालवी शब्दों की अधिकता है। गद्य काव्य की परम्परा का उत्कर्ष बीज रूप में इस शिला लेख में मिल जाता है। इस शिला लेख का गद्य ज्योतिरीश्वर के वर्णरत्नाकर के गद्य की भांति सुन्दर,प्रवाहपूर्ण और तुकान्त है। सारा गद्य काव्यात्मक तथा भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस कृति का वर्ण्य विषय शृंगार या नखशिखका सांगोपांग वर्णन करते हुए नहीं दिये गए हैं। अत: यह रचना अजैन लेखक की है। लेखक अत्यधिक शृंगार और नखशिख का सांगोपांग वर्णन करते हुए नहींदिये गए हैं,क्योंकि शिला लेख में वर्णन की जैन परम्पराओं तथा पद्धतियों का भी परिचय कहीं नहीं मिलता। अत: इन्हीं सम्भावनाओं के आधार पर इसका लेखक अजैन ठहराया जा सकता है।

जहां तक पृष्ठभूमि के रूपमें गद्य काव्य के रूपमें उपलब्ध होने वाली रचना का प्रश्न है वह निर्विवाद है कि इस शिला लेख का गद्य बहुत काव्यात्मक है। इस

शिला लेख का उल्लेख डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी[१] और श्री हरिवंश कोछड़[२] ने अपने ग्रन्थों में किया है। लेखक को यह शिला लेख डा० मोतीचन्द्र संग्रहाध्यक्ष प्रिंस आफ वेल्स बम्बई के सौजन्य से प्राप्त हुआ। एतदर्थ लेखक उनका हार्दिक आभार प्रदर्शन करता है। शिलालेख के दोनों कोने टूटे हुए हैं पाठ एक दम अस्पष्ट गया है तथा बीच बीच में से भी पंक्तियां भ्रष्ट हो गई हैं।फोटो प्रति (स्टेम्पेज) से यह ज्ञात हुआ है कि यह रचना बहुत काव्यात्मक और पर्याप्त महत्व की है। रचना का सम्पादन डा० हरिवल्लभ भायाणी कर रहे हैं तथा डा० माता प्रसाद गुप्त ने भी इसका सम्पादन अपने ही प्रकार से किया है,[३] जो शीघ्र ही विद्वानों के सामने आयेगा।

जहां तक इस रचना की काव्यात्मकता का प्रश्न है, लेखक के उपमान मौलिक हैं। श्रृंगारिक अंश बड़े मधुर और मौलिक उपमाओं के दृश्य प्रस्तुत करते हैं।वर्णनकार ने उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की माला पिरोदी है। लेखक का वर्णन राउल नामक नायिका के सम्बन्ध में है। यह भी संभव हो सकता है कि राउल नाम कवि का भी रहा हो परन्तु कवि के रूपमें यह नाम अधिक सार्थक नहीं प्रतीत होता और राउलनाम नायिका के रूप में ही अधिक संगत बैठता है।

कवि ने गद्य काव्य के रूप में ही पूरे गद्य को प्रस्तुत किया है। आदिकालीन इन रचनाओं में गद्यात्मक जितनी भी रचनाएं उपलब्ध होती हैं,उनको देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि तुकान्त रूप में वर्णन करने की इन लेखकों में परम्परा रही थी। उदाहरणार्थ वर्णरत्नाकर जैसी रचनाओं के काव्यात्मक तुकान्त गद्य को देखा जा सकता है। निष्कर्षतः यदि यह कहा जाय कि गद्य के कलात्मक रूप में अद्यावधि जितनी भी कृतियां मिली हैं वे सब तुकान्त रूप में मिलती हैं तो अनुचित नहीं है।

१- हिन्दी साहित्य की भूमिका सन् १९४८ ई० पृ० २२;डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
२- अपभ्रंश साहित्य, डा० हरिवंश कोछड़, पृ० ३५,सन् १९५६
~~३- लेखक को रचना का यह अनुवाद उसके शोध निर्देशक डा० माता प्रसाद गुप्त।~~
३- देखिए प्रस्तुत ग्रंथ के परिशिष्ट- १ में शिलालेख का चित्र।चित्रसंख्या २।

इस शिला लेख में कवि ने नायिका राउल का नख शिख वर्णन बड़ी सजधज से किया है। यहाँ उदाहरणार्थ नायिका के केश कलाप और रश्मिम आभा से युक्त भाल आदि के सम्बन्ध में दो उदाहरण दिये जा रहे हैं। वर्णन में कहींकहीं शब्द कट फट गए हैं पर अलंकारिक वर्णन भाषा की सरलता और प्रासादिकता तथा उपमानों की मौलिकता आदि को इस दृष्टि से देखने से इस गद्य की सम्पन्नता का अनुमान किया जा सकता है।वर्णन का सौन्दर्य देखिए:-

(१) कोपहि ऊपरि सोलहहउ दीनउ वानु ते किसउ भावइ।जिसब सिंदुरिअउ रजायसु काम्ब देवह करउ नावइ। निलाडु रतु करउ सुपवाण(-------) शाम्ह ऊंन उचउ। सो देखिउ आठम्बिहि करउ चादु इसउ भावइ-[१]

--- --- ---

(केशों के ऊपर जो सोलहा(सेलड़ियों वाला आभूषण) दिया हुआ है उसका वर्णन कैसा भाता है जैसे सिंदुरिक के राज आदेश से कामदेव कर नमित कर रखा हो।उसका ललाट रक्त वर्णन का और करा (कड़ा या सुन्दर) है।उसके प्रमाण(---) उससे कम ऊंचा है उसको देखकर अष्टमी का चन्द्रमा ऐसा भाता है)

(२) एहु गीढ दुइं पकु को पनु अउर नर (?) ...को (?) हइं सहुं सौं बोलइ। जसु मालवीउ वे सुहि आवंसु काम्सबेउ जाउं (जानूं) आपणा हथिआरु भुलइ। इहां अम्हारइ छुणी सौंप करिउ भइ।

(अर्थ- ऐ गौड़, तू एक (है) किन्तु दूसरा और --- कौन तेरे सौह होकर बोलेगा? जो फिर मालवीका है उसकी सुधि आती है,तो कामदेव मानो अपना हथियार भूल जाता है। इस डर से कि यहां हमारी ही छुरी सौंप हो जायेगी।)

उक्त उद्धरण से प्रस्तुत शिला लेख की काव्यात्मक सम्पन्नता का अनुमान सहज ही मिल जाता है। शिलालेख का पाठ प्रकाशित हो जाने पर इसके काव्यात्मक गद्य का सहज अनुमान लगाया जा सकेगा।

१- लेखक को रचना का यह उद्धरण इसके शोध निर्देशक डा० माता प्रसाद गुप्त

काव्यात्मक गद्य का गद्यकाव्य की ऐसी रचनाएं आदिकालीन हिन्दी गद्य साहित्य का शृंगार है। हिन्दी साहित्य की प्रादेशिक भाषाओं में अनेक गद्य रचनाओं का सृजन हुआ होगा परन्तु आक्रमणकारियों के कारण या सुरक्षा ठीक प्रकार से नहीं होनेतथा शोध सामग्री एवं भंडारों की सम्यक् खोज नहीं होने से प्रस्तुत शिला लेख के पाठ से लेकर जैनकवि माणिक्य सुन्दर सूरि की रचना पृथ्वीचन्द्र चरित के बीच में गद्य काव्य मूलक कोई भी ऐसी रचना उपलब्ध नहीं होती। अतः अवधी, मैथिली, राजस्थानी, तथा ब्रज के भंडारों की सम्यक् शोध होने पर बहुत संभव है कि ४०० वर्ष के इस काल में गद्य काव्य की परम्परा का पोषणकरने वाली और भी कई रचनाएं उपलब्ध हों।

वर्णरत्नाकर[1]

गद्य काव्य शैली में लिखी अनेक रचनाओं में ठाकुर ज्योतिरीश्वर के वर्णरत्नाकर को नहीं भुलाया जासकता।अद्यावधि १४वीं शताब्दी की जितनी भी जैन गद्य रचनाएं १४वीं शताब्दीमेंउपलब्ध हुईहै उनमें कोई भी रचना ऐसी नहीं है कि उनके गद्य को वर्णरत्नाकर के गद्य के समकक्ष रखा जा सके।मैथिली के ठाकुर ज्योतिरीश्वर द्वारा लिखी इस रचना का गद्य बहुत ही सरस, काव्यात्मक तथा प्रवाहपूर्ण है। अतः गद्य काव्य की परम्परा में इस रचना का महत्व अधिकतम रहेगा। वस्तुतः इस युग में जिस प्रकार मैथिली की यह रचना उपलब्ध है बहुत सम्भव है उसी प्रकार की सुन्दर रचना गद्य के क्षेत्र में हमें अन्यप्रादेशिक विभाषाओं में भी उपलब्ध हो। गद्य का यह विषय पूर्णतया शोध का विषय है।गद्य काव्य अथवा कलात्मक गद्य के रूपमें प्राप्य होने वाली इस अनेक रचना का महत्व निम्नांकित कुछ उद्धरणों से सम्भवतः आंका जा सकेगा।यह रचना प्रकाशित हैऔर प्रसिद्ध

एम०ए०,डी०लिट्०, रीडर हिन्दी विभाग,प्रयाग विश्वविद्यालय के अनुग्रह से प्राप्त हुआ

१- देखिए वर्णरत्नाकर:ठाकुर ज्योतिरीश्वर प्रणीत- बंगाल द्वारा मुद्रित संस्करण सन् १९४०-४० की डॉ॰सुनीतिकुमार चटर्जी तथा बाबू मिश्र।

भाषा शास्त्री विद्वान डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसका सम्पादन किया है। यह ठाकुर ज्योतिरीश्वर की गद्य रचना है।रचना के वर्णन प्रकारों और शिल्प की प्रौढ़ता को देखते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि इसके पूर्व भी गद्य की रचनाएं मिलना बहुत संभव है।नायिका वर्णन, रितुवर्णन, श्मशान तथा श्मशान आदि बड़े ही प्रौढ़ बन पड़े हैं। इस प्रकार मैथिली गद्य की प्रौढ़ता अस्वीकृत नहीं की जा सकती। गद्य के क्षेत्र में इस रचना का एक अपना ही महत्व है। प्रसिद्ध विद्वान सुनीतिकुमार चटर्जी भी इस रचना के गद्य की प्रौढ़ता स्वीकार करते हैं। मैथिली गद्य के विकास में योग देने वाली इस रचना के गद्य की सम्पन्नता निर्भ्रांत है। यही नहीं गद्य काव्य शैली में प्रणीत इस रचना का महत्व १५वीं शताब्दी में उपलब्ध श्री माणिक्य सुन्दर सूरि विरचित प्रसिद्ध गद्य रचना पृथ्वीचन्द्र चरित से किसी भी भांति कम नहीं है।अतः गद्य का सौष्ठव वर्णन की चित्रात्मकता, भाषा का प्रवाह और प्रासादिकता का अनुशीलन करने के लिए ही यहां वर्णरत्नाकर के कुछ कलात्मक गद्यांश उद्धृत किए जा सकते हैं जिनकी गद्यात्मक सुषमा तुलनात्मक दृष्टि से द्रष्टव्य है।

नायिका वर्णन में परम्परित उपमानों का सौन्दर्य देखिए:-

उज्वल कोमल लोहित सम सुंदर सालंकार पंचगुण संपूर्ण चरण
अकठिन सुकुमार गज हस्त प्राय जानु युगल पीन मांसल कूर्म पृष्ठाकार
श्रोणी गंभीर दक्षिणावर्त मण्डलाकृति नाभि क्षीण सुकुमार वलित त्रिभि
गुणे समन्वित मुष्टि ग्राह्य मेरुमध्य श्याम मृदुल सुकुमार सूक्ष्म सुवेश दीर्घ
दीर्घ छह गुणे सम्पूर्ण कोमलता।[1]

पुनु कविशेखर नायिका।कामदेवक नगर अइसन शरीर।निष्कलंक चान्द अइसन मुह। कन्दर्पक खन्जीरीर अइसन लोचन।धनुषाक शरंग अइसन भ्रुह।शाकरक शलका अइसन नाक सीनाक सीप अइसन कान बंक्कार लवा अइसन चिरनी पाकल बिंब अइसन अधर। सहवें दाडिम फूटल अइसन दान्त।काम देवक पाश अइसन बाह।निकहि (लोहित) पहुका[2]।

१: देखिए वर्णरत्नाकर पृ० ३। २- वही।पृ० ५।

महायान, वस्त्र, ज्योतिष अभिषेक, द्यूत वेश्या, कुट्टनी, कामावस्था, आखेट उपवन, सरोवर वर्णनों के विविध चित्र खींचे है। इस गद्य की भाषा मैथिली है जिसकी काव्यात्मकता और भाषा जन्य सबलता दृष्टव्य है। शब्द चयन सरल सुन्दर और पर्याप्त प्रभावशाली है। रचना का विभाजन लेखक ने कल्लोल शब्द से किया है और प्रत्येक वर्णन के नीचे उसका समाप्ति सूचक सूत्र लिखा है।[१]

मैथिली भाषा की इस रचना के समकक्ष रखी जाने वाली काव्यात्मक गद्य की अद्यावधि जो जैन रचनायें उपलब्ध हुई है उनमें सबसे महत्वपूर्ण रचना पृथ्वीचन्द्र चरित है जिसका गद्य वर्णरत्नाकर की भांति सशक्त है। आलंकारिक सुषमा, उपमानों की माला, तथा उत्प्रेक्षाओं की छटा देखकर कोई भी व्यक्ति पृथ्वीचन्द्र चरित की काव्यात्मकता का लोहा मान सकता है। वस्तुतः ये दोन रचनायें समान रूपसे गद्य काव्य की सुषमा में योग प्रदान करती है।[२]

कान्हड़ दे प्रबन्ध[३]

गद्य काव्य शैली में लिखी एक अन्य लौकिक गद्य रचना कान्हड़ दे प्रबन्ध मिलती है। रचना की हस्तलिखित प्रति राजस्थान पुरातत्व मंदिर जयपुर में सुरक्षित है। कान्हड़ दे प्रबन्ध के रचयिता कवि पद्मनाभ है यह पूरा अजैन प्रबन्ध प्राचीन राजस्थानी में लिखा एक सरस महाकाव्य है जिस परहम पूर्व पृष्ठों में विचार कर चुके है। पूरा ग्रन्थ कवि ने पद्य में ही लिखा है। पर बीच बीच में गद्य काव्य शैली में भी लिखा गया है। इस रचना में सरस काव्यात्मक गद्य का प्रयोग मिलता है। प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने जहां जहां गद्य का प्रयोग किया है उसकी कलात्मकता

१: विशेष विस्तार के लिए देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्याय १ में गद्यकाव्य का उद्भावक एवं प्रेरक गद्य साहित्य शीर्षक अंश।

२- पृथ्वी चन्द्र चरित के विशेष विवरण के लिए देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ अध्याय १।

३- इस रचना के विशेष परिचय के लिए देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्याय ५ का "जैनेतर लौकिक काव्य" संबंधी अंश।

भी उल्लेखनीय है।गद्य भाग कविने अथ भडाउली शीर्षक के अन्तर्गत रखा है। गद्य के वाक्य छोटे, बुंद पैने तथा सारपूर्ण है। इस काव्य में प्रयुक्त गद्य की सम्पन्नता का परिचय प्राप्त करने के लिए कुछ विभिन्न उद्धरण द्रष्टव्य है:-

(१) कंठलिया किरया। भंडार भरीया।आलोचि आत्मानइ आव्या।
मंत्र मुहाडि हुई।वेलम दीवमण हुई।सूरा सुभट तिमी हमे घरे घोडा पाठव्या।
छत्रीस वर्ण तणा घोड़ा।किरया किरया घोड़ा।---

(२) विवेक गीत करइ। मनस्यूं चालइ। पवनस्यूं तरइ।पाटीप पग देई ऊतरइ।
लवण मनि धरइ।समुद्र मांहि वस्या।कसवटी कस्या। ते घोडा पृथ्वी फुरतालइ।

(३) तेहे राउते चालते हुँते।हस्ती गुडीया।तुरीयपाखरीया। रथ जुता।राउत चडीया।
सनाह लीधा।किरया किरया सनाह।वाळजीण।जीवणताल।जीवरखी ।अंगरखी।
करांगी।वज्रांगी। लोह मइपहुडि।

(४) छत्रीस दंडा कुच कीधां। तेहे राउते चालते बंदीजन बिरदावली बोलइ छइ।
सूरा राउत चडीया।हाथी हाथीयासूं।घोड़ा घोडास्यूं।पालापालास्यूं।
खडग तणा धाटक। खेडा तणा धाटक।तस्यारि तणा फाटक।धनुष तणा धौंकार।
अणीतणा अंगार।बाणतणी वृष्टि।इसी सूराराउतणरि सीसंवृत्ति।[1]

महाराज कान्हड़ दे के नगर और दरबार का वर्णन कवि ने गद्य में बड़ी ही अंगार के साथ किया है।वर्णन की चित्रात्मकता के कुछ उदाहरण देखिए

(१) श्रीनगर जालउर तणी रचना। गढ मढ मंदिर पोलि पगार
अट्टालीयां पालीयां ढोढके विकळवां गगन चुंबित कोसीसा।वाखवां
[illegible]। रम्य प्रवेश।

(२) कुकडीआ पगाल महमागिरि वाली।कुमागिरी थांभली।मणिबद्ध कांचबद्ध
भूमि। डरडरी वली।पवलीआ रां कउकीधर कुना तुआ।वस भूमिका सहस्त्र
भूमिका सभा भी रचना।

१-उक्त उदाहरणों के लिए देखिए कान्हड़दे प्रबन्ध पृ० ४१-४८।

(३) महाराजधिराज श्री कान्हड़दे सभा पूरी बइठउ छइ।सिंहासनि पाउ परठिउ छइ।मेघवना उलव बांध्या छइ। परीयछ ढली छइ। केतकीना गंध महमहीया छइ। खीरघना खोड सांचरिय छइ।सभा मांहि केरी मेल्हाणी छइ। जाइवेठी वाळउ पाडलना परिमल पंचवर्ण पुष्पजातिना प्रकर पाथरिया छइ। गुल्लालना गंध महमहीया छइ।पढीया कपूर पाष वंपाइ छइ।घोडा वही आलइ चालीया छइ।हाथियानी सारसी आगलि कानि पडिउं कांइ नथी संभलाइ।पंच शब्द वाजित्र वाजइ छइ।गल्यां पीतल रवाजणी सर्वा पखावज धौंकार करइ छइ। नृत्यकी पात्र नृत्य करइ छइ। ततवितत घन सुषिर पंचवर्ण वाजित्र वाजइ छइ। पंचवर्ण छत्र धरिया छइ।चामर छियना विहु पखि हुई छइ।अमात्य प्रधान सामंत मंडलीक मुकुट वर्द्धप श्रीगरणावइ

गरणा धर्माधिकरणा महाजणी सावरी वारहीया पुरुष बइठा छइ।[१]

इस प्रकार इस महाकाव्य में प्रयुक्त इन गद्यात्मक उद्धरणों द्वारा रचना के गद्य भाग की सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। कान्हड़ दे प्रबन्ध पद्मनाभ की एक प्रौढ रचना है जिसमें प्रयुक्त इन गद्यांशों में भी पद्य की भांति अपूर्वप्रवाह तथा सरसता है।

निष्कर्ष:- उक्त उद्धरणों द्वारा आदिकालीन हिन्दी जैन रचनाओं में प्रयुक्त गद्य साहित्य के विकास का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है।

अचल दास खीची री वचनिका[२]

आदिकाल की जैनेतर गद्यरचनाओं में अचलदास खीची री वचनिका एक महत्वपूर्ण कृति है।यह रचना वचनिका शैली में चारण कवि शिवदास द्वारा लिखी गई है।रचना पद्य औरगद्य दोनों रूपों में लिखी हुई है।पूरी कृति एक

१- वही पृ० १९६-९७

२- कृति के विशेष परिचय के लिए देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रस्तुत अध्याय ५ का जैनेतर (लौकिक) काव्य भाग)

उत्कृष्ट वीर काव्य है, जो आदिकालीन चारणशैली में गद्य काव्य की सरस वीर गाथात्मक सुषमा प्रस्तुत करती है।कृति का गद्य पर्याप्त प्रवाह पूर्ण है। वचनिकाशैली गद्य की काव्यात्मक शैली होती है औरअचल दास की यह वचनिका प्राचीन राजस्थानी के गद्य के सौन्दर्य को वाणी देने वाली अनूठी कृति है जिसकी कथावस्तु ऐतिहासिक है। रचना की कथावस्तु एवं काव्य सम्बन्धी अंशों पर विस्तार से विचार इसी अध्याय के पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।यहां इसके गद्य भाग का ही मूल्यांकन प्रस्तुत किया जायगा। अचलदास खीची री वचनिका में ठीक उसी प्रकार का गद्य भाग मिलता है, जैसा पद्मनाभकृत कान्हड़देप्रबन्ध-महाकाव्य में बीच बीच में गद्य भाग मिलते हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कदाचित रचना में पद्य और गद्य शैलियों में वस्तुवर्णन या कथा वर्णन करने की यह प्रवृत्ति उस काल में वर्णन की एक विशिष्ट शैली ही रही होगी।

अचल दास खीची री वचनिका का गद्य भाग अथ वात वलेवास बिरदावली आदि शीर्षकों के अन्तर्गत लिखा गया है।प्राचीन राजस्थानी के प्राचीन जैन अजैन कवियों द्वारा प्रणीत वात और वचनिका शैली का यह साहित्य इतना अधिक समृद्ध है कि इस पर कई प्रबन्ध लिखे जा सकते हैं। ये कृतियां वात, ख्यात और वचनिका नाम से हजारों की संख्या में उपलब्ध होती हैं तथा अप्रकाशित हैं।राजस्थानी साहित्य की यही तीनों वात,ख्यात और वचनिका काव्य या गद्यशैलियां हैं जिनमें यह विशाल साहित्य सृजन किया गया है।

अचल दास खीची री वचनिका [1]गद्य और काव्य दोनों रूपों में पर्याप्त महत्वपूर्ण है। कवि ने इस वीर वृत्ताकाव्य को जिस प्रकार काव्य में संजोया

१- अचलदास खीची री वचनिका की भांति "अचल दास खीची री वात" कृति भी मिलती है इसका विवरण-"राजस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग १" में भी मिलता है। डा० मोतीलाल मेनारिया ने भी अपने ग्रन्थ "राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १०० पर इसका उल्लेख किया है।रचना की कथावस्तु लगभग वही है। एक दो उद्धरण इस प्रकार है:-

(अ) अचलसिंह बर छत्र सिंघ, उत्तरदखिण पूरब पच्छिम चार कूट किवाड़ आइन्या अजमाल।अहंकारी रावल दूलह आवइ।[illegible] विषम छइ दरसण छाया छावइ पाछे [illegible] आचार भाखइ [illegible]।जय जय हो राजा

दे० आगे पृ० पर २---

है। ठीक उसी प्रकार इसकी कथावस्तु को अत्यन्त स्पृहणीय ढंग से गद्य -वार्ता- शैली लिखा है। पूरी रचना की कथा वस्तु में लेखक ने गद्य भाग में केवल मात्र युद्ध और सज्जावर्णन ही किया है।जौहर वर्णन काव्य में किया है।

मांडू के सुल्तान ने गागरोन (कोटा राज्यके अन्तर्गत) पर चढ़ाई कर दी अचल दास एवं उनके अनेक सहयोगी उपवासक युद्ध में हजारों मुसलमानों को मार करवीरगति को प्राप्त हुए और उनकी स्त्रियों ने जौहर कुन्ड की धधकती ज्वाला में प्रवेश कर वीरोचित गति को प्राप्त किया। राजा अचलदास खीची की उसी समस्त की इस यश प्रशस्ति को चारण कवि एवं वार्ता लेखक श्री शिवदास ने कृति के काव्य में औरवार्ता भाग में ढाला है।वर्ण्य वस्तु गद्य और पद्य दोनों रूपों में समान नहीं है।पद्य में अधिक है।गद्य औरपद्य दोनों शैलियों में कवि श्री शिवदास की यह वचनिका इसलिए औरभी अधिक सशक्त बन पड़ी है क्योंकि स्वयं शिवदास अपने आश्रयदाता अचलदास के साथ युद्ध कर रहेथे तथा अपने सिंहतुल्य सामान्तोंको वीरोक्तियों, गर्वोक्तियों तथा उत्साह प्रधान उत्तेजनाओं से युद्ध के लिए प्रेरित कर रहे थे।अतः इस वचनिका का समस्त गद्य भाग कृति लेखक का आंखों देखा सजीव वर्णन है।गद्य का प्रवाह उसकी चमत्कारिता अत्यन्त सरल सरस और धारावाहिक है।वर्णन क्रम में कहीं शैथिल्य नहीं है। पद्य की भांति कृति में वर्णित गद्य में भी वीर रस वर्णन एक रस व्याप्त रहताहै।गद्यवर्णनमें कहीं कहीं अतिशयोक्ति और कल्पना प्रधान

अचलेश्वर।धारउ खिमउ विधि हड्पालसाह कई साडउ लिय्उ।
(ब) एक घायलघुले घूमै लहधड़ि आपक मतवाली मतवाले मिले जाणक बसंतरित केसू फूल्या।रात दिवस दोसै समान।सुरत खिवा, मद्दि डोवा किया। तीन लाख मड़ आया।हलां बीरी औस मुह पकड़ीजिसा।करै घाव बोलै पारसी बलहर तणा खिली बाणी आरखी।क्वाणा कुंआ जिम कुरदरिया, बीहाल वेहाचिन बीचरिया।काली निहाव, गोला गुहाव। गढ़ खिडर चढ़ी कामरेह राजीव झुकी। सूरा सवरंग जीव सौं जंग गढ डिमल सुरज मंगाविव चतुरंगनी बंकाबंका बाजह।आड़ा अचल हाथि आठि माल घने सझ्झ चोप धीचाला।बीह संग्राम का सबरा अमी का ममरा।मारहठि का माझा फोजा का ठाढा।आयरत्वी का बिड, नारी का गरीद।बीईब आखड़ी चाल्ह, तु ही राम रास्हण।महाराज भांभियों हो पाबो।आवा वैची सुरताण पातसाह आयो।स्व की हसी चरम ऐ क्रितारथ कीवे, लंका प्रमाण गढ़ि गागुरण कीवै।गीरि सुगत झाके आण धमधमी उठायो गढ़ि प्रमाण मोरचो मंडायो धारा धमड़ा धड़ा
शेष अ०पृ०पर—

अतिरंजना मिलती है इसका मूल कारण कृतिकार का मूलतः कवि होना है। उसकी ऐसी कल्पना प्रधान अतिशयोक्तियाँ कृति के काव्यांशों में भी देखी जा सकती हैं।

रचना में कवि ने पहले युद्ध की साज सज्जा का वर्णन किया है।आदर्श वीरता तभी कहलाई जा सकती है जबकि प्रबलशत्रु के आक्रमण का प्रत्युत्तरउतने ही सशक्त रूप मेंदिया जाय।कवि ने अपने आश्रय दाता को प्रतिद्वन्दी शत्रु मांडू के सुल्तान की सेना का परिज्ञान कराने के लिए रचना में सुल्तान की सेना का वर्णन पहले किया है।

रचना के प्रारम्भ में ही रचनाकार अपना नाम स्पष्ट कर देता है।वर्णन की प्रासादिकता तथा सरसता उसकी काव्य क्षमता के साथ गद्य सुषमा का परिचय भी देती है आश्रय दाता और कवि जीवन की ओर संकेत करता है :-

।।अथवात।।

अेक सीह ने पाखर्‌यौ।सूर चिहा इति आवर्‌यौ। सूरचिहा इति आवर्‌यौ। पंचामृत अमी परगर्‌यौ।महादान आछइ खंडइ।दूध मांहि साकर पडै।सोनो अर सुगंध।एक अचल अर कवै सिवदासु।।चारण कहै ए वडी वाडाई तो आपणै पाहै बूफई नहै सु प तरेहि सु कारणै।आगिलिउ राज सभा सहित सु चित सुइ सुणइ। सु सुकवि कुकवि कवै जणैइ। (८-९)

दोनोंपक्षों की सैन्यका तुलनात्मक वर्णन देखकर दोनों पक्षों की शक्तिकी परिभाषा प्राप्त करलीजिए।कवि ने सुल्तान की सेना का वर्णन पहले और अचलदास की सेना में लड़ने वाले सहयोगी शासक राजा नृसिंह दास तथा विभिन्न राव

उसका कथाय सेन के साथ पहुंचा इसवारै असवार नर सुलतान हिन्दु मुसलमान । राव शाल्हण हूं गाढ़ बैरचे कर्ड तो पुरा सीखढ़ां समनढ़ै। जो हूं मढ़ पोलियां कर्ड तो व्यार सुणां तम उमर्क। उबरे सौ उबरी भरे सो मरी गढ़ सबै आधारी, रावशाल्हण पधारो।

उक्त गद्यांश में सुकान्त प्रौढ़ प्रासादात्मक गद्य की छटा दिखाई दे रही है। वाक्य छोटे और सरस हैं। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अभिव्यंजना का भंडार है।रचना माधुर्य से पूर्ण है तथा वर्णन शैली प्रासादात्मक एवंआलंकारिक है।

उक्त उद्धरणों से रचना के शिल्प का अनुमान लगाया जा सकता है।

राजाओं का वर्णन फिर किया है दोनों का तुलनात्मक एवं चित्रात्मक सरल वर्णन देखिए:-

।।अथवात।। बादशाह का सैन्य वर्णन

(१) इसी परत्वी कउ दालम गोरी राजा बाण लखमा लखा, रो चक्रवर्ति।तरहै बाणू लखमा लखारा कटक बंधे।।तै कटकबंध रउआर आर मयार मगरबाजन महावर। तइकटक बंध माहि तउ कहि कहि दिसालउ।महाधर तउ कउण कउण।मींया उसमा खान फते खान गजनी खान उमरखान है अति खान खान कउ गुणीत खारिसा (१४-१५)

(२) देसहउ कउण कउण खतिगा नम्भियाड जुगां मांघात आसेरिहू गउरि वीकि नीलहरि इःरे तउ राइसेणि राणी गण पउली पट उलीव राणी खिलार सिलार पुर लगइका कटक बंध मैंक देस तउ मांडव धार उमीप सीह उर वरीहू हुसंगीवाद लगइ का कटक बंध।।इसी एक है पातसाह का कटक बंद,देस देस का,खंड खंड का, नगर नगर का, खान मीर उमरा चतुरंग दल चढि चाल्या।पातसाह आपणा पौ चलाी लाल्या।।(२२)।।

(३) अवर पातिसाह हुवा आगिला आगिलेरा अर मत पछेरा त्यां तउ चवराणी हुमलीया था दिहाडै पाडइ।ओ तउ सुरताण दूसरउ अलाउद्दीन जिणि चवराणी गढ हुम लीया एक ही दिहाडइ।।२४।।

हिन्दू राजाओं का वर्णन

१- हिन्दू राजा कउण कउण।चकलहीचकवंदी चकाचका चंपुरण राजा नरसंघ दास खारिसा। है नरसंघ दास रा कटक बंध चालता चांतरि आगिलइ दलि पाणी पाछिलइ दलि कांदम कइ कादम कइ बइ खेह उडती जाइ।दूसरो विकमाइत (१६)

अथवात

२- है राजा नरसंघ दास खारिसा बतीस सहस खाकण दिणि खेति मेलिह चाल्यीउ। मदोन मत्त हस्ती मेलिह चाल्योउ।आपण दाइ संघद चाल्योव संमदि जाइ खाड उपचाल्यो।अनेक राइकव मलिह करि केल्हुमा है राजा नरसंघ दास खारिसा।है राजा नरसंघ दास का कुंवर का चोकली केमवी खाहरिसा।

संग्राम्बा हूवा मुकाम मुकाम का ढोल वागा।तब जायए डूंगर वै घवल हर
दीसिवा लागा   (२९-३१)।

राजा अचलेश्वर से उस समय छत्तीस वंशों के राजा आकर मिले।उपहार देने लगे।
राजा अचल दास प्रदेश की रक्षा केलिए सबसे भेंजे।पहली भेंट "पाल्हणसी" से हुई।
दूसरी भीमा भोज से। फिर धैर्यवान कल्याणसी,जइणसी रूपसी, कामाहि,
उस्मान,सुरजन,मेर,महकन,आदि सभी राजाओं से मिले।इस प्रकार छत्तीस कुल
एकत्रित हुए वर्णन की परिगणन शैली विभिन्न राजवंशों के वर्णन के रूप में देखिए:

गोदा कामाहितौ राजा राजधर।सोलंकिया माहि हउ सलखा हाडा माहितौ
बीमउ अयवण ए कलमल।।कछ वाहा हउ रिण मलहर।डोड माहित उनाधू नायउ।
बागडी हउ डूंगर कान्हड़।चाउल घिरहर।सुधावला हउ हामा, अमावोघा इसा
एक से केता हेका का नाव लीजइ। कनेष्टवइ सूध।छत्तीस वंश छंत्तीस राजकुली
मांहि ही कवण कवण।रिवि सारंग गुरु नराइण वाणूंयां मांहि हउ हरपति
लाखउ वैजउ वालउ।।भाट मांहि हउ गागउ तिलोकसी, कउ चारण मांहि माधव,
चावौ नापउ बारहट हउ लाऊ देउ।इसा एक से केता हेका का नाव लीवै।
कनेष्ट बारहट हउ लाऊ देऊ। इसा एक से केता हेकां का नाव लीवै कनेष्ट
मइ सूध छत्तीस ही वंश छत्तीस ही राजकुली एक एक हूवै होबइ मिली।

पुरुषों में ही नहीं ४० हजार बाल, अबला वृद्ध सभी स्त्रियों में पुरुषार्थ
के प्रति उत्साह छा गया।भोली और भोरवी सुन्दरियां अपने पतियों केयुद्ध
प्रेम को, उनके पुरुषार्थ को देखकर मुग्ध हो गई।

जितरे हउ गाव कहवा वार लागइ।नर,तिन सहस चालीस कउ संघाट
बाइ संग्राम्ब हूवौ।भाली भोली अबला प्रौढ़ा षोडस वार्ष की राणी
सहाणी।आपणा २ देवर देठ भरतार का सुरिवांग देखती फिरै है।(६४)

युद्ध स्थल में कवि का विरदावन उत्साह में चौगुनी वृद्धि कर देता था।
वर्णन शैली का प्रवाह "वर्ण" एवं "बिरिदावलि" के अन्तर्गत काव्य का रचनात्मक
वर्णन दृष्टव्य है:-

माता पुरी का चक्रवति लखम राव सारिसा।प उली का धंधेड़ा देवसीह सारिसा। बूंदी का चक्रवर्ती संग्रा सारिका अवर देवड़ा हिन्दू राय बंदि छोड़ इसरा माल दे समरसीह सारिसा (२०-२१)

(३) इसउ हिंदू राजा उपर्कठि कउण है जिके मनि पातिसाह की रिसवाली कउण का माथा तइ खिसी।कउण है दई रुठी।कउण की माइ बिताणी जउ सामहउ रहइ अणी पाणी।आज तउ धीम सानल कान्हड़ दे नहीं तिलक बुधरिउ महिल तु नहीं,सीह उरिर उलू नहीं।हठ कउ राव हमीर आथाम्यौ (२३)

अचलेश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन करने में कवि बिल्कुल नहीं अघाता। दूर दूर के प्रदेशों में उसका यश प्रसारित हैउसकी ~~कुछ~~ तुलना में कोई दूसरा राजा टिकता ही नहीं|अचलेश की भांति तो अचलेस ही है। ऐसे अचलेश्वर को धन्यवाद है जिसने मांडू के बादशाह सेधर्षकर लोहा लिया।वर्णन की सरलता और प्रवाह उल्लेखनीयहै। लेखक की आलंकारिकता चित्रण को और अधिक ~~सचक~~ सशक्त बना देती है:-

" धनि धनि हो राजा अचलेसर थारउ जी यौ।जिणि पातसाह सउ बाउड लीयौ। जेणी पातसाह आया।धांतरि सत लाड नहीं, समवाडइ नहीं हीम न मावइ।भामार लंधित न होइ तर से राजा अचलेसर सारिसा अचल नै अचलेश ही होई।। अचलेश बरउ किसउ ऊतर खण पुरब पछिम कउ मउ किवाड।जाइन्या अजइ माल अहंकारि रावण इसरउ धकि हीसरउ हीयमा।कइ दरसर तुमाणो पाखंड कउ आधार बालउ चकरवति।धनि धनि हो राजा अचलेश्वर थारउ जीयौ जिणि पातसाह सउ बाउलीयौ (२७-२८)

बादशाह का दल अचलेश्वर की सेना पर टूट पड़ा।प्रलयमय मया।दिशाएं डोलने लगी। अम्बरमंडलमें गर्द छा गई कि सूर्य के दर्शन भी दुर्लभ हो गए। न हाथियों का पार न घोड़ों का।वर्णन में उत्साह और प्रवाह देखिए:-

इसा यक है पातसाह रा कटक बंध अचलेसवर ऊपरि छूटा।माट कारवइ ईजण छूटा।दह का पाणी छूटा।परबता सिरि पंख लामा, कुलाट चढ़ें वाया। सूर सूझे नहींबि आमा।हैवर गैवर पाइयल बुझहि न पारावार।मोरी राय गिर आव मउ कउ मइ बंधपहार।।इसाहे पातसाह का कटक बंध हाइ छूटको धकाहि

।। अथ निरिवावल।।

"बारै बाहि रिड बाहि भिमाड बलिया सहि कंधि कुदाल सबलबाहि मान मरदान निबल बाहि थापना बारिज।संग्राम बाहि जग हथरिम माजना बाहि जइत खंभ सुरितांण सुबरी अलावदीन किधै बकि आरंभि पारंभि आइ टिक्यौ छे।। पगि पगि पडलि पडलि इस्ती की गजघटा। ती ऊपरि सात सात है जोध चमकधर सैवठा।।सात सात उलि पाइक की बैठी सात सात उलि पाइक की उठी। छेहा उडण सुद फरफरी सुइ बकि ठांइ ठांइ ठहरी।इसी एकल्या पाट उडि बन्न दिसी पडी।तिणी बाजित्र कै निनादि चराआकारब घड्हडी।बाप बाप हो थारा सत तेज अहंकार राइ सुत रावणहार।।"(६८-६९)

इस प्रकार कई दिनों तक भयंकर युद्ध चलता रहा।रक्त की नदी बह गई।युद्ध स्थल श्मशान हो गए। गिद्ध मंडराने लगे। राजपूतों के असाधारण योद्धा मालदेव सिंह ने युद्ध में ही मरकर प्राण देने की दृढ़ प्रतिज्ञा की।ऐसी गति कोई बार बार थोड़ी ही मिल सकती है।और इसी तरह भयंकर मारकाट कर घाव झेलते मालदेवसिंह खेत रहे। राव का हृदय भर आया।वर्णन की कारुणिकता एवं वीर भावनाएं युक्त निम्नांकित उद्धरणों में उल्लेखनीय है:-

(१) इसी परिस्थी लड्या लागतां।मरतां मारतां महाष्टमी भारथ हुइ बासौ थी रया दूसरी अष्टमी आइ बैसाग्यी हुई। बस सब युद्ध भइंकर करके की बाडि अरथो अरधि हुवै ल आवड्या। बकि पाइक ही भींना। राति दिवसि न भींना। रुधिर का प्रवाह नदी बाहि लिया।आगरह बनि बब हुवन लागी। तिहरै योधवी की हुवी छ मालदेव की माहा की।।राजा अचलेश्वर प्रति है छ।इवड कीमी हुइ ही रहिसी।मरण सह छ एकवार मार्य इसउ भ्रम पाइवौ वरर बार।। (७४-७५)

(२) अमधू सुभारथ की जइ अमधू सुभारथ करतां मरतां दीसे रुधिर का पिंड।इणि विधि हुइ बड खंड विखंड विहडइ बाथी खेत रुवीमी।रैणो कै छ इसी मार्य हो डाकुरै इसी कीजइ खेक धारा लांकी बार विरी कह के पुगरै चवराभिमय मूआंडै

~~[illegible]~~

थंभउरि राजा हमीर हुयी कइ घरि जौहर हुवा।तिणु जउहरां जिका वात ऊणी हुई हुवै त्या म्हे पूरी करि दिखालउ।पूरी हुई हुवै त्या पुनरेपि वाहुडि उजालउ।हों छउ छाउ चिंता वसु तिणी कारणइ छ उं हु चितु।तम्हे कांइ मानउ आपण मन महि अहित।।इणै बोलि राजा अचलेसवर कउ राज लोक हरख्यो।हे माइ मरण चालीतु कुरखामउ।आई जी नै पूछउ नइ इवै चिन्ता छ त्या कउण चिंता छ। (८२-८३)।।

राजा अचल दास की जौहर करने की बताई गई उक्त रीति को क्रियान्वित किया गया। भयंकर युद्ध में भी राजपूतों के केसरी अचलदास वीरगति को प्राप्त हुए।रानियों ने जौहर के कुंड मे कूद कर अपने आत्मसम्मान की रक्षा की। लाल्हण दी के मरने ही समस्त अन्तःपुर में शोक छा गया। वर्णन की सरलता देखिए:-

" मुख वहउ नीसरउ न दीसइ नीकउ।वांइ इतउ गज घटान फूटे।पीमा पातल तउ घाइ भारी धीरउ कहा राणा।मोकलदी पाचि गयो थैं।त्यों न जाणी उहां ही रहुयी। न जाणी आवतउ पाउल्यी खिरिल्यौ ही उहां धीरउ ऊभरै इहां लालणदी परीछावी परीछइ।तउ राजा अचलेसर कहै भाई हो सबरी रही हमारी।नीरी हद राजा अचलेसर कहै हे माइ हो सबरी मइ हमारी।लालणदी हे परीछावे छ रणवास अवरं लोक उदास।माइ लागइ छ थाई सकलावे मोच की केरता अचल की अनेता। कुल बहू तउ बाईमइ थाईराणा मोकल की सारखु। सकल ही परिवार देत दिवै अपार लाल्हण दी परीछावी परीछ नहीं गवार।। लाल्हणदी रै कम तउ कुम्भ दीयो अइ।बीच तउ कु बीच मांगी अइ। पाछी पइस्यौ रहाणि अइ। वीखे उपरली थाणि अइ।।(८५-८८)

इस और इस प्रकार अन्त में कवि युद्ध का समाहार जौहर में जाकर करता है। कवि ने महानों जौहर का वर्णन न कर पद्य में ही प्रस्तुत किया है। उक्त उद्धरणों द्वारा रचना की ऐतिहासिकता, आलंकारिकता, वर्णन सौन्दर्य मधुर काव्यात्मकता एवं चारण प्रवृत्तियाँ स्पष्ट होती है।इसी तरह की अनेक बात ख्यात और वचनिका

संज्ञक कृतियाँ राजस्थान के भंडारों में अनेकों उपलब्ध होती है। १५वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में यह वचनिका जैनेतर गद्य की अप्रकाशित एवं प्रतिनिधि रचना है।

निष्कर्ष:-आदिकालीन इन अजैन रचनाओं के अध्ययन से यह कहा जा सकता है कि ये उपलब्ध रचनाएं काव्य तथा गद्य दोनों की दृष्टि से बहुत ही सम्पन्न है। प्रबन्ध कल्पना, गद्य काव्य की स्पृहणीयता, भाषा की सरलता, चरित्र चित्रण, अर्थ गांभीर्य, वर्णन सौष्ठव, प्रासादिकता काव्यात्मकता तथा रसात्मकता आदि सभी दृष्टियों से ये काव्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि आदिकालीन जैनेतर काव्य और गद्य रचनाएं संख्या में कम है, परन्तु फिर भी भाव और कला दोनों पक्षों मैंये जैन रचनाओं से भी अधिक सम्पन्न है।इनकी सम्यक् शोध अत्यावश्यक है। एक आवश्यक बात यह भी है कि ये रचनायें साम्प्रदायिकता से भी अलग है। ये अजैन कृतियाँ शुद्ध साहित्यिक संकल्प की दृष्टि से लिखी गई है। इस प्रकार ब्रज, अवधी, मैथिली, प्राचीन,राजस्थान, जूनी गुजराती और ब्रज के भंडारों की सम्यक् शोध होने पर इस आदिकालीन अजैन साहित्य के और भी ग्रन्थ मिलेंगे, ऐसी आशा है।

द्वितीय भाग

अध्याय - ६

() आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की (१) प्रमुख -काव्य परम्परायें ()

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की (१) प्रमुखकाव्य परम्परायें

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसके स्वरूप के वैविध्य की है। यह वैविध्य वर्णन परम्परा, छंद राग, काव्यरूप आदि सभी रूपों में देखा जा सकता है। इन सभी काव्य रूपों का विभाजन अधोंकित प्रकार से किया जा सकता है:-

(१) आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की (१) प्रमुख काव्य परंपरायें
(२) आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की(२) गौण काव्य परम्परायें
(३) आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की(३) स्तवन काव्य परम्परायें
(४) आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की(४) गद्य परम्परा।

(१) <u>प्रमुख काव्य परम्परायें</u>:-

प्रस्तुत परम्परा में जितनी जैन रचनायें अद्यावधि उपलब्ध हुई है उनमें महाकाव्य की संज्ञा से कोई अभिहित नहीं की जा सकती। अतः-इन रचनाओं को एकार्थ काव्य कहा जा सकता है अर्थात् वे काव्य, जो एक ओर तो खंड काव्य की सीमा से ऊपर उठे हुए है, औरदूसरी ओर विस्तार, चरित्र और प्रबंधात्मकता की दृष्टि से उन्हें खंडकाव्य कहने में भी संकोच होता है। ऐसी सभी रचनाओं को एकार्थ काव्य ही समझा जाना चाहिए। यद्यपि इन रचनाओं के मूल में धार्मिक प्रेरणा है परन्तु ये शुद्ध साहित्यिक संकल्प से लिखी गई है। इनमें चरित्रों का विकास ,प्रबन्ध कल्पना,घटना कौतूहल, मौलिक सृजन तथा काव्य रूप वैशिष्ट्य आदि सभी पूर्ण कलात्मकता से प्रस्तुत है परन्तु फिर भी इन्हें महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। ऐसे एकार्थ काव्यों में से कई रूपककाव्य, श्रृंगारिक काव्य,चरितकाव्य उर्मिकाव्य तथा कथाकाव्य आदि मिलते है। ऐसी महत्वपूर्ण रचनाओं में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार की रचनायें आती है। इन रचनाओं का अध्ययन परमावश्यक होने से इनको प्रमुख काव्य परम्परा में रखा गया है। यह शीर्षक इन रचनाओं को द्योतित किया गया है कि ये काव्य विषय तथा छंद दोनों दृष्टियों से प्रमुख है

साथ ही इनके शिल्प में अपेक्षाकृत पर्याप्त परिपक्वता है।इन कृतियों का वर्गीकरण छन्द प्रधान- प्रबन्ध काव्यों तथा विषय प्रधान प्रबन्ध काव्यों में भी किया जा सकता है। दोनों प्रकार के काव्यों का प्रमुख अध्ययन निम्नांकित रूपों में प्रस्तुत किया जा रहा है:-

(अ) रास (ब) फागु (स) चतुष्पदिका या चउपई (द) चर्चरी

(क) प्रबन्ध (ख) चरित(ग) विवाहलो (घ) सन्धि (ङ०) पवाड़ो

(च) कक्क मातृका।

(२) गौण काव्य परंपरायें:-

द्वितीय परम्परा गौण काव्य की है। ये काव्य बहुत ही महत्वपूर्ण तथा मौलिक है परन्तु प्रबन्धात्मकता, घटना कौतूहल तथा वस्तुशिल्प की दृष्टि से सामान्य है। ये काव्य रूपों तथा वैविध्य की दृष्टि सेअत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऐसी सब रचनाओं का अध्ययन गौण काव्य परम्पराओं के अन्तर्गत किया गया है। इस गौण काव्य परम्परा के अन्तर्गत आने वाली रचनाओं को भी छन्द प्रधान और विषय प्रधान वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। इन रचनाओं में प्रमुख काव्यरूप है:- छंद प्रधान- दोहा, छन्द, छप्पय, रेखुआ गाथा आदि

विषय प्रधान:- इनरचनाओं में प्रमुख है: महात्म्य बोर, पट्टावली,बारहमासा
ऊलहरा, सम्बोध और संवाद आदि।

(३) स्तवन काव्य परंपरायें:

तीसरी परम्परा स्तवन काव्यों की है।इसकाव्य परम्परा में आने वाले काव्य रूप भी अपनेमें प्रचुर वैविध्य लिए है। इनमेंसबसे प्रमुख काव्य रूप इस प्रकारहै:-

(१) उत्साह (२) गीत (३) स्तोत्र (४) स्तवन (५) बोलिका (६) स्तुति

(७) वीनंती (८) कथा (९) नमस्कार(१०) प्रशस्ति (११) सज्झाय आदि

इस वर्गीकरण को निम्नांकित रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:-

(४) गद्य परम्परा:

इसके अन्तर्गत जैन गद्य सम्बन्धी कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

काव्य

(१) प्रमुख काव्य परंपराएं
- छंद प्रधान
  - अ- रास
  - ब- फागु
  - स- चतुष्पदिकाया चउपट्ट
  - द- चर्चरी या चच्चरी
- विषय प्रधान
  - क- प्रबंध
  - ख- चरित
  - ग- विवाहल
  - घ- सन्धि
  - ङ०- पवाड़ो
  - च- कक्कमातृका

(२) गौण काव्य परंपराएं
- छंद प्रधान
  - १-दोहा
  - २-छन्द
  - ३-छप्पय
  - ४-रेलुआ
  - ५-गाथा आदि
- विषय प्रधान
  - १-महात्म्य
  - २-धीर
  - ३-पट्टावली
  - ४-बारहमासा
  - ५- तलहरा
  - ६-सम्बोध
  - ७-संवाद आदि

(३) स्तवन काव्य परंपराएं
- १- उत्साह
- २- गीत
- ३- स्तोत्र
- ४- स्तवन
- ५- बोलिका
- ६- स्तुति
- ७- वीनंती
- ८- कलश
- ९- नमस्कार
- १०-प्रशस्ति
- ११-सज्झाय

(४) गद्यपरंपरा

उक्त सभी काव्य रूपों का - अध्ययन प्रस्तुत ग्रंथ में:-

(१) प्रमुख काव्य परम्पराएं

(२) गौण काव्य परम्पराएं तथा

(३) स्तवन काव्य परम्पराएं

(४) गद्य परंपराए आदि चारो अध्यायों के अन्तर्गत किया गया है।

॥ ब ॥

: रासकाव्य :

रास परम्परा अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। इस परम्परा को सम्पन्न बनाने वाली रास संज्ञक रचनाएं बहुत ही विशाल रूप में प्राप्त हुई हैं। रास परम्परा का अध्ययन करने के लिए इसे तीन भागों में विभाजित किया जासकताहै। संस्कृत काल या प्रारम्भिक काल, अपभ्रंश काल तथा अपभ्रंशेतर काल। इन तीनों कालों में रास के मान दण्डों में विभिन्न प्रकार की परिवर्तन दिखाई पड़ते है तथा इसी परम्परा में रास, रासक, रासा, और रासो आदि कई शब्दों का निर्माण हुआ है। रास साहित्य के इस विकास का अध्ययन अत्यन्त महत्वपर्ण व रोचक प्रतीत होताहै। भारतीय साहित्य में जहां तक रास शब्द की उपलब्धि का प्रश्न है, यह बहुत ही प्राचीन लगता है। संस्कृत काल में "रास" शब्द का परिचय पुराण साहित्य से ही उपलब्ध होने लगता है। रास परम्परा के इन तीनों कालों को दृष्टि में रखते हुए रास के तत्कालीन स्वरूपों, विद्वानों द्वारा की गई उसकी विभिन्न परिभाषाओं, तथा रास के उत्तरोत्तर बदलने वाले मान दण्डों का अध्ययन करने में संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों व अन्तर्साक्ष्य स्रोतों से बड़ी सहायता मिलती है। उनका संक्षिप्त विवेचन अधोंकित है:-

सर्व प्रथम भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में रास शब्द का उल्लेख किया है। रास का संबंध क्रीड़ा नृत्य से स्पष्ट करते हुए उन्होंने इसे "क्रीड़नीयक" कहा है।[1]

भास के बालचरित नाटक में भी रास के समानार्थी शब्द "हल्लीसक" का प्रयोग मिलता है जिसमें गोप गोपिकाओं का साथ साथ क्रीड़ा करने का उल्लेख है।[2]

१- नाट्य शास्त्र प्रथम अध्याय: भरतमुनि-"क्रीड़नीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्"।

२- देखिए भासनाटक चक्रम्:सी० देवधर: पृ० ५३८-४० का संवाद,दामक? दामोदर:आदि का यह संवाद- दामक: आम भट्टा बसुम समसुधा भारवदा।
दामोदर:- गोप कुमारि।अनमाले चन्द्र रोचे।पुगारिका[illegible] स्थानानुरूपो मे हल्लीसकं नृत्तबन्ध उप-युज्यताम्।

"हरिवंश पुराण"[1] और विष्णु पुराण[2] में भी "रास" शब्द की ओर कुछ संकेत मिल जाता है। धनंजय ने अपने दश रूपक में रास पर प्रकाश डाला है।

महाराज भोज के सरस्वती कण्ठाभरण और श्रृंगार प्रकाश में भी रास संज्ञा का उल्लेख मिलता है।

इस उक्त विवेचन में हल्लीसक शब्द विशेष दृष्टव्य है। हल्लीसक शब्द के साथ भास के नाटक और पुराण साहित्य में गोप गोपिकाओं का साथ होना और क्रीड़ा करना तो स्पष्ट होता है पर अन्य संगीतात्मकता अथवा उसके अन्य किसी शिल्प जन्य वैशिष्टय का उल्लेख नहीं मिलता। अतः यह लगता है कि इन ग्रन्थकारों के समय रास क्रिया शारीरिक अवयवों से सम्बन्धित जन नृत्य याक्रीड़ा मात्र थी। वस्तुतः उस समय रास का सीधा सम्बन्ध पुरातन नृत्य मात्र से रहा होगा। संभावना है कि आदिम नृत्य भी इसी रास का एक रूप रहा होगा।यह भी संभव है कि संगीत के तत्कालीन शास्त्रीय नियमों के विधान का अभाव ही इसका मूल कारण रहा हो। जो भी हो, यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि उस काल में यह जन नृत्य या वन्य नृत्य अथवा लोक नृत्य विशेष के रूप में प्रचलित रहा होगा। एक आलोचक ने इसी सम्भावना पर रास शब्द का अर्थ जोर से चिल्लाना स्पष्ट कर उसे जंगली या आदिम पुरुषों की शारीरिक क्रिया या वन्य नृत्य बताया है।[3]

हल्लीसक शब्द की व्याख्या व व्युत्पत्ति अनेक संस्कृत केविद्वानों ने की है। रास में गीत,नृत्य, क्रीड़ा व संगीत का समन्वय दिखाने वाले अनेक विद्वानों ने

१- हमें देखिए हरिवंश पुराणः विष्णु पर्व अध्याय २०-(।) एवं स कृष्णो गोपीनां चक्रवालैरलंकृतः।
(।।)चक्रवालैर मधुरैः हल्लीसका क्रीड़नम् एकस्य पुंसो बहुभिः स्त्रीभिःक्रीड़न सैव रास क्रीड़ा।
इस विवेचन में विद्वान टीकाकार ने "चक्रवाल" शब्द का अर्थ संभवतः रास किया है
२- देखिए- विष्णु पुराण।५।१३-२०-के ये उदाहरण-
(।) ररास रास गोष्ठी भिरुदार चरितो हरि
हस्तेन गृह्य चैकैकां गोपिकानां रास मण्डलम्
३- देखिए- डाइन्स आफ वैष्णव इण्डिया पृ० १५०-५५ में भी कंकड़ की यह उक्ति रस (RAS)

It is not to be derived from (RAS),but from (Rasa) a root which means to cry alone,which may refer,to be very primitive form of this dance when the proportion of music & artistic movements may not have been still realistic and when it must have been practised as wild dance."

रास के शिल्प का विवेचन किया है जिससे रास के उत्तरोत्तर परिवर्तित होने वाले रुप का पर्यवेक्षण किया जासकता है।वस्तुतः यह हल्लीसक शब्द विभिन्न विद्वानों के द्वारा भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया है जिसमें "रास" में अनेक नवीन तत्वों का समावेश होता है उनका संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है।

(I) बाण भट्ट ने अपने समय तक रास में नृत्य का आयोजन होना बताया है। इस तरह के विशिष्ट नृत्य के आयोजनों के प्रमाण हर्ष चरित[1] में अनेक मिल जाते हैं। रास के इन मण्डलों को हरिवंश पुराण के टीकाकार ने जिस प्रकार चक्रवाल की संज्ञा दी है उसी प्रकार बाणभट्ट ने रासक मण्डल के लिए आवर्त[2] शब्द को उपमान चुना है। इस प्रकार इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बाण के समय "रास नृत्य" जन साधारण में प्रचलित हो गया है।अतः बाण भट्ट ने इसे एक उपरुपक विशेष कहा है।

(II) काम सूत्र के प्रणेता वात्स्यायन ने भी हल्लीसक अथवा छालिक्य नृत्य के साथ गान के आयोजन का भी उल्लेख किया है।[3]

(III) भावप्रकाशकार शारदातनय ने रासक के नृत्य आयोजन में नायिकाओं की संख्या का विधान किया है। उसका कहना है कि पिण्डी बंध के साथ नायिकायें १६,१२ तथा ८ की संख्या में जो नृत्य करती है, उसे रास कहते है।[4]

(IV) अभिनव गुप्त ने मंडल में जो नृत्य किया जाय, उसी को हल्लीसक कहा है।[5] रासक को उप रुपक बताते हुए बाणभट्ट ने लिखा है कि डोम्बिका-भाण-प्रस्थान-भाणिका-प्रेरण-शिङ्गक-रामा क्रीड हल्लीसक-श्रीगदित रासक गोष्ठी प्रभृतीनि-गेयानि[6] इस परिभाषा से ये तथ्य स्पष्ट होते हैं:-

१- सामान्यतः ये रुपक गेय है

२- इन रुपकों में रासक भी एक रुपक है।

१- हर्ष चरित्र एक सांस्कृतिक अध्ययन-डा० वासुदेवशरण अग्रवाल- चतुर्थ अध्याय।
२- वही,रासक रसरागमण्डलैः करोमीव इव भूषण मणि किरणै।
३- हल्लीसक क्रीडनकैर्मिथः।
४- षोडश द्वादशाष्टौ वा यस्मिन्नृत्यन्ति नायिकाः पिण्डी बंधादि विन्यासैः रासकं तदुदाहृतम - भावप्रकाश- शारदातनय।
५- मण्डलेन तु यन्नृत्यं हल्लीसकमिति स्मृतम्।
६- दे०बाणभट्ट कृत काव्यानुशासन, पृ० १८०।

३- इनमें संगीत तत्व का पूर्ण समावेश है।

४- नृत्य और अभिनय भी इनमें प्रधान है।

(v) हल्लीसक के विषय में एक संकेत यशोधर कृत कामशास्त्र की जयमंगला टीका में मिल जाता है वह "मंडल" में होने वाले स्त्रियों के उस नृत्य को जिसमें एक नायक होता है, हल्लीसक कहता है और प्रमाण में वह गोपियों बहरि का उदाहरण देता है।[१] हेमचन्द्र के काव्यानुशासन (पृ० ४४५-४४६) में हल्लीसक और रास शब्द का उल्लेख मिल जाता है। उपदेश रसायन रास के टीकाकार ने रासक के शिल्प की सरलता के सम्बन्ध में बतलाते हुए लिखा है कि "चर्चरी और रासक ये प्राकृत प्रबन्ध इतने सहज व सरल हैं, कि इन पर कोई भी विद्वान पुरुष इन पर टीका नहीं लिखना चाहता।"[२]

(vi) श्री मद्भागवत के तो पाँचो अध्यायों का नाम ही रास पंचाध्यायी है।[३] अब्दुल रहमान के संदेश रासक में रास की जगह रासय या रासउ मिलते हैं जो संभवतः रासक का ही अपभ्रंश है। शुभंकर ने गोप क्रीड़ाओं को ही रास कहा है[४] और जय देव तो रासे हरिहर सरस वसंते ही कह डालते हैं।

(vii) उपदेश रसायन रास के टीकाकार ने राग या गीतों की भांति गाया जाने वाला भी बताया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि प्राकृत भाषाओं में रची गई चर्चरी और रासक संज्ञक प्रबन्ध पर्याप्त सरल होते थे और वे देश्य भाषा में अनेक रागों में गाए जा सकते थे। टीकाकार ने उसमें अनेक छंदों का होना भी बताया है।[५] रासक शब्द के लक्षणों का विस्तृत विवेचन वाग्भट्ट ने और स्पष्टता से किया है।[६] जिसके अनुसार ये परिणाम निकाले जा सकते हैं:

१- मण्डलेन च यत्स्त्रीणां नृत्तं हल्लीसकंतु तत् नेतारम् मवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः

२- चर्चरी रासक प्रख्ये प्रबन्धे प्राकृते किल,
वृत्तिम् प्रवृत्तिम् नायते प्रायः कोऽपि विचक्षण।

३- श्रीमद्भागवत - दशम्, स्कन्धः

४- केचिद्‌वदन्ति गोपानां क्रीड़ारासक मत्यपि॰

५- अत्र पद्धटिका छन्दो भाषा चोद्धव भाषा:अनेकेषु रागेषु गीयते गीतकोविदः

६: अनेक नर्तकी योज्यं चित्र ताल लयान्वितम् आचतुःषष्टि युगलाद्रासकं मसृणोद्धतं
(वाग्भट्ट:काव्यानुशासन, पृ० १८०)

१- रासक मसृण रचना थी।

२- इसमें अनेक नर्तिकायें होती थीं।

३- यह उद्धत गेय रूपक था।

४- अनेक तालों से समन्वित होता था।

५- इसमें एक निश्चित लय होती थी, तथा

६- क्रीड़ा करने वाले युगलों (जोड़ियों) की संख्या ६४ तक होती थी।

गेय रासक के विकसित स्वरूप को उस काल में "राग काव्य" की संज्ञा दी गई थी।[1] शौरसेनी प्राकृत में भी रास साहित्य का उल्लेख मिलता है परन्तु यह आधार युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता।[2]

उक्त समस्त विवेचन हल्लीसक, रास और रासक शब्दों के संस्कृत कालीन स्वरूप अर्थ और परिभाषा को समझने के लिए किया गया है।"रास" शब्द किस प्रकार कालान्तर में अपना शिल्प परिवर्तन करता गया, इसके क्रमिक विकास के अध्ययन में सुविधा हो, इसी दृष्टि से संस्कृत काल के प्रमुख विद्वानों के विविध उदाहरणों को प्रस्तुत करना उचित प्रतीत हुआ।

"रास" के संस्कृत काल में जहां बाण के हर्ष चरित में रासका श्लील विवेचन मिलता है वहां अश्लीलरासक पदानि का उल्लेख भी आता है। उस काल में गणिकाओं द्वारा उनके कला कुशल चरित्र प्रेमियों को, जिनका विशेष नाम विट था, अश्लील पद गाने का उल्लेख है।[3] परन्तु डा० अग्रवाल ने एक दूसरी बात हल्लीसक के सम्बन्ध में कही है कि उसका उद्गम ईस्वी सन् के आस पास यूनान के नृत्य विशेष- हलीशियन- से हुआ है। कृष्ण के रास नृत्य और हल्लीसक नृत्य इन दोनों की

१- लयान्तर प्रयोगेण रागैश्चापि विविधवत्
नाना रसं सुनिर्वाह्य अर्थं काव्यं इति स्मृतम्- हेमचन्द्रःकाव्यानुशासन पृ० ४४९।

२- देखिए गुजराती एण्ड इट्स लिटरेचर- श्री के०एम० मुंशी, पृ० ८७।

३- कोकिला इव मद कावली को मदकलालापिन्यो विटानां कामिमुखान्य श्लील रासक पदानि गायन्त्यः। देखिए हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अध्याय चतुर्थ।

परम्पराओं में सम्भवतः किसी समय परस्पर सम्बन्ध हो गया।[१]

पर यह तथ्य कहाँ तक सत्य है, यह नहीं कहा जा सकता, इस सम्बन्ध में अन्य कोई अन्तर्बाह्य प्रमाणों और अनुश्रुतियों का भी अभाव है। इन दोनों बातों में हल्लीसक के उद्गम वाली बात तो संदिग्ध ही दिखाईपड़ती है, हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि रास नृत्य का सम्बन्ध संभवतः किसी जंगली जाति अथवा गोप जाति से अथवा अहीरों आदि से हो गया हो। जो भी हो, अब तक इतना अवश्य स्पष्ट हो गया है कि बाण के समय तक रास में नृत्य के साथ गेय तत्व पूर्णतया प्रचलित हो गया था और हल्लीसक या रासक के शिल्प में उक्त सभी विद्वानों के विचारों में युगलों, लयो तालों और गोप गोपियों का सम्बन्ध परिलक्षित होता है। अतःरास के अपभ्रंश काल के पूर्व नृत्य क्रीड़ा रूप और गेय रूप ही अधिक प्रचलित प्रतीत होते हैं। श्री मद्भागवत में कई वर्णित कहे स्थल रास के गेय रूप की पुष्टि करते हैं। रास शब्द का प्रयोग भी दृष्टव्य है[२] तथा कुछ श्लोकों में तो रचनाकार ने रास में संगीत व रागों का उल्लेख कर दिया है। ध्रुपद राग पर भागवतकार ने उस प्रसंग में प्रकाश डाला है।[३]

संस्कृत काल के पश्चात् रास में इन तत्वों का समावेश किन अंशों तक बना रहा, यह कहना बहुत कठिन है तथा साथ ही यह भी नहीं जाना जासकता कि उसके शिल्प में उक्त तत्वों से इतर किन तत्वों का समावेश हुआ, और वह भी किस अनुपात में, पर इतना अवश्य कहा जा सकताहै कि आगे की कई शताब्दियों तक

१- वही ग्रन्थ पृ० ३२-३३।

२-(अ) तत्रा रभत गोविंदो रासक्रीड़ा मनुव्रतैः (ब) रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपी मंडल मण्डितः (स) [illegible] रास मण्डले- श्री मद्भागवतः दशम स्कन्ध-।३३।२-३।

३- (अ) स्विद्यन्मुख्यः कबर रसना ग्रंथयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इवता मेघ चक्रे विरेजुः वही।८।।

(ब) तदेवं ध्रुव मुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् वही।।श्लोक १०।।

(जब तक कि रास, रासक, अपभ्रंश काल में नहीं पहुंचे) उसमें उक्त तत्वों का समावेश आंशिक अथवा स्पष्ट अस्पष्ट अनुपात में अवश्य मिलता रहा है। संस्कृत काल के इन रासों की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी राजस्थान में उपलब्ध विक्रम सं० ९६२ का रिपुदारण रास है।[1] जो अद्यावधि उपलब्ध रासों में सबसे पुराना है और यह रास संभवतः हेमचन्द्र से भी बहुत पहले का है। रासक [2] के शिल्प पर राजस्थान में उपलब्ध होने वाले रासों में प्राचीनतम होने से यही अच्छा प्रकाश डालता है, पर अभिनय, नर्तन और गान ये तीन तत्व रिपुदारण में भी मिलते हैं। अतः राजस्थान में मिलने वाले रासों में प्राचीनता की दृष्टि से भले ही इस रास का महत्व हो, पर शिल्प में इसका कोई नवीन योगदान नहीं लगता।

ऐसी स्थिति में अपभ्रंश व अपभ्रंशेतर ये दो काल ही ऐसे हैं जिनमें रासों के अनेक प्रकार मिलें। अपभ्रंशेतर साहित्य में विशाल संख्या में विविध मान छन्द प्रस्तुत करने वाले रास ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। जिनके शिल्प में संस्कृत तथा प्राकृत के रास ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक प्रगति व नूतनता है।

उपदेश रसायन रास के ३६वें पद्य में "ताला रासु, लकुटा या लड़डा रासु नामक दो प्रकार के रासों का उल्लेख मिलता है।[3] कर्पूरमंजरी में भी ताला रासु और लड़डा रासु का संकेत मिलता है।[4] डा० जे०पीच० वागेल ने ग्वालियर बाग की एक पेंटिंग में चित्रित लड़डा रास का वर्णन किया है।[5] इन साक्ष्यों से यह स्पष्ट

१- देखिए, मरुभारती, वर्ष ४ अंक २ में रिपुदारण रास निबंध: डा० दशरथ शर्मा, पृ०५७
२- साहित्य-संदेश, जुलाई १९५१ में रासो के अर्थ का क्रमिक विकास-लेख डा० दशरथ शर्मा
३- तालारासु विदिति रयणिहिं दिवसिवि लउडा रसु ...-उ०र०रा० छंद ३६
४- ... (।।) लउडा रसु ... (कर्पूर मंजरी ४।१०-२०।
५- We now come to the fourth S cene plate D. consisting of a double group of female musicians. The left hand group comprises seven women standing around an eight figure, evidently a dancer. The next three musicians are each engaged in beating a pair of wooden sticks called dands in Hindi and Tipri in Marathi. Painting by Dr. J.Ph. Vogel. Page 49-51.

होता है कि अपभ्रंश काल में रास क्रीड़ा में तालियों और डंडियों से खेलने की प्रथा भी प्रचलित हो गई थी।

कालान्तर में रास क्रीड़ा के सम्बन्ध में यह भी उल्लेख मिलता है कि जैन मन्दिरों में श्रावक आदि लोग रात्रि के समय में तालियों के साथ(ताल देकर) रासो को गाया करते थे।[1] उसमें जीव हिंसा की संभावना के कारण रात्रि में ताला रास का निषेध किया गया है। इसी प्रकार दिन में पुरुषों का स्त्रियों के साथ लगुड़ा रास करने (डंडियों के साथ नृत्य करते हुए रास गाने) को भी अनुचित बताया गया है। जैन मन्दिरों में ये रास १४वीं शताब्दी तक खेले जाते थे।[2] एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि उपदेशों के गेय रूपों को भी, जो जैन मुनि प्रस्तुत करते थे, रास संज्ञा दी जाने लगी। उपदेश रसायन रास में जिनदत्त सूरि के अनेक गेय उपदेश रास बन गए हैं। स्त्री और पुरुषों के एक साथ रास नहीं खेलने के जो उल्लेख मिलते हैं,[3] उनसे यह बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि रास क्रिया अपभ्रंश और अपभ्रंशेतर कालों में स्त्री पुरुष दोनों वर्गों में समान उत्साह के साथ सम्पन्न होते थे और रास विशेष अवसरों पर जनता उल्लसित होकर खेलती थी। अतः नृत्य और गीत तत्व रासों में समान अनुपात से ११वीं शताब्दी तकदेखने को मिलता है।

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि नृत्य और गीत में से कालान्तर में रासों में गीत मात्र ही क्यों रह गया। नृत्य क्रिया क्यों शिथिल हो गई? इसका कारण जैन रासो रचनाओं के शिल्प का परिशीलन करते हुए मिल जाता है। अपभ्रंशेतर काल में जैन मुनि जिन उपदेशों को देश्य भाषा में जन साधारण को गागाकर सुनाते थे, उनकी वे रसीली गीतियाँ और चर्चरी संज्ञक उपदेशात्मक रचनाएं धीरे धीरे रास बनती गईं। जैन श्रावकों को धर्म प्रधान जीवन बिताने से विशेष उल्लास औरराग रंग युक्त अभिनय से भी वैराग्य रखना पड़ता था अतः नृत्य का तत्व धीरे धीरे उपेक्षित होने लगा।श्रुति परम्परा के कारण ये गीतियां इतनी घनीभूत होकर

१- देखिए-ना०प्र०पत्रिका, वर्ष ५८ अंक ४, प० ४५०-श्री अगरचंद नाहटा का लेख
२- सं० १३०० के लगभग जिनेश्वर सूरि के श्रावक जगडू रचित "सम्यक्त्वमाइचउपई
३- देखिए अपभ्रंश काव्यत्रयी श्री लालचन्द भगवान गांधी पृ० ३९।

प्रचलित हुई कि, जन मानस रसमय हो उठा, और नृत्य को लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। अन्यथा कर्पूर मंजरी में विचित्र बन्ध में ताल लय प्रकम्पन के आधार पर नृत्याभिनय करती हुई नायिकाओं का वर्णन मिलता है।[1] इन नर्तकियों की समबाहु समाभिमुख आदि अनेक भिन्न भिन्न मुद्राओं का भी उल्लेख मिलता है।[2] वस्तुतः ११वीं शताब्दी तक पहुंचते पहुंचते रास "गेय काव्य" मात्र रह गया। क्योंकि इन गीतियों और चर्चरियों को ही जनसाधारण में अत्यन्त अधिक प्रचलित देखकर जैन मुनियों ने उपदेश का माध्यम चुना और ये चर्चरियां और गीतियां इतनी अधिक प्रसिद्ध हुई कि इनके नामों से विभिन्न छंदों का निर्माण हो गया। कालान्तर में चर्चरी और गीत नाम से स्वतंत्र छंद ही बने गए। अब जनता इन रासों को खेलने की अपेक्षा श्रवण करने में अधिक रस लेने लगी और इसीलिए श्रव्य-काव्य की उत्पत्ति का काल ११वीं शताब्दी कहा गया है।[3] आलोचकों ने इस कथन की पुष्टि भी की है कि इन्हीं उपदेश बहुल रासों के कारण गेय रास केवल अन्ततः श्रव्य रास मात्र रह गए, नृत्य से उनका संबंध सर्वथा विच्छिन्न हो गया।[4]

११वीं शती तक तो रास रासक की यह स्थिति रही। पर हेमचन्द्र के समय तक जन मानस ने रास को रूपक का रूप दे दिया और ऐसा लगता है कि तत्कालीन वस्तु स्थिति को देखकर ही हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्य काव्य के अन्तर्गत रासक को गेय रूपक के एक भेदों में से माना है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मसृण, उद्धत और मिश्र ये तीन भेद थे। इन तीनों के अन्तर्गत ही उन्होंने डोम्बिका भाण प्रस्थान, शिंग, भाणिका, प्रेरण रामाक्रीड़ हल्लीसक, रासक, गोष्ठी आदि उपभेद किए

१- साहित्य संदेश जुलाई १९५१ पर श्री डा०दशरथ ओझा का रासो के अर्थ का क्रम विकास- लेख।

२- कर्पूर मंजरी ।४।१०-११ का यह उद्धरण-
समं ससीसा सम बाहुहत्था रेहा विसुद्धा अवराउदिंति।
पंतीहिं दोहिं लअताल बंधं परोप्परं साहिमुही हुवंति।।

३- साहित्य संदेश-जुलाई १९५१-रासो के अर्थ का क्रमिक विकास-लेख।

४- वही अंक, वही लेख।

है।इनमें रासक और हल्लीसक उद्धत गेय रुपक के अन्तर्गत आते हैं। इनमें उद्धत तत्व का समावेश अधिक था और मसृण का आंशिक। अतः अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि रासक और हल्लीसक में उद्धतता तत्व की अधिकता हो जाने के कारण उसकी क्रीड़ा यारास अन्य शिल्प में दर्प यावीरत्व समाविष्ट हो गया होगा और ज्यों ज्यों उसकी रण प्रधान प्रवृत्तियाँ बढ़ती गई ये रासक वीरत्व प्रधान काव्य बनते गए और दूसरी ओर वे रासक जिनमें मसृणता का तत्व आंशिक था धीरे धीरे कोमलता प्रधान होते गए और कोमल प्रवृत्तियों वाले ये रासक"रास" रुप में चलते रहे, और यह परंपरा आज भी हमें"फागु" के रुप में सुरक्षित मिलती है।

वस्तुतः जन रुचि के इस बदलते हुए प्रभाव के कारण रासक में उद्धत तत्व की वृद्धि और गेयता तथा नृत्य होने से वह एक गेयता प्रधान उपरुपक हो गया।[1] अतः १२वीं शताब्दी से ही रास उपरुपक माना जाने लगा। नाट्य दर्पण जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों को देखने पर उसमें नाट्य रासक और रासक का उल्लेख मिल जाता है।[2] रासक में अभिनय की प्रधानता बढ़ी और साहित्य दर्पण में भी नाट्य रासक और रासक शब्दों का उल्लेख देखकर यह कहा जा सकता है कि उस समय जनता में रासक का रुपक के रुप में पर्याप्त प्रचलन हो गया था।रत्नावली नाटिका में भी "रास" को गीति नाट्य की संज्ञा दी गई है।

पर यहाँ तक तो रास के पास कोईनया विषय नहीं था।वही नृत्य, गान और अभिनय में घुमा फिरा कर उसकी विषय वस्तु बनती जा रही थी। अतः १२वीं शताब्दी के विषय वस्तु के रुप में भी एक नई क्रान्ति प्रस्तुत हुई। गीतियों में चर्चरी मूलक रास रचनाओं में धीरे धीरे कथा तत्व का समावेश होने लगा।अतः कथातत्वके आने से चरित्र संकीर्तन बढ़ने लगा। विशेष तौर से अपभ्रंशेतर जैन रासों में रिषभ देव, नेमिनाथ, महावीर जंबु स्वामी, गौतम स्वामी स्थूलि भद्र, आदि

१- हिन्दी साहित्य का आदिकाल।डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ६०-६१
२- नाट्य दर्पण(प्राच्य विद्या मंदिर बड़ौदा संस्करण) पृ० २१३-१६।

के वर्णन मिलते हैं, साथ ही श्रेष्ठि श्रावकों व दानवीर पुरुषों के ऊपर यथा वस्तु पाल, तेजपाल, पेथड़, समरसिंह तथा तीर्थों आदि के नामसेभी अनेक कथा प्रधान रास रचे गए जिनका विश्लेषण आगे के पृष्ठों में किया जायगा। वस्तुतः कवि इस कथा तत्व को विविध छंदों में बांधकर अर्थात् "रासाबंध" रूप देकर जनता के समक्ष रखने लगे। अपभ्रंशेतर इन रासों में छंदोंकीइस विविधता के साथ साथ रासाबंध के कारण "रास या रासा" आगे चलकर एक छंद ही हो गया। यहदर्थ यह कहा जा सकता है कि क्योंकि हर एक रास में गेय तत्व "व रसमय तत्वों की प्रधानता रहती थी और इस गेय तत्व ने जब अनवरत वृद्धि पाई तो यह समस्त रास ग्रंथ एक रास छंद के लिए ही रूढ़ हो गए हों। कालान्तर में यह रासा छंद इतना प्रचलित हुआ कितत्कालीन लोक काव्य में ही इसका समावेश हो गया।

वस्तुतः १२वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक में मिलने वाले इस विशाल जैन रास साहित्य के शिल्प उसकी मुख्य प्रवृत्तियों, विशेषताओं और उसके विकास की कड़ियों का अध्ययन विभिन्न दृष्टियों से किया जा सकताहै:-

१- संगीत व नृत्य कला की दृष्टि से

२- छंदों की दृष्टि से।

३- विषय की दृष्टि से।

४- साहित्यिक रूपों की दृष्टि से

५- धर्म की दृष्टि से।

(१) संगीत व नृत्य कला की दृष्टि से

संगीत और रास।

जहां तक संगीत का प्रश्न है उक्त विवेचन में हमने यह चर्चा की है। अनेक युगों तक संगीत "रासक-रासक" का एक प्रधान तत्व था। संस्कृत काल और अपभ्रंश काल के संधि युग में तो रास में उसका संगीत तत्व ही प्रधान हो गया था।इसके बाद भी जैन कवियों ने जो उपदेश प्रधान चर्चरियाँ और गीतियाँ गाई हैं, वे संगीत तत्व की उत्कृष्टता से रास का प्रचार करने व जन कंठ हार बनने में सहायक हुई थी। एक आवश्यक बात यह भी है "रास को रासा छंद बनाने के भी संभवतः

संगीत ने ही सहायता की है। वस्तुतः उक्त अनेक विद्वानों ने "गीत, लय और ताल" का महत्व रास या रासक के लिए स्पष्ट किया है। अतः रास और संगीत परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। श्री श्याम बिहारी गोस्वामी रासको एक नृत्य विशेष मानते हैं तथा एक प्रकार का काव्य और उप रूपक भी।[1] आचार्य हेमचन्द ने तो रास काव्यों में विभिन्न राग रागिनियों की व्यवहृति होने से रास के विकसित स्वरूप को "राग-काव्य" भी कह दिया था। इसके अतिरिक्त "रास" जब गेय उप रूपक का प्रकार था तो उसमें अनेक छोटे छोटे उर्मि गीतों का समावेश आवश्यक था और वही उर्मि गीत संगीत के अनूठे अंग थे जो रास नाम से प्रयुक्त हो रहे थे। अतः स्पष्ट है कि रास ने संगीत कला के क्षेत्र को भी उन्नति की ओर बढ़ाया।

<u>नृत्य और रास:</u>

नृत्य कला का भी रास से पर्याप्त सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। नृत्य कला को प्रगति के चरम पर पहुंचाने वाला तत्व नर्तकी या नत्यकार होता है और रास में नृत्य आवश्यक था। अनेक नर्तकी योजुबंचित्रताल लयान्वितप उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है। हल्लीसक और रासक को हेमचन्द्र ने देशी नाम माला (८।६२) तथा धनपाल ने पाइयलच्छीनाम माला (शब्द १७२) में -सामान्यतः गोप गोपियों की क्रीड़ा कहा है"- रासविम्मि हल्लीसो रासको, मन्डलेने स्त्र्यणा नृत्यं" अतः स्त्रियों के नृत्य का उल्लेख स्पष्ट मिलता है। अब तक रास नाम से जानी जाने वाली सब से प्राचीन क्रीड़ा कृष्ण गोपियों की ही रही है। इसी प्रकार नटराज शंकर भी अपने उद्धत ताण्डव नृत्य विभिन्न वाद्यों से स्वयं मुख्य नटेश्वर बटराज बनकर नृत्य करते थे। परन्तु श्री कृष्ण के इस मधुर रास का सम्बन्ध लास्य" नामक नृत्य से भी घनिष्ठ संबंध रखता है। आगे रास को लास्य भी बना दिया गया, ऐसा उल्लेख मिलता है। रास या लास्य रसपूर्ण गीत मात्र ही नहीं, उसमें नृत्य के साथ अनेक वाद्यों का भी समावेश होता है। हेम चन्द्र सूरि के शिष्यों ने १२वीं शताब्दी में रचे नाट्य दर्पण में लास्य के अवान्तर भेदों का उल्लेख किया है[2] और जिसमें

१: देखिए त्रिपथगा-अक्तूबर, १९५७, वर्ष ३ अंक १ पृ० ५३ पर श्रीश्याम बिहारी गोस्वामी" का स्वामी हरिदास और रासलीलानुकरण लेख।

२- भाव भेदाद् लास्य भेदो बहुधा कथ्यते बुधैः
तदैव नियमैर्हीनं देशे कश्चे प्रवर्तितम्।

विभिन्न देशय रुचि ही लास्य केभेद उपभेदों में परिवर्तन करती रही है। स्वयं शार्गंधर ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में सन् १२०० ई० के आस पास सौराष्ट्र की नारियों के रासनृत्य का उल्लेख किया है।अतः लास्य नृत्य भी कालान्तर में रास का स्थान ग्रहण किए रहा। लास्य की इस परम्परा में संगीत रत्नाकर में वर्णित उषा अनिरुद्ध एवं अभिमन्यु की पत्नि उत्तरा का बड़ा हाथ रहा है। स्वयं अर्जुन के ऊपर भी नृत्य रास के संस्कार का प्रभाव पड़े बिना न रह सका। मणिपुर नृत्य लास्य नृत्य का ही प्रकार माना जाता है। सौराष्ट्र और गुजरात प्रदेशों में लास्य या नृत्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन तथा स्वरूप में एक ही रही है। सौराष्ट्र में आज भी "रासडा लेवा" शब्द प्रचलित है।अतः रास ने नृत्य कला को पर्याप्त सहायता की है। संगीत की पंक्ति नृत्य व अभिनय रासक उत्तरकालीन समय में एक दम अन्योन्याश्रित है।यह भी संभव है कि नृत्य की अनेक कलाएं वाद्य तथा संगीत रासक में समाविष्ट थे। अतः रासक ने लास्य को व लास्य ने रासक को परस्पर बड़ा ही बल प्रदान किया है। अस्तु नृत्य कला भी रासक का प्रमुख रूप रहा है।[1]

(२) <u>छंदों की दृष्टि से:</u>

रास का मूल्यांकन छंदों की दृष्टि से भी किया जा सकता है।११वीं शताब्दी तक के रास गेय रूप में इतने अधिक प्रचलित हुए कि "रास" नामक एक छंद विशेष ही बन गया। यों विद्वानों ने रास छंद में केवल एक छंद का विवेचन कर अनेक छंदों का समाहार किया है।अतः यह स्पष्ट है कि रास परम्परा में अनेक रास छंदों की दृष्टि से भी लिखे जाते थे। उदाहरणार्थ संदेश रासक में प्रयुक्त रास छंद। और इस प्रकार छंद की दृष्टि से रास या रासक कहलाने वाली रचनाओं के लिए छंद एक विचार सरणि या कसौटी ही बन गई। ध्यान से देखने पर यह लगता है कि रासो ग्रन्थों में रासा छंद प्रमुखता से प्रयुक्त हुआ है।रास छंद के इस प्रभाव से तत्कालीन सभी जन कवियों में यह विशेषता उनके नाम में ही आ गई और

१- गुजराती साहित्य नां स्वरूपो: प्रो० म०र० मजूमदार,पृ० ५१३-१६

बहुधा वे नाम उनके शीर्षक के अनुसार विविध काव्य रूप बन गए- उदाहरणार्थ- पेंडड़ रास, समरारास आदि में रास छंद प्रमुख है तो चर्तुष्पदिका में चउपइ की, स्थूलि भद्र फागु और अनेक नेमिनाथ फागों में "फागु" छन्द मिल जाता है। रास छन्द का शास्त्रीय अध्ययन अथवा रासक के काव्य रूपों व शिल्प के विषय में हमें विरहांक के "वृत्त जाति समुच्चयं" (४।२६-३७) और स्वयंभू के छंदस से बड़ी सहायता मिलती है।इन दोनों छंद शास्त्रियों ने रासक की परिभाषाएं दी हैं। विरहांक के अनुसार रासक अनेक अडिल्लों, दुवहवों, मात्राओं, रड्डाओं और ढोसाओं से मिलकर बनता है। इनके अतिरिक्त मात्रा रड्डा दोहा, अडिल्ला तथा ढोसा की उसने अलग परिभाषाएं दी है। संभवतः विरहांक ने रासकों की दो प्रकार की लोक प्रियता बताई है तथा लिखा है कि "रास बंधो के बाद ही उन्होंने "रासा" नामक स्वतंत्रछंद की परिभाषा दी है जिसका डा० हरिवल्लभ भायाणी ने संदेश रासक की भूमिका में उल्लेख किया है, तथा दोहा छड्डुणिया, पद्धड़िया घत्ता चौपाई रड्डा, ओढसा, अड़िल्ल आदि अनेक छंदों का बहुतायत से प्रयोग करने वाली रचनाओं को रासक नाम दिया है।उक्त सभी परिभाषाओं में प्रयुक्त तथ्यों को कसौटी मान कर चलने में जब हम आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की रास रचनाओं में "रास" छन्द को ढूंढते हैं तो हमें रास छंद इन लक्षणों से अलग ही छंद लगता है। और इस स्वतंत्र छंद का दोहा ढोसा अडिल्ल आदि छंदों से स्वतंत्र रूप सिद्ध होता है तथा परस्पर आंशिक साम्य भी नहीं दिखाई पड़ता।अतः यही कहा जा सकता है कि इन विभिन्न छंदों की कृतियों को रासक नामदे दिया जाता होगा। रासक और रास छंद के विषयकुमारावधि प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इससे अधिक कुछ कहना बहुत संभव नहीं लगता।पर यह स्पष्ट है कि रासक और रास संज्ञक अनेक कृतियों में "रास" एक छन्द विशेष के रूप में खूब मिलता है।

<u>विषय की दृष्टि:से-</u>

अपभ्रंशेतर काल में रासों के विषयों में विस्तार हुए। अनेक विषयों पर रास रचना हुई जिनमें कुछ प्रमुख विषय अधांकित है।

१- उपदेशमूलक- उपदेश रसायन रास।

२- चरित प्रधान- पेथडरास

३- प्रवज्या या दीक्षामूलक, जंबू स्वामी गौतम स्वामी और स्थूलिभद्र रास

४- उत्सव वर्णन वीरता मूलक भरतेश्वर बाहुबली रास

५- छंद प्रधान रास- भरतेश्वर बाहुबली रास

६- कथा प्रधान- रामायण महाभारत पर (पंच पाण्डव चरित रास)

७- तीर्थों पर व तीर्थ यात्राओं पर- रेवंतगिरि रास तथा आबू रास, संप्तक्षेत्रीय रास

८- संघ वर्णन- समरा रास

९- संकीर्तन जन्य तथा सैद्धान्तिक-सोलह कारण रास

१०- ऐतिहासिक रास- पेथड रास, समरारास

इस प्रकार चरित्रों के गुणों का वर्णन करने, उनके दोषों को हटाने, यात्रा वर्णन करने, कथा निर्माण करने, मंदिरों का जीर्णोद्धार करने, दीक्षा उत्सव हेतु जय घोषणार्थ आदि के लिए ही इन रास ग्रन्थों की रचना की जाती थी। इसके अतिरिक्त वे भौगोलिक सामाजिक राजनैतिक तथा चरित मलक होते थे। जैन रासा साहित्य जितना ही चरित मूलक होता था उतना ही ऐतिहासिक भी होता था।

इस प्रकार कालान्तर में रास ग्रन्थों के विषय में व्यापकता आ गई और विषयों की सीमा में कोई बंधन नहीं रहा। अतः इन जैन साधकों ने लोक साहित्यपरक अर्थात् जन भाषा में और शास्त्रीय भाषा दोनों में रास रचनाएं की।

धर्म की दृष्टि से:

रास परम्परा में वैष्णव व जैन इन दोनों धर्मों ने बड़ा योग दिया है। वैष्णव धर्म में कृष्ण भक्ति शाखा के गोप मण्डल में कृष्णगोपियों ने रास को चरम पर पहुंचाया और ब्रज के रास रासलीलाओं से प्रसिद्ध हैं। इनमें श्रृंगारपरक, भक्तिपरक और कोमल सभी प्रकार के रास मिलते हैं।

जैन धर्म ने भी विवाह संस्था में संक्रांतिकाल के समय रासों को सुरक्षित रखा है। अनेक वीतरागी जैन मुनियों तथा राजपुत्रों के दीक्षाग्रहण करने के अवसर पर भी रासों की क्रीड़ाएं होती थी। स्त्री और पुरुष इन रासों को बड़ी श्रद्धा से खेलते थे और अपनी प्रकृति स्वरूप अनुभूति अभिनय व संगीत में डुबो कर साकार व सार्थक करते थे। मुनिवर कन्याएं ग्रहण ही नहीं करते थे उनका संयम श्री के साथ विधिवत् विवाह होता था। और इन जैन रासों में से अनेक रासों का उद्देश्य

आचार्य श्री का "संजमसिरि" से वरण कराना होता था- यथा जिनेश्वर सूरि दीक्षा विवाह वर्णन रास। इस शुभ अवसर पर अथवा पर्व पर उनके अनुयायी श्रावक भला कब मानते थे अत: वे उत्फुल्ल होकर नृत्यलय, ताल, गीत आदि द्वारा आचार्य श्री को श्रद्धान्जलि देते थे अत: रास का आयोजन होना स्वाभाविक था।

साहित्यिक रूप व शिल्प योजना:

साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर रास या रासक संगीत नृत्य, लय, ताल, छन्द, क्रीड़ा, अभिनय आदि उक्त सभी अंगों के समन्वय का समूह है। वस्तुत: रासक का सम्बन्ध उक्त अंगों से ऊपर दिखाया जा चुका है। रासक या रास का स्वरूप उद्धत गेय उपरूपक के रूप में उल्लास प्रधान होता है। अत: साहित्यिक दृष्टि से इसके शिल्प जन्यतत्वों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है

१- रासक गेय उपरूपक है जिसकी कथा गद्य में कम व पद्य में अधिक अर्थात् अधिकांश पद्य में ही होती है।

२- उसमें अनेक नर्तकियाँ हो

३- विभिन्न रागों का समावेश हो

४- अनेक छंद हो।

५- लय ताल का सुन्दर समन्वय हो।

६- अनेक प्रकार के अभिनय हों।

७- वह मण्डलों में विभक्त हो।

८- अनेक युगल हों, जो साथ क्रीड़ा करें।

९- पुरुष अलग, स्त्रियाँ अलग अथवा समवेत नृत्य।

१०- वस्तु में रस का परिपाक अनिवार्य रूप से हो।

११- विभिन्न प्रकार के नृत्यों का समावेश हो।

१२- रास या रासक एक निश्चित स्थान या मंच पर हो।

निश्चित स्थान से तात्पर्य रंगमंच से लिया जा सकता है। यद्यपि रंगमंच की सूचना [illegible] भी स्पष्ट रूप से रास और रासक साहित्य का उल्लेख करने वाले प्राचीन

नृत्य विशेष, मुद्रा, हाव, भाव तथा स्थिति विशेष आदि तत्वों को देखकर यह कहा जा सकता है कि रंगमंच का स्पष्ट उल्लेख नहीं होने पर भी रास में मंच विशेष की स्थिति अवश्य थी।

: वर्तमान काल में रास की स्थिति:

रास" जैसा गेय उपरूपक आज भी अपनी जीवन्त विधाओं को लेकर विविध रूपों में हमारे सामने सुरक्षित है। हमारे देश की लोक संस्कृति अक्षुण्य है। रास जैसी सांस्कृतिक गेय उप रूपक की आयोजना देश के हर प्रदेश में अपने विभिन्न शिल्पों में देखी जा सकती है। जहां तक राजस्थान का प्रश्न है राजस्थान में रास खेलने की प्रथा आज भी है। मन्डलाकार बनकर विशेष अवसरों परस्थल विशेष को सजाकर उसी पर डंडों से वे ढोल वाद्य पर रास खेलते हैं। विभिन्न मंडलियों में भी रास खेलने की प्रथा है।"रासधारी नामक एक मंडल एतदर्थ प्रसिद्ध है। रास गाया भी जाता है परन्तु पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में इसका प्रचार अधिक है।स्त्रियों के समाज में रास की स्थिति विचित्र प्रकार की है। रास का यह वर्तमान रूप अत्यन्त प्रसिद्ध है। यों रास के शिल्प का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करने वाला यहां कोई नृत्य विशेष नहीं है परन्तु उसके थोड़े थोड़े तत्वविभिन्न विभिन्न प्रान्तों के नृत्य विशेष में बंट गए हैं। राजस्थानी लोक नृत्यों में जो भीलों और भीलों के नृत्य, बनजारों के नृत्य, नटों की कलाएं बागड़ियों और गरासियों के नृत्य, कालबेलियों के इन्डोणी, शंकरिया, और पनिहारी का भावात्मक अभिनयात्मक और नृत्य प्रधान संगीतात्मक नाच एवं नृत्य रासधारियों की लीलाएं, तुर्राकिलंगी के अभिनय प्रधान नाच, बीकानेर के अग्नि नर्तक, जालौर के ढोल नर्तक, डीडवाणा और पोकरण की तेराताली (डाल रास) मारवाड़ की कच्छी घोड़ियों का नृत्य, गीत अभिनय, शारीरिक अवयवों की कला, नृत्य तथा वाद्यों से समन्वित मारवाड़ का कठपुतली नृत्य, पाबूजी की फड़ कान्ह गुजरी के नृत्य विशेष तथा कुचामणी ख्याल, अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। साथ ही रास के अभिनय को उसी आदिम स्थिति में पहुंचाने का प्रयास करने वाले और भी कई जंगली नृत्य हैं जिनमें डफ के नृत्य,

सांसियों के नृत्य कंजरों, नायकों चमारों व मेहतरों के नाच प्रसिद्ध हैं। शेखावाटी प्रदेश के चौक चानणी और मन्दिरों के कीर्तन और नृत्य भी अपना महत्व रखते हैं। आंशिक रूप से रास के तत्वों को प्रतिनिधित्व करने वाले नृत्यों में राजस्थान की स्त्रियों का "घूमर" या झूमर" नृत्य नहीं भुलाया जा सकता। घूमर नृत्य में स्त्रियां "गवर" या पार्वती की प्रतिमा के सामने सैकड़ों की संख्या में चक्राकार मण्डलों में विभक्त हो, घंटों नृत्य में डूब जाती हैं जिनमें वाद्य की मधुरता गीत का प्रवाह, स्वर व संगीत की रुझान, अभिनय की उत्कृष्टता तथा भावोन्मेष दर्शनीय हैं। पर इसमें युगलो में पुरुष भाग नहीं ले सकते। यह विशेषकर होली, गणगौर और दीवाली जैसे त्योहारों के अवसरों पर मध्य वर्गीय स्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। घूमर का उदयपुरी स्वरूप संगीतमयी है जोधपुर की घूमर कलात्मक है पर उसमें अंग संचालन का अभाव है और कोटा बूंदी की घूमर में एक अपर्व जीवट और प्रभाव होता है।इन नृत्यों में ताला रास दण्ड रास आदि सब रूप देखने को मिल जाते हैं। अतः घूमर राजस्थान का एक राष्ट्रीय नृत्य है।

गुजरात और मालवा में रास की वर्तमान स्थिति वहां के "गरबा" गरबो या गरबी नृत्य प्रस्तुत करते हैं। "गरबा" एक ऐसे घड़े को कहते हैं जिसमें सैकड़ों छेद होते हैं स्त्रियां उनमें दीपक जलाकर ताल, अभिनय, संगीत आदि के आधार पर उसको सम्पन्न करती हैं। यह नृत्य रास का वही रूप आज भी प्रस्तुत करता है।

रास केवर्तमान स्वरूप की सुरक्षा करने वाले रासों में ब्रज के रासों को भी बड़ा महत्व है। मथुरा वृन्दावन आदि स्थानों पर राधा कृष्ण और गोपियों के रूप में विविध लीलाओं तथा कृष्ण द्वारा किए रासों की आयोजना होती है। यहां तक कि अनेक मंडलियों ने तो इसे अपना पेशा ही बना लिया है। रास ब्रज की प्रमुख वस्तु है और कृष्ण उसके जन्मदाता। ब्रज में रास का वर्तमान रूप कब प्रचलित हुआ उसके प्रारम्भकर्ता कौन थे व इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से नहीं कहा

जा सकता तथा मतभेद भी है।[1] नारायण भट्ट, बल्लभाचार्य हरिदास तथा घंमड देव का इसके प्रवर्तकों में उल्लेख मिलता है।[2]

ब्रज में इन रासों या रास के दो प्रमुख प्रकार हैं:- १- शास्त्रीय बंधन युक्त तथा २- शास्त्रीय बंधनमुक्त लोकनृत्य जिनको नंद गांव और बरसाना की गुजरियां विविध मुद्राओं में नृत्य करती हुई हल्लीसक का वास्तविक रूप प्रस्तुत करती हैं जिसमें वाद्य नहीं होता।पर यह गायन बड़ा ही कल्पनात्मक होता है। यह नृत्य सम्भवतः समय के प्रभाव से समाप्त हो गया हो। डंडेलेकर मंडलाकार नृत्य अहीर आज भी करते देखे जाते हैं।

ब्रज का शास्त्रीय नृत्य दो प्रकार का है (१) रास और (२) महा रास रास रासमंडलियां करती है तथा महारास, जो श्री कृष्ण ने दो गोपियों में एक कृष्ण या दो कृष्ण के बीच एक गोपी के रूप में किया था, जब ब्रज की मंडलियां रास करती हैं तो भरत के नाट्य शास्त्र में वर्णित तीनों रासकों का मिश्रण देखने को मिल जाता है।[2] आज जो ब्रज में रास पद्धति है वह ३००।४०० वर्षों से अधिक पुरानी नहीं प्रतीत होती यह मंगलाचरण के बाद सारंगी, पखावज, किन्नरी, झांझ और मजीरा के आधार पर संगीत गान होता है और सब नृत्य करते हैं।

अवधी भाषा में "रास" का स्वरूप "रहिसा" के रूप में मिलता है। जिनकी में हर वर्ष होने वाले सांस्कृतिक लोक नृत्यों में Ipta इप्टा के नृत्यों का महत्व भी अत्यन्त अधिक है जिसमें अभिनय नृत्य, वाद्य, गान, वेष परिवेष, मंच और अभिनयत्व का सम्मिश्रण मिलता है।अवधी और ब्रज के स्वांग भी रास के एक अंग

१- देखिए-ब्रज भारती-वर्ष ४ अंक २ पृ० ६-११ पर प्रभुदयाल मित्तल का नारायण भट्ट लेख-श्री कृष्णदत्त बाजपेयी का-ब्रज लोक संस्कृति सं०२००५ पृ०१३९-४७, ब्र "रास" लेख कुमार रामानारायण अग्रवाल का रासलीला के पोद्दार अभिनंदन ग्रन्थ के अपार्थ कर्ता लेख ब्रज भारती वर्ष ५ अंक ४ पृ०७१३-१७ में नारविन हरहन का रासलीला के विदेशी वर्णन लेख।

२- देखिए ब्रज का इतिहास भाग २ श्रीकृष्ण दत्त बाजपेयी पृ० ११५ पर श्री कुन्तीलाल सेठ का लेख।

की पूर्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त ब्रज के लोक नृत्यों में रास के सम्बन्धी, ब्रज की चरंकला, ललमनियों, चांचर, झूला नृत्य, नरसिंह नृत्य, डांड़ा डांडी नृत्य आदि लोक कलात्मक नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध है जो रास की परम्परा को भी सुरक्षित करतेरहे हैं। जयदेव के गीत गोविन्द और चैतन्य के कृष्ण भक्ति प्रेमलीला वर्णन किसी रास से कम नहीं है।

बंगाल में भी भगवान कृष्ण के रास का रूप प्रचलित है जिसमें उनका वेश ब्रज से भिन्न होता है पर अभिनयात्मकता बड़ी उत्कृष्ट होती है।

आसाम मणिपुर प्रदेश में वेशभूषा, अभिनय, भावुकता तीनों तत्वों की रास में प्रधानता है। वहां भी वसंत रास, नृत्तरास, और महारास ये तीन प्रकार के रास होते हैं। इसी प्रकार दक्षिण में तामिल, तेलगु कन्नड़ मलयालम, आदि प्रदेशों के लोक साहित्य में रास का प्रतिनिधित्व मिल जाता है।वस्तुतः रास की परंपरा आज भी विभिन्न लोक कलात्मक अनेक नृत्यों के रूप में सुरक्षित है। वस्तुतः तत्कालीन अपभ्रंशेतर कालीन जैन रासों का वर्तमान स्वरूप जैन समाज में आज भी प्रचलित है परन्तु उसका आंशिक रूप ही दृष्टिगोचर होता है। दीक्षा के समय जैन मुनि का संयम श्री के विवाह के रूपक के रूप में सब क्रियाएं परी की जाती है पर रास नृत्य और उल्लास के साथ नृत्य अभिनय अब रुक गया है। सिर्फ अपनी उल्लास प्रधान अभिव्यक्ति को वे संगीत प्रथा के माध्यम से प्रकट कर देती है।डांडीयों आदि में स्त्रियों का नृत्य आदि उल्लेखनीय है।वस्तुतः रास नृत्य आदि के प्राचीन मानदण्ड आज बदलते जा रहे हैं। पर जैन मुनियों में रास बनाने और उनको गाकर उनका उपदेश देना आज भी प्रचलित है। सौराष्ट्र और गुजरात के जैन मुनि तो आज भी "रास" बना कर गाते हैं। देखालग रहा है कि आधुनिक जैन रास पुनः अपनी प्राचीन गेय व उपदेशात्मक स्थिति को जो हेम चन्द्र से पूर्व थी, प्राप्त करते चले आ रहे हैं।राजस्थानी भाषा में जो परवर्ती रास मिले हैं उनमें "रास" शब्द का ही अर्थोत्कर्ष हो गया है और वे युद्ध वर्णनात्मक काव्य के भी सूचक है। इसी कारण राजस्थानी में रासों शब्द का प्रयोग लड़ाई झगड़े या गड़बड़

गोटाले के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। १७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तथा १८वीं शताब्दी में कुछ विनोदात्मक रचनाएं उंदर रासो, मांकड रासो, आदि रासों की रचना हुई है।[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि "रासक" वस्तुतः एक विशेष प्रकार का मनोरंजन है।रास में वही भाव है।[2] आज का रास विषयों की सीमा के बन्धन में नहीं है जनता अपने सुख दुख को प्रेम धर्मोपदेश, श्रृंगार, कथा आदि सभी रूपों में प्रस्तुत कर इस व्यस्त जीवन में सुख अनुभव करती है।

जो भी हो,उक्त विवेचन में रास की परम्परा, उद्देश्य,परिभाषा, शिल्प आदि के तत्वों का पूरा पूरा मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयास लेखक ने किया है। अब अपभ्रंशेत्तर काल अथवा प्राचीन हिन्दी में जो आदिकाल की विभिन्न शताब्दियों में जो विशाल संख्या मेंरास रचनाएं प्राप्त होती है उनके काव्य का अध्ययन करना ठीक होगा। उक्त विवेचन सेआदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रत्येक शताब्दी में मिलने वाले हिन्दी जैन रासों की मुख्य प्रवृत्तियों, शिल्पगत तत्वों तथा काव्य रूपों का अध्ययन "रास विवेचन में किया गया है अतः कहा जा सकता है कि आदिकालीन हिन्दी जैन रासों को समझने में इससे बहुत सरलता हो सकेगी।

———

१- देखिए-नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० २०११ अंक ४ पृ० ४२० पर श्री अगर चन्द नाहटा का "प्राचीन भाषा काव्यों की विविध संज्ञाएं- लेख।

२- देखिए- हिन्दी साहित्य का आदिकालः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १००।

भरतेश्वर बाहुबली रास[1]

जैन रास परम्परा में सर्व प्रथम और सबसे बड़ी रचना भरतेश्वर बाहुबली रास है।आदि कालीन हिन्दी जैन साहित्य में यह कृति ऐसी है जो पर्याप्त प्राचीन है तथा जो अपभ्रंश की परवर्ती अवस्था और पुरानी हिन्दी (प्राचीन राजस्थानी और जूनी गुजराती) के बीच की कड़ी है। परिशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी जैन साहित्य की रास परम्परा का भरतेश्वर बाहुबली राससर्व प्रथम रास है।[1] अद्यावधि मुनि जिन-विजय जी तथा गुजराती विद्वान इसी रचना को सर्व प्रथम रचना मानते रहे है, पर श्री अगरचन्द नाहटा ने शोध पत्रिका में एक प्राचीन रास श्री वज्रसेन सूरि रचित "भरतेश्वर बाहुबली घोर" प्रकाशित किया गया है, जो इससे भी प्राचीन है पर रचना अकेली तथा संक्षिप्त होने से वहरास प्रवृत्तियों की प्रमुखता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती ऐसी स्थिति में भरतेश्वर बाहुबली रास को ही हिन्दी जैन साहित्य का सर्व प्रथम रास माना जा सकता है।

प्रस्तुत कृति का सम्पादन मुनि जिनविजय जी ने किया है।रचनाकार श्री शालिभद्रसूरि है, और रचनाकाल सं० १२४१। प्रति बड़ौदरा के एक विद्वान कान्तिविजय जी की है तथा प्रति कागज की है। अनुमानतः ४०० या ५०० वर्ष पुरानी होगी। मुनिजी का यह पाठ पूर्ण प्रामाणिक है। इसी पाठ को राहुल सांकृत्यायन ने भी उद्धृत किया है।[2]

दूसरा संस्करण लालचंद भगवान गांधी के द्वारा सम्पादित है।[3] श्री गांधी ने प्राच्य विद्या मन्दिर की तथा आगरा संग्रह की श्री विजय धर्म सूरि की प्रति के आधार पर कृति सम्पादित की है। श्रीगांधी का पाठ मुनि जी

१- भारतीय विद्या भाग २ अंक १ सं० १९९७ पृ० १-१९ सं० मुनिजिन विजय।
२- हिन्दी काव्य धारा:श्री राहुल सांकृत्यायन पृ० ३९८-४०८।
३- भरतेश्वर बाहुबली रास: सं० श्री लालचन्द भगवान गांधी-प्रकाशक प्राच्य विद्या मंदिर बड़ोदरा वि सं० १९९७।

की सम्पादित कृति से स्थान स्थान पर थोड़ा भिन्न भी मिलता है तथा छंद क्रम में भी अन्तर है।

प्रस्तुत कृति की पर्यालोचना करने से पूर्व दो और महत्व पूर्ण बातों का स्पष्टीकरण आवश्यक है।एक तो यह कि यह कृति प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी की है तथा दूसरी बात यह है कि देश्य भाषा और जन भाषा के आधार पर यह कृति पुरानी हिन्दी की है। गुजराती विद्वान इसे पुरानी गुजराती की मानते हैं जब कि १५०० वि० के पूर्व गुजराती का स्वतंत्र अस्तित्व कुछ नहीं था व दोनों प्रदेशों की एक ही भाषाएं थीं। और यह रास वि०सं०१२४१ का है अतः प्राचीन राजस्थानी और गुजराती की पृथकता का प्रश्न विवाद का विषय ही नहीं है।

भरतेश्वर बाहुबली रास के कर्त्ता विद्वान जैनाचार्य शालिभद्र हैं जो अपने समय के विख्यात कवि थे। भरतेश्वर औरबाहुबली दोनों अत्यन्त प्रसिद्ध चरित्र नायक राजपुत्र रहे हैं। इन दोनों से सम्बन्धित अनेक वर्णन चरित कथा रूढ़ि बहुत ही पुराने ग्रन्थों में उपलब्ध हो जाते हैं।अतः यह परंपरा आगे तक मिलती है।

कथा परंपरा और भरतेश्वर बाहुबली संबंधी साहित्य

भरतेश्वर तथा बाहुबली संबंधी साहित्य की परम्परा १८वीं शताब्दी तक मिलती है।कथा प्रायः एक ही है, वर्णन तथा घटनाओं में वैभिन्न भी मिलता है। कहीं भरत का वर्णन अकेले मिलता है और कहींबाहुबली का। नीचे कुछ रचनाओं का विवरण दिया जा रहा है।

जंबू द्वीप प्रज्ञप्ति नामक जैन उपांग सूत्र में भरत क्षेत्र के साथ चक्रवर्ती भरत के ६ खंडों की विजय का वर्णन है। भरत और बाहुबली का अधिकार वर्णन विमल सूरिकृत पउम चरिउ में ५वीं शताब्दी में श्रीसंघदासगणि रचित वासुदेव हिंडी [1]नामक प्राकृत की कथा में विस्तार के साथ दोनों का वर्णन है। ७वीं शताब्दी की जिन दासगणि की प्राकृत भाषा की चूर्णि नामक व्याख्या में दोनों का चरित वर्णन है। दोनों के परस्पर युद्धों के वर्णनों का जिन ग्रन्थों में उल्लेख है, वे हैं रविषेणाचार्य का

१- देखिए आत्मानंद जैन ग्रन्थमाला ८०,सं० मुनि चतुरविजय पुण्यविजय,सं० १९८६ भावनगर जैन आत्मानंद सभा द्वारा प्रकाशित।

पद्म पुराण, धनेश्वरसूरि के तथा १२वीं शताब्दीमें जयसूरि कृत धर्मोपदेशमाला के साथ साथ जिनसेन के आदि पुराण[1] पुष्पदन्त के त्रिषष्ठि महापुरुष गुणालंकार तथा हेमचन्द्र के त्रिषष्ठि शला का चरित तथा सं० १२४१ के सोमप्रभाचार्य के कुमारपाल प्रतिबोध[2] और विनयचंद्र सूरि कृत आदिनाथ चरित ।परवर्ती साहित्य में १४वीं शताब्दी में जिनेन्द्र रचित पद्म महाकाव्य,[3] सर्ग १६-१७, सं० १४०१ में मेरुतुंग रचित स्तपनेन्द्र प्रबन्ध में, १४३६ के जयशेखर सूरि कृत उपदेश चिंतामणि की टीका में तथा सं० १५३० में गुणरत्न सूरि के भरतेश्वर बाहुबली पवाड़ों में तथा १७५५ के जिन हर्षगणि के गुजराती "शत्रुंजय रास" में भरत बाहुबली का चरित्र वर्णित है।[4]

वस्तुतः इन दोनों चरित नायकों के वृत्त बड़े ख्यात हैं और यह कथा परंपरा १८वीं शताब्दी तक मिलती है। भरतेश्वर बाहुबली की कथाएं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश पुरानी हिन्दी(राजस्थानी गुजराती) आदि सभी भाषाओं में विस्तार से मिल जाती है।ग्रन्थों केलिए ही नहीं, भारत के विभिन्न मंदिरों, तीर्थों, स्तूपों, चित्रों तथा अनेक स्मारकों के लिए भी बाहुबली आकर्षण के विषयरहे हैं। उदाहरणार्थ मैसूर के श्रवण बेलगोल में ५६ फुट के लगभग ऊंची अद्भुत शिल्प की कलात्मक बाहुबली की ध्यानस्थ खड़ी हुई प्रतिमा है तथा आबू की १०८८ की विमलवसही की शिल्प कला में भरत और बाहुबली युद्ध के कुशल शिल्प चित्रों मेंदिखाए गए हैं

भरतेश्वर बाहुबली रास वीर रस पूर्ण प्रबन्ध है। यों शांति और अहिंसा प्रेमी जैनाचार्यों का वीर और श्रृंगार रस सेकोई सम्बन्ध नहीं मिलता, परन्तु परम्परा के कारण उन्हें ऐसे काव्यों की रचना भी करनी पड़ी। रास में उत्साह एवं स्वाभिमानपूर्ण उक्तियां तथा वीर रस का स्त्रोत उमड़ता है। इस रास की एक मौलिकता यह भी है कि यह प्रबन्ध युद्ध प्रधान व वीर रसः पूर्ण होते हुए

१- माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ सं० १- पर्व ४ पृ० ६१-६९।
२- गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थ माला नं० १४ में प्रकाशित।
३- वही नं० ५८ में प्रकाशित (गायकवाड़प्राच्य ग्रन्थ माला)
४- भरतेश्वर बाहुबली रासः की गांधी प्रस्तावना पृ० ५३-५६।

भी निर्वेदांत है। जैन रचनाकारों ने विरोधी रसों का समन्वय बड़े कौशल सेकिया है।यहां तक कि यह बहुत ही आश्चर्य जनक तथ्य है कि रास या फागु जैसी श्रृंगार प्रधान रचनाएंभी निर्वेदांत हैं।

प्रस्तुत रास में रचना- स्थान कवि ने कहीं नहीं दिया है पर भाषा के अनुसार पश्चिम गुजरात या राजस्थान के किसी भी स्थान की कल्पना की जा सकती है।

- कथा भाग-

रास की कथा वस्तु संक्षेप में निम्नलिखित है:- क्षी

"जंबूद्वीप के अयोध्यानगर में रिषभ जिनेश्वर के सुनंदा और सुमंगला से दो पुत्र क्रमशः बाहुबली और भरत दोनों यशस्वी और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। भरत ज्येष्ठ थे। रिषभेश्वर भरत को अयोध्या का तथा बाहुबली को तक्षशिला का राज्य सौंपकर विरक्त हो गए। उन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया। जिस दिनउन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ भरत की आयुध शाला में "दिव्य चक्ररत्न" उत्पन्न हुआ। भरत ने पहले पिता की वंदना करके दिग्विजय प्रारम्भ की। आगे आगे चक्ररत्न, पीछे पीछे सेना। अनेक राजाओं को विजय करने पर जब वे पुनः लौटे तो चक्र अयोध्यापुरी के बाहर रुक गया। भरत के मंत्रि से इसका कारण उसके भाइयों को जीतना व वश में नहीं करना बताया। सब की दृष्टि बाहुबली की ओर उठ गई। भरत ने क्रुद्ध होकर बाहुबली को दूत के साथ अपनी अधीनता स्वीकार कर पैरों में प्रणाम करने को कहा। सौगात व उत्कोच मांगे। बाहुबली भी क्रुद्ध हो गए और कहाः रिषभेश्वर ने जब सबको मान रूप से राज्य पद दिया है तब एक महा सम्राट हो और दूसरा भाई उसके आधीन, यह सम्भव नहीं है। दूत को उसने फटकार वापस लौटा दिया। दोनों ओर से युद्ध की तैयारियां हुई।

१२ दिन तक के भयंकर युद्ध में रक्त की नदी बह गई। तब भरतेश्वर की सेना में चन्द्रचूड़ और रत्न चूड़ विद्याधरों ने विजय की। इन्द्र ने आकर युद्ध बंद कराया। और कहा कि भाई भाई की पारस्परिक लड़ाई में सेना का संहार व्यर्थ हो रहा है।अतः अच्छा तो यह हो कि द्वन्द्व युद्ध होकर निर्णय-द्वय विजय

का निर्णय की जाय।वचन युद्ध, दृष्टियुद्ध (नेत्र युद्ध) और दण्ड युद्ध निश्चित हुए और तीनों में जब बाहुबली विजयी हुए तो भरत ने क्रुद्ध होकर उन पर मर्यादा तोड़ कर चक्ररत्न चला दिया। यद्यपि इससे उनकी कुछ हानि नहीं हुई पर वे चक्रवर्ती के इस व्यवहार से बहुत क्षुब्ध हुए और उन्हें विरक्ति हो गई। उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। युद्ध वीर को निर्वेद् हो गया।राज्यश्री उन्हें तुच्छ जान पड़ी। चक्रवर्ती भरत ने उनके चरणों में मस्तक टेक कर अमर्यादित कृत्य तथा भूल को स्वीकार कर क्षमा याचना की। पर बाहुबली को तो निर्वेद ने अपना लिया था।अनेक वर्षों तक तप करके वे कैवल्य ज्ञानी हो गए। भरत ने भी धूम धाम से नगर में प्रवेश किया। उत्सव हुए नगर तोरण सजाए गए। आयुधशाला में आकर चक्ररत्न भी शान्त हुआ और चतुर्दिक भरतेश्वर का यश छा गया।

रास की कथा यही है। रचना अनेक छंदों में लिखी गई है और कुल मिला कर २०५ छन्दों में पूरी कथा समाप्त हुई है। प्रबंध परम्परा का यह एक महत्व पूर्ण खंड काव्य है। सं० १२४१ का यह रास अन्य उपलब्ध अनेक जैन हिन्दी रासों में सबसे बड़ा है। इसके बाद इतनी बड़ी रास रचनाएं १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही मिलती है यह प्राप्त कृतियों से स्पष्ट होता है । अस्तु २५० वर्षों के (सं० १२४१ से १५००तक) के इतने बड़े काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों, भाषा एवं बातों का प्रतिनिधित्व यह अकेलारास करता है।प्रस्तुत प्रबंध की रचना भाव सर्ग या पर्व आदि में विभाजित नहीं है। यों प्रबन्ध काव्य की परम्परा से ही कुछ भागों में विभक्त कर दिया जाता है।महा काव्य सर्गबद्ध होते है।[1] प्राकृत में प्रबन्ध काव्यों के सर्गों का नाम "आश्वास" [2] है। अपभ्रंश काव्यों में सन्धि[3] का प्रयोग हुआ है। सन्धि के प्रारम्भ में ध्रुवक और उसके आगे कुछ कड़वक तथा प्रत्येक कड़वक में

१- साहित्य दर्पण; विश्वनाथ- "सर्ग बंधो महाकाव्यो तत्रैको नायक:सुर:"पृ०४ ३०२-३)

२- सर्गा आश्वास संज्ञका -साहित्य दर्पण पृ० ३०४-५।

३- साहित्य दर्पणकार ने इसे "कडवक" कहा है।पर वास्तव में यह सन्धि है।यद्यपि कड़वक समूहात्मक होती थी "कड़वक समूहात्मक संधि-देखिए ना०प्र०प० वर्ष-५९ अंक १ सं० २०११।

के बाद घत्ता रखा जाता था। कहीं कहीं प्रक्रम[१] नाम भी मिलता है। हिन्दी जैन साहित्य के परवर्ती अन्य रासों में भी ये नाम विभिन्न प्रकार से मिलते हैं। उदाहरणार्थ कच्छूली रास में वस्तु या वस्त[२] जंबू स्वामी चरित में कड़वक[३] एवं ठवणी (स्थापनी) समरारास में भास[४] तथा पेथड़ रास में लहुण नाम[५] दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त सर्गों के नाम कांडव पर्व[६] भी मिलते हैं।[७]

भरतेश्वर बाहुबली रास भी इसी तरह वस्तु ठवणी, वाणि[८] आदि में विभक्त होता चलता है। यद्यपि कथा में कहीं भी कविकृत सर्ग, यदि या समाप्ति नहीं है परन्तु फिर भी कथा का विभाजन (१) भरत की दिग्विजय (२) भरत व बाहुबली का युद्ध (३) बाहुबली का दीक्षा ग्रहण, आदि इन तीन भागों में सरलता से किया जा सकता है।

प्रस्तुत रास के कर्त्ता श्री शालिभद्र ने रास का प्रारम्भ मंगलाचरण से ही किया। कवि ने रिषभ जिनेश्वर के चरणों में प्रणाम करके सरस्वती का मन में स्मरण करके, गुरु पद वंदना के पश्चात् ही काव्य प्रारम्भ किया है।

रिसह जिणेसर पय पणमेवी
सरसति सामिणि मन समरेवी
नमवि निरंतर गुरु चरण

:नाटकीय संलाप:

रास में कई स्थलों में कवि की नाटकीय संवाद योजना स्पष्ट होती है।

१- देखिए संदेश रासकः अब्दुल रहमान कृत, भूमिका भाग।
२- प्राचीन गुर्जर काव्य सं० मुनि जिन विजय, पृ० ५९
३- जम्बू स्वामी चरित, प्रा०गु० का० सं० पृ० ४१।
४- समरारासुः मुनि जिन विजय कृत- जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय, पृ०११७।
५- प्राचीन गुर्जर कवियों- मोहनलाल देसाई कृत तथा प्रा०गु०का०सं०परिशिष्ट भाग २४।
६- तुलसी कृत रामचरित मानस में- बाल काण्ड, अयोध्याकांड, सुन्दर कांड, लंका कांडादि।
७- देखिए महाभारत में शान्ति पर्व, युद्ध पर्व आदि नाम।
८- देखिए: भरतेश्वर बाहुबली रास, श्री गांधी पृ० १६, २७ आदि।

संवाद बड़े प्रभावशाली और सरस हैं।यथा मतिसागर भरतेश्वर-संवाद, दूत बाहुबली-संवाद आदि इन संवादों में एक नाटकीय योजना, गेयता, दर्प तथा उत्साह है। कविने इनके द्वारा काव्य में अभिनय भंगिमा का समावेश किया है। दोनों संलापों के उदाहरण देखिए-

(१) मतिसागर किणि काज चक्क न पुरि प्रवेसु करइ
झुंजि अम्हारइ राजि पुरि धरीय धोरि[1]पुरइं (प्रश्न)
बोलइ मंत्रि मयंकु, समभलि सामीय,चक्कधर[2]

... ...

नवि मानइ तूय आण बाहुबलि विहं बाहुबले

... ...

तिणि कारणि नर देव। चक्क न आवइ नीय नियरे[3](उत्तर) इसी प्रकार दूत बाहुबलि का संलाप उल्लेखनीय है:-

दूत:- दूत भणइ दूत पभणइ बाहुबलि राउ
भरहेसर चक्क घेरु कहि न कवणि दूहवण कीजइइ

... ...

वेगि पुवेगि तु बोलइ संभालि बाहुबलि।[4] (प्रश्न)
जिम जंबल सवि संवइ ऊगी जिम जिम लवण रसोइ अलूणी
तुम देवणि उत्कंठिउ राउ निठुणिठु भाट बोल भाउ[5]

और दूत के यह कहने पर कि चलो भरतेश्वर की अधीनता स्वीकार करो, नहीं तो वह तुम्हारा वध करेगा- बाहुबली तत्काल उत्तर देते हैं।

१- भरतेश्वर बाहुबली रास श्री गांधी, पृ० १८ पद ४५
२- वही, पद ४७
३- वही पद ५०
४- वही, पद ७८
५- वही पद ८३ पृ० २८।

"राउ जंपइ राउ अपंइ सुणिन सुणि दूत
जंचिहि लिहीउं भालयलि तंजि लोह हहलोइ पामइ

... ...४ ...

अरि रि, देव सुणि देव न दानव महि मंडलि मंडलवै मानव
काइ मं लंघइ लहीयालीह लाभइ अधिक न ओछा दीह [१]

विविध वर्णनों में नगर वर्णन, सेना वर्णन, दिग्विजय वर्णन, शकुन वर्णन हाथी घोड़ों सवारों आदि के वर्णन मिलते है।इनके कई वर्णन ऊहात्मक और अतिशयोक्ति प्रधान है। शेष वर्णन साधारण है परन्तु उनकी भाषा में पर्याप्त सरलता है। वीर रस प्रधान वर्णनों में "द्वित्व" और "टकार" प्रधान भाषा चलती है।इसी वर्णनों में एक जीवट और ओज ( ) है। शब्दों में प्रवाह, सरसता, और उत्साह भरा है।शब्द चयन अनु-प्रासात्मक है। कुछ वर्णन देखिए:-

हाथियों का वर्णन- (।) चलिय गयवर चलियगयवर गुडिर गज्जंत
(।।) गजउ फिरि फिरि गिरि सिहरि भंजइ
हज्जर डालि सु
अंकुस वस आवइ नहीं य करइ अपाट जि आलि सु

घोड़ो व सवारों का वर्णन: (।) हुंकइ हसमस हमहमइ तरवरंत हयघट चल्लिय
(।।) फिरइ फैकारइ फोरवई य कुद फेकावहि फार सु
तरषि-तुरंगम तम तुझई वेधिय तरल तुखार सु
(।।।) हींसई हवमिसि हमहमई ए तरवर तार तोखार सु [२]

सेना वर्णन (।) कटक न कथविहि-भरह हमई भाजइ पेडि पिहंत सु
रेलई रणभावरह विगि रायो रामि न अंत सु

"शकुन" वर्णन भी लोकसाहित्य की परम्परा को विकसित करता है। दूत का बाहुबली के पास जाना और रास्ते में लोमड़ी, सियार, सर्प, आदि का मिलन वर्णन बड़ा ही

१- वही पृ० ८ अरसु १६।

२- भरतेश्वर बाहुबली रास- श्री मेनकी, पृ० १०

प्रभावशाली है, शब्दों की अनुप्रासात्मकता उल्लेखनीय है:-

(i) जा रथ जोत्तीय जाम वुजि आपसिइ नरवरह
किरि फिर सामुहउ थाइ वाम वुरीय याहिणि सवुड- पद (५६)

(ii) काजलकाल विडाल आविय आडिइं उतरइय
जिमणउ जम विकराल खर खर खर-रव उछलीय - (५७)

(iii) सूकीय बाउल डालि, देवि बयठी सुरकरइय
झंपीय भालम भाल घूक पुकारहि दाहिइए- (५८)

( ) जिमणइं गमई विणादि फिरिय फिरिय शिव के करइय
डावीं य उगलइ वादि भैरव भैरव रव करइए-

इसी तरह बिल्ली, गधा, बीये घोड़े का अड़ना, सूखि डालपर देवि (पक्षी विशेष) का बोलना, दाहिने घूक (उल्लू का बोलना) और लोमड़ी (शिवा) का बार बार सामने फिर फिर कर अपशकुन करना आदि चित्रण यथार्थ है।

उक्तियाँ

वीर रस की दर्प और उत्साह प्रधान उक्तियाँ अत्यन्त सुन्दर है जिनमें जीवन के लिए पर्याप्त जीवट का समावेश है। स्वावलम्बन और स्वाभिमान पूर्ण कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

(i) परह आस किमि कारण कीजइ, साहस सईवर सिद्धि वरीजइ
हीयं अनइ हाथ हत्थीयार, एह जि वीर तणउ परिवार [१]

(दूसरे की आशा क्यों की जाय। साहस से स्वयं ही सिद्धि को वरण करना चाहिए। पास में शुद्ध हृदय और हाथ में हथियार ही तो वीरोंका परिवार होता है)।

कितनी दर्प, स्वावलंबन और पुरुषार्थ पूर्ण उक्ति है।

(ii) सिर सरसउ स पडंग न नमीजइ सोह मीवरत मगइ न नमीजइ [२]

(iii) कोइ न कोपइ सिखिया लीह।

(iv) सामीय सिरवरइ करण-विषाउ [३]

( ) सिर सिर प पय संसार।

१: भारतीय विद्या, वर्ष २ अंक १ पृ०९७ अपि ८ पद १०३(२) भरतेश्वर बाहुबली रास-पृ०६६

प्रस्तुत रास में गेयता है वस्तु प्रवाह के साथ गेयता का मिश्रण रास का सौन्दर्य और ब.ढा देता है। भरतेश्वर बाहुबली रास विविध रागों में बंधा है अत: यह अनेक प्रकार से गाया जा सकता है। अधिक विस्तार में होने से समयाधिकता संभव है, परन्तु इसके प्रवाह को देख किसी भी वीर के भुजदंड फड़क उठेंगे।

भरतेश्वर बाहुबली रास भाषा, रस व्यंजना, अलंकार योजना और छंद योजना आदि की दृष्टिसे भी पर्याप्त महत्व की कृति है।

भाषा विचार-

भरतेश्वर बाहुबली रास की भाषा "देसिल बयना सब जन मिट्ठा" उक्ति की सार्थकता सिद्ध करती है। भाषा का शब्द चयन ध्वन्यात्मक, और अनुप्रासात्मक है। अत: काव्य की नादात्मकता स्पष्ट है। शब्द जैसे एक ही साँचे में ढले है। पुरानी गुजराती और पुरानी राजस्थानी दोनों ही विभाषायें इसेअपना काव्य कहती हैं।परन्तु अधिकांश शब्द राजस्थानी की है। साथ ही अपभ्रंश केपरवर्ती रूपों का भी प्रभाव है।भाषा का कुछ परिचय इस प्रकार है:-

उत्तर अपभ्रंश: रिसह, जिणेसर, नयर, भरह पयंड, चक्क, रयण, गयवर, आदि। क्रियाएं खिज्जीय, मिल्लीय, चल्लीय, उल्लीय, के साथ धूवीय, वालीय, आवीय, चलिय आदि रूप सरल राजस्थानी के हैं।

राजस्थानी व पुरानी गुजराती

काल, परिलिय, चोरी, कुमर, आयंस धूवीय, गायंस, गमड, चमड ढडवडंत, भडवडड, चडडंत, आवलि, निहाण, मयण, भाण, खेलहि पिंडते, पिडं, सर्वो, गमी, डामी, जिमवइ, विहाउ, मुकलाण, छेडुं, पडखिवइ, आदि संज्ञा क्रियाओं के रूप।

पुराने शब्द- सयलेवी, अमरेवि नाभिवि, भरियेड, बंधवई, पभिणु, रासह, छंदिहि रयणिहि, रायम, राहु, भिडु कीड, पंडाउ नउ आदि शब्द हेमचन्द्र के अपभ्रंश दोहों में प्रयुक्त प्रत्यय वाले शब्द हैं, पर साथ ही भाषा में नव शब्दों का भी समावेश अपभ्रंश के संस्कार से हुआ है।

<u>नये शब्द-</u>

पय, बार, वरिस, हिम भाखिहिं, संपत्तउ, गक्क हिमगार, पाटधिर, हीणि तपुउ, नगुण, हंदिहिं आदि में नूतनता का आग्रह स्पष्ट है।[1]

<u>तत्सम शब्द:</u>

प्रस्तुत कृति में पुराने रूप धीरे धीरे कम होते गए हैं और उनके स्थान में प्रयुक्त तत्सम शब्दों की आयोजना[2] द्रष्टव्य है यथा वरिम, मुनि, निरंतर, गुरु चरण, अमर पुरो, गुण गण धं र आदि।

प्रस्तुत रास की भाषा परिवर्तन के इन नियमों का तथा ध्वनियों आदि के परिवर्तन पर प्रकाश स्वतंत्र शोध का विषय है। उक्त उदाहरणों द्वारा यह तो जाना ही जा सकता है कि भाषा सरल पुरानी हिन्दी है तथा राजस्थानी शब्दों की भरमार है। साथ ही अपभ्रंश अपना स्थान रिक्त करती हुई पुरानी हिन्दी और तत्सम शब्द ग्रहण करती प्रतीत होती है। ११वीं शताब्दी की कृति सत्यपुरीय महावीर उत्साह की तुलना में इस रचना की भाषा में पर्याप्त सरलता प्रतीत होती है। भाषा की सरलता कुछ उदाहरण लिजिए-

(i) हा कुल मंडण हा कुल वीर, हा समरंगणि साहस धीर (१५४)

(ii) सामीय, विसमउ करम विपाउ - (१५७)

(iii) कहि कुंभ उपरि की वह रोडु। पडु कि वीयइ बैसइ दोडु (१५६)

<u>रस व्यंजना-</u>

भरतेश्वर बाहुबली रास में प्रधान रस वीर है, परन्तु एक आश्चर्य यह है कि कवि ने वीरता के क्रोड़ में शांत रस का समाहार किया है। या यों कहें कि वीरता का उपशमन शम में किया है। रास के निर्वेदपूर्ण अन्त में संसार राज्य शरीर

१: देखिए आवश्यक कविता: के का० शास्त्री पृ० १५८

२- A definite tendency to replace Apbhramsa form of words by its sanskrit equivalent comes into existence-Gujrati and its literature by Sri K.M. Munshi- Page 86.

और श्री की नश्वरता पर प्रकाश डाला है।रास में भरत, बाहुबली, आश्रय, आलंबन, युद्ध की तैयारियाँ उत्तेजक वचन उद्दीपन तथा परस्पर दानों पक्षों में उदित उत्साह स्थायी भावहैं। सेना वर्णन,रण वर्णन, रक्त पात, युद्ध तथा योद्धाओं के शरीरिक स्वरूप अनुभावों और संचारियों के प्रतीक है। वीर रस, बीभत्स रस, तथा शांत रस के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

वीर रसः (i) हुंकइ, हसमस हय हणइ,तरवरंत हय पट्ट पल्लीय
पायक पयभरि टल टलीय मेरु शीस शेष मणि मउड डुल्लीय

(ii) सउ कोपिउ कलकलिउ कालकेवीय कालानल
कंकोडी किसरौबीओ करि काल महाबल

(iii) कुडइ भिडई पडखडई शेदि खडखड खडा सडि

(iv) कंपिय किन्नर कोडि पडीय हरगण हडहडिया

(v) मारई मुरडीय मूंछ मांहि नम मच्छर भरिया [१]

भयंकर युद्ध हुआ और रक्त की नदी बह गई। बीभत्स का परिपाक हमारे सामने निष्पन्न होता है।

बीभत्स रस- (i) उडेडीय शेह म सूझइ सूर नवि जाणीय सवार अपूर
वहई सुहड धड धांमई धसी हणइ हसी हणि हाकइ हसी

--- --- ---

वहइ रुहिर-नइ सिरवर तरइ, री री रणि रावस करइ [२]

(रुधिर की नदी में तैरने वाले सिरों को देखकर राक्षसों का भयानक आवाजें कर प्रसन्न होना बीभत्स प्रस्तुत करता है)

शांत रस- युद्ध के पश्चात् जब दोनों भाइयों में परस्पर-नेत्र युद्धः जल युद्ध और मल युद्ध होता है तो भरत हार जाते हैं और क्रुद्ध हो बाहुबली पर चक्ररत्न से

१- भरतेश्वर बाहुबली रास, श्री गांधी पृ० १८।

२- भरतेश्वर बाहुबली रासः श्री गांधी पृ० १८१।

प्रहार कर बैठते है। राज्य व दिग्विजय के लिए इस अमर्यादित कार्य को देखकर बाहुबली को निर्वेद हो जाता है और रास के वीर रस प्रधान सारे आलंबन शांत में बदल जाते हैं। इस एकदम हुए परिवर्तन को विद्वान कवि ने बड़े संभार से संजोया है जिसमें कहीं भी रस दोष नहीं होपाता। उदाहरण द्रष्टव्य है:-

> धिगु धिगु ए एव संसार, धिक् धिक् राणिम राज रिद्धि
>
> एवहु ए जीव संहार की घड़ कुण विरोधे वहि [1]

अपनी पराजय, जीव हानि आदि बातों से भाई का अपने ही सहोदर पर धर्म युद्ध के स्थान पर चक्र का प्रहार एक दम अधर्म युद्ध था। इसी अमर्यादित कृत्य ने ही बाहुबली के हृदय में शम की सृष्टि कर दी। वे दीक्षा ले लेते हैं। भरतेश्वर की आंखे आंसुओं से भर जाती हैं और वह उनके कदमों पर लेट जाता है:

> सिरि वरि ए लोच करेउ कासगि रहीउ बाहुबले
>
> अंसूइ आंखि भरेउ तउ पणमइ भरह भडो। [2]

उक्त उद्धरणों की भाषा सरल, भाववती सरस व छंद गेयता प्रधान है। अतः ओज और माधुर्य का समन्वय हो जाता है। अपभ्रंश की टकार वर्णित्व प्रधानता ने वस्तु स्थिति को और भी सरस बना दिया है।

:अलंकार:

भरतेश्वर बाहुबली रास की अलंकार योजना बहुमुखी है। मौंपुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर ही सं० १२४१ नुं प्राचीन गुजराती अनुप्रास यमक मय वीर रस प्रधान युद्ध काव्य जैसा महत्व पूर्ण वाक्य सम्पादक श्री गांधी ने लिख दिया है।अतः अनुप्रास बाहुल्य तो है ही।

सादृश्य मूलक अलंकारों में यमक, श्लेष रूपक आदि की योजना सुन्दर है अनुप्रास तो रास कीप्रत्येक पंक्ति में बिखर रहा है। इसके अतिरिक्त दृष्टान्त,उदाहरण, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति आदि भी स्वाभाविक आ ही गए है। अलंकरण में कवि का

१: वही,पृ०-८९ ठवणि १४ पद १९३

२- वही,पृ० ८९ पद १९५।

आग्रह नहीं थे तो स्वतः ही आ गए हैं।

<u>अनुप्रास:</u>

१- छेकानुप्रास (i) गड गडंत गयवर गुडीय जंगम जिमि गिरि श्रृंग सु

(ii) हीसई हसमिसि हमहणइ

(iii) तरवरतार तोखार सु।

२-वृत्य } (i) चलीय गयवर चलीय गयवर गुडिर गज्जंत

३,४लाटा व } (ii) पढम जिणवर पढम निवुवर पाय पणमेवि
वीप्सा }

५- अन्त्यानुप्रास: (i) दिसि दिसि दारक संचरइए,

(ii) अंगो अंगिम अंगमइए।

६-श्रुत्यनुप्रास- (i) मंडीय मणि मय मण्ड मेघाडंबर सिरि धरिय

(ii) वेगि सुवेगि सु बोलहि संघति बाहुबलि ।

<u>यमक</u> अभंग } (i) वेगि सुवेगि सु बोलइ (ii) सर सर सर रव उछलीय
सभंग }
(iii) कंपिय झालम झालि (i) भैरव भैरव रव करइ ए

श्लेष- (i) वाम सुरीयवाहिणी तणउ

(ii) फिरिव फिरिय सिव के करइए।

सांगरूपक- (i) काजल काल विहाल।

(ii) बोलह मंगि मयंकु

<u>उपमा एवं उत्प्रेक्षा</u>- (i) जिमि उदयाचल सूरि तिमि सिरि सोहहिं मणि मउडो

(ii) मल कई कुण्डल कानि रवि ससि मंडीय किरि भवट

(iii) चउकीठ माणिक थंभ माहि बइठउ बाहुबले।

ढलिय विढी स रंभ चमर ढारि चालइ चमर।

<u>अतिशयोक्ति एवं अत्युक्ति</u> (i) कंपिय धम धरि सेस रहिउ विण साहि उन जाइ सु

सिर डोला मइ चरमिं हिं ए टल टलीय टूंक गिरि थंभ सु।

दृष्टान्त तथा उदाहरण (i) मंडिय मणिमय दंड मेघाडंबर सिरि धरिय

जइ पंचंड भूय दंड वयमंडी जम सिरि बवइय

(11) विण बंधण सवि समइ ऊमी जिमि विण लवण रसोइ अलूणी

इसी प्रकार व्यतिरेक अपन्हुति विभावना आदि के उदाहरण मिल जाते है-

:छंद योजना:

आलोच्य रास की छंद योजना भी बड़ी विस्तृत है।पर प्रमुख छंद "रास" है। "रास" नया छंद नहीं है। पहले के पृष्ठों में इसका परिचय दिया जा चुका है।संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश की छंद योजना पुरानी हिन्दी में पूर्णतया सुरक्षित रही है। विशेष तौर से हिन्दी ने तो अपभ्रंश के कई छन्दों को अपनाया है। अपनाया ही नहीं उन्हें दुलार कर अपनी सम्पत्ति ही बना लिया है। रास छंदों में अब्दुल रहमान ने पूरा संदेश रासक लिखा। श्री शालिभद्र सूरि ने प्रारम्भ में ही अपना छंद गत मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है।

प्रारम्भ - कुं हिव पभणिसु रासह छंदिहि

ते जण मण हर मन आणंदहिं- भाविहिं भवीयण सांभलओ

और साथ ही रचना कौसमाप्ति पी पर-

अंत: गुण गणह य तणउ भंडारु सलिभद्र सूरि जाणी इय

की धर्य ए हीयि चरितु भरह नरेसर रासु छंदिहिं

अत: कवि का मन्तव्य तो रास छन्द के लिए स्पष्ट है पर विद्वान इस मत से सहमत नहीं। प्रारम्भ के चरणों में १६ १६ १३ और १६ १६ १३ मात्राओं की द्विपदी मिलती है। इसप्रकार का छंद कहीं पूर्व कहीं पीछेने में नहीं आया। पीछे की कड़ियां सोरठा की है,तथा सु" और ये" शब्दों के प्रयोग ही रासछंद की पहिचान करते है।[1] डा० ह०म० भायाणी रास में अनेक छंद मानते है जिसका उल्लेख रास:परम्परा-विवेचना में पहले किया जा चुका है।श्री अगर चंद नाहटा" रास" छंद को अनेक छंदों का मिश्रण स्वरूप नहीमान, एक स्वतंत्रछंद मानते

१- आपणा कवियों: श्री के०का० शास्त्री पृ० १६०।

है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी रासक को २१ मात्राओं का छंद मानते है। प्रमाण में वे संदेश रासक का यह छंद - उद्धृत करते है।

"तूं जि पहिय पिक्खेविण पिअ उक्कंखिरिय
मथर गय सरला इवि उत्तावली चलिय
तुह मणहर चल्लंतिय चंचल रमण भरि
छुडवि खिसिय रसणावलि किंकिण रवपसिरि- [1]

पर संदेश रासक के इस छंद की तुलना प्रस्तुत रास से छंद से मिलाने पर अन्तर दिखाईपड़ता है।

दोनों की मात्राओं में पर्याप्त अन्तर है। इस रास छंद का शिल्प संदेश रासक के छंद से एक दम भिन्न है। और सम्भवतः इसी भिन्नता के कारण श्री के०का०शास्त्री ने " इस प्रकार का मिश्र बंध पूर्व देखने में नहीं आया" लिख दिया है-

डा० द्विवेदी लिखते हैं कि "विरहांक ने अपने वृत्तजाति-समुच्चय में दो प्रकार के रास काव्यों का उल्लेख किया है। एक में विस्तारित या द्विपदी और विदारी वृत्त होते थे और दूसरी में अडिल्ल, धत्ता, रड्ड और ढोला छंद हुआ करते थे। अतः बहुत सम्भव है कि प्रस्तुत रास छंद इन्हीं दो प्रकारों में से एक हो, क्योंकि द्विपदी इसमें भी मिलती है।

वस्तुतः रास छंद की शिल्प-स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं प्रतीत होती अतः ऐसी स्थिति के आधार पर कवि की ही उक्ति को आधार लिया जासकता है और तब इस छंद को "रास" मानकर चलने में कोई आपत्ति नहीं लगती।

आलोच्य रास के छंदों का परिचय इस प्रकार है:-

सोरठा- भविहागर, किमि काय चक्क न पुरि प्रवेसु करइ
तुं वि अम्हारइ राणि पुरि सरीइ धोरि धरइ

1- हिन्दी साहित्य का आदिकालः श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १००
2-भरतेश्वर बाहुबली रासः श्री गांधी पृ० ६६

चउपइ- <u>चौपाई अड़िल्ल का ही दूसरा रूप है:-</u>

चंद्रचूड विज्जा हर राउ, तिणि वातइमनि बहइ विसाउ

हा कुल मंडल, हा कुलवीर, हा समरंगणि साहस धीर[1]

<u>वस्तु-</u> एक प्रसिद्ध छंद वस्तु का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है।

५ चरणों के इस छंद में नीचे के दो चरणों की मात्रायें तो दोहे की ही भांति २४ होती है। नीचे के दो चरण लगता है कि दोहे की ही भांति है-

राउ जंपइ राउ जंपइ सुणि न सुणि दूत

भरह खंड भूमि हरइ भरह राउ अम्ह सहोदर

पंचि महाधर मंडलिय, अंतेउर परिवार

सामंतह सीमाउ सह कहिंम सुकुशलविचार

अंतिम दो चरण बिल्कुल दोहा ही है। इसके प्रथम चरण में अंत में ( ) और १५ मात्रायें द्वितीय चरण तथा तृतीय चरणों में १५ १३ १५ २८ मात्रायें होती है। मात्राओं की कुल संख्या ११९ है । प्रथम चरण की सात मात्राओं की प्रायः आवृत्ति कर दी जाती है।उस अवस्थामें प्रथम चरण में २२ मात्राओं हो जाती है[2] वस्तु छंद पर विचार करते हुए एक दूसरे विद्वान ने इसका संस्कृत नाम वस्तुक या वस्तु तथा अपभ्रंश नाम वत्थुअ या वत्थु किया है इसका दूसरा नाम रड्डा भी है। छंद शास्त्र में इसके अनेक भेद किए गए हैं। प्राचीन राजस्थानी साहित्य में विशेषतः जैन साहित्य का इसका खूब प्रयोग हुआ है।[3]

इन छंदों के अतिरिक्त गौण रूप निम्नांकित छन्दों का प्रयोग भी हुआ है:

त्रोटक या तूटक- इस छंद के चरण ६ ही होते हैं-

घर भरई सयंवर वीर सारेमि साहस धीर

मंडलीय मिलिया जाम हम होई मंगल नाम

हम होइ मंगल साभि साथिय सयल गिरि गुरु सुभ गुणइ

सम चलीय परबल सबीय न सकइ सेस कुल गिरि कम कमइ

1- वही पृ० ३८ पद ९३ (२) देखिए राजस्थान भारती भाग ४ अंक १, परिशिष्ट २ पृ० ५५। (३) भरतेश्वर बाहुबली रास- श्री मोदी पृ० ३८ पद ९३।

धस धसीय धायई धार धावलि भीर बीर विहंडय

सामंत समहरि सघु न लहई मंडलीक न मंडए [1] (१४५)

प्रस्तुत रास में यह छंद कई बार आया है।

सरस्वती धवलः

इस छंद को धवल भी कहते हैं। इसमें चार चरण होते हैं-

राहीउराउस जाइ पाताली विज्जाहर विज्जा बलिहिं

चक्क पहुचए पठि तिणि तालि बोलए बलवीय सहस जखो

रे रे रहि रवि कुपीउ राउ जित्थु जाइसि तित्थु मारिसु प

तिहुयण कोइन अचइ अपाय अय जोखिम जीणइ जीवहए-

ठवणि-

प्रस्तुत रास में ठवणि प्रयोग कई जगह आया है। जो संस्कृत स्थापनी शब्द का अपभ्रंश है। यह कोई छंद विशेष नहीं है। मात्र नये छंद की स्थापना करने या छंद बदलने के लिए प्रयुक्त हुआ है।

वस्तुतः भरतेश्वर बाहुबली रास में इतने ही छंद प्रयुक्त हुए हैं।संक्षेप में रास का अनुशीलन यही है।आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की रास परम्परा अन्य सब काव्य रूपों या काव्य परंपराओं से भिन्न है। १३वीं, १४वीं और १५वीं शताब्दी के अनेक प्रकाशित अप्रकाशित तथा अप्रसिद्ध रासों का अध्ययन आगे के पृष्ठों में प्रस्तुत किया जायगा। अनेक जैन भण्डारों में अद्यावधि उपलब्ध सैकड़ों जैन रासों में सबसे प्राचीन यही भरतेश्वर बाहुबली रास है। [3]

कच्छुल बाला रास [4]

१३वीं से १५वीं शताब्दी में मिलने वाले कुछ प्रमुख रासों काअध्ययन आगे

१ः भारतीय विद्याःसम्पादक श्री मुनिजिन विजय वर्ष २ अंक १ पृ० १४ पद १४५

२- भरतेश्वर बाहुबली रासः श्री गांधी, पद १५०

३- देखिए हिन्दी अनुशीलन वर्ष ११ अंक २ में लेखक का रास परंपरा और भरतेश्वर बाहुबली रास। एक अध्ययन शीर्षक लेख।

४- देखिएराजस्थान भारती भाग ३ अं० ३-४ पृ० १०४-१११ पर श्री अगरचंद नाहटा का लेख कवि पाल्हणरचित कच्छुलबाला रास

के पृष्ठों में प्रस्तुत किया जायगा। ये उपलब्ध रासों में काव्यात्मकता, कथा रूढ़ि चारित्रिक उत्कृष्टता, शैली छंद और भाषा आदि सभी क्षेत्रों में अत्यन्त महत्व के हैं। विशेष तौर से इनकी "रासजन्य प्रवृत्तियां किसी न किसी रूप में सुरक्षित ही मिलती है। कोई रासअभिनय प्रधान है तो कोई कथा प्रधान। किसी में महापुरुष के चरित्र का विकास व गुण गान है तो कहीं धर्म के उत्कृष्ट व क्लिष्ट तत्वों को गेयता में आबद्ध कर जन साधारण के लिए सुगम बनाया गया है। वस्तुतः भाषा में क्रमगत सरलता और विकास प्रस्तुत करने में इन कृतियों का विशेष हाथ है। जिनका शताब्दी क्रम से विवेचन किया जायगा।

सामाजिक कथा वस्तु को प्रस्तुत करने वाले ऐसे ही रासों में एक १३वीं शताब्दी का एक महत्व पूर्ण रास "चन्दन बाला रास" है। जन भाषा में प्रसिद्ध जैन कवि आसगु ने इस कृति की रचना की है। चन्दनबाला जैन श्राविकाओं में एक आदर्श एवं चरित्रवान महिला भक्त रही है। जिसने अपने ब्रह्मचर्य सतीत्व, संयम और पवित्रता के लिए ही स्वयं का उत्सर्ग कर दिया। कवि आसगु राजस्थानी है। और राजस्थान के ही नगर जालौर में इस रास की रचना हुई है। यह रचना जैसलमेर के बड़े भंडार में सुरक्षित है तथा इसकी प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में। यों रास अब प्रकाशित भी हो गया है।

कवि आसगु का एक "जीवदया रास" है[1] यह कृति भी सं० १२५७ के आसपास की ही है। परन्तु बहुत अधिक महत्व की न होने और अधिकांशतः धर्मोपदेश से सम्बन्धित होने से इसका साहित्यिक महत्व नहीं है। चन्दनबाला रास की एक विशेषता यह है कि इसमें कृति के लेखक, लेखन काल, तथा लेखन स्थल सभी को कवि ने स्पष्ट कर दिया है। कृति की एक ही प्रति उपलब्ध होने

१- भारतीय विद्या: श्री मुनिजिन विजय जी, भाग तृतीय अंक १ पृ० २०१।

से पाठ कहीं कहीं त्रुटित रह गया मिलता है। यह पाठ सं० १४३७[1] की स्वाध्याय पुस्तिका से मिला है।[2]

चन्दनबाला रास एक कथात्मक कृति है जिसमें घटनाओं के कुतूहल बड़े विचित्र हैं। रास की मुख्य संवेदना चारित्रिक पवित्रता, स्त्री समाज में नारी के सम्मान की अपेक्षा, अत्याचार का दमन तथा ज्ञान से मानवों की सर्वांगीण प्रगति आदि का प्रचार करना है।

रास का प्रारम्भ ही कवि मंगलाचरण केसाथ करता है:-

"जिण अभिणव सरसइ पणवे
पुहविहिं भरह-खेत्रि जंबीस
बीर जिणंदह पारणवे
निसुणउ चंदण-बाल चरित्त[3]

चंदनबाला रास चम्पानगरी के राजा दधिवाहन औररानी धारिणी की लड़की थी। चम्पानगरी पर कोशाम्बर के राजा शतानीक ने चढ़ाई कर दी। भयंकर युद्ध के बाद शतानीक का एक सेनापति धारिणी और चन्दन बाला का हरण कर ले गया। धारिणी ने आत्म सम्मान को संकट में देख अपघात कर लिया। सेनापति ने चंदनबाला को एक शाह के हाथ बेच दिया। सेठ की स्त्री ने उसे कारागार की सी असह्य वेदना दी। चंदनबाला अपने सतीत्व संयम, व चरित्र पर अटल रही अन्त में उसने महावीर को अपने हाथों भोजन कराया और अंत में उन्हीं से दीक्षा ग्रहण करके कैवल ज्ञान को प्राप्त हुई।

कृति की इस संक्षिप्त कथा में कवि ने करुण धारा बहाई है। ३५ छंदों की इस छोटी सी रचना में कवि ने प्रबंधात्मकता का सफल निर्वाह किया है। उसका

१- देखिए भूमिका लेख: सं० १४३७ वैशाख सुदी २ सुगुरु श्री जिनराज सूरि सदुपदेशेन व्य० खेता सुतया देव सुविनिया चिंतामणि भूषित मस्तक या भांकू श्राविकया आत्म पुण्यार्थ श्री स्वाध्याय पुस्तिका लेखिता (जैसलमेर बड़े भंडार की प्रति, पत्रांक ३०१ से ३०४)
२- जैसलमेर बड़े भंडार की प्रति पत्रांक ३०१ से ३०४।
३- चंदनबाला रास- राजस्थान भारती वर्ष ३ अंक ३-४ पृ० १०७-१२।

की प्रतिज्ञा कर रखी थी अतः चंदनबाला ने ही उसे पूरा किया।

महावीर को भोजन कराने पर इन्द्र ने १२।।करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा की और इन्हीं मुद्राओं को दान कर चंदनबाला ने कैवल्य प्राप्त किया।

वस्तुतः कवि ने रास में वीर करुण और शांत रस का परिपाक किया है। युद्ध के समय तथा लूटपाट का कवि ने अच्छा चित्रण किया है:-

वज्जिय ढक्क बुक्क नीसाण, केणवि संचिय तुरिय केकाण
वल्लिया मंडलिक मउडधार सेल्लकुंत धण वरिसइ मेहू
फुडु करइ संग्राम भरि अंगों अंगी भिडीया बेउ-

और इस द्वन्द्व युद्ध के बाद विजयी ने नगर को खूब लूटा जिस जिसने जो जो चाहा लूट में लूटा- वर्णन की सजीवता दृष्टव्य है:-

हत्थि कुंभ थलि खिखिअउ भाउ, भयपडियउ दहि वाहण राउ
घोड़इ चढि नाखिउ गयउ, सीहइं विल्सउ घूणइ काई
तुरय थट्ठ गय घड लइय तउ जीतउं स्त्रेयणिय राई (१४)
केणवि लद्धा रयण भंडार केणवि कंचरा तुणा कुठार
केणवि पाकिउ धन्नु धणु सूकउ चोर वरउ ददड़िया
पाडकु केकु किरन्मुख विधीय सहिब धारिणि पिउपड़िया (१५)

वस्तुतः कवि ने इन वर्णनों में घटनाओं की प्रधानता व कुतूहल को मुख्यता प्रदान की है। पूरी कथात्मक कृति में घटनाओं के चार बड़े मोड़ हैं। कृतित्व निर्विवाद है। भाषा सरल और सुबुद्ध वचन में गेयता है।

कथात्मकता जैन रासों में बहुधा सुरक्षित मिलती है।यह रास कथा प्रधान चरित काव्य है। रस छंद और अलंकारों की दृष्टि से कृति का कोई विशेष महत्व नहीं है, परन्तु भाषा की दृष्टि से पर्व छोटी भाव पूर्ण शब्दावली के कारण रास का महत्व बढ़ जाता है। भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि यह गुजराती और राजस्थानी का मिश्रण है। राजस्थानी और प्राचीन गुजराती के शब्दों की भरमार है। ऐसी भाषा को सरलता से पुरानी हिन्दी कहा जा सकता है।

कवि ने रास की मुख्य संवेदना को अर्थ धर्म और काम मोक्ष में से अंत में कैवल्य की प्राप्ति से सार्थक किया है।जो काव्य के प्रयोजन हैः

"संखिपिणि जिण दिन्नउ दाणु वीर जिणंदह केवल नाणु
चंदण पढम पवत्तिणिय परमेसरह निव्वाणह जंति
बत्तीसा सय सिन्नतहि अखलिय सुह सिद्धिपहि मार्णति- ३४

अंत में कवि ने असत पर सत की विजय दिखाकर रचना के मंतव्य एवंरास के उद्देश्य को स्पष्ट किया-

एहु रासु पुण बुद्धिपहि जंति, भाविहि भगतिहिं जिण हरिदिंहि
पढइ पढावइ जे सुणइ तह सवि दुक्खइ खयह जंति
जालउर नउरिं बासगु भणइ जम्मि जम्मिइ सउ सरसति।।३५।।

यह रास खेलने, गाने, पढ़ने, पढ़ाने तथा सुनने के लिए लिखा गया है। रचना की शैली वर्णनात्मक,सरल व स्पृहणीय है। भाषा की सरलता व शब्दावली का प्रवाह दृष्टव्य है। जन भाषा काव्य की दृष्टि से कृति का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। १३वीं शताब्दी की कथा तथा घटना प्रधान कृतियों में भाषा व शैली की दृष्टि से चंदनबाला रास का महत्व अपने ही प्रकार का एवं प्रशंसनीय है।

वस्तुतः ऐसे ही रास में मानवता, चारित्र्य निर्माण, स्त्री सम्मान तथा जीवन की बहुमुखी प्रगति का संदेश छिपा है।

।। स्थूलिभद्र रास[1] ।।

१३वीं शताब्दी में चन्दनबाला रास की ही भांति एक घटना व कथा प्रधान स्थूलिभद्र रास मिलता है।स्थूलिभद्र का जीवन जैन नायकों में नेमिनाथ और जम्बू स्वामी की भांति शृंगार से सम्बन्धित रहा है। स्थूलिभद्र और कोशा वेश्या के प्रति अनेक शृंगारिक तथा उपदेश प्रधान कथाओं की रचना की गई है।

प्रस्तुत रचना की दो प्रतियाँ उपलब्ध है। जिनमें पहली अभिय ग्रन्थालय, बीकानेर में तथा दूसरी सं० १४३७ में लिखी हुई है और जैसलमेर भंडार में सुरक्षित है।

१- हिन्दी अनुशीलन वर्ष ७ अंक १ पृ० ३० पर श्री अगरचंद नाहटा का लेख स्थूलिभद्र रास

पहली प्रति भी १५वीं शताब्दी की ही है।

स्थूलिभद्र रास के नायक स्थूलिभद्र पर काव्य लिखने की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। स्थूलिभद्र का जीवन आचार्य हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व में मिल जाता है।[१] संस्कृत में भी इनके जीवन पर अनेक ग्रन्थ तथा सूर्यचन्द्र रचित गुणमाला महाकाव्य आदि रचे गए हैं। कालान्तर में तो गुजराती, राजस्थानी या पुरानी हिन्दी में स्थूलिभद्र पर सैकड़ों की संख्या में रचे रास फागऔर गीत मिलते हैं।सं० ९८९ में शकटार का जीवन चरित्र हरिषेण के बृहद् कथा कोष के अन्त में "शकटाल मुनिकथानकाप्" नाम से प्रकाशित है।अतः इस रास की कथा वस्तु के लिए बृहद् कथा कोष व परिशिष्ट पर्व आदि ग्रन्थों से पर्याप्त सहायता ली जासकती है।

रास के कर्त्ता ने अपना नाम स्पष्टनहीं किया है पर अन्त में एक शब्द "जिणधाम" आता है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि लेखक का नाम जिनधर्म सूरि था। स्वर्गीय श्री मोहन लाल देसाई ने प्रस्तुत रासकर्ता का नाम धर्म दिया है। साथ ही उन्होंने इसका रचना काल भी सं० १२६६ के आस पास बताया है।

स्थूलिभद्र रास घटना प्रधान है, जिसमें कवि ने अनेक कौतूहलों का समावेश किया है। रास कथा प्रधान है। यद्यपि रास स्थूलिभद्र के जीवन से तथा उसकी साधना पर सीधा सम्बन्ध नहीं डालता परन्तु कवि ने अपने कौशल द्वारा कुछ अवान्तरघटनाओं का सृजन कर स्थूलिभद्र को लौहपट के रूप में संयम का साकार अवतार ही सिद्ध कर दिया है।

कवि ने रास का प्रारम्भ शासन देवी और वागीश्वरी का स्मरण कर किया है तथा प्रारम्भ में ही शकटार और वररुचि पंडित का संघर्ष दिखाया है। संघर्ष कारण केवल यह था कि वररुचि की गाथायें राजाओं को बड़ी प्रिय थी और मंत्री शकटार (महता) को राजा द्वारा वररुचि को दिया आदर ठीक नहीं लगा। उसने अपनी बालिकाओं द्वारा उसकी गाथाओं को याद करवा दिया एक को एक बार दूसरी को दो बार और तीसरी को तीन बार इस क्रम सेशकटार की

की लड़कियों ने वररुचि की नित नवीन कही जाने वाली गाथा को याद करके पुराना सिद्ध कर दिया। पं० वररुचि ने भी शकटार के विरुद्ध राजा को भड़काया कि यह मंत्री राजा को मरवाकर उसके स्थान पर अपने लड़कों को राजा बनाना चाहता है। राजा यह सुनकर क्रुद्ध हो गया। शकटार ने अपने छोटे लड़के को सिखाकर स्वयं की हत्या कराने में ही परिवार का कल्याण समझा। मंत्री शकटार को क्रुद्ध नंद ने मार कर परिवार के सामने (उसके लड़के के सामने जिसने अपने पिता के कहने के अनुसार उनको मरवा कर स्वयं को राज भक्त सिद्ध किया था, मंत्रित्व का प्रश्न रखा। स्थूलिभद्र के पास जब यह प्रश्न पहुंचा तो वे कोशा वैश्या के यहां भोग लिप्त रहा करते थे। भाई की राज्यलिप्सा व पिता की हत्या देखकर उन्होंने "मया आलोचितम्" (मइआलोचिउ) कहकर अपने केश उखाड़ डाले तथा विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण कर ली। कवि ने इस कथा में उत्साह निष्पन्न करने के लिए वररुचि की गाथा वाली घटना का सृजन किया जो कहीं अन्यत्र पूर्व रचित तथा परवर्ती ग्रन्थों में नहीं मिलती। वर्णन व भाषा की सरलता द्रष्टव्य है:-

पणमउं थूलिभद्द इहु रासु पाडलि पुरिहि नयर जसु वासु
नंदह रायह नंदह राजे मंत्री सगडाल भण्डारह काजे
थूलिभद्द पिउ साव सगडालु महंतउ, सिरिउ लघिम काजे रायह मंतुवंतउ

राय सणइ निछ पयिउ आवइ, अविणय माछा रचिउ भणवइ
पंडिउ धातु कियउ निछ राई दीयइ द्रम्म पंच सवाई

--- --- ---

अन्य दिवसि ए ससवरि आवइ, नकवा बेटी राय ठेडावइ
सवि वर वर पिय कामिय बोलिय, दुकलिउ माज न मेल्हइ सोलिइ
इक संवासि ईधिय वास्वा धंगि ईधिय जंपइ, वर रुचि रूडउ राउमण रोसिहिं कंपइ-

वर रुचि पंडित ने शकटार की मृत्यु के लिए द्रव्य तथा अपने शिष्यों की सहायता से अनेक षड़यंत्र किए उसीका वर्णन देखिए-

ही सबसे श्रेष्ठ बताया। इस पर एक मुनि क्रुद्ध हो गए और उन्होंने भी दूसरा चतुर्मास उसी कोशा के यहां आकर किया। पर वे काम लोलुप्त हो गए। कोशा ने उन्हें रत्न कंबल लाने नेपाल भेजा। काम विमोहित मुनि ने यह सब किया पर अंत में कोशा से ही उन्हें हार माननी पड़ी। कोशा का मुनि को उपदेश, मुनि की काम विमोहित अवस्था, रत्न कंबल के लिए अनेक कष्ट पाने पर मुनि की उससे कामतृप्ति की याचना कोशा द्वारा उनकी भर्त्सना, संयम श्री का महत्व और स्थूलिभद्र की जितेन्द्रिय स्थिति का स्पष्टीकरण करना आदि अनेक चित्र कवि ने बड़ी ही मार्मिकता से उरेहे हैं जिनकी भाषा प्रवाहमय भाव प्रवण सरल तथा चित्रात्मक है। श्रावण भाद्रव में कामोत्पत्ति तथा न मन की चंचल स्थिति और मुनि की विचलित अवस्था तथा कोशा के सौन्दर्य के प्रति हुए व्यामोह का सरस वर्णन देखिए-

" वेस ससि वयणि मिग नयणि नव जोवणी, मुविधि परिजिविहि
परि दिट्ठ मुणि लोयणी
भावइ मुणि कहउ फुणि देस तुम्हें दुल्लही, अम्हघरि भनिक परिजइ
मुम्हि मुज्झइ
मज्झु नवपउ गुरु बयण वरइ वइ कारणें, वेस घरि पाउस भरि ह
चित्तु वाणिय
सावणं बलिउ मुणि सील सं मोलिमें, बवल दुम कंद अमिथिउ उम्मूलियें
भाद्रवइ यसु मुहरउ जलहरो मावत्रे, वारित मुक पाटरगुणयण भडुभंजये
इम परिवेस घरि मुमिहि मधु मंकिअं, रयइ नर अमिकि परि पिक्खेवित जिएं
भार धोषिवउ फिरि बोलइ मुणि ण छम्मिउ, अत्थ विणु वेस पुणु निठुर वह
छम्मियउ"

कोशा ने मुनि से पैसे मांगे और कहा कि बिना अर्थ के यहां रहना संभव नहीं है। और काम विमोहित मुनि उन्मत्त हो गए उन्होंने कोशा की भर्त्सना सही, उनकी इसी प्रकार की विभिन्न शारीरिक अवस्था का वर्णन कवि ने उन्हें रत्न

कंबल के रूपक में नेपाल तक भटकाया है। मुनि कंबल लाये तो कोशा ने उसे पैरों से पोछकर फेंक दिया:-

> वेसा पभणे विवु देसणा लेविणु, जाइ राय मग्गिगइ रयणु
>
> सुइ अत्थ विहुणउ हिंगुइ दीणउ, मुझु परि कम्मु करेसिवइ
>
> " ताम मुणि मेघु घणु गणइ नं चल्लिउ, कलिहिनं जल्लहि नं नइहि नं पिल्लिइ
>
> काम पणु मल्ल तणु ममइ पुट्ठि लग्गउ, नेपाल देसि गउ रयण क्वलइ मग्गिउ
>
> वेग करि पंथ भरि चलिउ मुणि आविउ, वेस लइ नमइ जइ कहवि लंवाविउ
>
> आणि मुणि कंबल रयणु तलि मोल्हिउ कहइ, पाउ में लाइ धणि लक्कु क्रम्पह लहइ
>
> लाघु लाघव मुणि दिट्ठु कउडी गमइ।वेस गुणवंत जसु घम्मि चित्तु रमइ"

यहाँ तक ही नहीं वैश्या कोशा अन्त में इसे गुरु बनकर सहायता करती है और स्थलिभद्र का वैशिष्ट्य स्पष्ट करती है। मुनि की रत्न कंबल लाने पर भी जब वेश्या ने इच्छा पूरी नहीं की तो वह निश्वास भरने लगा। वैश्या उसे शील की महिमा बतलाती है। काम विमोहित मुनि के हृदय के अंधकार में कोशा स्थलिभद्र की विजितेन्द्रियता से प्रभावित होकर प्रकाश किरण प्रदान करती है और इस प्रकार मुनि को वह चरित्र रत्न को हृदय में धारण करने की शिक्षा देती है। कवि ने इन्हीं मनोवैज्ञानिक चित्रों को बड़ी सफलता से स्पष्ट किया है। कवि का प्रत्येक मनोभाव इन वर्णनों में उसके काव्य कौशल और काव्यगत सरलता का द्योतक है:-

> निवडणि जड मुणि दीणइ थाति वणा वतेविणु निरिय दुवावे
>
> इड बइ वंधु करीरिहिं भावइ बुलिड,जो गवि कहविन छावइ
>
> वह नैपालउ देस भणीयइ, बहइ कठिन ताहि पुणु जाइजइ
>
> तइ मूरख भवि जाणिड वेड, हरव रयण मुणि कंबल जेहु (४०-४१)

और वैश्या ने उस कंबल को पैर पोछकर कीचड़ में फैंक दिया और कहा कि अपने चरित्र रत्न को तो संभालो वह इससे भी गंदी जगह में जा रहा है।उसने रूपक द्वारा यह स्पष्ट किया कि नेपाल देश कितना दूर था वहाँ जाना कितना कठिन है यदि हे मुनि! तुम रत्न कंबल लेने नेपाल चले गए तो क्या अपने चरित्र

रत्न और संयम रत्न की प्राप्ति उस अपूर्व आनंद निर्वाण की प्राप्ति हेतु नहीं कर सके? उक्त पंक्तियों में इसी प्रकार की ध्वनि है।

"दिट्ठ रयण जं कद्दम भरियउ, हियडउ मुन्नह सहु बीसरियउ
तउ मुणिवरु मेल्हहि नीसासा, मम्भु तणी नवि पूरी आसा
जं जिण भम्मह किज्जइ मुठु, तं तरुणत्तणि पालिउ सीलु
इसउ वयण मुहियडउ धरइ, मयण मोह चित्तह उत्तरइ
चिंतइ मुणि वरु हियइ तिरंग, संजमतरु मइ रुपइ भग्ग
धनु धनु थूलिभद्र सो सामिउ, पाउ पणासिइ लइ यइ नामिउ (४०-४४)

और मुनि अन्तर्द्वन्द्व, आत्म गुलानि और पश्चाताप से भर जाता है उसकी ज्ञान दृष्टि कोशा के गुरु वचनों से खुल जाती है और वह वैश्या कोशा के कहने से चरित्ररत्न को हृदय में धारण करता है तथा गुरु के पास जाकर पुनः दीक्षित होता है और वही मुनि स्थूलिभद्र की कृपा से देव लोक प्राप्त करता है-

तसु ऊपरि मई मच्छक कीयउ, तिणि कारणि मई फलु पामीयउ
तुहु तुहु गुरु कोसा मझु माया हउं पइबोहिउ आणिउ ठाये
मई जणिउं तउ कियउ अकम्मु आलि वहिउ गउ माणुस जम्मु
वेसा कोसा बोल्लइ बेहु, अज्जिउ मुणिवर मन करि वेउ
चारित रयणु हियडइ धरेहि गुरु हु पासि आलोयण लेहि
बहुत काल संजम पालवि कवडु पूरम हियइ धरेवि
थूलिभद्दवंदिय चम्म कहेवि देवलोकि पहुतउ आवेवि- (४५-४७)

वस्तुतः इसी प्रकार कवि ने स्थूलिभद्र के संयमित जीवन की दिव्य सुषमा पर प्रकाश डाला है। रास में कहीं भी उसके शिल्प पर मर जाने या क्रीड़ा करने के रूप पर प्रकाश नहीं डाला है। सिर्फ स्थूलिभद्र के उत्कृष्ट चरित्र पर मुनि की कथा के द्वारा प्रकारान्तर से प्रकाश डालना ही कवि का मन्तव्य है। कोशा की आभी भावक के रूप में सामने आती है। ४७ छंदों की इस छोटी सी रचना में कवि ने बहुत सार भरा है। भाषा में अपभ्रंश के शब्दों के प्रयोग के साथ साथ अधिकांश शब्द राजस्थानी के हैं।

कवि के वाक्य सरल व सबुद्ध वचन प्रभाव प्रवण हैं। कवि ने क्रोध काम, मद चरित्र अंतर्द्वन्द्व आत्मगलानि तथा पश्चाताप के चित्रों पर सम्यक् प्रकाश डाला है। एक दो छंदों को छोड़कर पूरा रास चौपाई छंद में लिखा गया है।

जहां तक कथा रूढ़ि और मौलिकता का प्रश्न है प्रस्तुत रास बड़ा महत्व पूर्ण है। १५वीं शताब्दी में मिलने वाले स्थूलिभद्र रास या स्थूलिभद्र फागु[1] की भांति कवि ने कहीं भी स्थूलिभद्र व कोशा का श्रृंगारिक वर्णन नहीं किया है। अतः काव्य में श्रृंगार आंशिक रूप से ही आपाया है। अंत में कृति निर्वेदांत हो गई है कवि ने वररुचि की कथा, मुनि की ईर्ष्या, नेपाल जाकर काम विमोहित स्थिति में रत्न कंबला लाना आदि घटनाएं अवान्तर रखी हैं, जिसमें वह पूर्ण सफल हुआ है।

छोटी छोटी सूक्तियां- यथा-धामिणि विरहु क्रिमइ जइ भाजइ, वल्लिख धणुकल रयण सवेविणु, अखिउ हलाहलु रयखिउ नाम्मिउ, सयल हुम कंद क्रमि विह उम्मलिय, सावर्ण सलिल मुणि सील संबोलियं वण मरवेविणु मिरिय कुरवाले, अकरनइउ संजम भाऊबुध्यालउ, इह गइ संमु करीरिहिं भाजइ, तथा चारित्त रयणु लियहइ घरेहि गुरुकुपासि आलोयण लेहि आदि अनेक सूक्तियां हैं। रास की मुख्य संवेदना उपदेशात्मकता है तथा धर्म प्रचार है। शैली वर्णनात्मक है। काव्यात्मकता में सरस स्थल थोड़े हैं परन्तु घटना वैचित्र्य और कथात्मकता ने कृति की सफलता में पर्याप्त सहायता की है।

रेवंतगिरि रास [2]

१३वीं शताब्दी का प्रसिद्ध ऐतिहासिक रास है। रासके रचयिता श्री श्री विजय सेन सूरि हैं।रचना का विषय धार्मिक है तथा कवि ने रेवतगिरि जैन तीर्थ का महत्वपूर्ण विवेचन किया है। तीर्थ के प्रति अपार श्रद्धा रखने वाले श्रावकों

१: स्थूलिभद्र पर विस्तार के लिए देखिए अजन्ता, मई, १९५८ में लेखक का :आदि काल का एक श्रृंगारिक खण्ड काव्य" श्री स्थूलि भद्र फागु शीर्षक लेख।

२- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह: श्री सी०डी० दलाल पृ० १-७

की यह रास उल्लास पर्व गेय तथा नृत्यमूलक अभिव्यक्ति है, जिसे कवि ने काव्यात्मक सुषमा से संवारा है। प्राचीन काल से ही इस ऐतिहासिक स्थल का महत्व रहा है। रचना का रचनाकाल तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सं १२८८ है। प्रस्तुत काव्य का नवीनतम संपादन व प्रकाशन डा०हरिवल्लभ भायाणी ने किया है।

रेवंतगिरि रासा नाम का एक ग्रन्थ और भी बना हुआ है। इसकी प्रति पाटण के संघवी पाड़ा के भंडार में है। जिसकी भाषा को श्री नाथूराम प्रेमी प्राचीन हिन्दी बतलाते हैं।[1] इसकी रचना वस्तुपाल मंत्री के गुरु विजय सेन सूरि ने सं० १२८८ के लगभग की थी इसमें गिरनार का और वहां के जैन मंदिरों के जीर्णोद्धार का वर्णन है। रेवंत गिरि का परिचयात्मक उल्लेख गुजराती के विद्वानों ने भी अपने ग्रन्थों में किया है।[2]

उसकी कथा वस्तु शिल्प, नायक तथा अन्य वर्णनों का अध्ययन करते समय रास का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्व पूर्ण ज्ञात होता है। रेवंतगिरि रास प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है यहां तक कि इसकी प्राचीनता का उल्लेख महापुराण में भी मिलता है। इसमें जिस चरित्र नायक के मंदिर प्रतिमा, व अन्य वस्तु सौन्दर्य का वर्णन किया गया है वे जैनियों के २२वीं तीर्थंकर श्री नेमिनाथ है।नेमिनाथ का कुछ ख्यात है जिन पर अपभ्रंश में मिलने वाली कृति हरिभद्रकृत"नेमिनाथ चरित्र" है।[3]

प्रस्तुत रास में यात्रा वर्णन, संघवर्णन तथा मूर्ति स्थापना वर्णन है रास की कथा वस्तु धार्मिक है। रास गेय है तथा इसमें तीर्थ एवं यात्रा के महात्म्य का सुन्दर काव्यात्मक वर्णन है। इस काल में जैन रासों की विषय वस्तु में पर्याप्त

---

१. हि०जै०सा०का इतिहास: श्री नाथूराम प्रेमी पृ० २८वि०सं०१९७३ का संस्करण
२. देखिए आपणा कवियो: श्री के०का० शास्त्री व जैन गुर्जर कवियों: श्री मोहनलाल देसाई
३. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग: श्री नामवर सिंह पृ० २१८

परिवर्तन परिलक्षित हो गया था।मंदिर शिल्प कला तथा उसकी प्रतिष्ठा करने वाले धनपति श्रावक का यश गान वर्णन करना भी "रास" प्रारम्भ हो गया था। रेवंतगिरि रास की ही भांति १३वीं शताब्दी में हमें कवि राम द्वारा सं० १२८९ में लिखा हुआ एक आबु रास[1] मिलता है जिसमें आबू के प्रसिद्ध तीर्थ व संघयात्रा आदि के वर्णन हैं। रेवंतगिरि रास में भी सोरठ देश के प्राचीन मंदिरों तथा प्रसिद्ध पोरवाड कुल या प्रागवाट कुल का वर्णन है[2] वस्तुपाल और तेजपाल इसी कुल के दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष हैं जिनपर १५वीं शताब्दी तक रचनाएं उपलब्ध होती हैं। अतःरास की ऐतिहासिकता के अनेक अंतरंग तथा बहिरंग प्रमाण मिलते हैं। राजा खंगार,जयसिंह देव एवं गुजरात प्रसिद्ध राजा कुमारपाल का भी प्रस्तुत रास में उल्लेख है। जो इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व हैं[3]। यक्ष और यक्षिणियों के अनेक चित्र जैनियों के प्राचीन तीर्थंकरों की मूर्तियों के साथ आज भी बने मिलते हैं। यह वर्णन रेवंतगिरि रास में भी मिलता है।[4] इसके अतिरिक्त अनेक बहिरंग प्रमाण रास की ऐतिहासिकता सिद्ध करते हैं: कुछ टिप्पणियां इस प्रकार हैं:-

(१) तेजपाल गिरिनार तले तेजलपुर निम्मावि[5]

तेजपाल ने वहां अपनी मां के नाम पर आसाराय विहार जिनदेवालय उग्रसेनगढ़ में बनवाया।

(२) सुवर्ण रेखा नदी के किनारे पंचम हरिदामोदर का वैष्णव मंदिर भी उस समय था यह उल्लेख कवि ने प्रस्तुत रास में किया है।इसके अतिरिक्त कुमारपाल भी माली कुल संभव ने अंब को सौराष्ट्र का दण्ड नायक बनाकर सं० १२२० में गिरनार के सोपान बनवाये थे:-

"कुमारपाल भूपाल जिन शासन मंडलु

--- --- ---

१- देखिए राजस्थानी वर्ष ३ अंक १ में श्री अगरचंद्र नाहटा का लेख "आबूरास"
२- देखिए, प्राग्वाट इतिहास (भूमिका भाग): लेखक श्री अगरचंद नाहटा।
३- रेवंतगिरि रास, डा० हरिवल्लभ भायाणी पृ० २ पद १
४- वही पृ० ८ पद ८

(५) प्राचीन कविओ: श्री के०का० शास्त्री प० ११८

अंबओ सिरे सिरिमाल कुल संभवो, पाल सुविसाल तिणि नठिय

अंतरे धवल पुत्र परन्व पराविय [१]

जयसिंह देव ने सौराष्ट्र को संगार का वधकर अधिकार करने के बाद सज्जण मंत्री को वहां का दन्डनायक नियुक्त कर सं० ११८५ में गिरनार ऊपर नेमिनाथ का मन्दिर बनाया-

"सिरि जयसिंहदेउ पवरु पुहवीसरु, हणवि सोरठु तिणि राउ संगारउ

अहिणवु नेमिजिणिंद, तिणि भ॰पु कराविउ .

इनके अतिरिक्त मालव के भावड शाह का स्वर्णिम नगाड़ सारा बनाने का उल्लेख कश्मीर के अजित एवं रैतन नामक भाइयों का वहां संघ लेकर आना तथा वस्तुपाल तेजपाल का रिषभदेव मंदिर आदि बनवाना- रास के ऐतिहासिक महत्व को स्पष्ट करते हैं। [२]

प्रस्तुत रचना ४ कड़वकों में विभक्त है।कड़वक कोई काव्य रूप या स्वतंत्र छंद नहीं होकर सर्ग विभाजन के सूचना शब्द है। अपभ्रंश के संधि काव्यों में अनेक कड़वक मिलते हैं। साहित्य दर्पणकार ने अपभ्रंश काव्यों में कड़वक सर्गों को कहा है [३]। परन्तु पउम चरिउ, हरिवंश पुराण आदि ग्रन्थों में तो सर्ग संधि कहलाते हैं। प्रायः इन काव्यों में अनेक सन्धियों होती थी। और एक एक संधि में अनेक कड़वक होते थे। दूसरे शब्दों में कई कड़वक मिलकर एक संधि को बनाते थे। अतः संधि को कड़वकों का एक समूह कहा जा सकता है। [४] हेमचन्द्र ने कड़वकों का जो विवेचन किया है। [५] उसके अनुसार दो कड़वकों के मध्य में वर्णित घत्ता छंद कड़वक की समाप्ति का सूचक है। प्रस्तुत रास के कड़वकों को वर्णन के एक भाग के अन्त और दूसरे नये सर्ग के आरम्भ का संकेत समझा जा सकता है। अर्थात् प्रत्येक

१- प्रा०गु० का संग्रह: श्री दलाल पृ० ९

२- आपण कवियों: श्री के०का० शास्त्री पृ० ११८।

३- अपभ्रंश निबंध अस्मिन् सर्गा कुडवकाभिधा: ४- कड़वक: समुदायात्मक: सन्धि।

५- संध्यादौ कड़वकान्तये च ध्रुवं स्यादिति ध्रुवा ध्रुवकं घत्ता वा -हेमचन्द्र।

कड़वक के अन्त में कथा समाप्त होती है और प्रत्येक कड़वक के बाद कथा प्रारम्भ।

रेवंतगिरि रास चार कड़वकों में विभक्त है।[१] इन कड़वकों में कोई विशेष कथा सूत्र नहीं है। चारों कड़वकों में गिरनार, नेमिनाथ संघपति अंबिका यक्ष तथा मंदिरों का वर्णन है। वस्तुपाल तेजपाल संघ महोत्सव करते हैं और नेमिनाथ की प्रतिष्ठा का महामहोत्सव होता है। एक विशेषबात यह है कि इस काव्य में प्रत्येक कड़वक में स्वतंत्र वर्णन है जिसका पारस्परिक कोई सम्बन्ध नहीं है । इन चारों कड़वकों में जयसिंह, कुमारपाल दण्डनायक, मालव के भावड शाह के वर्णन हैं तथा कश्मीर के अजित और रत्न नामक भाइयों का संघ यात्रा वर्णन तथा दानवीरता, संघ तीर्थों के शिल्प, मूर्ति का पराक्रम तथा चमत्कार पूर्ण घटनाओं का वर्णन है। श्रावक भक्तों को धर्मशील बनने का आग्रह और धर्म प्रचार ही रास का उद्देश्य है।

प्रस्तुत रास की एक प्रति पाटण भंडार में है जो ताड़ पत्र पर लिखी हुई है। डा० हरि वल्लभ भायाणी ने अपना पाठ सम्पादित श्री सी०डी० दलाल के प्राचीन गुजराती का संग्रह से ही किया है।[२]

रेवंतगिरि रास गीति प्रधान रास है। गेय तत्वनृत्य में सहायक होता है विशेषतया महोत्सव में श्रद्धालु भक्तों के ये रास एक भूत पूर्व उल्लास की सृष्टि करते थे। धर्म ने हमारे समाज के मनुष्यों में एक अलौकिक विश्वास की सृष्टि की है। इस लोक और परलोक का ज्ञान, अहिंसा और आध्यात्मिकता का अनुपान आस्तिकों की बुद्धि के ही परिणाम हैं। अतःसमाज की इसी विशिष्ट मनोवृत्ति ने ही समय समय पर अनेक साहित्यिक विधाओं और लोककलाओं का निर्माण किया है।

रेवंतगिरि रास के वर्णनों में प्रगाढ़ सम्पन्नता है। कवि की पदावली शांत और प्रसाद गुण सम्पन्न है। कृति में सर्वत्र भक्ति रस व्याप्त है। कुछ स्निग्ध झांकियों में शांत रस का प्रवाह फूटा पड़ता है। भाषा समास बहुल है।

१- रेवंत गिरिरास डा० ह०व० भायाणी संपादित पृ० १-४

२- रेवंतगिरि रासः डा० ह०वी० भायाणी सम्पादित पृ० १-४

प्रारम्भ में ही कवि मंगलाचरण करके आगे बढ़ता है। मंगलाचरण की परंपरा भारतीय प्रबन्ध काव्यों की प्राचीन परंपरा है। कवि ने गिरनार के सौन्दर्य के कई मधुर चित्र खींचे हैं। अनुभूमि की सरसता उन्हें और भी मार्मिक बना देती है। कवि गिरनार का संसार यात्रा के साथ रूपक बांधता है:-

जिम जिम चडइ तडि कडणि गिरनार, तिमि तिम ऊडइं जणभवण संसार

जिम जिम सेउ जलु अंगि पालाटयं तिम तिम कलिमलु सयलु ओहट्टय [१]

वहां की शीतल वायु तीनों ताप हरण करने वाली है:-

जिम जिम वायइ वाउं तहि निज्झर सीयलु

तिम तिम भव दाहो तक्खणि तुट्टइ निच्चलु [२]

पक्षियों के मधुर वर्णन, काकली की मिठास, मयूर का कलरव, भ्रमरों का गुंजार और निर्झरों का नाद सारे प्रान्त को मंकृत कर देता है। वर्णन की ध्वन्यात्मक और काव्यात्मकता द्रष्टव्य है:-

"कोयल कलयलो मोर केकारओं सुम्मए महुयर (ह) महुर गुंजारवो

--- ---- ---

जलद जाल बंबाले नीभरणि रमाउलु रेहइ, उज्जिल सिहइ अति कज्जल सामलु

वहल बहु धातु रस भइणी, जत्थ मल हलइ सोवन्न मइ मे उणी

जत्थ देवंति दिव्वोस ही झुंवरा महिरवर मज्झ गंभीर गिरि कंधरा

जाइ कुन्दु विहसन्तो वे कुसुमिहि संकुल दीसइ दस दिसि दिवसो किरि तारा मंडलु [३]

(मेघों के जल समूह से प्रवाहित रमणीय निर्झर अतिकज्जल गिरि श्यामल शिखर की शोभा अनेक धातुओं एवं रसों से युक्त स्वर्णमयी मेदिनी अर्थात् औषधियों से परिपूर्ण वसुंधरा, और विकसित कुन्द कुसुमों का दल मानों दिवाओं का नक्षत्र मंडल है

१- वही ग्रन्थ। द्वितीय कडवक ।

२- वही पृ० ३, कडवक २ पद ४।

३- रेवंतगिरि रास: डा० हरिवल्लभ भायाणी।पृ० ३।

आदि उपमान उत्तम कोटि के तथा कवि की उत्प्रेक्षाएं भी अति नूतन हैं।

समास बहुला, अनुप्रासात्मक शैली और सरस पदावली से कवि ने नीरस पत्थरों में से भी रस के स्त्रोत उमड़ाए हैं। निम्नांकित पंक्तियों के प्रकृति वर्णन से जयदेव के गीतों के मधुर चयन व कोमल कांत पदावली का स्मरण हो आता है:

"मिलिय नवल वलि दल कुसुम भल हालिया, ललिय सुर महि लवय बलण तलतालिया
गलिय थल कमल मयरंद जल कोमला, विडल सिलवट्टसोहंति तहि संभाला [1]

प्रकृति वर्णन में कवि ने नाम परिगणनात्मक रूप को प्रस्तुत किया है। अनेक वनस्पतियों का परिगणन उसकी विशाल शोध दृष्टि एवं बहुज्ञता का परिचायक है मधुर अनुप्रासात्मक और नादात्मक है। एक ही अक्षर से प्रारम्भ होने वाले अनेक वृक्षों के नामों को व कवि की बहुज्ञता देखिए:-

"अंगुण अंजण आंबिलीय अंबाउय अंकुल्लु, गंवड अंकड आमलीय अगरु असोयमहल्लु
करवर करपट कण्णतर करवंदी करवीर कुडा कडाह कयंब कड करब कदलि कंपीर
बेवुल बंजुल वउल वडो वेउस वरण विडंग, वासंती वीरिणि विरह, वांसियाली वण बंग
सीसम सिंबलि सिर (स) समि सिंधुवारि सिरखंड, सरल सार साहार सय सागु सिगु
सिण दंड
पल्लव फुल्ल फफुल्ल सिव, रेहइ ताहि वणराइ, तहि उज्जिल तहि धम्मि यह
उल्लहु मेमिन माय [2]

अनुप्रास, यमक, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अनेक अलंकारों का स्वाभाविक निरूपण हुआ है। कृति में विशेष कर अनुप्रास रूपक व उत्प्रेक्षाओं की तो घटा ही उमड़ी पड़ती है:-

अनुप्रास: (१) निम्मल सामल सिहर भरे
(२) बहु सिरि सासिय सामलउ सोहग सुन्दर सार
(३) अंगुण अंजण अंबीलीय, अंबाउय अंकुल्लु

१- वही, पद ५ पृ० ३

२- वही पृ० ३, पद १४-१७

उपमा रूपक-(४) जिमि जिमि चडइ तडि कडिणि गिरनारह
व उत्प्रेक्षा तिमि उडई जण भवण संसारह

(५) जाइ कुंद विहसन्तो जं कुसुमिहि संकुलु
दीसइ दस दिसि दिवसो किरि तारा मंडलु

(६) जत्थ सिरि नेमि जिणु अच्छरा अच्छरा
असुर सुर उरग किंनरय-विज्जाहरा
मउड मणि किरण पिंजरिय गिरि सेहरा [1]

उल्लेख, वर्णन,
क्रम तथा (७) अइरावण गयराय पाय मुद्दुदा सम टाकउ
स्वाभावोक्ति-
दिट्ठ गयंदम कुंड विमल निर्झर सम लंकिउ

(८) गयण गंग जं सयल तित्थ अवयारु भणिजुजइ
पक्खालिवि तहि अंग सुकय जल अंजलि दिज्जइ

(९) गहगण प माहि (?) जिम भाणु पव्वय माहि जिम मेरु गिरि
त्रिहु भुवणे तेम पहाणु तित्थ माहि रेवंतगिरि

(१०) नयण सलूणउं नेमि जिणु

"नयण सलूणउ" प्रयोग कितना उत्कृष्ट है।

और अन्त में कवि ने प्रकृति के उपादानों द्वारा नेमिनाथ का अभिषेक कराया है। नेमिनाथ के रूप वर्णन करने में कवि के काव्य कौशल का परिचय मिलता है। वर्णन अतिरंजना के एक दम रहित है जैसा स्वाभाविक भाव निष्पन्न हुआ उसको ज्यों का त्यों रख दिया है।

नीझर (णं) च चमर ढलंति मेघाडंबर सिरि धरीय
तित्थह स सउ रेवंगि सिहासणि अइय नेमि जिण [2]

गुजराती विद्वानों ने प्रति पाटण भंडार में उपलब्ध होने से इसे प्राचीन गुजराती के विकास की कड़ी बताया है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि प्राचीन गुजराती का उत्कर्ष ही प्राचीन राजस्थानी का उत्कर्ष है। अतः इस बात का कोई स्वतंत्र महत्व

१- रेवंतगिरि-रासः श्री भायाणी पृ० ३ द्वितीय कड़वक।
२- वही, पृ० ३, पद १८-२० ३- वही, पृ० ६ पद-२०

नहीं प्रतीत होता। वस्तुतः कृति दोनों ही विधाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

छंद के क्षेत्र में भी रेवंतगिरि रास का मौलिक योग है। चारों कड़वकों में क्रमशः २०, १०, ११, और २० पद हैं। प्रथम कड़वक के बीसों छंद दोहे छंद में वर्णित हैं। दोहा अपभ्रंश और हिन्दी का लाड़ला छंद है।कवि ने उसे बड़ी ही संभार से निभाया है।[१]

द्वितीय कड़वक में एक प्रकार का मिश्र छंद है, जिनमें पहली दो पंक्तियों का छंद लक्षणों के आधार पर ठीक नहीं बैठता और शेष चार पंक्तियों में "झूलणा" छंद है जो २० मात्राओं का होताहै।[२]

तृतीय कड़वक का छंद रोला[३] है। यह छंद १८ कड़ियों का है। डा० भायाणी ने उसे ३२ पंक्तियों में विभक्त किया है। रोला छंद भी अपभ्रंश परम्परा का प्रमुख छंद है। चतुर्थ कड़वक की सबसे महत्वपूर्ण बात कि यह पूरा कड़वक ही सोरठा छंद में लिखा गया है। इस छंद में वर्णित "ए" वर्ण गीत को गीतात्मक बनाता है और इसे हटा लेने पर सोरठा की मात्राएं बराबर ठीक बैठती है। कवि का वर्णन चातुर्य इसी छंद में है।[४]

प्रस्तुत रास की रचना का उद्देश्य सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों को प्रकाश में जीवन में निर्वेद का महत्व तीर्थों और चरित्र नायकों के आदर्शों की सहायता से स्पष्ट करना है।जीवन निर्माण में यह रास एक आध्यात्मिक संदेश देता है। इस कृति से तत्कालीन जैन रासाओं की साहित्यिक प्रवृत्ति और धार्मिक प्रवृत्ति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत रास की भाषा में सरलता, प्रांजलता और जयदेव की वाणी की भांति प्रवाह और मधुरता है। शब्दों की विकासात्मक प्रवृत्ति तथा भाषा में

१- "परमेसर तित्थेसरह पय पंकय पणमेवि,भणिसु रास रेवंतगिरि अंबिक दिवि सुमरेवि- पद १ कड़वक प्रथम

२- रेवंतगिरि रासु: डा० भायाणी - पद ५ कड़वक २।

३- पमुदुप विमल जिन पेखि गुरकुमानव कुछ मंडणु, जरोसिंघ बलमाणु मडमाण विहंडणु

४- वही पृ० ५ पद २ चतुर्थ कड़वक।

तद्भव व तत्सम शब्दों की उत्क्रान्ति स्पष्ट है। प्रयुक्त राजस्थानी और गुजराती के शब्दों में भी नवीनता का प्रयोग है। साडु, परव, सूवि, सामिणि, उजिल, अंबर, पाज, गिरनार, भाव, धरिउ, पालाट, अठाई, सीह सीहु अगुण आदि। कुछ शब्दों का विशेष विश्लेषण देखिए-

काव्य की दृष्टि से इस कृति का अपर्व महत्व है। वास्तव में संस्कृत साहित्य की दृष्टि से भी हम इस काव्य में उच्च कविता देख सकते हैं।इसमें कुछ शब्द चमत्कृति और कुछ अर्थ चमत्कृतिशाली कविता है। यह विद्वान लेखक श्री शास्त्री का विचार है।[1] इस प्रकार धार्मिक स्थल, धार्मिक विषय तथा आध्यात्मिक संदेश पूर्ण रचना होते हुए भी इसमें साहित्यिकता और निखरी काव्यात्मकता का उन्मेष है।

: नेमिनाथ रासः [2]

१३वीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण रास नेमिनाथ रास है। इसके रचयिता श्री सुमतिगणि हैं। यह रास १३वीं शताब्दी की उत्तरार्द्ध का है इसका रचना काल सं० १२७० है। विजय सेन सूरि के रेवतंगिरि रास के पहले ही इस रास की रचना हुई होगी। क्योंकि रास कर्ता सुमतिगणि की अन्य रचनाओं की तुलना में यही कृति पहले रची हुई ऐसा प्रतीत होता है कवि सुमतिगणि का निवास स्थान राजस्थान ही था। वे एक प्रतिभाशाली कवि और यशस्वी टीका कार थे।

प्रस्तुत रास जैसलमेर की सं० १४३७ की स्वाध्याय पुस्तक में उपलब्ध हुआ। एक और प्रति जैसलमेर के दुर्ग स्थित बड़े भंडार में है। इन दोनों के आधार पर ही प्रति का पाठ सम्पादन हुआ। सुमतिगणि जैसे कवि की और भी अनेक रचनाएं होगी, जो प्रचार की कमी से लुप्त हो गई प्रतीत होती है।

१- आपणा कविओः श्री केशव राम काशीराम शास्त्री पृ० १७१

२- हिन्दी अनुशीलन,वर्ष ७ अंक १ पृ० ४४-५० "सुमतिगणि कृत नेमिनाथ रास लेख।

नेमिनाथ पर रचे काव्यों की परम्परा अपभ्रंश से ही मिलती है।अपभ्रंशेतर रचनाओं में तो नेमिनाथ जैसे प्रसिद्ध व्यक्तित्व पर सैकड़ों की संख्या में ग्रन्थ रचे गए हैं। कवि ने नेमिनाथरास में नेमिनाथ के चरित पर प्रकाश डाला है। रचना छोटी है,कुल मिलाकर ५८ छंद हैं पर कवि की काव्य प्रतिभा की परीक्षा इसी से हो जाती है।

नेमिनाथ के क्यावृत्त पर आगे विस्तार में प्रकाश डाला जायगा।यहां कृति का मूल्यांकन ही प्रस्तुत किया जाता है। नेमिकुमार जैनियों के २२वें तीर्थंकर थे। उनका राजकुमार होना तथा शक्तिशाली, वीर, पराक्रमी होकर भी संसार से वीतरागी हो जाना, तथा विवाह के अवसर पर अभिन्नयौवना राजमती को छोड़कर चल देना बड़ी आश्चर्यमय घटना है। राजमती भी उन्हीं के चरणों में आकर दीक्षा ग्रहण कर लेती है और अंत में दोनोंमहानिर्वाण प्राप्त करते हैं।बारातियों के लिए जीवित पशुओं का वध किया जाकर भोज्य बनाना आदि बातों ने उनमें वैराग्य उत्पन्न कर दिया। नेमिनाथ श्रीकृष्ण बलराम के भाई थे तथा यादव कुल में सबसे सर्वशक्तिमान थे।

रास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रचना जन भाषा में लिखी हुई है जो वर्णनात्मक और गेय तत्व प्रधान है जो सम्भवतः गाने और खेलने के लिए ही रचा गया है।

प्रारम्भ में मंगलाचरण कर कवि ने नेमिकुमार (अरिष्टनेमि) के जन्म का व उसके पिता समुद्रविजय व सौरीपुर की महारानी शिवादेवी का वर्णन किया है।

बाल्यकाल में ही नेमिकुमार असाधारण पराक्रमी थे। खेलते खेलते ही एक दिन उनका कृष्ण की आयुधशाला में जाकर उनके धनुषों की टंकार की तथा लीला मात्र में ही कृष्ण का शंख बजा दिया। कृष्ण अत्यन्त भयभीत हुए। जिनेश्वर नेमिनाथ का बाल्यरूप और आयुधशाला का पराक्रम वर्णन दृष्टव्य है:

" सो सोहागु निहालु जिणेसरु स्वरेह जिय मयण सुणीसरु

सुर गिरि कंदरि संचर लेम्ब, वड्ढ़इ नेमि कुईकुहि देव ।। ९   ।।

वहि वसंति जायव कुल कोडिहिं हंसहि रमहिं कीलहि वहि

सग्गपुरी इन्द्रुव सब काल, गयउ न जाणइ किन्तिउ काल

नेमि कुमरु अन दियहिं रमंतउ गउहरि आउह साल भमंतउ

संख लेवि लीलइ वायई, संख सद्दिद तिहुयण खोभेइ ।।२४ ।।

दुंदुभि पयणइ कणुहोँ, किन आयउ संख

भण्डिउ अहेण नरिंदा जिण बहुल अपंख

तो भयभीउ भणइ हरि रामह भाउ नहिय बाधु इह ठावह

लेसइ नेमिकुमरु तह रज्ज काहा हियइ धसक्कइ अज्जु [१]

विविध रूपों में कवि ने नेमिनाथ की राज्य के प्रति निर्लिप्त का वर्णन किया है। विषय सुखों के प्रति वे सदा उदासीन रहे।

राम भणइ मन करइ विसाउ, रज्जु न लेसइ तुह कुवि भाउ

इहु संसारु विरत्तु जिणेसरु मुक्ख सुक्ख कंरिवउ परमेसरु

रज्जु सुक्ख करि मुहु अंवछइ धीर नरइ सो निवडइ निच्छइ

पुर्वेवि भागइ हरि रामह अग्गइ, बंधल गय इह पुहवि समग्गइ

अतुल परिक्कमु नेमिकुमारु लेसिइरज्जु न किमइ सहारु

राम जणद्दणु पडिबोहेइ, कुवर कारण रज्जु कु लेइ

सुइपयु बुद्धिपवंडु कुवि कोइ आणिउ कुलहि किम्ब विसु भक्खेइ (२७-३४)

विविध दृष्टान्तों से कवि ने भाषा को सरल व भावपूर्ण बना दिया है। आगे रचनाकारने नेमिनाथ के विवाह पर प्रकाश डाला है। उग्रसेन की लड़की राजुल को रोती छोड़ नेमिनाथ वीतरागी बनगए। विरहिणी राजुल विरविरहिणी बन गई। बाड़े में बंधे पशुओं का करुण क्रंदन नेमिनाथ से नहीं सहा गया जो बरातियों के भोज्य के लिए वर्ध किए जाने वाले थे। और इस प्रकार दुवार तोरण पर आये नेमिनाथ ने सुन्दरी राजुल के सारे स्वप्नों को प्रभाहीन कर दिया- रूपवती राजुल के सौन्दर्य वर्णन में कवि का कौशल दर्शनीय है। अलंकरण की छटा ने रचना का सौन्दर्य और बढ़ा दिया है।-

---

१- हिन्दी अनुशीलन वर्ष ७ अंक १ पृ० ४८

इह पडुवउ जिह तित्थु पवित्तउ, नाग वरम दंसिमिहि पवित्तउ

रायमई पहु पाय नमेविणु नेमि पासि पवज्ज लेइ विणु

चरम महासई सील समिद्धिय नेमि कुमारह पहिलउं सिद्धिय

नेमि जिणु वि भवियणु पडिबोहिवि सुकं झाण मदि मंडलु सोहिवि

आसाढट्ठमि सुद्धिय मुणीसरु संपत्तउ सिद्धिपइं परमेसरु

अंत में कवि ने फलश्रुति के रूप में संघ और गुणवंतो के कल्याण की कामना जिणवर और अंबिका या शासन देवी से विघ्न मुक्त करने की है।-

सिरिजिणवइ गुरु सीसइ इहु मण हरमासु

नेमिकुमारह रइउ गणि सुमइण रासु

सासण देवी अंबाई इहु रासु विघंसउ

विघु हरउ सिद्धू संघह गुणवंतह - (५०-५८)

पुष्पिका[1] के रूप में कवि का नामक भी मिल जाता है। रचना की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित है तथा जन साधारण की भाषा ही है। अपभ्रंश के शब्दों की बहुलताहोते हुए भी उसमें जनभाषा का प्रवाह है। शब्दों में सरलता और प्रभाव प्रवणता है। रचना रास (चुपइ) छंद में है। छंद के अन्त में एक एक द्विपदी मिलता है।छंदों में इस छंद की मौलिकता भी स्पष्ट होती है।

इस प्रकार जन भाषा काव्य का यह रास वात्सल्य, शृंगार, करुण और निर्वेद आदि के सुन्दर स्थल प्रस्तुत करता है।१३वीं शताब्दी के जन भाषा काव्यों में नेमिनाथरास का स्थान भाषा और कलात्मक दृष्टि से अपने ही प्रकार का है।

१- इति श्री नेमिकुमार रास। पंडित सुमतिगणि विरचितः ।।छ।।

गय सुकुमाल रास [1]

जैसलमेर के बड़े भंडार से सं० १४०० में लिखी एक प्रति गय सुकुमाल रास की उपलब्ध होती है। इस प्रति की प्रतिलिपि अभयजैन ग्रन्थालय में विद्यमान है। इसके रचयिता मुनिजगच्चन्द्र सूरि के शिष्य श्री देल्हण हैं। देल्हण का समय निर्धारित नहीं है पर क्योंकि जगच्चंद्रसूरि का समय सं० १३०० है अतः बहुत संभव है कि इनका काल भी वैश्यिकाल या १३१५ से सं० १३२५ के बीच में कहीं अनुमानित किया जा सकता है।

कृति की भाषा को देखने पर यह स्पष्ट होताहै कि यह अपभ्रंश शब्दों की अधिकता लिए है। इसके पूर्व वर्णित रास कृतियों में आने वाले अपभ्रंश आदि के शब्दों के अनुपात में इस कृति में अपभ्रंश के शब्द अधिकहैं। फिर भी लोकभाषा की कृति होने से इसका महत्व स्पष्ट है।

प्रस्तुत रास मुनि गज सुकुमाल पर लिखा एक चरित काव्य है।गजसुकुमार कृष्ण के एक सहोदर अनुज थे। देवकी को अपने पहले पैदा हुए कृष्ण सहित ७ पुत्रों का सुख न मिल सकने पर उसने कृष्ण को मातृ सुख व शिशु क्रीड़ा आनंद का अभाव कहा। कारण नगर में नेमिनाथ के साथ ६ साधु एक ही वंश के थे और वे दो दो की टोली बनाकर देवकी के यहाँ आहार ग्रहण करने को आये। देवकी का मातृत्व उमड़ पड़ा। नेमिनाथ से पूछने पर उन्होंने बताया कि ये छहों मुनि उसी के पुत्र हैं जो कंस द्वारा मार डालने पर भी बच गए थे। देवकी को अब बालक की इच्छा हुई। कृष्ण ने तपस्या करके पता लगाया। देवता ने बताया कि बालक तो इसके एक और हो सकता है पर वह उसका बाल काल का सुख ही देख सकेगी। युवा होने से पूर्व ही वह दीक्षा ले लेगा। नियत समय पर बालक हो गया क्योंकि वह गज के बच्चे की भाँति सुकुमार व सुकोमल था अतः उसका नाम गजसुकुमाल रख दिया गया। माँ देवकी ने उसे खूब लाड़ प्यार से पाल कर अपनी मातृ सुख व वात्सल्य की अतृप्त कामना की पूर्ति की। एक दिननेमिनाथ पुनः

१- राजस्थान भारती वर्ष ३ अंक २ पृ० ६७ पर गयसुकुमाल रास-श्री अगरचंद नाहटा।

द्वारका आये उनकी रसीली वाणी सुनकर गजसुकुमाल को वैराग्य हो गया। मां के बहुत मना करने पर भी हठी बालक न माना। नेमिनाथ ने दीक्षा दे दी। पहले ही दिन उसने उनसे कैवल्य की प्राप्ति का उपाय पूछा। नेमिनाथ ने ईर्ष्या द्वेष रहित होकर तितिक्षा धारण करना बताया। बालक सुकुमाल श्मशान में जाकर ध्यानस्थ हो गया। इधर उसी का पाणिग्रहण करने के लिए एक सुंदरी लड़की के ब्राह्मण पिता को जब ज्ञात हुआ कि इसने तो दीक्षा लेकर मेरी सुन्दरी लड़की का जीवन ही मिटा दिया है तो उसने चिता के गर्म गर्म अंगारे लेकर उसके सिर पर डाल दिए। बालक पूरा जलगया पर अब तो उसे भान हो गया था कि मैं तो आत्मा हूं जल तो केवल शरीर रहा है। इस तरह साधना व मोक्ष प्राप्ति के लिए बालक ने जीवन उत्सर्ग कर दिया। पापी ब्राह्मण भी कृष्ण को देखते ही पापकरने से मृत्यु को प्राप्त हुआ। यही इस रास का कथा सार है।

कथा में घटनाओं का वैचित्र्य है औरकथा सूत्र में कथात्मकता होने से पाठकों का उत्साह एकरस बना रहता है। जैन सूत्रों में भी गज सुकुमाल का जीवन चरित्र मिलता है। वस्तुतः पूरा रास कवि ने गजसुकुमाल की साधना, तितिक्षाव कैवल्य प्राप्ति में प्रशंसा व चरित्र वर्णन के रूप में लिखा है।

भाषा की दृष्टि से इस रास को डा० हरिवंश कोछड़ ने अपभ्रंश काव्यों में लिखा है परन्तु उनकी यह मान्यता सम्भवतः ठीक नहीं है। कृति की भाषा अपभ्रंश के परवर्ती रूपों अथवा लोक भाषा से सम्बन्ध रखती है। भाषा को देखते यह तो कहा जा सकता है कि इस कृति का रचना काल संभवतः सं० १३०० के ही आस पास माना जा सकता है पर कृति का अपभ्रंश तत्कालीन भाषा परिवर्तन काल की उपेक्षा करता है। वास्तव में यह रचना दीर्घकालीन रचना है। कवि ने यह रचना श्री देवेन्द्र सूरि के कहने से ही लिखी है:-

"सिरि देविंद सूरिवह वयण, कवि उवयमि वहियउ
गयसुकुमाल चरित्तु सिरि देल्हणि रइयउ-

आगे कवि के काव्यात्मक स्थलों तथा भाषा का रूप देखने के लिए कुछ स्थलों के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

पुच्छिय सव्व रयण तहं हरिया, विमि कारवि तुह सुय अवहरिया
कंव वि होइ निमित्तु वर करह करेई कुलस सराविय ताम्वा गुरु अल्लहई
देवह मुणिवर वंदइ जाम्व हरिस विसाउ धरइ मणि ताम्व
कुलस सयम्मिय बहु धारिसहियइ हउं पुण बाल विउइहि बहिय
सिल्लवइ मलहावइ जाम्व, देवइ मन दुम्मण हुइ ताम्व

कवि ने गयसुकुमाल का श्मशान में जाकर कठिन तितिक्षा का वर्णन देखिए-

"मोह महागिरि चूरण वज्ज मवतरुवर उम्मलण गज्ज
पुणरवि जिणवरु नेमिकुमारु गय सुकुमारु लेइ वयभारु
ठिउ काउसग्गिंग ताम्व जायवि मसाणे, वारवइ नयरीए वाहिर उज्जाणे

तंमि सु दिवसरु कुवियउ पेक्खइ तहिरिय जल पज्जालिउ दिक्खइ
अम्ह धुंव विनडियपरिणिय जेम, अमिनउ तसु फलु करउं सणेया

कठोर साधना में केवल ज्ञान का उपासक गज श्रावक की भांति कोमल गजसुकुमाल सौमित्र ब्राह्मण के चिता में सेउहाकर अंगारे डाल देने से जल कर वहीं भस्म हो गए और निर्वाण को प्राप्त हुए।नायक की यह साधना कवि ने बड़ी ही प्रभुत से वर्णित की है-

"तावह गयसुकुमालहा सिरि पालि करेई, दारुण खयर अंगारा सिरि धूलेई
उज्जइ मुणिवरु गयसुकुमालु अहियइ दिक्खिउ मुणिहि विसालु
जिम वर पवण न सुरगिरि हल्लइ, तिम बहु इक्कु न झाणह चल्लइ
अवराहिसु मुणेसु किर होइ निमित्तु सहिय दुक्ख क्वाइ हुयइ निधिरुचितु
अहियासइ बहुमुणि गय सुकुमालु, निडुंक उज्जइ झम्पइ जा हु
अंतगडिवि उप्पाडिउ नाणु पाविउ सासउ सिवपुर ठाणु [1]

रास के अन्त में कवि ने रास लिखने का उद्देश्य स्पष्ट किया है। कवि ने यह चरित प्रधान रास गजसुकुमाल की तितिक्षा प्रधान साधना की प्रशस्ति में रूप में लिखा है। यों रास गाने, नमन करने और आनंद मग्न होने के लिए ही लिखा

फुटनोट-
१- देखिए राजस्थान भारती वर्ष ३ अंक ३ पद (११-१२) पृ० १।

गया है:

> घडु राषु मुहडेयह जाई,
>
> एकह सयलु संघु अंबाई
>
> घडु राषु जो देसी गुणि सी
>
> सो सासय सिव सुक्खई लहिसी [१]

वस्तुत: सन्धि कालीन रासों में भाषा की दृष्टि से ऐसी कृतियां विशेष महत्व की हो सकती है। इनमें अपभ्रंश कालीन प्रयोग और लोक भाषाओं के बीच की संक्रान्ति की स्थिति स्पष्ट होती है। छंद अलंकार आदि की दृष्टि से कृति का महत्व गौण है।

३४ छंदों का यह रास निर्वेदांत है कवि ने गयसुकुमाल का चरित वर्णन करने में ही सारा चरित गीत लिखा है। इस प्रकार यहां तक आते आते यह स्पष्ट हो जाता है कि रास के रचना उद्देश्य में केवल नृत्य गान उल्लास क्रीड़ा आदि न रहकर उनमें कथा तत्व का पूर्णतया समावेश हो गया था। इस तरह रास संज्ञक रचनाओं की वस्तु स्थिति में कालान्तर में बड़ा परिवर्तन हो गया।

१- वही, पद ३४।

: कच्छूली रास : [1]

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक रचना कच्छूली रास मिलती है। रचना का लेखक अज्ञात है। रचना काल, रचनाकार और रास के रचना स्थल की संभाव्य कल्पना रास की कुछ अंतिम पंक्तियों से की जा सकती है। श्री मोहनलाल देसाई ने भी इसका रचनाकार श्री प्रज्ञातिलक सूरि माना है।[2] पर यह बात ठीक नहीं जंचती है। रास की अंतिम पंक्तियां इस प्रकार हैं:-

"वाजीसइ अकाडि लखमण मयधर साहुसुओ
छवणी नयर मझारि आरिठवणउ भीमि किओ
कमल सूरि निवपाटि सई इथि प्रज्ञासुरिठवीओ
धमीउ धमावीउ भीतु अवसणि अप्पा सुधुकीओ
अमि पहुत्तउ सुरकोइ गयहड गंगाजल विमलो
साहु दीसु चिरकालु प्रवघउ प्रज्ञा तिलक सूरे
जिम सासणि महवंतु सुह गुरु भवी यई कल्पतरो
ता जागे अवयं उमाहो वीं वमि अमइ सहसकरो
तेर त्रिसठइ रासु कोरिंटावडि निम्मिउ
जिम हरि दिंत सुर्णत मण वंछिय हवि पुरवउ"

इस कथ्य से प्रज्ञातिलक सूरि का नाम, रास का रचना संवत् वि० १३६३ तथा रचना स्थल कोरिंटक स्पष्ट होता है। देसाई जी की बात का परिहार इस बात से हो जाता है कि यदि कृति का कर्त्ता स्वयं प्रज्ञातिलक होता तो वह स्वयं अपने लिए प्रशंसात्मक वर्णन कैसे कर सकता था। श्री के०का० शास्त्री का मत है कि ऐसा लगता है कि किसी अज्ञात लेखक ने यह रास रचा होगा।[3] पर शास्त्री जी का

१- प्राचीन गुर्जरकाव्य संग्रह: श्री चिमनलाल दलाल पृ० ६२९।
२- जैन गुर्जर कविओ, भाग १ पृ० ८
३- आपणा कविओ: श्री के०का० शास्त्री, पृ० २०७

आधार भी इस दृष्टि से किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुंचता। अस्तु रचना के स्थल चरित्र नायक ऐतिहासिक वातावरण तथा उल्लास एवं प्रबंधात्मक वर्णनों के देखकर यह कहा जा सकता है कि या तो इसकी रचना किसी संघाधिप द्वारा हुई या प्रज्ञातिलक सूरि के ही किसी अंतरंग शिष्य द्वारा हुई होगी।

कच्छूली रास एक ऐतिहासिक गीति रचना है जिसमें आबू का अचलेश्वर जैन मन्दिर, चंद्रावली, कोरिटवड आदि जैन तीर्थों का वर्णन है। साथ ही आबू के अनलकुंड व परमारों का वर्णन भी कवि ने किया है।रास में कोई कथा विशेष नहीं। कच्छूली ग्राम में उत्पन्न श्री उदसिंह सूरिका पराक्रम और शौर्य वर्णन है। धार्मिक दृष्टि से कच्छूली ग्राम का महत्व स्पष्ट किया गया है। साथ ही कवि ने संघ वर्णन किया है जिसमें प्रज्ञातिलक सूरि प्रमुख पात्र है। उदयसिंह ने सिंधनिकाल संघ चंद्रावली गया, वहीं साजण के पुत्र कमल सूरि की दीक्षा हुई और तब कोरिंन्ट वड स्थान पर प्रज्ञातिलक के किसी शिष्य विशेष ने रास रचना की होगी।

कथा की दृष्टि से इस कृति का कोई विशेष महत्व नहीं कथा में कोई नवीनता भी नहीं मिलती पर भाषा शैली और छंदों की दृष्टि से रचना महत्वपूर्ण है। कवि ने मंगला चरण से ही प्रारम्भ किया है।आचार विचार और अनियमित जीवन यापन करने वाले कवियों के लिए कुछ अच्छे सिद्धान्त कवि ने दिए हैं:

"केवल मुकति न विणु नयइ नारिहि सिद्धि जयमि
उदयसूरि बखरइ वसीह वय सह रास भणामि
केवल मुकति न ढांति करे नारि वंदि मुव सिद्धिय
तिहिं मय सिद्धुया वन्दि वीय लोई आचार विशुद्धिय [1]

छंदों की दृष्टि से इसकृति में बाहुल्य मिलता है।यों दोहा चौपाई आदि छंद

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह: श्री दलाल पृ० ५९-६२।

तो मिलते ही हैं पर फूलणा छंद विशेष शिल्प के साथ वर्णित हुआ है। यह छंद ३० मात्राओं के चरणों का मिलता है इसमें दो कड़ियाँ होती हैं जिसमें एक दोहा व दूसरी कोई द्विपदी होती है। छंदों के क्षेत्र में इसका मौलिक योग दिखाई पड़ता है। बीच बीच में जो बार बार पदों का अवर्तन होता है वह छंद को लयात्मक बनाता है। इससे इस रास की गेयता जन्य प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। एक उदाहरण देखिए-

"जेसिंबर तवं शिव रहिजे जै गुरु सिद्धिवहिं वंडो
विसहर भावक परिवलि जे लक्षीउ प लंबीउ वेद्ध परंडो
तउ गुरि मुहडा मिलिड करि होइ गरडु पमोण
धाईउ लीधउ चंचु पडे गिलीउ प गिलीउ प गिलीउ छाल भुयंगो
पाउ पिस्लिवि संमुहीय डर हरंतु धीउ बाघो
जोवणहार सवि कलमलीय हीयडई प हीयडई प हीयडइ पडीउ दाघो

--- --- ---

वउ गुरि मूकीउ रम हरणु कीधउ सीहु करालो
बाघह वंता दूरि मीउ हरिसीउ प हरिसीउ प हरिसीउ मयक सयालो [१]

फूलणा छंद इससे पूर्व सोमपूर्ति रचित जिनेश्वर सूरि विवाह वर्णन रास में भी मिलता है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। एक और छंद जो सं० १२४१ के भरतेश्वर बाहुबली में मिलता है, इसमें वर्णित हुआ है। इस छंद में १६ १६ १३ मात्राओं का प्रयोग है जिसका निर्धारण पहले शालि भद्र सूरि ने किया है।[२] संभवतः इस छंद का वर्णन कवि ने परंपरा निर्वाह के लिए ही किया हो। छंद है--

"सिरि मद्धेश्वर सूरिहि वंदो, वीजी साह वसिगु रासी
पभीय रोहु निवारीउ
असोउंख संवत परमार, राजु करई तहि है सविसार
आबू गिरिवर हरीई कवरी

सर प्रववचि मणोहरी य [1]

श्री लालचंद गांधी ने इस छंद कोरासछंद की संज्ञा दी है। जो समवतः रास रचनाओं के लिए एक छंद विशेष हो गया था।[२] श्री के०का० शास्त्री ने इस छंद को मिश्र छंद कहा है तथा इसमें १६ १६ १३ और १६ १६ १३ की द्विपदियां बताई है।[३] इन छंदों के अतिरिक्त दोहा चौपाई छंद भी मिलते है। रास महोत्सव के लिए लिखा गया है अतः गेयता उसमें विद्यमान है।

भाषा के संबंध में रचना का महत्व साधारण है। लोक भाषा के प्रवाह में कवि ने "बूंब" जैसे शब्द का प्रयोग"- हुइ कमालीउ कालपुही

लौकिहि ये लोकिहि ये लोकिहि बाइय बूंब [४] किया है।

राजस्थानी में बोलचाल में आज भी बूंब शब्द मिलता है जो संभवतः जोर से चीखने के लिए प्रयुक्त होता है। यह भी सम्भव है कि यह शब्द विदेशी हो।

नये शब्दों में- कमठ, वाद्धव, वरमाल, वषमउ, पासजिन, अनलकुंड चिंतामणि हिमगिरि धवलउ, आंबिल, उपवास, मूकीउ बीजी, मुकति, भ्रांति, चिरकालविमल आदि अनेक शब्द मिलते है। अतः इन शब्दों सेभाषा में नवीन शब्द के ग्रहण की शक्ति स्पष्ट होती है।

१४वीं शताब्दी के इन्हीं काव्यों की परंपरा में इसी प्रकार की कथा वस्तु के दो विस्तृत रास काव्य मिलते है। इन काव्यों में भी संघ वर्णन है तथा दानवीर संघपतियों की दानशीलता का वर्णन है। इन दोनों कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन आगे किया जायगा। काव्य प्रवाह भाषा और छंदों की दृष्टि से ये दोनों रास महत्व पूर्ण प्रबन्ध है।

१- पेथड़रास[५] --सं० १३६३ - मंडलिक
२- समरा रास [६]- सं० १३७१ - अंबदेव

२-(इसके प्रथम पृष्ठ का) भरतेश्वर बाहुबली रास: श्री ला०भ० गांधी, पृ०२।
१- प्राचीन गु०का०सं०,श्री दलाल, पृ० ५९
२- प्राचीन गु०का०सं०,श्री दलाल,पृ० ५९
३- आपणा कवियो: श्री के०का०शास्त्री,पृ०१५६-६०।
४- प्रा०गु०का०सं० श्री दलाल: पृ० ६१
५: प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह: श्री दलाल परिशिष्ट १० पृ० ३९।
६- वही, पृ० ३७।

ये दोनों कृतियां प्रकाशित है तथा इनमें पेथड और समरसिंह की दानवीरता, पराक्रम, और शौर्य, तीर्थोद्धार तथा संघ का वर्णन है। दोनों रासों में से पहले का लेखक और समय अनिश्चित सा है पर प्राप्तबहिरंग प्रमाणों के आधार पर इसे सं० १३६३ की रचना मानी जासकती है। पेथड़रास की पूर्णता पर श्री शास्त्री के०का०ने शंका प्रकट की है।[1] यों रचना की पुष्पिका "इति श्री प्राग्वाधूवंश मौक्तिक काव्य पेथड़ रास समाप्त" को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रचना अपूर्ण नहीं है। रचना का लक्ष्य भी पूरा हो गया है अतः रचना को अपूर्ण कहना असंदिग्ध ही लगता है।वस्तुतः शास्त्री जी का अनुमान बहुत ठीक नहीं है। कवि मंडलिक पर भी मत वैभिन्न्य है। पर मंडलिक का प्रमाण रास में मिल जाता है।

कृति का ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। कई ऐतिहासिक पुरुषों यथा-कर्णवघेल, संगार,आदि का वर्णन भी मिलता है। श्री शास्त्री इसके कर्ता के विषय में लिखते है कि- "या तो इस काव्य का रचयिता ही संगार है या वह नहीं है तो मंडलिक का पिता संगार होगा और वह वृद्ध होगा अतः मंडलिक ही इसका कर्त्ता होगा। संगार की मृत्यु के प्रमाण तो वि०सं० १३१६ में ही मिलता है।[2]

जो भी हो,कृति के रचनाकार और रचना काल दोनों की स्थितियां अस्पष्ट हैं।प्राप्त प्रमाणों के आधार पर मंडलिक को ही इसका रचनाकार कहा जा सकता है व इसका काल सं० १३६० माना जा सकता है।

पेथड़ वस्तुपाल और तेजपाल की भांति यशस्वी था।समरसिंह का यश भी पेथड़ से कम नहीं था। पेथड़ और समर दोनों दानवीर पुरुषों ने संघ निकाला था। पेथड़ रास में कई स्थानों पर क्रीड़ा ताल,लकुटा रास, नृत्य संगीत ,गान

१- आपण कवियो: श्री के०का० शास्त्री, पृ० १९७

२- मुक्तरास राजस्थान, पृ० ३०८

आदि के पद मिलते हैं। कुछ काव्यात्मक सरस स्थल द्रष्टव्य हैं:-

"देवाई बालीय, नयणि विशालीय, दिंतीय ताली, रंगि फिरंती हरिस भरे
तहि बेला नावइ खेल बहुयत वेला वाला मोल लहुडा रसि रमई [१]
कामिणी धामिणि धवल दियंती गायंती गुण जिणवरह
अति अमाहु आत्र समाहउ वरीयल कंनि कुंअरीइं य
ते चउरा रुडा लउवां लाडी, नवां नवेरा दसइं गेहण गण सघण
ते घणा घणेरा सम विसमैरा सवि न दीसइं अवंसि पुण

शब्द चयन की सुगठितता, सरसता तथा गीतिमयता के साथ साथ कवि ने रास क्रीड़ा का महत्व स्पष्ट किया है-

"रास रमेवउ जिन भुवणि ताल मेव ठवियाउँ
कंध तलायन रोपिउ य समगिरि विषगिरि बेवि"

अनेक आलंकारिक सूक्तियाँ भी रास में मिल जाती हैं:

(१) लाछिलणउ जउ गरव करेइ लीजइ राउल छह धरेई
(२) मनुय जनम इसं सफल करीजइ जिविय यौवन लाहउ लीजइ
(३) एक चित्त सवि समाण जाण
(४) जिम कंचण कस वट्टीयय पामिउ बहुगुण रेह
(५) धन कण रयण भंडार ते सवि अछयिन अपार

साथ ही नारियों के नृत्य, कामिनियों के आल्हादकारी हास, तथा रास क्रीड़ा के साथ साथ गिरिनार और सुवर्ण रेखा नदी के काव्यात्मक वर्णन अनूठे हैं।[२]

इसी प्रकार श्री अम्बदेव सूरि कृत समरारास के काव्यात्मक स्थल भी उल्लेखनीय हैं। इसमें कवि ने रास रचना का उद्देश्य, गाने, क्रीड़ा करने और नृत्य हेतु तथा फल बताया है जो- " एहु रासु जो पढइ, गुणइ, नाचिउ जिण हरि देइ
श्रवणि सुणइ सो बयठउ ए तीरथ ए तीरथ ए तीरथ
जात्र फलु लेई

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ० २९ एपेन्डिक्स १०।

२- वही पृ० ३० पद ४९

समरसिंह ने मुसलमान सुलतान को प्रसन्न कर संघ निकाला। बादशाही सुल्तान ने संघ की बड़ी सहायता की। समरसिंह ने ऐसे साम्प्रदायिक समय में शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार कर आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित की और जूनागढ़ प्रभास पट्टण आदि अनेक ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा कर समरसिंह पाटण लौट आये। रास कर्ता ने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का रास में उल्लेख किया है। कवि ने पातशाह, सुल्तान भीम, अलपखान, मीर मालिक मलिक मालिक आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों से रास का सम्बन्ध स्पष्ट किया है।

रचना का वस्तु वर्णन भाषा में विभक्त है। मुनि जिनविजय जी ने इसकी संख्या १२ ही बताई है और श्री दलाल ने भी इसे द्वादशी भाषा ही कहा है [1]। इन भाषों का विशेष अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि संभवतः कवि ने इनका विभाजन छंदों के आधार पर किया है क्योंकि हर भाषा में छंदवैविध्य है। भाषा समाप्त होते ही छंद परिवर्तन हो जाता है इस दृष्टि से पाठ का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इसे १२ भाषा के स्थान पर १३ भाषों में विभक्त होना चाहिए। क्योंकि द्वादशी भाषा की ६ कड़िया एक ही छंद में चलती है जिसको के०का० शास्त्री ने त्रिपदी या ककाव छंद कहा है।[2] पर उसके बाद छंद बदल जाता है शेष भाषा दोहों में रची गई है जिसमें "ए" स्वर के साथ पदों का तीन बार आवर्तन मिलता है। अतः इस अवशेष भाग को १३वीं भाषा कहा जा सकता है। भाषा शब्द "कड़वक" की भांति कथा विभाजन का सूचक है अतः यह सर्ग परिवर्तन सूचक शब्द है।

कवि ने अलाउद्दीन और मीर अलप खां की प्रशंसा सात कंडौलक की है कवि को वर्णन की आलंकारिता द्रष्टव्य है:

"तहि अलवह सुरताणि सुभट सामंत सहहरयो, विश्वकर्म विज्ञान करिउ पोढउ मियहत्थो
अभिय सरोवर सहसलिंग इक धरणिहि कुंडलु, किरित थंभु किरि अवर देखि मामह आखंडलु

1- प्रा०गु०का०स० : श्री दलाल पृ० २९
2- आपण कवियो: श्री के०का०शास्त्री, पृ० २१९

(५) धम्म धोरिय धुरि धवल दुइ जुत्तया, कुंकुम पिंजरि कामधेनु पुत्तया
इन्दु जिमि जवरथि चढिउ संचारए, धुइ वसिरि सालि धातु निनहाल ए

(६) रितु अवतरिउ तहि जिवंसंती सुरहि कुसुम परिमल पूरंती
समरह वाजिय विजय ढक्क, सागु सेलु सल्लइ सच्छाया
केसुय कुडय कयंब निकाया-

(७) माणिके मोतिए वउकु धुर पूरइ रतन मइ वेहि सोवन जवारा
अशोक वृक्ष अनु सब आमू पल्लव दलिहि रितुपते रचियले तोरण माला
देवकाय मिलिय धवल मंगल दियइ किं नर गायहि जगत गुरो [१]
लगत मुहुतर सुर गुरो साधए पत्रीठ करई सिध सूरि गुरो

उक्त उद्धरण से कृति का काव्य कौशल तथा भाषा में तत्सम शब्दों का समावेश सिद्ध हो जाता है।

भाषा में विदेशी शब्दों के अनेक उदाहरण इसी कृति में मिलजाते हैं:-

(१) सल्लार -घोड़े चढइ सल्लार सार राउत सींगडिया

(२) खानखानु-मेटिउं ये तउ खान खानु

(३) अहिदारमलिक-अहिदर ए मलिक-आएस दीन्ह ले श्रीमुखि आपणए

(४) मीर मलिक- मीर मलिक मनियइ सयरु समरथ

(५) पातसाहि, अलपखान, दुनिय, हज,
हिन्दुअ, अहदाशि- (१) "पातसाहि सुरताण पीछु तहि राजु करेइ
अलपखान हीदुअह लोय घणु मानु ज देइ
(२) अहली ए दुनिय मिराव हज भागीय हीयज तणीय
(३) तारिक ए मिलुभि अहदासि [२]

छंदों के क्षेत्र में पेथडरास समरा दोनों रासों का बहुत ही महत्व है। इन दोनों रासों ने भाषा और छंदों में मौलिकता तथा वैविध्य के अनेक प्रयोग किए हैं:-

---

१- समरारास: प्रा०गु०का०संग्रह पृ० २४७
२- समरारास: पृ० २३५

उनका क्रमशः अध्ययन इस प्रकार है:

पेथड़ रास में छंदोंका वैविध्य दृष्टव्य है।एक तो लोक भाषा और दूसरे छंदों के बदलते क्रम ने काव्य प्रवाह को बढ़ाया है।इस कृति में "चालू रोला दोहा चौपाई और चौपाया तो है ही नवेछंदों में सवैया गुजराती कविता में सर्व प्रथम प्रयुक्त हुए हैं। गुजराती कविता कहने का कारण यह है कि जयदेव के गीत गोविंद के पूर्व प्रयुक्त सवैयों में तो देशी पद्धति थी ही परन्तु इस रास में सवैया में विविधता लाने का प्रयत्न है। इसमें चालू माप के पदों में कुछ मात्राएं अधिक दी हैं और कुछ मात्रा बढ़ाये हुए छंदों में त्रिभंगी छंद की भांति यति अनुप्रास जैसी पद्धति प्रस्तुत की है।[1]

त्रिभंगी छंद में ३२ मात्राएं होतीहैं। यह छंद सम होता है आदि में जगण (। ।) वर्जित है। १०, ८, ८, ६ पर यति और अंत में गुरु वर्ण का होना इसके शास्त्रीय लक्षण माने जाते हैं।

उदाहरणार्थ: गाम्भीय निसुणउ लोय पञ्जि संघतणउ समाहउ भवीअणउ
प्राणूअं दीजइ मत्तिभरिल मवीमा लहइ लाहइ धंम कणउ
केलवि स्त्रीयाँ रंगि रास हवूं नवरस, नवरंग नवीय परे
सुणि सामणी संवणी जो करई निरंतर परेहिं घरे

एक विशेषतायुक्त लक्षण इस रास में मिलता है। जिस तरह कड़वक वस्तु कहीं कहीं ध्वनि कहलाता है। कच्छूली रास में जिस प्रकार वरस वस्तु का उल्लेख है उसी प्रकार कवि ने इस पद्धति को लक्षण कहा है।

षकार वाले पद में लक्षण के पश्चात् जो आता है, वह सोरठा है और उसी के साथ ४थी कड़ी में दोहा परिलक्षित होता है पर उत्तरार्द्ध में उसी पंक्ति में बार बार पुनः आवृत्ति मिलती है। इसछंद के बाद देशी सवैया का प्रयोग है। ये चार प्रयोग अत्यन्त ही विशिष्ट है-

---

१- आपणा कविओ: श्री शास्त्री पृ० २०४

"बाय वद्धापणउं अतिहि सोहामणुं रिसह भूअणि रत्नी आमण ए

मविअन कलस कंचण मय मंडिचले ए

दुक्ख जलंजलि देयंति कुसुमंजले

धुमंति दीण रीण जीण उतारंति

जल लवण नम्हण करंति सामी सुगंध जले

कपूरि पूरि पूरीय तिणि कीयलि मृग नाभि महण त्रिजग गुरु

गुण निलउ देवाधिदेव जोउ वेलवउ सेवत्री पाडल बहुल

कुसुम परमल विपुल पुजहे।।बाय वद्धवणु।।

इसके अतिरिक्त गीत गोविन्द की २७ मात्राओं की देसी सवैया पद्धति में दो छंद इस रासे में मिलते हैं। इन सवैयों का प्रयोग पहले गीत गोविन्द में ही मिलता है:-

"राजल कंत।तहि नाचिनए सहिलड़ीए ललागीय गिरिनारे

राजलिवर फलिआमपड सामलउ संसारो।तहि नाचिनए।।

अंग पखालि सुगयंदमइए जल पहरीय धोति प्रवीत

इन्द्र महोत्सव आयंमी तहि बयठलि बहु धमवंत।तहि नाचिनए सहि०।।

और इसके पश्चात् कवि ने रास के अंत में देसी पद्धति में दोहा का वर्णन किया है वह भी अपने ही प्रकार का है जिसकी तुक योजना में भी एक वैचित्र्य है:-

अंबिक आस मनोरह पूरी अवलोईय जगन्नाथ

दीव पूजन जुहारीय आवीअ वेय जन्म तुकी आथ।।तहि ना बहन्नी ए

आवीया मई गिरिनारि

सोमनाथ वंद यह अंबिक देवीउ आवीउ आम

विछ पीयासे छिम मन रहियउ मंडलिक भणइ ईम ।।तहि ना०।।

विछ पीयासमेगि हृदि हरीयाला बूढा रे सुरयाडे संपरत मनीला बूढारे

समग्र रास में भी छंदों के मौलिक प्रयोग है। कविने दोहा रोला, द्विपदी, सोरठा आदि छंदों में रास रचा है। छठी व ७वीं भाषा में चौपाई तथा ५ कड़ियाँ रोला की है। ८वीं ९वीं में क्रमशः १० कड़ियाँ द्विपदी की तथा

९ कड़ियों का एक भूलणा छंद है जिसमें अत्यानुप्रास का काव्य चमत्कार है जिसमें उसकी गेयता स्पष्ट होती है और यह छंद प्रथम बार प्रयुक्त हुआ है। १०वीं भाषा में दोहा और ११वीं में कवि के नये प्रयोग हैं प्रारम्भिक कड़ियों में १६, १६ मात्राओं का एक चरण है और फिर १३ मात्राओं की एक अर्द्धाली। १२वीं १३वीं भाषा में इसकी त्रिपदी अज्ञात छंद है। इसमें दोहे के साथ "ए" का प्रयोग व आवर्तन तीन बार मिलता है। इस प्रकार दोनों कृतियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

वस्तुतः डा० हरिवंश कोछड़ ने अपने ग्रन्थ अपभ्रंश साहित्य में इन कृतियों को स्फुट साहित्य कह कर छोड़ दिया है और इन रासों को अपभ्रंश की ही कृतियाँ माना है पर उक्त विवेचन के आधार पर इनका मत भ्रामक सिद्ध हो जाता है। ऐसी कृतियों को अपभ्रंश की कहना प्राप्त तत्कालीन लगभग सभी रचनाओं के शिल्प, भाषा, शैली, काव्य, तथा इतिहास की मान्यताओं की उपेक्षा करना है। वस्तुतः दोनों रासों की साहित्यिकता सिद्ध है।

----

‡ मयणरेहा रास ‡[1]

हिन्दी जैन साहित्य में जैन चरित नायकों की ही भांति जैन साध्वियों और आदर्शनारियों (संतियों) पर लिखी गई अनेक रचनाएं उपलब्ध होती है। मयणरेहारास जैन आदर्श राजपुत्री मदनरेखा की जवन कथा है। प्रस्तुत रास ५ ठवणि में पूरा हुआ है। सतियों के जीवन चरित वर्णन की परम्परा भी अब प्राकृत और अपभ्रंश काल से ही मिलती है। १३वीं से १५वीं शताब्दी में रास और चतुष्पदिकाओं के रूप में अनेक कथा काव्य मिलते है। पूर्वोल्लिखित चन्दनबाला रास की भांति मयणरेहारास भी सती मदनरेखा के सतीत्व, नारीत्व और पतिव्रत्य जीवन की मार्मिक और करुण कहानी है[2]। प्रस्तुत रास जिनप्रभसूरि की परम्परा संग्रहपुस्तिका सं० १४२५ से प्राप्त हुई है रचना की प्रति अभयजैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है।

कृति के रचनाकार का नाम कहीं नहीं मिलता है। रास की अंतिम पंक्ति में दो बार रयणु शब्द का प्रयोग हुआ है:-

सयलह रयणह वयर रयणु जिव मुठु न जाए

तिम जिम सासचि सीहु रयणु कवि कहण न मार

अतः बहुत संभव है कि वह रयणु ही रचनाकार हो, पर फिर भी स्थिति संशयविहीन नहीं कही जा सकती।

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की यह कृति रास काव्य काव्य की दृष्टि से, भाषा प्रवाह, और कथा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस रचना का प्रारम्भिक अंश प्रति का मध्यवर्ती पत्र प्राप्त नहीं होने से उपलब्ध नहीं होता। प्रारम्भ के ५ छंद नहीं मिलते और छठे छंद से ही रचना प्रारम्भ होती है।

१- देखिए- हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ९ अंक १-४ पृ० ९६-१०३ पर सतियों के दो रास-शीर्षक लेख।

२- विस्तृत विवेचन के लिए देखिए- महासती मदनरेखा- जैन महासती मंडल भाग १ पृ० १ से २१ तथा सती मदनरेखा; प्रकाशक श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल, रतलाम सम्पादक श्री हुक्मीचन्द जी महाराज, सन् १९५० पृ० १-२८८।

मयणरेहा सुदर्शनपुर के राजा मणिरथ के भाई युगबाहु की रानी थी।मणिरथ ने उसके असाधारण सौन्दर्य पर आसक्त हो उससे प्रेम का प्रस्ताव रखा।सती ने उसकी मांगें ठुकरा दी। बसंत क्रीड़ा के बहाने एक बार युगबाहु सदम्पति उपवन में गया। मणिरथ ने धोखे से वहां पहुंचकर उसकी आत्मा हत्या कर दी।मयणरेहा जिनधर्म को प्रेम करती थी। उसके पुत्र का नाम चंद्रकुमार था।पति की हत्या के समय वह अंतस्सत्वा थी। उसी स्थिति में वह वन में निकल पड़ी। इधर मणिरथ को भी सांप ने काट लिया और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। पुत्र प्राप्ति होने पर मयणरेहा नदी में स्नानार्थ गई तो एक हाथी ने उसे उछाल दिया और एक विद्याधर ने उसकी रक्षा की तथा उसके साथ प्रणय का घृणित प्रस्तावरक्खा। इधर सती के सद्य उत्पन्न शिशु को एक पद्मरथ नामक राजा ले गया और बड़े होने पर वही नेमिराज राजा हुआ। चन्द्रयश भी सुदर्शनपुर का राजा बनाया गया। सती मयणरेहा ने इधर दीक्षा लेकर विद्याधर से अपने शील सतीत्व की रक्षा की और उसे कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुई। अन्त में उसके दोनों पुत्रों ने भी अपनी साध्वी मां सुव्रता (मयणरेहा) से ज्ञान प्राप्ति कर दीक्षा ग्रहण की।इस प्रकार सती मयणरेहा ने अपने शील की रक्षा की।

कवि को इस करुण कृति की रचना में अनेक स्थलों में काव्यात्मक वर्णन करने का अवसर मिला है। रचना में अनेक मार्मिक स्थल हैं। प्रारम्भ में ही कवि ने मयणरेहा के सौन्दर्य का सुगठित वर्णन किया है:-

-------- ------- ----------- सारासी

हइ रवाइ लीला बबदंती, रायमय जिम नेहु करती

सम किसु अभिवहु हिमइ चंदती जिम गयवर पय पउम नमंती

चन्द्रम से कुमर सोहंती, गमइ दीठ सा बहुगुणवंती

वह आलंबरि ईंदि हसंती, उरि एकावलि हार वहंती - (१-८)

करयलि लीला कमलु करंती, कलकंठी जिमकिंपि भणंती

उसके इस प्रकार के सौन्दर्य पर मणिरथ रीझ गया उसने अपना कुप्रस्ताव उस मयणरेहा से रक्खा।कवि ने उन दोनों के उत्तर प्रत्युत्तरों को बड़े ही चातुर्य से

वर्णित किया है। बीच में कवि की उपदेशात्मक सूक्तियां बड़ी अनूठी हैं:-

जं नवि वेय पुराण सुणीजइ, जं चिय पामरि लोइ हसीजइ

तंपि नरेसर मंडिउ कज्जू, पेखउ मयण महा भड़ रज्जू

कुलि कम लोडिम बुद्धिघ करंतउ, नियगुण बल्ली अंग्गिग दहंतउ

हा हारव तिहुयणि पावंतउ मणि रहु मयणा मंदिरियहतउ

--- --- ---

तामह ए मणि रहो राउ, मयणि महाभड़ि गंजिउ ए

बुल्लइ ए वयणु विम्नाणु, जेण जणगणि लाजिय ए

सीलह ए सोवन रेह बुल्लए मयणा निम्मलीय

नरवर ए कवणु विचारु, निय कुल संपणि मनिरलीय

सुरगिरि ए मिल्हइ ठांउ जइवि सुरालउ महिकल ए

तिहुयणु एक्क मेलेइ, होय न मयणा मनु चल ए (१०-२)

और इसके पश्चात् कवि मधुरितु के वर्णन में डूब जाता है । प्रकृति के उपादानों का परिगणन कवि ने बड़ी कुशलता से किया है। मधुरितु क्या आईमानों मयणरेहा की बसन्त भी हीसदा के लिए लुट गई।बसंत क्रीड़ा के लिए युगबाहु और मणिरथ जाते हैं औरकामलोलुप मणिरथ नंगी तलवार लेकर वहां पहुंचता है। बासन्ती वातावरण को किस प्रकार वह बीभत्स बना देता है। मीठी मीठी बातों में अपने भाई को उलझा कर उसका पीछे से वध करना बड़ा ही दुर्दमनीय करुण प्रसंग है। बसंत की व प्रकृति वर्णन द्रष्टव्य है। अनुप्रासात्मकता व प्रकृति का नाम परिगणनात्मक रूप देखिए:-

महरी अंब कयंब जंब जंबीरी सोहइ

कयलीय लवलीय हलिम केहु पाडल मनु मोहइ

चंदन-चंपइ चारु चिरल बोरइ बीसंता

मचकुंद करणी कुडय कुंद किंसुय विसंता

कोइल पंचमु सद्द करइ भमरउ झणकारइ

पाडल परिमलु महमहए मलया निलु चल्लइ

मयण सरासणु करइ कज्जु विरहिणी मणु कंपइ

अवतरियइ सिरि बसंत राय मणिरहु इवजंपइ

जुगबाहु और मयणरेहा की केलि क्रीड़ा और रास आनन्द मणिरथ से नहीं देखा गया। मीठी मीठी वाणी बोलकर कृत्रिम सहानुभूति दिखाता हुआ वह वहां आया और मयणरेहा को प्राप्त करने के लालच से पैर छूते हुए भाई के सिर पर तलवार मार दी। अतस्सत्वा मदनरेखा दीन होकर भटकने लगी पर अपने चरित्र सतीत्व की पूर्ण रक्षा करने में उसने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। स्वामी की मृत्यु पर रुदन करती हुई मयणरेहा की स्थिति बड़ी करुणात्मक हो गई और सती को सताने वाले दुर्मति मणिरथ को भी सांप ने काट लिया:-

जमजीहा सम खग्गु लेउ बहु कोवि जलंतउ

माया वंचिउ सयल लोउ के लीहरि पहुतउ

कुमए न सुंदर पई किअउ बबबसि बसंतई

महिमंडलि लहरि गमिहिं निसि दिवसु भमंतइ

इव जंपता नर बराह सो पणमइ पाय

खग्गु सहोअरहं, सिरि मिल्हइ घाय

--- --- ---

तक्खणि धायउ लोउ हाहारवु करि आकलिउ

सामी पेखिउ घाउ मयणा मुच्छंकुय ढलिय

कुक्कउ पुरावइ अंगु लोयण अमीय भयर हरे

इव जाणे विनसु होइ मरवइ मुक्ख पंकज हरे

कुसुमहो मोमह रेसि लिंकउ मोगिहिं सोगहिउ

तक्खणि मरइ पडेर, घाव महामरि जो मरिउ

जिणि करि मयण हरेवि मइइ हुवि मणि रलिय

तिणि करि डसिअउ सापि देवइं दुरमति दोहिलीय (ठवणी- ३।७ ४।२)

रचना ५ ठवणि में पूरी हो जाती है। भाषा सरल और आलंकारिक है।कथ

रस के स्थल स्थान स्थान पर मिल जाते हैं। कृति की समाप्ति निर्वेद से की गई है। कृति में चौपाई और रास छंद प्रमुखता से मिलता है भाषा की सरलता, उसकी तत्समता तथा प्रवाहात्मकता के लिए एक उद्धरण द्रष्टव्य है-

हरिकरि विस वेयाल, कालि नवकारि हणंती
जउ हरिसंती मयणरेह, तउ सरवरी पत्ती
वण कलि सरजलि गमिउं, दिवस निसि पुत्तु जणेई
केकी हरि मिल्हेवि, कुमरु सिरि न्हाणु करेई
जल करि नलिणी पत्तु, जेम गयणि यलि उलालइ
धरनि मंडती बीजु, जेम विज्जाहरु फलइ
सुंदरि जणि न धार राय मणिपहु विज्जाहरु
नंदीसर वरि अम्ह ताउ मणि चूलु मुणीसरु

--- --- ---

जिम हरु पुत्र करेवि जाम मुणि पाय नमेवि
देसण निसुणिय सयर राय मयणा सामेई

--- ---- ---

कुमरह सयलह जिणह ववणि पडिबोह करंती
केवल नाणु धरेवि मयण धा सिद्धि पहूती - (कथणि ५।३-५)

वस्तुतः १४वीं शताब्दी में भाषा में तत्समता के स्वरूप इस कृति से देखे जा सकते हैं।अपभ्रंश के स्वरूप कहीं कहींदिखने को ही मिलते हैं। कृति बड़ी महत्वपूर्ण है। १४वीं शताब्दी में इसी प्रकार के अन्य अनेक रास मिलते हैं। उदाहरणार्थ महावीर रास (१३०७) गयसुकुमालरास, बारव्रत रास (१३३८) सम्यक्त्वमीयरास, जिनपद्म सूरिपट्टाभिषेकरास, श्रावकविधिरास आदि- परन्तु ये रचनाएं काव्य की दृष्टि से साधारण ही हैं। अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।

१४वीं शताब्दी के बाद १५ वीं शताब्दी में रास संज्ञक अनेक कृतियां उपलब्ध होती हैं। वास्तव में १५वीं सदी का रास साहित्य बड़ा सम्पन्न है।

::श्री जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेकारास::

दीक्षाविवाह या पट्टाभिषेक एक ही कथा के सूचक हैं। १४वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हमने सोममूर्ति के जिनेश्वरसूरि विवाह वर्णन रास पर विचार किया है। ठीक उसी प्रकार का रास सं० १३८८ का सारमूर्ति द्वारा लिखित जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेक रास है।लक्ष्य तथा मुख्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से यह कृति सोममूर्ति की रचना से पर्याप्त साम्य रखती है कि परन्तु काव्य भाषा और रस की दृष्टि से इसका स्वतंत्र महत्व है। १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना होने से यह रचना महत्वपूर्ण है। इस रचना की प्रतिश्री अगरचन्दनाहटा के संग्रह अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है। श्री देसाई ने कृति से आदि अंत एवं समय का उल्लेख किया है। कृति ऐतिहासिक है। इसकी ऐतिहासिकता पर पर्याप्त प्रकाश डाला हुआ मिलता है।[२] इस प्रकार यह रास ऐसा गीत है जो जन साधारण की भाषा में लिखा गया है। जैन गुरुओं और मुनियों ने समय समय पर जो धर्म प्रभावना की राजाओं महाराजाओं और सम्राटों पर अपने धर्म की धाक बैठाईऔर समाज के लिए अनेक धार्मिक अधिकार प्राप्त किए नके उल्लेख इनगीतों में पद पद पर मिलते हैं। विशेष ध्यान देने योग्य वे उल्लेख हैं जिनमें मुसलमानी बादशाहों पर पड़े प्रभाव पड़ने की बात कही गई है।[३]

प्रस्तुत रास के नायक के गुरु श्री जिनचंद्रसूरि ने सुलतान कुतुबुद्दीन के चित्त को प्रसन्न कर लिया था। सुलतान ने भी हाथी ग्राम घोड़े धनादि देकर सूरीश्वर का सम्मान करना चाहा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया।सुलतान ने उनकी बड़ी भक्ति की और फरमान निकाला तथा बसति निर्माण कराई[४]जिसका

१- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह: श्री अगरचंद भंवरलाल नाहटा- प० २१
२- वही ग्रंथ प्रस्तावना पृ० १६
३- वही ग्रन्थ प्रस्तावना: डॉ० हीरालाल जैन लिखित पृ० १६
४- वही।

रास में स्पष्ट उल्लेख है:-

कुतुबद्दीन सुरताण राउ रंजिउस मणोहरु

जगि पयडउ जिणचंदसूरि सूरिहिं सिर सेहरु [1]

इसी प्रकार कवि सारमूर्ति के जिनपद्मसूरि भी ऐतिहासिक तथ्यों से सम्बन्ध रखते हैं। ये जिन कुशल सूरि, जिनका पुराना नाम सखप्रभ है, और जो षड़ावश्यक बाला व बोध के कर्ता रहे है, से सम्बन्धित हैं। इन्हीं का नाम जिनपद्म था। प्रस्तुत गीति रास में धर्म की नीरस सैद्धान्तिकता ही नहीं है, पर ऐतिहासिक प्रमाणिकता तथा काव्यात्मकता है। धर्म की प्रेरणा से काव्य की भाषा भाव और शैली आदि प्रभावशाली हो गई हैं। कुछ काव्यात्मक स्थलों के उदाहरण दृष्टव्य है।जिन पद्मसूरि पट्टाभिषेक रास में कवि ने सुरतरु रिषभ जिनेन्द्र को और सर्वदेवी का अनुसरण करके रास लिखा है। कवि ने रास को भाव भक्ति से गाने के लियलिखा है:-

इहु पय ठवणह रासु भाव भगति जे नर दियहि

ताह होइ सिवधाम सारमुत्ति मुणि इम भणइ

आध्यात्मिक विवाह का साहित्य में महत्व स्पष्ट है।आगे जाकर आध्यात्मिक विवाह की इन जैन घटनाओं का प्रभाव संभवतः कबीर की साहित्य साधना पर पड़ा हो। कबीर के साहित्य में भी आध्यात्मिक विवाह का महत्व स्पष्ट होता है। इस अवसर पर रासकर्ता ने अभिषेक पर हुई अनेक क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। मदुधाहु श्रावकगण वेश बना कर क्रीड़ा में शामिल होते है। स्थान स्थान पर कल्लोल और रास महोत्सव होते हैं, और नारियाँ मंडप में घूम घूम कर नृत्य करती है। कवि ने इस छोटे से गीत में भैरवा को प्राधान्य देते हुए रचना को श्रावकों के उत्साह प्रधान जीवन के सम्बन्ध में कहे गए कवि की कुछ अनुभूतियाँ इस प्रकार है जो भाषा और भाव की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १५

उदयउ सहु पट्टिटसयल कला संपन्नु मयंकू
सूरि मउड बढावयंसु जिणकुसल मुणिंदु
महि मन्डल विहारन्तु सुपरि आअउ देराउरि
सत्थ विहिय सय गहण माल पय ठवण विहिंपरि (५)

--- --- ---

कुंकुमपत्रिय पाट ठवण सदिदिसि संघ हरेड
सयल संघ मिलि आविअउ, सहरि करइ पवेसु

--- --- ---

आदि जिणेसर वर भुवणि ठविय नन्दि सुविसाल
घय पड़ाग तोरण कलिय बहुविधि बंदुरवाल
सिरि सकण्णइ सूरिवरी सरसइ कंठाभरणु
सुगुरु भवणि पट्टिहि ठविउ पदमसूरिहि सुविरयसु
सुगपहाणु जिणपदमसूरे नामु ठविउ सुपवित्त
आवंघिय सुर नररमणि जय जयकार करंति

संघ वर्णन और नारियों का उल्लास, रास तथा नृत्य गीत मंगलाचार आदि का वर्णन देखिए:-

मिलिउ सदिदिसि मिलिउ बहु विहि संघ अपारु
देराउरि वर नयरि सुर बद्धिय गव्वंति अंबरु
नच्चंतिय वर रमणि हावि भावि चिवलय सुन्दर
घय हणु ठणि सुमणरउ विहसिउ बहुगमहोव
जय जय सद्दु बहुलिउ सिहु लणि सुहा चमोद

--- --- ---

तिहुयणि जय जयकारउ सुरिउ पडिगहु सूरते
बहु बविसह बहुवीर भट नारिय अहविदिह परे

--- --- ---

वर वस्था भरणेण पूरिय मगुगण दीण जण
धवलइ मुवणु जसेण सुपरि साहु हरिपालु जिहम
नाचइ अवलीय बाल संप सवद बाजइ सुपरे
घरिघरि मंगाचार घरि घरि गूडिअ ऊंभविय
उदयउ कलि अकलंकु पाट तिलकु जिणकुशल सूरि
जिम सासणि मार्यंडु, जयवन्तउ जिण पदम सूरे

--- --- ---

जिम तारायणि चंदु सहसनयण उत्तम सुरह
चिंतामणि रयणाह तिम सुहगुरु गुरूयउ गुणह
नवरस देसणवाणि सवणंजलि जे नर पियहि
मणुय जम्मु संसारि सहलउ किउ इत्थु कलितिहि
जाम गयण ससि सूर धरणि जाम थिर मेरु गिरि
विहि संघह संजटतु ताम जयउ जिणपदम सूरे

इस प्रकार उक्त उद्धरणों से कृति के आध्यात्मिक विवाह का महत्व समझा जा सकता है। काव्य अधिक सुन्दर नहीं पर भाषा की सरलता व तत्समता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार का सं० १३८९ में लिखित कवि धर्मकलश का जिनकुशलसूरि पट्टाभिषेक रास मिलता है। यह कृति भी इसी तरह गेय है तथा वस्तु विन्यास, और वर्णन पद्धति आदि में दोनों का पर्याप्त साम्य है उसका विषय भी पट्टाभिषेक ही है। दोनों रचनाएं ऐतिहासिक हैं तथा १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का प्रतिनिधित्व करती हैं।

-: कुमारपाल रास :-[1]

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विरचित रास रचनाओं में एक प्रसिद्ध रचना देवप्रभ विरचित कुमारपाल रास है। इस रचना का सम्पादन डा० भोगीलाल सांडेसरा ने किया था और मुनिजिनविजय ने इस रचना को प्रकाशित किया।[2] प्रस्तुत रचना एक ऐतिहासिक काव्य है जिसका प्रमुख विषय राजा कुमारपाल के वैभव, राज्य, उदारता, प्रदर्शन तथा संघ वर्णन है। प्रस्तुत रासकी अंतिम कड़ी में कवि देवप्रभगणि का नाम मिलता है। बहिर्साक्ष्य में भी देव प्रभगणि का नाम मिल जाता है। पाटण के संघवी मुहल्ले के जैन ज्ञान भंडार की सं० १४३५ में लिखी हुई पार्श्वनाथ चरित्र की प्रशस्ति में सोमतिलक सूरि के शिष्य मंडल में देवप्रभगणि का नाम मिलताहै।[3] काव्य की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसकी नकल सं० १५५८ के चैत्र सुद ३ शुक्रवार को की गई था भी स्पष्ट होता है कि कुलमंडन सूरि जो मुग्धाव बोधि औक्तिक के लेखक है, देवप्रभ के समकालीन थे। क्योंकि मुग्धावबोध औक्तिक का रचना काल सं० १४५० है अतः यह अनुमान किया जासकता है कि इस रास की रचना १५वीं शताब्दी के प्रथम दशक या द्वितीय दशक मेंहुई होगी।

पूरी रचना एक सरस काव्य है, कवि के पद लालित्य और काव्य प्रवाह में कहीं भी शैथिल्य नहीं है। ४३ कड़ियों में पूरी रचना समाप्त हुई है। रचना की काव्यात्मकता उल्लेखनीय है। कवि ने काव्य का प्रारम्भ ही महावीर, गौतम स्वामी, सरस्वती, कपर्दी-यक्ष अम्बिका देवी की विनय तथा नमस्कार द्वारा किया है।

कुमारपाल अजातशत्रु बनकर रहे। उनके राज्य का प्रभाव तपोवन की भांति था। कुमार पाल की अमारि घोषणा से मनुष्यों ने तो क्या पशु पक्षियों तक ने अपनी पारस्परिक स्वभाव शत्रुता छोड़कर सर्वत्र अहिंसा का साम्राज्य स्थापित किया पशुओं में कछेरे, भेड़ खरगोश, हिरन, भैंसे, बारहसींगा, सूअर चीते आदि को

१- भारतीय विद्या: सं० मुनिजिनविजय, भाग १ अंक ३ सं० १९९८ पृ० ३१३-३२४
२- वही
३- वही पृ० ३१३

मरवाना बन्द करवा दिया यहाँ तक कि जूं और खटमल भी मारना पाप समझा गया। हिरनियों के समूह सुखपूर्वक केलि करने लगे पिंजरे के तोता मैना पक्षी सुख से रहने लगे। पक्षियों में भी यह चर्चा रहती कि आजकल पानी की मछलियों का भी अहेर बन्द है। कुमारपाल के राज्य की तुलना "बिहारी के जगतु तपोवन सो कियौ दीरघ दाघ निदाघ- से हो सकती थी। उसका राज्य में साँप कौओं और यहां तक कि कुत्तों को भी कोई नहीं मारता था। कवि ने कितनी सरसता से इस प्रकार के चित्र उतारे हैं:-

पहिलउं धरीइ धज पताक गिरि मेरु समाणा,
कुमर विहारह करउ भगति सवि मंडलि कराणा
जोवन थंभे पूतली य मई मयगल दीठा,
संभलि कुमर नरिंद राय हेम सूरि बुझावइ
आहेडउ वारिउ सयलदेसि राय धम्मकरावइ,
अरिट्ठ नेमि जिम कुमर पालि ढोगरउ दिवारिउ
छाली बोकड़ करइ वात गाडरि बंधावई,
सउला मावइ कलियभरे अजरामर हुआ
लहिया दहिया करई आलि पारेवइ सहीआ,
महसा भमइ हरिण रोझ सूअर भमइ संबर
चीवा कुमर नरिंद रायि रंगि नाचई तीतर,
जूय न मारुय कीड कोइ कहवि न मारइ,
हरिया हरिणी करई केलि सुवि हेमसूरि वारइ
लावां लवइं पंचरविचां सुवि अच्छइं मूकलि,
सूडिठा नवि पंजरइ चिलां सुख मानइं कीडलि
कावरि भमइ डोल भमइ सांमलि सू वारइ,
पाणी माहि वि मच्छली य लोधानवि मारइ
सारसरी वरि हंस लवइ मोरडीय बधावई,
अच्छई होवै कुमर पाल अम्ह मरण न आवई

थाग सप अनइ सुपह पाउ कोइ नवि पालइ
न मरउं कुंवर नरिंद राजि पचिडीयडउं मावइ

(४-९)

ऐसा था कुमारपाल का राज्य। जिस शिकार से दशरथ को पुत्र वियोग होकर मरना पड़ा उसे कुमारपाल ने बन्द करवा दिया जिस द्युत क्रीड़ा ने नल को सब कुछ हार जाना पड़ा, कुमार पाल के राज्य में ऐसा जुआ हेय समझा गया। जिस मद्यके कारण समस्त यादवकुल विनाश को प्राप्त हो गया। उसे लोग कुमार पाल के राज्य में स्पर्श करना भी पापसमझने लगे। मांस भक्षण से जिस प्रकार सुबाहु और श्रेणिक नामक राजाओं को दुख मिला उसका कुमारपाल ने दृढ़ निषेध किया। गणिका गमन घोर पाप था। वेश्यायें सती स्त्रियों की भांति बन गई और जिन पूजन करने लगी। चोरों का उपद्रव संपूर्ण देशमें कहीं भी नहीं था। जानी नगर में तीन बार विहरण होता । विविध प्रसादों तथा विहारों से राजा ने अनहिलवाड की शोभा में अपूर्व वृद्धि की। कवि ने इस वर्णन को अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। काव्यगत सरसता शब्द चयन और वर्णन की चामत्कारिकता उल्लेखनीय है। उक्ति का अनुप्रायन काव्य की सरसतामें और अधिक वृद्धि कर देती है:-

पारधि जीवन पोषीअ ए बहु पातक योगु
पारधि केलउ दशरथ हूउ पुत्र वियोगु
कुमर नरेसर निवरषिउ आहेडउ भारई
जलचर थलचर, खचरजीव हुय कोइ न मारई

--- --- ---

जूअ खडवि हूउ नल नरिंद खमंति वियोगु
जउ विलसंता हार बलिउ पंडव मनि सोगु
देखी देवी जूअन जूअ सर्व नवि केलइधारि,
जूआरि नवि कूंप रमई, नवि कोडी मारि

मंडवसणि सावासराय पामिउ दुहवेणीय,
दीठी मरगह रणीय भूमि नवइ पुण सेणिय
आभिव भोयण रणइ दंडि बत्तीस विहार,
राय करावइ कुमर पाल जगि त्रिभुवन सार
द्यूत मदिरापान रणइ जादव कुल नासो,
किरिउं दीवायणि दुट्ठ देवि बारवइ विणासो
राया देवइं नीच सवे शिव मदिरा मेल्हइं,
मतवाला नवि मधु करइं भूंमलीन केलइं
गणिका गमणु निवारइं ए नरवइ निय राजि,
छंडवि वेशावसण लोग लागसवि काजि
वेशा कीधी माइ सरिस सइं कुमरडराय
तं पण पूजइं जिमइ मुणिव वंदइ गुरुपाय
वेशावसणिइ गमइ अरथ जो पुरिस अकन्नउ,
पाछइ फूरिइ मन हमाहि जिम वणीय कयन्नउ

(११:१७)

नगर वर्णन और संघ वर्णन में कवि अपनी सानी नहीं रखता। भवनों के निर्माण कला उस समय अपनी उत्कृष्टता को प्राप्त थी। विविध धातुओं से निर्मित अनेक राजाओं से सुसज्जित कुमार पाल के संघ का ऐश्वर्य अवर्णनीय था। विविध नृत्य गान, लय ताल और सुख सामग्री सबों का चमत्कार संघ की शोभा बढ़ाने लगे। लोगों को उसके इस रूप को देखकर भरत, या दशार्णभद्र या श्रीकृष्ण या नल या स्वयं इन्द्र है इस प्रकार का संदेह होने लगा। अन्ततः इस प्रकार संघ धीरे धीरे शत्रुंजय पहुँचा। वहां पर नेमिनाथ की गिरनार में, वनस्थली में महावीर की, मांगरोल में पार्श्वनाथ की, दीव कोडीनार में सोमनाथ तथा पाटण में पार्श्वनाथ की यात्रायें की और संघ पुनः लौटा।

वर्णन की स्वाभाविकता, भाषा की सरलता, जन भाषा होने के कारण ऐतिहासिक अनुप्रास तथा विविध लोकोक्तियों का संगुम्फन प्रस्तुत रास का महत्व

इसी क्रम का दृश्य प्रस्तुत किया है :-

> वालीय गयवड माल्हती, व भारती मद वारि,
> सोभी अंता तुरय लाख करहा सई ज्यारि
> राउत पायक राजलोक अनइ मागणहार
> ईस विवज्जिय मिच्छिलोक कोइ जाणइ सार
> कि अह बालिउ भरत राउ? कि सगर नरिंदो
> राया संपइ? दसन भट्ट? कि कन्ह गोविंदो?
> राया संपइ? दसन भ
> कि वा दीसइ नल नरिंदु कि देवहराउ,
> प्रंति उपज्जइ जोयंता य नरवइ कुमुदाउ (३०-३१)

कवि ने पूरा काव्य रोला छंदों में लिखा है। बीच में, वस्तु छंद का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है। वस्तु छंद का एक उदाहरण देखिए:-

> मारि वारीउ मारि वारीय देस अट्ठारि
> देस विदेसह मेलि करि भविय लोक जिणि जयकारिय
> बड दसइं वालीसइं राय विहार किय रिद्धिय धारिय
> मोगड मूंकी वेम विय जगि लीधउ जसवाउ
> हूय न होसिइ चिहु जुगे कुमरउ सरिसउ राय (३६)

वस्तुतः पूरी रचना को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह काव्य कुमारपाल का चरित्र काव्य है, जिसमें उसके जीवन की विविध घटनाओं और महत्वपूर्ण कार्यों का सुन्दर चित्र कवि ने उतारे हैं। काव्य में अहिंसा की विजय सर्वत्र परिलक्षित होती है। कवि ने अहिंसा राज्य का विविध उदाहरणों और स्वाभावगत शत्रुओं के पारस्परिक मेल से स्पष्ट किया है, जो सामाजिक शान्ति का प्रतीक है। सांस्कृतिक दृष्टि से तथा धर्म और इतिहास की दृष्टि से भी प्रस्तुत रचना महत्वपूर्ण है। कवि ने रचना में काशी कोसल मगध, कौशाम्बी, वत्स, मरहट्ठ, मालव, लाट, सौरीपुर, कच्छ, गुजरात, सिन्धु सपालक, काश्मीर कुरु कीर, जंभरि, कान्हउ, जालंधर आदि देशों तथा नगरों के राजाओं का उल्लेख किया

है।संघ उत्सव वर्णन जैन समाज का सदैव से ही सांस्कृतिक पर्व रहा है। कवि ने पूर्ण कौशल के साथ इस छोटे से काव्य में सबको सजाया है।रचना की भाषा सरल राजस्थानी है जिसपर अपभ्रंश का यत्र तत्र प्रवाह परिलक्षित होता है।मदिरा, पान, जुआ, वेश्यागमन, चोरी आदि सामाजिक कुकृत्यों को भी कवि प्रकाश में लाया है।अतः रास सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस काव्य को कवि ने यद्यपि रास संज्ञा दी है। परन्तु रास के नाम पर केवल कालान्तर में परिवर्तित प्रवृत्ति अर्थात् चरित्र प्रकाशन को छोड़कर अन्यबाते नहीं मिलती हैं। संभवतः १५वीं शताब्दी तक रास संज्ञक रचनाओं के शिल्प में चरित्र काव्यों को ही स्थान दिया जाता होगा। क्योंकि रचना में रास, नृत्य, लय,युगल नृत्य आदि वर्णन नहीं मिलते। न कोई रास छंद ही मिलता है अतः यह कहा जा सकता है कि रास, ताल, या युगल नृत्य के वर्णन तथा रास छन्द की उपेक्षा कालान्तर में होना प्रारम्भ हो गया होगा और रास संज्ञा केवल सामान्य चरित्र आख्यानक काव्यों को भी दे दी जाती होगी। साथ ही उसका नामकरण पूर्व रासकाव्यों की भांति रास संज्ञक ही रखा जाता होगा।

रचना के अन्त में कवि ने भरत वाक्यों के रूप में कुमारपाल के इस रास काव्य को युगों युगों तक प्रचारित रहने और अमर होने का आशीर्वाद दिया है। जब तक सुमेरु पर्वत अपने स्थान से न चल पड़े, जब तक सूर्यचंद्र रहें, जब तक शेषनाग भूमि और सागर का भार धारण करता रहे, और जब तक संसार में धर्म विद्यमान है तथा जब तक ध्रुव तारा निश्चलता को प्राप्त है तब तक कुमार पाल राजा का यह रास संसार में आनन्द को प्राप्त करे:-

मेरु ठामह न चलइ जाम, जां चंद-दिवायर
सेसनागु जां धरइ भूमि जां चालई सायर
जम्मह मिलइ जा जगह माथि धीर निश्चल होए,
धीर निश्चल होय,
कुमरह रायह तणउ रासु तां नंदउ लोय

इस प्रकार इनवाक्यों द्वारा कवि ने रास को चिरंतन जिवन्तम सम्पन्न किया है। पूरी कृति सरस तथा छटाधार है। भाषा शैली प्रासादिक है, मधुर तथा भावपूर्ण

है और यथार्थअर्थ प्रदान करता है।कुल मिलाकर रचना छोटी होते हुए भी रास संज्ञक रचनाओं के शिल्प में वैचित्र्य प्रस्तुत करता है। अतः कृति का महत्व और भी बढ़ जाता है।

: पंचपाण्डव चरित रासु :[1]

१४वीं शताब्दी में प्रबन्धात्मक शैली में लिखे गए समरारास के पश्चात् १५वीं शताब्दी की सबसे प्रमुख कृति श्री शालिभद्रसूरि विरचित पंचपान्डव चरित रासु है। रास परम्परा की यह रास एक प्रमुख कड़ी है। विद्वानों ने इस कृति पर किंचित प्रकाश डाला अवश्य है परन्तु स्वतंत्र रूपमें हमें इस रचना का पाठ हाल ही में प्रकाशित गुर्जर रासावली से प्राप्त होता है। सम्पादकों ने इस पाठ को बड़ौदा की एक प्राचीन प्रति में उपलब्ध होने वाले पाठों में से एक कहा है। रचना की प्रति महाराज जसविजय के पास सुरक्षित है।

ये शालिभद्रसूरि भरतेश्वर बाहुबली के रचयिता से भिन्न कवि हैं। अब तक उपलब्ध रासाओं में पंचपान्डव चरित रासु ने वर्ण्य विषय, कथा-वस्तु छंद और भाषा सब दृष्टियों से नवीन योग दिया है। शालिभद्रसूरि पूर्णिमागच्छ के थे। यह रास नर्मदा के किनारे स्थित नादउद्र नामक नगर में लिखा गया। कवि ने स्वयं भी अपने समय के लिए परिचय दिया है जिसका उल्लेख सम्पादकीय में भी मिलता है[3]।

आदिकालीन हिन्दी जैन रचनाओं में अब तक हमें धार्मिक कथाओं चरित नायकों, पुराण पुरुषों, उपदेशों आदि से सम्बन्धित विषय वस्तु का ही विवेचन मिलता है परन्तु पौराणिक आख्यान को कथावस्तु के रूप में स्वीकार करने वाले श्री शालिभद्रसूरि ही हैं।

प्रस्तुत रास में पाँचों पाण्डवों के चरित्र के रूप में सम्पूर्ण महाभारत का सार है। पाण्डव चरित्र देवप्रभसूरि द्वारा विरचित संस्कृत काव्यों में भी मिलता है।

१- पंचपान्डव चरित रासु: गुर्जर रासावली जी०ओ०एस०सी-११८-बड़ौदा पृ०१-३४
२- आपणा कविओ: श्री के०का० शास्त्री पृ० २११
३- गु० रासावली: पृ० १

गुजराती विद्वानों ने भी महाभारत लिखा है।पंच पाण्डव चरित रासु की कथा महाभारत की कथा से मेल तो खाती है,परन्तु कुछ रचना स्थलों घटनाओं और प्रमुख पात्रों को कवि ने अपने जैन धर्मानुसार मोड़ा है तथा उसी के अनुसार उसकी सृष्टि भी की है। रासकार ने प्रमुख चरित्रों को जैन परम्पराओं के ताने बाने में उलझाकर कथासूत्र प्रस्तुत किया है।

पूरी कथा १५ ठवणि में विभक्त है। ठवणि खण्ड सर्ग विभाजन का सूचक है।भरतेश्वर बाहुबली रास,[1] मयणरेहारास[2] आदि में ठवणि का प्रयोग मिल जाता है। प्रत्येक ठवणि के बाद रासकार ने वस्तु छंद लिया है। सिर्फ अंतिम ठवणि को छोड़कर जिसमें उसने वस्तु छंद अलग नहीं रखा। कवि ने ठवणि और वस्तु को मिला दिया है।

कवि ने रास की कथा का प्रारम्भ नेमिजिनेंद्र तथा सरस्वती की वंदना करने के पश्चात् द्वितीय ठवणि से ही किया है। गंगा और शान्तनु की वंदना करने के पश्चात् द्वितीय ठवणि से ही किया है। गंगा और शान्तनु का प्रेम तथा गंगा का उनकी अहेरी प्रकृति से रूठ जाना व उन दोनों के पुत्र गांगेय सहित रूठ कर मैके चले जाने का वर्णन मिलता है।जो आश्रम में शान्तनु से शिकार के लिए विरोध करता है:-

> हरिण एक हरिणी सुं खेलइ,
> कोयल सवर्षि हरिणी बोलइ पेखि पेखि प्रिय पारधीउ
> मिठु मिठु राउ अहेडइ चल्लइ
> रोपि चडी राणी इम बुल्लइ, प्रियतम पारिधि मन करेउ
> चतुर कला गाउला चलावइ
> जीव दया जिनविधि रहावइ, बोधि कारण पुणि तणइ[3]

वस्तुतः जिन धर्म ही सच्चा धर्म है यह जानकर गंगानन्दन ने अहेरी पिता को अहेर से रोका एवं उनसे युद्ध करने को तैयार हो गया। गंगा ने आकर दोनों

१- भरतेश्वर बाहुबली रास: श्री गांधी २- हिन्दी अनुशीलन वर्ष अंक १-४पृ०१००-१०
३- पी०ओ०पाठ०-११ पृ० ३४

को शान्त किया। गंगा के न आने पर शान्तनु एक धीवर कन्या पर मुग्ध हो जाता है और राजा को प्रतिश्रुत करा धीवर अपनी कन्या सत्यवती का विवाह उनके साथ कर देता है।वर्णन की सरलता दृष्टव्य है:-

संभलि सामी अम्ह घर सुरती,तुम घरि अछइ गंगा सुरती
मई बेटी जउ तुम्हह देवी, तउतेह हर्षि दूख मरेवी
कुरुवंसह केरउ मंडणु, राज कोसि गंगा नंदणु
धीम महारी तणा जिवाल ते सवि पामइ दुख कराल [1]

सत्यवती के दो लड़कों में से पहला कर्मों के दोष से बचपन में ही मर गया व दूसरा कुमार विचित्र वीर्य हुआ जिसने काशीराज की अंबा, अंबाला और अंबालिका तीन कन्याओं से विवाह किया। जिसके क्रमशः विदुर,पाण्डुव धृतराष्ट्र हुए। धृतराष्ट्र ने गांधारी से और पाण्डु ने माद्री सेविवाह किया। कुन्ती के कर्ण कुमारी अवस्था में उत्पन्न हुआ इसकी अंतर्कथा जैन महापुराण में [2] एक विद्याधर की अंगूठी से सम्बन्धित है। यहां कवि ने इतना ही वर्णन किया है कि किस प्रकार पुण्यवंत भी पाप करते है।कर्ण मंजूषा में डालकर गंगा में बहा दिया गया:-

परिणीय आपी पंड कुमरि आपणीय वि धवणी
पडिभर वलि पर्कटि हुई पुत्त पाकळ रमणी
गंग प्रवाहिउ रतन धाहि भाषेउ मंजूषं
कीयइ पातक पुन्यवंति कई काज कि दीवं

इधर गांधारी के १०० कौरव, पाण्डु के ५ पुत्र पाण्डवों से ईर्ष्या रखने लगे। अर्जुन धनुर्विद्या और राधावेध में दक्ष ठहरे।

चतुर्थ ठवणि में कवि ने अखाड़े में राजपुत्रों के शौर्य प्रदर्शन का आयोजन मंच पर किया। युधिष्ठिर तो अजातशत्रु थे, भीम दुर्योधन में गदा-युद्ध हुआ, अर्जुन

१- वही पृ० १

२- उत्तरपुराण पृ० ३३५ श्लोक सं० १०४ श्रीकृष्णाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी।

और कर्ण में दुवन्द अर्जुन के इन वाकू बाणों से नहीं हो सका:-

अरजुन बोलइ, रे अकुलीन, अरजुन कूकिहि मई हुं हीन

आरजुन सरसी भेहि म कीजइ नियकुल मानिं गरव बहीजइ

इम आपणउं घणूं बखाण, बोलि म नियकुल तणुं प्रमाणुं

मई गंगा ऊमगइ नीय, लाधी रतन भरी मंजूस [१]

अखाड़े में भी अर्जुन विजयी हुए। इधर द्रौपदी का स्वयंवर होता है और पांचों पतियों से विवाह होने का कारण चारणमुनिवृन्द को पूर्वजन्म से सम्बन्धित बतलाते हैं। प्रत्येक पाण्डव की नारद द्रौपदी के साथ अवधि बांध देते है, उल्लंघन पर अर्जुन को १२ वर्ष वन में रहना पड़ता है जहां वे वेतढ्या पर्वत पर आदिनाथ का अभिनन्दन करते हैं। वहां अपने मित्र चन्द्रचूड़ की बहिन की वे सहायता करते हैं। आगे कवि ने पाण्डवों का जुआ में अपकर्ष व वनवास दिखाया है। सभा में द्रौपदी का वस्त्र हरण होता है।आगे वनवास में भीम का राक्षसों को मारना, लाक्षागृह से बचना, भीम का हिडिम्बा से विवाह वर्णन मिलता है।

दुर्योधन पाण्डवों से प्रियंवद को भेजकर पुनः सहायता मांगता है द्रौपदी क्रुद्ध होती है। फिर अर्जुन विद्यालाभ विद्याधर के लड़के को हराकर इन्द्र से वस्त्र प्राप्त करते है। दुर्योधन की बहिन के प्रति ने द्रौपदी का हरण किया अर्जुन उसे भी हराता है।दुर्योधन ने पाण्डवों के विनाश की घोषणा की। एक पुरोहित के लड़के ने कृत्या राक्षसी उन पर छोड़ी। नारद की आज्ञा से पाण्डव साधना में लग गए। विराट के पास पाण्डवों का अज्ञातवास रहा। कृष्ण सुलहकर दुर्योधन के पास गए। दुर्यो न माना। भयंकर युद्ध हुआ। अठ्ठारह अक्षौहिणी काम आये।अन्तिम अवधि में सब पाण्डव जैन दीक्षा लेते हैं।नेमिनाथ उनको प्रवज्या देते हैं।परीक्षित को हस्तिनापुर का राजा बनाकर सब भीम इन्हें दीक्षा देकर उनका पूर्व भव, दुरति, संतन, देव, दुर्मति और दुष्ट आदि नामों से स्पष्ट करता है।उन सबने यशोधर के समक्ष साधु वृत्ति स्वीकार की तथा अनुत्तर स्वर्ग से च्युत होकर पाण्डव की

१- गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़ १३।

और अब पूर्णता को प्राप्त हुए।

इस प्रकार सम्पूर्ण महाभारत को कवि ने ७९५ छंदों में संजोया है।भाषा की सरलता,जन साधारण के लिए रास का बोधगम्य होना तथा पौराणिक कथानक को नई रेखाओं में बांधना कवि की प्रतिभा के द्योतक है।पात्र थोड़े है। पांचों पान्डव द्रौपदी, कुन्ती दुर्योधन कर्ण आदि। पात्रों से यह ज्ञात होता है कि कवि ने साधु असाधु दोनों प्रकार के पात्रों का वर्णन कर असत पर सत की विजय दिखाई है। कवि के प्रयोग मौलिक है। जो भाषा की दृष्टि से मध्य कालीन गुजराती या राजस्थानी के मौलिक प्रयोगों सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत करते हैं।

जहां तक कथा रूढ़ि और कथा परम्परा का प्रश्न है कवि ने दोनों का सम्यक निर्वाह मौलिक अनुदान के रूप में किया है। पान्डवों की कथा परम्परा का प्रारम्भ अपभ्रंश साहित्य से ही हो जाता है। ओरियन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना में सुरक्षित हरिवंश पुराण के यादव कुरु युद्ध और उत्तर इन चार कांडों में कुरु यादव कांडों में पान्डव चरित्र वर्णन मिल जाता है।[१] जैन महापुराण में[२] भी पान्डवों की कथा का नेमिनाथ के प्रसंग में आंशिक उल्लेख मिलता है।आमेर भंडार में यशःकीर्ति का लिखा महाकाव्य लेखक को मिला है। जिसमें कवि ने १४ सन्धियों में पान्डव कथा का वर्णन किया है। इस प्रकार कथा परम्पराओं (   ) के रूप क्रमशः परिवर्तित होते रहे हैं। प्रस्तुत रास में रचनाकार ने अनेक स्थलों पर कथा में मौलिक घटनाओं का संयोजन किया है तथा मनोवांछित मोड़ दिए हैं। जो घटना में वैचित्र्य तथा कथा में मौलिकता की सृष्टि करते है तथा वैष्णव महाभारत से भिन्न है।कवि ने कथा का आधार महाभारत ही रखा है पर उसकी परिवर्तित कथाओं पर जैन धर्म व अहिंसा का प्रभाव सर्वत्र स्पष्ट है कुछ नवीन घटनाएं इस प्रकार है:-

१- गंगा का शान्तनु की क्रूर प्रवृत्ति का विरोध करना तथा रुठ कर पितृ-गृहगमन, गांगेय का अहिंसा प्रेमी होना व जैन धर्म स्वीकार करना तथा

अपने हिंसक पिता से युद्ध करना। कुन्ती व पाण्डु के पूर्व प्रेम व संतानोत्पत्ति का प्रसंग। कुंवर परीक्षा व राधावेध का प्रसंग।

२- द्रौपदी के स्वयंवर में उसके हाथ से जयमाला पांचों पाण्डवों के गले में जा गिरना और चारण मुनि का द्रुपद को द्रौपदी का पूर्व भव समझाकर अदृश्य होना।[१] हरिवंश पुराण में कवि ने अहिंसा से प्रभावित हो मत्स्य वेधक के स्थान पर धनुष चढ़ाने की ही कल्पना की है[२] पर प्रस्तुत रास में मत्स्य वेध भी है व जयमाला वरण भी।

३- अर्जुन का वनवास में वैतढ्य (वेयड्ढह) पर्वत पर जाकर आदिनाथ को नमन करना और अपने मणिचूड़ की बहिन को छुड़ाकर पुनः उसके पति को देना।

४- युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ में शान्ति जिनेन्द्र की प्रतिमा का अवस्थापन करना[३] प्रियंवद का प्रसंग तथा पाण्डवों का पुनः अपने स्वरूप को ग्रहण करना।

५- पाण्डवों के जाने पर कुन्ती व द्रौपदी का नमोकार मंत्र का ध्यान करना। पुरोहित का पाण्डवों पर कृत्या छोड़ना तथा पुलिंद का आकर कृत्या से उनकी रक्षा करना। कालकुमार व जीव यशा का अग्नि विसर्जन।

६- पाण्डवों को नेमिनाथ के उपदेशों से निर्वेद होना तथा दीक्षा ग्रहण। धर्म घोष का पूर्व भव बताना व उनको निर्वाण प्राप्ति होना आदि घटनाएं मौलिक हैं।

रास में अनेक वर्णन मिलते हैं जो जन भाषा में हैं। सरलता और सहज

१-

२- अपभ्रंश साहित्य: श्री कोछड़ पृ० १८

३-

अभिव्यक्ति ही इस काव्य की कसौटी है।राजपुत्रों के स्वच्छन्द युद्ध उत्साहमूलक मुद्राओं का चित्रण बड़े प्रभावशाली बन पड़े हैं:-

केवि दिखाडइं ऊंडा सरगु, केवि तुरंगम आपइ मरगु
चक्र छुरी किवि घायल घालइ, किवि हथियार पडंता झालइ
पहिलुं सरमइ धरमह पुत्रो,तेह रहई नवि कोइ सत्रो
अठिउ भीमु गदा भेरवउ, तउ दुर्योधन भिडइ तुरंतउ

----- --- ---

लोह पुरुष छइ चक्रि भयंकउ, पंच बाणि आहणइ तुरंतउ
राधा वेधु करीउ दिखाउइ, तिणउ न कोई तीण अखाउइ
तीछे तूंगी भठइ करगु, अरजुनु पामइ मूंकरि भागु
रोहि ऊभइ बेउ मूक्या, रणरसु जोई देवी देवा
धरिणि धसक्कइ गाजइ गयणु हरिइ जीतइ जय जयवयणु
हीया धसक्कइ कायर लोक पेसतणा मन करइ सशोक
जाणे वीज पडि(अ) अकालि जाणे गुंज झुम्बा कालिकाल(ठवणी ५ पृ०१४)

कवि ने स्वयंवर, नगर तोरण, अनेक वाद्यों और उत्सवों का वर्णन बड़ा प्रवाहपूर्ण बन पड़ा है:-

वाजीय संख मुहिर नीसाण, जिमवरो रैणिहि छाईय
पहुतउ वाणीउ पंडु नरिंदु,उच्छव बहूलव वासलो य
ऊलीया तोरण बंदरवाल नवी ऊलोचिहि छाईं य
घणि घण धूतली तोरण थंभ मोतिह चउक पूराविया य
कूंकम चंदणि छडउ दिवारि घरि घरि तोरण ऊलीयां य
नयरि पइसारउं पंडु नरिंदं किरि अमरावरि अवतरी य

कवि के स्त्री और पुरुष दोनों के रूप वर्णन में कलात्मकता मिलती है। पांचाली का श्रृंगार वर्णन, अत्यन्त स्पृहणीय है।- लोने नयन, सुरभित कबरी, सिन्दूरी तिलक, कर के कंकन, नुपुरों की रूनझुन और तांबूल की भांति लाल अधर सभी मे

नूतनता है।स्त्री और पुरुष दोनों के रूप वर्णन देखिए:-

द्रुपद रायह द्रुपद रायह तणी कुंयरि

तसु रूपह जामतिहिं जिहउं भूयणि कइ नारि नत्थीय

सीसी कपुंवरि कुसुमह झुंपु काचि कनेउर झलहलई ए

नयण सलूणीय काजल रेह तिलउ कस्तूरीय भणि घडीय

करयले कंकण भणि झमकाइ आदर कालीय पहिरण ए

अहर तंबोलीय द्रुपदी बाल, पाय नेउर रुणझुणई ए

और पुरुष वर्णन में:-

सीसि चमर बंबाल अनु कंठि कुसुमह माल

अनुकंठि कुसुमह माल फिरि हुं भयणि आयणि आवीइ

कोइ इंदु चंदु नरिंदु सईवरि सउहु इम संभावीय इ (ठवणी ५ पृ० ५)

द्यूत क्रीड़ा में हारे हुए पाण्डवों को और सभा में द्रौपदी को केश पकड़ कर खींच कर लाने का कवि ने अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। भाषा की सरलता और वर्णन की चित्रात्मकता से वर्णन और भी सजीव हो उठा है:-

राखिउ ए राउ बूठिहुं विदुरह वयणु न मानीउं ए

हारीया ए हाथियं थाट भाईय हारीय राजिसउं

हारीअए द्रुपदह धीय अखालिय सवि आभरण ए

साभीय ए केशि धरेविदेवि दुसासणि खूणिविहिए

आणीय ए सभा मंझारि द्रुरीय दुर्योधन इम भणं ए

आविन ए आवि उरसंगि द्रुपदि बइसि दुकवणं ए

इम भणीय खिवइ वरात्रु ए (-) चूले हुं कतिवउं ए

कुपीउ ए कावली भीम अट्ठोत्तर सउ साठीय ए (ठवणी ६ पृ० १७)

और भी अनेक कारुणात्मक स्थल है।द्रौपदी का करुणाजनक वर्णन कवि ने किया है। कृष्ण के दूत बनकर जाने पर भी दुर्योधन उन्हें कुल सदुषी सूमयहिं एक पाय खिवण न पावई सूच्य उत्तर देता है तो महायुद्ध की तैयारियाँ होती है सारा दृश्य युद्ध में बदल जाता है।युद्ध वर्णन, वीरता एवं उत्साह अवर्णनीय चित्र कवि

सल्यु शकुनि बेउ हणीय बेगि नकुलिं सहदेवि

सरवर मांहि कढावीयउ दुर्योधनु देवि

राइ सनाहु समोपीयउ भीमिहिं सु भिडय

गदा पहरि हणीय जांघ मनि साहु सु पीडिउ

--- --- ---

सीसु विखंडी लयउ तासु छेदीउ छलु साधीउ

पाय पराभव मइ प्रवेसि गैहि मागु विराधीउ (पृ० ३०-३१)

इस प्रकार शृंगार, करूण, वीर, रौद्र, वीभत्स आदि भावों के चित्र खींच कर अन्त में पान्डवों की जैन दीक्षा द्वारा सम्पूर्ण रास का समाहार शांत और निर्वेद भाव में कर दिया है। धर्म घोष का गठन उल्लेखनीय है:-

ऊपर्नु केवल नाणु सामीय ए नेमि जिणेसरहं ए

धांभली सामि बखाणु विरत् पहावय प्रभु घरइं ए

माहीय देसि अमारि मीखिक ए आईउ जिणु नमई ए

-- --- ---

सामीय गणहर पासि पांचह ए हरिखिहि प्रभु लिई ए

-- --- ---

सोलह गुरु धर्मघोषु सुख भवि ए पांच ए कुलवीय ए

बवइ ति अवलह मामि संयम ए पांच ए मासिया ए

करईउ संजु देखु गुणिक्क ए गुणक गुणागु ए

गुरुह कओवर पासि हरखिहिं ए पांच ए प्रभु धरइ

कनकावलि सुनु एकु कीयउ ए करइ रयणावली ए

मुकुतावलि [illegible] [illegible] ए सिंहनिकीलिड ए

पांचसु अंगिलि वर्धमानु सुनु तपीय अनुसरहिं समिगियाय

पवीसका गुणि पूवा पांचह ए भवि ए सिवपुर पामिसय

सांकली नेमिनिरवाणु वारस ए सबमइ गुणि मयणि

सेत्रुंजि सीसि चडि पांचह ए पांडव सिद्धिय सयाय (उमकी १५।८९-९०)

इस प्रकार उक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने कई घटनाओं का परंपरित वर्णन करते हुए भी मौलिक सृजन किया है।

प्रस्तुत रास के छंदों में बड़ा वैविध्य है। सम्पूर्ण रचना १५ ठवणि [1] में विभक्त किया गया है। इस रास की ठवणि में विशेषता यह है कि उसका अनुगमन वस्तु छंद करता है। भरतेश्वर बाहुबली रास के छंदों से इसका पर्याप्त साम्य है। प्रथम ठवणि या ठवणी में २२ कड़ियों में १६ १६ १३ मात्रायें हैं तथा २३वीं कड़ी में वस्तु छंद है। द्वितीय ठवणी में चौपाई तथा उसके साथ द्विपदी भी है अतः यह छंद मिश्र बंध कहा गया है [2] तृतीय में रोला है। चौथी पांचवी में दोहा चौपाई है। छठी ठवणी के समचरण में दोहा तथा विषम में चौपाई है। सम चरण के अन्त में ए मिलता है। देशी सवैया की भांति प्रयुक्त चार कड़िया भी इसी ठवणी में मिलती हैं। पुनः समचरण में दोहा और चार चरणों के साथ एक हरिगीतिका भी मिलता है। और अन्त में वस्तु छंद है। जिसके नाम से ही कथा का बोध होता है। [3] ७वीं में सोरठा और ८वीं २३ कड़ियों तक शुद्ध सोरठे मिलते हैं जिनके विषय पद में अनुप्रास मिलता है। [4] ९ वीं से १४वीं ठवणी तक चौपाई ही मिलती है। वस्तु छंद सबके साथ मिलता है। इस प्रकार कृति में छंदवैविध्य स्पष्ट है।

सूक्तियां:- रास में अनेक प्रसिद्ध सूक्तियां हैं जो उल्लेखनीय हैं :

(१) जिन रचनायक हीयई धरीयइ

१- गुर्जर रासावली: पचपंडव चरित रासु: पृ० १२-१४
३-

४- वही ग्रन्थ पृ० १०-११।

(२) क्रमि क्रमि कुल्वणि तिणि पसरीजइ कीजतणी ससिरेह जिम

(३) कीजइ पारकु पुयवंति कइ लाज किं रीसं

(४) वाधई पंचइ चंद जिम पंडव गुण गंभीर

(५) मंच चडया सोहइ जिमचंद

(६) कुंडल सरिसउ लाधो वालो, रंकु लहइ जिम रयण रूपालो

(७) किंहुं न कीजइ इणि अवसरि लाधइ परमवह

(८) देवु न गिणई देव गिणइ पुणुनइ पापु

संताप कुयणह करई पुणय हीन जिमराग रोलई

दारिद्र दुक्खु केह भरई तृष्णा किज्जि गिरि सिरह ढोलइ

(९) भिडइ सहट रहवडई सीस धड नह जिम नच्चई

हसई घुसई असवई वीर मेगल जिम मच्चइ

प्रस्तुत रास की भाषा सरल हिन्दी है। जिसमें प्राचीन राजस्थानी, पूनी, गुजराती आदि शब्दों की बहुतायत मिलती है।अपने भावों को सरलतासे व्यक्त कर देना और अपनी अभिव्यक्ति में पूर्ण ईमानदारी रखना तथा उसे क्लिष्टता हेबचाकर जन साधारण के लिए सुलभ बना देना ही सच्चे कवि एवं उसकी कविता की पहिचान होती है। यद्यपि इसमें अनावश्यक आलंकारिकता तथा कलाबाजियाँ नहींहै, पर जो भी है वह जनता का काव्य है। जिसमें सरलता है और उद्देश्य में मानव मात्र के लिए संदेश है। १५वीं शताब्दी के रासों में भरतेश्वर बाहुबली के बाद यही रास सबसे महत्वपूर्ण है। भाषा में तत्सम शब्दों की पदावली विशाल पैमाने पर मिलती है।साथ ही अपभ्रंश के शब्दों के यत्र तत्र उदाहरण मिल जाते हैं। सरल हिन्दी के कुछ उदाहरण इस प्रकार है।-

(१) आपइ कुलाधर जाति हु जीतो पवह पापुडय तपउ वरीतो

(२) हरिणु वन हरिणी हु हेकइ, कोमल वयणिं हरिणी बोलइ पेखि पेखि प्रिय पारधीउ

(३) पूछइ राजा कहिस्यहि ववणि, इणि वणि वसीइ कारणि कवणि,

बोलइ मंत्र महा सहीय।

(४) साचउ जाणइ जिण धर्म मार्गों सउमनि सुवण लाइ विरागो

गंगानन्दणु वणि वसय

(५) ए अम्हारा कुल सिणगारी, सामी अछइ कुंआरी

कुरु वसह केरउ मंडणु,राय करेसि कीआनंदणु।

(६) हथिणा उरि पुरि कुर नरिंद केरो कुल मंडणु

सहस्त्रिहिं पंडु सुहाग सीलु हउ नरवइ संतणु

(७) जनम महोछवु सुरकरइ नाचइ अपछर नाल

दुंदुहि वाजइ गयणयले घरणिहि ताल कसाल

(८) विसु दीघउं दुरयोधनिहिं भीमह भोजन माहि,

अमृत हुइनइ परिणामिउ पुन्निहि दुरित पुलाइ

(९) अरजुन बोलइ रे अकुलीन अरजुन भुकिसि मई हुं हीन

थिगुरि थिगुरि दैव विलासु,पंचह पंडव हुइ वणवासु

(१०) रे रावस सुण आगलि बाल मारिसि तउहू पूगउ काल

वस्तुतः आदिकालीन हिन्दी भाषा का शास्त्रीय रूप धीरे धीरे किस तरह किन किन इकाइयों (   ) से बनता गया उन सब स्त्रोतों की सूचना हमें इस कृति से उपलब्ध हो जाती है।इस रास का उद्देश्य पाण्डवों के चरित्र पर प्रकाश डालना है।' इसके अतिरिक्त कवि ने रास रचना व क्रीड़ा के लिए भी बनाया है:-

पंडव चरित्र सरीस जो पढ़इ जो सुणइ संमलइ

--- --- ---

पूनिम पख मुनींद शालिभद्र सूरिहिं नीपिउए

देवचंद्र उपरोधि मंडवह रासु रसाउलु (१५ ठवणी अंतिमांश)

इस प्रकार प्रस्तुत कृति में 'कवि की शैली शिल्प और भाषा की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कृति कहा जा सकता है।

गौतम रास[1]

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पंचपाण्डव चरितरासु के पश्चात् काव्य सौष्ठव तथा प्रवाह की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्व पूर्ण कृति गौतम रास है। भाषा, भाव तथा काव्य इन तीनों रूपों में यह कृति अपनेमें पूर्ण है। ६०० वर्ष की प्राचीन रचना होने पर भी कृति का पाठ इतना अधिक लोकप्रिय है कि आज भी मारवाड़ी जैन श्रावक (खरतर गच्छीय)इसका प्रतिदिन पाठ करते हैं। रास कई बार प्रकाशित हो चुका है। सर्व प्रथम श्री नाथूराम प्रेमी[2] और पश्चात् श्री कामता प्रसाद जैन[3] ने इस कृति के महत्व पर प्रकाश डाला। डा० रामकुमार वर्मा ने भी अपने आलोचनात्मक इतिहास में इस का उल्लेख किया था।[4] इन विद्वानों[5] ने उदयवन्त मुनि इमु भणे और कहीं विजयभद्र मुनि इमु भणे पाठ मिलने से रचयिता का नाम ही उदयवन्त या विजयभद्र रख दिया पर वास्तव में ऐसा नहीं है। स्वर्गीय देसाई मोहनलाल[6] तथा श्री अगरचन्द नाहटा ने[7] इस भूल का परिहार कर दिया है। रास की सं० १४३० की सबसे प्राचीन प्रति बीकानेर के बड़े ज्ञान भंडार में सुरक्षित है। जिसकी पुष्पिका में "ःइति श्री गौतम स्वामी रासः श्री स्तम्भतीर्थ विहारे श्री विनय प्रभोपाध्याये कृत" मिलता है।अतः यह बहुत संभव है कि रासकी रचना सं० १४१२ में गौतम स्वामी के कैवल ज्ञान प्राप्ति दिवस पर खंभात में श्री विनयप्रभ उपाध्याय ने की हो।कृति के पद्यों में भी अनेक पाठान्तर मिलते हैं तथा विभिन्न प्रतियों में पद्यों की संख्या भी भिन्न है।

१- साहित्यः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्- में प्रकाशित श्री अगरचन्द नाहटा का गौतम स्वामी का रास व उसके रचयिता पाठ पृ० २-९।
२- हिन्दी जैन साहित्य का इतिहासः श्री नाथूराम प्रेमी, सं० १९७३ संस्करण पृ० ३२
३- हिन्दी जैन साहित्य का इतिहासःश्री नाथूराम प्रेमी,सं०.१९४७ संस्करण पृ० ६५
४- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहासःडा० रामकुमार वर्मा,द्वि०सं० पृ० १६५, १६६।
५- जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १०, किरण २ प्रकाशित अपभ्रंश साहित्य लेख श्री प्रो० रामकुमार जैन।
६- जैन गुर्जर कविओः श्री मोहन लाल देसाई भाग १ पृ० १५
७- साहित्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्ः श्री गौतमरासःश्री अगरचंद नाहटा का लेख।

रासकार स्वयं प्रसिद्ध मुनि और कवि थे अतः १४३० की कृति में उपलब्ध पाठ से ज्ञात होता है कि रासकार ने यह पाठ भी सं० १४१२ में ही गौतम स्वामी के कैवल्य महोत्सव पर्वपर लिखा हो। प्रति कीप्रतिलिपि अभयजैन ग्रन्थालय में उपलब्ध है।[१]

प्रस्तुत रास चरित मूलक है।प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर महावीर के प्रथम गणधर गौतम की साधना का इसमें विस्तृत वर्णन है।रास घटना प्रधान और भाव प्रधान दोनों का समन्वित रूप है। रास की कथा विविध घटनाओं से संजोई गई है, जिनके वर्णन में कवि का काव्य कौशल अपूर्व परिलक्षित होता है।

गौतम का मूल नाम इन्द्रभूति था व गौतम उनका गोत्र। मगध प्रदेश में राजगृह के समीप गुब्बर गांव में उनका जन्म हुआ।उनके देह की ऊंचाई ७ हाथ थी। इन्द्रभूति ५०० शिष्यों के प्रतिभाशाली एवं असाधारण विद्वान गुरु थे।एक बार श्री महावीर स्वामी पावापुरी आये वहां उन्होंने समवसरण बनाया।हजारों स्त्री पुरुषों व देवताओं को वहां जाते देख गौतम को अपने ज्ञान पर दंभ हुआ। वे ५०० शिष्यों सहित महावीर स्वामी से शास्त्रार्थ करने पहुंचे। महावीर ने उनका समाधान वेदों के प्रमाणों से किया। इन्द्रभूति ने महावीर से दीक्षा ग्रहण कर ली।५०० शिष्य भी दीक्षित हुए और गौतम प्रथम गणधर कहलाये।अनुक्रम से ११ प्रधान वेद ज्ञाताओं ने महावीर का शिष्यत्व स्वीकार किया। गौतम के अतिरिक्त जो भी महावीर से दीक्षित होता वह कैवल ज्ञान प्राप्त हो जाता था। तीर्थ का आदिनाथ के मन्दिरदर्शनार्थियों से लौटकर गौतम ने रास्ते में एक पात्र में अंगूठा डुबाकर सब तापसों को खीर भी व खीर खिलाई अतः वे ५०० तापस ही केवली हो गए। ५०० को महावीर का समवसरण देखते ही कैवल्य हो गया।इस तरह १५०३ तपस्वी केवल हो गए, पर गौतम को केवल ज्ञान नहीं मिल सका क्योंकि महावीर के प्रति उनके मन में अपार राग था। ७२ वर्ष की आयु में गौतम को निकटवर्ती ग्राम में उपदेशार्थ भेजकर महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया। गौतम को बड़ी पीड़ा हुई उन्होंने सोचा महावीर ने अन्त समय में मुझे यह सोचकर कि गौतम बालक की तरह पीछा पकड़ कर मुझसे कैवल्य मांगेगा, दूर भेज दिया। मुझे

१: अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर।

भुलावे में डाल दिया, सच्चा स्नेह नहीं किया। विलाप करते हुए उनके मन में यह बात आई कि महावीर तो वीतरागी थे, उनके साथ राग भाव कैसा? और ज्ञान प्राप्ति के साथ ही वे केवली बन गए। गौतम ५० वर्ष तक गृहस्थरहे। ३० वर्ष तक संयमी रहे और १२ वर्ष तक केवली रूप में विचरे और ९२ वर्ष की आयु में मोक्षगामी हुए। कथा का सार यही है।

सम्पूर्ण काव्य में कवि ने घटनाओं का चयन, गौतम का वर्णन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की उत्कृष्टता के साथ किया है। प्रकृति वर्णन में भी कवि की सानी नहीं है। पूरा काव्य चरित मूलक आख्यानक है। जिसकी कथा वस्तु धार्मिक है। तथा गौतम व महावीर की साधना से सम्बन्धित है।

गौतम रास एक ऐसा खण्ड काव्य है जिसका उद्देश्य जीवन को आध्यात्मिक आनन्द और साधना की ओर उन्मुख करना है। विहार के ही नहीं समस्त मानव समाज को दुष्प्रवृत्तियों से निवृत कर सद्प्रवृत्तियों की ओर आह्वाहन की प्रस्तुत रास का संदेश है। यत्तदर्थ रास के प्रमुख प्रमुख काव्यात्मक स्थलों का निरीक्षण किया जासकता है।

इन्द्रभूति की शारीरिक शोभा,रूप, आकार, वय और कांति का वर्णन कवि ने बड़ेउत्साह से किया:-

चरण चुंगुठ सिरि इंदभूइ भुवणह पसिद्धउ
चउदह विज्जा विविह रूव नारीरसि विद्धउ
विनय विवेक विचार सार गुण गणह मनोहर
सात हाथ सुप्रमाण देह रूपहि रंभावर
नयण वयण कर चरणि जिणवि पंकज जलि पाडिय
तेजहि तारा चन्द सूर आकासि भमाडिय
रूविहि मयणु अनंग करवि मेल्हिउ निरधाडिय
धीरिम मेरु गंभीर सिंधु चंगिम चय चाडिय
पेखवि निरुवम रूव जास, जण जंपइ किंचिय
एकाकी कलि भी इत्थ, गुण मेल्हा संचिय

अहवा निश्चई पुव्वजम्मि जिणवइ इमि अंचिय
रंभा पउमा गउरि गंग रतिहा विधि वंचिय
नहि बुध, नहि गुरु, कवि न कोवि, जसु आगेइ रहियउ
पंच सयं गुण पात्र छात्र हिंडइ परिवरिउ (२-६)

कवि ने समवसरण की रचना में पर्याप्त उत्साह दिखाया है। इन्द्रभूति की स्पर्धा और पाँच सौ शिष्यों सहित समवसरण में जाकर महावीर से साक्षात्कार करना और महावीर का वेद उक्तियों से उसे समझाना, गौतम का दीक्षित होना तथा प्रथम गणधर बनना तथा गौतम द्वारा सूर्य किरण पर चढ़कर २४ तीर्थंकरों के मंदिर में जाना और पुनः अनेक तपस्वियों को केवली बनाना आदि अनेक स्थल गेयता और काव्यमयता के उत्कृष्ट स्थल हैं:-

जोजन भूमि समोसरणु पेखइ प्रथमारंभि
दहदिसि देखइ विबुधवधू आवंति सुरंभि
मणिमय तोरण दंड धज, कउसी से नवघाट
वयर विवर्जित जंतुगण प्रतिहारिज आठ
सुरनर किन्नर असुरवर, इंद्र इन्द्राधिराय
चित्ति चमक्किउ चींतवइ ए, सेवंता प्रभुपाय
सहस किरण जिम वीर जिणु पेखवि रूप विशालु
एहु असंभव संभवए साचउ अइ इंद्रियालु
तउ बोलावइ त्रिजग गुरो इन्द्रभूइ नामेण
श्री मुख संसा सामि सवि फेडइ वेद पएण
मानु मेल्हि मदछेडि करे, भगतिहि नामइ सीसु
पंचसयांसु व्रत लियइ करे, गोयम पहिलउ सीसु
नाम लेइ आचारि करे, तं पुण प्रति बोधेई

::: ::: :::

गयउ इणि अभिमानि तापसआ मनि चींतवई
इह मुनि वडिम देसि, आलंबवि दिनकर किरण

कंचण मणि निष्पन्न दंडकलश धयवड सहिउ
पेखइ परमानंदि जिण हर भरहेसर विहई उ
निय निय काय प्रमाणि बहु दिशि संठिय जिणह बिंब
पणमवि मन उल्हासि गोयम गणहर तहि वसिउं (२६:२७)

रास का प्रकृति वर्णन कवि के काव्य कौशल का जागरूक प्रमाण है।कवि ने गौतम स्वामी की साधना और शालीनता का वर्णन प्रकृति के उपादानों द्वारा किया है। कवि ने श्री गौतम गणधर में महापुरुषों के सभी अलभ्य गुणों का समावेश किया है।उनका व्यक्तित्व कवि ने ब,ड़ी ही कुशलता के तथा बड़े विचित्र उपादानों से निर्मित किया है।उपमा और उत्प्रेक्षाएं सरस हैं। वर्णन का क्रम सुन्दर है तथा विविध उदाहरणों से पुष्ट है:-

जिम सहकारिहिं कोयल टहकउ
जिम कुसुमह वनि परिमल महकउ।जिम चंदनि सौगंध निधि
जिम गंगाजलु लहरिहिं लहकइ
जिम कणयाचलु तेजिहिं झलकइ, ति तिम गोयम सोभागनिधि
जिम मानस सरि निवसई हंसा,
जिम सुरवर सिरि कणयवंत सा।जिम महुकर राजीवहनि
जिम रयणायर रयणिहिं विलसइ,
जिम अंबरि तारागण विकसइ।तिम गोयमु गुण केलिवनि
पुन्निम निसि जिम ससियर सोहइ,
सुरतरु महिमा जिम जगु मोहइ।पूरब दिसि जिम सहस्सकरो
पंचानतु जिम गिरिवरि राजइ,
नरवइ घरि जिम मयगल गाजइ।तिम जिन सासनि मुनिवरो
जिम गुरु तरुवरि सोहई शाखा,
जिम उत्तमि मुखि मधुरी भाखा।जिम वनि केतकि महमहए
जिम भूमिपति भुयबलि चमकइ
जिम जिन मंदिरि घंटा रणकइ।गोयम लब्धिहि गहगहए (३८-४१)

नायक की एक करुण स्थिति का चित्रण बड़ा मार्मिक है जब महावीर निर्वाण को प्राप्त होते हैं और गौतम को समीप के गांव में प्रतिबोध को प्रेषित कर देते हैं। गौतम उन्हें जाते देख बालकों की तरह फूट पड़ते हैं और इसी विलाप में उन्हें महावीर के वीतरागी होने का ज्ञान होता है तथा उनका जितना राग महावीर के साथ था, वह सब छूट जाता है और वे केवली बन जाते हैं। उनके मन के अन्तर्द्वन्द्व को कवि चित्रण करना चाहता है। महावीर के जाने के बाद गौतम के मन में उठने वाले ये संकल्प विकल्प "मुझे दूर भेज दिया, लोक व्यवहार का पालन नहीं किया। हे प्रभो! आपने सोचा होगा गौतम बालक की तरह पीछा पकड़ कर मुझे से कैवल्य मांगेगा।आपने मुझे भुलावे डाल दिया, सच्चा स्नेह प्रकट नहीं किया- बड़ी ही मार्मिकता प्रस्तुत करते हैं कारुण्य हृदय गौतम विलाप करते हैं:-

> प्रथीउ ए गोयमु प्रामि, देवसमी प्रतिबोध किए
> आपणि ए त्रिशला देवि नंदण पहुतउ परम पए
> वलतउं ए देव अकासि,पेखवि जाणिय जिन समउं
> तउ मुनि ए मनिहिं विखादु नादभेद जिम ऊपनउ
> तउ मुनि ए सामिय देवि, आप कन्हा हउ टालिउ ए
> जाणतई ए तिहुयण नाहि लोक विवहार न पालियउं
> अति भलउ ए कीधउं सामि जाणिउं केवलु मागिसिए
> चींतउं विउं ए बालक जेम अहवा केडइ लागिसिए
> हउं किमवीर जिणिंद भगतिहि भोलउं भोलविउं
> आपण एउं विचउ नेहु नाहि न संपए सूचविउ (३३-३५)

और कृति इस तरह निर्विकार होकर निखर उठी है। भाषा की दृष्टि से कृति की भाषा पर अपभ्रंश का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है इसका कारण यह है कि संभवतः यह कृति १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई है।क्योंकि जिस समय यह रास लिखा गया उस समय कवि बहुत वृद्ध हो गए थे। अतः बहुत

संभव है कि इसका लेखन काल १४वीं शताब्दी रहा हो।

रचना गेय है। रासकर्त्ता ने रास के सम्बन्ध में अपनी ओरसे कुछ भी नहीं कहा। रचना को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रास गीति तत्व प्रधान है। तथा चरितमूलक खंड काव्य है।

प्रति के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है: सं० १४३० कातिक सुदि प्रतिपदायां ।। देव स्तवन पुस्तकं।।(बड़ा ज्ञान भंडार, बीकानेर प्रति)

इस प्रकार १५वीं शताब्दी की अद्यावधि उपलब्ध प्रमुख रचनाओं में श्री जिनप्रभ उपाध्याय विरचित गौतम रास का स्थान महत्वपूर्ण है।

: कलिकालरास :[1]

हीरानंद सूरि १५वीं शताब्दी के प्रमुख कवियों में रहे हैं जिनकी इस शताब्दी में कई महत्वपूर्ण कृतियां मिलती हैं। जिनमें वस्तुपाल तेजपाल रास (सं० १४८४), दशार्णभद्ररास, जंबु स्वामी वीवाहला सं० १४९५ विद्या विलास पवाड़ो, स्थूलिभद्र बारहमासा आदि प्रमुख हैं, जिन पर आगे के अध्यायों में प्रकाश डाला जायगा। कलिकालरास भी अपने ही प्रकार की रचना है।कलिकाल रास कलियुग की परिस्थितियों और गुणों पर प्रकाशडालता है।इसशताब्दी में रास संज्ञक रचनाओं में यह अपने प्रकार की पहली रचना है।कलियुग की लोकस्थिति का वर्णन महाभारत में मिल जाता है। हिन्दी में बाण कवि का कलि चरित्र सं० १६७४ सर्व प्रथम मिलता है।सं० १७०० में सभा चंद्रकृत कलिचरित्र और सं० १८६५ में रसक गोविंद कृत कलियुगरासों में आदिग्रन्थ मिलते हैं।[2] परन्तु प्रस्तुत रास बाण के कलिचरित्र से भी २०० वर्ष पुरानी रचना है।इसकी प्रति जैसलमेर के जैन भंडार में है तथा प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय से उपलब्ध है।पुरातत्व मंदिर जयपुर के एक गुटके में भी इसकी प्रारम्भिक २८ गाथायें मिलीं। रचना प्रकाशित है।

श्री हीरानन्द सूरि की यह रचना १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की है। जिसमें इनकी भाषा सरल राजस्थानी या प्राचीन हिन्दी है। कवि ने वर्णनमें यथार्थ का सहारा लिया है तथा कलियुग के कटु मीठे अनुभवों को उतारने में भविष्यवक्ता की भांति सफल रहा है। १५वीं शताब्दी में मुसलमानी राज्यमें हुए अत्याचार कलियुग के ही प्रभाव बताये गए हैं।प्रस्तुत रास लोक काव्य है जिसमें कवि ने जीवन के हर पहलू पर कलिका प्रभाव दिखाया है।पृथ्वी की स्थिति राजा, प्रजा, पिता, वस्तु द्रव्य, साधु, गुरु तीर्थ, तपस्वी, दान तथा मुनिवर

१- हिन्दी अनुशीलन वर्ष १० अंक १, मई १९५७ में श्री अगरचन्द नाहटा का कलिकालरास शीर्षक लेख पृ० ५४-५९।

आदि सबकी परिवर्तित स्थिति परप्रकाश डाला है।इस तरह की कलिकाल संबंधी रचनाएं परवर्ती राजस्थानी कवियों कीअनेक मिलती है।

कवि ने रचना को भाष, वस्तु, ठवणि, ढ्ढ्ढ फाग आदि शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित करके लिखी गई है।कवि ने वीर जिनेन्द्र तथा सरस्वती का स्मरण कर रास प्रारम्भ किया है।

प्रारम्भ में ही कवि कलियुग की सामान्य प्रवृत्तियों का उल्लेख करता है तथा कलियुग के प्रमाण कहता है। वर्णन सरल,वाक्यछोटे, भावपूर्ण तथा भाषा अत्यन्त सरल है:-

वीर जिणेसर पामिअनाषु कहिसुं कलियुग तणउ प्रमाणु
सणइ समइ बहुगुणनी हाणि ईपिवचनि सहूइ हिव जाणि
पुहवीयं वरसई थोड़ा मेह, थोड़ी आयु घणा संदेह
राखिस रूपि हुआ भूपाल अन्यावी नइ अति विकराल
नकरइ लोक तणी पुरसार, लोक हुआ हिव सविनिरधार
अति निरधन दीसइ दातार कृपणह घरि लिछिमी अवतार
पुण्यवंत हुई बयस तत्काल,पापी नर जीवई चिरकाल
औषध मंत्र कूडं अप्रमाण सोरिय विद्या नहिय पुराण
अंतरंग गवड नेह विशाल विरला दीसइ अन्व कुमाल
देव सवि हुआ निप्रभाव के न दीसइ सरल सुभाव
कोई न पालइ बोल्या बोल सहूइ नावइ हूं निटोल
कोई न दीसइं गुणि गंभीर सहूइ हवी चपल अधीर

विनय विवेक, लीला, लाज सब दूर हो गई। साहस सत्व संसार में नहीं रहा कलियुग के प्रभाव से दान और दानशील दोनों मिट गए है। परमार्थ का विनाश और पाखन्ड का प्रचार बढ़ रहा है। क्षमा क्षीण हो गई और कटु वाणी का क्रम बढ़ गया है:-

लीला लाज गई अतिदूर परनिंदा छइ पकई पूरि
विनय विवेक गया आचार, दवाहणी कोइन करइ सारि

साहस सत्व नहीं संसार रंगरली नहीं हिया मझार

--- --- ---

दानव दाविन दान दाविन गया परदेसि

कृपण घर्इं हुउं धणु छरहइ दुक्ख हाइन पीइ

जं वंचइ घट आप्पणइ किसुंदानते कृपण दीइ

हाहां मन रकनावमी मोटीय बात करंति

घरि आवंतइ आहणइ नीसत नारीय जंति (वस्तु ११)

चारों वर्णों की स्थिति भी कवि ने बड़ी दयनीय दिखाई है। पैसे के प्रेमी स्वार्थी मित्रों तथा किए हुए उपकार को ने मानने वालों की स्थिति भी उल्लेखनीय है:

बंभण कुल आचरहिं हीण, क्षित्रीयलोक अक्षत्रिहिं लीण

सुग संक मनि नवि धरइय

पाणि सणइ मित्रि द्रोहइं सहूअ वणिकइ साहिब हुआ बहूअ

निरदय कर्म समाचरइय

--- --- ---

आप सरारथि सहूइ कोई परकजू छइ विरलउ कोई

काज विणासन अति खमाय

आप अरथि गई बहुनेहु, सारइ अरथ विहालइ छेहु

अरथ विन अलुहामणाय।

कोइ न जाणइ कड़ाकीया, कृतघ्न लोक सवे हिव हुआ (वस्तु १४)

कुछ अद्भुत रूपकों के द्वारा भी कवि ने काव्य कौशल एवंकलियुगी प्रभावों का परिचय दिया है।काव्य का रूक जाना,भक्ति का निष्ठुर होना धर्ममार्गों में हुए अनेक प्रचलित मतमतान्तरों का वर्णन तथा सत्य से दूर कूटवाणी वालों का सम्मान आदि चित्र कवि ने बड़ी मोहक शैली में प्रस्तुत किए हैं:-

वेद वखान किया उपगार सरसत्त समबढ़ि गणइ गमार

अमुण एक न मीसरइ य।

घणि घणि जोई छिद्र अपार नवि नोई आपण आचार

अम्हि कुण मारगि अनुसरउं ए
डुंगरि अपरि बलतइ देखई पग हेठिइं ते न गणइ लेखई
आपण पुं मावइ घणउ ए
देखीय थोड़उ दोष अनेरउ विस्तारीय महि कहिइ अनेरउ
जे गुण हुई ते आवरई ए

--- --- ---

धरम मारग धरम मारग हुआ बहु भेउ
ते पुछि जई ते कहिय धर्म्म मागु अम्हि कहउं सवउ
आपि प्रशंसलगि सहूअ अंवर धम्म पुहि कहउं क्वउ
अंधउ अंका नाडुइी आविय वेहि लगुग
जामहार नयरह भणी कवण दिखाउड मगुग
साच कोई साच कोई बोलंति
साचइ रावइ कोइ नवि कूड़कपट सहूइ पतीजइ
जैसा अभयकुमार जिम धरम दंभि बंधीय लीजइ
कउ वचन बोलइ जिके माया रचिइं अपार

--- ----- ---

बहुइ वेमिहिं बहुइ वेमिहिं गयउ वेसाव
द्रोह मित्र कृतघ्न सुत माइबाप गुरु किसइ लेखइ
देव द्रव्य घरि वावरइ, लोप अंक नयणे न देखई
माय बाप कुल गुरु धणी मानइ नवि आसंक
सरल भाव विहि बालवी हेलहि चडई कलंक
बोहिलि चषीय सईहडा उभति किसी न होइ
कुमर बेट हुआं बच्चां विषि कुविई सह कोई (वस्तु १७-१८)

कवि ने वाक्य छोटे, शैली उपदेशात्मक और रुचिप्रद है। प्रस्तुत काव्य जन काव्य है अतः कलियुग सम्बन्धी समस्त स्थितियों और मर्यादाओं का लोप कवि ने बताया है। व्यवहारिक जीवन में कवि की वाणी एक दम यथार्थ है। मुनियों के लिए कवि ने एक अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र खींचा है। भाषा की सरलता आलंकारिकता

तथा कथा की भाँति जनरुचि पर विजय पाने वाला प्रस्तुत रास है जिसको पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है।साहित्य का उपयोग यही है कि वह व्यवहारिक जीवनके लिए निरन्तर उपादेय व हितकारक एवं मार्ग प्रदर्शन करने वाला हो।कवि ने मुनियों तथा श्रावकों का कलियुगी कायाकल्प बताया है। उद्धरण उल्लेखनीय है :-

मुणिवर मछरि आगला ए, पगि पगि करइ विरोध
एकइ मारगि अंतरउ ए, आपई अतिहि अबोध
कोहि लोहि महि मोहिया ए, मारगि नवि चालंति
आप प्रशंसा तप करई,ए, परनिंदा बोलंति
लोक तणा मन रंजिव ए, वयणि धरई वय रागु
धावा धरम ह ऊपरिई ए, नवि दीसइ अनुरागु
पंचविषय जीता नहीं ए, जिमि हिंच्यारि कषाय
देह देहरई संजमि करीय, जीवन तणउ उपाय
कुटिल भाव श्रावक हुअ ए हीयडइ अति निरभाव
समकित धर मुंहडइ कहइ ए बल्लावइ बहुपाव
धरि करसण महिकी करई ए, कुविणज करंइ अपार
हरखप देहीय कल्पिमइ ए मयहुउ मनि अहंकार
गुरु उपदेश सुणंइ सदा ए हीयंडइ नवि भींजंति
पाथर पाणिय भरि वहइ ए भीतरि नवि भींजंति (छनपि २६ (

वस्तुतः पूरा रास कलिकाल का स्वरूप चित्रण करता चला गया है।छंद अलंकार और रस की दृष्टि से रचना साधारण है परन्तु वस्तु, शिल्प, भाषा, और वर्ण्य विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। रचना की भाषा में अपभ्रंश के प्रयोग ढूंढने पर ही मिलेंगे। ठेठ राजस्थानी तथा गुजराती के प्रभुद भी मिलते हैं। पर पूरी रचना को सरल हिन्दी की रचना कहा जा सकता है।

कवि ने मर्यादा उल्लंघन के चित्र को अनेक सूक्तियों उदाहरणों दृष्टान्तों और अंतर्कथाओं द्वारा स्पष्ट किया है। यह उद्धरण रास का बहुत ही महत्वपूर्ण

अंश है:-

अति निरलाजन देह स्य, मुहि वाणि कठोर
ग्यारिड वर्ष इत्या हुआए घर माहि जि चोर
माइ बाप बंधव कुटुंब स्यूं करइ विरोध
दीसइ घरि घरि नव नवाए कारणि विनु क्रोध

------- --- ---

लोपीय कुल गुरु तणीय रीति मुंकी मरज्याद
शील दीयता करइ रोष मांडइ हठवाद
नीचं गोत्र उत्तम तणाए अवतार सुणीजइ
साच सूच जे नवि धरई ए ते कहिइ अजाण
जे धण माया केवलदुयंए तीहीं करइ वखाण
इणि परिकेता कहनु बोल छंई तिहिविचाले
एहे लक्षणि जाणीइ ए आव्यउ कलिकाले (१९-४३ पृ० ५८-५९)

--- --- ---

मुकिम लोचन चम्म मए, मन लोचन जोउ
अंतरंग अरि निरजाण ए, मव कश्मल धोउ
दान शील तप भावनाइ ग्यारह जिन भाषइ
बहुइ निश्चल होइ धर्म मन सुधी पाखइ
इसुई सुणी मन शुधि राइ श्री समकित पालइ
भणई हीराचंद भवीक लोय भव भ्रमाल्ड (४४-४६)

वस्तुतः रास की वस्तु से ही स्पष्ट हो जाता है कि १५वीं शताब्दी के आते आते रास की कथा वस्तु सीमित नहीं रही तथा उसमें विविध विषयों का भी विवेचन होने लगा जैसा कि पूर्व पृष्ठों में अन्य रासों में विविध विषय वस्तु रासों में वर्णित हुई है उसी भाँति मस्तुत रास में भी कवि ने अपनी स्वेच्छा से कलियुग का सांगोपांग वर्णन किया है जो इस पैमाने पर अन्यत्र दुर्लभ है। साथ ही कवि ने रास लिखने के अन्य उद्देश्यों को भी स्पष्ट किया है:-

चउद छीयासीय वरसि एहकलिकालह रासो

कीधिउ रचीउ भवीय लोय कजि उपदेश निवासो

भणई गुणई जे सुण भवि खेलई नर नारि

ते मन वांछित सुख लहई प जाइ भवपारे

इस प्रकार १५वीं शताब्दी की रास संज्ञक कृतियों में भाषा और विषय की दृष्टि से कलिकाल रासका महत्वपूर्ण स्थान है।

:: सोलहकारण रास :: [1]

१५वीं शताब्दी की रास रचनाओं में एक छोटा सा रास सोलह कारणरास है जिसके रचयिता सकल कीर्ति हैं। यह रचना दिगम्बर भंडार जयपुर की है। कृति आमेर के भंडार जयपुर (श्री दिगम्बर अतिशयक्षेत्र कमेटी जयपुर के भंडार) में सुरक्षित है। प्रस्तुत रचना अप्रकाशित है तथा गुटका नं० २९२।५४ के पत्र २४२-२४३ पर लिखी है। प्रति का लेखन काल सम्भवतः १५वीं शताब्दी के आस पास है।सकलकीर्ति अपने समय के दिगम्बर कवियों में प्रमुख कवि हुए हैं जिन्होंने होलिका रास, आदि अनेक कृतियां लिखी हैं। प्रसिद्ध दिगम्बर कवि ब्रह्मजिनदास के ये समकालीन थे।

प्रस्तुत रास एक छोटा सा खंड काव्य है जिसमें कवि ने प्रारम्भ में मंगला-चरण के पश्चात् साधना के लिए तप और तपके लिए १६ कारणों का विधान एक श्रेष्ठि कन्या प्रियंवता से किया है। प्रियंवंता का परिचय कवि ने एक दुर्भाग्यशालिनी गतवर्णा, और बहुरोगों युक्त महा कुरूपिणी के रूप मेंदिया है।जो पूर्वभव में किए अपराध के कारण इस गति को प्राप्त हुई थी।

जंबू दीवह भरत खेत मागधा छह देसा
राजागृह छइ नगर हेम प्रभाराव वनेसा
विजया सुंदरि कलसनाम पुरोहित महासरमा
प्रियंवदीका सु नारि सुखी मव धरमा
कंकाल भैरवि रोग वहित छइ ब्यसिनुी

कवि ने पूर्वभव में कर्म सिद्धान्त का प्रचार कथा के द्वारा किया है तथा सोलह कारणों से जो साधक की सफलता और मनुष्यों को निर्वाण की प्राप्ति कराते हैं इस रासके सबको प्रेम करना चाहिए यही संदेश दिया है। कथा की नायिका एक बार पूर्वभव में आहार ग्रहण करने के लिए आये मुनियों पर थूक देती है और इसी पाप से वह इस जन्म में भयंकर रोगों से ग्रसित होकर कुरूपिणी बन जाती है। इस प्रकार वो चारण मुनि उसे पूर्व भव में किए पाप और इस भव में इसका उद्धार करने के १६ कारणों का उल्लेख करते हैं:-

राजा महीपाल वेगवंतर छइ राणी

विसालंखी पुत्रि नाम विवेक विदूषी

आहार लेवा मुनि इक आया तहकामा

आहार लेवा जाम वलिउ निरमल गुण धामा

मदरि बइठी ताबु उवरि थूकिउ मद अंधी

राजा छेह ललुही करी तुस पुसठ दीनी

निंदा गरहा आपु करी मुनिकन्ह लजाइ

कुंवरि ते तपु लियउ अनसरण आहारी

और इस प्रकार भिक्षार्थ आये युगल चारण मुनि उसे १६ कारणों से सम्पन्न व्रत करने का विधान समझाते हैं।कथा वस्तु धार्मिक तत्वहोते हुए भी इस छोटी सी कृति में कथा-तत्व होने से पाठक या श्रोता की रुचि बनी रहती है।रास रचना का उद्देश्य उपदेश प्रधान है कवि जनसाधारण में किस प्रकार पूर्व भव में किएहुए दुष्कृत्यों से इस भव में फल प्राप्ति का सिखावन देकर जन साधारण के सामने संयम व उपासना के १६ कारणों को कथा सूत्र में बांधता है।

इन कुली तेरो जनमु हुआ पुरव विदेह,

सोलह कारण वरत करी तीर्थंकर होइ

वचन सांभली पाकनपी कहि सामि विचार,

भादव माहि चैत्र माहि कहिय विहुवारा

एकांत करि मांड एक दीवहु पालीज्जइ,

परिहरि घरि व्यापार सर्व मन शुद्धि करीजइ

विहु सनिकहा घरि पालिवइ संकानवि कीज्जइ

विहवचन मामा वरित सर्वो सहि विनउ करीज्जइ

सील महु विह पालिए सब दूषण टारे,

ज्ञान निरन्तर सार पढउ बहु अंगि विचारिउ

भव भव भीम सरीर महि बर रागु धरीज्जइ,

चारिदान सप चारि भेद संकति पालीज्जइ

मुनिवर साधु समाधि वरी उपगार करैज्जइ,
दसविह वैयावरत करी नेमै पालिज्जइ
अरहंत देवह भक्ति करउ सब बीजा टाळउ,
आचारज गुरु भक्ति करी भगति प्रतिपाळे
शास्त्र घना मुनि जो पढहि तिह भगति करीजइ,
प्रवचन वानी भगतिकरी निश्चइ आनीज्जइ
वाछल प्रवचन पालियइ मनि निश्चउ आणी,
सोलह भावन भाजिम ए गुरु भास बखानी
दिन दिन प्रतिमा पूजियइ निसि जाप जपीज्जइ,
सोवह छपन ऊजवनउ मोदिक ढोलीज्जइ
न्हवइ विलेपन दुवार दामसिद्धचक्र लहिज्जइ,
मुनिवर अज्जिका सयल संघ सथपूजकरीजइ
वारण गुरु पयनमस्करी व्रत दिढ कर लीनो
अन्तकाल सन्यास करी दिढ मरणवि सीधउ

इन्हीं सोलह कारणों से नायिका त्रिलंबती भविष्य में श्रेष्ठ योनि को प्राप्त हुई अन्त में कवि ने मंगलाचारणों वाक्य के रूप में सभी व्यक्तियों के लिए शुभ कामना करता है कि इन सोलह कारणों को संयमी बनकर जो पालन करेगा उसे असाधारण पद प्राप्त होगा:-

एक चित्तु जो व्रतु करइ नर अथवा नारी
तीर्थंकर पद सोलहइ जो समकित धारी
सकल कीर्ति मुनिराजु कियउ ए सोलह कारण
ते संभलि जिन्ह सुख कारण

वस्तुतः छंद अलंकार और रस की दृष्टि से कृति का महत्व गौण है परन्तु भाषा की दृष्टि से तथा कथा वैभिन्य या वस्तु विकास की दृष्टि से सोलह कारणरास उल्लेखनीय है। बहुधा दिगंबर कवियों की रचनाएं ब्रजी बोली में ही अधिक मिलती है क्योंकि श्वेताम्बर जैन मुनियों व कवियों ने राजस्थानी औरगुजराती में

अधिक लिखा है परन्तु दिगम्बर कवियों ने खड़ी बोली में ही अपना साहित्य लिखा है । अतः भाषा की दृष्टि से प्रस्तुत कृति का महत्व अवश्य स्पष्ट है। यों कुल मिलाकर कृति साधारण है तथा काव्य की दृष्टि से बहुत प्रौढ़ नहीं है। ब्रह्म जिनदास की कुछ और कृतियोंका विवेचन करने पर उनके काव्यगत की मुख्य प्रवृत्तियां जानी जा सकेगी। प्रस्तुत रास एक वर्णनात्मक कथा- काव्य है जिसका मूल उद्देश्य धर्म प्रचार मात्र है।

॥ ब ॥

फागु - काव्य

(ब)

फागु काव्य

उल्लासमय अनुभूतियां प्रकृति-प्रदत्त होती है। मानव को राग हर्ष और आह्लाद जन्मजात मनोविकारों और भावों के रूप में उपलब्ध हुए है। रोने, गाने और अपनी अभिव्यक्ति दूसरों तक पहुंचाने का काम वह आदिकाल से करता चला आया है। अतः प्रत्येक रितु के साथ प्रकृति स्वयं उसका आह्वान करती है। ग्रीष्म, वसंत, शिशिर, हेमन्त आदि रितुओं में किसका वह स्वागत नहीं करता। उसके लिए पतझड़ का भी उतना ही महत्व है जितना ग्रीष्म और शिशिर का। विशेष तौर से अधिक आह्लाद और उल्लास का पर्व वसन्त है। फूलों का मादक पराग, अलियों का गुंजन, सौरभित आम्रवल्लिरियां, गुंजित कानन, बौराई डालियां कोयल की कूक, तथा इठलाता मलयानिल सारे वातावरण को ही चंचल और दोलायमान कर देता है। आह्लाद गान के स्त्रोत राशि राशि उल्लास को लिए फूट पड़ते हैं। सौन्दर्य के कोकिल की हलकी सी पदध्वनि सुनाई देने लगती है और मादक वसन्त खिल उठता है। फागु वसन्त का ही मादक गान है।काम को मन्मथ कहा गया है और सम्भवतः यह फागु मन्मथ का ही एक उल्लास है। वसन्त के इस पर्व और अनंग के इसउल्लास पर कौन सहृदय अपनी वाणी के दो चार पुष्पों से इनका स्वागत नहीं करेगा। क्या जीवन और नई प्राणधारा को लेकर कुंजों से झांकने वाली वाल्लभुय की एक मीठी पीर से आलोड़ित वसन्त आता है। और कण कण मन को अपने प्रभाव की रंगीन में डुबो देता है। अनंग पूजा, वसन्त महोत्सव, स्वागत-गीत, नृत्य, उल्लास विलास तथा आह्लादकारी गान फागु में जीवन में नए उत्साह का उन्मेष करने वाली शक्ति विद्यमान है।

फागु काव्य की परम्परा के इतिहास पर विचार करने पर हमें अपभ्रंश का ही सहारा लेना पड़ता है। यों संस्कृत में भी हमेंयह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है

इस दिशा में रितु वर्णन और रितु सम्बन्धी साहित्य लिया जा सकता है, जिसकी अभिव्यक्ति आनन्द और उल्लास के साथ संगीत में डूबी हुई है। रितुकाव्य भी संस्कृत में अधिक नहीं मिलते। संस्कृत के पश्चात् अपभ्रंश के रास युग में फागु की परम्परा का प्रारम्भ माना जा सकता है। सामान्यतः रास और फागु दो शब्द साथ साथ प्रयुक्त किए जाते हैं पर वास्तव में इन दोनों के अर्थ और कार्य व्यापार मेंक्दाचित कुछ अन्तर है। एक अन्य शब्द रासक भी मिलता है। सम्भवतः यह फागु रासक की ही क्रिया व्यापार के अधिक निकट हो। फागु का तात्पर्य उल्लसित या आह्लादकारी गान है।

फागु संज्ञक रचना श्री सिरि थूलिभद्द फागु १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना है। डा० भोगीलाल साडेसरा ने इससे पुरानी एक और फागु कृति का उल्लेख अपने ग्रन्थ- प्राचीन फागु संग्रह- में किया है जो उन्हें श्री अगर चन्द जी नाहटा से उपलब्ध हुई थी[1] और वह फागु श्री जिनचन्द सूरि फाग है। नाहटा जी को इस फागु की प्रति जैसलमेर के प्राचीन जैन भंडार से उपलब्ध हुई थी। इस कृति में यद्यपि ७ से २० तक की कड़ियाँ मिलती नहीं है[2] परन्तु उपलब्ध पाठ (६-२१) कड़ी तक) के वर्णनों में सबसे सुन्दर एवं काव्यात्मक वसन्त वर्णन है।[3] अतः स्पष्ट हुआ कि फागु काव्यों का सम्बन्ध वसन्त वर्णन से है। इस प्रकार आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की उपलब्ध सबसे प्राचीन यह दूसरी फागु कृति है।

सिरि थूलिभद्द फागु के साथ साथ डा० साडेसरा ने अपने ग्रन्थ में अनेक फागों का प्रकाशन किया है[4] श्री नाहटा जी के संग्रह में भी अनेक प्राचीन फागु रचनायें विद्यमान हैं। अनवरत रूप से १४वीं शताब्दी के बाद १७वीं १८वीं शताब्दी तक हमें सैकड़ों की संख्या में फागु काव्य मिलते हैं।अतः यह रचना फागु परम्परा की

१- देखिए प्राचीन फागु संग्रह, डा० भोगीलाल साडेसरा, पृ० ४४
२- वही ग्रन्थ, वही पृष्ठ।
३- वही ग्रन्थ, पृ० २३१-२३२।
४- प्राचीन फागु संग्रह, डा० भोगीलाल साडेसरा पृ० ७-८।

शीर्ष रेखा में आने वाली एक प्रमुख कृति है जो अब तक अर्थात् (जिनचंद सूरि फाग के नहीं मिलने से पूर्व तक) आदि काल की सर्व प्रथम फागु रचना कही जा सकती थी।

संस्कृत काव्यों की परम्परा में फागु का स्थान स्पष्ट करते हुए श्री अगरचंद शर्मा ने लिखा है कि "-रितु काव्यों में भी फागु का प्रारम्भिक रूप देखा जा सकता है। फागु की स्पष्ट झांकी हमें सबसे पहले हर्ष प्रणीत रत्नावली नाटिका के प्रथम अंक में मिलती है। कवि ने मदनोद्यान में मदन पूजा का समारोह पूर्ण समारम्भ दिखाया है। मदनिका तो उन्माद के कारण समयोचित नृत्य भी भूल गई। विदूषक ने उसे "मअण वस विसंठुलं वसंताभिणयं णच्चंती- (कामवश वैह्विका वसंताभिनय नाचती हुई) देखकर ठीक ही वैसा राजा से निवेदन किया था। कंदर्प पूजा के अवसर पर चेटियां नृत्य करती हुई समवेत स्वर से द्विपदी छन्द गाती थी।[1]

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि फागु की ये प्रवृत्तियां संस्कृत के रत्नावली नाटक में भी मिलती हैं और मदनोत्सव तथा कंदर्प पूजा इसमें विशेष रूप से होती है क्योंकि कंदर्प का विशेष मित्र वसन्त ही माना गया है। उत्सव का विषय होने से यह कल्पना की जा सकती है कि फागु में गीत, वाद्य, नृत्य ताल और लय आदि अवश्य होते होंगे। और सत्य भी है कि फागु फाल्गुन मास से सम्बन्ध है जो चैत्र में वसन्तागमन की सूचना देता है।

इन प्रवृत्तियों के आधार पर विद्वानों ने अब तक फागु की अनेक परिभाषाएं की है-

(क) डा० साण्डेसरा ने फागु शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत फल्गु (वसंत प्राकृत-फग्गु से बताई है।[2]

(ख) गुजराती के विद्वान श्री के०का०शास्त्री ने शृंगारिक विषयों के आधार पर इसे फागु काव्य कहा है।[3]

1- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५९ अंक १, सं०२०११ पृ०२२ में श्री अगर चन्द शर्मा का लेख" सिरिथूलिभद्द फागु- पर्यालोचन।
2- प्रा०का०सं०डॉ० साण्डेसरा पृ० ४३-"फागु शब्द वसन्तोत्सव ना अर्थ में आव्यु छे"।
3- आपणा कविओ- श्री के० काशीराम शास्त्री पृ० २३१।

(ग) वसंत विलास की भूमिका में श्री का०व्यास ने भी विषय वर्णन के आधार पर इसे मधु रितु के उल्लसित वातावरण का गान ही माना है।[१]

(घ) डा० सांडेसरा ने भी हेमचन्द्र की फाग सम्बन्धी परिभाषा पर प्रकाश डाला है। देशीनाम माला में हेमचन्द्र ने इसे वसंतोत्सव कहा है।[२]

(क) अतः यह स्पष्ट है कि इसका विषय शृंगारिक होना चाहिए।

(ख) इसमें मधुमास का वर्णन हो।

(ग) कोई विशेष अवसर या महोत्सव का वर्णन हो।

(घ) उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति हो।

(ङ०) वसंत क्रीड़ा वर्णन न होने से शृंगार के संयोग और वियोग किसी भी पक्ष का वर्णन हो।

(च) वर्णन सरस और आह्लादक हो।

उक्त प्रवृत्तियों के उदाहरण अनेक परवर्ती फागु में मिलते हैं सिरि थूलि भद्द फागु में भी कवि ने उसकी विषयगत प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है-

खरतर गच्छि जिण पदम सूरि किय फागुरमेवउ
खेला नाचई चैत्र मासि रंगिहि गावेवउ[३]

अतः यह नाचने और खेलने की प्रवृत्ति फागु के उक्त उद्धरण से स्पष्ट होती है। कवि ने विशेषकर इसका सृजन चैत्र मास के लिए ही किया है। संगीत का विधान-गावेवउ- शब्द से अभिप्रेत होता है। रंगिहि उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए है। खेला और नाचइ में क्रीड़ा और नृत्य स्पष्ट हो जाते हैं। १४वीं शताब्दी के अनेक परवर्ती फागु काव्यों की प्रवृत्ति भी इसी प्रकार विषय प्रधान रही है जिसमें

१-

२- फागु वसुन्धरे-देशी नाम माला हेमचन्द्र(६-८२) तथा प्रा०का०सं०डा०सांडेसरा पृ०५३

३- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह श्री सी०डी० दलाल पृ० ४१ पद २७।

क्रीड़ा नृत्य गीत, वसंत आदि का ही विधान मिलता है। कुछ उदाहरण एतदर्थ देखे जा सकते हैं-

राजल देविसउं सिद्धि गयउ सो देव थुणिजइ

मलहारिहिं राय सिहर सूरिकिउ फागु रमीजइ [१]

में रमीजइ शब्द विशेष उल्लेखनीय है। यह कृति १५वीं शताब्दी की है।

भविय जिणे सर भवण रंगि रितुराउ रमेवउ

कन्हरिसी जयसिंह सूरि किउ फागु कहेवउ- [२]

में रंगि रितुराउ, रमेवउ से फागु का अभिप्रेत सिद्ध होता है। यह कृति भी १५वीं शताब्दी की है।

फागु वसंति जि खेलइ खेलइ सुगुण निधान

विजयवंत ते छाजइ राजइ तिलक समान- [३]

इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि उल्लासपूर्ण मधुरितु का महोत्सव जिसमें खेलना गाना और रंग में डूब जाना ही फागु की प्रवृत्ति रही है।

समुधरु ने तो फागु को सुहावना तथा खेलने के लिए ही कहा है।

अहे समुधरु भणइ सोहावणउ

फागु खेलउ सविचार [४]

१५वीं शताब्दी के प्रसिद्धकवि जयशेखर सूरि (सं० १४६०) के नेमिनाथ फागु से भी रास गाये जाने के लिए ही लिखा है, यह स्पष्ट होता है।

मिय मय खिसि दिसि व्यापय आपय व्हविह संघ

सूर उठे हम सामिय धामिय कामिय रंग

१- प्रा०फा०सं०- डा० सांडेसरा पृ० ३-४
२- जयसिंह सूरि कृत- नेमिनाथ फागु कड़ी- प्रा०फा०सं० पृ० ५५।
३- जम्बू स्वामी फाग- अज्ञात लेखक प्रा०फा०सं० पृ० ५६
४- वही ग्रन्थ पृ० ५६।

कवितु बिमोदिहि सिरिजय सिरिजय सेहर सूरि

जे खेलइ ते अर्हपद संपद पामइ पूरि [1]

फागु में रमणियों और कामिनियों के नृत्य करने और खेलने का उल्लेख भी मिलता है। कवि दूम के नेमिनाथ फागु का उदाहरण एतदर्थ उल्लेखनीय है-

पीण पयोहर अपच्छर गूजर धरतीय नारि

फागु खेलइ ते फरि फरि नेमि जिणेसर बारि [2]

--- --- ---

फागु खेलहि मनरंगिहि हंसगमणि मृगनयणि

गुणचन्द्र सूरि ने तो एक वसंत-फागु ही लिख दिया है। [3]

१५वीं शताब्दी के देवरत्न सूरि फागु में कामदेव, रति और उसके मित्र वसंत का वर्णन अत्यन्त सुन्दर मिलता है। फागु की इससे उक्त प्रवृत्तियाँ और भी स्पष्ट हो जाती हैं।

चंदन नारंग कदलीयवलीय करइ आनंद

रमती भमइ बहु भंगिइ रंगिइ मधुकर वृंद

वनि वनि गायन गायई वायइ मलय समीर

हसिहसि नाचई रमणीय रमणीय नव नव चीर

किंशुक चंपक कोकली कलिय तरुवर सार

मयण महीपति नाचई राजइ रस शृंगार

--- --- ---

रतिपति अबला बह सारीखउ रीखउ चालउ वीर रे

मित्र वसंत प्रमुख मिलि परिकरि परिकरिउ गति धीर रे

और अन्त में कवि अपने मन्तव्य को फागु काव्य के अभिप्रेत के रूप में स्पष्ट करता है।

१- गुर्जररासावली, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, १८वां पुष्प पृ० ७४

२- अभय जैन ग्रन्थालय-श्री अगरचन्द नाहटा की सं० १४९१ की पोथी प्रमा नं०३०७ में उपलब्ध।

३- प्राचीन फागु संग्रह-डा० सांडेसरा पृ० ५५-५६।

संवतु चउद नवाणूं वरिसिइं रितु वसंत
जन पहनइ दिवसिइं मन रंगिहि सु विशाल।
फाग बंधी ये गुरु विनती भाव भगति भोलिम
संजुती कीधी रस बउसाल।।[१]

इससे यह एक बात और भी स्पष्ट होती है कि कवि ने यह फागु काव्य लिखा भी वसंत रितु में। अतः वर्णन में तज्जन्य वसंत का मधुर चित्रण हो सकता है।

इन फागु काव्यों के अतिरिक्त और भी कई फागु जो खेलने और गाने के लिए रचे गए थे, श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में विद्यमान है।[२] तथा अनेक जैसलमेर के जैन भंडार में है। फागु काव्यों की यह प्रवृत्ति हमें १६वीं १७वीं शताब्दी तक बराबर मिलता है।

वसन्त विलास के सम्पादक ने फागु के वातावरण का बड़े ही मधुर शब्दों में चित्र खींचा है, जिनसे कई बाते स्पष्ट होती है।[३]

निष्कर्षतः उक्त आधारों से फागु के शिल्प विधान के तत्वों का विवेचन यों किया जा सकता है:-

(क) फागु बसन्त का काव्य है।

(ख) यह संगीत प्रधान होता है।

(ग) यह क्रीड़ा से सम्बन्धित है। रमेवउ [४]शब्द से इसके रमण की क्रिया की ओर ध्यान जाता है।

१- देखिए- जैन ऐतिहासिक गु०का०संचय-श्री मुनि जिनविजय-देवरत्न सूरि फाग पृ०१५०३५८
२- अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में संग्रहीत- जिनचन्द सूरि फाग, रावणि पार्श्वनाथ फागु, जीरापल्ली पार्श्वनाथ फागु, पुरुषोत्तम पंच पाण्डव फाग आदि अनेक फागु है।
३-

४- देखिए स्थूलिभद्र फागु- प्रा०गु० का० संग्रह- श्री दलाल पृ० ४१ पद २७।

(घ) खेलने के अतिरिक्त नृत्य का भी आयोजन इसमें होता है। अतः खेलना और नाचना दोनों क्रियाएं फागु में होती हैं। खेला नाचई[1] से तात्पर्य क्रीड़ा करने और नृत्य करने का है।

(ङ०) यह उन्माद पूर्ण उल्लसित महोत्सव का प्रतीक है जिसमें उन्मत्त होने या प्रमाद पूर्ण हो जाने से अभिनेताओं को शरीर की भी सुध बुध नहीं रहती थी। उदाहरणार्थ सिरि थूलिभद्द फागु में कवि ने लिखा है कि-

माणमहकूफर माणिमिझ झिमझिम नाचते।।[2]

(च) फागु काव्य के लिए मासविशेष का आयोजन है और फाल्गुन या चैत्र में वसन्तोत्सव पर ही यह खेला जाता है।

(छ) वसन्तोत्सव या कंदर्प पूजा इसका प्रधान विषय है। बहुधा कई फागों में चैत्र या वसन्त का उल्लेख मिलता है। चैत्रमासि[3] से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है।

(ज) जो रंगिहि शब्द कुछ फागों में मिलता है उससे तात्पर्य सम्भवतः मानव की आल्हादकारी मानसिक रंगीनियों से है अर्थात् अत्यन्त उत्साह में डूबकर जो कार्य किया जाय औरउसमें उत्साह का अजस्त्र उत्स प्रवाहित रहे।

(झ) इसमें क्रीड़ा करने वाले स्त्री पुरुष दोनों होते हैं।

(ञ) अनंग पूजा और कन्दर्पोत्सव भी इसमें सन्निहित रहते हैं।

इन सब बातों से यह कहा जासकता है कि फागु में एक प्रकार की अभिनय नियोजना रहती है, और यह गेय होता है। गेय काव्य रूपों को गीतिकाव्य और अभिनेय काव्यों को गीति नाट्य कहा जा सकता है। अतः इस दृष्टि से रास और फागु की शिल्प मूलक विशेषताएं लगभग समान सी ही दिखाई पड़ती हैं। संभवतः यह रास से और छोटा होता होगा और इसका शिल्प रास से अधिक कलात्मक एवं

१- वही ग्रन्थ पृ० ४१
२- प्राचीन फागु संग्रह- श्री डा० सांडेसरा पृ० ४ पद ८।
३- वही ग्रन्थ, पृ० ७

कोमल होता होगा। रासक की परिभाषा देते हुए वाग्भट्ट ने उसमें ६४ युगलों (प्लेयरस्) तक का उल्लेख किया है।[१] अनेक नर्तकियों और चित्र ताल तथा लय को प्रमुखता दी गई है। इसमें कोमलता और औद्धत्य का भी समावेश है।[२]

सम्भवतः यही रासक फाग का पर्यायवाची हो, क्योंकि आगे विषय परिवर्तन होने पर रासक में वीररस की प्रमुखता के कारण औद्धत्य की प्रधानता हो गई और वे रण प्रधान बन गए[३] और उनका कोमल पक्ष फागु या रास कहलाने लगा हो।

जो भी हो, इतना स्पष्ट है कि फागु काव्य गेय रूपक है जो आज भी राजस्थान और गुजरात में गाये और खेले जाते हैं। यह तो हुई फागु के विषय संयोग श्रृंगार की बात। पर वियोग या विप्रलंभ श्रृंगार वर्णन में भी फागु काव्य की रचना होती थी। नायिका के वियोग के पश्चात् नायक से उसका पुनर्मिलन किसी फागु या रास से कम उल्लास का सूचक नहीं था। प्रेम का चरम मिलन और मिलन शुल्क कैसा? अतः तब भी सम्भवतः फागु की रचना अवश्य ही होती रही होगी।

फागु की सामान्य प्रवृत्तियों पर ऊपर प्रकाश डाला गया है पर इसके अतिरिक्त भी फागु सम्बन्धी रचनायें मिलती हैं जिनमें विषयान्तर स्पष्ट परिलक्षित होता है। वियोग श्रृंगार में नायिका के पुनर्मिलन पर हुए उल्लास का एक फागु बसन्त विलास[४] मिलता है। इसके सम्पादक ने फागु का विषय विप्रलंभ और इसके पश्चात्

१- वाग्भट्ट- काव्यानुशासन पृ० १८०।

२- अनेक नर्तकी योज्यं चित्रताल लयान्वितं आचतुःषष्टि युगलाद्रासकं मसृणोद्धतं।

३- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५९अंक १ सं० २०११-सिरि थूलि भद्द फागु पृ०२१।

४-

नायिका का नायक से हुआ मिलन आता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियों से कुछ साम्य रखने वाली कृति स्थूलिभद्र फागु हो सकती है, जिसमें कोशा को स्थूलिभद्र से पुनर्मिलन होने की आशा में असाधारण उल्लास हुआ होगा।

फागु काव्यों के शिल्प पर विचार करते हुए हम राजस्थान के डफ के गीतों का विस्मरण भी नहीं कर सकते। राजस्थान में ये गीत आज भी असाधारण उत्साह के साथ गाए जाते हैं। इन गीतों का समय भी मधु रितु ही है। बसन्त का आगमन ही इनको आमंत्रण देता है। पतझड़ में बसन्त की भांति, शुष्क और व्यस्त जीवन को फागुन के ये गीत एक अजीब सी मस्ती, प्रमाद और उल्लास से भर देते हैं। इनमें साहित्य के जीवन्त तत्व होते हैं तथा कई व्यक्ति मिलकर इन गीतों को गाते हैं।

ये डफ केगीत ही सम्भवतः फागु काव्यों के वर्तमान रूप हैं क्योंकि इनमें डफ वाद्य तो बजता ही है, साथ ही गायक नृत्य भी करते हैं। डफ एक बड़ा सा वाद्य होता है, जो ढोल की भांति बड़ा और गोल होता है।

डफ के गीतों पर राजस्थान के प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीमनोहर शर्मा, एम०ए० ने विस्तार से विचार किया है।[1] इन गीतों का परिचय देते हुए श्री शर्मा लिखते हैं कि -बसन्त पंचमी से लेकर धुलंडी तक राजस्थान में डफ बजाये जाते हैं। या यों कहना चाहिए कि इतने समय मेंराजस्थान का समस्त वातावरण डफ के गीतों की आवाज में गूंजने लगता है। कुछेक शहरों के कृत्रिम जीवन को शायद छोड़ भी दें, तो गांवों के पूरे जीवन में इन दिनों एक वेगवती हिलोर सी उठती है जो, समस्त लोक मानस को तरंगायमान कर देती है। इन दिनों में लोगों से डफ बजाये बिना नहीं रहा जाता।[2]

इन गीतों और फागु गीतों में सम्भवतः यह अन्तर है कि फागु में नृत्य, क्रीड़ा, रमण आदि में स्त्रियां भाग लेती हैं परन्तु इन डफ के गीतों में स्त्रियां भाग नहीं लेतीं। पुरुष ही नृत्य करते हैं।इनकी मेयता, तन्मयता, उत्कटता तथा नृत्य आदि सब बातें फागु से मेल खाती हैं।नृत्य, वाद्य, गीत तथा इन डफ बजाने वालों

१- देखिए मरुभारती-वर्ष २ अंक १, पृ० ३० राजस्थान में डफ के गीत शीर्षक:श्रीमनोहर शर्मा, एम०ए०, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ का लेख।
२- वही पृ० ३०।

की विशेष मुद्रा का परिचय देते हुए श्री मनोहर शर्मा लिखते है कि -डफ के गीत पुरुष समाज के गीत है। इन दिनों के सम्बन्ध में स्त्रियों के गीत अलग है और पुरुषों के अलग। यह वसंतोत्सव का समय है। इस समय नृत्य गीत एवं वाद्य की एक धारा सी बह चलती है। डफ पुरुष ही बजाते है और वे ही इसकी आवाज के साथ नाचते है और गाते है। एक हाथ में डफ (चंग) और चिमटी (लकड़ी का एक छोटा सा टुकड़ा) रखते है और दूसरे हाथ से डफ बजाया जाता है। हाथ की चोट से नर की आवाज पैदा होती है और चिमटी से मादा की आवाज निकलती है। साथ में छिमछिमए (मंजीरे) भी बजाए जाते है। डफ बजाने वाले अपने पैरों में मोटे घूंघरु बांधते है। डफ के साथ जो नाच होता है वह भी अपनी अलग विशेषता रखता है। डफ के साथ झुककर, बैठकर, और यहां तक कि लेट कर भी नाच होता है।[1]

इन डफ गीतों के विषय भी अनेक होते है।इनके गीतों का धमाल अथवा होरी कहा जाता है। इस तरह होली के आगमन तक ये गीत अपने चरम पर पहुंच जाते है। राजस्थान के देहातों में इन गीतों का सुन्दर रूप मिलता है। डफ के इन गीतों में उल्लास की अन्विति रहती है तथा सामाजिक जीवन एवं प्रादेशिक वातावरण के भी सुन्दर चित्रण मिलते है।इन गीतों की लय व धुनें अलग अलग होती है उसे ढाल कहते है। यह ढालें कई प्रकार से गाई जाती है इन गीतों के विषय साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि अनेक होते है। कुछ गीतों को प्रमुख रागों के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है। श्री मनोहर शर्मा ने अपने लेख में श्री गणेश, शिव ताण्डव यमुना-जल, वियोग, भरथरी का विरह, सुलतान का भाव, भ्रमरगीत, माखेरा, बराव, हीररांझा मेंहदी, कूंजा, स्वप्न, बरसा, मेह आदि शीर्षकों से इन गीतों के बहुविषयक शिल्प पर प्रकाश डाला है।[2] प्रश्नोत्तर रूप में भी ये गीत चलते है।

इस प्रकार फागु काव्यों से इनका पर्याप्त साम्य है परन्तु गायक, नर्तक तथा पात्रों की दृष्टि से थोड़ा वैविध्य भी है।परन्तु जहां तक वसन्त भाव, गेयात्मकता

१- वही, पृ० १४-१४
२- वही, पृ० १४-१४

संगीत तत्व, लोक साहित्य के एक रस मधुरता, उल्लास और नृत्यएवं बोध का सम्बन्ध है, राजस्थानी डफ के गीत फागु काव्यों का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करते है।

सामान्यतः फागों की यही प्रवृत्तियां है पर क्योंकि जैन कवियों द्वारा ही अधिकंशतः इन फागु काव्यों की रचना हुई है। अतः इनके शिल्प में एक विचित्रता है। कईफागु श्रृंगार शून्य हैं। इनमें रितुओं की वासन्तिक सुषमा का वर्णन भी नहीं होता। ये शान्त रस प्रधान होते है। पर जहां तक स्थूलिभद्र और नेमिनाथ दोनों चरितनायकों से सम्बन्धित फागु है, उनमें मधुर श्रृंगार सर्वत्र परिलक्षित होता है।

फागु की इन्हीं विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है कि -वसंत रितु का प्रधान उत्सव फाल्गुन महिने में होता है। उस समय नर नारी मिलकर एक दूसरे पर अबीर आदि डालते हैं और जल की पिचकारियों से क्रीड़ा करते अर्थात् फागु खेलते हैं। जिनमें वसंत रितु के उल्लास का कुछ वर्णन हो या जो वसंत रितु में गाई जाती हो ऐसी रचनाओं को फागु संज्ञा दी गई है।[1]

फागु काव्यों की एक और शैली शब्दालंकार वाची अनुप्रासात्मक शैली है। श्री नाहटाजी ने भी इस शैली को फागुबंधी[2] कहा है। ऐसी रचनाओं में शब्दालंकार के साथ यमकबंध अनुप्रास पाया जाता है। परन्तु आदिकालीन सब फागों को इस दृष्टि से देखने से कई रचनाएं इस फागु बंधी शैली में नहीं आ पाती। संभवतः यह वर्णन की एक क्लिष्ट साहित्यिक शैली है और इससे इसकी शास्त्रीयता स्वाभाविक रसमयी फागु रचनाओं में बाधा पहुंचाती है।इन यमक अनुप्रास बहुलशैली में लिखे गए कुछ फागु अवश्य मिलते है। फागु काव्यों के पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती काल में इस प्रकार की रचनाएं नहीं मिलती। हां मध्ययुग में इस प्रकार के काव्य यमकप्रास शैली के अवश्य मिलते है। उदाहरणार्थ देवरत्न सूरि फाग, जीरापल्ली पार्श्वनाग फागु आदि।

डा० अम्बालाल प्रेमानन्द शाह ने इधर फागु काव्य की नई ही परिभाषा की है। उनके अनुसार फागु न गीत है न छंद है औरन काव्य (प्रकार) का नाम।

१- दे०नागरी प्रचारिणी पत्रिका-वर्ष ५८ अंक ४ सं०२०११प्राचीन भाषा काव्यों की विविध संज्ञाएं-श्री अगरचन्द नाहटा का लेख पृ० ४२१।

ऐसा प्रतीत होता है कि फागु शब्दालंकार वाची अनुप्रासात्मक रचना है। संस्कृत में जिस प्रकार यमक बद्ध अनुप्रासमय काव्य होते हैं वैसी रचना को भाषा में फागबंध कहा जा सकता है।[1]

उक्त परिभाषा कहाँ तक ठीक है, यह तो नहीं कहा जा सकता। पर इतना अवश्य है कि इस प्रकार की परिभाषा को ही फागु काव्य के लिए रूढ़ कर देने से अनेक आदिकालीन फागु रचनाएं, जिनको रचनाकारों और प्रतिलिपिकारों ने फागु लिखा तथा कहा है, फागु की सीमा में नहीं आ सकेगी और हमको अनेक सरस मसृण एवं प्रसाद गुण सम्पन्न साहित्यिक कृतियों से हाथ धोना पड़ेगा। श्री डा० शाह ने संभवतः परिभाषा में नवीनता अवश्य रखदी है पर विषय की दृष्टि से यह बहुत संगत नहीं कही जा सकती। क्योंकि इसमें उनका दृष्टिकोण एकांगी है जो फागु के बहुत महत्वपूर्ण अंश को छोड़ देता है। संभवतः श्री डा० शाह के कथन के मूल में यह बात हो कि शृंगार वर्णन जैन कवियों की प्रवृत्ति के प्रतिकूल है। अतः अधिकांशतः उनके फागु यमकबंध अनुप्रासमय ही होते हैं और विषय निर्वेदांत, वसन्तवर्णन हीन एवं शांतरस पूर्ण। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। जिन जिन जैन कवियों ने भी नेमिनाथ और स्थूलिभद्र को अपने काव्य का चरितनायक माना है वे शृंगार और वसन्त आदि का चित्रण नहीं छोड़ सके हैं क्योंकि इन पुरुषों का संबंध ही पहले शृंगार से रहा है और फिर शम से। अतः मात्र फागु बंध रचनाओं को ही फागु मात्र कहना इन साहित्यिक कृतियों की ओर से आंख बंद कर लेना होगा, जो बहुत संगत नहीं कहा जा सकता है। यह सही है कि फागु काव्यों के मध्ययुग में कुछ यमक प्रास बंध फागु रचनाएं मिलती हैं जिनमें शृंगार आदि का वर्णन नहीं है और केवल शांत रस का वर्णन है परन्तु विषय प्रवृत्ति और संख्या दोनों ही दृष्टियों से फागु काव्यों के पूर्ववर्ती और परवर्ती काल की अनेक सरस कृतियों के आधार पर ही फागु के शिल्प तथा परिभाषा सब दृष्टिकोण का निर्णय होना चाहिए। अतः किसी व्यापक परिभाषा की पर्याप्त अपेक्षा है ताकि उसमें दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों

१- जैन सत्य प्रकाश वर्ष १२ अंक ५,६ पृ० १६५ पर फागुबंध काव्यनुं स्वरुप अने मारी निराश कामना शीर्षक लेख।

के आधार को स्वीकृत किया जा सके और फागु काव्यों का सही मूल्यांकन हो।

इन फागु बंध रचनाओं की परम्परा चलती हो रही, लेकिन यह बहुत ही शीघ्र छोड़ भी दी गई और अव्यवहारिक समझी जाने लगी।

श्री अगरचन्द शर्मा ने लिखा है- अनेक फागु काव्यों को उद्धृत किया जा सकता है जो स्पष्ट घोषणा करते हैं कि प्रास यमक शैली फागु काव्यों में सामान्य रूप से प्रयोग में नहीं लाई गई। युग की पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति एवं अंशतः रूढि के कारण यह विशिष्ट शैली अपनाई अवश्य गई किन्तु आगे चलकर अब तक प्राप्त अंतिम फागु के निर्माता श्री राजहर्ष तक आते आते यह शैली शिथिल ही नहीं हुई अपितु छोड़ भी दी गई। अतः इस शैली को आधार मानकर फागु की परिभाषा बनाना किसी प्रकार समीचीन नहीं।[1]

जो भी हो, इतना अवश्य निश्चित है कि फागु मधुमास की आह्लादकारी गेय रचना है। फागुरचनाएं दो प्रकार की मिलती हैं जैन और जैनेतर अर्थात् ब्राह्मण[2]। परन्तु जैन फागु रचनाओं का शिल्प एक वैचित्र्य लिए होता है।[3] कई रचनाएं तो ऐसी भी देखी गई हैं, जिनमें जैन मुनियों के संयम श्री से दीक्षा ग्रहण करने पर फागु की ही तरह रास या क्रीड़ा होती है। जैनेतर विद्वानों ने फागु अधिक नहीं मिलते हैं और उनका शिल्प भी साधारण होता है। जैनेतर रचनाओं के अधिक नहीं मिलने का कारण उनकी असुरक्षित रहना तथा विभिन्न आक्रमण कर्ता ही हो सकते हैं। या यह भी सम्भव है कि वे लिखी ही थोड़ी संख्या में गई हों। जैन फागु रचनाओं के शिल्प विधान में एक विशिष्टता यह है कि उसमें शृंगार के साथ शम का सफल समन्वय है। शृंगार का परिहार शम में करना बहुत ही कठिन स्थिति है।इन रासों को यदि विरोधी रस में भी कहें तो भी इनका सरलता से निर्वाह कवियों की अभूतपूर्व प्रतिभा एवं विद्वत्ता का सूचक है।इन रचनाओं में जीवन का स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण है।

१- दे० श्री अगरचन्द्र शर्मा का-सिरि स्थूलि भद्र फागु-लेख ना०प्र०प०वर्ष ५९ अंक १पृ०२४

२- के०श्री व्यास सम्पादित-वसन्त विलास प्रस्तावना पृ० ३८

३- वही ग्रन्थ वही पृष्ठ।

श्री लालचन्द गांधी फागु रचना को विविध तत्वों से युक्त देखते हैं। उनका कहना है कि वसंत उत्सव से सम्बन्धित, अभिनव उल्लास वाली एवं जीवन को नव नव भावों से पूरित करने वाली विशिष्ट वर्णनात्मक रचना फागु है जिसमें शाब्दिक छटा के साथ साथ यमक अनुप्रास आदि अलंकारों की सुषमा विद्यमान हो।[१]

श्री अ०च० शर्मा ने इसे मधुमहोत्सव रूपी गेय रूपक कहा है।[२] जैनेतर फागों से जैन फागों के शिल्प विधान का अन्तर स्पष्ट करते हुए श्री के०व्यास ने भी जैन फागों को शृंगार रहित रचनायें ही कहा है। जिनमें शम की प्रधानता है। पर ऐसी स्थिति में स्थूलिभद्र और नेमिनाथ सम्बन्धी जितने ग्रन्थ फागु रचनाओं के रूप में होंगें, अपवाद ही कहे जायेंगे क्योंकि इन दोनों चरितनायकों के जीवन का सम्बन्ध शृंगारिक घटनाओं से ही रहा है।

१- देखिए- श्री जैन सत्य प्रकाश, वर्ष ११ अंक ७ पृ० २१२ श्री लालचंद गांधी का लेख।

२- नागरी प्र०प० वर्ष ५९ अंक १ सं० २०११ पृ० ३५।

॥ १४वीं शताब्दी फागु ॥

१४वीं शताब्दि से ही फागों की रचनायें मिलनी प्रारम्भ हो जाती हैं। फाग परम्परा पर पूर्व पृष्ठों पर विचार करने के पश्चात् अब हम १४वीं और १५वीं शताब्दी में उपलब्ध कुछ उत्कृष्ट साहित्यिक तथा काव्यात्मक फागु रचनाओं का विश्लेषण करेंगें। इन उपलब्ध कृतियों में भी रास की तरह विविध विषयक फागु रचनायें मिल जाती हैं। फागु कीप्रवृत्ति कालान्त में इतनी बढ़ी कि १४वीं के उत्तरार्द्ध और १५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तो रास छंद की भांति फागु एक छंद विशेष ही बन गया है इसी समय की अनेक रचनायेंश्रृंगारिक प्रवृत्तियों की मिलती हैं। यों आंशिक रुप में अन्य रसों और प्रवृत्तियों से सम्बन्धित कृतियां भी इन्हीं फागों में मिल जाती हैं। फागु काव्यों के वर्ण्य विषयों में रास की ही भांति विविधता मिलती है। कुछ चरित प्रधान फाग हैं तो कुछ कथा प्रधान किसी में घटनाओं का बाहुल्य है तो किसी में उत्कृष्ट श्रृंगार है। यह श्रृंगार भी ऐसा जो संयम और शम की सीमाओं से बंधा है। इनके अतिरिक्त, काम पराभव वर्णन, तप वर्णन, क्रीड़ा, रमण, नृत्य आदि के मुख्य पक्ष से सम्बन्धित विषयों पर भी फागु संज्ञक रचनायें मिली हैं। विविधता की दृष्टि से इन रचनाओं का बड़ा महत्व है।

१४वीं और १५वीं शताब्दी में जो प्रमुख फाग मिलते हैं उनमें से जिनका सम्बन्ध नेमिनाथ स्थूलिभद्र और जंबू स्वामी से है वे रचनायें श्रृंगार प्रधान हैं। कुछ काम पराभव की हैं और कुछ अन्य विषयों से सम्बन्धित हैं। यों फागु संज्ञक रचनायें श्रृंगार वर्णन के लिए रूढ़ नहीं हैं पर प्रस्तुत अधिकांश फागों का सम्बन्ध ऐसे नायकों से रहा है जिनका एक चरण श्रृंगार में रहा और दूसरा शम में। काम के उद्दीपन, संयोग, वियोग के चित्र तथा वसंत वर्णन के उल्लासित गान इन फागों में उपलब्ध होते हैं। इन फागों में मधुरता है काव्यात्मकता है मधुमास का उल्लास है।वास्तव में ये काव्य ऋतुरितु के संगीत रूपक हैं। इन काव्यों में सेकई फागों की प्रवृत्ति श्रृंगारिक है। यद्यपि जैन कवियों और साधक मुनियों द्वारा श्रृंगार वर्णन होना उनकी परम्परा के प्रतिकूल पड़ता है परन्तु क्योंकि उनके पूर्व पुरुषों चरित नायकों

और तीर्थंकरों में से कुछ का सम्बन्ध शृंगार से रहा है अतः उस वातावरण का एक स्पष्ट चित्र खींचने और उसमें अपने चरित नायकों को आदर्श सिद्ध करने के लिए उन्हें इन मर्यादाओं का थोड़ा अतिक्रमण भी करना पड़ा है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसमें वे असफल रहे। इन्हीं फागु कृतियों में शृंगार के सफल चित्रण और संयोग वियोग की मार्मिक अनुभूतियाँ देखने को मिलती हैं। शताब्दी क्रम से इनमें से कुछ उत्कृष्ट रचनाओं का परिचय अंग्रांकित है जिनके विषयों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं:-

१- गेय फागु

२- शृंगारमूलक फाग

३- वसंत वर्णन सम्बन्धी फाग

४- यमक अनुप्रास प्रधान शृंगारिक फाग

५- स्थान और तीर्थ तथा महापुरुष के जीवन सम्बन्धी फाग।

उक्त आधार पर गेय रचनाओं में अधिकतर छंद प्रधान हैं। जिन्हें फागु बंध कहा जा सकता है। शृंगार मूलक रचनाओं में नेमिनाथ स्थूलिभद्र और जंबू स्वामी सम्बन्धी फागु आते हैं, वे गेय तथा संयोग वियोग से सम्बन्धित काव्य हैं। शृंगार को उद्दीप्त करने के लिए बसन्त रितु सम्बन्धी, तथा काम पराभव सम्बन्धी कुछ काव्यों की भी इन कवियों ने रचना की है। इस आधार के यमक अनुप्रास शैली पर लिखे गए काव्यों में भी शृंगार का सुन्दर विवेचन हुआ है।

जिनचंद्र सूरि फाग

अब तक उपलब्ध फागु काव्यों में यह रचना सबसे प्राचीन है। रचना छोटी सी है और खरतर गच्छ के आचार्य जिनचन्द्रसूरि के पाट महोत्सव पर खेले जाने के लिए लिखी है। कृति का रचना काल सं० १३४१ है क्योंकि इन्हें सूरिपद सं०१३४१ में मिला था।[1] रचना के लेखक अज्ञात हैं। संभवतः खरतर के किसी जैन साधु ने लिखी होगी। यह भी सम्भव है कि सूरि जी के शिष्यों में से ही किसी ने इसका प्रतिपादन

१- खरतर गच्छ पट्टावली संग्रह- सम्पादक मुनिजिन विजय जी, पृ० ३०

किया हो। इस छोटी सी कृति में शांतिनाथ की स्तुति वर्णन, गुजरात के पाटण नगर का वर्णन, वसंत श्री वर्णन आदि बड़े सुन्दर वर्णन मिलते हैं।[1]

कृति का कथानक बहुत ही छोटा है। छोटे छोटे सूत्रों को मिलाकर ही रचना के विषय का अनुमान लगाया जासकता है कवि ने अपने चरित-नायक जिनचंदसूरि के महोत्सव पर सुन्दर वसंत वर्णन किया है। सूरि का शील संयम को देखकर कामदेव अपने सखा वसंत सहित उन पर आक्रमण करता है और मदन पराजित होता है तथा समस्त भक्तगण उनकी जयजयकार कर फागु गाते और खेलते हैं। कृति की समाप्ति निर्वेद में हुई है तथा रचनाकार ने इसे दोहा छंद में लिखा है।

इस कृति की मूल प्रति जैसलमेर ग्रंथ भंडार की एक हस्तलिखित पोथी में सुरक्षित है। प्रति की प्रतिलिपि नाहटा जी के पास विद्यमान है।[2] उन्हीं की प्रतिलिपि से डा० साडेसरा ने इसका सम्पादन किया है।[3] यहप्रति खंडित है लगता है एक पन्ना खो गया है अतः ७ से लेकर २० तक की पंक्तियां नहीं मिल पाती और ६ठी और २१वीं पक्तियों के भी छोटे छोटे टुकड़े ही मिलते हैं। जो हो, उपलब्ध पाठांश के आधार पर इस रचना के काव्य तथा भाषा सौष्ठव पर विचार किया जा सकता है तथा अद्यावधि उपलब्ध फागु काव्यों में इसकी प्राचीनता ज्ञात की जा सकती है।[4] पाठ का बहुत सा अंश खंडित है पर प्रति पर्याप्त महत्वपूर्ण है।

प्रारम्भ में मंगलाचरण करकेकवि ने अणहिलवाड़ में होने वाले महोत्सव का चित्रण खींचा है। जिन प्रबोधसूरि एवं नायक के वंश का परिचय दिया है:-

अरे पणमवि सामिउ संतु, जिण वाउलि उरिहार

अरे अणहिलवाडा मंडणउ सयल तिहुयणसारु

अरे जिन प्रबोधसूरि पाटवि सिरि संजमु सिरि केतु

अरे नायक जिणचंदसूरि गुरु कामल देवि कउ पुतु[5]

१- जिनचंद सूरि फागःप्रा०का०सं०डा०सांडेसरा।पृ० ३१-३२।
२- अभय जैन ग्रन्थालय नाहटों की गवाड़ बीकानेर
३- प्रा०का०सं०,डा०सांडेसरा, पृ० ४५।
४- सम्मेलन पत्रिका भाग ४० सं० १ पृ० ७९ में श्री अगरचंद नाहटा का लेख-राजस्थानी फागु काव्य की परंपरा और विशिष्टता।
५- प्रा०का०सं०.डा० भोगीलाल पृ० २३१।

मुनि का तेज, शील और संयम को देखकर कामदेव से नहीं रहा गया।उसको ईर्ष्या हुई। अपने मित्र वसंत को बुलाकर मुनि को शलच्युत करना चाहा और इसके बाद कवि का मन बसंत वर्णन में रम जाता है:-

अरे इयडऊ तपियउ पेखिवि न सहए रतिपति नाहु
अरे बोलावइ वसंतु ज सव्वह रिउह राउ
अरे आगए तुह बलिजीतओ गोरउ करउ वाळंभु
अरे इसइ वचतु मिसुणेविणु आगयउ रलिय वसंतु [१]

बसन्त का मधुर वर्णन कवि की काव्य तन्मयता का परिचय देता है।

प्रकृति की सुषमा वर्णन में कवि खूब मुखरित हुआ है। शीतल दक्षिण पवन बहना चंपकों और कमलों का खिलना, आमों का बौराना और कोयल के टहुकए तथा इन शृंगारिक उद्दीपनों से मनुष्यों के हृदय में उत्पन्न होने वाले काम का वर्णन भी सुन्दर किया है:-

अरे पाडल वालउ बेउल सेवत्री जाइ मुच कुंद
अरे कंटु करणी रायचंपक विहसिय केवडि विंदु
अरे कमलहि कुमुदिहि सोहिया, मानस जवलि सलाय
अरे शीयला कोमला सुरहिया वाअई दक्खिण वाय
अरे मुरिमुरि आंबुला महरिया कोयल हरखिय देह
अरे ताहि ठए टहुकाए बोलए मयणह केरिय सेह
अरे इसइ वसंतिहि कुसुम माधुह कोहिय माम
अरे अवेसम जे पाखिया, तिन्हु तणी कुमलियवात
अरे इसउ वसंतु पेखिवि नारिय कुंअरु कामु
अरे सिंगारावए विविह परि सव्वह लो यह वामु
अरे सिरि मउडू कुण्नि कुंडल वरा कोटिहि नवसरु हारु
अरे बाहहि चूडा पागिहि नेउरकओ भणकार [२]

१- वही ग्रन्थ वही पृ०
२- प्राचीन फागु संग्रह, डा० संडेसरा, पृ० २३१।

आगे का पाठ खंडित हो गया है कवि ने श्रृंगारिक उपादानों और उद्दीपन एवं अलंकरणों का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। सुन्दर श्रृंगार संभवतः इन खोई हुई पंक्तियों में अवश्य रहा होगा क्योंकि ऐसा इन खंडित पंक्तियों से स्पष्ट होता है। इसी संभावना तथा उपलब्ध पाठ के आधार पर ही इस कृति को लेखक ने श्रृंगारिक आख्यान काव्यों में स्थान दिया है। खंडित पंक्तियां देखिए:-

अरे सिरिया मोहा लहलहहि कसतूरिय महिवट्ट
अरे ------------------------------

---------------- ट परिहुयउ देवगण भाउ [१]
रिण तूरिहिं वज्जंतिहि उट्ठिउ सील नरिंदु
देखिवि उत्कट्ठ विम्भियउ सायहु वि देखिहिं विंदु [२]

श्रृंगार का राजा काम अपने उत्तम प्रदर्शन पर भी मुनि को नहीं जीत सका।रणतूर्य बजने लगा। शील के अधिष्ठाता मुनि उठे और उन्होंने कामदेव को पछाड़ दिया और कायर कामदेव का लज्जित और कुंठित होकर भागना तथा इन्द्र का जयजयकार करना उल्लेखनीय है:

अरे ढ्रेठिहिं ढ्रेठिहि दीठय, नाठउ रतिपति राउ
नारीय कुंजरु मेल्हिवि जोवण छाडिय ठाहु (?)
धरणिवह पायालिहिं पुहुविहिं पंडिय लोउ
जीतउं जीतउं इम भणइ वसिगहि सुरपति इंदु [३]

और नायक की काम विजय पर पाटण के उल्लसित भक्त उत्सव करते है। मार युद्ध की घटनाएं संस्कृत काव्यों से ही मिलती आ रही है अतः घटना श्रृंगार प्रधान होने की स्थिति उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाती है।अन्त में कवि श्रावकों के उल्लास और

१- वही ग्रन्थ पृ० २६९
२- वही ग्रन्थ, वही पृष्ठ
३- प्राचीन फागु संग्रह डा० सांडेसरा पृ० २६२ पद २२-२३

आल्लाद, नारियों के नृत्य गान, तथा फागु के मन्तव्य को स्पष्ट करता है:-

वद्दुय मणउं करावय सिरिगिगहिं जिणचंद सूरि

गुजरात पाटण मल्हउं सयलई नयर माहि

--- --- ---

सिरि जिणचंद सूरि फागिहि गायहि जे अति भावि

ते वाउल पुरुवला विलसहि विलसहि सिवसुह साथि [१]

रचना छोटी होते हुए भी सर्वांश सुन्दर है। विकृत अंश सम्भवतः कवि के काव्य का बहुत ही महत्वपूर्ण अंश रहा होगा। फागु की प्रत्येक पंक्ति में अरे शब्द की आवृत्ति है, जो उसकी गेयता की सूचक है। यद्यपि रचना के प्राप्तांश में काव्यात्मक प्रतिभा के स्थल बहुत कम मिलते है, परन्तु जितना भी मिलता है उसी से कवि की शैली भाषा तथा उसके उल्लास गान का अनुमान हो सकता है। शब्दों में अनुप्रासात्मकता है। प्रकृति वर्णन भी कवि ने अनुरणात्मक किया है। विहसिय केवडि विंदु में कितना निखार है:-

अरे पुरि पुरि आंबुला मउरिया कोयल हर्ष हरसिय देह

अरे अचेतन जे पाखिया लिम्हुतणी जुगलिय वास

अंतिम पंक्ति में कवि की उपदेशात्मकता स्पष्ट होती है। प्रकृति वर्णन में तुलसी से पहले भी उपदेशात्मक रूप इस काल में मिल जाता है। रूप वर्णन में कवि का कौशल दोही पंक्तियों में देखने को मिल जाता है:-

अरे सिरि मउडु कन्नि कुंडल वरा कोटिहि नवसर हारु

अरे बाहहिं चूडा पागिहि नेउर कंठो झमकारु

रसों में कवि ने शृंगार के उद्दीपनों के साथ साथ वीर रस की भी ध्वनि का भान कराया है। काम का कायर होकर भागना, रणतूर्य का बजना और गर्वोन्नत शीलवान मुनि का उठना आदि सब कार्य उत्साह की अभिव्यंजना करते हैं:-

---

१- वही ग्रन्थ, पद २५।

रिण तूरिहि वज्जंतिहिं उट्टिउ वील नरिंडु

--- --- ---

अरे ठेठिहिं ठेठिहिं दीठउ नाळउ रितु पतिनाह

धरणिदह पायलिहि पुहविहि पंडिय लोउ

जीतउं जीतउं इयमणइ भणइ सग्गिहि सुरपति इंदु

उक्त उद्धरण की इस जय जयकार ध्वनि- कि पाताल के धरणीन्द्र को पृथ्वी के पंडित लोगों को तथा स्वर्ग के इन्द्र को मुनिवर ने जीत लिया- से उत्साह की योजना स्पष्ट है।

इस छोटी सी रचना में अपभ्रंश के गिने चुने शब्दों के साथ कुछ मालव के प्रान्तीय शब्द तथा प्राचीन राजस्थानी या प्राचीन गुजराती की भरमार है। कुछ शब्द- तद्भव हैं एवं कुछ तत्सम।यथा:-

अपभ्रंश-मउडु, मेहर, वज्जंतिहि, उट्टिउ, समलु पुहवि, सग्गिहिं, भमरइं आदि।

मालवी व प्राचीन गुजराती- वाउलि, पुरुसला, आंबुला, मउरिया, उरि, मुधु, गोरड, रलिय, वाळउ, पुरि पुरि, टुहकए, तणी, झणकारु, नाठउ, दीठए आदि।

इस प्रकार कृति बहुत छोटी होने पर भी काव्य विषय पर प्रकाश डालती है। यों रचना साधारण है और फाग के रूप में मनोरम वसन्त की वस्तु का चित्रण करने वाली अद्यावधि प्राप्त कृतियों में सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण है।

नेमिनाथ फागु[1] (पद्म)

१४वीं शताब्दी में एक छोटा सा काव्य नेमिनाथ फागु मिलता है। इसके रचयिता कवि पद्म है। रचना के नायक श्री नेमिनाथ है। इसी प्रकार के अनेकों काव्य नेमिनाथ के जीवन पर इस काल में तथा परवर्ती काल में उपलब्ध होते है। प्रस्तुत फाग में नेमिनाथ का राजमती से विवाह न कर वीतरागी होने का संक्षिप्त में वर्णन किया है। कवि पद्म रचित इस नेमिनाथ फागु की प्रति श्री अगरचंद नाहटा के अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है। श्री देसाई मोहनलाल ने[2] तथा डा० मांडेसरा ने भी इसका उल्लेख किया है। रचना सिर्फ १४ छंदों में लिखी गई है। कृति का छंद दोहा है। जिसमें १० कड़ियों में कवि ने खुलकर वासन्तिक सुषमाओं का वर्णन किया है। ऐसा लगता है कि यह छोटा सा काव्य अनेक भावोर्मियों से गुंफित है। अतः इसे हम उर्मि काव्य कह सकते है। कवि ने छोटे छोटे भावों द्वारा वर्णनों में एक चटक व माधुर्य का समन्वय किया है। कवि का प्रकृति वर्णन सरस है। प्रारम्भ में मंगला चरण के बाद कवि ने मधु रितु का चित्र खींचा है। उसकी आलंकारिता व चित्रात्मकता द्रष्टव्य है जिसमें प्राकृतिक या वासन्तिक सुषमा में झूम झूम कर युवती बालाओं के फाग खेलने का आल्हादिक वर्णन है। साथ ही नारियों का ~~व~~ शृंगारिक ~~व~~ रूप चित्रण भी उत्कृष्ट है:-

मलयगिरि रलिया मण्डउ दक्खिण वाउलवाउ
कामिणी मन सोहामणउ पहुतउ रितु तणउ राउ
जिणि विहसइ सवि विणसइ मली अलि आलि कराय
कोयल कुहुकइ टहूकइ मोरिय अंब वणाय
कींब जांबून लींबुइ बीजुउरि बहु भंगि
करणी कमयर करमदी नारंग नव रंगि
वालउ बेउल वउल सिरि सोवन केतकी जाइ
पाडल परिमल महमहइ वाउ सुगंधउ वाइ

पीण पयोहर अपछर गूजर धरतीय नारि
फागु खेलइते फरि फरि नेमि जिणेसर बारि
कडिहि पटउली गडमडइ उरि एकावली हारो
करियलि कंकण मणमय पय नेउर फमकारो
अहर तंबोल रसि रंगेउ नयणे कज्जल रेह
आम अंधारीय कांचली, किरि ऊनइ उमेह
गोरी कंठि नगोदा बीजल जिम भब्कंति
दंति पंकति हीराउली दीपति सहणन जाइ
सिरि सींथंहि सयथलउ ममर माला जिसी वीणि
फागु खेलइ मन रंगिहि हंस गमणि मृगनयणी १

आगे के छंदों में कवि ने नेमिनाथ के आख्यान का बहुत ही संक्षेप में तथा सुन्दर वर्णन किया है। उपमा और उत्प्रेक्षाओं में कवि नेमि व राजुल का कुछ ही पंक्तियों में निर्वेद वर्णन करता है। फाग खेलती हुई बालाएं नेमि का चरित गाती जाती है तथा उल्लास में झूम उठती है। भाषा सरल है। शब्दों का गठन व प्रवाह वर्णनों को उत्कृष्ट बना देता है। शब्दों में थोड़े में ही अधिक कह देने की शक्ति है। गेय रास में इतनी छोटी रचना में कवि के कलिए इससे अधिक कहना असंभव ही था:

काने कुंडल सिरिखड़ीय अवुबुब किय सिणगार
महुर सरे सिउं गायबउ नेमिहि बाल कूमार
अगर कपूर केरउ (उ्ठ रउउ सुकवि तम सविचार
तिहां प्रभु बेसइ नेमिजिणु रिवुराउ बीजण हार
महिमा निधि महिमा गुरु गाइयउ प्रवण भंडार
सिंध सामल वन सोजयउ राज देव भरतार
हंस सरोवरि जिम मिलया महुबर जिम वणराय
चडम यणइ तिम सामिय बल्णे मुग्ध मुनुजाय
देव गिरि रलिया मणउ सोहहि सुरवर सार
ताबि आ भाविहि वणमउ जिम पामउ भवपार

रचना की वस्तु में मौलिकता नहीं है पर कवि की भाषा का शब्द चयन १४वीं शताब्दी की जन भाषा है जिसकी प्रकृति तत्समपन लिए है। संभवतः कवि ने यह रचना नृत्य के साथ खेलने व गाने के लिए ही लिखी है। कवि ने अपने मानस मन्थन द्वारा इस उल्लसित उर्मि काव्य से जन साधारण को प्रभावित किया है। वस्तुतः कृति छोटी होते हुए भी महत्वपूर्ण है।

श्री स्थूलिभद्र फागु

फाग वसन्त रितु में खेले जाते है, गाए जाते है और उल्लासपूर्ण जीवन की आल्हादक अभिव्यक्ति के प्रतीक काव्य है। कई फाग रूपक काव्य भी कहे जाते हैं। अनेक विद्वानों ने फागु संज्ञक काव्यों की अनेक प्रकार से परिभाषाएं की है जिन पर पूर्व पृष्ठों में प्रकाश डाला जा चुका है। मधु महोत्सव सम्बन्धी ऐसे ही गेयरूपक फाग [१] हमारे आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। जैन फागों के शिल्प और जैनेतर फागों के शिल्प में बहुत अन्तर है उनमें से अनेक फाग शान्त रस के छलकते स्रोत हैं परन्तु अनेक ऐसे फागु भी है जिनका वर्ण्य-विषय श्रृंगार ही रहा है। श्री जम्बू स्वामी, श्री स्थूलीभद्र आदि पुरुषों पर रचे जितने फागु मिलेंगे, वे सब श्रृंगारिक रचनाएं ही होंगी। ऐसी स्थिति में इन चरित-नायकों पर लिखी ये समस्त रचनाएं अपवाद ही कही जाएंगी। सामान्यत: फागु का तात्पर्य रास के मसृण रूप से है। इसका काल मधु महोत्सव या वसन्त रितु होता है और इस काव्य रूप में गेय-तत्व नृत्य, संगीत, रूपक आदि सभी उपादान समन्वित रहते हैं। श्री के०व्यास ने जैनेतर फागों और जैन फागों पर बहुत ही विस्तार से प्रकाश डाला है।[१] उन्होंने भी जैन फागों को शम प्रधान या श्रृंगार रहित रचनाएं ही कहा है परन्तु स्थूलिभद्र और नेमिनाथ के फागु उनकी परिभाषा में नहीं आने वाले अपवाद है।

१

श्रृंगारिक घटनाओं से सम्बन्धित होने एवं प्रेमाख्यानक वृत्त होने के कारण ही इन रचनाओं की प्रवृत्तियां श्रृंगारिक हैं। स्थूलिभद्र फागु ऐसी ही रचना है। स्थूलिभद्र स्वयं एक श्रृंगारिक नायक रहे है और क्योंकि उनकी प्रारंभिक प्रवृत्तियां श्रृंगारिक है, अतः इस काव्य को श्रृंगारिक काव्य ही कहा जाना चाहिए। प्रस्तुत काव्य के अधिकांश अवतरण श्रृंगारिक हैं। रूप-वर्णन एवं नखशिख वर्णन में एकअपूर्व श्रृंगारिकता, प्रेमाख्यानकता एवं चमत्कारिकता है।अतः स्थूलिभद्र फागु को श्रृंगारिक रचना कहा जासकता है।

सर्व प्रथम यह रचना प्राचीन गुर्जर काव्य में प्रकाशित हुई थी।[1] और अब इसका पाठ डा० भोगीलाल सांडेसरा ने सम्पादित कर दिया है।[2] उनके सम्पादन से पूर्व उनका यह पाठ प्राच्य विद्या मन्दिर की पत्रिका[3] में भी छप चुका था। डा० साण्डेसरा ने प्रस्तुत कृति के पाठ का आधार दलाल का पाठ एवं पाटण भंडार से प्राप्त प्रति के पाठ को रक्खा है। स्वर्गीय श्री मोहनलाल देसाई ने भी अपने ग्रन्थ जैन गुर्जर कवियों में कृति का नाम एवं आदि अन्त दिया है।

कृति के रचनाकार श्री जिनपद्म सूरि हैं। जिनपद्मसूरि का परिचय ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह में श्री नाहटा जी ने विस्तार से दिया है।[4] सूरि जी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के खरतरगच्छ के थे। इन्हें संवत् १३९० में आचार्य-पद मिला और सं० १४०० तक इनका देहावसान हुआ। अतः सम्भवतः इस फागु की रचना संवत् १३९० से सं० १४०० के बीच में ही कहीं हुईहोगी। पाटण संघ ने इन्हीं सूरि जी को (बाल धवल,(कुचलि सरस्वती) का विरुद दिया है।[5]

स्थूलिभद्र फागु एक श्रृंगारिक खण्ड काव्य है, जिसमें कथा नायक का पूरा चरित नहीं मिलता। उसके जीवन सम्बन्धी पूर्व कार्यों और क्रिया-व्यापारों का

१- दे०प्रा०गु०का०सं०,श्री के०बी० व्यास पृ० ३९
२- प्राचीन फागु संग्रह-सं०श्री भोगीलाल साण्डेसरा,प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमाला१सं०२०११ पृ० ३-७।
३-

४- ऐतिहासिक ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रहःश्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटापृ० १४-१५।
५- वही ग्रन्थ, वही पृ० ६- प्रा०का०सं०-डा०साण्डेसरा, पृ० ३-७

कवि वर्णन नहीं करता। इस काव्य द्वारा चरित-नायक के व्यक्तिगत जीवन की कोई सूचना हमें नहीं मिलती। तत्कालीन साहित्य के अन्य ग्रन्थों के आधार पर ही स्थलिभद्र का चरित्र जाना सकता है। वस्तुत: यह भी सम्भव है कि कवि ने इस प्रभावोत्पादक चरित को उसकी अभेद्यता के लिए ही चुना हो। विलासी और ऐन्द्रिय लिप्सा में डूबे हुए इस चरित्र को श्री सूरि ने एक अपूर्व आध्यात्मिकता में ढाला है, जिसमें एक उज्जवल संदेश है जो समस्त मानवता का नेतृत्व करने में सक्षम है। यह भी संभावना की जासकती है कि कवि ने संक्षिप्तता को ही अभिव्यक्ति का माध्यम चुना हो। स्थूलिभद्र के जीवन के प्रथम तीन दशक विलास प्रधान रहे थे। नगर की वारांगना कोशा के साथ ही स्थूलिभद्र लिप्त रहते थे। अत: परम्परा के कारण कवि ने उसका उल्लेख इसमें करना ठीक नहीं समझा हो। या कवि ने उनकी जीवन की समस्त घटनाओं में से इसमहान विचित्र, कठिन एवं असाध्य घटना को ही अपने काव्य की रचना के लिए चुना हो, जो उनके जीवन की असाधारण एक महान एवं आदर्श घटना है।

कथा भाग

जहां तक प्रस्तुत काव्य के चरित-नायक का प्रश्न है, वे जैन इतिहास के एक महत्वपूर्ण पुरुष है। उनका यश-वर्णन अनेक काव्यों में हुआ है। वे स्वयं एक बहुत ही प्रतिभाशाली साधक जैनाचार्य थे। जैन समाज में इस अपूर्व वीतरागी की बड़ी प्रतिष्ठा है तथा जैन उनके यश को सर्वतीर्थंकरों से बढ़ा एवं अमर मानते हैं। कवि ने इसी चरित-नायक को अपना विषय बना कर काव्य की रेखाओं में बांधा है। २७ कड़ियों के इस छोटे से काव्य से कवि ने आदिकालीन काव्य-प्रवाह में एक नया अध्याय जोड़ा है तथा वर्णन की प्रसादमयी शैली में उसे अभूतपूर्व सफलता मिली है।

पाटलिपुत्र का राजा नन्द इतिहास में प्रसिद्ध हुआ है और उसका मन्त्री शकटार भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। स्थूलिभद्र इसी शकटार के ज्येष्ठ पुत्र थे। स्थूलिभद्र की वृत्तियां अत्यन्त उच्छृंखलता पूर्ण एवं विलासिक हो गई। प्रारंभ से ही उनका सम्पर्क पाटलिपुत्र की एक वारांगना कोशा से हो गया। स्थूलिभद्र विलास में डूब गए। दिन रात उसी के यहां पड़े रहते । भोग ही उनका कार्य था।

वैलासिक वातायनों की रंगीनियों के ऐश्वर्य के अतिरिक्त उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता था। राग में कर्तव्य का ध्यान ही उन्हें भूल गया । कोशा वैश्या के यहाँ स्थूलिभद्र ने इसी तरह अपने जीवन का एक अमूल्य युग पूरा कर दिया। इधर शकटार ने यह समझ कर कि उसकीमृत्यु तो निश्चित है, उसके बाद उसका सारा परिवार भी मारा जाएगा, अपने छोटे लड़के श्रीयक से जो स्थूलिभद्र का अनुज था, कहा कि मेरी मृत्यु के कारण परिवार की रक्षा हो सकती है। ज्यों ही मैं सिर को नीचा कर दूं तुम कह देना कि ऐसा राजद्रोही विरोधी तथा अस्वामी भक्त पिता मुझे नहीं चाहिए। हुआ भी वही। इसके पश्चात् मन्त्री-पद के लिए प्रश्न आया। श्रीयक ने स्थूलिभद्र से कहा। स्थूलिभद्र को जब ज्ञात हुआ कि तुच्छ राज्यपद के लिए पिता का वध हो गया है और भाई श्रीयक इसके मूल में था, तो उन्होंने राज-सभा में जाकर "मया आलोचितम्" कहने के साथ ही अपने केश उखाड़ डाले।

स्थूलिभद्र को वैराग्य हो गया। संसार से एक दम विरक्त होकर वे चल पड़े। आचार्य संभूति विजय को उन्होंने दीक्षा गुरु बनाया।उन्हीं के पास तप एवं अध्ययन प्रारम्भ किया। विधिवत् दीक्षा पाने से, सम्यक् आचरण, साधना एवं गुरु-प्रसाद से विसाली स्थूलिभद्र जिनकी कांति कंचण 'जिम झलकंति'[1] थी, अब कर्मठ, तपस्वी, योगी एवं जितेन्द्रिय हो गए। प्रथम चतुर्मास का समय आया।सबने गुरु जी से अपने चतुर्मास बिताने के स्थान पूछे। स्थूलिभद्र ने गुरुजी से उसी कोशा का प्रासाद बिहार के लिए मांगा। संभूतिविजय को उनकी जितेन्द्रियता पर अखंड विश्वास हो गया था, उन्होंने आज्ञा दे दी और वे प्रसन्नता से कोशा के प्रासाद को अपना चातुर्मासिक विहार बनाने को चल पड़े। आलोच्य कृति की कथावस्तु यहीं से प्रारम्भ होती है । कथा का सूत्र स्पष्ट करने के लिए उक्त पूर्व कथासार दे दिया गया है।

स्थूलिभद्र ने वर्षाकाल में कोशा के यहाँ प्रवेश किया,क्योंकि चतुर्मास वर्षाकाल को ही कहा जाता है। कोशा ने अपने शृंगार को चरम पर पहुँचाया

१- देखिए स्थूलिभद्र फागु, प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमाला ३ पृ० ३।

हाव भावों से अनेक कला-बाजियां दिखाईं, पर जितेन्द्रिय स्थूलिभद्र तो लौह घट हो गया था। कोशा हार गई, मुनि की चारित्रिक दृढ़ता के समक्ष उसके सारे राग-रंग हाव-भाव और अंगराग मलिन पड़ गये। स्थूलिभद्र की काम पर अभूतपूर्व विजय हुई। वे चार माह तक उस घोर वैलासिक वातावरण में रहकर भी उससे असंपृक्त बने रहे। अन्त में कोशा को प्रबोध देकर पुनः गुरु के पास चले आए।

संक्षेप में काव्य की यही कथा वस्तु है। कवि ने वृत्त का विभाजन भास[2] में किया है, जो कड़वकों की भांति सर्ग विभाजन के लिए प्रयुक्त होता था। प्रत्येक भास केपश्चात् घत्ता के[3] लक्षण दोहा में मिलती है। जो कथा की समाप्ति और नए सर्ग के प्रारंभ की सूचना देते हैं। सातों भासों में कवि ने कथा के सात चित्र दिए हैं। जो उसके विदग्ध शिल्प-चातुर्य की क्षमता के परिचायक हैं। छन्दकाव्य और शृंगारिक काव्यों की परंपरा के अनुसार कवि ने मंगलाचरण प्रारम्भ में रखा है:-

> पणमिय पास जिणंद पय अनु सरसइ समरेवी
>
> थूलि भद्द मुणिवर भणिसु फागु बन्धि गुणकेवि[4]

इससे कवि की फागुबन्ध शैली पर भी प्रकाश पड़ता है। फागु बन्धु शैली के अनुसार इसमें कवि का एकांगी दृष्टिकोण नहीं रहा है। इसमें भी एक विरह विदग्धा वारांगना कोशा को १२ वर्ष तक दुख देकर प्रियतम स्थूलिभद्र चले गए और पुनः मिल रहे हैं, इस धारणा का अपूर्व सुख छिपा हुआ है पर वास्तव में नायिका कोशा का पुनर्मिलन नहीं हो पाया।ज्ञान की तीक्ष्ण किरणों के समक्ष कोशा का भोगवादी ऐन्द्रियक सौन्दर्य विमर्दित हो गया। अतः इस मिलन में काम की उत्तानता नहीं थी, इसमें तो ज्ञान और धर्मलाभ का प्रकाश था। नायिका उसी विलासी नायक से हार गई। अतः यह तो स्पष्ट हो जाता है कि विप्रलम्भ शृंगार के वातावरण का चित्रण एवं निर्वाह तो सफल नहीं हो पाया, पर नायक की कामविजय पर अन्तिम भास में स्वर्ग से देवताओं का पुष्प वृष्टि करना और चतुर्मास भक्तों द्वारा गीत गाने, खेलने और रंग में डूबकर आनन्द मनाने की क्रियाओं के लिए ही इसकी रचना की गई है।अनुप्रास तथा फागुबन्ध शैली इसमें नहीं दिखाई पड़ती। अंशात्मक उदाहरण ----------------------------

---

१- वही ग्रन्थ पृ० ५ पद १९ २- वही ग्रन्थ पृ० १-६। ३- वही ग्रन्थ वही पृ०
४- प्राचीन फागु संग्रह श्री डा० भोगीलाल सांडेसरा, पृ० ३२।

से रचनाकार ने काम विजय की घटना के सफल निर्वाह के लिए तथा श्रावकों के सोल्लास गाने और क्रीड़ा करने हेतु ही इस फागु की सृष्टि की है:-

कुसुम वुट्ठि सुर करइ वुट्ठि हुउ जयजयकारो
धनु धनु एहु जु थूलिभद्द जिणि जीतउ मारो [1]

--- --- ---

वन्दउ सो सिरि थूलिभद्द जो जुगह पहाणो
मिलियउ जिणि जगि मल्लसल्लरइवल्लहमाणो
खरतरगच्छि जिणपदम सूरिकिय फागुर मेवउ
खेला नाच हूं चैत्रमासि रंगिहि गावेवउ [2]

इसकृति से आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्यकारों की काव्यात्मक प्रौढ़ता परिलक्षित होती है। अनेक स्थल काव्य-माधुर्य के छलकते रस-स्त्रोत है। काव्य की अनुप्रासात्मिकता ध्वनियों की अनुकरणात्मक, अलंकारों की प्राकृतिक छटा, काव्य की नादात्मकता, माधुर्य और प्रसाद का स्वाभाविक निर्वाह भाषा में असाधारण प्रवाह शब्द की कोमलकान्त पदावली, रसात्मकता प्रभृति मधुर-चित्रणों का अनूठा समावेश है।

कृति की एक विशेषता यह भी है कि यह फागु बसन्त वर्णन से प्रारम्भ नहीं होकर वर्षा वर्णन से प्रारम्भ हुआ है अतः इससे यह भी स्पष्ट होता है कि ऐसी कृतियां बसन्त वर्णन के अतिरिक्त भी लिखी अथवा प्रारम्भ की जा सकती थी और काम प्रवर्तक बसन्त की अनुपस्थिति में भी काम में पर्याप्त रागात्मकता तथा सरसता का समावेश किया जा सकता था। दूसरे चित्र में कवि ने कोशा का रूप चित्रण किया है। यह चित्र की चित्रात्मकता, अपूर्व काव्य-सौष्टव एवं रसात्मकता की परिचायिका है। आगे के छन्दों में नायिका के हाव-भावों, कटाक्षों का तथा नायक की दृढ़ता और शील सौन्दर्य का चित्रण है, और अन्त में नायक की काम

१- वही पृ० ४ २- वही पृ० ७

विजय। इन दृश्यों की काव्यात्मकता तथा कला सम्बन्धी प्रवृत्तियों का अध्ययन यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

जिनपद्म सूरि ने फागु के वर्णनों में परंपरा के निर्वाह का ध्यान रखते हुए भी पर्याप्त स्वतन्त्रता का उपयोग किया है। भाव और कलापक्ष दोनों ही बड़े सबल बन पड़े हैं।

कवि ने स्थूलिभद्र का रूप वर्णन भी किया है।नारियों के रूप-चित्रण में बहुधा कवि सफल होते ही हैं पर पुरुष का रूप तथा चारित्रियक चित्रण में कवि ने अभूतपूर्व चमत्कारिकता की सृष्टि की है। एक उदाहरण देखिए:-

अह सोहग सुन्दर रूववन्तु गुणमणि मन्डारो

कंचण जिम झलकन्त कन्ति संजय-सिरि हारो [१]

"कंचण जिम झलकन्त कन्ति और संजम सिरि हारो" दो उक्तियों में ही कितनी तीव्र अभिव्यक्ति है, जिसमें यौवन और संयम दोनों का एक ही साथ परिचय दिया गया है। सर्व प्रथम प्रकृति-वर्णन को ही लीजिए। कवि ने वर्षा का अपूर्व वर्णन किया है। वर्षा-वर्णन पूरे तीन छन्दों में हुआ है। शब्दों की अनुप्रासात्मकता, काव्य की ध्वन्यात्मकता, पावस की प्रचन्डता, बिजलियों का गर्जन, धाराधरों का दुरद्धर्ष प्रकोप, अजस्रवृष्टि तथा विरहिणी कोशा का प्रकंपित हृदय-कितनी मधुरता से चित्रित किया गया है। रसात्मकता और शब्दों की अनुरणात्मकता देखिए:-

झिरमिर झिरमिरि झिरमिरि ए मेहा वरिसंति

खलहल खलहल खलहल ए वाहला वहंति

झबझब झबझब झबझब ए बीजुलिय झबकइ

थरहर थरहर थरहर ए विरहिणि मणु कंपइ [२]

विरहिणी कोशा का मन काँप गया। मेघ का मधुर गर्जन ज्यों-ज्यों होता था, मन को काम के तीक्ष्ण शर बेधते जाते थे। कामियों का आनन्द और केतकी का सौरभित पवमान रह रह कर कोशा को सालते।

१- प्राचीन फागु संग्रह- श्री डा० सांडेसरा पृ०-३ २- वही पृ० ४

महुर गम्भीर सरेण मेघ जिम जिम गाजंते
पंचबाण नियकुसुमबाण तिम तिम साजंते
जिम जिम केतकि महमन्त परिमल विहसावइ
तिम तिम कामिय चरण लग्गि नियरमणि मनावइ [१]

परिमल का विकीर्ण होकर विहँसना और कामी पुरुषों का अपनी मानिनी पत्नियों के पैरों पड़ पड़ कर उनका मान मनावन कितनी तीव्र कल्पना है। भाव का संवहन करने में भाषा कितनी सक्षम है।

प्रकृति का काव्यात्मक चित्रण उसका प्रस्तुत, अप्रस्तुत दोनों रूपों का मोहक एवं चित्रात्मक वर्णन उल्लेखनीय है:-

सीयल कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायन्ते
माण मडफ्फर माणणिय तिम तिम नाचन्ते
जिम जिम जलभर भरिय मेह गयणंगणि मिलिया
तिम तिम कामीतणा नयण नीरिहि झलहलिया [२]

विदग्धा मानिनियों का आवेश मान में आकर नृत्य करना और विरहिणियों के अश्रुपूरित नयन सभी कितने उल्लेखनीय चित्र हैं। वियोग-पक्ष में वर्षा ऋतु की समस्त सुखद वस्तु भी संवेदना देने वाली हो जाती है। बूंदों के अनुरणनकारी नाद मे जैसे पावस साकार हो उठी है और वही नायिकाओं की विरह-पीड़ा का साधारणीकरण अनुभव कर आंसू बहा रही है। "माण मडफ्फर माणणि य तिम तिम नाचन्ते" में कितनी उत्कट अनुभूति है।

पावस में इन्हीं मेघों की मधुर गर्जना और बिजलियों के प्रकाश में कोशा के लिए आशा-किरण बन कर स्थूलिभद्र आते है। द्वारतोरण पर ही स्थूलिभद्र चकित चित्त परिचारिकाओं से सम्मान पाते है। कोशा की प्रसन्नता का भी क्या ठिकाना। लहराते हार पहन कर अत्यन्त उत्सुकता में वह मुनि के पास दौड़ी आती है

१- वही पृ० ४।
२- वही पृ० ३।

मुनि का तेज देखकर अपने से ही उसके हाथ ऊपर उठ जाते हैं। करबद्ध कोशा की विचित्र स्थिति हो जाती है। बद्धांजलि देखकर मुनि उसे कहते हैं-"धर्मलाभ"।

मंदिर तोरणि आवियउ मुणिवरु पिक्खेवी
चमकिय चित्तिहि दासडिय वेगि जाइ बधावी
वेसा अतिहि ऊतावलि य हारिहि लहकंती
आवीय मुणिवर रायपासि करयल जोडंती [1]

"धर्म लाभ" कह कर मुनि उससे विहार के लिए चित्रशाला मांगते हैं। कोशा पर उल्लास में इन शब्दों का कुछ भी असर नहीं होता। उसने सोचा अभीष्ट मिल गया पर उसे क्या पता कि विलास में डूबे रहने वाले स्थूलिभद्र अब जितेन्द्रिय स्थूलिभद्र मुनि हो गए हैं।

मयूरों की मधुर ध्वनि में और मेह की झड़ी में कोशा अपनी रूप-सुधा के गर्व में डूब जाती है। सत पर पर्दा पड़ जाता है और उस वीतरागी को अपने अलौकिक शृंगार और नख-शिख की सजावट से स्खलित करना चाहती है- कवि ने उसके यौवन-उन्माद तथा सौन्दर्य सुषमा के अनेक सुन्दर चित्र खींचे हैं। नख शिख वर्णन में कवि श्री जिनपद्मसूरि ने अपभ्रंश की समस्त काव्यात्मकता एवं रसात्मकता ही उड़ेल दी है। कोशा का बाहक सज्जा बनना अनेक शृंगारिक उपादानों और अलंकरणों से अपने शरीर को सजाना उल्लेखनीय है। कवि का नख शिख अत्यन्त असाधारण बन पड़ा है। नायिका की अंगद्युति, उसका अंगराग नूपुरों की मधुर ध्वनि, वेणी, रोमावली, वक्षस्थल आदि सबको कवि ने अनूठे उपमानों और सुन्दर उत्प्रेक्षाओं से संजोया है। यद्यपि ये संस्कृत काव्य में मिलते हैं, पर इस संक्रांतिकाल में इनका प्रयोग होना निस्संदेह महत्वपूर्ण है।

अह सिंगारु करेइ वेस मोटइ मन ऊमटि
रहस रंगि बहुरंगि चंगि कंचणरव ऊमटि [2]

१- प्राचीन फागु संग्रह- डा० सांडेसरा पृ० ३।
२-प्राचीन फागु संग्रह: डा०-सांडेसरा पृ० ४।

सौरभित चम्पा और केतकी के कुसुमित पुष्पों से भरी हुई कबरी और सुन्दर परिधान सभी सौन्दर्य सुषमा में योग दे रहे हैं:-

चंपय केतकि जाइ कुसुम सिरि खुंप भरेइ
अति आछ्छ सुकमाल चीरु पहिरणि पहिरेइ
लहलह लहलह ए उरि मोतिय हारो
रणरण रणरण रणरण ए पगि नेउर सारो
झगमग झगमग झगमग ए कानिहिं वर कुंडल
झलहल झलहल झलहल ए आभरणह मंडल [1]

उसका कामदेव के खड्ग की भाँति वेणीदण्ड सरल तरल और श्यामल रोमावली दण्ड उल्लेखनीय है। वक्षस्थल की उपमा भी उस समय की कृतियों में अति नूतन है। कल्पना और उपमानों में अतिरंजना नहीं होकर सरसता एवं स्वाभाविकता है।

तुंग पयोहर उल्लसइ सिंगार थवक्का
कुसुमबाणि निय अमिय कुंभ किर थापणि मुक्का [2]

तुंग पयोधरों की उपमा श्रृंगार के पुष्प स्तवकों अथवा कामदेव के अमृत कलशों से देकर कवि ने उक्ति वैदग्ध्य एवं सुन्दर उत्प्रेक्षाओं का परिचय दिया है।

कोशा ने श्रृंगार और सज्जा के बल पर ही उसे अब झुका लेना चाहा। आँखों में काजल, वक्षःस्थल पर सुन्दर कंचुकी, कानों में कामदेव के दोला की भाँति आभूषणों की चमक, कामदेव के विजय-स्तम्भों की भाँति उसकी जाँघें, लावण्यरसपूरित लघु कूप की भाँति नाभि, ऊर्मि-चांचल्य लिए नयन, मदन अंकुश की भाँति सुन्दर उसके नखपल्लव चाव कमलों में बजते नूपुर की घुंघरियों की मधुर ध्वनि, प्रवाल की भाँति उसके अधर बिंब, चम्पा की भाँति वर्णावली, मद में डूबी हुई रतिक्रीड़ा का साकार रूप, सलोने नयन तथा अनेक हावभावों से युक्त बहु गुणसम्पन्ना कोशा के नखशिख सुन्दर श्रृंगार की सृष्टि करते हैं:-

काजलि अंजिवि नयण जुय सिरि सेथउ फारेई
बोरीया वडि कांचुलिय पुण उर मंडल ताडेइ

१- वही पृ० ४ २- वही पृ० ३।

कन्नजुयल जसु लहलहत किर मयणहिंडोला
चंचल चपल तरंगचंग जसु नयण कचोला
सोहइ जांसु कपोलपालि जणु गालिम सूरा
कोमल विमलु सुकंठ जासु वाजई संखसूरा
लवणिम रस भर कूवडिय जसु नाहिय रेहइ
मयण रायकिर विजयखंभ जसु ऊरु सोहइ
जसु नह पल्लव कामदेव अंकुस जिम राजइ
रिमझिमि रिमझिमि ए पायकमलि पायरिय सुवाजइ
नवजोवन विलसंत देह नवनेह गहिल्ली
परिमल लहरिहि मयमयंत रइकेलि पहिल्ली
अहरबिंब परवाल खंड वरचंपावन्नी
नयण सलूणीय हाव भाव बहुगुण संपुन्नी [1]

रचना में अभिनयात्मक प्रवाह है और उत्तर प्रत्युत्तर शैली भी परिलक्षित होती है। स्थूलिभद्र के पास कोशा अनेक श्रृंगारिक चेष्टाओं एवं हाव भाव दिखाती है। लेकिन मुनि का पसीजना तो दूर रहा, कोई प्रभाव ही उन पर परिलक्षित नहीं होता। काम उनके शरीर का स्पर्श ही नहीं कर पाया। कोशा का श्रृंगार मलिन हो जाता है, हाव भाव मूर्छित हो जाते हैं। रहे सहे साहस को एकत्रित कर अपनी हार को छिपाती हुई प्रेम से मुनि को कहने लगी: हे प्रियतम, तुम कितने निष्ठुर हो। १२ वर्ष साथ रहकर इस तरह बेदर्द बन कर मुझे छोड़ जाना क्या उपयुक्त है ? एक क्षण के नेह को तोड़ने का क्या कारण है:-

बारह वरिसहं तणउ नेह किणि कारण छंडिउ
एवडु निठुरपणउ कई मूंसिक तुम्हि मंडिउ [2]

स्थूलिभद्र बोले: कोशा, खेद न करो। मेरा हृदय तो अब लौह घट हो गया। अब इसमें तुम्हारी वाणी की आर्द्रता नहीं आ सकती। जितेन्द्रिय में दुर्बलता कैसी?

१: वही पृ० ३

२- वही पृ० ५

थूलिभद्द पभणेइ वेस अहदेखु न कीजइ

लोहिहि घडियउ हियउ मज्झ तुह वयणि न भींजइ [1]

लौहघट हृदय की कठोरता सिद्ध करने में कितना सार्थक शब्द है। परी कोशा के हृदय पर लौहिघडियउ हियउ का प्रभाव उसी प्रकार नहीं पड़ा जैसे उस पर मुनि के धर्म, शब्द का नहीं पड़ा। उसने फिर अपनी काम भावना को मुनि के सम्मुख रखा, अपनी विच्छित्ति और वाक्चातुर्य से उसने उन्हें झुकाना चाहा, भोग का लालच दिया पर मुनि तो संयमश्री को अपना चुके थे, उसी के साथ वे रमण करते थे। अतः कोशा को उन्होंने कहा: हे कोशा, मैंने संयमश्री से वरण कर लिया, संयमश्री के मोहक हाथों मेरा मन बिक गया। अब मैं भोग भी उसके ही साथ करता हूं। नारी को अविश्वास हो गया। जैसे उसको संयमश्री लौकिक स्त्री मात्र जान पड़ी। नारियों के मनोविज्ञान को सार्थक करती हुई वह बोली:- पुरुषों का नवीन स्त्रियों के प्रेम में फंस जाना स्वाभाविक है। तभी तो आपने मुझे त्याग कर संयमश्री को अपना लिया। भाव यह है कि इसमें आपकी क्या विशेषता है- सिद्धि और मुक्ति भी तो स्त्रियां ही है वर्णन कितना अनूठा है। काव्य में अभिनय का क्रम और तीव्रतर होता जाता है:-

यह विलसिय उवरिखइ अणुराग धरीजइ

एरीसु पावस कालु सखइ मुक्ति माणीजइ

हे नाथ, सुहावना वर्षाकाल है। सब को छोड़ मेरे साथ आनन्द भोगो पर स्थूलिभद्र का तत्काल प्रत्युत्तर उसे शिथिल बनादेता है, क्योंकि उनके हाथ तो चिन्तामणि आ गई थी, अब उसे छोड़ कर पत्थर कौन ग्रहण करेगा। संयमश्री की हीन हाड़ की शरीर यष्टिवाली लौकिक स्त्री से तुलना क्या।

मुणिवइ जंपइ वेस सिद्धि रमणी परिणेवा

मनु लीणउ संजम सिरीहि सुं भोग रमेवा

--- --- ---

1- वही ग्रन्थ वही पृष्ठ।

चिंतामणि परिहरवि अवणु पत्थरु गिहणेइ
तिम संजमसिरि परिणएवि बहुधम्म समुज्जल
आलिंगइ तुह कोस कवणु पसरंत महाबल

पर जीवन की समस्त साधना से अपने सम्पूर्ण यौवन का अर्घ्य चढ़ाने वाली कोशा का काम तब मूर्च्छित हो गया, जब मुनि का घोर शीलव्रत एवं चारित्रियक संयम स्पष्ट हुआ। वीतरागी को मुग्ध करने वाला और अपने दृढ़ निश्चय से हटा कर विमोहित करने वाला अब तीनों लोकों में कोई नहीं था। मार के सब मोहन, मादन और वशीकरण सब मंत्र तंत्र व्यर्थ सिद्ध हो गए। काम का पराभव और मुनि की विजय निस्संदेह शम की शृंगार पर विजय थी। कोशा ने यौवन का लोभ दिखाया, नारी हृदय की दुर्बलता को बार बार सामने रक्खा, पर संयम की आग में विलास झुलस गया। ज्ञान के स्फुलिंग उड़ने लगे और कोशा और काम दोनों हतप्रभ एवं हतदर्प हो गए। कोशा की स्थिति ठीक ऐसी ही हुई जैसी महात्मा बुद्ध को शृंगार एवं सज्जा से रिझा लेने का अभिमान करके आई हुई वैशाली की प्रसिद्ध वारांगना आम्रपाली की हुई थी। स्थूलिभद्र अटल रहे और अन्त में वह उनके चरणों पर गिर पड़ी। मुनि ने उसे प्रबोध दिया:

पहिलउ हिवंडा कोस कहइ गुव्वाण कहु लीजइ
सयणंवरि संजमसिरि हि मुह मुहिण रमीजइ
मुणि बोलइ जि मइ लियउ सु लियउ न होइ
कवणु सु अच्छइ भुवणतले जो मह मणु मोहइ

नारी हार गई। काम झुक गया। कोशा के हाव-भावों और आक्रमणात्मक उक्तियों का अभिनय समाप्त हो गया। उक्त पदों से फागु का गेय रूपक कहलाना जाना सिद्ध होता है। गीति रूपक में रंगमंचीय सफलता है और उत्कृष्ट अभिनय के सभी गुण विद्यमान हैं। गेयरूपक का शिल्प उक्त विभिन्न चित्रों द्वारा स्पष्ट होता है।

अलंकारों का स्वाभाविक निर्वाह काव्य के कलात्मक-पक्ष को अपूर्व निखार देता है। गीत गोविन्द की ही भांति इस कृति में सरसता, मधुरता और कोमलकांत पदावली है तथा अलंकारों का नैसर्गिक वर्णन है। अनुप्रास और उत्प्रेक्षाओं की तो

घटा ही उमड़ी आती है।रूपक भी बड़े मार्मिक है। इसके अतिरिक्त सुन्दर उपमाएँ दृष्टान्त, उदाहरण, वीप्सा,अर्थान्तरन्यास, वर्णनक्रम, उल्लेख आदि अनेक अलंकार है। कुछ उदाहरण देखिए:-

(क) झिरझिरि झिरि झिरि झिरमिरि ए मेहा वरिसंति

खलहल खलहल खलहल ए वाहला वहंति

::: ::: :::

रिमझिमि रिमझिमि ए पायकम्मलि धाघरि १

अनुप्रासों के अतिरिक्त उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षाओं की मधुरता भी उल्लेखनीय है।

(ख) जसु वह पल्लव कामदेव अंकुस जिम राजइ

(ग) मयण खगुग जिम, लहलहंत जसु वेणी दंडो

सरलउ तरलउ सामलउ रोमावलि दंडो

(घ)तुंग पयोहर उल्लसइ सिंगार थवक्का

कुसुमबाणि निय अमिय कुंभ किर थापणि मुक्का

(ङ०) कन्न जुयल जसु लहलहंत किर मयण हिंडोला

(च) सोहइ जासु कपोल पालि जणु गालिमसूरा

(छ) अहर बिंब परवाल खंड वर चंपावन्नी

सीयल कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायंति

माण मडप्फर माणणि य तिम तिम नाचंति

और भी अन्य उदाहरण उल्लेखनीय है, जिनमें स्वाभावोक्ति और अर्थान्तरन्यास विशेष महत्वपूर्ण है:-

(ज) उमसमरसभर सुरिवर रिषिराउ भणेइ

चिंतामणि परिहरवि कवणु पत्थर गिहणेइ

तिम संजमसिरि परिणएवि बहुधम्म समुज्जल

आलिंगइ तुह कोस कवणु पसरंत महाबल २

१- वही पृ० ४ पद ९।

२- आपणा कवियो: श्री के०का०शास्त्री का स्थूलीभद्र पर विश्लेषण।

(भ) लोडिहि घडियउ हियउ मज्झ तुह नयणि न भीजइ

( ) कन्न जुयल जसु लहलहंत किर मयण हिंडोला

चंचल चपल तरंग चंगु जसु नयण कचोला

(ट) सोहइ जासु कपोल पालि जसु गालिम-सूरा

(ठ) मेहारव भर उलटिय जिम जिम नाचइ मोर

तिम तिम माणिणि खलभलइ साहीता जिम चोर [१]

इस प्रकार ये अलंकार, काव्य में एक अपूर्व नाद की सृष्टि करने में योग देते हैं। इसके अतिरिक्त यह कृति तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक स्थितियों पर भी प्रकाश डालती है।राजनैतिक पृष्टभूमि में चरित नायक के पिता शकटार का वध, राजकीय अप्रसन्नता, विद्रोह आदि आ जाते हैं और तद्गत संक्रांतिकालीन स्थिति का एक चित्र स्पष्ट होता है। धार्मिक अवस्था भी स्पष्ट होती है कि उस समय भी मुनियों का संयमश्री से विवाह होता था। ऋषियों की मार पर विजय, श्रद्धालु भक्तों की धर्म-प्रवणता तथा मुनियों द्वारा जन-साधारण को शान्ति तथा आध्यात्मिक संदेश और राजकीय खटपटों में भी धर्म प्राणधारा के रूप में अजस्त्र प्रवहमान था। जहाँ तक सामाजिक रीति रिवाजों तथा स्थितियों का प्रश्न है, वह भी इससे स्पष्ट होते हैं कि राजघराने के नवयुवकों में किस तरह विलास घर कर गया था।पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और राज्य लिप्सा का बहुत महत्व था। वैश्या प्रथा भारत में तब भी प्रचलित थी।श्री केशवराम शास्त्री ने भी इसके विषय में संकेत किया है।[२] फागु और रास खेलने की प्रथा भी विद्यमान थी, और लोग किस प्रकार फाल्गुन में लोकनृत्य और रास, गरबा, झुम्मर आदि करते थे, जैन मुनियों के धर्माचरण और चतुर्मास की विधि भी स्पष्ट होती है जिसमें जाति पाँति का भेदभाव तथा अन्य किसी प्रकार का जातीय प्रतिबन्ध नहीं था। वे किसी भी स्थान पर अपना चतुर्मास कर सकते थे। दासी और वैश्या दोनों प्रथाओं की सम्यक् व्यवस्था का भी वर्णन मिलता

१- वही पृ० ४ पद ९।
२- आपणा कवियोः श्री के का० शास्त्री का स्थूलीभद्र पर विवेचन।

है। इन्हीं सब मूल प्रवृत्तियों के आधार पर प्रस्तुत रचना का मूल्यांकन किया जा सकता है।

जहाँ तक स्थूलिभद्र फागु के रस का प्रश्न है, यह बहुत ही स्पष्ट हो जाता है कि कृति में कवि ने प्रमुख रूप से श्रृंगार का वर्णन किया है और यह सच भी है कि श्रृंगार अपनी सम्पूर्ण सजधज के साथ अपने स्थायीभाव सहित निष्पन्न होता है। परन्तु श्रृंगार के इस क्रोड़ में वीर और निर्वेद भी पलते हुए परिलक्षित होते हैं। मार और स्थूलिभद्र का संयमयुद्ध अवश्य ही वीर रस का वातावरण प्रस्तुत करता है। लौहपाट का सा हृदय रखने वाले उस वीर ने कामदेव या रतिवल्लभ के, जो संसार के बड़े बड़े वीरों के हृदय में तीक्ष्ण शर की भाँति चुभने वाला था, मद को बुरी तरह विदीर्ण कर डाला। उसका कामरथ खतखत खन्डों में चूर होकर धराशायी हो गया। संयमश्री-हार स्थूलिभद्र की इसी संयम पूर्ण वीरता में वीर रस निष्पन्न होता हैऔर अन्त में स्थूलिभद्र इस समरांगण में किस प्रकार अपनी ध्यान या संयमरूपी तेज तीक्ष्ण तलवार से अपने प्रतिद्वन्दी को विनष्ट कर देता है- उत्साह की व्यंजना देखिए:

अइ बलवन्तु सु मोहराउ जिणि नाणि निधाडिउ
झाण खडगिण मयणसुभड समरंगणि पाडिउ
कुसुम वुट्ठि सुर करइ तुट्ठि हुउ जयजयकारो
धनुधनु एहु सु धूलिभद्द जिणि जीतउ मारो

::: ::: :::

नन्दउ सोविरि थूलि भद्द जो गुणह भण्डारो
मल्लिवर जिणि जगि मल्ल सल्लरइवल्लहमारो १

परन्तु श्रृंगार और वीर दोनों रसों का शमन अन्त में कवि ने निर्वेद में कर दिया है। कोशा को प्रबोध कर, कामविजय कर, मुनि पुनः वैराग्य के उसी पथ पर चल पड़ते हैं और अपने गुरु के पास विजयीवीर की भाँति प्रस्तुत होते हैं।

१- प्राचीन फागुःसंग्रहः डा० साडेसरा पृ० ७।

अतः समस्त श्रृंगार एवं वीर शान्त रस के गाम्भीर्य में समा जाता है। यौवन के उच्छृंखलित खलबल खलबल बहने वाले "वाहले" (बरसाती नाले) शम के कठिन कगारों में बांध दिए जाते हैं, जिसमें यौवन के मधुर रस का स्थान संयम की अग्नि ले लेती है। अतः कृति की अन्तिम परिणति निर्वेदयाश्रम में ही होती है। श्री अगरचन्द शर्मा लिखते है कि -फागु के प्रारंभ में कवि ने श्रृंगार रस का उत्कर्ष दिखाया है। कोशा की विलास चेष्टाओं के वर्णन में कवि कहीं भी कुण्ठित नहीं होता। वहां यह मालूम नहीं होता कि रचना किसी जैनाचार्य की है। यदि कवि इस वर्णन को इतनी सम्पन्नता के साथ उपस्थित नहीं करता तो स्थूलिभद्र की मार-विजय प्रभावहीन हो जाती। स्थूलिभद्र ने एक सच्चे योधा की तरह कामदेव को ध्यान की तलवार से पछाड़ दिया।--- यहां वीर रस भी झलक उठा है। कवि श्रृंगार का सम्यक रूप से उद्रेक करने में कृतकार्य हुआ है। पर स्थूलिभद्र की शान्त गम्भीर मुद्रा के द्वारा इस काव्य की चरम परिणति शान्त रस में हुई है। वीर रस और शान्त रस का यह मिलन, जिसकी तह में श्रृंगार रस मूर्छित पड़ा है, इस काव्य में अनूठेपन के साथ संपन्न हुआ है।"[1]

छंदों के क्षेत्र में इस कृति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान नहीं है, क्योंकि जो भी छन्द कवि ने प्रयुक्त किए है, वे सब पूर्व वर्णित हैं। कवि ने सातों भासों में दोहा और रोला का ही प्रयोग किया है। प्रत्येक भास के पूर्व दोहा छन्द मिलता है और फिर क्रमशः तीन रोला। केवल छठे भास में ऐसा नहीं है।उसमें तीन रोला नहीं होकर दोहे के पश्चात् केवल दो ही रोला है। भासों की समाप्ति पर दोहा इसे विभाजन या कथा-समाप्ति का परिचायक समझा जा सकता है।यथा रोला के लिए फागु के छठवें, सातवें और आठवें तथा दोहा के लिए ९, १३, १७ आदि छन्द देखे जा सकते है।

भाषा के क्षेत्र में इस कृति में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे जा सकते है। अपभ्रंश के परवर्ती रूपों के साथ नए नए तत्सम शब्दों का प्रयोग स्पष्ट परिलक्षित होता

१- नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५९, अंक सं० २०११ पृ० ३३ अगरचन्द्र शर्मा द्वारा लिखित सिरिथूलिभद्द फागु: एक पर्यालोचन-लेख।

है।स्थान स्थान पर प्राचीन राजस्थानी या गुजराती का प्रभाव सर्वत्र दिखाई पड़ता है। इस शताब्दी की भाषा को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि लोकभाषा से मिली जुली, प्राचीन राजस्थानी, परवर्ती अपभ्रंश तथा जूनी गुजराती के शब्दों आदि से प्रभावित एक ऐसी भाषा का निर्माण होता जा रहा था, जिसे हम विशुद्ध रूप में न राजस्थानी ही कह सकते हैं, और न जूनी गुजराती या उत्तर अपभ्रंश। उसका स्वरूप हिन्दी की ओर बढ़ता चला जा रहा था। शब्दों की बदलती स्थिति और उनकी तत्सम रूप ग्रहण करने की प्रवृत्ति अत्यन्त अधिक प्रबल होती जा रही थी, साथ ही नए प्रयोगों की भी कमी नहीं थी। विदेशी शब्दों का प्रयोग भी, भाषा को लोकप्रिय एवं जन साधारण के लिए अत्यन्त बोधगम्य बनाने के लिए ही तत्कालीन जैन कवि रचनाएं निर्मित करते जा रहे थे, क्योंकि उन्हें मानवता और धर्म प्रचार का उपदेश एवं जीवन्त सन्देश सब को देना था। अतः फागु की भाषा में अत्यन्त अधिक सरलता है। शब्दों में क्लिष्टता कहीं नहीं मिलेगी। पुरानी हिन्दी या सरल हिन्दी का स्वरूप निर्मित करने के अतिरिक्त कवि ने उत्तर-अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी या पुरानी गुजराती का भी प्रयोग किया है।

प्रयोग में नवीनता, उसकी बदलती स्थिति की सूचक है। इस प्रकार इस कृति में हमें कला और भाव दोनों पक्षों में मौलिकता के दर्शन होते हैं। शृंगारिक काव्यों की परम्परा में इस काव्य का विशिष्ट स्थान है। यह आख्यान प्रेमाख्यान है। जैन साहित्य में शृंगार और विरह तथा नायक के प्रति नायिका का प्रेम चित्रित करने वाला यह प्रथम आदिकालीन हिन्दी जैन फागु है।

इस कृति में कवि ने काव्य-चमत्कार के अतिरिक्त जीवन को एक महान संदेश दिया है। संसार नश्वर है, विलास मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति में बाधक है। जीवन में संयम की निष्ठा तथा नियमित जीवन ही असाधारण महत्व के होते हैं, काम मैं रत रहने वाला व्यक्ति भी निर्मल हृदय तथा वैराग्य का प्रतीक हो सकता है। जीवन की सर्वांगीण प्रगति के लिए शारीरिक, मानसिक

और भौतिक प्रगति के साथ साथशान्ति प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक प्रगति का भी मानव-जीवन में अपूर्व महत्व है, आदि अनेक संदेश इस छोटे से प्रमाख्यानक या श्रृंगार प्रधान काव्य से मिलते हैं। जिनपद्मसूरि का यह काव्य निस्संदेह आदिकालीन हिन्दी जैन कृतियों का उत्कृष्ट श्रृंगार है। कवि ने सर्वत्र जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण रखा है और श्रृंगार-वर्णन में कहीं भी शिथिलता नहीं आने दी है। कृति का हरेक पहलू सबल एवं सूक्ष्म है। अन्त तक इस कृति की उपदेशात्मकता व्यक्त होती है। चरित नायक कोशा को सतर्क हो जाने के लिए प्रबोध करता रहा।

निष्कर्षतः फागु रचनाएं हमारी प्राचीन सांस्कृतिक धारा को भी प्रवाहमान बनाने में महत्वपूर्ण योग देती है तथा समाज के हर्षोल्लास को अभिव्यक्ति देने का माध्यम है।

नेमिनाथ फागु[1] (समुधर)

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कवि समुधर कृत नेमिनाथ फागु काव्य और मिलता है। काव्य यद्यपि अप्रसिद्ध है। इस काव्य की एक प्रति पाटण में मुनिजिनविजय जी को मिली है। इस कृति का श्री पं० रमणीक विजय की एक संग्रह पोथी के अन्त में सं० १३३७ से नकल होने का उल्लेख मिलता है।[2] कृति की एक प्रति श्री अगरचन्द नाहटा की संग्रह पोथी में भी सुरक्षित है।[3] श्री देसाई ने भी इसका संकेत किया है।[4] नेमिनाथ के इसी वृत्त ने अनेक कवियों का मन आकर्षित किया है विविध रूपों में अनेक काव्य यथा पाल्हण का सं० १२८९ का आबूरास, विनयचंद्र (सं० १३२५ में विरचित नेमिनाथ चतुष्पदिका तथा १५वीं शताब्दी के राजशेखरसूरि तथा जयशेखरसूरि नामक प्रसिद्ध जैन कवियों ने नेमिनाथ पर फागु लिखे हैं जिन पर आगे विचार किया जायगा। इसी तरह माणिक्य सुन्दर सूरि का नेमिश्वर चरित फाग बंध (सं० १४७८) तथा रत्न मन्डल गणि विरचित(सं०१५००) नेमिनाथ नवरस फागु और नारी निरास फागु महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

प्रस्तुत नेमिनाथ फागु काव्य में कवि प्रारम्भ में वंसतमास का उल्लेख करता है। द्वारका के यादवों का रैवतक पर्वत के सहस्त्र-आम्रवन में बसन्त विहार के लिए जाना, वन में वनराजि की सुषमा, यादव स्त्रियों की उल्लासियी क्रीड़ा मयूर कोयल का मधुर रव और उस पर भ्रमरों का गुंजार, और ऐसी स्थिति में कृष्ण का बासुरी वादन और १६ हजार गोपियों के साथ नृत्य, इसके पश्चात् नेमि व कृष्ण का जलक्रीड़ा को जाना और वहाँ कृष्ण की रानियों का नेमि को विवाह के लिए मनावन, मैं शिवादेवी, रुक्मणी और सत्यभामा आदि सब ने

१- प्राचीन फागु संग्रह- डा० सांडेसरा, पृ० ३८-४२

२- वही ग्रन्थ- प्रस्तावना पृ० १०-११।

३- अभय जैन ग्रन्थालय-पोथी सं० १४९३ पत्र २९५-९७।

४- जैन गुर्जर कविओ: मोहनलाल देसाई भाग १, पृ० ४४।

मिलकर उन्हें दूल्हा बनने को बाध्य कर दिया। बरात धूम धाम से चढ़ी पर पशुओं के करुण क्रन्दन ने नेमिनाथ को विवाह से परांगमुख कर दिया, वे गिरनार पर जाकर दीक्षित हो गए।

काव्य का कथासार यहीं समाप्त हो जाता है। काव्य की भाषा अत्यन्त सरल है। २८ कड़ी का यह पूरा काव्य दोहा छंद में लिखा गया है। काव्य का बंध पुराने आरम्भ कालीन काव्यों की भांति सरल है।दूहे मेंसामान्यतः आंतरप्रास या आंतर यमक सामन्यतः नहीं है परन्तु हरएक पंक्ति के प्रारम्भ में छंद परिमाण से विशेष अरे शब्द आता है दूसरी पक्ति में अहे शब्द भी मिलता है।[1] जो स्पष्ट है कि इसकी गेयता का सूचक है [2]। कई फागों में वर्णित फागु नामक दूहा विशेष के चरणार्द्धध के अन्त में आने वाली यमक योजना इसमें नहीं मिलती। वस्तुतः छंद सादा होने सेकाव्य में प्रवाह और वेग का उन्मेष करता है जो वसन्त में विहार करने वाले नर नारियों का उत्साह व रास का उद्देश्यसूचित करते है। कृति के कुछ काव्यात्मक स्थल उल्लेखनीय हैः- कवि का सहस्त्राम्रवन का प्राकृतिक वर्णन देखिएः

अहे वनु रुयडउं रलियावणउ अनु विहसिय वणराय
अहे वालउ वेउहुं विउकुचिरी केतकी तहि जाय
अहे पाडल चंपउ पारखी कंदु अनु मचकुंदु
अहे सेवत्री करणिय कुंयमरि रमइ ते भमला वृंदु
अहे कोइलि वाडु सोहावणउ, मोरि मधुर नाचंति
अहे भमरा रुण रुणझुण करइ किंरि किन्नरि गायंति
अहे हरि हरिखिउ मनि आपणइ वाखुलडी वाजंति [3]
अहे ठिंमा सववड़ि गोपिय सोल सहस नाचंति

१- प्राचीन फागु संग्रहः डा० सांडेसरा, प्रस्तावना -भाग पृ० १०-११।

२- देखिए पंदरमा शतक मां चार फागु काव्यो: श्री के०बी० व्यास पृ० १४-१५ फार्बस गुजराती ग्रन्थ माला ५८।

३- देखिए- वही पृ० १६-१७।

कृष्ण की स्त्रियों द्वारा जल क्रीड़ा में नेमिनाथ को विवाह के लिए उपालंभ व कटु शब्दों का वर्णन कटाक्ष व राजुल का रूप वर्णन आदि स्थलों का वर्णन भी पर्याप्त सरल व सरस भाषा में है:-

अहे भाणुमती अनुरूपिणि सत्यभामा पभणेइ
अहे नीरसो नीठरो नेमि जिणु पाणिग्गहणु न कोइ
अहे कुन्तल केश मृगनयणि रा मांगु भरवि सिंदूर
अहे नयण कडक्खे आहणइ मिलि सवि सामल वीर
अहे ऊरहि ऊरहि आहणइ के कैसे तार्णंति
अहे काहउं नेमि नपुंसको एक रमणी न करंती
अहे सतभामा इम बोलए मोरिम बहिनु काह
अहे रूपि रंभा सामी तोलियइ अवर महीअल नाहि
अहे हंस गमण मृग लोयणी चंद वयण सजवाल
अहे पूनह विणु नहु पामियह उग्रसेनि सुकमाल
अहे सावसलवण राजल रूपि नहीं अनुनारि
अहे के सावत्तीय ब्रह्मा के गबरी त्रिबरारि

--- --- ---

पाणिग्रहण के समय नेमि का रूप और पशुओं के करुण क्रंदन के समय उसकीकारुणिक स्थिति के स्थल भी उल्लेखनीय है। वर्णनों की अनुप्रासात्मकता और प्रवाह विशेष द्रष्टव्य है:-

अहे के इडु इंदु के चंदु के हरिकउ अउ भेमाण
अहे सघिहि रूप विसेकउ सवि दिवि सम नैदाण
अहे जाल गवक्खे राइमइ जोयए प्रिय आवंतु
अहे रहवरि चडियउ नेमिजिणु तोरणि वेगि पहुंत

--- --- ---

अहे वाजिय शंखक ढाक बुक मलियउ नीसाणे घाउ
अहे हयगय रहवर भेलिय चालिउ जादव राउ

अहे धवल मंगल दियई गोपिय वंदिय जयजयकार

अहे विप्र वेदधुणि (सुणिय) तहि, परिलउ नेमिकुमार

--- --- ---

अहे कुरंगीए दीठउ नयणुले करुण पलाव करेइ

अहे पाणिग्रहणु तुह सामिय पता जीव वधु होय

अहे धिगु धिगु इसउं परिणवउं जइ जीव ह संहारु

अहे पसुय मेल्हि रहु वालियउ चलियउ नेमिकुमार

इस प्रकार समुधर की इस कृति में विषय वस्तु की दृष्टि से मौलिकता न होते हुए भी फागु काव्य के शिल्प, कवित्व, गेयता, व काव्य सौष्ठव एवं प्रवाह उल्लेखनीय हैं। भाषा में पर्याप्त सरलता है। दोहा छंद से फागु में और अधिक प्रवाह आ गया है इस प्रकार १४वीं शताब्दी की फागु रचनाओं पर विचार करते समय हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि सं० १३९० में कवि श्री जिनपद्मसूरि विरचित स्थूलिभद्र फागु ही सबसे महत्वपूर्ण तथा काव्यात्मक कृति है। स्थूलिभद्र फागु के अतिरिक्त १४वीं शताब्दी में जो भी कृतियां मिलती हैं वे साधारण ही हैं। १५वीं शताब्दी में फागु परंपरा में कुछ महत्वपूर्ण कृतियां मिलती हैं जिनपर हम आगे के पृष्ठों में प्रकाश डालेंगे।

१५वीं शताब्दी फागु-
ooooooooooooooooo

:: नेमिनाथ फागु::[1] (राजशेखर)

१५वीं शताब्दी में फागु कृतियों के विषय, उद्देश्य, और शिल्प में परिवर्तन हुए। भाषा अधिक संयत हुई। भाव व्यवस्थित हुए। काव्य में प्रवाह और सरलता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। इतना सब कुछ होते हुए अधिकांश कृतियां नेमिनाथ के जीवन पर ही उपलब्ध होती हैं। विविध कवियों ने विविध नामों से नेमिनाथ के असाधारण चरित्र का उल्लेख किया है। इतर कृतियों में पुरुषोत्तम पंचपंडव फागु, स्थूलिभद्र फागु, रावणि पार्श्वनाथ फागु जीरापल्ली पार्श्वनाथ फागु देवरत्न सूरि फागु व बसंत फागु आदि कृतियां विविध विषयक मिलती हैं जिनपर हम संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत करेंगें।

प्रस्तुत कृति काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस कृति की काव्य सुषमा बिल्कुल वैसी ही है जैसी जिनपद्मसूरि के स्थूलिभद्र फागु की। यहां तक कि दोनों कृतियों की कड़ियां भी २७ हैं। वर्णन की पद्धति काव्य की सुषमा, भाषा की सरलता, अनुप्रासात्मकता, छंदों का साम्य, शब्द चयन की मधुरता आदि सब दृष्टियों से प्रस्तुत फाग स्थूलिभद्र फागु से मिलता जुलता है। इससे यह कहा जासकता है कि कवि प्रस्तुत रास के कर्ता श्री राजशेखरसूरि ने अवश्य ही इस स्थूलिभद्र रास को पढ़ा हो या उसकी समकालीन किसी अप्रसिद्ध कृति का परिशीलन किया हो, या कवि राजशेखर अवश्य ही उससे किसी भी रूप में पर्याप्त प्रभावित हुए होंगें। राजशेखर सूरि की यह रचना १४वीं १५वीं शताब्दी की सन्धि में लिखी गई है। राजशेखर का प्रबन्ध कोष के चतुर्विंशति प्रबन्ध, २४ लोक वार्ता प्रधान गद्य प्रबन्ध, तथा संस्कृत भाषा श्रीधर की न्यायकंदली पर पंजिका नाम की टीका भी मिलती है[2] श्री देसाई ने भी इस टीका तथा विनोद कथा संग्रह का उल्लेख किया है[3]। डा० सांडेसरा ने कवि के स्याद्वाद-कलिका, स्याद्वाद-दीपिका, रत्नावतारिका

१- प्राचीन फागु संग्रह डा० सांडेसरा पृ० ८-११ प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह श्री सी०डी० दलाल पृ० ८३-८९।
२- आपणा कविओ: श्री केशवराम काशीराम शास्त्री पृ० २४४।
३- जैन गुर्जर कविओ: श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई भाग १ पृ० १३।

पंजिका तथा १०८ श्लोकों में विविध दर्शन युक्त संस्कृत ग्रन्थ, षड्दर्शन आदि ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है।[1] प्रस्तुत कृति का काल सं० १४०५ है। श्री के०का० शास्त्री ने इसे सं० १३९४ से १४०५ के बीच में माना है।[2]

कवि राजशेखर ने इस छोटे से काव्य को रोला छंदों में लिखा है।शैली प्रसाद गुण सम्पन्न तथा आलंकारिक है। कवि की उत्प्रेक्षाएँ प्रेक्षणीय हैं। कवि बहुज्ञ थे। उनकी विद्वत्ता अनेक देशीय थी। परम्परा के कारण कवि ने वसंत का वर्णन भी किया है। कवि ने नेमि को इतना पराक्रमशाली दिखाया है कि बंदर जिस प्रकार शाखा से झूल जाता है कृष्ण भी उनकी भुजा में वैसे ही लटक गए। रानियों ने मिलकर उनको विवाह के लिए बाध्य किया। वे, हरि, हलधर सब वसंत खेलने लगे। नेमिनाथ से आठ भवों का नेह निभाने वाली उग्रसेन की सुता राजुल के नखशिख वर्णन में पर्याप्त कौशल दिखाया है। उपमाओं, रूपकों और उत्प्रेक्षाओं का एक विचित्र संभार है। कवि का प्रवाह, आंगिक उपादानों के साथ प्रकृति के तत्वों का मेल, वर्णन की सरलता और श्रृंगारिकता उल्लेखनीय है:-

अह सामल कोमल केस पास किरि मोर कलाउ
अह बंद समु भालु मयणु पोसइ भडवाउ
वंकुडियालीय भुंह छियइ भरि भुवण भमाडइ
लाडी लोयण लहकुलइ सुर सग्गह पाडइ

लाडी (वधू) राजुल के अंगों की सुघड़ता उसके अभिन्न नव यौवन श्रृंगार वर्णन, सरल तरल भुजा वल्लरियाँ, घन तुंग पयोधर, त्रिवली तरंग, गंगा पुलिन की भाँति कोमल विमल नितंब बिंब आदि सब उपमाओं की सुषमा देखिए:-

करि सखि बिंब कपोल कन्न हिंडोल फुरंता
नासा वंसा गरुड चंचु दाडिम फल दंता
अहर पवाल तिरेह कंठ राजल सर रूडउ
जाणु वीणु रण रणइ जाणु कोइल टहकडलउ

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० भोगीलाल सांडेसरा प्रस्तावना भाग पृ० ३
२- आपणो कविओ, श्री के०का० शास्त्री पृ० २४५।

सरल तरल भुय वल्लरिय सिहण पीण घणतुंग
उदर देसि लंका डलीय सोहइ तिबल तुरंगु
अह कोमल विमल नियंब किरि गंगा पुलिणा
करि कर ऊरि हरिण जंघ पल्लव कर चरणा
मलपति चालति वेल हीय हंसला हरावइ
संभा रागु अकालि बालु नह किरणि करावइ
सह जिहि लहडीय रायमइ कुलवण धुकमला
घणउ घणेरउ गह गहय नव जुव्वण बाला

कवि वर का घोड़े पर प्रयाण, गवाक्षों में बैठकर नारियों का बारात का निरखना वर ऊपर से लून (नमक) उतारना आदि प्राचीन सामाजिक प्रथाओं की ओर संकेत करता है। रूप के साकार रूप नेमिनाथ को तथा शृंगार की हुई दुलहिन राजमती दोनों के वर्णन दो स्पष्ट चित्र खींच देते हैं। नेमि के रूप वर्णन में भाषा की सरलता तथा अलंकारिकता कृति को महत्वपूर्ण बना देती है। दोनों चित्र इस प्रकार हैं:-

अह सेयतुंग तरल तुरइ रइरहि चडइ कुमारो
कन्निहिं कुंडल सीसि मउड गलि नवसर हारो
चंदणि ऊमहि चंद धवल कापडि सिणगारो
केवडिआला धुंघु भरणि संकुलउ अति फारो
धरहि छत्तु सिरहु चमर चालहि भुय नमणी
लूण उतारहिं वरबहिणी हरि जुव्वल कमणी
बहु धरि बइसइ बसार केहि नावइ भूपाला
हय-गय-रह पायकक चक्क हीकिरिड भमाला

नव वधू का शृंगार करने में कवि की लेखनी खूब रमी है। वर्णन काव्य प्रौढत्व का सूचक है-

किम किम राजल देवि तणउ सिणगार भणेवउ
चंपइ गोरी अइ धोइ अंगि चंदनु लेवउ

कुंपु मराविउ जाइ कुसुम कसतूरी सारी
सीमंतइ सिंदूर रेह मोती सरि सारि
नव रंगि कुंकुमि तिल किय रयणि तिलउ सत भाले
मोती कुंडल कन्निधिय बिंबोलिय करजाले
अह निरतीय कज्जल रेह नयणि मुंह कमलि तंबोलो
नगोदर कंठलउ कंठि अनुहार विरोलो
...
मरगद जाहर कंचुयउ फुड फुल्लहं माला
करि कंकण मणि वलय चूड खलकावइ बाला

रोला छंद में कवि ने यह विप्रलंभ काव्य लिखा है जिसको तीन तीन कड़ियों के आधार पर सात छंदों में बाँटा जा सकता है। काव्य निर्वेदांत है। प्रारंभ में तो कवि श्रृंगारिक रहा है परन्तु अन्त में सारा दृश्य ही परिवर्तित हो जाता है। नेमिनाथ की विरक्ति पर कवि राजुल की स्थिति, उसका धरती पर पछाड़ खा खा कर गिरना, और उसकी करुणाजनक स्थिति को कवि ने अनुरणनात्मक तथा ध्वन्यात्मक शब्दों में वर्णित किया है:-

रुणुझुणु ए रुणु झुणु ए रुणुझुणु ए कडि घघुरियालि
रिमिझिमि रिमिझिमि रिमिझिमि ए पय नेउर जुयली
नहि आलत्तउ बलवलउ सै अंसुय किमिषि
अंबडियाली रायमए पिउ जो अइ मन रंगि

--- --- ---

धरणि धसक्कइ पडइ देवि राजल विहलंघल
रोअइ रिज्झइ बेसु खसु बसु मन्नइ विल्कलु

--- --- ---

जीव मेल्हावइ नेमि कुमरु सरणागइ पालइ
सिद्धु सेहाइ सवाइ इस्थइ इम मणिरइ बालइ

--- --- ---

नेमि न मन्नइ नेहु देह संवच्छर दाणुं
ऊजल गिरि संजम लियउ हुय केवल नाणुं

--- --- ---

दयकरि दयकरि देव तुम्ह हउं अथउं दासी

श्री केशवराम काशीराम शास्त्री ने कवि की भाषा की पृष्ठ भूमि के प्रमाण में कुछ उदाहरण दिए है ये उदाहरण प्रबन्ध कोष में से है:-

उवयारह उवयारडउ सव्वुलोउ करेइ
अवगुणि कियइ जु गुण करइ विरलउ जणणी जणेइ

----- --- ---

छाया कारणि सिरि धरिय पव्ववि भूमि पडंति
पत्तहं हुई पत्तत्तणयं तरु वर काई करंति

--- --- ---

कुमरपाल, मनचिंत करि चिंतिई किंपि न होइ
जिणि तुहं रज्जु सम्मपिउ, चिंत करे सइ सोइ

उक्त उद्धरणों सेकवि की भाषा पर प्राकृत प्रभाव स्पष्ट है। क्योंकि प्रस्तुत कृति संक्रांतिकालीन है इसमें तद्भव और तत्सम शब्द अनेक है। कवि की भाषा पर प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती का प्रभाव है। साथ ही जन भाषा होने से उसमें सरलता और बोधगम्यता है। अलंकारों की दृष्टि से भी कृति का कौशल दृष्टव्य है। उक्त उद्धरणों में पंक्तियां की पंक्तियां ही तत्सम शब्दों में लिखी गई है।

अलंकारों में विशेषकर उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक, उदाहरण वर्णन अपह्नुति आदि प्रमुख है। राजस्थानी संज्ञाओं और क्रियाओं में हिंडोलियउ, सलूणउ लाडी टहकडलउ मोरडी खडइ छत्पुक चमरियाली, पीर, अछउ, आदि है। अनेक तत्सम शब्दों के कई मौलिक प्रयोग है- चालसि, काजल, ज्योर, निरदई, छउं, पहिरणि कुल वयलो, मन चीतइ, कैवली, ओढणी, चहिरिणी, बइणी, टहकडलउ, मलपति, कमल कपोल झमाडइ, केवडियालउ, आदि

= नेमिनाथ फागु (प्रथम) =
(जयसिंह सूरि)
= नेमिनाथ फागु(द्वितीय) =

--::००::--

कृष्ण वर्षीय जयसिंहसूरि कृत दो फागु नेमिनाथ के जीवन पर उपलब्ध होते हैं। कृष्ण वर्षीय एक जैन गच्छ का नाम था। डा० सांडेसरा ने इन फागों का संपादन बड़ौदा के ज्ञान मंदिर की प्रतियों के आधार पर किया है। ये फागु पोथी नं० ४६०७ से, जिसमेंकुल आठ ही पत्रे (२४८-५५) है, लिपिबद्ध किए गए हैं।

जहाँ तक इन दोनों फागों के कथा सूत्र का सम्बन्ध है, दोनों में पर्याप्त साम्य है। भाषा भाव उपमाओं तथा परंपरागत वर्णनों में भी पर्याप्त साम्य है परन्तु छंद व काव्य प्रवाह में दोनों का स्वतंत्र महत्व है। दोनों फागों के तुलनात्मक कुछ काव्यात्मक स्थल अंग्राकित हैं:-

बसंत वर्णन (प्रथम फागु)

वन सइ मंडन अह पहूतु रितुराउ वसंतु
चंपक बेडल वउल कमल परिमलु विलसंता
कोयल कलिखु करहि जापु वाजइ वर वीण
मन्नावइ प्रिय पाय लगिय तरुणी अहि दीण
भमइ भमर मधुपान मत्त झंकारु करंता
रितु रायह किरि भट्ट थट्ट वर कित्ति पढंता
पसरिउ परिमल मलयवाउ दहीदिसि पूरंतो
माणिणि कामिणि मनह माहि झलणि पूरंतो
काम्मिय वर सहकार शाख बंधि हिंडोला
हिंडहि प्रियतम सरिसु सरिसु गाई हींदोला
चंपक कोकिल बाल रंगि मय फागु रमंते
दुक्खिय विरहिणि नयण नीरु नीभरण भरते १

१- प्राचीन फागु संग्रह- डा० सांडेसरा पृ० ८-२१।

इसी तरह द्वितीय फागु का भी बसंत वर्णन देखा जा सकता है:-

वनि वनि कुसुमि-हि बहबइ बन सहभुंग भ्रमंति
पेखिवि विरहिणि चंपय चंपय कंप करंति
बेडल नवकली संकुल बकुल फुरइ सच्छंदु
सकुरि महुयल मुंबरु कुंदु रचइ आनंदु
फल भरि भरिय विअउरिय मउरिय वोरिय ठुंम
मधुकर सेविय करुणिय तरुणिय जिमगुणवंग
विहसिय नलिणिय सरवरि तरवरि भमउन जाइ
पाडल परिमलु सुविमलु पुहविहि कहवि न माइ
केतकि करइ कराठिय पालिय जिम मन रंग
नारंगि रंगि हरंगिम ढंगिय बहु नव रंगि
मलयानिलु तहि लटकइ बहकइ परिमल भूरि
कोयल मधुर बुवालइ भ्रासइ पंथिय दूरि
फिरि फिरि वनि वनि मधुकर निकर करइं झंकारु
जीतउ जगु करि अमरसु समरसु फिरि जयकारु [१]

दोनों फागों में राजुल की श्रृंगार सज्जा का वर्णन उत्कृष्ट है। राजुल का श्रृंगार सखियों द्वारा तथा उसका प्रियप्राप्ति के आनन्द में आत्म विभोर होना कवि के काव्य प्रवाह का परिचय देता है।-

सज्जा वर्णन-

(प्रथम फागु)

न्हाइअ धोइअ राजमइ चारणि सिंगारइ
वालिम बादर तणउ चीरे माणउ पहिरावइ
भरियउ केतकि कुंडु चीतु सीमंत सिंदूरु
भाल तिलउ मागि वय निलउ धरिअउ फिरि सूरु

१- प्राचीन फागु संग्रह: डॉ० सांडेसरा पृ० ८-२१।

अंजनि अजिय वेवि नयण पत्र वेलि कपोलि
मोती लग ताडंक कन्निन मुखि रंगु तंबोलि
कंठु नगोदर फुल्ल माल उरि नवसर हारो
करेठिय कंकण रयण वलय मुंद्रडिय अपारो
तसु कडि कंकण घगुघरिय झणझणण वाजंति
चरणिहि नेउर रूण झुणई नहि आवतइ उज्जंति १

(द्वितीय फागु).

सीसहि मोतिय जालिय वालिय कंचण देह
ऊगटि कीधी कवणिहि नयणिहि काजल रेह
कन्निनहि वेसिय कुंडल चंचल उरिवरि हारु
कंठि नगोदरु करठिउ करि ठिउ कंकण धारु
कडिहि परोलिय पहिरिय गहिरिय गुण गणिवाल
चरणिहि नेउर रुणझुणु रुणझुणु करइ विसाल [२]

इस प्रकार दोनों कृतियों की भाषा और भाव प्रवाह में पर्याप्त साम्य है। प्रथम फागु रोला छंदों मे है तथा द्वितीय मे आंतर अनुप्रास यमक प्रधान दोहा छंदों में। हर एक पंक्ति में कवि की अन्तर अनुप्रास शैली का चमत्कार है। आंतर अनुप्रास यमक प्रधान शैली के कुछ उदाहरण देखिए:-

१- मधुकर वेलिय करुणिय तरुणिय जिम गुण चंच
२- एक न परणिय तरुणिय ईणइ यौवनु जाइ
३- केतु कुकोहइ समगुरु बहुरु करइ अनुराग
४- सयण हिंडोला रहवर मरवर फिरि गिर मोल
५- अहनिसि विमलरु हरखिउ वरखिउ दानु सदेइ

इसी सरस्रात्मक पंक्ति को देखा जा सकता है।

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० सांडेसरा पृ० ६-२१
२- वही।

अंत में दोनों फागों में कवि ने संयोग की मधुर आशा को एक दम भ्रम में परिवर्तित कर दिया है। सारे दृश्य बदल जाते हैं। जहां तक कवि के काव्यात्मक स्थलों का सम्बन्ध है, भाषा का प्रवाह, शब्दों की कोमलकांत पदावलीवर्णन की अंतर अनुप्रास यमक प्रधान शैली तथा मौलिक उपमानों की दृष्टि से दोनों फागों के नख शिख वर्णन बड़े उत्कृष्ट हैं। दोनों में यद्यपि वस्तु साम्य है परन्तु फिर भी दोनों का स्वतंत्र महत्व वर्णन की पद्धति की ओर संकेत करता है। दोनों फागों में राजुल के नख शिख वर्णनों की मिठास देखिए। दोनों के उपमानों में राजशेखर के नेमिनाथ फागु में वर्णित उपमानों से भी साम्य है:-

(प्रथम फागु)

मयण खुहड करिवाल सरिसु सिरि वेणीय दन्डो
कंति समुज्जवल तासु वयणु सिसि बिंबु अखंडो
भालथलु अठेठमिय चंदु किरि कंन हिंडोला
भमुइ धणुइ सम विमुल चपल लेयण कंचोला
दप्पण निम्मल तसु कपोल, नासातिल फूल
हीरा जिम झलंकंत दंत पंतिहि नहिं मुल्लु
अहिरु प्रवालउ कंठु करइ कोइल सडवादो
राजल वाणिय वेणु वीणु उचारइ नादो
तसु भुय वल्लीय करि कमल पीण पयोहर तुंग
घरि पूरिय सिंगार रसि कणय कलश किरि चंग
उइरि लंकालिय सीह सैम सम त्रिवलि तुरंग
नाही मंडलु बह गहीर रोमावली चंग
पुलिन विसाल नियंब बिंब कदली थंभोरुय
हरषिय जंघा वरण जुयल पल्लव गुण चोरु १

(द्वितीय फागु)

सोहइ सिरवर राजल आजल सामल वेषि
भाल भुअगम वराखु साखु दीपक रीषि

श्रवण हिंडोला रइवर नरवर किरि निरमोल
सोहहि कंतिहिं सखहर जासु कपोल
उन्नत सरलिय नासिक सासिक लइ आमोदु
विलसरि कंतिहिं दंतिहिं नवकुंद कलिय विनोदु
जापड अहर पवालउ आलहु अमृतह तासु
कंठु सुकोइल समधुरु मधुरु करइ जग दासु
तसु भुज सरलिय तरलिय पीन पयोधर तुंग
उयरि लंका लिय वालिय लालिय त्रिवली तरंग
गजपति करवर पीवर उरुय हरिणी जंघ
सकल सुकोमल नवदल पवदल गुणिहि अलंघ २

वस्तुतः दोनों वर्णनों में, करवाल की भाँति वेणी भालथुल अष्टमिय चंदु निर्मल दर्पण की भांति कपोल तिलफूल इवनासा आदि अनेक नखशिख के मौलिक उपमान कवि ने जुटाए है।

कृतियों के अन्त में राजुल का विलाप और निर्वेद उसे मार्मिक बनादेता है। इस प्रकार दोनों फागों के मौलिक प्रयोगों और काव्यात्मक स्थलों का प्रयोग तथा प्रवाहपूर्ण सरल भाषा का परिचय उक्त उद्धरणों द्वारा मिल जाता है। दोनों फागुकारों ने नेमिनाथ के निर्वेद का संदेश फागु गीत पद्धति, द्वारा किया है। इस कृतियों में तत्कालीन सामाजिक प्रथाएँ, स्थानीयवातावरण आदि के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए है। कथा परंपरा में वस्तु शिल्प को छोड़कर कवियों ने वर्णन शैली और दृष्टिकोण की मौलिकता प्रस्तुत की है। कृष्ण के साथ नेमिनाथ का पारिवारिक संबंध, नेमिनाथ की कृष्ण की पटरानियों के साथ बसंत क्रीड़ा, पटरानियों की उनसे छेड़छाड़, विनोद तथा विवाह की चर्चा आदि प्रसंग कवियों ने मौलिक रक्खे है। यों अब तक वर्णित फागों में बहुधा कथा नेमिनाथ के पाणिग्रहण उत्सव से ही मिलती है।जो भी हो, दोनों फाग काव्यगत विकास के प्रतीक है।

रावणि पार्श्वनाथ फागु

रावणि पार्श्वनाथ फागु की बड़ौदा ज्ञान मंदिर की पोथी नं० ४६७७ के आठ पत्रों में एक फाग प्रसन्नचंद सूरि कृत रावणिपार्श्वनाथ फागु रचना उपलब्ध हुई। रचना की प्रतिलिपि अभयजैन ग्रन्थालय में भी सुरक्षित है। प्रसन्नचंद सूरि जयसिंह सूरि केशिष्य थे अतः इनका काल सं० १४२२ के आसपास ही अनुमानित किया जा सकता है।

रावणि पार्श्वनाथ फागु का कथा शिल्प पूर्व वर्णित फागों से भिन्न है। इसका वर्णन कवि ने प्रशस्ति काव्य के रूप में किया है। रावणि अलवर के पास एक गाँव है। वहां पार्श्वनाथ का मन्दिर है। कवि ने १६ पदों की इस छोटी सी रचना में ही गांव रावणि, पार्श्वनाथ का मंदिर तथा वनश्री और बसंत श्री का वर्णन किया है। इन जनभाषा कवियों के काव्य में यह लाघव अत्यन्त अधिक मिलता है। छोटी सी रचना में अनेक तथ्यों का समन्वय कवि ने प्रस्तुत किया है।

इस रचना में फागु काव्यों का मधु महोत्सव वनश्री वर्णन के रूप में मिलता है। तथा पार्श्वनाथ के मंदिर में होने वाली पूजा का भी कवि ने सुष्ठु वर्णन किया है। रचना प्रकाशित है। साथ ही इसमें कथा शिल्प की दृष्टि से भी कवि ने थोड़ा परिवर्तन किया है। अद्यावधि लगभग सभी फागु नेमिनाथ के जीवन पर ही मिलते हैं परन्तु कवि की उक्त रचना चरितप्रधान होते हुए भी तीर्थ या स्थान विशेष की प्रशस्ति में लिखी गेय रचना है।

पूरी रचना को कवि ने भास में विभक्त किया है।पूर्व पृष्ठों में भास पर विचार किया जा चुका है। कवि ने पूरा फागु दूहा तथा रोला छंदों में लिखा है जो पूर्व परिचित हैं।

कवि के काव्यात्मक स्थलों के कुछ उदाहरण इस प्रकार है:-

कवि ने प्रकृति वर्णन नाम परिगणनात्मक रूप विभिन्न वनस्पतियों की बासन्तिक सुषमा देखिए-

ताल विशाल रसाल, सालहि ताल तमाल

पारसपीपल वण पलास पुलंदुअप्रियाल

करपट कंचणयार कउठ करमंदी विंद
महुम मणोहर मंदयार माल्हइ मचकंद
सीसमि सरघुम सरल साग सिंपालि सलीसइ
वंसयालि वडि वरुण पमुह वणसइ जहिं दीसइ
जात्रिगु जगु चलित छांह अति घणु हरिसेइ
सुआ सालहि मोर सबदु सुणि मणि विहसेईं (२-४ पृ० २२)

कवि ने फागु खेलने का उल्लासपूर्ण वर्णन बसंत वर्णन की क्रोड में किया है। मधुरितु का उल्लास चित्रण करने में कवि का मन खूब रमा है। शब्दों की सरलता, प्रवाह तथा शब्चयन की कोमलता देखिए:-

सरवर निरमल नीर भरिय हंसिहि परिवरिया
सालि सुगंधिम तणा खेत्र पगि पगि अवयरिया
घूवडि धावलियालडीर धसमसती चालइ
लडसडंत लहकंत वेणि दूबहि जिणु न्हावइ
गाम गमारिय गोवलिणी जहि गेलि करंते
सरले तरले लोयणडु हसि हियउंहरते
तिणि पुरि पाखह बर सुयणि बालउ घडु दिसि नारे,
फाग छंदिअम्हि खेलिउं साउ सुहउड संसारे

इस तरह कवि की रचना शैली में फागु छंद, नृत्य, गीत तथा काव्य की रसमयता और गेयता का परिचय मिल जाता है। बसंत रात्रि का वर्णन उत्कृष्ट है:-

अह दखिणु वाइउं वाउराउ रितु पत्त पहूतउ
दिसि दिसि हरसि रमंत लोउ मनमथि गुणि गुतउ
जाती चंपक बउल वेल परमल उछलिया
खेवनडी मचकुंद कुंद सुंदर वणि मिलिया
आंबुला डाल सुहावणी य, भंवरि महमहए
पाडल सुडवि न माइ मंडु नारिंगि महमहए
बीजउरि बहुभंगि भरिय नव कुसुमह भारो
सरवर विहसइ किरण कमल महुयर झंकारो

दमणुलो मालउवण मभारि मरूअउ मणुमोहइ

दाड़िम दीसइ अतिसुरंग केसुअडउ सोहइ

दाड़िम दीसइ अतिसुरंग केसुअडउ सोहइ

कोइल कलिरवु आगलउ किरि अमियह उलट्ट

मयणराय भडि पामियउ तिहुयण उपरवट्ट (प्रा०का०सं० ६-८ पृ०२३)।

कवि ने प्रतिमा पूजन विधि तथा नीराजना गान, नृत्य, भवजन, पूजा आदि का वर्णन भी सफलता से किया है।समास बहुला शैली में कवि ने काव्य कौशल प्रस्तुत कर जन साधारण में रावणि स्थिति पार्श्वनाथ की प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा की है:-

अह नागनाह फण मंडलिहिं मंडिउ जिणनायकु

मेळ माण नीदलणु सयल वंछिय फलदायकु

सीह जैम पकल्लमल्लु वणमाहि वईठउ

विघन गयंद विडारणउ विहु नयणे दीठउ

चंदण कुंकुम घण कपूर कसथूरिय लेविणु

पूज रचिसु पहु पासनाह करि न्हवणु विलेविणु

आरतीय मंगल पईयवर धूवमि खेवो

ढोइय फल नालियर बहुल जन महफलु लेवो

ता लगि चंचल चोर चरड पडियह कंधायहिं

तां लगि लोयह रोग सोग संचय संतावइ

ता लगि दुट्ट दरिद्र विवइ दीमत्तणु वामिउ (११-१४ प्रा०का०सं० पृ० २४)

इस प्रकार रचना छोटी है परन्तु प्रचलित गीत के रूप में फागु काव्य का महत्व इससे स्पष्ट हो जाता है। भाषा सरल और तत्सम शब्दों से युक्त है।

-- जंबू स्वामी फाग[1] -- (अज्ञात कवि कृत)

सं० १४३० का जंबू स्वामी फाग महत्वपूर्ण काव्य है।प्रस्तुत काव्य की प्रति पाटण में मुनियशविजय की हस्तप्रति से उपलब्ध हुई है। यों यह रचना बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी थी।[2] जंबू स्वामी नेमिनाथ की ही भांति बहुत प्रसिद्ध व्यक्तित्व हुए है जिनपर अनेक काव्य लिखे गए हैं। १५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यह कृति एक बहुत ही दुर्लभ तथा महत्वपूर्ण रचना है। जंबू स्वामी फाग में कर्ता का नाम कहीं नहीं मिलता। कृति की पूर्ववर्ती रचनाओं को देखते हुए काव्य पद्धति भाषा, भाव और शिल्प में यह रचना जयशेखर के नेमिनाथ के फागु से पूरा साम्य रखती है जिस पर आगे प्रकाश डाला जायगा। बहुत संभव है कि ये दोनों कविसमकालीन रहे हों। अथवा परस्पर प्रभावित भी हुए हों। काव्य की दृष्टि से यहकृति बड़ी महत्व की है।

प्रस्तुत काव्य अंतरप्रास वाली ३० कड़ियों या ६० दूहों में रचा हुआ है। सम्पूर्ण काव्य में कवि ने अंतरयमक प्रत्येक दोहे में रखा है जो फाग की प्रवृत्ति विशेष है। कृति का पाठ, भाषा भाव, प्रवाह और काव्य-कौशल की दृष्टि से अज्ञात कवि कृत अजैनरचना बसन्त विलास फागु से पर्याप्त मेल खाता है। बसन्त विलास का समय भी सं० १४२२ के आस पास है। रचना बंध यमक अनुप्रास की यह शैली बसंतविलास में सर्वत्र परिलक्षित होती है।

कृति जंबूस्वामी जीवन पर लिखी एक विविध घटनाओं से संगुम्फित एक चरित्रमूलक खंड काव्य है। जिसमें जंबू स्वामी का व्यक्तित्व संयम की अनूठी सुषमा से जगमगाता है। जंबू स्वामी राजगृह नगर के एक धनपती रिषभदत्त के पुत्र थे। उनकी माता धारिणी थी। युवावस्था में एक बार जंबू स्वामी अपने परिवार सहित वैभवगिरि पर्वत पर क्रीड़ा करने गए। पुनः लौटते रास्ते में सुधर्मास्वामी गणधर से भेंट हुई। जंबू कुमार ने उन्हें प्रणाम किया और उपदेश देते ही उन्हें विरक्ति हो गई। घर आकर माता पिता से उन्होंने दीक्षा की बात कही।पर पुत्र पर असीम

१- प्राचीन फागु संग्रह पृ० २५-३०
२- गुजराती दीपोत्सवांक- पृ० ४२ सं० १९९२ डा०सांडेसरा संपादित।

श्रृंगार होने से माता पिताओं ने उनसे लग्न का आग्रह किया। उन्होंने कह दिया कि विवाहोपरान्त में दीक्षा लूंगा। रिषभदत्त ने भी उन आठ कन्याओं के माता पिताओं से दीक्षा की बात कह दी। श्रेष्ठियों ने सारी सूचना कन्याओं से कही। विवाह के उपरान्त दीक्षा पथ से जंबू कुमार को पथच्युत कर राग रंग में डुबा देने की इच्छा से परिणीता आठों लड़कियां मिलन की प्रथम रात्रि में ही हार गई पर जंबू स्वामी को अपने अविचल निश्चय से नहीं डिगा सकीं। उसी अवसर पर रात्रि के पिछले पहरों में प्रभव नामका एक चोर अपने ५०० चोर साथियों को लेकर सेठ का द्रव्य लूटने घुस आया पर जंबू स्वामी के उपदेश को सुन स्तंभित हो गया और अपनी अवस्वापिनी विद्या को इस स्तंभन विद्या के सामने तुच्छ माना। उस अवस्वापिनी से उसने सबको बेहोश कर दिया पर जंबू स्वामी पर अखंड ब्रह्मचर्य के प्रभाव से उसकी विद्या निष्फल हो गई।उसके पैर इससे वहीं स्तंभित हो गए। इस अवसर पर जंबू कुमार ने उसे संसार के असार होने का उपदेशदिया। प्रभव भी उन्हीं के साथ दीक्षित हुआ। रात्रि में अपनी आठों पत्नियों को भी जंबू कुमार ने विविध दृष्टान्तों द्वारा परितुष्ट कर दिया और इस प्रकार जंबू स्वामी ने प्रभव के साथ ५०० चोरों तथा माता पिता और आठों कन्याओं सहित सुधर्मास्वामी से दीक्षा ग्रहण की। १६ वर्ष की वय में दीक्षा ग्रहण करके उन्हें ३६ वर्ष में कैवल्य प्राप्त हुआ। ४४ वर्ष उन्होंने कैवल्य प्रव्रज्या में बिताए और ८०वीं वर्ष की अवस्था में मोक्ष को प्राप्त हुए और उनका स्थान प्रभव ने ग्रहण किया।

संक्षेप में काव्य की कथा वस्तु यही है जिसको कवि ने विविध भावपूर्ण उक्तियों से संवारा है। कवि ने जंबू स्वामी के वैभवगिरि पर क्रीड़ा करने जाते समय फागु पद्धति और परंपरा के अनुसार वसंत श्री का सुन्दर वर्णन किया है। कवि ने उनके माता पिता का परिचय बड़ी प्रासादिक शैली मेंदिया है। फागु काव्य के शिल्प में यह बात देखने को मिलती है कि चाहे रचना का नायक हो या नायिका कवि उनका प्रासादिक वर्णन करता है। जंबू कुमार का रूप वर्णन देखिए:-

जंबुकुमार सहु नंदन नंदन-वन सुच्छाउ

कामकेलि बहु मालंउ, बालसमउ जिम राउ

विरुभम रुवि पुरंदरु सुंदरु सोहग-सारु

कदलि लवलि कोमलउ निम्मल जस आधारु

ससिमंडल गंगाजल उज्जवल गुणि संजुत्तु

लावन सिरि लीलावन जोवनवय संपुत्तु

यहाँ तक कि युवक नायक के माता पिता का वर्णन भी उतना ही प्रासादिक है जितना अन्य वर्णन। कवि की आलंकारिक शैली तथा अंतरयमक का सफल निर्वाह अत्यन्त स्वभाविक है:-

मगधदेश मुह भूषण, दूषण रहित निवासु

नयर राजगृह राजए गाजए जगि जसवासु

सोहई नहि सुगुणायर सायर भरीय गंभीरु

रिसहदत्त विवहारीउ धारिय निजमनिवीरु

तस घरणी गुण धारणी धारिणी नाम प्रसिद्ध

अमिय वेलि जिम मंदिरि सुंदरी सील समिद्ध

फागु वर्णन की परंपरा के अनुसार कवि ने बसंत का वर्णन कर काव्य कौशल का परिचय दिया है। शैली प्रसादगुण सम्पन्न है। भाषा तत्सम, भाव स्पृहणीय तथा पदावली मसृण है कवि की आलंकारिक शैली उसके वर्णन लाघव को और भी उत्कृष्ट बना देती है। वासन्ती प्रकृति वर्णन देखिए:-

इणि अवसरि महमहतउ, पहुतउ मास वसंतु

दखिण वाय विकासीय, वासीय वनि विहरंतु

रमलि कतूहलि कलीउ, मिलीउ निज परिवारि

जंबु कुमरु बहुलरिवरि, गिरिवरि गिउ वैभारि

कामीय केलि परिमलि, रमलि करई बहु भंगि

रमई रसाल ससनीय, करणीय नवनव रंग

पंथीय जनमनदमणउ, दमणउ देखी अनंगु

रंग धरई मन मरुउ, मरुउ पल्लव चंगु

कामिणि मन तणु कंपक चंपक वन महकंति

काम विजय ध्वज जमलीय कदलीय लहलहकंति

परिमल केलिअ मातीय जातीय जिम विहसंति
महुयर तिमतिम रुणझुण रुणझुणकार करंति
वनि सेवत्रीय बेडल बेडलहई बहुमान
वउलसिरि वनि सेलइ मेल्हइ मानिनी मान
बालउ सुरभि सुआलउ, आलउ मयण नरिंद
पाडल परिमल विकसिय, विहसीय नव मुचकंद
जिम जिम वाडिमि पाचइ माचइ तिम रितुराउ
रायणि डालि लहलहतीय, वहतीय फल समवाउ
फल भरि भरिय बीजउरीय, मउरीय मंजरी चंग
नारिंगी फल अति नमतीय, समतीय मनिहि सुरंग
कुसुमतणइ भरि सोहइ मोहइ मनजंबीर
कुवलय दलबहु विकसइ निवसइ वनि कणवीर
कमल सरोवर वासइ वासइ हंसगंभीर
मयणराय पहराउत राउतकिर अति धीरु
फलदल भारि मनोहर मोह रचइ सहकार
मंजरी मउरमहकइ टहकइ कोइलि सार (८-२०प्रा०फा०सं०पृ० २५-२६)
वर्णन की प्रासादात्मकता स्पष्ट है कवि ने वैभवगिरि की बसन्त श्री का वर्णन खूब डूबकर किया है। फागु की प्रत्येक पंक्ति में आंतर यमक है।भाषा सरल हिन्दी है तथा तत्सम शब्द प्रधान है। वसंत का वर्णन फागु को उल्लास प्रधान बना देता है। कवि ने इस वसंत वर्णन के रूप में प्रकारान्तर से जंबू स्वामी के जीवन के यौवन की सुषमा का सुन्दर वर्णन किया है।

जहां तक नख शिख वर्णन, रूपवर्णन और श्रृंगार सज्जा की काव्यात्मकता का प्रश्न है कवि ने अपनी अपूर्व सफलता दिखाई है। सरल भाषा में इतना मधुर वर्णन आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में विरले ही देखने को मिलते हैं। जंबू कुमार को अपने दीक्षा के दृढ़ निश्चय से हटाने के लिए आठ श्रेष्ठि कन्याओं

ने उनके साथ पाणि ग्रहण की सोच ली। उन्होंने अपने काम इंगितों, श्रृंगार सज्जा, मुक्टाक्षों, तथा सौन्दर्य के उपादानों से संयम के साकार रूप जंबूस्वामी को पथच्युत करना चाहा। कवि ने इन्हीं आठों नायिकाओं का नखशिख तथा शारीरिक सुषमा का वर्णन किया है। पदावली बड़ी सरल है जिसमें कवि ने नायिकाओं में यौवन के दंभ का रंग भरा है। वाणी सरस और शब्द बड़े गंभीर है। जंबूस्वामी को झुकाने के प्रयोजन से तैयार होने वाली इन आठ नायिकाओं का सौन्दर्य रूप व सज्जा का वर्णन देखिए:-

घर धरि गूडीय कहकह, झलकइ तोरण बारि
रंगि तरंगि गायइ (वायइ) हरखि न नारी
कन्या अभिनव जोवन सोवन वन्न समाणा
मागीय रुपि तिलुत्तम, उत्तम वंस पहाणा
आठइ दिसि मन रंजन अंजन भूमहीय नारि
आठइ गुण संपन्नीय उपन्नि संसारी
सिरवरि वेणीय लहकइ, बहकइ चंपक माला
रतिपति धणुं समाणउ जाणउ भाल विसाला
भुमहिय रूप कुसुमसरि अवसरि तोरण माल
त्रिभुवन जय उल्हासिहि लासिहि कीय कमकाल
लाडीय पंकय लोयणी जोयणी जग मन मोह
कन्नयुगल रस लवणिम निरूपम सारणि सोह
उच्छ वंसु सम सरलउ तरलउ नासावंसु
अहर बिंब परवालिय, लालीम राग विसेसु
विमल कपोल सि दीपइ जीपइ दिणयर कंति
दंत पंक्ति दाड़िम कलि सिलिय रहीय पकंति
कोइलि मोर मरालिय रालीय विनिजीय वेण
कंठु सिरेहउ छायइ, गायइ कारणि तेण

अवि सरलिय भूय जुयलीय कुंयलीय कमल समाण

पाणि जुयल नहकिरणिहि अरुणिहिं राग निहाण

मनमथि ठवीय पयोहर मोहरथावलि तुंग

लवणिम भरीय अंकुरीय पूरीय रागि निसंब

त्रिभुवन मोहणी तिवलीय, त्रिवलि जिसी मृगनाभी

काम केली बड दीवली छलीय रसालीय नाभी

कीरति थंभ समाणीय आणीय उरु समान

मयणराय आरोपिय लोपिय जगजणमान

चलति कमल हरावइ, नावइ कुणि उपमानि

कन्या पउ सलुणिय, कुणिय नवि गुणी मानि

हंस वसहगय गमणीय रमणी नयण मिलंति

जंबु कुमर नवरंगिहि अंगिहि सिणगारंति (२३-३५)

उक्त वर्णन में प्रवाल की भांति अधर, दाड़िम की भांति दंत पंक्ति, दिनकर कांति की भांति कपोलों की आभा कमल के समान कोमल युगल भुजाएं, पयोधर मनमथ के स्तवक, रागपूरित नितंबों की लावण्य आभा, मृगनाभि की भांति काम की बाउड़ी, कीर्ति स्तंभ की भांति युगल जंघाएं आदि सभी उपमान सुन्दर है।वस्तुतः वर्णन पद्धति को देखते यह कहा जा सकता है कि संभवतः इसका कर्ता जयशेखर सूरि ही हो पर यह बात प्रमाण पुष्ट नहीं है।

सौन्दर्य वर्णन और श्रृंगार वर्णन में कवि की पकड़ बड़ी अनोखी है।प्रथम मिलन रात्रि में ही आठों कन्याओं के सौन्दर्य व श्रृंगार वर्णन करता हुआ कवि उन्हें जंबू स्वामी द्वारा आठ अन्तर्कथाओं और दृष्टान्तों से निर्वेद का आनन्द स्पष्ट करता है और भोग रस में डूबी आठों नायिकाएं जंबू स्वामी के साथ दीक्षा की ओर आकर्षित हो जाती है। कवि ने वस्त्र परिधानों और आभूषणों में लिपटी कन्याओं की सुन्दरता का शम द्वारा पराभव दिखाया है। यौवन के इस अभिनव स्फोट और उभार में एक रस परिप्लुत प्यास का शमन कवि ने निर्वेद द्वारा किया है। प्रभव चोर भी उसके ५०० साथियों सहित उनके साथ दीक्षित हो गया:-

जंबु कुमरु इणि उच्छवि, पुच्छवि आठइ नारि
भुजनि मांड परणाविउ आविउ नियघरबारि
वास भवनि तिहं पइठउ, बइठउ गउरस मझरि
आठ नारि आगल रही सहीय सहित सिणगारि
केसर कुमकुम ऊगटि उलटि करि सुविसाल
सिदि सिंथइ उद्गोतीय मोतीय तिलक झमाल
नयणि ढुलीय जमणाजल काजल सामल रेह
करइ कडक्ख तरंगिहि रंगिहि सुरह सिणेह
अगर कपूर कस्तूरीय पूरीय रहइ पोलिक
नयण कमलि ससि निरमल रमलि रची तंबोलि
कानिहि कंतिहिं मंडल कुंडल लहलहकंति
नवसिणगार सहोदर नगोदर झल झलकंति
उयरि कंचुउ तडक्कइ लडकइ नवसर हार
कणयवन्न करि चूडउरडउ तस झलकार
पहिरणि चीर पटुलीय नउलीय मूल विचारि
चूनडली नवरंगीय वंगीय ऊढणि सार

--- --- ---

इणि सणगार न राचइ समचइ रसि अनुरत्त
निसुणउ नारी कथानक थानक बलइ न विरत्त
मृग नयणी प्रति बेधइ रोधइ निज मनि काम
चउर राउ अह अहिनवु प्रभवु पइठउ ताम
पाचसइ सिउं बुझइ सूझइ सिर वयरागी
निय माय पिय सिरसउ, करसउ संजम मागि
कन्या आठइ आपणि पणि प्रभवउ पिय साथि
सामीवरय निक्खम सोहम गणहर हाथि (४४-५६)

प्रा॰फा॰सं॰पृ॰ २८-३०।

इस प्रकार कवि ने हमारे सामने श्रृंगार का उत्कृष्ट वर्णन कर उसका परिहार

निर्वेद में किया है। १५वीं शताब्दी में रचित इस कवि की भाषा अत्यन्त सरल तथा स्पष्ट है। अपभ्रंश कालीन लक्षणिकता के साथ कवि ने अधिकांश शब्दों को तत्सम प्रधान रक्खा है।

फागु का उद्देश्य नायक जंबू स्वामी के संयम की उत्कृष्टता को जनसाधारण में प्रचलित कर असार संसार को त्याग निर्वाण की कामना को स्पष्ट करना है। फागु गेय और काव्यात्मक है कवि ने फागु जनित उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है:-

फागु बसंति जि खेलइ वेलइ सुगुण निधान

विजयवंत ते छाजइ राजइ तिलक समान

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य फागु काव्यों की परंपरा में वर्णन माधुर्य की एक मौलिक कड़ी है। ऐसी ही कृतियाँ आदिकालीन हिन्दी जैन कवियों की काव्यगत क्षमता का परिचय देती है। १५वीं शताब्दी में विविध विषयक और भी कृतियाँ उपलब्ध होती हैं जिनका परिचय आगे के पृष्ठों में दिया जायगा।

जीरापल्ली पार्श्वनाथ फागु[1] (मेरुनंदन)-सं० १४३२

यह फागु श्री अगरचंद नाहटा के संग्रहालय की सं० १४९३ में लिखी संग्रह पोथी से उपलब्ध हुआ है। रचना के लेखक श्री मेरुनंदन उपाध्याय है।खरतरगच्छ के मेरुनंदन जिनेदय सूरि के शिष्य थे। इनकी अन्य कई कृतियां और मिलती है जो आदिकालीन हिन्दी साहित्य की बड़ी महत्वपूर्ण कड़ियां है। जिनमें प्रमुख जिनोदयसूरि विवाहलउ, अजित शान्ति स्तवन आदि है। जैसलमेर भंडार में भी प्रस्तुत फागु की प्रति उपलब्ध होती है। श्री लालचंद गांधी ने इस कृति को सं० १५१९ की लिखी बताई है जो एकदम ठीक नहीं है।

जीरापल्ली आबू के पास जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ है। इसी फागु की भांति एक रावणि पार्श्वनाथ फागु मिलता है जिसका वर्णन हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके है। प्रस्तुत कृति की मुख्य प्रवृत्तियां भी ठीक वैसी ही है। कवि ने पार्श्वनाथ मंदिर का प्रवाहपूर्ण वर्णन किया है। जिसमें पार्श्वनाथ की यात्रा पर निकले यात्रियों का परस्पर वार्तालाप, बसंत की वनश्री पति पत्नियों का संलाप तथा पार्श्वनाथ की स्तुति बड़े ही प्रभावक पदों में की है पूरा फाग ६० कड़ियों में लिखा गया है। कृति के वर्णन को देखने पर इसमेंफागु के शिल्प सम्बन्धी लाक्षणिक तत्वों का समावेश भी मिलता है। भाषा काव्यात्मक प्रवाह की दृष्टि से कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते है:

<u>जीरावली स्थान का शोभा वर्णन-</u>

> सिद्धन विमाणु सासणु सामिउ पासकुमार
> मावरिं सिरि जीरउलिराउ लिउ फल सार
> सिरि असकुम महीपति दीपति कुल आधारु
> जुवती सती अभिरामा वामदेवि मलहारु
> पासकुमरु बहु बालक पालक हउ जग सामि
> सेवक दुरिह वयंकरु संकरु लीधइ नामि
> रमझलइ जेम भुजंगमु जंगमु कोडि मझारि
> जलधि जलंतउ राखिउ दाखिउ फलु भवकारि

---

[1]- प्राचीन फागु संग्रह- डा० भोगीलाल सांडेसरा- पृ० ३१-३५।

कमठ कठोरु पयोधरि धरिउ जो नवकारि
सुगति रमणि मन रंजणु मंजणु भावठि भारि
जीरा उलीय सतीसय, दीसइ तसु अवतारु
एकलमलि जिण सादरि आदरिउ जगभारु
चउरासिय नर नायक, पायक भड़ समराण
चोर चरड बहु मानइ मानइ सिरि जस आण
जसु डरि करि धरि निय प्रिय त्रिय नितु जंपइ ईम
कूडइ मनि पासह तणी धणियम लांघसि सीम   १

कवि ने गूर्जर धरती की सुन्दरी नारियों का वर्णन, उनका पार्श्वनाथ के दर्शन का उल्लास तथा उनके नृत्य और उल्लास का मनोहारी वर्णन किया है। वर्णन की सरलता, चित्रात्मकता तथा शब्दों की आंतर अनुप्रास योजना द्रष्टव्य है:-

जिणि दिणि देवह जोइ न कोइ न पूछइ सार
तिणि(दिणि) बंभण क्षत्रिय जात्रिय वर्ण अढार
इणि महिमागुण रंजिय वंजिय नयण विसाल
मुखि तंबोलि सुरंगिय रंगिय अधर प्रवाल
लडहियतणि लडसडतीय घडतीय भाव रसाल
नेह गहिल्लिय हियडुला प्रिय डुला जंपइबाल

--- --- ---

चरणि रणवि रोमंचिय वंचिय सवि भरतार
योवन अनइ सुगंधहि बंधहि कहि किम बार

--- --- ---

हरसिणि साथिइ मीठड दीठड अमिय समाण
पूज महिम वचि बोधिय रोपिय सुकृत प्रमाणि
थाकिय वेछि अखंडिय मंडिय निज निज वेसि

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० सांडेसरा पृ० ३२-३३।

चहुं दिसि तणिय सुयालिय बालिय मंडप देसि
जसु मुख कमल निरुपम रूपम दिठ ससि निर्वि
सरल तरल जसु वीणिय लीणिय रमइ निहंनि
गुजरडी गुण वतिय तंतिय सर अवतारि
मधुर वयण जब बोलइ तोलइ कुण संसारि
सरलिय अंगिलता जिम ताजिम नमतीय वांकि
सोरठणी मनि गउलिय कडलिय मानि जलांकि
सामलडी घण पाऊय बाऊय नयण तरंगि
हाव भाव नेवि जाणइ आणइ पुणि मनुरंगि
सिधुंय सहजि सभागिय जागिय लवणिम खाणि,
अंगि अनोपम चोलिय भोलिय वचन विनाणि
ढीलिय अनुनागोरिय, गउरिय सोहगपूरि
जसु वरवदनि कलंकिउ पंकिउ चंदल दूरि
चंचल चपल सलूणिय ऊणिय सहजि न रुपि
वाणिविलासी विचक्षण दिक्षणडी रसकूपि
अइसि मलिय महेलिय खेलिय माधव रंगि
पासकुमर गुण गायहि मायहि हरखिन अंगि
चरण चकोरि खिचमकइ झमकइ नेउर नादि
कलयलता करि ठेलइ रेलइ कंकण सादि
इणि छलि रवि धमणइ वर गरगु म भावहि चित्ति
पास ममणि ओंग लोपइ कोपइ तू वहि रीति
इसी प्रकार काव्यात्मक और सरस वर्णन कवि ने वसंत का किया है। यमक की छटा वर्णन को और उत्कृष्ट बना देती है। वसंतश्री का फूलना, सौरभ का तूफान और मलयानिल की अठ खेलियाँ सभी द्रष्टव्य हैं:-

गिरिवरि गिरिवरि पुरि पुरिवनि वनि परमल सार
दीसइ विहसत जणसइ वणसइ भार अढार

तिणि अभिमानहि रतिपति रतिपति माघ वसंत
घोम भणी अवतारिउ मारिउ कुसुम हसंत
दखिणवाउ महीतलि सीतल लहकिउ जाम
विरहि नीसासड कालउ बालउ बाहिकिउ ताम
सकल कमल वनि महकिय टहकिय कोयल जाण
पंथिय मनि दुख धरतिय वरतिय मन्मथ आण
वाजइ झुणि अलि केरिय भेरिय प्रथमारंभि
पान तणइ मिसि ऊडिय गूडिय कदली थंभि
बहुपलि नमइ बीजउरिय मउरिय अंब रसाल
सहजि सुभागहि रूयडला सूयडला खेलय डाल
मधुकर नादिहि जंपक चंपक अति अभिराम
वनसिरि दीव ऊतारति आरतिया सिरि काम
वेउल पाडल करुणिय अरुणिय दाडिम फूलि
लीजइ एक अवाल्ही वाल्ही छाडइ मूलि
परिमल दसदिसि वासइ वासइ सारस हंस
खेलइ नारि सरीसइ रीसई सह अवतंस
पंथिकि पंथिम सोषिय सोषिम कुसुम पलास
देखवि तरुण प्रवासुम, आसुम छंडय आस
वणसइ माहि पसायणि रायणि अनु कणयार
अवर मनोहर मरुयर तरुयर कहिम अपार
तिणि ऋषि त्रिभुवन कंपइ चंपइ रवि पवि सीम
मोर मधुर सरिआलवइ जालवइ विरहिणि कीम
विरहिणि एक भणइ सखि कहि किम आवइ नाह
महुमनि सीतल चंदन चंदन देहइ दाह
एक भणइ कुल देवति देवति हु जगसामि
प्रिय परदेसि महुतह मूकउ कवण विरामि

इणि परि जग जगउंतउ कंतउ रतिवर नारि
सहिउ वसंतिहि घाइउ आइउ पासह बारि
अवसरु नही अमीणउ हीणउ चिंतय मारु
बुद्धि विमासिय नाठउ घाठउ रति भरतारु (पृ० ३६ प्रा०फा०सं०)

इस प्रकार कवि की अनुप्रास यमक योजना प्रत्येक पंक्ति में है। भाषा की सरलता मधुरता, प्रवाह और शब्दों की कोमलता उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है। कवि की उत्प्रेक्षायें भी उसकी काव्यात्मकता में योग देती है। रास में कवि ने गीत नृत्य, लय, ताल आदि का उल्लेख किया है अतः स्पष्ट है कि फागु रचना के लाक्षणिक तत्वों का समावेश भी हुआ है। पूरा काव्य आंतरप्रास वाले दोहा छंदों में लिखा गया है। स्थान वर्णन प्रशस्ति में लिखे हुए पुरानी हिन्दी के ऐसे गीत काव्यों में जीरापल्ली पार्श्वनाथ फागु का स्थान अपने ही प्रकार का है।

॥ पुरुषोत्तम पांच पान्डवफाग ॥ (अज्ञात)

श्री नाहटा जी के संग्रह में १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की एक पुरुषोत्तम पंच पांडव फागु रचना उपलब्ध हुई है।जो उसी सं० १४९३ की संग्रह पोथी में लिखी है।[२] रचना शालिभद्रसूरि के पंच पान्डव चरित रास की ही भांति पांच पांडवों का चरित वर्णन करती है। पर कथा वस्तु में थोड़ा अन्तर है। रचना का कर्ता अज्ञात है तथा रचना काल भी निश्चित नहीं है।

पुरुषोत्तम पांच पांडव फाग में कवि ने पांडवों के द्रौपदी विवाह से ही काव्य प्रारंभ किया है। पान्डु राजा द्रौपदी व पांचों पांडवों को साथ लेकर हस्तिनापुर आते है। राजा के सम्मान में उत्सव होते है। इसके पश्चात् कवि ने कुला पर्वत पर विकसित वसंत श्री का सुन्दर वर्णन किया है। वसंत वर्णन फागु काव्य की लाक्षणिक विशेषताओं में से एक है। गंगा और यमुना के बीच में स्थित इस पर्वत पर यादव और पान्डव क्रीड़ा करने जाते है। कृष्ण और कुन्ती पुत्र खूब क्रीड़ा करते हैं और कृष्ण को नारद रिषि तीर्थ का महात्म्य बतलाते है और फागु समाप्त हो जाता है।

छोटी सी रचना में कवि का वर्णन कौशल खूब निखरा है। कवि का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और सरल है। कवि ने रचना को ८ भास में विभक्त किया है। भाषा अत्यन्त सरल है। १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की इन कृतियों में भाषा अत्यन्त ही सरल हिन्दी दिखाई पड़ती है अतः शब्दों की सरलता, लोक प्रचलन और तत्समता स्पष्ट है। नगर प्रवेश के समय नागरिकों का उत्सव वर्णन देखिए:-

अहे साथे करिउ गोविंद जाम पुरि नायकु आवइ
सत्वरि विदुरह बारि लोउ पुरि सोह करावइ
दखिया तोरण इव मंगल दप्पण विघल्यारिउं
मंच विविधि करि सुर विमाण महियल मवतारिउ
घरि घरि मोतिय चउक भरिय गुडिय उछालिय

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० सांडेसरा पृ० ४३-४६।
२- देखिए अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर सं० १४९३।

घरि घरि मंगल कलस ठविय वर वंदुरवालिय
उच्छाडिय घर थाट पवर पट्टोलिय सोहय
नाचति किरि तिम पुतलिय, त्रिभुवन मनु मोहइ [1]

कवि का वीरवेश में पान्डुओं का वर्णन अत्यन्त सफल बन पड़ा है। शब्दों का चयन, आलंकारिकता और अनुप्रासात्मकता उल्लेखनीय है। वर्णन के साथ ही कवि पान्डवों का एक चित्र ही प्रस्तुत कर देता है। वर्णन बहुत ही सजीव है:-

सहजति निरुवम रूव घरु पंचइ राजकुमार
तहविह मायडिय रलिय लगि करविय सिणगार
अहे काराविय सिण्गारु सारु सिरि मउड छवक्कइ
कुसमहि सेहर सुभर भरिय बहुगंधि बहुक्कइ
का नहि कुंडल उगमगंत लहलह लहकंता
कंठ कदलि विलसंति हार झलझल झलकंता
तिलउ अंलकिय भाववट्ट पट्टसुय सारा
कडिहि कटारा झगमगंत हाथिहि हथियारा
जयकुंवर सिंगार सारवे गुणहि गिरट्ठा
मेघागंबर छव सत्य विज्जहरिय बइट्ठा [1]

भावोर्मियों के अंतराल में डूबकर कवि ने नारियों का वर्णन किया है। शब्दों की अनुप्रासात्मिकता और ध्वनात्मकता दृष्टव्य है जो काव्यप्रवाह में वृद्धि करती है। भाषा की सरलता और अलंकारों की छटा काव्य को प्रभाविक बना देती है::

घवल घयंचिव किंकिणीय रणिकणिबार
डलहि चाबर मणि दंडमय पयडिय रुण झुणकार
अहे पयडिय रुण झुणकार सारमणि ने उरयाली
कसमस कसमस कसमंत कडिबाधर फाली
झमझम झमझम झमझमंत उरि उरतम चोली
झलझल झलझल झलहलंत(----) पटबोली

1- वही ग्रन्थ पृ० ४३ पद्य ३।

मृगमद मयवट्ट कुसुम भाड सिरितिलउ सुरंगो
नयणहि काजल रेह वयणि तंबोल सुचंगो
कंचण कुन्डल हारदोर मणि मउड सिंगारी
पंचकुमर पठहि गयंदि दूव्वय बयसारी १

वर्णन की ध्वन्यात्मकता काव्य को नादात्मक बनाती है।वसंत वर्णन प्रासादिक बन पड़ा है। यादवों के साथ पान्डुवों का क्रीड़ा विहार वर्णन बड़ा स्वाभाविक है। कवि ने फागु काव्य में नृत्य क्रीड़ा और खेलने की क्रिया को बड़ा महत्व दिया है। अतः फागु को मधु रितु का उल्लास प्रधान काव्य नामदेना सार्थक हो जाता है। गंगा यमुना के अंतराल में जाकर कुलगिरि पर्वत की वनश्री का वर्णन मधुरितु-वर्णन के क्रोड़ में करता है। अंतराल जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग उल्लेखनीय है:-

तउ हथिणाउर सगृग तुल्ल उच्छव मइजाइ
इणि अवसरि किरिकोड धरिउ आयउ रतिराइ
तउ तिहि मास वसंति राइ आइसि पुर लोया
जादव पंडव कुमर सवे खेलइ सुपमोया
खेलइ खेलत रायकुमर अंतेउरि जुत्ता
गंग जवणि नय अंतरालि कुलगिरि संपत्ता
एक सुगिरि रलियावणउ बनय वसंत पहूतो
बनराजी राजी वाणि परिमल थियउ बहूतो
बहे परिमल थियउ बहूत दूव रतिराउ पठावउ
तउ गहगहतउ सयल लोउ ताहि गिरिवाणि आविउ
किवि सुरतर किविवाय केवि तंबूरउ छाहई
किवि चंदन कप्पूर गंधि विधि मंडल माहि
किवि वीणहि नव कुसुम के-वि गुंथइ वर मालहि
किवि वेला रसि रमइ केवि गायहि वरतालहि
किवि नाचइ मनरंगि केवि खेलइसिहि फागों
किवि वार्मंति वसंत नामि पयडियवर रागों

१-प्राचीन फागुसंग्रह डा०सांडेसरा पृ०४४।२- प्राचीन फागु सं०:डा०सांडेसरा पृ०४५-४६।

अलंकारिक वर्णन करने में भी कवि का कौशल स्वाभाविक है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा:-

> अहे पग पग नव नव रंगि रंगि नच्चतइ पाउलि
>
> हाव भाव सिंगार सार नव नट्ट रसाउलि
>
> जिमि नाचणि तरल रंगि लोयण लहकावइ
>
> तिमि तिम माणस कवण मात्र सुर सगुणह आवइ [१]

जिनपद्म के स्थूलिभद्र फागु की भांति ही प्रस्तुत काव्य रसमय है।नागरिकों का राजा का स्वागत, भी तत्कालीन सामाजिक प्रथा है जिसका कवि ने वर्णन किया है। कवि ने ३४ कड़ियों में फागु का छंद राजशेखर केनेमिनाथ के फागु की भांति ही रक्खा है। प्रस्तुत फाग दूहा और रोला छंद मेंलिखा गया है। भास खण्ड सर्ग विभाजन परंपरा का सूचक है। कवि ने रचना का प्रारंभ बिना मंगल चरण के ही किया है। यह जैन रचनाओं में पहला ही उदाहरण है।

प्रस्तुत फाग वस्तुतः १५वीं शताब्दी के महत्वपूर्ण उर्मिकाव्यों से है।

१- वही पृ० ४५।

:: भरतेश्वर चक्रवर्ती फाग[1] :: (अज्ञात)-सं० १५०० के आसपास

भरतेश्वर बाहुबली रास के बाद फागु काव्यों में भरतेश्वर के जीवन पर लिखे आदि कालीन हिन्दी जैन साहित्य में बहुत थोड़ी संख्या में काव्य मिलते हैं। भरतेश्वर चक्रवर्ती फाग ऐसी ही अप्रसिद्ध कृतियों में से एक है। प्रस्तुत कृति भी श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में सुरक्षित है।[2] इसी कृति की एक प्रति गुजरात विद्या सभा बड़ोदा की एक संग्रह पोथी में भी मिलती है।[3]

भरतेश्वर चक्रवर्ती फागु में कवि ने भरत के वैभव का वर्णन किया है। अब तक उपलब्ध भरतेश्वर बाहुलबली रास में बाहुबली और भरतेश्वर का पारस्परिक द्वन्द-युद्ध वर्णन है परन्तु प्रस्तुत फागु में कवि ने भरतेश्वर का ऐश्वर्य वर्णन किया है तथा कवि ने अयोध्या नगरी की राज्यश्री और रानियों सहित भरतेश्वर की वसंत क्रीड़ा का काव्यात्मक वर्णन किया है।प्रारम्भ में कवि ने भरत के भोगों और शुभ भावनाओं तथा विरक्ति और कैवल्य प्राप्ति का साधारण वर्णन किया है। इन फागों के वसन्त वर्णनों में पर्याप्त साम्य है परन्तु भाषा व काव्य की दृष्टि से प्रत्येक रचना अपना वैविध्य प्रस्तुत करती है। कवि ने भरत चरित्र को फागु का रूप दिया है तथा चामत्कारिक वर्णनों द्वारा कृति की रचना की है।फागु का रचनाकार अज्ञात है।यह कृति भी दोहा और रोला छंदों में है और पूर्व वर्णित पुरुषोत्तम पांच पान्डव फागु से पर्याप्त मेल खाती है। पूरी रचना कवि ने ४ भास में लिखी है। कृति के कुछ काव्यात्मक स्थल निम्नांकित हैं। भरत का ऐश्वर्य वर्णन:-

कंचण कंकण नाद छंदिमोहंती खेचर
विहु पासे सुरसाल बालभा ढालइ बहु चामर
वाणी बोलइ मुहुर मिमिल किरि गंगावाणी
राणी करसति सहस चाल रमहि इंद्राणी

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० सांडेसरा पृ० ४७-४८
२- अभय जैन ग्रन्थालय पोथी सं० १४९३ पत्रा नं० २९०-९२
३- प्राचीन फागु सं० पृ० १२।

हयगय बुलसीलवस, जक्ख खेचर जस किंकर,
हास कास संकास जास जसु गाई किंनर
वारु सेली वेस बाल पहिरवि वर चोली
जसु आगइ नाचंति रंगि बहु भंगहि भोली

कवि ने प्रकृति वर्णन और बसंत श्री कावर्णन न करके अपनी प्रकृति जन्य बहुज्ञता का परिचय दिया है। नाम परिगणन कवि ने खूब कराया है। काव्य प्रवाह पर्याप्त है। अनुप्रास, यमक उत्प्रेक्षा सभी दृष्टव्य हैः

आविय मास वसंति संति सो चडय रिवाडी
पेखय चंपय जंबु अंबु तरु फूलियवाडी
विहसिय तिहि मचकुंद कुंद अरविंद अपार
निरमल परिमल महमहए सेवंत्री सार
फूलिय सवि वणराय वाय वायंती लहकइ
चंपउ चंपइ अवर सीम निय परिमल बहकइ
केवइ सेवइ भमर देव देवि जिमरंगि
विमल सरस फल रंगि चंग लागइ नौरंगिइ
चंचल पल्लव हाथि साथिकिरसान संवारइ
कोयल कामणि भमरवाणि सहकार करेइ

--- --- ---

राता के सुय फूलियसोहय रति प्रिय संगि
जाणे नवरंग पाटडी ओढी वनसिरि अंगि
बेडल बेलि अमूल फलु रस मेल्हइ मीठउ
करमकाउं सविकाउ कास मधुकरजन दीठउ
वाकउ बंधि अपार सार चुणि वरणइ कालउ
दाडिम फूल सुरंग अंग विग्रु येच निहालउ
पंवर भंवरि अंवि लेवि कोयल वाजन्ते
बउल सिरी सिरि बंधि अंधिकय ममरमंते

अरुणी करुणी तरुण चित्त उरुणी जिम मोहइ
सिंदुवार सिंदूर पूर किरिवन सिरिसोहइ
कमलिणि कामिणी राजहंस कामिय जिम मागइ
नव पल्लव अहसोग सोग विरहिणि मणि आणइ
कोमल कूपल पहिय चित्ति करवाल ढमालो
राजइ सिरसिज मयणराय फिर फल मयाखिलो १

उक्त प्रासादिक वर्णन के अतिरिक्त कवि ने गंधसार, घनसार, चंदन, कपूर आदि के अंग रास, यौवन विलास आदि सब का वर्णन सरस किया है:-

आरामिय आरामि ताम सामिय बोलावय
विमल कोमल कलिय फूल अमूल अणावइ
कुमसमहार नियकरि करेवि राणी पहिरावय
रयण भमाल विसाल माल सिरि मुकुठ भरावइ २
गंधसार घनसार सार केसर रस केलवि
कारइ अंगहि अंगुराग कस्तूरी भलवि
जोवन लावनु ललिय देह किरि अमिय कटोरी
मव्वाउय मणि रंगिप्रिय गीय गंधव गोरी

इस प्रकारकवि ने फागु काव्य की लाक्षणिक विशेषताओं का वर्णन किया है। भाषा सरल है। शब्दों की तत्समता स्पष्ट परिलक्षित होती है। इस छोटे से उर्मिकाव्य में कवि ने काव्य के सभी प्रमुख तत्वों का समावेश किया है। ऐसे छोटे काव्यों में इन जैन कवियों ने आशातीत भाव भरे है। रचनामैय है तथा फागु काव्यों में महत्वपुर्ण योग देती है।

१- प्राचीन फागुसं०:डा०सांडेसरा पृ०४७ २- प्राचीन फागु संग्रह:डा०सांडेसरा पृ०४८।

वसंत फागु[1] (गुणचंद्रसूरि)-सं० १५०० का उत्तरार्द्ध।

१५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक अत्यन्त आल्हादपूर्ण कृति वसन्त विलास है। इस कृति का शिल्प लगभग अब तक उपलब्ध सभी फागु काव्यों से अलग है। इस फागु की कथा वस्तु न धार्मिक है और न चरित प्रधान। वरन् यह काव्य आद्योपान्त श्रृंगारिक है। कवि ने पूरा काव्य वसंतश्री के वर्णन में ही पूरा कर दिया है। कवि का नखशिख वर्णन भी अभूतपूर्व हुआ है। प्रारम्भ से ही कवि ने श्रृंगार का इतना खुला वर्णन किया है।यद्यपि जैन मुनियों व कवियों में श्रृंगार का इतना खुला वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। यह उनकी साधना व प्रवज्या के नियमों के विपरीत है परन्तु फिर भी कवि ने नखशिख जैसे सांसारिक काव्य का वर्णन नियमों का अतिक्रमण करके भी बड़ा प्रभाविक किया है।

फागु शिल्प के रूप में यह रचना एक मोड़ प्रस्तुत करती है।वसंत वर्णन अब तक यद्यपि फागु काव्य की लाक्षणिक विशेषता मानी जाती रही है परन्तुकेवल मात्र वसंत वर्णन ही फागु काव्य का प्रधान तत्व नहीं था उसके साथ कथा तत्व श्रृंगार रूप तथा नखशिख वर्णन भी मिलते रहे हैं। प्रस्तुत काव्य में कवि ने कथा तत्व की एकदम उपेक्षा की है तथा वसंत फाग में मधुरितु के आने पर संसार के मनुष्यों के सामान्यतः आल्हाद औरउत्साह का चित्रात्मक और उत्कृष्ट वर्णन किया है।

अज्ञात जैनेतर कविकृत वसंत विलास काव्यमें जिस प्रकार वसंत के प्रभाविक चित्र है ठीक इसीप्रकार कवि श्री गुणचंद सूरि ने वसंत फागु में मधुमास की वसन्तश्री, किसलयों का इठलाता स्वरूप, मलयानिल का सौमित्र गान, कोयल की माधुरी और मारका सम्मोहन और नारियों के उन्मत्त और उल्लास गान का सच्चा चित्रण किया है। प्रस्तुत काव्य की प्रति पाटण के केसरबाई ज्ञान मंदिर में सुरक्षित है।[2] प्रति में कहीं लेखनकाल स्पष्ट नहीं है। काव्य का कर्ता गुणचंद सूरि भी बहुत निश्चित नहीं है क्योंकि १३वीं और १५वीं शताब्दी में गुणचंद्रसूरि नाम के दो कवि आचार्य हो चुके हैं अतः इन दोनों में से कृति का रचनाकार कौन है यह

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० सांडेसरा पृ० ५५-५६
२- वही पृ०।

कहना बड़ा कठिन है। परन्तु यह तो निश्चित है कि रचना का कर्त्ता दोनों गुणचंदसूरि में से एक है। कुछ भी हो, दोनों की ही स्थिति असंदिग्ध नहीं है। यों भाषा का रूप, छंदों का प्रकार, शब्दों का चयन और वर्णन की पद्धति के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि यह कृति १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की है। यह भी संभव है कि यह वि०सं० १५०० के आसपास या बाद की रचना हो पर सं० १५०० विक्रम के आसपास की अनुमान कर लेने पर यह कहा जा सकता है कि श्री गुणचंदसूरि १५वीं शताब्दी केउत्तरार्द्ध वाले ही रहे होंगे। जो भी हो कृति, भाषा भाव, छन्द, रस, काव्य और अलंकार सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है। जिसकी उल्लास पूर्ण अनुभूतियों का परिशीलन आगे के पृष्ठों में संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है। कवि ने १६ कड़ियों में ही काव्य कासरस वर्णन प्रस्तुत किया है।

वसंत वर्णन:

अहे फागुण फलीअबीजोरडी पुहतउ मास वसंत
वनिवन तरुअर कूपला केसूक सम अनंत
कामिणि कारिणि भमरलु भमइ माभिम राति
काची कलिय म मोगवी मोगवी नव नवि भांति
चांपा कुली अति कूली परिमलरहिणु न जाइ
वालि ओवनि प्रीय मधु तु तुव हीयडि न माइ
अहे पहिरणि पीत पटोलडी ओढ़णी नवरंग चीर
विरहु तुम्हारी नाहला भवण न सूकि भीर
भरत भरयूं कंचुअ गलि एकावलि हार
घडिअ सकोमल वालडी पाये नेउर भमकार
जडी तरुअर पांखडी ओढ़णी काजलि रेह
बालपणातुं वेहलु बालंभ कांइ अवेवि

नारियों का सौन्दर्य वर्णन और रूप मार्दव कवि ने भाव प्रवण होकर प्रस्तुत किया है। गुर्जर धरती की स्वस्थ सुरंगी सुन्दरियों का कवि श्रृंगार वर्णन करता है:-

कामिणि होडइ अकीय भरि दाडिम कुंलडा दंत

नयपि न देखूं नाहलु मोरु सलूणु कंत
अहे सरवीर सोहि रावली सहिथि पाली सींदूर
आछी ऊमरि पे करि बीडली माहि कपूर
महे मयकंदि हि मन मोहीउ, लहिकइ लाइम माहि
चतुरचुरंगी संदरी गूजिर केरी नारि
पाइ करि सवि मरहठी सोरठी अति सुजाणी
बसंत तणी रसि खेलती प्रीय पति कहिवुसमाणि
मलिय स खेलइ खेलडी सरोवर केरी पालि
पालि मेल्ही पटोलडी कीलि सरोवर माहि
अहे भीनुं कामिनि कंचुउ भीनू नवसर हार
भीनी काजलि रेखडी भीनी कुसुमांची माल
सीप भरी भरि पाणीय छांटिहि बिना छोह
नाह सिरीसी गोरडी दाखि अति घड मोह
अहे हीरडा तइ हरि मूकीउ किजागु सिवराति
गोरी कंठ न ऊतरि सारीदीह नि राति
अहे नइ हरि घइ सारतीउ नवि जागु सिवराति
गोरी कंठ न ऊतरि साकरी ठलक वाति

"कुसुमांची" में कवि ने सम्बन्ध वाचक की मराठी विभक्ति का प्रयोग किया है। फागु के अंत में कवि ने फागु का उद्देश्य लिखा है। जिसमें रंगरेली, बसंत क्रीड़ा और आनन्द की प्रधानता है:-

अहे बसंत क्रीड़ा तीई अतिकरि आचार्ड गुणिनिपुरि
मन रंगि पय सोहि श्रीकुल मंजूरि।

इस प्रकार १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रास काव्यों की तरह फागु काव्यों के लाक्षणिक तत्वों में भी परिवर्तन होने लग गया था। बसंत फागु इस प्रकार के विलक्षण परिवर्तन का प्रमाण है। रचना छोटी है पर सारपूर्ण है। कवि ने मर्यादित शृंगार और बसंतका प्रासादिक वर्णन किया है।

नेमिनाथ फागु[1]

(जयशेखर सूरि) सं० १४६०।

नेमिनाथ फागु नाम से अनेक रचना १५वीं शताब्दी में उपलब्ध होती हैं। बहुधा उन सब फागों की कथा वस्तु में आंशिक अन्तर ही परिलक्षित होता है। सं० १४६० में श्री जयशेखर सूरि रचित नेमिनाथ फागु मिलता है। १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मिलने वाले लगभग सभी फागों में यह कृति उत्कृष्ट और मौलिक है। भाषा, अलंकार और छंद सभी दृष्टियों से यह महत्वपूर्ण है। यह रचना प्रकाशित है तथा प्रबन्ध शैली में लिखी गई है। वर्णन शैली में एक विचित्र प्रवाह है। (जयशेखरसूरि स्वयं संस्कृत के अच्छे आचार्यों में से थे। गुर्जर रासावली में इस समय कृति का सम्पादित पाठ प्राप्त है।)

नेमिनाथ फागु ५७ छंदों में लिखी एक प्रौढ़ रचना है जिसमें कवि की अलंकारिक पद्धति और वर्णनात्मक भावप्रधान पद्धति उल्लेखनीय है। रचना में नेमिनाथ और राजमती का जीवनवृत है। फागु कृति होने के कारण कवि ने वसंत का वर्णन बड़ी सुषमा के साथ किया है। प्रारम्भ में कवि ने गुरु के आदेश का उल्लेख कर नेमिचरित लिखा है। द्वारिका का परिचय कवि ने प्रारंभ में दिया है:-

> दीपई जिणि जिण मंदिर मंदर सिहर समान
> दीसई दिसि दिसि हाटक हाट कहूंक विमान
> धनदिहिं सई हथि थापिय वापी अवर आरांमि
> मणि कण धण संपूरिय पूरिय द्वारका नामि

उक्त उद्धरण में हाट कहूं क विमान प्रयोग उल्लेखनीय है।[2] बालक नेमिनाथ के पराक्रम का परिचय कवि एक ही छंद में दे देता है। उद्धरण की प्रत्येक पंक्ति में अंतर्यमक और आवृत्ति अनुप्रास स्पष्ट है:

१- गुर्जर रासावली -गायकवाड़ प्राच्य सीरीज- सी० १८ पृ० ६५।

२- वही।

संख पुरिइं जिणि पूरिय पूरिय हरिमनि कंपु
टोल टलक्कइ रैवत दैवत मनि आकंपु
सारंग चाप चडविय उविय बाहु नइ प्राणि
हरि हेला ही डोलिय तोलिय तसु बहु प्राण
त्रिभुवन नायक जाणिय माणिय वरु संसार
नेमि न यौवनि परिणय अरणय धरइं दसार
कहइं कहावइ ते जिम तेजि मनोहर नाहु
तिम तिम किमइं न मानइ ए मानइ मनि अति दाहु [१]

कृष्ण की स्पर्धा सेही नेमिनाथ को विवाह के लिए प्रस्तुत कराया गया। कवि ने फागु नाम सार्थक करने के लिए वसंत का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है गीत और नृत्य और तरुणी दल का प्रासादिक वर्णन उल्लेखनीय है:-

रमइ रमापति राणिय जाणिय आपणइ पासि
तीणि छलइं नवि दीपइ ए दीपइ ए ज्ञान प्रकासि
तउ अवसरिउ रितुपति तपति सु मन्मथ पूरि
जिम नारीय निरीखिय दखिण मेल्हइ सूरि
कीजइ अवसरि अवसरि नवरसि रागु वसंत
तरुणी ई दल लीला रस सारस भमइ हसंत
लिपइ सावनिकंदनि चंदनि चंदमि देहु
निज निज नाथ संभारिय नारिय नवलउ नेहु [२]

जब रितु राज का शुभागमन हुआ, यौवन की तूफानी दिशा और प्रमाद उसके साथ थे। सूर्य ने दक्षिण दिशा को इस प्रकार छोड़ दिया जैसे कोई निस्सहाय नारी को छोड़ देता है। कवि ने दक्षिण दिशा की निस्सहाय नारी से तुलना की है। दूसरे पद्य में चंदनिदेह अक्षुद में ज्योत्स्ना की भांति श्वेत शरीर कहकर कवि ने सुन्दर उपमा का निर्वाह किया है।

१- वही ग्रन्थ पृ० ६६

२- गुर्जर रासावली, पद्य ८-९ पृ० ६६।

नायिकाएं क्रीड़ा में वासंतिक प्रमाद का अनुभव कर रही है कवि की अनूठी अभिव्यक्ति देखिए। विरहिणियों के मन की अवस्था बताने वाले दूहा फागु है। उद्दीपन विभाग कोकवि स्पष्ट करता है:-

चंदरे तु गम मूकि म मूंकिमकिरण उबाडु
कोइल बोलि म मानसिउं मांनसिउ ताहरउ पाडु
मनकरि मधुकरि रणझणि नीफणि रहण सुहाइ
मलयानिल क्षण माहरी थाहरी क्षण इकु वाइ
एकली करवकनी कली नीकली गिउ अभिमानु
मांनि अशोक अनोहक शोकह तणउं निधानु
दव जिम दीठइं कवणए करणइ ए हिउं निकामु
मरुउ वरुउ दमनकि मन किहीं नहीं य विश्रांमु[1]

पक्तियों में - हे मलयानिल, बहो जिस तरह तुम्हारे बहने के क्षण है उसी भांति मेरे पास भी मेरे क्षण होंगें।

कवि का प्रकृति वर्णन भी आलंकारिक बन पड़ा है। शब्दों का चयन और आनुप्रासात्मकता रचना के सौन्दर्य और निसर्ग वर्णन की सुषमा में पूरा पूरा योग देती है।

टालइं ए केकीहर दीहर सल जिम सेबु
नीरि निरखिय नीरज नीरज कारई केवु
विरहणि मंन विहंसक किंसुक नहिं ए भ्रांति
विलसई विरह करालिय बालिय इम पकंति
चंपक चंपक कोरक चोर कहइं जिम चींति
दीठा प्रावह मैहव मंड वधारई प्रीति
पाडल परिमल पूवरी धूवरी भमन संवारि
नव रंगिइं बनि चिकसरी असरी जिम न विचारि

१- वही ग्रन्थ, वही पृष्ठ।

वनि वनि विकसई वेउल केउ लगाडई चींति
दीठा ब्राखह मंडव मंढ वधारई प्रीति

--- --- ---

मंजरि मधुरसि मीठीय दीठीय जव सहकारि
तव मह मागि न लागइ ए लागइ विजय विकारि
सामली मन तनु आमली आंमलि फलिय अनेक
वर्षकाल वि मालती माल ती रहीय स एक [१]

जल क्रीड़ा में रानियों का सौन्दर्य और विवाह के समय राजुल का रूप वर्णन भी कृति के सुन्दर काव्यात्मक स्थल हैं:-

गति रसि हंस हराविय आविय मनई मेलि
पइठी जलि हरि रमणीय विमणी करिवा केलि
हरि सींगा मरी पाणीय रांणीय छांटई प्रेमि
ते हिय वरणि सनेउर देउर नाचई नेमि
ते सवि हरि सत कारिय धारिय जिम घुमंत
ताई ओडिय कमलिनी रमलि नीसंक भ्रमंत
धाई धसई ति ऊससई विलसई हसई अथाहु
सधि चडउ संधागली आकली न सकई नाहु [२]

राजमती का शृंगार और रूप वर्णन कवि ने अत्यन्त सरल भाषा में किया है:-

कमला कहई कि सरसति वरसति अमीरस वाणि
मंकणु कुणि किर जाणिय माणिय सारंग पाणि
नेहई नव भव मींचिय दीधिय उग्रसेन राय
कुंअरि भडीय राजीमति सीमति त्रिभुवन माहि
चमकति चालइ य मलपति बगति अहभूखनाल
त्रिभुवन सुन्दर आकुली आकुली कुम सुकुमाल
चिहुं वेवाहिय मंदिरि कुंदि रमई तनु अंगि
केइ लागति धाविय आविय वात परंगि

१- गुर्जर रासावली।पृ० ६७ २- वही।पृ० ६८।

विवाह के लिए तैयार होने पर घर में बनाए जाने के लिए विविध भोज्य पदार्थों का कवि ने क्रमशः वर्णन किया है। घृत दधि गोरस और चंदन आदि सुगंधित द्रव्यों से बने विविध पकवानों का वर्णन देखिए:-

घवल तणी सरघोरणी तोरणी तरुवर पान
गेलि गहिल्ली गोरडी ओरडी भरई पकवानु
सँचियइ घृत दधि गोरस ओरस चंदन हेतु
कीजईफाल फलावली आफली पडइ अचेत
आणइ अनुचर आकुला चाकुला चाउरि पाट
मांडइ मंडपि मांडणी आडणी ऊपरि त्राट
हरिमन हरिखि हकारिय नारिय स्वउं निजजाति
बइसिई बडल हुडाईज भाईय जिमते पांति
पहिलउ नीली सूकिय मूंकिय फलहलितीह
देहीय मोदक मुरकीय फुरकीय जीमतां जीह
खाजा खरहर चूरतां कूट ता भाविउ थालि
जामंइ घृत जिम पाणीय ताणिय लीजइ दालि
भामां वदन संभालणे सालणे बांधी पालि
पीजइ पांणि परिमल निर्मल बहुल झिबालि
मधुर करंबक ऊपरि सुपरि परीसई घोल
मुख सुचि करई ति करविय करविय करई तंबोल (पृ० ७०)

गवाक्षों में बैठकर नेमि को निहारने वाली नारियों का वर्णन कवि ने सजधज के किया है। अलंकारों की आकर्षक यमक योजना, विविध दृष्टान्तों और उदाहरणों से पुष्ट करके कवि ने प्रस्तुत की है। कवि की उत्प्रेक्षाएं बड़ी महत्वपूर्ण है। कारुणिक विप्रलंभ में कवि ने राजुल के विलाप और चूड़ियों के तोड़ने तथा गिर गिर पड़ने झूरने आदि का वर्णन बड़ा मार्मिक तथा प्रवाह पूर्ण किया है:-

झबदेति विरहानलिहिं हा नहि नडिय अपार
प्रियमेल्ह केवे वासरे भासरे बडिय संसारि
हूं नवि देखी आदरी आदरी बापरी बाकमराई

थ

थाकीय दृष्टि पसारियहारिय काजल वाइ

रैरे जोसी जातक बात करी जगर्वच

वाहुया करण कतूहलि हूंहलि हरि दिई अंच

लगन अुधउ आपि या पापिय अम्ह धरबोल

जोतई जापई जाणु बाणु न इइ रे ढोर

कोइय अुटउं साघई बाघई फूटी पालि

बालइ नेमि जुवलिमउ बलिमउ रे ईणि कालि

इम करि कंकण फोडए मोडए नवसर हार

अंगि निरंतर सरवती करवती जिम जलधार (पृ० ७१)

इस प्रकार कवि ने फागु को निर्वेदान्त समाप्त किया है। भाषागत प्रौढ़ता में जयशेखर सूरिका यह काव्य फागु काव्यों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। कवि ने काव्य को गेय बनाने के लिए ही इसमें अन्तर्यमक प्रयुक्त किया है। अंतर्यमक का प्रयोग बसंत विलास एवं जंबूस्वामी फाग और भी मेरुनंदन के पार्श्वनाथ फागु और रत्नमंडन गणि के नारी निरास फागु आदि कृतियों में भी है। इसमें यमक विराम से पूर्व ४ मात्राओं का और विराम के बाद भी ४ मात्राओं का है। बसंत-विलास में भी इसी प्रकार का अंतर्यमक है। यह दूहा का ही एक दूसरा रूप है।वस्तुतः कवि ने काव्य में तेजी गति तथा गेयता के लिए ही इस छंद का प्रयोग किया है। इस प्रकार प्रस्तुत कृति में कवि संस्कृत का विद्वान होने से छंद का रूप बसंत विलास से अधिक विशुद्ध है।[1]

---

1. It seems there is no fixed form for the composition of फागु But the present फागु has an अन्तर्यमक which is found in several other phagus xxxx It was a form having an अन्तर्यमक to give rapidity and effect while signging. The metrical form of 13 Matras. Taking the last syllable to be a long one though the poet has been carefully all through to give a short syllable. xxxx I am inclined to believe that वसन्तविलास has also the same metrical scheme with अन्तर्यमक of the same type. It is the variation on 13,11 Matras. By reducing 13 Matras to 12 Matras with a short syllable at the end of the first यमक work to be followed by a second यमक word a sort of rising rapidity is achieved and the pause effect is minimised. But as remarked previously, the song-effect alone has counted with the poet under the influence of G.S. Poetry of the time to the determinent of each prosodic metrical form. Let me take one stray instance.

इस प्रकार भाषा की सरलता, वर्णन की प्रौढ़ता आलंकारिक योजना सुन्दर दृष्टान्तों सूक्तियों तथा विविध वर्णनों से कवि की काव्यप्रतिभा सर्वत्र परिलक्षित होती है। फागु काव्य के लगभग सभी तात्विक तत्वों का कवि ने विवेचन किया है। भाषा में प्राचीन हिन्दी के रूप देखने को सर्वत्र मिलते हैं। प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती के शब्दों का पूरा पूरा प्रभाव है।

कवि ने कृति में अनेक सामाजिक रीति रिवाजों और बंधनों का सुन्दर वर्णन किया है। वस्तुतः भाव और कला दोनोंपक्षों की दृष्टि से यह कृति अद्यावधि उपलब्ध काव्यों में सर्व श्रेष्ठ प्रबंध है।

In the above three syllables are to be taken as short though in a written line they are long. This poem however has not so much suffered from Prosodic contami nation as बसंत विलास has suffered. Though the pause after 12 मात्रा is intended to be shortened, in बसंतविलास there are cases where it is lengthened and even a syllable for musical effect is put in between. Naturally it depends upon how the song is popular. The more popular a song becomes, the prosodic contamination when it is written by scribes.

The present फागु poem is written by a poet who was a Sanskrit poet of distinction and naturally the putting of metrical form is more preserved in this फागु than in बसंत विलास। - देखिए गायकवाड ऑरियन्टल सीरीज, पुष्प- १८, प्रस्तावना पृ० ३

६ देवरत्न सूरि फाग ६ (देवरत्नसूरि शिष्य) सं० १४९९

देवरत्नसूरि फाग एक सुन्दर ऐतिहासिक खंड काव्य है। यह रचना सं० १९२६ में ही मुनि जिनविजय जी के द्वारा प्रकाशित कर दी गई थी।[1] कृति का रचना काल सं० १४९९ है ऐतिहासिक तत्वों की दृष्टि से भी यह कृति महत्वपूर्ण है। कवि की इस रचना में काव्यात्मक सरसता का तीव्रउत्स प्रवाहित होता दीख पड़ता है। कवि ने लाक्षणिक प्रयोग प्रकृति वर्णन, आलंकारिक योजना, रसात्मकता, और ध्वन्यात्मकता आदि अनेक गुणों से यह कृति १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की फागु रचनाओं की बहुत महत्वपूर्ण कृतियों में से एक है।

देवरत्न सूरि फाग कृति का वस्तु शिल्प भी अब तक वर्णित फागों के कथा शिल्प से भिन्न है। फागु उल्लास मय अनुभूतियों की क्रीड़ा है।यह मधुरितु का शृंगार है। आल्हादकारी भाव व्यंजना में डूबकर जिस तरह मानव अपने सुख दुख के कूल कगारों मेंभूमने और उतराने लगता है उस समय उसकी रागात्मक प्रवृत्तियाँ और अधिक सजग हो उठती हैं और उसकी अभिव्यक्तियों में एक नवोन्मेषशालिनी शक्ति का तीव्र प्रवाह समा जाता है। अतः यही अभिव्यक्ति अनुभूति की उत्कटता लेकर हमारे सामने फूट पड़ती है।

देवरत्नसूरि फाग ऐसी ही रचना है जिसमें कवि यौवन का निखार शृंगार रूप जिनय काम का सौन्दर्य रति यौवन तथा देवरत्न की साधना एवं संयमश्री के मधुर वर्णन किए हैं। भाषा और भाव अत्यन्त सरल हैं। कवि ने इसमें अतिरंजना लेश मात्र भी नहीं की। ऐसा लगता है कि ये पुरातन कवि अपनी अनुभूतियों को यथार्थ शब्द और वाणी दे देते थे। कृति का वर्णन सजग है और रचना का फागु नाम भी सार्थक है।

१- जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय: श्रीदेवरत्नसूरि फागु-पृ०८६ सं०मुनिजिनविजयजी

२- वही ग्रन्थ- भूमिका पृ० ७।

श्रीमुनिजिन विजय जी इस रचना को गुजराती मानते हैं। यों यह रचना आंशिक रूप में प्रारंभिक गुजराती के कुछ शब्दों को प्रस्तुत अवश्य करती है। गुजराती कवि श्री नरसी मेहता के शैली एवं शब्दों आदि का आंशिक साम्य इसमें दिखाई पड़ता है। संभवतः स्वतंत्र रूप से गुजराती भाषा के निर्माण की सीमा रेखा ऐसी ही कृतियों से निर्धारित और प्रस्तुत की जासकती है।

कृति की कथा वस्तु देवरत्न सूरि की काम पर विजय है और कोई विशेष कृति को आद्योपान्त देखने पर भी रचनाकार का नाम कहीं देखने को नहीं मिलता। अनुमानतः देवरत्न सूरि के किसी शिष्य या भक्त द्वारा ही रचा गया होगा। फागु कर्ता सर्व प्रथम जिराउली के पार्श्वनाथ और सरस्वती का नमन करता है और मंगलाचरण के बाद ही चरित नायक देवरत्नसूरि का वर्णन करता है। देवरत्न सूरि अपने समय के जैन आचार्यों में एक ऐतिहासिक पुरुष रहे हैं। ये आगमगच्छ के थे। देवरत्नसूरि पाटण में पेथडकुल में उत्पन्न हुए। इनका बचपन का नाम जावड था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक जैन विद्वान मुनिजयानंद सूरि ने १४९३ में इन्हें अपना पट्टधर बनाया और देवरत्न सूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।[1]

देवरत्नसूरि ने अखण्ड ब्रह्मचर्य साधा। काम की स्त्री रति को ईर्ष्या हुई। उसने अपने पति से देवरत्न को काम विमोहित कर साधना से च्युत करने का प्रयास किया और अपने मित्र बसंत को लेकर वह आया। मोहन और मादन के साथ काम ने क्रोधित हो, देवरत्न पर आक्रमण किए, कुसुम शरों का संधान किया पर अचल साधक नहीं हिला। काम के सारे अस्त्र प्रयोग निरर्थक हुए। काम हार गया, और देवरत्न विजयी।

कवि ने काव्य में अपनी स्पृहणीय शैली में यह बताया है कि किस प्रकार काम पराजित हुआ और रचना के नायक ने अपने यौवन को शुद्ध ब्रह्मचर्य में काट दिया। रूप की दृष्टि से इस ब्रह्मचारी की गरिमा और भी अधिक मुखर उठी है।

१- जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय- पृ० ८९
२- वही पृ० १५४।

मुनिजिनविजय जी ने लिखा है कि- "इस ऐतिहासिक काव्य संचय में कई काव्य साहित्य की दृष्टि से भी उत्तम है और उनको पढ़ने पर कवि की काव्य प्रतिभा उनमें स्पष्ट मिलती है। इस संचय में वि०सं० १४९९ की साल में रचित देवरत्न सूरि फाग है उसमें देवरत्न के सन्यास के बाद में कवि ने उनके ब्रह्मचर्य की दृढ़ता को बड़े ही आलंकारिक सरस वर्णनों से संजोया है।"[1]

कवि का मंगलाचरण ही भाषा की प्रांजलता का प्रतीक है। शुद्ध सरस व पदावली कोमल है:-

त्रिभुवन गगन विभासन दिनयर नयर जीरा उल्हासरे
नाभिय निरंजन भव भय भंजन सज्जन रंजन पासरे
कविजन मानस सरवर हंसीय ससिसीय अविचल मतिहरे
ध्याइ सुधाविइ देवी शारदा शारदा शशि वरकंति रे[2]

बालक जावड के बचपन का वर्णन भी अत्यन्त सरस है। ऐसा वर्णन अन्यत्र देखने को कम ही मिलता है बाल रूप वर्णन बाल सुलभ चेष्टाएं, कोमल व मधुर वाणी आदि कवि के कौशल का प्रतीक है। शैशव में ही बालक के गुणों का ललित वर्णन कवि ने उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में बांध कर किया है:-

निर्म्मल निवकुल कमल दिवायर सायरसम गंभीर रे
अनुदिन नव नव भाईं मनोरथ रयवर शारदि चीर रे
कविजन मानस सरवर हंसीय ससिरीय अविचल मति रे
ध्याइ सु भाविई देवी शारद शारद शशि वर कंति रे[3]

बालक को दीक्षा दी गई रासोत्सव हुए फाग गाये और खेले गए। श्री जयानंदसूरि ने उन्हें दीक्षित किया। पाटण में इस आल्हादकारी महोत्सव का आनंद

१- वही पृ० १५४
२- वही पृ० १५५
३- जैन ऐतिहासिक गूर्जर काव्य संचय: पृ० १५५।

सर्वत्र छा गया। दीक्षित मुनिवर अखन्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर अध्ययन और मनन करने लगे। ऐसे समय में काम की स्त्री रति को ईर्ष्या होना स्वाभाविक ही था। उसने कामदेव को क्रुद्ध कर उभाड़ने का प्रयत्न किया। वर्णन में एक अपूर्व सरलता और मधुरता है उसकी वाणी से उत्तेजित होकर काम अपने मित्र वसंत को साथ लेकर मुनि का मान भंजन करके पहुँचते हैं:-

तिण समइ रति प्रियपति बोली बोलीअल,पहीयली भइ मुनि दीक्षीयका

--- --- ---

तुम भवि मानइ आणतउ

मनि मयण महमडफठउ

तत्खणि मित्र वसंतइ कारिउ,

कोमल वयणे ते तणि वारिउ, तउ गहिउ अपार

कणयर केतकनइ बीजउरी,

पाडल केसर करणी मउरी, तारणी गाईतार

पाटल मकरंद केसर आदि सुगंधित द्रव्यों और सुन्दर नर्तकियों से मुनि को पथच्युत करने का प्रयास किया जाने लगा। ऐसे समय में कवि का वसंत श्री का वर्णन अत्यन्त संभार से किया है। प्रकृति के ऐसे सरस, सरल और कोमल तथा रागात्मक चित्र बहुत कम कवियों ने दीये हैं। प्रकृति वर्णन की आलंकारिकता भी दृष्टव्य है:-

भमरि झझकार तहकइ टहकई कोइल वृंद

वारवि पाडल मल्लिखुया महि महिया मुचकंद

चंपक मारंभ कदलीय मकलीय करइ आनंद

रमइ भमइ बहु रंगिहि रंगिहिं मधुकर वृंद

वनिवनि वाजन वाजई वाजइ मलय समीर

हणिमहि नावइ रमणीय रमणीय नवनव चीर

किंशुक चम्पक कोकिल कठिया तरुवर सार १

कुसम वहीयवरि मवाई रावह रव गुंजार

१- जैन ऐतिहासिक गूर्जर काव्य संचय - पृ० १५५

कवि ने शृंगार के सारे उपादान प्रस्तुत किए हैं। अबलाओं का बल बाँधकर कामदेव चला। साथ में उसका मित्र वसंत भी था। अनेक प्रयास किए गए पर सब निष्फल। निर्वाण रस में डूबे हुए चरित नायक श्री देवरत्न सूरि का कुछ भी नहीं बिगड़ा। मुनि विजयी हुए। जितेन्द्रिय को हराना काम के लिए असंभव था। मुनि की विजयपर अनेक उत्सव हुए। गान हुए पाटण में उनका यश सर्वत्र गा गया। अनेक संघ जुड़ जुड़ कर महोत्सव में शामिल होने अनेक दिशाओं से आये। वर्णन की प्रासादिकता उल्लेखनीय है:-

रचिति अबलाबल सारीखउ, रीसइ चालउ वीर रे
मित्र वसंत प्रमुख निज परिकरि परिकरिउ अति धीररे
आविउ मुनिवर पासइ तेजवि जयतबहउ उस संताप रे
सीयल कवचु तसु देखी अतिघण पणगुण आगम चांपरे
पणगुण आगम चाप ध्यान सुबाण कलम,
सीलंग रथ बक्वे नायक जब कव्वे
भूकहि तिहा मुनि राउ, वइरी टालउ ठाउ
बाण आटोपिई ए, बेल्हई कोपिई ए
तउ गउई अभिमानि, कुक बहिउ सु प्रमानि
केनवि भाजइ ए, सुणहर वाजइ ए
तउ अहमुखि पंथी, हमिउ मयण सुंबंधि,
तउ जिम गाडवए, जिमनवि दीठउ ए
महीं लियउ जयकार शासन हर्ष अपार
सविसुख छावइ ए आमचि भावइ ए
मयननि हउई विवार आयाई मच्छह मार ए अति समरथु ए

--- --- ---

पाटण नैरहि महोत्सव नवनव करई अनेक
दिसि दिसि संघवे आवई आवई धरीय विवेक
पायक माई तिहा नारीय शाकर करि सिणगार
साझवी वत्सल संघपुषे पूजई हर्ष अपार १

१- कहीं।

रचना में अलंकारों की छटा के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते है जिनमें अनुप्रास, रुपक यमक, एवं उत्प्रेक्षा का सफल निर्वाह हुआ है:-

(१) नमिय निरंजन भवभय भंजनं सज्जन रंजन पास रे।

(२) सारद ससि निम्मल गुणगण पंति।

(३) जा गयणांगणि दीपइ दिनकर किरणे रोहिणि कंत रे

जा महि मंडली सुन्दर श्री गुरु गुरुआ गुणि जयवंतरे

(४) त्रिभुवन गगन विभासन दिणयर, निम्मल निजकुल कमल दिवायर

(५) सुणइं सुहिइं सुलक्षण लक्षण सालंकार

नाटक छंदलइ नवनवईं करइं कवित्त सुसार

(६) मित्र वसंत प्रमुख निज परिकरि परिकारिउ अति धीर रे

(७) रमइ भमइ बहु भंमिइं रंमिइ मधुकर वृंद

(८) किंशुक चम्पक कोकलि कलिया तरुवर सार

(९) मुख जिम पूनिम सारद ससिकर कर पंकजि जसु विद्रुम रे

प्रस्तुत फागु में बीच बीच में काव्य शीर्षक के अन्तर्गत पदों का भाव संस्कृत श्लोकों में भी दिया गया है।[१] फागु संज्ञक अन्य रचनाओं में भी इस शताब्दी में इस प्रकार संस्कृत श्लोक देने की परंपरा मिलती है।

फागु की भाषा तत्सम शब्द प्रधान है। कवि पर संस्कृत का पूरा प्रभाव है अपभ्रंश शब्दों की परंपरा गौण रूप में अब भी सुरक्षित मिलती है:- सायर, दिणयर, सोहग, मोहग, नयर, दिवायर आदि शब्द मिलते है पर मयका मद, ससि का शशि, ण का न त्रिहुअण का त्रिभुवन कंचण का कंचन सायर का सागर आदि अपभ्रंश शब्दों के स्थान पर तत्सम शब्दों का प्रयोग मिलता है।

क्रियाओं में ईकार बहुला प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है जो राजस्थानी

१- दे० ऐतिहासिक गूर्जर काव्य संचय: उदाहरणार्थ-
यत्र पुष्पचय व्याजनिभमान् कृत्वा च हैन्य स्त्रियो
मूर्ध्नं बकिम मार्ग मधुमद विधिविमुखैन्य वन
उच्चै कोकिल नाद वादुर्य निभद: कामोत्सवा मोहयन
जित्वा विश्वमयो मदोद्धुर धर: यन्चो यव विमुखे।

या गुजराती भाषा की विशेषता है। साथ ही कवि ने उत्तर अपभ्रंश की उकार बहुला एवं णित्व प्रधान प्रवृत्ति को भी निभाया है:- मोहइ, दीठइ, चालइ, बोलइ, मानिइ, रचावइ, तेडावइ,लोहलई,आवई वरिसिई, झरिसई परिसीलिइ, लीलइ, गुणइ, वावई, खेवइ, लहकई, टहकई, मंगिई रंगिई, गायई नावइ तथा खंदउ नरवउ सागउ मंदउ वरीसु सरीसु जागिउ लागउ, गहगहिउ, महमहिउ, रडउ, जीतउ, सरिसउ, चालउ आदि अनेक शब्द हैं जो नये राजस्थान प्रयोगों की विशेषता सिद्ध करते हैं।

कवि की शैली की समास बहुलता के कुछ उदाहरण देखिए:

(१) त्रिभुवन-गगन-विभासन-दिणयर

(२) नमिय-निरंजन भव-भय-भंजन

(३) कविजन-मानस-सरवर हंसीय आदि।

रे और बे का प्रयोग गुजराती स्वतंत्र भाषा की प्रारम्भिक भूमिका पर प्रकाश डालते हैं। तत्सम शब्दों की तो भरमार है ही।

छंदों के सम्बन्ध में कवि ने स्वयं ही पदों के ऊपर संकेत लिख दिए हैं। संस्कृत श्लोक काव्यम शीर्षक के अन्तर्गत आ जाते हैं। कवि ने चरणों के छंद को रास कहा है। साथ ही अडैउ भी मिलता है जो रास छंद का उत्तरार्द्ध लगता है क्योंकि रास छंद की अन्तिम पंक्ति के अंतिम चरण का अडैउ में आकर प्रथम पंक्ति के प्रथम चरण में ही आवर्तन होता है-

ध्याइस भाविइ देवी शारद, शारद शशि कर कंति रे

अडैया

शारद शशि करंति, निम्मल गुण गणवंति

संस्कृत श्लोकों में एक स्थान पर आर्या छंद भी मिलता है।नये छंदों में कवि ने फागु आंदोलन तथा अडैउ के प्रयोग किए हैं। फागु छंद अंतर यमकवाले दूहों का ही एक स्वरूप है। क्योंकि बार बार फागु काव्यों में प्रयुक्त होने से इस छंद का नाम ही फागु हो गया है। अडैउ:- १५वीं शताब्दी में यह छंद बहुधा अधिकांश काव्य में प्रचलित है। रंग सागर फाग आदि में जिस पर हम आगे विचार करेंगे, में भी

इसी तरह का छंद मिलता है। इसमें मात्रायें १६ १३ होती हैं। पहिले चरण में चरण कुछ छंद व दूसरे चरण में दोहे का उत्तरार्द्ध तथा दो मात्राओं का गीत वर्ण मिलता है।

अंदोला या आदोला - दूहे के ११ मात्रा के सम चरण की आवृत्ति पर अंदोला छंद बनता है। दूसरे चरण में १०, १० मात्राओं का तथा (८ मात्रा २ मात्रा का गीत वर्ण) होते हैं। दूसरा चरण लय में इस तरह प्रथम चरण से भिन्न हो जाता है।

फागु और अंदोला छंद के उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैः-

कल भरि सहकार लहकई टहकई कोइल वृंद

पारधि पाडल मल्लिमहुमा गडिगडिया मुचकुंद

चंदन नारंग कदलीय लवलीय करइ आनंद

रमइ भमइ बहु भंगिइ रंगिई मधुकर वृंद [1]

यह भी चार चरणों का ही होता है। संभवतः रचना के वर्ण्य विषय के आधार पर ही इसका नामकरण किया होगा।

अंदोलनः-शाखणि जय जयकार भट्ट करइ कइवार

श्री संघ वीनवइ वीनइ अविनव य

गंधर्व ऊगइं गान दीजई बहु मिजमान

बाजिम बाजइ मनरंगि नाचई य

संभवतः य ओ रे की आवृत्ति फागु की गेयता बनाये रखने के लिए है। यह भी संभव है कि आंदोला छंद दोहा छंद का ही अपभ्रंश हो। रासु छंद भी फागु में मिलता है। यह छंद तो प्रचलित है ही। यह सवैया देशी छंद है। इस फाग में यह चार चरण का है। कहीं कहीं यह ३ चरण में भी लिखा गया है। पहिले चरण में १६,१६ मात्राओं का चरणाकुल है दूसरे चरण में ११ मात्राओं का दूहा का उत्तरार्द्ध है तथा दूसरे चरण का अंतिम शब्द तीसरे चरण के पहिले शब्द के साथ यमक की सृष्टि करता है।

कृति को कवि ने निर्भीत बनाया है शृंगार वीर और शम तीनों एक ही साथ मिल जाते हैं।

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह- पृ० १५०।

रंग सागर नेमि फागु [1] (रत्नमंडल गणि) सं० १५००

श्री देसाईमोहनलाल ने इस कृति की सूचना अपने ग्रन्थ आपणा कवियो में दी थी पर इसका कर्त्ता उन्होंने भूल से सोमसुन्दरसूरि लिख दिया था।[2] परन्तु वास्तव में इस रास का कर्त्ता रत्नमंडन गणि है। श्री देसाई ने इस रचना को प्रकाशित भी किया था। पर किसी गुजराती पत्र में[3] प्रकाशित होने से यह रचना अद्यावधि अप्रसिद्ध ही रही। १५वीं शताब्दी की उत्तरार्द्ध की यह रचना अत्यन्त महत्वपूर्ण काव्य कृति है जो अद्यावधि अप्रकाशित है। रचना की प्रतिलिपि श्री अगर चंद नाहटा के अभय जैन ग्रंथालय में सुरक्षित है।

देवरत्नसूरि फागु की भांति इसमें भी कवि ने अनुष्टुप वृत्तों में काव्य का संक्षिप्त सार संस्कृत श्लोकों में दे दिया है। पूरा काव्य एक सुन्दर प्रबंध है। जिसमें कवि ने विविध छंदों का प्रयोग किया है। कवि की शैली पर्याप्त स्पृहणीय है। शब्द चयन कोमलकांत है समास बहुला शैली में कवि ने फागु को वास्तव में रंग सागर ही बना दिया है। इसी रचना का नाम श्री देसाई ने नेमिनाथ नवरस फागु भी दिया है।[4] पर रंगसागर नेमिफागु और नेमिनाथ नवरस फागु एक ही रचना है।

नेमिनाथ की कथा कवि ने बाल्यावस्था से ही वर्णित की है। शिवा देवी पुत्र जन्म का उत्सव मनाती है उसका तथा उसका रूप वर्णन किया है। किशोर होने पर कृष्ण की रानियों द्वारा जलक्रीड़ा में नेमिनाथ को विवाह के लिए बाध्य करना, बरात सजना, तथा नेमि का पुनः लौटना पशुओं के करुण क्रंदन से द्रवीभूत होना और गिरनार जाकर दीक्षित होकर निर्वाण प्राप्ति आदि सभी घटनायें पूर्व परिचित हैं। वस्तु या कथा तत्व में कवि ने कोई मौलिकता नहीं रखी है परन्तु वर्णनों में राज्य वर्णन, रूप या नख शिख वर्णन, बरात का, सैन्य का, हाथी घोड़ों तथा बरातियों के बनने वाले भोज्य आदि

१- जैन गुर्जर कविओ: श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई प्रथम भाग पृ० ३२-३३।
२- वही ग्रन्थ, वही पृष्ठ।
३- जैन कान्फरेन्स हेराल्ड पृ० ३-१५ जुलाई अगस्त, १९१५।
४- जै० गुर्जर कविओ: श्री देसाई- पृ० ३२-३३।

सभी का वर्णन कवि ने बड़े ही कौशल के साथ किया है।

छंदों के क्षेत्र में इस रचना का विशेष महत्व है। कृति निर्विवाद है तथा शृंगार और वसंत के रसमय वर्णन सेपरिप्लावित है। जहाँ तक भाग्य काव्य के तत्वों प्रश्न है कवि ने रूप शृंगार, नखशिख, केलि क्रीड़ा और वसंत का सफल वर्णन किया है।

रचना का प्रारंभ मंगलाचरण से ही हुआ है। कविशिवादेवी के स्वप्न रूप और नखशिख का वर्णन करता है:-

सपन लहई हींडोलाटई वाटई पडडीय देवि
गोरीपीन पयोन्हरी ओढरी मांहि सवेवि
पहिलउं पेखई ए, गयवर अपर गईंद उदार
वृषभ कपूर रसामल, सामल-सिंग-सिंगार
चन्द्र धवल पंचानन, कानन-नायक एक
दिठि गज-विहित सुधारसि सार सिरि अभिषेक
वीहर टोडर नवसर नवसर मधुकर वृंद
सुंदर अमिय रसागर, सागर-नंदन चंद
दिणयर तेजि दीपंकउ जीपउ तिमिर अभंग
सोवन दंडि धरी धज कीघउ गहि जसु गंग
मंगल कलस अमीभरउ कंठि धरीठीय माल
पउम सरोवर निर्मलि जसु वलि रमइ मराल
मोतीय-मणि-रयणायर सायर खीर-निहाण
अगमगतुं मणिरयणतुं भवणतुं ठाम विहाण
भासुर पयणि मलमलइ उमटइ रयणमइ रेह
पावक धूमरि परजल करतउ गमगइ मोह

कवि ने नेमिनाथ का रूप स्वरूप और शौर्य वर्णन बड़े लाघव के साथ किया है। नेमिनाथ के अंग प्रत्यंग का गठन विविध उपमानों के साथ किया है। पुरुषों का नखशिख वर्णन बहुधा काव्यों में मिलता नहीं, परन्तु कवि ने नेमिनाथ का इसी प्रकार का वर्णन किया है। वर्णन की आलंकारिक सुषमा देखिए:-

कालिम गुणधर अंग, पेपंचेलि चलता रंग
केलीथंभ कूअलीये, साथल कुअलीए
कटि जिकिइं केसरि लंक, नाभी गंभीर निकलंक,
उरवरि उन्नतए श्रीवच्छ लंछितु ए
कुसुम-कली जिम अंति, आंगुलडी दीसंति,
कणवर कांबडी ए, लांबी बे नेह बांहडीए
संख सरीखउ कंठ, प्रगटिउ गुडिरउ कंठ,
बंध पुरंधरुए अधर ने रंग धरु ए
अधर कुंअर केरा तुडिं, रातुडि बडई प्रवाल,
कंपइ डालिम जीमई, जीमईबिजित प्रवाल
सकल करी निज दासिका नासिकाइ सुक चंच
वदन वरण कर कुअला कूअला पदमए पंच
नेनि लणउ सुहु विपणिम चन्द्र अच्छइ निसिदीस,
दंतनडीं एह उजली फलहलइ कला बत्रीस
लोचन विकसित कमल कि अमल किरणु अणी आल,
है हर, तुज रहि मंडल खंडलकिउ पडभाल
देहा दाडिमनी कुली अधर बे, जाची प्रवाली जिसी
कीजइ खंजन पंखि आंखि हरिसा, चारा जिसी नासिका
चारी वीणिण वामली ममहि बे, बांकी बली बीमडी
काली कि बहुना कूमार किरसे बीजाइ लमला लही।

कवि ने कृष्णनेमि आदि की फागु क्रीड़ा और खेलों आदि का वर्णन किया है। जिसमें कंस आदि का प्रसंग भी आ जाता है। पूरा काव्य तीन खंडों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम खंड में नेमिनाथ की जन्म सम्बन्धी लीलाओं का वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। दूसरा व तीसरा खंड बसंतश्री के वर्णन बराातियों के विविध रागरंग, नारियों के उल्लास और राजुल का विवाह के लिए सज्जा वर्णन आदि आ जाते हैं। साथ ही कवि ने यौवन वर्णन, द्वारिका वर्णन, भोज्यपदार्थों का वर्णन, बरात का वर्णन बड़ी ही कुशलता से किया है। कुल वर्णन इस प्रकार है:-

द्वारका वर्णन-

छाई रयणि अंधकार, झलहलता मणिहार,

हेम धवलहर ऊप कनक कलश धजरूप

मुकटि आवा अंब कारणि आवला अंब,

रंमकि प्रतलिय मणिमयरी पूँली ए

दीसे नगरि युवान सुंदर-जोवन-वान,

अनंग संजीवनी ए घरि घरि पदमिनी ए

मादक सुर वाणी, घूंटा करताली,

जोवन पावडी ए, अलभरी बावडी ए

फाग

विचार रंग समाधीय पाणीय हारि सुरंग,

कावरण जाली मह वारणा बारणा तोरण अंग

नवरंग चंद्रुआ फालीय खेलई नारि,

अवर उपम देखा टलइ नाटकइ हेम भमारि

रयण कांगरे झांकलि रे, पोलिहे कनक कपाट

मणिमय तोरण ऊपरि ऊपरि मणिकल घाट

अटारिउ मंडित उपवन भवन हींडोलित डाल

ऊपरि परिमल-वासित गाजित रवि-करताल

द्वारिका की सुन्दरी कामिनियों का वर्णन भी शृंगारिकता पूर्ण है:-

कामिनी-कमलो-कोकम, जोबम सुंदर-देह,

नेमि कलाकित रमणीय, रमणीपरिणय यह

रास

अवसरि अवसरि रति मधु माधवी, माधवी परिमल पूरी रे

कुसुम आयुध लेइ वनस्पति सजि रही, विरही ऊपरि सुरि रे
मदन रथंगिणि सारथी परिमल-परि मलिया निल वाई रे
सुभग कि मधुकर करई कोलाहल, काहल कोकिल वाई रे।

आंदोल

कोइलि विजयणी मदिरा रूप-नवणी नाटकि मरहठी एवबिवनि बईठी ए
पंथी प्राण पतंग, काल्ह काजल भुंग,
चंपक दीपकूप वनधर-दीप कूप
कुसुमित ए करुणी, जाणे किरि तरुणी
मधुकर-श्रेणिय तेह, सिरि वीणी ए

मधुरितु में नारियों का वर्णन, वसंतश्री का मोहक स्वरूप, कामिनियों का दोहद रूप में वृक्षों पर चरण प्रहार, कुसुमों का विस्तृत सुरम्य लोक, नारियों के कसे वस्त्र, और वसंत क्रीड़ा वर्णन सभी एक से एक स्पृहणीय बन पड़े हैं:-

आवी ए मधु माधवी रति भली, फूलीसवे माधवी
वीली चंपक नीकली मयणनी दीवी नवी नीकली
पामी पाडल केवड़ी मयरनी सूणी जली केवड़ी
फूडे दाडिमि राखड़ी विरहिया दोल्ही हुई राखड़ी

फाग

नारियों का दोहद -

कुलतिल-चरण-प्रहारिइ, मारई कामिनी-लोक,
तिक विकसैंति अनामीया अवामी सहवि असोक
कुच भरि करई परीरंभ, रंभा समाणी नारि
सखि सणि कुसुम रोमांकुर कुरवक धरई अपारि
फूटई कटक्ट उकट फूलि कनकें
त्रिभुवन पंकज मकोपरि, दीपति अति प्रचंड

काव्य

वसंत की जल क्रीड़ा-

ओढी चादर चीर सुंदर कसी, ढीली कसी कांचली
आंजी लोचल काजले सिरिभरी, सीमंत सिंदूरनी
लेई साथिई नेमिकुंवर सवे गोविंद नी सुंदरी
चाली य गिरिनारि डूंगरि गई सिंगारिणी खेलिवा

--- --- ---

वसंत खेलणि साथिई देवर, देवरमणी सब गोरी रे
पहुतली गिरिनार गिरि अंबावनि चंदन बावनी गोरी रे
अनर्ग जंगम नगरा बहुपरि परिणेवा मनावन हारी रे,
ललाट घटित घन पीवलि कुंकुम कुमर रमाडइ नारी रे

--- --- ---

जगमग जगमग झलि झबूकइ
जोलइ झाकइ नीरिहु रिमझिमि रिमझिमि झंझर झमकइ
सुरभि सलिल भरी सोवन सिंगी
केसव सुंदरि सकल सुरंगी, सींचई नेमि सरीरिहु

विवाह वर्णन तृतीय खंड से ही प्रारंभ हो जाता है जिसमें कवि के अनेक काव्यात्मक स्थल दर्शनीय हैं। कवि राजमती का परिचय ही ऐसा देता है:-

माजंती मद मेलि मंथन गति गोरी मुखे आगली
सारी साम सुहावणी सरसती सा दीसती सुंदरी
माणी नेमि-विवाह-कारणि करी कन्या कुलीणी कला
बेटि कुंवरि उग्रसेन कुलनी गोविंदि राजीमती

विविध उपकरणों से सुसज्जित विवाह का मंडाल भी अपनी ही छटा रखता है। वर्णन का कौशल दृष्टव्य है:-

मंडप रचइ विशाल, चंद्र वड़ा चउसाल
मणि मोती चरिया य कीधि सिरी धारिया य
रत्न-वाधिकाधि थंभ, हेम-घटितसिरि कुंभ,
माणिक दीपकहाथ दीपई जड़ा य

इन्द्र-धनुष आकारि, वलिया तोरण बारि,

मणि हीरालीउ, कन बाली ए

संप्रडियाँ अति अणी आल, सुंदर धवल विसाल,

नागर खंडडाँ ए, पान अखंडडाँ ए

कवि ने बरात के लिए बनाई हुए खाद्य सामग्री का क्रमशः बड़ा ही ललित वर्णन किया है:

संप्रडहा रंग सनागर नागर खंडडा पान,

परघल मधुकर धुते करी ते करीई पकवान

मांडीइ मणिमयं भाजन भाजन जिमइ विवाह,

मूकीई पकवान शालिरे दालि रेलिइ घृत मांहि

काव्य

मूकीई पकवान वानि घवला देशाउरी खुंडही

पीली दाली अखंड शालि सुरहुं घी सामुटाँ सालणां

टाढा ढेप दहीप उधरियहुं गंगाजले उजवले

काथे केवडी ए कपूर सरसे तंबोलि पानाउली

दूल्हा नेमिकुमार का शृंगार वर्णन करते समय कवि का कौशल उल्लेखनीय है। साथ ही बरात में यादवों की सज्जा, चंवर छत्र सेवा चंवर आदि का वर्णन इस प्रकार है। इस वर्णन में वधिनों का लूण उतारना भी सामाजिक प्रथा का परिचय देता है।

नेमि वर्णन-

झलकई कुंडल कानि, ससि-रवि-मंडल मानि

मुकुट मनोहरू सिरि सोभाकरू ए

नीलवटि तिलक विसेषा, नयणे काजल रेषा,

चंदनि तंबोलरू, चमि कुंकुम रोलु ए

उहरि नव सरहार, नव झलकार जिम धार,

मणि छबि चीकली ए विवि विधि वीजली ए

मुद्रडी-पंडित पाणि, वीर-वलय भुज ठाणि,
बाहडी बहिरखा ए, झलके विजु परवाए

--- --- ---

थाल मणिमय सादीरे, मोतीमइ बधावई कुंवरु ए
मद्रजातिक धवल मयगिलिसिवादे कुंवरु ए
सोभाग सुंदरु रे चढी जिसिउ हुई पुरंदरु ए
बहिन बालापुठि बइठी लीला लुंण उतारइ रे
दृष्टि-दोष निवारइ रे ऊपरि धरिइं मेघा डंबरु ए

काग
~~~~~

सिरि छत्र मेघाडंबर अंबर स्थापक कंति
बिहुपखि सीकिरि सिरवरि चामर धवल ढलंति
धवल माई धुरि धुलइ धवल हीराउली दंति,
आंगलि अवसर खोलडी खोलडी नाच करंती

यादवों की सजा और बरात के मांगलिक वाद्यों का मौलिक वर्णन देखिए:-

ते गंगानील काला कि डाहा कुराक्ली आ,
सीघल सिंधुआ कच्छआ काश्मीरिया केकआ
टूंका कानिया न क्वाणि पिडुका सुखे पाग मीखला,
ते ते यादव कुंवरा हरखमा खेवी तुरंगोरे चडआ
मोती मंडित मुंडि दंड हरखवा दीवति संकुला
हीराळा काक्कजीवल कड़ी सिंदूर भाळे भला
वाजी सुवर्णावाळ चामर हरे हीरवडी वेलणी
औं नेह मयेन्द्र ऊपरि चडआ चालवि राणा सवे

--- --- ---

गुंजंत गुंजंत भेरि गंभीर सर सरणाइ नीसाण वाजंतिरे
झल्लडि हिडि मां देव दुंदुभि महारवि रंजिरव तुरीय गाजंतिरे
~~~~~

पालरवी तुरीय रथ मयंद अंबरि अंबरी अमन निहाली रे

लग धजा अलंबधी किरिया परघर सघरजान हिय वाली रे

और अन्त में कवि काव्य को निर्वेद प्रधान पर समाप्त करदेता है।राजुल की विरह दशा नेमिनाथ के चले जाने पर अत्यन्त कारुणिक हो जाती है। सारा श्रृंगार फीका पड़ जाता है फूल शूल हो जाते है। सारा श्रृंगार, वैभव और सज्जा उसके लिए दुख का कंटक शयन बन जाता है। निरन्तर विरहिणी नेमि नेमि की रट लगाती हुई उस पर अपना सारा जीवन ही उत्सर्ग कर देती है।नारी का यह सात्विक विरह दृष्टव्य है:-

वीजणे करइ ससीजल वीजन राजमयंति

उपरि ताप निकंदन चंदन रसि सिंचंति

वेहल पाभिय राजलि काजलि कलुषित दृष्टि

विलपति विरह वेभाहती पाडती आसुंअ वृष्टि

पीठई काई बापीयड़ा प्रीयडा विरह-विषादि

प्राण हरे हुं मोरठा (मोरडा) मधुर निनादि

रडई य पडंइ लोटई य मोरइ य केस पास

नमई य नहि मंचि नेउर केउर करि हरि हार

राजलि विरहई पूरिअ पूरिअ अवर कुमार

नेमि निरंतर समरति समरति पति सुखसार

दान संवत्सर देइय लेइय संयम भार,

नेमि करई पमिले सवि देस विदेस विहार

इस प्रकार कवि उक्त उद्धरणों में फागु काव्यके लाक्षणिक तत्वों का मधुर वर्णन कर कृति का फागु नाम सार्थक करता है। कृति का नाम नवरस फागु या रंगसागर फागु पूर्ण उपयुक्त है।कवि ने अपनी अनुभूति की रंगीनियों से काव्य को संवारा है इसमें अपने विविध दृष्टियों द्वारा नया नया रंग भरा है। आलंकारिक छटा तथा रूपक उत्प्रेक्षाएं सुन्दर है। फागु की प्रत्येक पंक्ति में अंतर यमक व श्लेष का आद्योपान्त देखा जा सकता है।

१५वीं शताब्दी की यह कृति दुर्लभ है इसके पाठ का संपादन होना अत्यावश्यक है। नाहटा जी के संग्रह में प्राप्त प्रतिलिपि से लेखक ने इसके अधिक से अधिक उद्धरण इसलिए दिए है ताकि ऐसी कृतियोंका महत्व स्पष्ट हो सके। कृति की प्रवृत्ति धार्मिक तथा उपदेश प्रधान है। अंतनिर्वेदमय है। छंद फागु रासु रासक, अनुष्टुप, शार्दूल विक्रीडत और आंदोला प्रमुख है। इस प्रकार कवि ने १५वीं शताब्दी मे इस रचना द्वारा फागु की परम्परा शिल्प विधि, भाषा, कला, भाव रस, तथा छंद आदिसभी क्षेत्रों में नया तथा मौलिक योग दिया है।

: नारी निरास फागु[1] : (रत्नमंडन गणि)
सं० १५०० का उत्तरार्द्ध

रत्नमंडन गणि की एक और प्रसिद्ध कृति उपलब्ध होती है। कृति की प्रति बड़ोदा के जैन ज्ञान मंदिर के गुजराती विभाग में सुरक्षित है।[2] यों यह रचना जैन सत्यप्रकाश में एक बार प्रकाशित भी हो गई है[3] रचनाकार का नाम स्पष्ट नहीं मिलता पर सुरयण मंडन और रैवतरत्न मन्डनमयूद[4] इन शब्दों के फागु कर्त्ता ने अपना नाम स्पष्ट किया है। रत्नमन्डन आचार्य सोमसुंदर के (तपागच्छ) के शिष्य थे। कृति का रचनाकाल भी बहुत स्पष्ट नहीं है परन्तु १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही यह रचना लिखी गई होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

रंगसागर नेमि फागु की भांति अंतरयमक प्राय वाले छंदों में यह काव्य लिखा गया है। इस रचना में दूहा छंद अधिक प्रयुक्त हुआ है और बीच बीच में कवि ने संस्कृत श्लोकों का वर्णन भी किया है। कवि ने संस्कृत में भी अनेक रचनायें की है।

नारीनिरास फागु की विषय वस्तु देखते यह कृति सबसे भिन्न दिखाई पड़ती है। कवि ने विषय निरूपण की दृष्टि से यह कृति उत्कृष्ट है। जिस तरह वसंत-विलास कृति के वर्णन सुन्दर हैं, काव्यात्मक है, ठीक उसी प्रकार नारी निरास फाग भी काव्यात्मक रचना है। कवि प्रारंभ में ही शृंगारिक की इन्द्रधनुषी सुषमा का वर्णन करता है और अंत में नारी राजमती की असाधारण निराशा का। नारी को परित्याग करने वाले नेमिनाथ के लिए कवि ने राजमती के बड़े स्वाभाविक चित्र खींचे हैं। नारी के इस वास्तव वैराग्य के कारण ही कृति का नामकरण नारी-निरास किया गया है ऐसा प्रतीत होता है।

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० सांडेसरा पृ० ६८-७५
२- जैन ज्ञान मंदिर बड़ोदा, गुजराती विभाग नं० १०५२ की प्रति।
३- जैन सत्य प्रकाश: अंबालाल प्रेमानंद शाह वर्ष १२ अंक ५-६ फरवरी मार्च,१९४७
४- प्राचीन फागु संग्रह: डा० सांडेसरा पृ० ७५।

संस्कृत के श्लोकों पर भी लोक भाषा का असर दिखाई पड़ता है और हस्तलिखित प्रतियों में ये पद अपभ्रंश भाषा में तर मिलते हैं। वस्तुतः ये विषय, भाषा और फागु रचना शिल्प की दृष्टि से इस कृति का वैशिष्ट्य देखा जा सकता है।

कवि का प्रकृति वर्णन, आलंकारिक शैली, संक्षिप्त में सारपूर्ण लिखने की साधना सभी उत्कृष्ट है। भाषा की तत्समता और शब्दों का विशुद्ध रूप स्पष्ट परिलक्षित होता है। निराश राजुल को अंग का सारा सौन्दर्य सारी सज्जा और शृंगार काटने वाला बना। अंग प्रत्यंग के लिए उसमें कोई भी उत्साह नहीं। उसका सौन्दर्य-मूर्छित होकर निर्वेद के चरणों में पड़ा है। इसी तरह संपूर्ण रास में कवि ने नारी की अपने सौन्दर्य व उसके उपादानों का तिरस्कार तथा नैराश्य पूर्ण उद्गारों की अभिव्यक्ति की है इस दृष्टि से पूरा काव्य विरह प्रधान शृंगारिक काव्य है।

राजुल की अपने शृंगार को कोसने की उक्तियाँ देखिए:-

तेह सणु कीजुंअलि जुंअलि पयकमलाहिं,

परिहरिउ जेहिं अकाश रे कायरे भर वनिताहिं

वेणि गमइ नहीं आज हुंआ जमुना जल पूर,

कपलिय नाग निरागहु रागहु बधइ भविहूर

मकरहि चकहि राखड़ी राखड़ी रंग,

ब निरबाणध दीपक हुं वि पतंग

सिंदूर देखी सिरि सुंधरे सुंधरे नयण निमेष,

सब भरि चढी अंबरे लंबरे लमनी रेख [१]

राजुल को सखियों द्वारा अनेक प्रकार का समझाना और राजुल का अपने जीवन, सौन्दर्य तथा अंगों की सुषमा को निरर्थक सिद्ध करना कवि ने सुन्दर दृष्टान्तों उक्तियों और उदाहरणों से पुष्ट किया है।

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० सांडेसरा पृ० १८-१९।

प्रस्तुत फागु की कथा वस्तु इस रूप में एक दम मौलिक है। कवि प्रारंभ से ही शृंगार वर्णन की प्रतिकूल स्थिति राजुल में उत्पन्न कर देता है।

अब तक उपलब्ध फागु काव्यों में यह रचना सबसे उत्कृष्ट और मौलिक है। अभिव्यक्ति के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण देखिए। राजुल के लिए समस्त वातावरण ही काटने वाला हो गया उसकी चतुर्दिक उसे पीड़ा पहुंचा रहा था:-

कामिणि मइरिपि सीगंणि सींगणि पवहि वे जाणि
निका कटाखें सराउली राउली सूंकप ताणि

--- --- ---

तु मन म धरसि अधरम अधर मधुर म विमासि
युवती अंगम विसलय किसलय तिणि देह पासि
विकसित पंकज पाखंडी आंकडी उमय टालि
ते विष सलिलि तलावली सावली पांपिणि पालि
हार मिसिं मुख साम्रु कि वासुकिमुंहइ फुंक
तिणि वीणि करी मइिलीइं गहिलीय चतुर अचूक
नारि लवइ निय कुअंली कुंअली मधुपिहुं वाणि
कुमति करइं सुवडाइणि डायणि मंत्र तु जाणि ¹

नारी राजुल ने अपने सुन्दर नखशिख की बड़ी प्रतिकूल होकर उपेक्षा की है। सौन्दर्य के एक एक उपमान उसके लिए विषमय प्रतिफल देने वाले बन जाते हैं। कवि की अलंकारिकता तथा शांतरस की ओर राजुल की प्रवृत्ति सभी का वर्णन बड़ा उत्कृष्ट है:-

काछिम कंचुक मिसि आपडुं आपडुं कुचगिरिशुंगि
मीतरि करिसि म कायम कायम धरिसि न अंगि
आपणपुं जिणि हारवुं हारवुं यइ निरवेहि
मांडि म पाप पयोधर ओधर रहवा कुछ रेहि
मेखली त्रिवली नर हीन रहीं मन बाणि
त्रिविध कपट मरी रेख बरेख (व) हुइ तिणि त्रिणि
मजम पाटणि कर डाकडी डाकडि ठंकिहिं कीम
इम कि कहइ युवती वय जीम सवे हुइं हीप

बिल जिसी आणिम सुंदरि तुं दरिसिणि निज नाभि
मदन रहइ दृष्टीविष ही, विष घरइ तेह गाभि
वपुविवन्न सुण जाणिम, ताणिम कुचफल तुंबि
देखिम तेह तणी छांहडी, बांहडी डालिम झुंबि
कुरणइ कामिणि कंकण कंकण विणु जिम रंक
करि धरी लिइ रखे सांकिणि, सांकिणी नरगि निशंक
विबसक विषम तलंपडी जांघडी परिहरि बेउ
तुं न पीअ सुण भान, कुवान कु जउ तजई देउ
अणि अगनि सांची रची रची ए परिमूढ
तिम किरि जिम फाफिम दाफिम तिहां तू मूढ
साच वचन ऊगाडी या काडिया जिन मुख सीम
नेउर कुणि पगि लागलां लाग लाख्यां लहई कीम [२]

वस्तुतः कुल ५३ कड़ियों के इस काव्य में कवि ने फागु के शिल्प और कथा तत्वों में नया मोड़ प्रस्तुत किया है। पूरा काव्य ही कवि ने इसी विषम शैली मेंएवं विषम वस्तु में लिखा है। पूरी कृतिनिर्वेदरस में सराबोर है। फाग की प्रत्येक पंक्ति में आंतर यमक व अनुप्रास वर्णित हुआ है।

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य के अद्यावधि उपलब्ध फागों में बिना कथा के यह पूरा काव्य चलता है। कथा तत्व गौण है। नारी के नैराश्य को कवि ने विविध प्रकार से दोहा छंदों में प्रकट की है।नारी का विरोध वर्णन करने में कवि का मन खूब रमा है। तथा इसी तरह प्रकारांतर से कवि ने फागु की विशेषताओं का वर्णन भी कर दिया है। भाषा अत्यन्त सरल और प्रासादिक है।इस प्रकार नारी निराश फाग एक मौलिक रचना है।

१- प्राचीन फागु संग्रह : डा० सांडेसरा, पृ० ७०

२- वही ग्रंथ : पृ० ७१-७४।

§ सुरंगा भिध नेमि फागु § (धनदेवगणि)-सं० १५०२

नेमिनाथ के जीवन पर लिखा १५वीं शताब्दी की अन्तिम फागु काव्य सुरंगाभिध नेमिफाग है जिसके कर्ता धनदेवगणि है और रचनाकाल सं० १५०२।पूरा काव्य नेमिनाथ के जीवन की एक वृहत झांकी प्रस्तुत करने वाला प्रबंध काव्य है। जिसमें कवि ने संस्कृत, प्राकृत और गुजराती या राजस्थानी आदि भाषाओं में लिखा है। कवि ने जन भाषा को प्राकृत काव्य कहा है जिसकी भाषा बड़ी स्पृहणीय तथा प्रासादिक है। १५वीं शताब्दी में फागु काव्य की रचना शैली, विकास, वस्तु तथा फागु तत्वों पर प्रकाश डालने वाला यह अंतिम काव्य है। इस कार्य की शैली से परवर्तीकाल में फागु के विकास और फागु संज्ञक कृतियों की प्रौढ़ता का विश्लेषण अनुमानतः किया जा सकता है। कवि की शैली स्पृहणीय व समासबहुल है। शब्द चयन अत्यन्त कोमल व उपयुक्त है। कवि ने प्रारंभ में मंगलाचरण संस्कृत तथा प्राकृत काव्य की अन्तर्गत किया है।

गेयता प्रस्तुत रचना का प्रधान गुण है। कवि ने रासक, अढैय, शार्दूल विक्रीडित, फाग आदि छंदों में काव्य लिखा है। नेमिनाथ की कथा वस्तु बड़ी प्राचीन है जिसमें कवि ने कोई मौलिक घटना का सृजन नहीं किया परन्तु वर्णन शैली, भाषा और फागु काव्य के तत्वों की दृष्टि से प्रस्तुत रचना बड़ी महत्वपूर्ण है। एक और बात भी यहां ध्यान देने योग्य है और वह यह है कि यह कृति पन्द्रहवीं शताब्दी और १६वीं शताब्दी की फागु कृतियों की बीच की एक सीमा रेखा या कड़ी है। अतः संक्रांतिकालीन कृति होने से इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। भाषा के नये रूप, शब्दों वाक्यों और छंदों के नये प्रयोग सरलता की और भाषा का असाधारण झुकाव आदि सभी तत्वों को दृष्टि में रख इस कृति का मूल्यांकन किया जा सकता है।

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० सांडेसरा- पृ० ५७-५७।

कथारूढ़ि और कल्प कथा परंपराएं(Cycles) भी इस कृति में पूर्णतया सुरक्षित रही है। कथा परंपरा में जिस प्रकार नारी निरास फागु एक मौलिक मोड़ है ठीकउसी प्रकार यह कृति नेमि काव्यों की आदिकालीन परंपरा को मध्यकाल तक ले जाने वाली है। सुरंगाभिध नेमि फाग का उद्देश्य जन साधारण में धर्म के प्रति आस्था जगाना है। यद्यपि कृति शांत रस पूर्ण है परन्तु फिर भी फागु काव्य के लाक्षणिक तत्वों का सफल निर्वाह कर कवि ने कृति की फागुमयता सार्थक की है।

इस फागु की सूचना सर्व प्रथम श्री मोहनलाल देसाई के ग्रन्थ में उपलब्ध हुई जिसमें उन्होंने इसकी प्रति पाटण के भंडार में बताई[1]। पर वहां यह प्रति नहीं है। बड़ौदा के जैन ज्ञान मंदिर में से प्रति उपलब्ध है[2] कृति के अंत में पुष्पिका में धनदेवगणि का उल्लेख मिलता है।

सुरंगाभिध नेमि फागु कुल ८४ कड़ियों में लिखा गया है। इस काव्य की रचना भी अद्यावधि उपलब्ध फागुओं से भिन्न अपने ही प्रकार की है। कवि ने प्राकृत काव्य या काव्य शीर्षक के अन्तर्गत प्राचीन राजस्थानी या गुजराती के शार्दूलविक्रीड़ित छंद में वर्णन किया है। फागु छंद आंतरयमक प्रास का दूहा छंद ही है, और कवि ने इस दूहा को फागु नाम दिया है। अतः दूहा और फाग छंद का अन्योन्याश्रय संबंध स्पष्ट होता है। कवि ने छठे छंद में मिश्र छंदयोजना रखी है[3]

कवि के विभिन्न काव्यात्मक स्थलों के विश्लेषण से उसकी काव्यगत प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। रचना की भाषा सरल हिन्दी है।वर्णन अनुप्रासात्मक है।प्रस्तुत फागु के प्रारंभ में कवि ने संस्कृत के एक श्लोक द्वारा श्री आदि देव प्रभु की वंदना की है और शार्दूल विक्रीड़ित छंद में मां सरस्वती की वंदना बड़े सरस शब्दों में की है:-

---

१- जैन गुर्जर कवियों भाग १ पृ० ३३-३४।

२- जैन ज्ञान मंदिर बड़ौदा गुजराती विभाग नं० ३८२

३- प्रा० फागु सं० डा० सांडेसरा पृ० १५।

देवी देवि नवी कवीश्वर तणी, वाणी अमी सारणी
विदुषा सायातारणी मकवणी हंसासणी सामिणी
वंदा दीपति जीपति सरसती, मईवीनती वीनती
बोलुं नेमिकुमार केलि निरती फागिइं करी रंजती

रासक

सरसति सरसति सुक मति देवी य देवीय हुं जगि सार रे
नील कमल दल सामल जिनवर वरणवुं नेमिकुमार रे
जग रंजण मारणि मयण विहंडण मंडण गिरि गिरनार रे
सुरनर किंनरवर नित वंदित कामित फल दातार रे

प्रारम्भ में कवि ने नेमिकुमार केअवतार का वर्णन किया है। रानी शिवादेवी १४ प्रकार के स्वप्न देखती है। कवि नेमिकुंवर के जन्म का जनभाषा काव्य में बड़ा उत्कृष्ट वर्णन करता है:-

सामी नेमिकुमार यादव जिषिइ, जाअउ सा सोभागीउ
आधी राति प्रभातन्इं सघुइं भूमि सभी उल्हसी
तीणइं कालि अकालि कुल विषला फूल्या फलि या पालुवा
वाया शीत समीर वीर किरि ए ऊगिउ नवउ मानवउ १

रासक

वैमानिक सुरपति ज्योतरपति भुवनिंद रे
साचिव जनम महोत्सव मन धरि करिवा मलिया सवि इंदरे
सुरगिरि उपरि वीर सामल्लि विमलि भरी अ सिंगार रे
सुरवर न्हवण करइं मन रंगिहिं अंगिहिं नेमिकुमार रे

साथ ही कवि ने कृष्ण बलराम आदि कावाव वर्णन किया है। कंस जरासिंधु तथा अन्य यादवों के विरोध और द्वारिकापुरी में निवास तथा द्वारिका की छटा और नेमिकुमार का रविमवि वय कवि ने खूब संवारा है। कवि ने नेमिनाथ के शरीर के अंगों का विविध उपमानों के साथ वर्णन किया है:-

सामीय वयण अनेयम ओपम चंदन होइ,
वीय कलंकीय दीसइसदीसई प तपइन सोई
ममहडी बेउफली आमजी कमलिणी लोचनि जीत
जीभडी अगतगउंजीवन सकिजन बोरइ प वींत

काव्य

दंता दाडिम बीजडा अधर बे जार्वा प्रवाला नवा
दीपइ सुं जल अंखडी कमलीनी जैसी हुई पांखडी
नासा सा शुक चंचडी ममहडी दीसई बेउ बांकुडी
ओठुं कि बहुना, कुमार जमलुं कांई अओपइ नहीं [1]

---- ---- ----

ख्वाई नेमि कुमार दीसई देवकुमार
दिनि दीपता प रतिपति जीवता प

आगे कवि का वसंत वर्णन बड़ा उत्कृष्ट है। आयुधशाला में नेमि का पराक्रम देखकर सभी ने उनका विवाह करने का उपाय सोचा। कृष्ण की रानियों ने उन्हें जलक्रीड़ा में विवाह करने को बाध्य किया। ऐसे ही अवसर पर कवि वसंत का मौलिक उपमानों से सुन्दर वर्णन करता है। ऋतुओं की छटा, काव्य सुषमा व प्रकृति का निसर्ग सिद्ध आलंकारिकवर्णन अत्यन्त प्रासादिक बन पड़ा है:-

इणइ अवनि गनि हरि हरखीकला बाईला वसंत रितु काल रे
वनिवनि मलयानिल परीमलइ करि लिइ मयन करवाल रे
अढार भार वनस्पती प कुसुम सोरीय धरई आनंद रे
रण किमइ भमर कुसुम रचि राता माता मयन मइंदरे [2]

माता मयन मयंद रचि वडिव मयन नरिंद
विरहिआ कमकमइए निसिदिन नवि गमई प

कोअलि करई टहुकरि रतिपति दलि जयकार

वनसवि गहिगहुयाएं परिमल महिमहुया ए

सौरभ की मधुरता से घ्राण रंध्र का परितृप्त होना वनश्री का फैलना, रति मधु माधवी का उल्लास, पाटल का परिमल और भ्रमरोंका गुंजार आदि का वर्णन अत्यन्त सरस है:-

महिकई ए सोवन केवडी केवडी सोड वनमाहि,

पहुती य रति मधु माधवी माधवी फाल न माइ

चंपकली दीसइ ए कली नीकली पीलीय अंगि,

किरि ए रयणि रयदीवीय नवीय करीय अनंगि

दीपई ए राता कणयर दिणयर किरि अवतार

पारधि पाडल रवलि करइ मधुकार

फोफली फणस बीजुरी य पुरीयडा सहकार

कुश लवंग नारंग ना अंगनानई सहकार

(काव्य)

दीसइ केवुअ रूअड़ा करि नवा आव्या सही सूअड़ा

मुरया जे ए मचकंद कंद अमला कामिई करया आमला

देवी केलि फली सवे मन फली, नारी रमंही मिली

फूली दाडिम रायडी कुचि मनई चंपीयनई रायडी [१]

अनेक विभिन्न वर्णनों से कृति की सुषमा में वृद्धि हुई है। वसंत में रानियों का नेमि के साथ जलक्रीड़ा, रानियों के आभूषणों से यौवन का वर्णन, यौवन में मत्त गोपियों का मधुमास खेलना आदि सभी वर्णन एक से एक बढ़कर है:-

नेमिकुंवर देही गई श्रीपति रमइ वनमांहि रे

सोलह सहस गोपी रमि राति रमती ते तिहं जाई रे

१- प्राचीन फागु : डा० सांडेसरा।

पदुमिनी नवयौवना नवरंगी अंगि सुरंगीय नारि रे
रुपि अनोपम उनमद मोहई सोहई सयल श्रृंगारि रे
सोहई सयल सिंगारि वेषि उरग अनुकारि
सिरिवरि राखडी ए रयण हीरे जडी ए

फागु

उरवरि हार एकावली कावली कनकनी हाथि,
रयण कंकण घणु झलकईय झलकई ए मेखला साथि
रमिझिमि रणकइ नेउर देउ रसिउ आलि
नेमिकुअंर नवि भीजइ ए कीजइ ए ते सहू आलि
मरकलडे मन मोहई ए सोहई ए सुरनर इंद,
लोयनि वि चमकावई ए वदनि हरावई ए चंद
वेधवयण सवि बोलई ए डोलइ ए सुखसुर नरिंद
वेगहिं परणेसु मानि न मानिनि भणई जिणिंद

--- --- ---

वेलई माधव मास, माधव सवी गोपी मिली बाउली
लोपी लाज सवे नवे रागि रमई कामी क्रिहिं भूलवइ
बोलई बोल सकाम वाम नवनी छुटी चिडी कामनी
देखी लोक कहई सही अभिनवी ए देवनी मोहिनी

कवि का बारता वर्णन भी अनूठा है। वधुओं का वमन सुगठित है- हाथी घोड़ो सहित बारातों का उल्लासपूर्ण वर्णन दृष्टव्य है:-

ये बाक मय मद्यातिक भला मावई मदिरई बागला
वालंता डिमर्वत पर्वत चिस्या दीसई सवे उजला
हीसंई हयवर नीलडा हरीयडा मैंगाजला सामला
तेडे यादव कुंवरया परवरया तेवीडुकारे वडया

--- --- ---

रासक

चालीय जान जादव वरकेरी भेरी देव बजावई रे
सिरिवरि छत्र चमर सोहावइ आवई देवि बधावई रे

और अन्त में कवि का शांत रस वर्णन और राजुल का रुदन दोनों ही बड़े मार्मिक है। पशुओं का वध होगा यह जानकर नेमिनाथ प्रत्यावर्तन कर गए। राजुल का करुण विलाप अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़ा है-

जाणीय जीव वध जिनवरि मदपरि धरिउ बइराग
धिग पडउ एह संसारनई सार नहीं जिहां राग

--- --- ---

निज वर वलीउ अी जाणीय राणीय राजल देवि
विरह करालीय बालीय ढलीय धरणि तीणई वेवि
शीतल पवनि चंदनि करी करीय सचेत सा नारि
दीन वचन सु जि बोलइ प बोल एकजि अवधारि
नाह सनेह सुं दाखिन दाखिन राखिन देव
तुम्ह विण खण मध राजन राजन भावइं हेव

काव्य

राही नेमि विचिंत चंदवदनी रोइ रहइ कामिनी
कोडइ कंकण वारहार कुमरी त्रूटइनवी नेहरी
हीजइ वेविकरी महाडुखि भरी सोकिई हीयू भावरी
हावई अंमिश्रनंद नाह थरही बोलइय राजीमति

रासक

विरह विछुवति राजमति विलवति जिनपति मुंकीय जाइ रे
सह बनि जिनवर कामिहिं वरसइ वरसइ ईममहिरे
दान देई दीक्षा ग्रहिलीधी कीधी अकह कहाणी रे
नव भव नेहि निवहीय राजीमती राजमति मनिहिं न आणी रे

इस प्रकार कवि ने सरस शैली में पू T काव्य लिखा है। छंदों का सर्वपूर्ण परिचित है। भाषा के लिए भी यह स्पष्ट है कि कवि ने पुरानी राजस्थानी व गुजराती के ठेठ शब्द कहीं कहीं प्रयुक्त किए हैं। शेष सब शब्द तत्सम प्रधानहै। कला और भाव दोनों दृष्टियों से धनदेवगणि के इस फागु का विशेष महत्व है।

इस प्रकार १५वीं शताब्दी के फागु काव्यों में भाषा भाव और अभिव्यक्ति में एक अपेक्षाकृत स्थिरता है।हिन्दी साहित्य के आदिकाल में रसमय उर्मि काव्यों में फागु काव्यों का बड़ा महत्व है।

॥ ४ ॥

चउपइ काव्य

चउपई - काव्य

-:: नेमिनाथ चउपइ ::-

हिन्दी साहित्य के आदिकाल की एक महत्वपूर्ण रचना श्री विनयचंद्रसूरि कृत नेमिनाथ चतुष्पदिका है। यह रचना १४वीं शताब्दी की है और आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में एक धारा विशेष की द्योतक है। प्रस्तुत रचना की भाषा प्राचीन राजस्थानी या पुरानी हिन्दी है।

नेमिनाथ चउपइ या नेमिनाथ चतुष्पदिका का मूल्य धार्मिक है।इस रचना के पूर्व भी नेमिनाथ पर एक और रचना उपलब्ध होती है जो तेरहवीं शताब्दी की एक अप्रसिद्ध राजस्थानी रास रचना है। जिसका नाम नेमिनाथ रास है और रचनाकार श्री सुमतिगणि है। इस रास रचना का प्रकाशित रूप हिन्दी संसार के समक्ष आ चुका है।[1] इसी प्रकार की कई महत्वपूर्ण रचनाओं का संग्रह हमारे सामने मुनिजिनविजय कृत जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय[2],अपभ्रंश काव्यत्रयी[3] तथा प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह आदि ग्रन्थ प्रस्तुत करते है। इन कृतियों के आलोचनात्मक अध्ययन पर यह सरलता से कहा जा सकता है कि भाषा, भाव, रस, छन्द, अलंकार काव्य रूपों तथा पद्धतियों में हिन्दी साहित्य इन राजस्थानी आदिकालीन हिन्दी रचनाओं का ऋणी है। आदिकालीन प्रत्येक कृति अपने ही प्रकार से साहित्य का विश्लेषण करती है।जिनमें साहित्यिक रस है और एक अपूर्व चमत्कार है मात्र धर्म या उपदेश ही नहीं। नेमिनाथ चउपइ भी एक ऐसी ही अनूठी रचना है जिसमें शृंगार, करुण और शान्त एक रस व्याप्त है।

१- हिन्दी अनुशीलन-तेरहवीं शताब्दी का एक अप्रसिद्ध रास-श्री भंवरलाल नाहटा वर्ष ७ अंक १ पृ० ३५।
२- देखिए जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संग्रह-श्री मुनिजिनविजय-प्रकाशन श्री जैन आत्मानंद सभा।
३- अपभ्रंश काव्यत्रयी द्वारा डा०प० गांधी सम्पादित।

कवि श्री जिनपद्म सूरि की इस रचना की नायिका राजुल ने अपने हृदय के राग को गा गा कर रोया है और रो रो कर गाया है। रचना को आद्योपान्त देखने पर ही इसकी मधुरता के आनन्द का अनुभव किया जा सकता है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन भी श्री दलाल ने आज से तीन युग पूर्व ही कर दिया था। अभी एक और विश्लेषण डा० हरिवल्लभ भायाणी ने प्रकाशित किया है।[१] इसमें उन्होंने इसका नाम भी नेमिनाथ चतुष्पदिका दिया है। चउपइ और चतुष्पदिका क्योंकि एक ही छंद के पर्याय हैं अतः इससे रचना के नाम में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। डा० भायाणी ने इसे प्राचीन गुजराती की प्रति माना है, पर प्राचीन गुजराती और प्राचीन राजस्थानी तो दोनों एक ही भाषा थी। गुजराती स्वतंत्र नाम की भाषा का जन्म तो बाद का है जिस पर हमने ऊपर प्रकाश डाला है। डा० भायाणी ने इसके पाठ का आधार प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह का पाठ ही रक्खा है।

आपणा कवियो[२] तथा जैन गुर्जर कवियो[३] नामक गुजराती ग्रन्थों में भी इस कृति पर संक्षिप्त टिप्पणियों का उल्लेख मिलता है पर विस्तृत पाठ इन्हीं उक्त दो स्त्रोतों से हमें उपलब्ध है।

प्रस्तुत आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल में भी थोड़ा अन्तर मिलता है।कुछ स्थानों पर इसका रचनाकाल सं० १३५३ मिलता है[४], कहीं सं० १३५८ मिलता है।[५] श्रीदलाल भी इसका रचनाकाल सं० १३५८ ही मानते हैं।[६] श्री मुनिजिनविजय जी का विचार है कि यह रचना सं० १३३८ की है।[७] श्री स्वामी नरोत्तमदास जी इसे

१- फार्बस गुजराती सभा ग्रन्थावली- ६१-तेरमा चौदमा सैकनां त्रण प्राचीन गुजराती काव्यों- द्वारा श्री डा० भायाणी।
२- आपणा कवियो- श्री ठालचन्द भगवान गांधी।
३- जैन गुर्जर कवियो- श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई पृ० ५ भाग १।
४- देखिए जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस हेरल्ड- पुस्तक ९ पृ० २८२।
५- देखिए श्री दलाल का पाटण के भंडारों के साहित्य पर लेख (पांचवी गुजराती साहित्य परिषद्- निबंध संग्रह)
६- जैन गुर्जर कवियो- श्री देसाई।
७- देखिए डा० भायाणी कृत फार्बस गु०स०ग्र० ६१ पृ० १३।

१३२५ की मानते हैं[१]। जो भी हो इतना तो निश्चित है कि यह कृति १४वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की है अतः इसका काल सं० १३५३ से सं० १३५८ के बीच ही कहीं हो सकता है। इसी कवि का एक दूसरा काव्य उपदेश माला कथानक छप्पय मिलता है। श्री देसाई श्री जिनचंद सूरि को आचार्य मानते हैं और वे अपने ही ढंग से इसका काल निर्णय-जैन गुर्जर कवियों में करते हैं।

इस काव्य की कथा वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है-

"श्यामल वर्ण परम सुन्दर श्री नेमिनाथ का स्मरण कर राजुल(राजमती) किस प्रकार सिद्धि को प्राप्त हुई"- यह एक ही वाक्यकाव्य की मुख्य संवेदना है। इस काव्य में नेमिनाथ के माता पिता और राजुल के माता पिता का वर्णन नहीं मिलता सिर्फ एक स्थान पर उग्रसेन नाम मिलता है।पूरी चतुष्पदिक संवादात्मक रूप में चलती है। पर नेमिनाथ का वृत्त अत्यन्त प्रसिद्ध है।सौरीपुर के महाराजा समुद्र विजय और उनकी रानी शिवा देवी उनके नेमिकुमार। उग्रसेन की कन्या राजमती।दोनों का पाणिग्रहण ठहराया गया। विवाह के लिए धूम धाम से बारात चढ़ी। राजमती ने भी ऐसे पराक्रमशाली, वीर और सुन्दर पति को देखकर अपना अहोभाग्य माना। इधर जब नेमिकुमार रथ पर चढ़कर आ रहे थे तो बाड़े में बंधे हुए अनेक पशुओं को देखा। निरीह पशु करुण क्रंदन और आर्तनाद कर रहे थे। पूछने पर क्यों ही उन्हें पता चला कि ये पशु बारातियों के भक्ष्य हैं तो श्री नेमिकुंवर ने बिना विवाह ही रथ लौटा लिया। उन्हें वैराग्य हो आया उन्होंने दीक्षा लेकर कैवल्य प्राप्त किया। इधर राजमती को भारी शोक हुआ। उसने भी निश्चित कर लिया कि नेमिनाथ के चरणों में ही अब शेष जीवन बिताना है। अभिन्न नवयौवना विरह विदग्धा बन गई। श्रृंगार और शान्त मिले।रति और शम का देखते देखते समन्वय उपस्थित हो गया। अपने विरह को प्रकृतिजन्य संवेदना से उसने बड़ी कठिनाई से काटा। फूल शूल हो गए।

१- नेमिजिणंद फागु री- सम्पादक स्वामी नरोत्तमदास-प्रस्तावना पृ० १४।

प्रत्येक महीने का वर्णन सखी के साथ संलाप सखी का उसे पुनर्विवाह के लिए सिखावन और राजुल का काव्यमय वेश और उसकी एक निष्ठता सभी का सुन्दर विवेचना है। अन्त में राजुल या राजमती नेमिनाथ को कैवल-ज्ञान होने पर गिरनार जाकर स्वयं भी दीक्षित हो जाती है और अपना शेष जीवन साधना और मोक्ष प्राप्ति में उन्हीं के चरणों में काट देती है।

कथा वस्तु छोटी है। इसी संक्षिप्त सी घटना को विद्वान कवि ने बड़े ही संभार से संजोया है। विप्रलंभ, करुण और शृंगार की त्रिवेणी बड़ी ही मार्मिक और विचित्रता की सृष्टि करती है। नायिका राजुल है और प्रतिवादक उसकी सखी जो उसकी हर बात का प्रतिवाद प्रस्तुत करती है। दोनों के इस संलाप में वर्ष का प्रत्येक महीना इसका कारण बनता जाता है। अतः यह रचना बारहमासा है। वर्ष के बारह माह में किस प्रकार प्रकृति उसे विभिन्न विभिन्न रूपों में संवेदित करती है, मार पीड़ा पहुंचाता है, प्रकृति के अन्य उपादान उसे तड़पने को बाध्य करते हैं आदि सभी का बहुत ही मधुर वर्णन हुआ है।अतः इस काव्य को हम संवाद काव्य कह सकते है। चउपइ काव्य की परंपरा अपभ्रंश से ही प्रारम्भ होती है। दोहा तुकान्त छन्द है। अपभ्रंश के दोहा और चौपाई छन्द बड़े लाड़ले है। दोहा ने हिन्दी को तुक प्रदान की। दोहा मुक्तक काव्यों का प्रमुख छंद था और चौपाई कथानक प्रधान छन्द है। अतः चउपइ छंद की परंपरा का उद्भव अपभ्रंश ही है। अपभ्रंश में इस छन्द का खूब प्रयोग हुआ। अतः चउपई कथानक प्रधान काव्यों के लिए प्रसिद्ध छन्द माना गया है।

चउपइ की परंपरा की भांति बारहमासा की परम्परा भी महत्वपूर्ण है। बारहमासा की परम्परा पर आगे के अध्याय पर विस्तार में प्रकाश डाला गया है[1] यहां आंशिक रूप से ही उसका परिचय दिया गया है। वास्तव में बारहमासों की यह परम्परा भी पर्याप्त प्राचीन लगती है। सर्वप्रथम संस्कृत और प्राकृत में ऋतु-रितु,

---

१- देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ का अध्याय ७।

वर्णन के क्रम में इस बारहमासा की कल्पना कर सकते हैं। अपभ्रंश में भी बारहमासा की एक बहुत ही प्राचीन रचना उपलब्ध हुई है। जिसका उल्लेख श्री अगरचन्द नाहटा ने श्री डा० नामवरसिंह के कथन का परिहार करते हुए किया था।अपभ्रंश की यह रचना प्रकाशित भी हो चुकी है।[1] डा० नामवरसिंह का विचार है कि बारहमासा हिन्दी की ही अपनी विशेषता है[2] परन्तु ऐसी बात नहीं है।[3] अपभ्रंश की १३वीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण रचना मिल चुकी है जिसमें बारहमासा का वर्णन है।श्री अगरचन्द नाहटा लिखते हैं कि -वास्तव में इस रचना का नाम बारहमावउं है जो कि रचना के अन्त में लिखा मिलता है और कृति की पहली पंक्ति में भी जिसका निर्देश है।पंडित लालचन्द गाँधी ने भी धर्मसूरि स्तुति के आगे ब्रैकेट में (बारह नावउं दुवादश मास अपभ्रंश) शब्द द्वारा स्पष्ट कर दिया है। अभी तक प्राप्त बारहमासों में अपभ्रंश की यह रचना सबसे प्राचीन है-- और इससे बारहमासा संज्ञक भाषा काव्यों की परंपरा ८०० वर्ष पुरानी सिद्ध हो जाती है।[4] अतः श्री नामवरसिंह की इस बात का सरलता से परिहार उक्त उद्धरण से हो जाता है। स्वयं श्री नाहटाजी के संग्रह में १०० से अधिक जैन कवियों के बारहमासे है जिनमें तीन चौथाई बारहमासे नेमिनाथ और राजमती के स्याराकृत पर लिखे गए हैं। इन्हीं जैन कवियों के ये बारहमासे १३वीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मिल जाते हैं। नेमिनाथ चउपइ या चतुष्पदिका इन बारहमासों में से एक ऐसा ही बारहमासा है।

यहाँ एक और महत्वपूर्ण बात का स्पष्टीकरण आवश्यक दिखाई पड़ता है और वह यह कि डा० नामवरसिंह ने इस नेमिनाथ चउपइ रचना को अपभ्रंश की रचना कहा है और इसका रचनाकाल १२०० ई० लिखा है। जो दोनों ही तथ्य ठीक

१- देखिए हिन्दी अनुशीलन:वर्ष ६ अंक ४, पर श्री अगरचंद नाहटा का-बारह-मासा की प्राचीन परंपरा लेख।
२- देखिए हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग-श्री डा० नामवरसिंह पृ० २१९
३- हिन्दी अनुशीलन वर्ष: ६ अंक ५ में श्री नाहटा का लेख।
४- वही, पृ० ४०।

नहीं है। अपने कथन की प्रामाणिकता में वे लिखते हैं कि-नेमिनाथ के चरित पर जो दूसरा अपभ्रंश ग्रन्थ प्राप्त है वह है जिनचंद सूरि (१२०० ई०) की नेमिनाथ चउपइ[१]। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। ऐसी रचनाओं को घोर अपभ्रंश नहीं कहा जा सकता। उनकी भाषा का रूप परिवर्तन तो स्वयं उन्हीं में स्पष्ट रूप में विद्यमान है।यह रचना पुरानी हिन्दी या प्राचीन राजस्थानी है तथा आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य की एक अत्यन्त प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण कृति है। क्योंकि भाषा के रूप तथा अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर यह सरलता से निर्णय किया जा सकता है कि यह आदिकाल की हिन्दी जैन राजस्थानी कृति है जो १४ शती के पूर्वार्द्ध की है[२] गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री केशवराम काशीराम शास्त्री का मत है कि -पूर्व रचित बारहमासी काव्य नहीं मिलने से नेमिनाथ चतुष्पदिका को ही सर्वप्रथम बारहमासा माना जा सकता है[३] परन्तु उक्त रचना जो श्री नाहटा जी ने प्रकाशित की है बारहमासा की परम्परा को पूर्णतया स्पष्ट तथा तद्गत लगभग समस्त भ्रमों को निर्मूल सिद्ध कर दिया है।[४] अतः अब इस तथ्य में कोई संदेह या शंका करने की गुंजायश नहीं रह जाती।

प्रस्तुत बारहमासा एक विरह काव्य है जिसमें राजुल या राजमती नायिका के चरित्र की परम निष्ठा सिद्ध होती है। राजुल संतप्त होती है विरह उसे अनेक रूपों में कुराता है और नारी अपने मन की बात को अनेक प्रकार से कहने का प्रयत्न करती है पर अन्त में वही उसे "सिद्धि मार्ग की बाधा नारी" का संकल्प स्मरण हो आता है और वह पुनः उसी प्रकार विकल हो जाती है, पर उसकी इस

१- देखिये- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग-नामवरसिंह पृ० ३१९ नवीन संस्करण- १९५४।

२- देखिए नेमिनाथ चतुष्पदिका-फार्बस गुजराती ग्रन्थमाला ६१ डा० भायाणी सम्पादित पृ० १३।

३- देखिए आपणा कविओः श्री केशवराम काशीराम शास्त्री पृ० १७७।

४- देखिए हिन्दी अनुशीलन- वर्ष ६ अंक ४ः श्री नाहटा जी का लेख पृ०४३-४६।

विकलता में संतोष है। बड़ी विचित्र स्थिति है उसकी।पर ४० छंदों की इस रचना में जीवन का एक स्वस्थ दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। यद्यपि सखी राजुल को अन्यत्र विवाह का लोभ बारबार देती है, यौवन का उत्स राजुल में शत शत धाराओं में राशि राशि उद्वेग के साथ प्रवाहित होता है पर नारी ने जिस एक पुरुष को एक बार मन में वरण कर लिया पुनः वह अन्य किसी की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखती। अपने संकल्प में शिथिलता लाना भारतीय नारी के आदर्शों के विरुद्ध था।

बारहमासा बहुधा वर्ष के किसी भी महीने से प्रारम्भ हो जाता है। यों सामान्यतः पति के वियोग के पश्चात् ही इसका प्रारम्भ प्रत्येक महिने के आधार पर किया जाता है।संदेश-रासक का षड्रितु वर्णन ग्रीष्म से प्रारंभ होता है और बीसलदेव रास का बारहमासा कार्तिक से प्रारम्भ होता है क्योंकि नायक पावस में प्रवास नहीं ही करते। पर हमारी आलोच्य रचना के नायक ने तो न सर्दी देखी न पावस। उसे तो शाश्वत प्रवास करना था। नेमिनाथ के इस अप्रत्याशित प्रवास ने अभिन्न-यौवना राजुल की पलकों में सावन ही घोल दिया और यह बारहमासा श्रावण से ही प्रारम्भ होता है- रिमझिम रिमझिम मेह का बरसना, मेघों की कड़कड़ाहट और बिजली का भभकना कोमल नारी के सुकुमार हृदय को कंपा देता है- बिजली राक्षसी है, काट खायेगी इसेः-

> श्रावणि सरवणि कडुयं मेहु गज्जइ विरहि रि झिज्जइ देहु
> विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव, नेमिहिविणु सहि, सहियइ केम ?[1]

और इसी प्रकार श्रावण मास सेप्रारम्भ होकर यह विरह वर्णन क्रमशः पुनः असाढ़ तक देता है।

१- नेमिनाथ चतुष्पदिका- प्राचीन गुजराती ग्रन्थमाला- श्री डा० भायाणी पृ० २ छंद २।

नेमिनाथ चतुष्पदि का पूरा काव्य उत्तर प्रत्युत्तर शैली में चलता है। अतः कवि की यह नाटकीय संवाद योजना अत्यन्त सफल हुई है।राजुल का संवेदित होकर पूछना और सखी का उसे तत्काल सान्त्वना देकर प्रत्युत्तर देना किसी मधुर नाटकीय अभिनय भंगिमा का परिचय देता है। दोनों अभिनेत्रियों का यह पारस्परिक संवाद और उसमें डूबा हुआ राजुल का मन किसी भी सहृदय नारी की मुख्य संवेदना बन जाती है और उसके शोक, उसकी वेदना और आंसुओं का साधारणीकरण सहृदय दर्शक या श्रोता को स्वाभाविक रूप में ही हो सकता है:- उत्तर प्रत्युत्तर का यह क्रम किसी भी छन्द में देखा जा सकता है:-

राजुल:

कात्तिगं खित्तिगं उगइ संझ
रजमति खिझि हुई अति झंझ
राति दिवसु अछइ बिलन्त, वलि वलि दयकरि दयकरि कन्त[1]

(कार्तिक में क्षितिज पर उगती हुई सांझ (अर्थात् (कृतिकायें) और राजमती का क्षीण होकर अत्यन्त व्याकुल हो जाना व दिन रात विलाप करना- हे प्रियतम। फिर आओ फिर आओ दया करो। दया करो।

कार्तिक में क्षितिज परसंाम्भ का उगना, बिजली का राक्षसी बन कर काट खाना, तथा वृक्षों का भड़ते हुए पत्तों के रूप में आंसू बरसाना, आधुनिक काल के छायावादी प्रयोगों की याद दिलाता है।

नेमितणी सखि।मुकि न आस,
कायरु मगुगउ सो घरवास
इमइ इयी सनेहल नारि बाइकोई छंडवि गिर नारि[2]

(हे सखी।नेमि की आशा छोड़ो वह तो कायर था जो गृहस्थाश्रम को छोड़कर पलायन कर गया। नहीं तो कोई इस प्रकार की स्नेहिल नारी को छोड़कर गिरनार जा सकता है ? (असम्भव)

१- नेमिनाथ चतुष्पदिका-फार्बस गुजराती ग्रन्थमाला-डा०भायाणी छंद ११
२- वही, छन्द १२।

और राजुल पुनः प्रत्युत्तर देती हैः-

राजुल-

काहउ किम सखि,नेमिजिणंदु।
जिणि रिणि जित्तउ लक्खु नरिंद
कुरहि सासु जा नासिकहि नास
ताम न मिल्हउं नेमिहि आस

(हे सखि,जिस ने रण में अनेक नरेन्द्रों को जीता ऐसे नेमि जिनेन्द्र कायर कैसे हो सकते हैं। जब तक नासिका में श्वास चलती रहेगी तब तक मैं उनकीआशा नहीं छोड़ सकती)

और इसी प्रकार उत्तर प्रत्युत्तर शैली की मधुरता में सम्पूर्ण काव्य वर्णित हुआ है।

नेमिनाथ बारहमासा विप्रलंभ श्रृंगार का रंग-दीप है जिसकी नायिका ने प्रियतम नेमि के पथ में पलकें बिछा रखी है। आंसू पाद प्रक्षालन के लिए है रूप और यौवन सम्मोहन (chloroform) है कामनाएं और हृदय अर्घ्य एवं आत्मसमर्पण है,कटाक्ष और मुग्धता काम के इंगित है पलकों में बंद कर उसने प्रियतम को मकरन्द भरे राज पथ पर अभिमान करते उतारा है उसे देखा है। सहसा एक घटा उठी और चन्द्रमा को काले बादलों ने ढंक लिया। नायिका बारहोंमास टकटकी बांधे देखती रही, चांद न निकला, न निकला। पलकें थक गईं आसव से यौवन घुल गया। विरह का प्रचण्ड आक्रमण। यौवन की मादक गंध। प्रकृति की क्रूर दृष्टि।मार का सम्मोहन के [illegible] का संधान। अकेली और भोली नायिका राजुल।-- पर -- पर राजुल को [illegible] और लज्जा के बंधनों ने कस के बांध लिया था। उसके सुन्दर चरित्र में [illegible] कुछ ठेस भी नहीं। पलिकों के आंसू आंखों में ही अटके रह गए। न जाने [illegible] बाद विरह विदग्धा सब भूल गयी याद रहा केवल नेमि--।

[illegible] और प्रियतम भी ऐसे कठोर ऐसे निर्मम कि राजपथ से ज्योत्स्ना की [illegible]कलियों में नाचती हुई यौवन की सुषमामयी प्रेमणीय दो कोमल

कोमल सी सोई सोई सी आंखों में एक बार भी झांका तक नहीं। पशुओं का करुण क्रंदन नेमिनाथ को निर्वेद निष्पन्न कराने में पर्याप्त था। साधक जंजाल छोड़कर भाग चला- श्रृंगार छोड़ गया, और निर्वेद ले गया और राजुल रोती रही रोती रही, यौवन और सौन्दर्य में आंसू के मोती पिरोती रही।

वास्तव में राजुल का विप्रलंभ शुद्ध विप्रलंभ है जिसमें एक अनूठी सात्विकता है उसके आंसुओं में मर्यादा की मुस्कान है चरित्र की आन है और सौन्दर्य की गरिमा है। अश्रु और रुदन, हास और क्रन्दन,यही विरासत में उसे मिले हैं। शरीर में कहीं अंगताप नहीं। बिहारी की नायिकाओं की भांति लू चलना और गुलाब की शीशियों के सूख जाने की अंश मात्र भी अनुचित नहीं, सूरदास की गोपियों की भांति- मधुबन तुम कत रहत हरे वह नहीं कहती। पद्माकर की विरह बालाओं की भांति -"ऊधो यह सूधो सो संदेसो कहि दीजो जाय, अबके हमारे वहां न फूले बन कुंज है किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की डारन पै डोलत अंगारन के पुंज है"- भी राजुल नहीं कहती, उसके विरह में तो भारतीय नारी के आदर्श की पावनता है,उत्कृष्टता है, सारी आग व उन्माद मन की पीड़ा में ही डूब गए है। उद्वेगों का सागर और आंसुओं के स्रोत। उसके विरह में मैं तो प्रेम दीवानी और दरद दीवानी मीरा की वह राम दुहाई पड़ती है-

अंग अंग व्याकुल भई मुख पिय पिय बानिको-

अंतरवेदन विरह की वह पीर न जानी हो-

और वह भी बिना मिले, मिलन की कोई आशा नहीं।अतः बारहमासा में श्रृंगार के विप्रलंभ का उत्कृष्ट वर्णन न हुआ है।राजुल की यह वेदना विश्व के नारियों का अर्ध बन सकती है।

राजुल जब स्वामी स्वामी या नाह; या नेमि नेमि करती है तो सखी उसे मुड़ कर् कर डांटती है-

नेमि नेमि तू करती मुद्धि

कुवलय नाहम नाथिसी दुद्धि

पुरिस रयणु भरियउ संसारु
परणि अनेरउ कुई भत्तारु [1]

(हे मुग्धे।तू व्यर्थ ही नेमि नेमि करके अपनी सुध खोती है। यौवन बीता जा रहा है संसार पुरुष रत्नों से भरा पड़ा है और कोई वर कर ले)-

राजुल कितना सुन्दर उत्तर देती है:-

(हे सखी,तू बहुत भोली है, गंवार भी है नेमि के होते हुए किसी अन्य को प्राप्त कर क्यों संवेदित होऊंगी।क्या कोई गजवर प्राप्त कर गधे की सवारी कर सकता है ?)-

भोली सउ सखि,खरी गमारि, वरि अच्छंतइ नेमि कुमारि
अन्नु पुरिस कुण अप्पणु नडइ? गयवरु लहिउ कु रासभि चडइ? [2]

अतः स्पष्ट है कि विप्रलंभ का सफल निर्वाह है। शृंगार के वियोग पक्ष को कवि ने सफलता से संभाला है। कहीं कहीं स्थल बड़े ही करुणाजनक हो जाते हैं। राजुल के आंसू सबका हृदय हिला देते हैं:-

भादवि भरिया सर पिक्खेवि स-करुण रोअइ राजल देवि
हा,एकल्ही मइ निरधार किम उवेखिसि करुणासार?

(भाद्रव में ताल लहराने लगे राजुल करुणापूर्ण हो रुदन करने लगी। हाय, मुझ अकेली को सम्बलहीन छोड़, हे करुणासागर,, तुमने क्यों उपेक्षा की?

सखी कहती है- भणइ सखी राजल, मन रोइ नीठुरु नेमि न अप्पणु होइ
सिंचिय तरुवर परि पल्लवंति गिरिवर पुण कउ (?) ठेराइंसि

(सखी कहती है- हे राजुल रो मत।निष्ठुर नेमि अपना नहीं हो सकता।वृक्ष का सिंचन करोगी तो सुन्दर किसलय निकलेंगे, परन्तु पर्वत तो उल्टे कड़े ही पड़ेंगे)-

राजुल का विश्वासमूलक उत्तर सखी को कितना संतुष्ट कर देता है:-

१- नेमिनाथ चतुष्पदिका- श्री भायाणी,पृ० ३ छंद १८।

२- वही, पृ० ३ छंद १९।

संवहु सखि बरि गिरि भिज्जंति किमइ न भिज्जइ सामल कंति
घण बरिसंतइ सर फुट्टंति सायरु(?) पुणु घणु ओहट्ठु लिंति [१]
(सब सखी पहाड़ भीजे तो भले ही भीजें पर श्यामल कांति कन्त कभी नहीं
पसीज सकते। उनका निश्चय अटल है।मेघ बरसने पर ताल तो फूट जाते हैं
पर समुद्र बादलों की ओटें लेते हैं)।

इस प्रकार करुण रस का आत्यंतिक विरह नहीं होने से यह रस गौणरूप में ही निष्पन्न हुआ है। इस बारहमासा का नियामक विप्रलंभ शृंगार है सारी संवेदना कवि नायिका के मुंह से स्पष्ट करता है। नायक निकट हो तो संयोग सुखद, पर वह तो दूर है बहुत ही दूर और इसी विरह संवेदन को कवि मूर्त रूप में संवारना चाहता है। उसमें राजुल के आंसुओं का रंग भरना चाहता है।

प्रकृति वर्णन नेमिनाथ चतुष्पदिका में बड़ा ही सुन्दर हुआ है। प्रत्येक छंद में प्रकृति के वर्णन को कवि ने अर्थ के अलंकरण या अर्थान्तरन्यास द्वारा संपुष्ट किया है स्वाभावोक्तियां स्थान स्थान पर सुषमा लिए हैं। श्रावण में विद्युत का झबकना मेघों का गर्जन, राक्षसी की भांति विद्युत का काटना, भादव में सरोवरों का लहराना, आसोज में आंसुओं का प्रवाह, चंद्र और चंदन की हिमानी गोद का दहकती आग हो जाना, कार्तिक और मार्गशर में कृतिकाओं का उगना और बालाओं की प्रियतमों की प्रतीक्षा, पौष और माह में काम का उद्वेग और हेमन्त की तीव्रता और आक्रमण फागुण और चैत्र में वृक्षों के पत्तों से आंसू झरना और रितुराज के आगमन पर कोयल की कूक (जिसको नायिका ने "कवि कंपि कोयल टहका करइ " कहा है) बैसाख में वनराजि का फूलना, मलयानिल का चलना, और ज्येष्ठ में सूर्य के प्रचंड का आतप और नदियों का सूख जाना और पुनः आषाढ़ की गाज बीज, (गर्जन और विद्युत का चमकना) सभी का सुन्दर वर्णन है। पृष्ठ-भूमि से लेकर आलंबन,

---

१- नेमिनाथ चतुष्पदिका- डा० भायाणी - पृ० ४ पद १८-१९।

उद्दीपन अर्थात् प्रस्तुत अप्रस्तुत सब रूपों में प्रकृति का वर्णन हुआ है। प्रकृति का उपदेशात्मक स्वरूप भी दर्शनीय है। कहीं कहीं मानवीय रूप में भी प्रकृति वर्णित है कहीं उसकी रूपकात्मक नियोजना है। कुछ उदाहरण एतदर्थ पर्याप्त होंगे:-

(१) उद्दीपन व आलंबन रूप में:-

१- झिज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव, नेमिहिं विणु सहि सहियइ केम ?

२- करितग छिरिग उगइ संभ

३- वणि वणि कोयल टहका करइ

४- माह मासि माचह हिम-रासि

५- वइसाहक विहसिय वणराइ

मयण मित्तु मलयानिल वाय

६- दहई चंदु चंदण हिम सीय [1]

(२) उपदेश रूप में- एवं चित्रात्मक रूप में-

१- मगसिरि मणुगु पलोअइ बाल इम परिपमणइ नयन विमाल

२- जुइ सखि मासठ मास वसंतु इणि खिलिज्जइ, अइ हुइ कंतु

३- सखी कुक्ख बीसरिया घणइ संमलि प्रगरउ किम रूप भणइ

४- घण वरिसंतइ सर फुट्टंति सायर पुणु घणु ओहट्ट लिंति [2]

(३) मानवी रूप में और रूपकात्मक रूप में:-

१- विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव

२- फागुण(?) वागुणि पन्न पडंत, राउल दुक्खि कि तरु रोयन्ति

३- करितग छिरिग उगइ संभ

४- भादव भरिया सर पिक्खेवि व कमल बेसइ रायल देवि

बिजली का राक्षसी की भाँति झबकना, कार्तिक में क्षितिज पर साँझ का उगना, और फागुन में पेड़ों का रोना और पत्तों के आँसू झरना आदि समस्त

१- नेमिनाथ चतुष्पदिका : श्री मायाणी पृ० ३ पद २, ११, २६, २०, २९, ८

२- वही ग्रन्थ पृ० ३।

रूपों में प्रकृति का सफल वर्णनहै। प्रकृति के किस प्रकार सरल सरस चित्र खिंचते चले जाते हैं यह दर्शनीय है।

काव्य समाप्ति पर कवि ने शान्त रस की सृष्टि की है यद्यपि पृष्ठभूमि के रूप में निर्वेद का आद्योपान्त कथन होता है पर अंतिम छन्द में ही शान्त स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। कवि को शान्त और निर्वेद में सारा विप्रलंभ बदलना भी था और बारहमासा काव्यों की परम्परा के अनुसार समाप्ति पर नायक और नायिका को मिलाना भी था और अपने लक्ष्य धर्मोपदेश की पूर्ति भी करनी थी अतः इन्हीं उद्देश्यों से उसने शम की सफल व्यंजना की है। राजुल का सारा सौन्दर्य यहां और भी सार्थक हो जाता है जहां उसके विरह चरम परिणति नेमि के चरणों में आकर दीक्षा लेने में होती है- और इस वर्णन को कवि ने अधिक मासु नाम देकर पूरा किया है।

अधिक मासु सवि मासहि फिरइ छह रितु-केरा गुण अणुहरइ
मिलिवा प्रिय ऊमाहुली हुअ सउ मुकलाविउ उग्रसेण-धूय
पंच सखी-सइ जसु परिवार प्रिय ऊमाही गइ गिरिनारि
सखी सहित राजल गुण राशि लेइ दिक्ख परमेसर पासि [1]
निम्मल केवल-नाणु लहेवि सिद्धी सामिणि राजल-देवि
रयणसिंह सूरि पणमवि पाय बारह मास पभिणा मइ भाय।
नेमिकुमर सुमरवि गिरनारि
सिद्धी राजल कन्न कुमारि [2]

इस प्रकार राजुल का अंतर्मिलन कवि ने निर्वेद से कराया है। उग्रसेन की पुत्री ने प्रियमिलन को उत्कंठित हो पिता से अनुज्ञा मांगी और ५०० सखियों सहित राजुल ने गिरनार जाकर दीक्षा ली और इस प्रकार स्वामिनी राजुल देवी निर्मल ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हो गई। वही नेमिनाथ जैन समाज के पूजनीय २२वें तीर्थंकर हुए।

जहां तक छंद निर्धारण का प्रश्न है ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है कि यह

१- नेमिनाथ चतुष्पदिका - डा० भायाणी पृ० ४ पद ३८-३९।
२- वही पृ० १-४।

चौपाई छंद है।अपभ्रंश के इस छंद को कवि ने राजस्थानी मैंसफलता से संभाला है।
डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो आज से बहुत पूर्व ही चौपाई का सम्बन्ध अपभ्रंश के अडिल्लाह छंद से स्पष्ट किया था।[1] अतः यह यथार्थ है कि चौपई का सम्बन्ध उक्त छंद से है। इस छन्द के एक चरण में १५ मात्रायें होती है और तुक के अन्त में क्रमशः गुरु लघु (ऽ।) आते है। यह चउपई व चौपई परस्पर पर्याप्त समानता रखते है। नेमिनाथ चतुष्पदिका की इसी चउपह को हिन्दी मैंजायसी तुलसी आदि ने अपनाया है। ज्ञात होता है कि यह छन्द पहले चौपई रहा हो और इसके गेय स्वरूप ने ही इसे चौपई से चौपाई कर दिया हो। अनुमानतः इसके लघु के गुरु हो जाने में अधिक गाया जाना ही कारण हो सकता है। जो भी हो, चौपई छंद स्पष्ट है। चतुष्पदिका चौपई का शुद्ध रूप है और यह मात्रिक न्द है।

डा० भायाणी ने इसके छंद बंध में गणों की कल्पना इस प्रकार की है- वे लिखते हैं- छंद का नाम शीर्षक से जाना हुआ चौपई है। उसकी १५ मात्राओं की हरेक पंक्ति में सामान्यतः ४+४+४ ⌣, और कदाचित् ६ + ६ + ⌣ इस प्रमाण से हो- प्रस्तुत कृति के छंदों की स्थिति स्पष्ट है। एक उदाहरण देखिए-

सखी भणइ सामिणि मन झूरि दुज्जण-तणा म वंछित पूरि
गयउनेमि, तउ विणठउ काइ, अछइ अनेरा वरुउ सगाइ।।३।।

अलंकारों की योजना भी प्राकृतिक है। उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, स्वाभावोक्ति के अत्यन्त उदाहरण मिलते है कहीं कहीं विरोधाभास भी वर्णित है। दृष्टान्त और उदाहरणों का नियोजन भी अत्यन्त उपयुक्त है कुछ उदाहरण देखे जा सकते है:-

उपमा-

१- विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेम

२- नहिं नेमि सम वर रयणु

३- जिम प्रियवरिहउ जीविय-मरणु

१- हिन्दी साहित्य की भूमिका- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

(२) स्वाभावोक्ति-

अलंकार तो रचना में स्थल स्थल पर है - यथा -

१- श्रावणि सरवणि कडुयं मेहु, गज्जई विरहि रिझिज्जइ देह
   विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव, नेमिहि विणु सहि सहियइ केम[1]

सब भी है- सावन के मेघों का श्रवण में कटु गर्जन, विरह में देह का क्षीण होना और राक्षसी की भाँति बिजली का चमकना कितनी स्वाभाविक उक्तियाँ है।

२- माह मासि माचइ हिमरासि, देवि भणइ मइ, प्रिय पास
   सइ विणु सामिय दहइ तुषारु, नव नव मारिहिं मारइ मारु

(३) रूपक-

१- रासि नासि मइ मयणह पास
२- नव नव मारिहिं मारइ मारं

(४) अर्थान्तरन्यास- के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं:-

१- बोलइ राजल तउ इहु वयणु
   नत्थि नेमि सम वर रयणु
   धरइ तेजु गहगण सवि ताव
   गयणि न उगुमइ दिणयर जाव[2]

(राजुल बोली- हे सखि, नेमि के समान दूसरा वर रत्न नहीं ही है। सभी ग्रहों में तेज तभी तक रहता है जब तक गगन में सूर्य नहीं निकलता)- कितनी अनूठी उक्ति है-

(५) विरोधाभास-

१- दहई चंदु चंदन हिम सीउ

(६) वीप्सा-

१- सखि सखि बब करि बबकरि केम

(७) अनुप्रास-

१- विणि रिणि विरतह लगु नदिवं
२- वीणिय झुण्णु झणि झणि[3]

१- नेमिनाथ चतुष्पदिका-डा०भायाणी-पृ०२।२-वही, पृ०४ ३- वही, पृ०३।

इसी तरह अन्य कई अलंकारों को स्पष्ट किया जासकता है।

नेमिनाथ चतुष्पदिका के नायक नेमिनाथ हैं जो एक चरित नायक हैं।अतः इस पर अनेक कथाएं लिखी गई हैं। रामायण और महाभारत जिस तरह चरित नायकों को प्रसिद्धि में लाने का श्रेय रखती है, उसी भांति पुष्पदंत का महापुराण में भी नेमिनाथ चरित मिलता है। अपभ्रंश के कवियों के लिए तीर्थंकर नेमिनाथ और स्थूलिभद्र, चक्रवर्ती भरत और बाहुबली, जम्बू स्वामी तथा शालिभद्र ऐसे ही चरित है।अतः नेमिनाथ की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध कथा है। कथा की यह रूढ़ि बड़ी ही प्रचलित रही है। प्राकृत में ८०३२ श्लोकों में लिखा हुआ एक बहुत ही प्रसिद्ध काव्य नेमिनाथ चरित[१] मिलता है इसका रचनाकाल सन् ११५९ और रचनाकार हरिभद्रसूरि है और उसके बाद यह हमारा आलोच्य ग्रन्थ है। सुमतिगणि का नेमिनाथ रास भी इसी ग्रन्थ के पूर्व लिखा हुआ है और इसके बाद तो नेमिनाथ के चरित पर कथा काव्यों और चरित काव्यों की झड़ी सी लग जाती है। अतः कथा में अव्याहत परम्पराओं का निर्वाह सर्वत्र परिलक्षित होता है। इन परम्पराओं में चक्राकार वृत्त की भांति नेमिनाथ की कथा उलझी हुई है और यह वृत्तान्त अनेक ढंग से वर्णित हुए हैं। ये परंपराएं भी बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं। सुमतिगणि के नेमिनाथ रास में कथा में कृष्ण और बलराम के साथ नेमिनाथ के पराक्रम का वर्णन उनके पारिवारिक सम्बन्ध के साथ चलता है। जिसमें विभिन्न मोड़ दिखाई पड़ते हैं।नेमिनाथ केविवाह के पूर्व का सब घटना वर्णन उसमें आ जाता है पर हमारे आलोच्य रास की एक मौलिकता बड़ी अपूर्व है इसमें तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर नेमिनाथ और राजुल का विवाह होने के प्रसंग से पूर्व का नहीं मिलता और दोनों के विवाह उत्सव से ही काव्य प्रारम्भ हो जाता है। कथा की सबसे बड़ी मौलिकता उसके संक्षिप्त होने और पूर्व

१- प्रो० वेलणकर का जिनरत्न कोष पृ० २१७

अन्यों कथाओं से भिन्न होने में है। प्राचीन कथा रूढ़ि की दृष्टि से इसमें कवि ने उत्तर प्रत्युत्तर की शैली का निर्वाह किया है। अतः कथा चलकर जो नेमिनाथ और राजुल के जीवन पर अनेक रास फागु और चरित काव्य मिलते हैं उनकी कथा परम्परा में तो कोई अन्तर नहीं आता वह अव्याहत मिलती है पर कथा-रूढ़ियाँ अवश्यबदल सी जाती हैं जिन पर हम यथा अवसर प्रकाश डालेंगे।[1]

नेमिनाथ चतुष्पदिका की भाषा का अध्ययन भी अत्यन्त आवश्यक है। जैसा कि हमने उपर्युक्त विवेचन में देखा है कि यह एक विप्रलंभ शृंगार का विरह मूलक कोमल काव्य है अतः शब्दों का चयन अत्यन्त मधुर है और पदावली अत्यन्त सरस है। कवि श्री विनयचन्द्र सूरि स्वयं एक आचार्य होते हुए भी उनकी भाषा योजना क्लिष्ट नहीं है। उसका सरल और सुसंबद्ध एवं सुगठित स्वरूप कहीं भी काव्य को शिथिल नहीं होनेदेता। कवि की भाषा एकदम हल्की फुल्की और अभिव्यक्ति में अत्यन्त सादापन है।मार्मिक और रस प्रधान अनुभूतियों को सरल अभिव्यक्ति देना भी एक कला है।

<u>सूक्तियाँ और कहावतें</u>:

प्रस्तुत रचना में कवि ने कुछ सुन्दर सूक्तियाँ और कहावतों का भी प्रयोग किया है। वे क्रमशः इस प्रकार हैं:-

१- घरइ हेतु गह गण सवि ताव, गयणि न उगुगइ विअसइ जाव

२- लहिय छिद्दु सवि दुक्ख सभाइ (छिद्र मिलने पर सब दुख एकत्र हो जाते हैं)

३- गयवइ लहिउ कु रासभ चडइ।

४- अनु सहि,मेदक जइ नवि हुंति, छुटिय दुकाली किंम रूव्वंति

(हे सखि यदि मोदक न हो तो भूखे मनुष्य को क्या दुकाली नहीं रुचती)?

५- घण-विणु पियइ कि चायकु नीर (अर्थात् चातक घन के बिना क्या जल पीता है ?)

भाषा की दृष्टि से इस कृति में एक विकास क्रम स्पष्टतया देखा जा सकता है। उक्त रचना में १३वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का तत्कालीन साहित्यिक स्वरूप मिलता है।कई रूप तो पुराने ज्यों के त्यों मिलते हैं। परन्तु उनके साथ साथ उनमें हिन्दी के

१- देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ का अध्याय "कथा परंपराएं और कथा रूढ़ियाँ।

तत्सम स्वरूपों की ओर तेजी से बढ़ने की क्रिया सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

यथा- सकल, श्रावण, सखी, हिम-राशि, निर्धारि, प्रिय, अधिक, सहित, प्रवाह,

करुणा, सिद्धि,तरु , चैत्र, कोयल, प्रभु आदि।[1] इसके साथ कई शब्द तो

अतिनूतन आ गए है तथा जिनके रूप भी नये नये है-

यथा- सखि, मरिया, हूय, लेइ, नीठुर साचउ, विणठउ, मोलइ, मुकलाविउ,

मिलिया, एकलड़ी, रोइ, वरिसतउ आदि

उक्त उदाहरणों सेयह निष्कर्ष सरलता से निकाला जा सकता है कि अपभ्रंश भाषा की प्रथमा विभक्ति के एक वचन का जो उकार प्रधान लक्षण था वह धीरे धीरे इस कृति में लुप्त होता दिखाई पड़ता है।

<u>प्राचीन राजस्थानी या प्राचीन गुजराती</u> -

अनेक राजस्थानी शब्द कृति की प्रादेशिक भाषा की सूचनादेते है- उनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप देते जासकते है यथा- घण, बारमास, झुमरु,मेहु, भणइ, वैद वेदन, सीउ, मंडि, हियड़ा, धीय, बाप, मंडी, इणि, सुणि,टहका, कंतु, मुंह,आदि। कुछ क्रियाएं देखिए- सुणवि, भणइ, काइ धरइ, उगुगइ, रोअइ, मरिया, सिंचिय,

होइ, भिज्जइ, दहइ, ऊगइ, आदि।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अपभ्रंश के उत्तरकालीन स्वरूप भी दिखाई पड़ते है पर बहुत कम। अपभ्रंश धीरे धीरे कम होती गई है और हिन्दी का स्वरूप निखरता गया है फिर भी कुछ उत्तर अपभ्रंश के हल्के शब्दों के उदाहरण यहाँ दिए जाते है:-

<u>उत्तर अपभ्रंश के शब्द</u>- लायणु, सामल-अन्गु,रयणि, अप्पणु, मरहाउ, हिल्ली,

कुम्भणु, ररउ, माणिम, परिमणु,-

तथा कुछ क्रियाऐं है- लिज्जई, भिज्जवि, फुट्टंति, विलवडिउ, अडइ, कुक्कइ, फुट्टि

चिक्खिड, झम्पंति, थमथवि आदि आदि आदि।

१- उक्तसभी शब्दों के उदाहरण- नेमिनाथ चतुष्पदिकामें से दिए गए है विस्तृत विवेचन हेतु देखिए भाषायी संस्करण चतुष्पदिका का पाठ पृ० १ से ४।

इस प्रकार उक्त स्वरूपों से भाषा की स्थिति पर विचार किया जा सकता है और राजस्थानी कृतियों को हिन्दी के प्राचीन स्वरूपों को पूर्णतया सुरक्षित रखने का श्रेय प्रदान किया जासकता है। उक्त विश्लेषण में हमने इस कृति के माध्यम से विषय पर किंचित प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की राजस्थान में उपलब्ध होने वाली इन कृतियों का मूल्यांकन होने पर इस प्रकार भाषा तथा साहित्य के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य हमारे सामने स्पष्ट हो सकेंगे। इनकी पर्याप्त शोध आवश्यक है। तभी आदिकाल की मुख्य प्रवृत्तियों का सम्यक् विश्लेषण सम्भव है।

(सुभद्रा सती चतुष्पदिका)[1]

१३वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी तक कई रास और चउपईसंज्ञक ऐसी कई रचनाएं मिलती हैं जिनमें सतियों के चरित को प्रमुख विषय बनाया गया है। ऐसी रचनाओं में "सुभद्रासती चतुष्पदिका" एक महत्वपूर्ण रचना है। सतियों के सम्बन्ध में यों पर्याप्त साहित्य लिखा गया है।पर इसकी परंपरा प्राकृत और अपभ्रंश से ही चली आ रही है। सुभद्रासती चतुष्पदिका १३वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना है। यह भी संभव है कि इसका रचना काल १४वीं शताब्दी के प्रथम दशक का उत्तरार्द्ध हो। चउपइ नाम से अभिहित अब तक जितनी रचनाएं मिली है उनका प्रमुख छंद चौपाई ही रहा है। ठीक उसी प्रकार सुभद्रासती चतुष्पदिका में चौपाई छन्द है। चतुष्पदिका या चउपइ की परंपरा पर पहले विचार किया जा चुका है।

सुभद्रासती चतुष्पदिका की मूल प्रति नाहटा जी के संग्रह में विद्यमान है जो उन्हें जिनप्रभसूरि की परंपरा संग्रह पुस्तिका में से प्राप्त हुई। यह रचना उन्होंने प्रकाशित भी कर दी है।[2] पूरी चतुष्पदिका ४२ छंदों में पूरी हुई है। सतियों का उत्कृष्टशील इन कवियों के लिए भी एक आदर्श रहा है और जीवन के उत्थान में धर्म के प्रचार में और शील निर्माण में महत्वपूर्ण तत्व समझ कर ही इन काव्यकारों ने इन्हें अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। रचना का विषय धार्मिक या सामाजिक है।

प्रस्तुत चतुष्पदिका में कवि ने सुभद्रा के चरित की महत्ता का स्पष्टीकरण किया है। आदर्श सती सुभद्रा को अनेक कष्ट और बाधाओं को सहन करने को कहा गया शील और धर्मगत निष्ठा और प्रभाव के कारण उसने सब कर दिखाया। रचना का सबसे बड़ा महत्व यह है कि इसमें अनेक अंतर्कथाएं और कथा सूत्रों तथा दृष्टान्तों का जाल सा बिछा है। कवि कथा को माध्यम बनाकर धर्म के सिद्धान्तों को भी सामने रखता जाता है तथा विविध दृष्टान्तों द्वारा शील तप की रक्षा का

१- देखिए हिन्दी अनुशीलन वर्ष ९ अंक १-४ पृ० ९७-१०० २- वही।

महत्व बतलाता है। जैनियों के समाज में धर्मशील-आचरण और तप तितिक्षा को बड़ा उच्च स्थान प्राप्त है। कवि ने सुभद्रा के नाम से इस तत्व का प्रतिपादन किया है। रचनाकार ने पूर्व भव तथा कर्मों के प्रभाव का विस्तार से विवेचन स्पष्ट किया है। सुभद्रा सती की पूजा आज भी जैन समाज करता है। जैन साहित्य में सोलह सतियों के चरित्र मिलते है जिनमें सुभद्रा का चरित्र बहुत महत्व का है।कृति के रचनाकार का नाम अज्ञात है

कथा प्रवाह की दृष्टि से रचना में पर्याप्त सरसता विद्यमान है। कवि ने सुभद्रा के इस चरित्र काव्य को श्रवण करने का फल नवकारमंत्र की भांति मांगलिक और उत्कृष्टतम बताया है (१-२)। कथा की सरसता का निर्वाह करने में कवि ने अनेक सुन्दर दृष्टान्तों का सहारा लिया है तथा विभिन्न अन्तर्कथाओं का सहारा लिया है । रचना की कथा का संक्षिप्त सार इस प्रकार है:-

सुभद्रा चंपा नगरी के जैन श्रावक की पुत्री थी।उसकी सास नारायण की उपासना करती थी और सुभद्रा पार्श्वनाथ को मानती थी। सास ने उसको जैन धर्म छुड़ाकर नारायण की उपासना करने को बाध्य किया। पर वह अडिग रही। दोनों में इसी बात को लेकर अनबन रहने लगी।एक बार सुभद्रा के यहां एक जैन मुनि आये। उनकी आंख में तिनका घुस जाने से पानी भर रहा था। भक्ति भाव से प्रेरित हो सुभद्रा ने मुनि की आंख में पड़े तृण को निकाल दिया। सास को यह अच्छा नहीं लगा उसने उस पर चरित्र सम्बन्धी मिथ्या दोषारोपण किया। सुभद्रा ने इसी कलंक के कारण तीन उपवास करके रवा नवकार मंत्र का जाप किया। शासन देवी प्रकट हुई सास के कहने पर उसने अपने सतीत्व का परिचय अंबिका देवी की कृपा से नगर के बन्द प्रतोली द्वारों को खोलकर तथा कच्चे सूत के तुंतुए से चलनी में भर कर कुएं से पानी निकाल कर दिखा और अपने सतीत्व को सिद्ध कर दिखाया। राजा ने उसको खूब सम्मान दिया। सास ने भी अत्यन्त हर्ष से उसको पुनः घर में स्थान दिया। संक्षेप में कथा का सार यही है। कवि ने इसी कथा वृत्त को चौपाई छन्द में विकसित किया है।

प्रस्तुत काव्य एक चरित काव्य है जिसमें कवि ने सुभद्रा के चरित का फल तथा सरस्वती वंदना को प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है:-

जंफलु होइ गया गिरनारे जं फलु दीन्हइ सोना भारे
जंफलु लखि नवकारिहि गुणिहिं तं फलु सुभदा चरितिहिं सुणिहिं
दियइ दाण छह दरिसण भवइ, सुणग महा सइ लावण कवइ
पहिली सरसती भी मइ लग्गी वेयुतणा गुरु देवउं मग्गी
तासु पसाइ कवितु हुइ घणउ पभणइ चरितु सुभद्दासणउ
चंपा नयरिय कहउं विचारो, सुभद महासइ निव सइनारो (१-३)

सुभद्रा की पार्श्वनाथ की उपासना ने सास की कोपाग्नि में घृत का काम किया। मुनि के आगमन पर सुभद्रा का भक्ति भाव से उसके आँख में से तिनका निकलने का अवसर पाते ही उसने उसे लांछित करना चाहा। कवि ने इस घटना को आलंकारिक प्रवाह में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। भाषा की सरलता, अभिव्यक्ति का प्रवाह तथा शब्द-चयन देखिए:-

सेवलि सासू अवउ पहो जिणवर समउं न अच्छइ देओ
सउ कोपिहि सासू पर बलइ जाण्ड छिद्दहसंदरि ढलइ
नमहि गीतहि जिणि चरियउ रोसु चढइ कोवि बहाविसु बोयो
मुणिवरु एकु संसारह भमुयउ, अवि चखु तासु तवैया समुयउ
कंठइ वेद सतु मतु नवि ढलइ, भीत विख्या सतु रांजतु पकउ
पंच इन्द्रिय जिणि मलियउ मानु, काया कष्टु कियउ अप्पानु
रागिहि चाइवि सब सतु वेद पावह पावइ सो पारेतु
चाउ चाइ सउ कारणु बनउ मुणिवर अंखिहि पडिय इकिनउं
होनवि हलिव जिहिं देखउ करप रउ दुरउ अंखियउ मुरए
मुखिउ सवधि चढिउ सहिं ठाय कवणउ नयरिय विरहण जाय
सवरि न सहियउ चंपा पहडउ अंखि भरंती सुभदा दीठउ
सुभद्रा सवउ वाउ विवंती सासिउ मुणिवरु सउ विहरंती
चडिय नवति कीयउ विहरणो, सुभद्रा अंखिहि फडपिउ तिणउं

सासू हूती जीमत बैठी, त्रिभउलियंती सुभद्रा दीठी

विकलपु वसियउ मन्नह माहि बहूड़ी रहिसि म पीहरि आहे

सुभद्रा ए भणइ संभलि माय नीठुक वयणु कि सहणउ जाय

कवणि काजि तुम्ह कीन्हउ रोसो अम्हह काइ चडाविउ दोसो

वंदइ देव गुणइ नवकारा नीर गलंती त्रिनि वे वारा

महसइ महसइ कहइ न माय, पाडिय लेखिसु बेहुरि जाय

अम्हि दीठउ तुम्हारउ चरिउ घमियउ सोनउ फूकड भरिउं

तउ महसइ निर्दह अप्पाणु ताकिव पुडविदि ऊगइ भाणु (१-१९)

रेखांकित मुहावरे व शब्द सौष्टव दृष्टव्य है:

कवि आगे अपनी सरस शैली में सुभद्रा को दिए गए कष्टों की चित्र खींचता है। जिससे यहाँ कथा प्रवाह में गति आती है। कवि विविध अन्तर्कथाओं का प्रयोग करता है।नगर के प्रतोली द्वार का उद्घाटन और कच्चे सूत के धागों से कुएं से चलनी में पानी निकाल लाती है। कवि की भाषा की सरसता तथा प्रासादिकता स्पष्ट है:-

सुभद भणई दीठु अंजालो एकवार जइ उतरइ आलो

प्रह विहसी जउ हूयउ रोलो नयरी नाभिकन उघडइ पउली

ते नवि पाणिहि पाछी सरहिं आरहु पेरहु मक्खि करहिं

गयउ अहाकउ वेगिहि राय माला रोयहि चंपा माहे

पउलि न उघडहि कुमड विहाणु को विहि बोलि विजोयउ प्राणु

तवहि भणइ चढि कुमारी सतरा सुणिजिम वाह विचार

सूप कडुसूप ले करि घरहू वेगहि दाणय पाछर करहू

सोचे विम ते वेगि ससाणहु नयरी माहइ होम कराणउ

अब ति पीयइ दरिसा तासु आव न लूणहि नयणिहिं धूम

ते हवि भईसउ सासउ भणउ माहीं पाहूको होमइं तम्हं

कुहिंण अनेरी कवइ काए घडहु किया बहु नगरइ माहे

हिवि सासरियाजउ डांगुरउ चंपा पउरिल कुमाछी करउ

करउ कोइ अम्हारउ काजा नरवइ भणइ दियउ अधराजो
सुभद्रा जइ छीतउ ऊंगुरउ नरवइ राजु घणेकरउ करउ
अवर देसिहंता ले चंपोले सील प्रभावि उघाडिसु पवले (३६-३३)

अन्त में सुभद्रा की विजय का वर्णन है। महासती के प्रभाव का कवि ने अपूर्व वर्णन किया है।चौवरि आदि विविध वाद्यों द्वारा उसका स्वागत महोत्सव सम्पन्न होता है और उसके शील की विजय होती है। कथा प्रवाह का एक उदाहरण ही अलम् होगा:-

धरि थक्की सासू कर करइ, विजय पवडिउ सुभदा करइ
अउगी आज म बोलिसि माय,तुह वयणिहिं मझु हियडइ दाहे
सास वरीसी तेडिय माला,सूत कतावण लागी ताला
काचइ ताकणि बाधी चालणि सुभदा कूवा उप वणी
चालणियह जउ पाणी उधरए तिनिउ पउलि उघाडी करए
लक्खण कवितु न लंगी घड़ी सुभदुदा तसिहि पउली उघड़ी
तक्खणि राउ रलियात भयउ तिणि वेगह आणिउ ह थियउ
वगवर ऊपरि ठवियउ पाउ, आपणु पालउ चलियओ राओ
सुभद्रा सती बोलइ हसि राय वउथी पाउड़ि उघाडउ काय
राउ बुलइ सुभदा संभलए अवर महाबलि ढुढंकिन तुलइ
मेघाडंबर धरियहि छत्र बामइ नावइ वाडिलि पात्र
करहि कल्याणु भाट नगरी भूव ताहू सवु सुभद्रा पढी
मिलिय सुवासिणि मंगलु गायहि, धवल दियवा बहुवाजहि
हुय उछव नयरी चवकरि सुभदा महुसी सील सुवारि (३३-४०)

रचना में तत्सम शब्दों की भरमार है।मयवर विकल्प, चंपा सुभद्रा सुविध, विज्ञान, मेघाडंबर, धवल, दुवारि, धूम, माला आदि अनेक उदाहरण लिए जा सकते है अधिकांश तौबभ सभी शब्द राजस्थानी है। कहीं कहीं अपभ्रंश के शब्द मिलते हैं। रचना

में कथा का पूरा विकास हुआ है। अन्त में कवि रचना निर्माण का लक्ष्य बतलाता है:-

पढहि गुणहि जे जिणहरि देह ते निच्छइ संसारु तरेहि

सुभद्रा सती चरितु संभलहि सविद्ध सुक्खु लीलइ ते लहहि (४२)

वस्तुतः सुभद्रा सती चतुष्पदिका काव्य भाषा तथा कथा तीनों रूपों में महत्वपूर्ण सिद्ध होती है।

मातृका चउपइ [1]

१४वीं शताब्दी की रचनाओं में मातृका चउपई रचना भी चउपई संज्ञक रचनाओं की परंपरा में है।परन्तु इस रचना का विषय दूसरा होने से इसपर कक्क मातृका संज्ञक रचनाओं के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है।रचना की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं- रचना प्रकाशित है।[2]

जा ससि सुरु भूयणु मझारि पंति
जा ग्रह नक्षत्र तारा हुंति
जा वरसइ बहुल व्यापारु
ता सिवलच्छि करउ मंगलाचारु [3]

सम्यकत्व माइ चउपइ [4]

मातृका चउपइ की ही भाँति ६४ कड़ी की एक रचना सम्यकत्वमाइ चउपइ मिलती है। रचयिता जगडु कवि १४वीं शताब्दी के हैं। रचनाकार जगडु ने इसमें सम्यकत्व पर लिखा है। रचना चउपई छन्द में है तथा साम्प्रदायिक दृष्टि कोण से लिखी गई है।सम्यकत्व की रक्षा कैसे हो तथा उसके क्या क्या फल है इन सबको वह अ से लेकर ह तक के अक्षरक्रम तक स्पष्ट करता है। इसरचना पर भी कक्क मातृका परंपरा के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है। अन्त में कवि स्वयं अपना परिचय देता है।काव्य की दृष्टि से इस रचना में अधिक चमत्कार परिलक्षित नहीं होता ?

सासणिसिरि चउपइ बंधु कियउ

माइअक्खर छेहु गुरु निसुणु
उच्छव आगलउ किपि मण्ड
जगडु भणइ छंडु भवदु कवि [5]

1- देखिए लेखक का प्रस्तुत ग्रन्थ अध्या -६ "प्रमुख काव्य परम्पराएं"
2- प्राचीन गु० का० सं०-सी०डी० दलाल पृ० ७८
3- वही।
4- वही पृ० ८२, तथा लेखक का प्रस्तुत ग्रन्थ अध्याय- ६
5- वही

यह रचना भी प्रकाशित है।[1]

- मंगलकलश चउपइ -[2]

१४वीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण कृति है मंगलकलश चउपइ। रचनाकार है सर्वानन्द सूरि। रचना का छंदों की दृष्टि से पर्याप्त महत्व है। रचना अधिक लोकप्रिय हुई हो यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि सहायक सामग्री में इसका उल्लेख नहीं मिलता। भाषा की दृष्टि से भी रचना उल्लेखनीय है। रचनाकार ने प्रारम्भ में एक वस्तु छंद दिया है फिर दोहों का क्रम है और फिर चउपई का। पूरी रचना एक चरित काव्य है परन्तु पूरी कृति के उपलब्ध नहीं होने से इसके सम्बन्ध में अधिक विचार नहीं किया जा सकता। रचनाकार का अपना परिचय रचना में मिल जाता है। रचना एक चरित काव्य है इसकी भी कवि ने प्रारम्भ में ही स्पष्टीकरण कर छंदों की दृष्टि से भाषा की दृष्टि से, तथा विषय की दृष्टि से रचना का मूल्यांकन करने के लिए कुछ उद्धरणों को देखा जा सकता है। रचनाकार पहले दोहा छंद में श्रोताओं को सावधान करता है:

(दूहा) रलिय रसाल निसुणहो मंगलकलश चरित्र
        पभिणा भाविइ मंगहु करीउ सुनिमल चित्तु (२)

रचनाकार ने स्वयं अपना परिचय भी काव्य में दे दिया है। यह सर्वानन्द सूरि कौन से हैं, यह बहुत निश्चयपूर्वक तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि संस्कृत में भी एक पार्श्वनाथ चरितकाव्य सर्वानन्द ने रचा है और एक सर्वानन्दसूरि के चन्द्रप्रभ काव्य सं० १३०२ में रचकर है।[3] पर एक सर्वानन्द सूरि १४वीं शताब्दी के आरंभ में भी हुए थे। सर्वदेवि गच्छ में भी सं० १४२५ में एक सर्वानन्द सूरि उल्लेख मिलता है।

१- वही। २- जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३५-३६:श्रीमोहनलाल दुलीचंद देसाई।
३- देखिए पत्तनस्थ्यैन ग्रन्थ सूची पृ० २८२-२८३।
४- जैन गुर्जर कविओ: श्री देसाई भाग १ पृ० ३५-३६।

अतः कवि के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं होने से कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। रचना में कवि ने शुभ कामनाएं करते हुए चित्त की निश्चलता से इस मंगलकलश चरित जैसी सुललित वाणी सुनने को कहा है:-

निश्चल चित्त पसाउलइ विघन विलीजइ दूरि

सुललित वाणी इम भणइ श्री सर्वानन्द सूरि। (२)

रचना का विषय मंगलसूचक भावनाओं का उद्बोधन होगा तथा किसी मंगल सूचक पुरुष के जीवन चरित को लेकर ही कवि ने जन समाज के लिए यह काव्य रचना की होगी ऐसा परिलक्षित होता है। रचना के प्रारम्भ में ही कवि अनेक देवताओं की वंदना करता है। स्वयं कवि इस रचना को चरित तथा रलिय रसाल काव्य कहता है। इस रचना की भाषा में अपभ्रंश की उकार बहुला प्रवृत्ति कहीं दिखाई नहीं देती। अनेक तत्सम शब्दों का भी प्रयोग दृष्टव्य है। एक उद्धरण देखिए:-

(वस्तु)

सयल मंगल सयल मंगल मूलु मुणिनाह

आबुगिरि आदिजिण-पायपउम पणमेवि भाविण

कणौली सुहमंडणु पासनाहु उरवरि धरेविणु

वागवाणी सुय समणा ले अमवरी अक्खर माल

मंगल कलस चरित किउ भणसिउ रलिय रसाल ।।१।।

इस प्रकार रचना पूरी प्राप्त नहीं होने से इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सकता। परन्तु उक्त उद्धरणों से यह कहा जा सकता है कि यह अवश्य ही एक सरस चरित काव्य होगा।

:: जिनदत्त चउपई[1] ::

विनयचन्द्र कृत नेमिनाथ चतुष्पदिका के पश्चात् एक पर्याप्त महत्वपूर्ण प्रबंध रचना जिनदत्त चउपई उपलब्ध हुई है। यह रचना जयपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भंडार से मिली। रचना ८" × ६" इन्च के आकार के गुटके में

लिखी हुई है जिसका एक ओर दीमकों ने काट कर विनष्ट कर डाला जिससे कहीं कहींपाठांशों में भी हानि पहुंची है।

जिनदत्त चउपई के रचयिता कविरल्ह थे जो जैसवाल कुल में उत्पन्न हुए थे। कवि ने अपने वंश का परिचय विस्तार में दिया है। कवि रल्ह अपने माता पिता के परम भक्त थे। कवि ने माता पिता को बड़ी ही श्रद्धा से नमन किया है:-

माता पाइ नमउं जं जोगु।जिह लियउ जेहि मत लोगु
उवरि मास दस रहिउ धराइ। धम्मुबुधि हुइ सिरिया माइ
पुणु पुणु पणवइ मातापाइ।जिह हउ पालिउ करुणा पाइ
मउ बयारगु हुइ सउ उरणुहा हा माइ मफु जिण सरण (२७-२८)

जिनदत्त चउपइ अप्रकाशित है। रचना के कुछ अंश अभी हाल ही प्रकाशित किए गए हैं।[१] जिनसे रचना की सम्पन्नता पर विचार किया जा सकता है।प्रस्तुत रचना सं० १३५४ में लिखी गई और इसकी प्रतिलिपि सं० १७५२ में हुई।रचनाकाल के विषय में स्वयं लेखक द्वारा संकेत मिल जाता है:-

संवतु तेरह से चउवण्णे।भादव सुदि पंचम गुरु दिण्णे
स्वाति नखतु चंदुतुली हती। कवइ रल्हु पणवइ सुरसुती (२९)

जिनद
पूरी रचना ५४४ छंदों में लिखी गई है ऐसा कवि का प्रमाण है:-

जिनदत्त पूरी भई चउपही। छप्पन हीयधि छह सय कही- परन्तु छन्दों का क्रम ठीक नहीं मिलने से संख्या कुछ बढ़ जाती है। अद्यावधि पाटण बीकानेर, जैसलमेर नागौर, अजमेर आदि के भंडारों की सम्यक शोध नहीं हो सकी है अन्यथा जिनदत्त चउपइ की दूसरी प्रति या प्रतिलिपि प्राप्त होने की संभावना थी। वस्तुतः एक ही प्रतिलिपिके आधार पर अभी अनुमान पर ही आधारित रहना पड़ता है।

१- देखिए हिन्दुस्तानी, भाग १९ अंक ४ पृ० २०-२१ हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्राचीन कथा कृति- जिनदत्त चउपई शीर्षक- श्री कस्तूरचंद कासलीवाल का लेख।

कवि रल्ह ही प्रस्तुत कृति के रचयिता थे यह तथ्य निर्भ्रान्त है।क्योंकि रचना में अनेक स्थानों पर रल्ह नाम मिल जाता है।रल्ह ने इस काव्य के अनेक नाम दिए हैं कहीं कथा, कहीं चउपइ, कहीं चरित्रु -यथा-

(१) जिनदत्त पूरी भई चउपही - (५५३)

(२) कवइ रल्हु जिणदत्तु चरित्रु - (२६)

(३) जो यह कथा पढिसइ रालि - (५५१)

(४) यह जिणदत्त चरित्र मिय कहिउ - (५५२)

परन्तु पूरी रचना एक कथात्मक प्रबन्ध होने से तथा पूरा ग्रन्थ प्रमुखतः चउपइ छन्द में लिखा होने से इसका नामकरण "जिनदत्त चउपइ" ही उपयुक्त जान पड़ता है।कथा के सूत्र इस रचना में बड़े प्रौढ़ हैं। यों पूरा काव्य जिनदत्त का चरित्र मूलक आख्यान ही है। पूरी रचना सर्गों में विभक्त नहीं है।परन्तु कहीं कहीं सर्ग सूचक सूचना मिल जाती है। कवि ने प्रस्तुत रचना लिखने के पूर्व पर्याप्त अध्ययन किया है प्रतीत होता है कि जैन समाज में जिनदत्त एक बहुत ही प्रसिद्ध व्यक्ति रहा होगा, ऐसा जिनदत्त पर अपभ्रंश में रचे गए पं० लाखू के जिनदत्त चरित से स्पष्ट होता है जिसका रचना काल सं० १२७५ है। कवि रल्ह के लिए प्रस्तुत चरित रचना के मूल में लाखू की चरित ग्रन्थ प्रेरणा के रूप में रहा, ऐसा उसने स्वयं स्पष्ट कर दिया:-

मइ जोयउ जिणदत्त पुराणु, लाखू विरयउ अइसु पमाणु

देखि विसूरु रयउ कुछु पहु अत्था लयणु सुह पमत्तेहु

सं० १७५२ में ग्रन्थ की लिपि दिल्ली के किसी श्रावक ने पंचमी व्रत के उपलक्ष में की ऐसा ग्रन्थ के अन्त में पुष्पिका से स्पष्ट होता है।[1]

१- पुष्पिका इस प्रकार है:
संवत् १७५२ वर्षे कार्तिक सुदी ५ शुक्रवासरे लिखित महानंद पाटण निवासी पुष्करणाज्ञातीय।
यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते।।१।।
शुभं भवेतु लेखकपाठकयोः श्री रत्न पंचमी व्रतोपमा निमित्तं।।शुभं।।
(प्रति-जिनदत्त चउपइ)
जैन शोधसंस्थान जयपुर)।

जिनदत्त चउपइ एक कथा प्रधान कृति है। रचना में घटना सूत्रों को कवि ने इस प्रकार संजोया है कि पूरी रचना में कुतूहल आद्योपान्त विद्यमान रहता है। काव्य की दृष्टि से, छंद, कथा, तथा वर्णन विधान की दृष्टि से रचना का महत्व अविस्मरणीय है। कथातत्व का क्रमिक विकास रचनाकार की प्रबन्ध दक्षता का परिचायक है। विविध घटनाओं का समावेश, अति प्राकृतिक तत्वों के द्वारा रचना में कौतूहल वृद्धि तथा रचना का वर्णन शिल्प औपन्यासिक आनन्द का विधायक है।

जिनदत्त चउपइ में जिनदत्त के सम्बन्ध में एक चरितमूलक लम्बी कहानी है जिसमें जिनदत्त के जीवन का अथ से इति तक का वर्णन विवरण है। रचना के कथा भाग के अधोकिंत सारांश का अध्ययन कर लेने पर ही साहित्य की दृष्टि से प्रस्तुत कृति का सम्यक मूल्यांकन किया जासकता है।

जंबू द्वीप के भरत क्षेत्र के मगध देश में स्थित वसंतपुर के राजा चन्द्रशेखर के जीव देव नगर सेठ थे। उनकी पत्नी जीवंजसा के जिनेन्द्र की आराधना से जिनदत्त उत्पन्न हुए। जिनदत्त बचपन से ही विद्याव्यसनी थे। अतः विलास की ओर उनका ध्यान युवा होने पर भी नहीं गया। वह उदासीन न रह जाय इसके लिए जिनदत्त को लौकिक राग रंग में डुबोने के लिए उसके माता पिताओं ने उसे जुआरियों की संगति में छोड़ दिया। उनकी संगति से एक दिन काठ की बनी एक स्त्री पुतली को देखकर जिनदत्त के मन में विवाह की कामना जागी और माता पिताओं ने अतीव प्रसन्नता से जिनदत्त का विवाह चम्पापुरी के सेठ विमल की पुत्री विमलमती से कर दिया। जुआरियों की संगति में पड़कर जिनदत्त विवाह के पश्चात् ११ करोड़ रुपये हार गए। यहाँ तक कि विमलमती के वस्त्र तक बेच दिए। यह देख जिनदत्त को बड़ी चिन्ता हुई। अतः वे धन कमाने के लिए चम्पापुरी के नाम से दशपुर के एक धनिक सेठ के साथ विदेश में धन कमाने के लिए जहाज पर चढ़ गए। वहाँ से वे सिंहलद्वीप पहुँचे। सिंहलद्वीप के घनवाहन की पत्नी विजयादेवी की पुत्री श्रीमती एक भयानक व्याधि से पीड़ित थी। मध्य रात्रि होते ही उसके पेट से एक भयंकर सांप निकलता था जो राजकुमारी के पास, जो भी होता उसे खा जाता था। अतः राजा

ने प्रत्येक घर से एक दिन एक एक पुरुष भेजने का आदेश निकाल दिया। एक दिन जिनदत्त ने एक मालिन से फूल लेते समय उसे रोते तड़पते देखा। पूछने पर उसने सारी घटना सुनाई। जिनदत्त स्वयं जाने को तैयार हुए। राजा और राजकुमारी जिनदत्त के सौन्दर्य पर मुग्ध थे पर अन्य कोई रास्ता भी नहीं था। जिनदत्त एक मुर्दे का कंकाल और तलवार लेकर राजकुमारी के पास ही छिपगया। अर्द्ध रात्रि में सर्प ने कंकाल को मनुष्य समझ कर उस पर अनेक फन मारे इतने ही में मौका देख जिनदत्त ने उसके टुकड़े टुकड़े कर दिए। राजा ने राजकुमारी का विवाह उससे कर अटूट धनराशि दी। दोनों पुनः बसंतपुर चले। सागरदत्त को धन देखकर पाप आ गया। उसनेराजकुमारी को भी हथियाना चाहा। रूमाल में कीमती पत्थर बांधकर उसने समुद्र में डाल दिए और जिनदत्त के सामने रत्न गिरजाने के ब्याज से कृत्रिम ढंग से रोने लगा। जिनदत्त रत्न निकालने समुद्र में कूद पड़ा। सागरदत्त ने लंगर के डोरी काट दी। जहाज आगे बढ़ गया। सागरदत्त ने जिनदत्त की पत्नी राजकुमारी का शील हरण करना चाहा। जिनेन्द्र के स्मरण तथा राजकुमारी के शील के प्रभाव से जहाज डूबता देख सबने राजकुमारी से क्षमा याचना की। सिंहलकुमारी ने चम्पापुरी के जिन मंदिर में विमलमती को देखा जो जिनदत्त के विरह में व्याकुल थी। इधर जिनदत्त भी जिनेन्द्र के स्मरण से किनारे लगा और विद्याधरों के देश में पहुंचा। वहां के राजा अशोक और रानी अशोक श्री थे। राजा के ८४ रानियां भी थी जिनके नाम विभिन्न बड़े बड़े प्रदेशों के अनुसार थे। यहां के राजा ने इस भविष्य वाणी के अनुसार कि वह उनकी पुत्री का विवाह उसी व्यक्ति से करेंगें जो सर्वप्रथम समुद्र पार कर के आयेगा- जिनदत्त से विवाह कर दिया। जिनदत्त ने यहां रहकर विद्याधरों से १६ विद्यायें सीखी और प्रसन्नता से अपनी पत्नी को लेकर विमान द्वारा चम्पापुरी पहुंचे।

चम्पापुरी में उसने अपना शरीर विकृत बौने का बना लिया और उसने राज सभा में आकर स्वयं को जिनदत्त घोषित किया। किसी ने इस बात का विश्वास नहीं किया और उस वेश में उसकी दोनों पत्नियों ने भी उसे ग्रहण करने

से मना कर दिया। फिर चातुर्य से जिनदत्त ने अपने असली रूप को प्रकट कर दिया।

राजा बनने पर जिनदत्त बड़ी भारी सेना लेकर अपने नगर बसंतपुर को चला। वहाँ का राजा इससे युद्ध करने को तैयार हो गया। नगर के लोग घर छोड़ छोड़ कर भागने लगे अन्त में दोनों में मित्रता हो गई और दोनों मिलकर नगर का शासन करने लगे।

अनेक वर्षों तक राज्य सुख भोग, जिनदत्त ने अन्त में दीक्षा ग्रहण करली और कैवल्य पद को प्राप्त किया।

संक्षेप में रचना का कथा सार यही है। कथा के इन सूत्रों को जोड़ने में कवि ने अनेक स्थानों पर वर्णन कौशल और काव्यात्मक दाक्षिण्य दिखाया है। रचना के कई वर्णन बड़े बेजोड़ हैं। कथा के तत्वों का क्रमिक विकास दिखाने में कवि ने अपनी प्रतिभा का पूरा परिचय घटना परिवर्तन द्वारा प्रस्तुत करता है। शैली के लिए भी रचना उल्लेखनीय है। भाव और कला दोनों पक्षों की दृष्टि से रचना पर्याप्त महत्व की है।

भाषा की दृष्टि से रचना का मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह कथा काव्य जनभाषा में लिखा गया है जो कथा काव्य के रूप में अपने कथा तत्व के सौष्ठव तथा सौन्दर्य के कारण उस समय जनता में खूब प्रचलित रहा होगा। क्योंकि प्रसिद्ध जिनदत्त के चरित्र को अनुकरणीय समझते थे। वर्णन क्रम में एक धारावाहिकता है। कथाक्रम सम्यक्तः चलता है। पूरा काव्य जिनदत्त के जीवन चरित्र की सुन्दर औपन्यासिक रूप रेखा प्रस्तुत करती है।

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से विचार करने के लिए जिनदत्त चउपइ के साहित्यिक सौन्दर्य का मूल्यांकन आवश्यक है। रचना के विविध वर्णनों द्वारा ही काव्य की ऊंचाई अध्ययन किया जा सकता है। रचना में अनेक रस प्रधान स्थल है जिनमें लेखक का मन खूब रमा है। कवि ने काव्य का प्रारम्भ जिनवर नमन से किया है।

कवि ने कथा का प्रारम्भ अत्यन्त सरल ढंग से किया है। कथा तत्व के विकास में इससे आगे जाकर बड़ा मोड़ मिला है। सरलता सरसता और वर्णनात्मक शैली में विविध घटनाओं द्वारा पुष्ट हुआ कुतूहल कथा के आरोप से लेकर चरम तक में योग देता है।

कथा परम्परा और कथारूढ़ि में यद्यपि अत्यन्त अधिक मौलिकता तो नहीं है परन्तु फिर रचनाकार ने काव्य में कई काल्पनिक तथा अति नूतन घटनाओं का आयोजन किया है। तथा विविध घटनाओं को कथा सूत्र में पिरोकर तत्कालीन समाज का एकदम सही चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत काव्य का नायक जिनदत्त है जिसे हम प्रारम्भ में धीर प्रशांत के रूपमें देखते है परन्तु आगे चलकर उसमें धीरोदात्त के गुणों का विकास भी दीख पड़ता है।रचना में नायक द्वारा प्रणीत विविध कार्य कलापों ने काव्य-शिल्प के गठन में बड़ा योग दिया है।

काव्यकार रल्ह पर वीणापाणि प्रसन्न है।अपने साधक को वह तुष्ट होकर वरदान देती है।रल्ह उसे जिनदत्त चरित कथा का वर मांगता है औरसरस्वती का रूप चित्रण करता है:-

जहि संभव जिणवर मुंह कमल।सरस भंग नाणी जसु अमल
आगम हंद तव्ववर वाणि।सारद सदुद अत्थ पय खाणि
गुणणि बहु विजागम सार।पुठि मराल सहइ अविचार
हंस महरिसर कला बावती।मुकइ रल्हु पणमइ सरसुती
करिवुइ मुकइ भणइ बहु भाइ।परसन्नी हुइ सार बधाइ
मह पसाउ स्वामिनि करि देव।जिणदत्त चरितु रचउ सखेव
गुणविलयन सारद मों कहै।मेरउ अंत न कोई लहै
किमइ काजु आराहहि मोहिं।मागि मागि संतुठी होहि
भणइ सुकइ करि सुयउ भाउ।जाणि व अम्हहं किय उपसाउ
तउ पसाइ गायवयरु लहउ।जा जिणदत्तु चरिउ हउ कहउ
ता भारती सुसाइणि देवि।तूठी वाणदि पणमेवि
सुकइ कहा तू कहण समत्थु।सुहु थिरि रल्ह विणुणमइहत्थु (१३-१९)

कवि रचना प्रारम्भ करते समय अपनी लघुता तथा अज्ञान स्वीकार करता है। उसकी रचना छंद लक्षण हीन तथा अक्षर प्रमत्त (अक्षर मात्रा दोष) तथा दोष पूर्ण है। यह

बुद्धिहीन है कवित्त रचना कैसे करे उससे विबुध ज्ञानियों का अनुरंजन कैसे होगा यह धर्म कथा कहते वह सज्जन और दुर्जन दोनों से क्षमा याचना करता है। वर्णन की परम्पराओं से काव्यकार की क्षमता, काव्यात्मकता तथा रचना की प्रबन्धात्मकता का पूरा पूरा परिचय मिलता है। वर्णन की आलंकारिकता रसात्मकता और सौन्दर्य देखिए:-

> हउ अखउ जिणदत्त पुराणु। पढिउ न लक्षण छंद वखाणु
>
> अक्खर मत्त हीण जइ होइ। महु जिण दोसु देइ कवि कोइ
>
> हीण बुधि किम करउ कवित्तु। रंजिण सकउ विबुह जण चित्त
>
> धम्म कथा मयहंतह दोसु। दुज्जण सयण करहि जिणुदोसु
>
> भुवण कई स अतीते घणे। बहुले अत्थहि ठाइ आपुणे
>
> कइ तणु फुरइ विवहु जण पेखि। पाउ पसारउ आचल देखि
>
> जइ अहरावइ मत्त गईदु। ओयण लघु सरीरउ विंदु
>
> तासु गाज जइ भुवण समाण। गइयर रइयर आपुणे भाय
>
> कोइसु कला पुणु ससि भा आहि। सवइ अमिउ सीयलक सवकाहि
>
> तासु किरण तिहुवण जइ दिपइ। आप समाणि जोगणा तपइ
>
> हाथ जोडि जिणवर पय पडउ। वीयराय सामिय मणि धरउ
>
> जत्थ होउ इकु कइरतणे अंधु। जिणदत्त रयउ चउपइ बंधु (१०-२५)

भाव पक्ष की दृष्टि से यदि इस रचना का मूल्यांकन किया जाय तो यह स्पष्ट परिलक्षित होगा कि यद्यपि जिनदत्त चउपइ में रसात्मक माधुर्य प्रधान स्थल कम है परन्तु फिर भी जिन स्थलों के वर्णन में कवि का मन रमा है उनमें अपेक्षाकृत एक वैशिष्ट्य और सौन्दर्य विद्यमान है। रचनाकार ने काव्य में जिन विविध वर्णनों का समावेश किया है उनमें कुछ प्रमुख वर्णन इस प्रकार हैं:-

(अ) जन्मोत्सव वर्णन

(ब) बाल वर्णन

(स) सौन्दर्य और नखशिख वर्णन

(द) प्रकृति वर्णन

(य) विविध विद्याओं के वर्णन

(क) बरात वर्णन, नगर वर्णन

(ख) व्यंग्य विनोद वर्णन

(ग) जुआ वर्णन

(घ) व्यापार वर्णन

(ङ०) सेना वर्णन

इन विविध वर्णनों में प्रयुक्त काव्यात्मक स्थलों के अध्ययन करने पर रचना के सौन्दर्य का मूल्यांकन किया जा सकता है। बाल वर्णन की पृष्ठभूमि में पुत्र प्राप्ति के जन्मोत्सव और हर्षोल्लास का वर्णन किया है।कुटुम्ब में बजाये गाए गए नायिकाओं के नृत्यहुए मोतियों से चौक पुराए गए, विविध दान दिए गए, आदि सभी सामाजिक प्रथाओं की ओर कवि की दृष्टि गई है। जन्म वर्णन के पश्चात् कवि ने बालक जिनदत्त की शिक्षा दीक्षा पर प्रकाश डाला है। कुशाग्रबुद्धि जिनदत्त ने ७२ कलाओं में थोड़े ही समय में दक्षता प्राप्त की। यही नहीं उसने युद्ध कला, व्याकरण छंद ज्योतिष आदि में भी निपुणता प्राप्त कर ली। बाल वर्णन की बारीकियों का सूक्ष्म विश्लेषण कवि ने कहीं नहीं किया। पूरे बचपन को कवि सरल सरल भाषा और भावों में वर्णित कर देता है। बालक की प्राप्ति में माता पिताओं का उल्लास तथा सन्तानहीन होने पर उनकी शोक पूर्ण दोनों स्थितियोंका सरल सा वर्णन कर कवि आगे बढ़ जाता है। वर्णन के गांभीर्य में उसका मन अधिक नहीं रमता। उसे तो लगता है कि कथा सूत्रों में वैचित्र्य तथा घटनाओं में कुतूहल प्रस्तुत मात्र करना था। अतः इन्हीं कारणों से रचना कथा प्रधान वर्णनात्मक बन गई है।हाँ, कथा सूत्र में कहीं भी व्यतिक्रम नहीं आने पाता।प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पूरी कथा नायक जिनदत्त के उत्कर्ष के लिए प्रयत्नशील परिलक्षित होती है इससे स्पष्ट होता है कि रचनाकार में प्रबन्ध काव्य निर्मित करने की शक्ति अवश्य विद्यमान थी। विविध वर्णनों ने इस कथा काव्य की सरसता में अभूतपूर्व योग दिया है।

जिनदत्त का जन्मोत्सव और रूढिगत शिक्षा वर्णन के उदाहरण देखिए:-

राजु करत दिन केते गए।सेठिणि गब्भु मास दुइ भए

--- --- ---

जीव देव घरि मंगल भयउ ।घर घर कुटंब बधाउ गयउ

गावहि गीतु नाइका सउकु।बहरी पूरिय मोतिन्ह चउकु

देहि तंबोल सफोफल पान। दीजै चार पटोले दान

पूत बधाए नाही खोरि । दीने सेठि दान दुइ कोडि

--- --- ---

बाढउपूतु कला जिमु चंद । जाइ विहार कियउ आणंद

जिणवरु पूज सुणिहु पत्र पढी।रिषि जिणदत्त नाउ तिसधरी

बरस दिवस बाढइ जे सडउ।दिन दिन बिरध करइ ते तडउ

उंकार लयउ मणु जाणि।लखणु छंदलक्क परिवाणि

गुणि व्याकरण विरति कउ जाणु।भरहर भायसु महापुराणु

लिखणु पढण सीखिउ अखराहु।जोतिखु ग्रंथु मंतु चार

तुरी समहु अरु खंडागरु।सीखी समहु बहत्तिर कला (५६-६४)

कथा के क्रम को अव्याहत बना रखने के लिए कहीं से भी देखा जा सकता है। कवि ने बचपन का सम्बन्ध यौवन से जोड़कर कथा प्रवाह को आगे बढ़ाया है:-

भउ जुवाणु भइ बुध सहाउ। ब्याहु कउ चिंतु करताउ

सीलवंत कुल कन्या फिरइ । जिणवइ उपरि भाउ न धरइ

देखिउ पूत समउ जिणदासु। भणइ सेठि कुल बुडण हारु

पूत विकल मणु भणुण होहि।कैसे बंस विधिहुण हुइ पोहि (६५-६६)

वस्तु छंद में कवि ने मगध देश के वसंतपुर नगर का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। अनुप्रास के वर्णन बड़े चमत्कारपूर्ण है। भाषा की सरलता और बकार, पकार और मकार के वृत्त्यानुप्रास तथा यमक अलंकार के सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है:-

मगह देसु भीतरि सुहिसारु ।वासव पुरह अहिउ सोचारु
धण कण कंचण सव्व पिपूर ।कंदर तुंग पिहिय कयपूर। (३६)

::: ::: :::

(१) वणिकु वंभण वइद वासीह, वाढइ वेसावच्छ
वंदरा विवारी विहारई वाणु वाडेवारी वुरु
वहु विहार ह जीव रखहं वरु विहारि वारिठिया
वुह विहह वणियार तहि वसंतपुरि रन्ह कई
छह चउवीस वकार (३७)

::: ::: :::

(२) सुर सामीय साहु सोठियहि सरि सरवर सावयई
सव्वल अस्थि सारंग साहणा सिहु सोहा सहियमई
सिरि वसंत सहियम समागहं दसम सीमा सत्थवर
सत्थ सवण सुहसार सुव्वह सील वसंतपुर
छहि चउवीस सकार (३८)

(३) मोहु महर माणु मायारु मउमरि मारगु मरविणु
मलिणु मलणु अहि कोवि सीसई महुमंस मयराहहि
उसहि मक्कि मउ रउव दीसई मुहु मयुगणु मंगल मवेरु
वहिम महड जलधीगु भणइ रन्ह सुवंस पुर
वीस मकार विहीणु- (३९)

उक्त तीनों उदाहरणों में वकार,सकार और मकार की आवृत्ति से नागर के मनुष्यों का वर्णन किया है तथा अन्तिम पद में इस बीस मकारों से नगरी को रहित बतलाया है। कवि की नगर वर्णन की इस शैली में मौलिकता स्पष्ट परिलक्षित होती है।वर्णन की यह पद्धति अवश्य ही नूतन है।

श्रृंगार वर्णन का सौष्ठव कवि के रूप और नखशिख वर्णनों में देखा जा सकता है।कवि ने जहां जहां सज्जा और नखशिख का वर्णन किया है वहां उसके उपमानों की मौलिकता एकदम स्वाभाविक तथा अतिरंजना से रहित है।विमलमती के सौन्दर्य वर्णन में, विद्याधर कुमारी तथा अन्य राजकुमारियों के नखशिख में कवि का श्रृंगार वर्णन

उल्लेखनीय है।देखिये-

सोजि सुंदरि पयण पुत्ता रातंती यह संगइ

कीलमाण सरवह बइठी खेलंतीजलपयड रूपरासि मइ देठि दिठिय

सहिय समाणियत हो भणिय इम जंपइ सुत धारि

तासु रूय गुण बण्णियउ कइ रल्ह सुविचार

सुंदडिउ सहु कसु सोहइ पाउ।चालत हंस देइ तसु भाइ

जाणू थाणू बिहि तहि घणे।ताहि ऊपरि नेउर बाजणे

सवइ वणुु सोहई पिंडरी।जणु छहिते कुंभु पिंडरी

जंघ जुयल कदली अपरइ।तासु लोक मुठि माइयइ

जणु हइल्ति अणंगहु तणी।सहइ जुरंग देह तहि घणी

नीले चिहुर सउज्जल कारण।जबक सुहइ दीसइ कारण

चंपा वण्णी सोहइ देह।गल कंदलह तिभिण जणु रेह

पीणत्थणि जोव्वण पयसार।उपपोटी कडियल वित्थार

१ हाथि सरिस मोहहि आगुली

२ महसुव दियहि कुंद की कली,

३ सुाणि सुरेख कविन्हु है कही।

४ सुय नल वंसु काटि जणु ठहे

इलोणी अरु माठी लीव।हरु सु चट्टिटया सोइय गीव

काणि कुंडल इक सोवनुघणी।नाक फासु जसु सूवातणी

मुहमंडलु सोवइ ससि बयणु।दीह बहु नावइ मिय पयणि

अहि केहो वपवाले किरण।जसुरिहवाणि हीरामणि किरण

मउड भवण जणु हविय घरी।बिचइ लिलाट तिलक कुंवरी

बिरह धोम बोरिहम भरि वाडह।जबह पीठनलि विंणी रुलइ

माह विनोद क्या आवली।पहिरयण जडी कंचुरी

इकु तहि अहिय देह की किरणि अवर रल्ह पहिरइ आभरण

जिस हणु बाहइ दिठ पसारि।काम बाण सहु घालइ मारि

जिह को रूप न वमूवइ आइ।देखि सरीर मयण मुरुझाइ (८६-१००)

प्रस्तुत कृति का प्रकृति वर्णन सामान्य है। कवि ने उद्यान, उपवन, करने, विद्याधरों के देश की रानियों ~~का वर्णन~~ तथा विविध विद्याओं के वर्णन में ~~कवि~~ ने नाम परिगणन शैली का बहुत उपयोग किया है।अतः नामों की इस परिगणना के कारण कवि का यह प्रकृतिवर्णन सरस तथा सुन्दर नहीं बन सका। प्रकृति वर्णन, रानियों के नाम तथा विद्याओं के वर्णन के क्रमशः उदाहरण अलम होगें:-

(१) जो अशोक करि थविकउ सोगु।अन पर परिहहि बीनउ भंगु
जो छउहूलिर हिय केवडउ।सिंचिउ बीरमयो तुबकुउ
जे नालियर कोपु करिठिय।तिन्हइ हारयदा ले लिय

::: ::: :::

नारिंग जेबु सुपारी दाख, पिंडखजूर कोफली अंब
जातीफल इलायची लवंग, करणा धरणा कीप सरंग
कायु कथिल्य बीर पीपली, हरड़ बहेड़ खिरी आंबिली
सिरिखंडै अगर गंलीदी धुप गरहि नारिसहि ठाइ सब्ब
जाई जूही बेल सेवती, दवणौ मरुव अरु मालती
चंपउ राइ चंपउ मव कुंद, कूंजउ मउलसिरी जासउडु
बालउ ने बाडउ मंदारु, सिंदुवार सुरही मदार। (१६५-१७०)
पाडल कडपाडल बन फूल, बरबर कमल बहुत के फूल।

अंतपुर की रानियों के नामों की नामावली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे विभिन्न प्रदेशों के नामों के अनुसार दिए हैं जिससे नामों की तथा राज्यों की ऐतिहासिकता स्पष्ट होती है:-

(२) सीतउ खरारासि रानि, तिनके नाम रहउ बखान
कानडि गूर्जरि मरहठी,लाडि गोडि दखिणी सोरठी
पुरबिणी कश्मीरि बंगालि, बंगालि तिलंग पुरसारिक
दवडी मरहठी करनाटकी जाटि कंवरदे धनी (२७०-२७२)

::: ::: :::

सारंग दे अरु चंद्रावति बीरमदे रानी मागवति
बंजाये रानी गज गमनि।कमला दे अरु हंसागमनि (२७७)

विविध विद्याओं के नामों में भी कवि ने परिगणन शैली का ही प्रयोग किया है:-

गगन गामिनी बहुरूपणी।पाणिउ चोरवणी व करेणी
दिय लोकणी सइछिउ देइ।आगियंभ थंभणिउ लएवेइ
सव्वविद्धुध विज्जाहारणी।पाताल गमिणी अरु मोहणी
चिंतामणि गुटिका सिद्धि लइइ।गुपति निहाणु अंजणीकइइ
माणिकु देइ रयण वरखिणी।सुमदरखिणी सुवण गामिणी
रयण अणेय भेय रघु देइ।वज्जरीक वज्जणीवेइ
अवर पन्न लई ताहि भली।तिमिर दिठि विणजातहु मिली
अणी बंध धारावंधणी।सव्वो सही ताहि तहि मणी
वलि विज्जउ जिणदत्त लिलार सोलह विज्जा लइय विचार

कवि ने समाजिक वर्णनों में बहु विवाह, आभूषण पहिनने की प्रथा वैश्या, तथा जुआ वर्णन आदि पर भी प्रकाश डाला है। सांसारिकता में घुलाने के लिए माता पिता अपने पुत्रों को जुआरियों की संगति में भी भेज देना पसन्द करते थे। वर्णन के इन्हीं सूत्रों द्वारा पुष्ट कथा तत्व की सरसता देखिए:-

(१) वैश्या और जुआ वर्णन:

सवइ वेठि मंडु परिठवित।जुआरीन्ह हुं हकारउ मवक
नटचट जे न करहि बहु काम।ते बहु वेठि बुलाय आण
बार बार वैसा घर जाहि।अरु जुआ खेलत न अघाइ
चोरी करत न आलसु करइ।गांठ काट अंतराउइ धरइ
जिनुके बसण मइय किन्हु पीठी।जो बहु किमउ बाघुणी मुठि
संघु बहु नारि जिसु सही।तिन्हि सुहु वेठिवात बहुकही
अहो बीर तुम्ह पसउ करहु।बूढिउ कुल मरउ अमरउ
जो जिणदत्त जिकम महु हावै।निछय लाख दामु सो पावै
जुआरित कहि कुन्हि कोहु हो घरिउडमारी छोहु
बइ बहु रमइ मयर नर नारि तउ तुम पाछे सकहु समारि (६६७०)

(२) बहु विवाह और आभूषण वर्णन:

बहु विवाह की प्रथा पर भी कवि ने प्रकाश डाला है। हीरा मोती माणिक और रतन पदार्थों से जड़े कपड़ेतथा आभूषण स्त्रियाँ पहनती थी। स्त्रियों में पर्याप्त स्वतंत्रता थी। अतः इस काव्य के आधार से यह कहा जा सकता है कि उस समय में स्त्रियों में पर्दा प्रथा नहीं रही होगी।

सांस्कृतिक स्थिति पर भी रचना में पर्याप्त विवरण मिल जाता है।बारात वर्णन विवाह के तत्कालीन रीति रिवाज मंगल कलशों द्वारा बरात का स्वागत, लग्न, चंवरी, मंडप तथा विविध वैवाहिक लोक गान आदि सभी बातें तत्कालीन सांस्कृतिक जागरण की पृष्ठ भूमि को स्पष्ट करते हैं।यही नहीं लोक कलाओं में नटों की कला बड़ी प्रसिद्ध थी जिन्हें राज सभा में प्रदर्शन कर बड़े पुरस्कार प्राप्त होते थे। संगीत में भी ये लोग पहुँचे हुए थे।लय, ताल राग नृत्य द्वारा ये लोग मनोरंजन और नाद विनोद किया करते थे इस प्रकार संगीत नृत्य,लोकोत्सव आदि सभी कलाएं प्रगति पर थीं। ऐसा स्पष्ट होता है कि कवि ने यह सब वर्णन बड़ी प्रासादिक शैली में किए है। निम्नांकित उद्धरण देखिए:-

(१) पंच सबद बाजेवि तुरंतु। बहु परियणु चालेबु बरात
एकति चाहि सुखासण चढ़े।एकु बारबर मीढे तुरे
एकु हाजि हथि गरि चरी।एकु हाजि पलाणी चरी
एकति डाढी डीला जाहि ।एकति हस्त चढे सिबसाहि। (११६-११८)

::: ::: :::

(२) उठहु सुहड वेगहु सिंगार । भूमि हो होड समुंद की सार
पहरी रयी पहरिय सास । अवरह धापे सुमुण कलास
बाबहि भीड़ु गाइका सबु । ऊपरी पुरिव मोती चउकु (१२०-१२१)

::: ::: :::

(३) नाद विनोद छंद बहुकरउ । रूपविरूप कला अणुसरउ
छोड पाव गुडिव दीसह घणउ ।इइनट घउ खेलह वावरणउ
धरइ तालु जिह हाकउ वयण ।बंधइ किरणि भमइ पुणुगयण
विपु रितु लेइ एकु वहियउ ।राजा हरिउं आवलउ भयउ (३२४-३२५)

इसी प्रकार बरात वर्णन, कर्पूर वर्णन, जुआ, वेश्या वर्णन आदि पर कवि ने थोड़ा प्रकाश डाला है।

करुण विप्रलंभ के कुछ स्थल अत्यन्त मार्मिक हैं जिनमें जिनदत्त के समुन्द्र में गिर जाने पर विमलमती का विलाप अत्यन्त प्रसिद्ध है। कवि ने रचना में चौपाई छन्दों के अतिरिक्त नाराच अर्द्ध नाराच छन्दों में विलाप वर्णन बड़े ही स्पृहणीय किए हैं। एक करुण विप्रलंभ की स्थिति देखिए:-

हंसा गवणी चंदा वहणी करह पलाव
मोहि आगइ देखत पेखत कस गयउ नाह
आयउ मरणु णाही सरणु कहा कराअउ
कही रोहणु वालि हुवासणु झंपा देइ मराउ
काठउ कीयउ कैसे जीवउ पिय बिणु तेहि
हाइ बाइ मुवइ सहि छाडि कवि गयउ कमोहि
चौ दिसि धावहि रोवइ कहा कियो करतार
वेलि चढंती भडियचडंथि मडसामी अंतराल (१५४-१५५)

<u>कवि की बहुज्ञता-</u>

जिनदत्त चउपई में रचनाकार की बहुज्ञता का परिचय मिल जाता है।कवि ने विविध वर्णनों द्वारा अपने ज्ञान का परिचय दिया है।स्वयं रचनाकार रल्ह बड़ा हीअर्थविहार युक्त कवि था ऐसा प्रतीत होता है। रचना के विविध वर्णनों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इसने तत्कालीन समाज का सही चित्रण प्रस्तुत किया है।समाज का अध्ययन सही रूप में करके कवि ने प्रस्तुत कृति की रचना की है।कवि ने सामाजिक तत्वों का सही रूप में मूल्यांकन करकेअपने कथा सूत्र को पुष्ट किया है। कवि की बहुज्ञता तथा तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों

का परिचय निम्नांकित वर्णनों द्वारा मिल जाता है:-

<u>व्यापार वर्णन:</u>

कवि ने तत्कालीन आर्थिक स्थिति तथा व्यापार का सुन्दर चित्रण खींचा है। व्यापार का बढ़ा चढ़ा होना, विदेशों से यथा सिंहल द्वीप व्यापारिक संबंध, माल का गाड़ियों द्वारा पहुंचाना, वणजारों द्वारा व्यापार आदि का सही वर्णन मिलता है। सिंहल द्वीप व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र था। गाड़ी बैलों पर माल लादकर ले जाने की प्रथा थी। जिनदत्त का १२०० व्यापारियों को लेकर व्यापार पर विणजारों के साथ जाना तथा सिंहल जाकर व्यापार करना आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालता है। इससे सिद्ध होता है कि हमारे आर्थिक सम्बन्ध विदेशों तक फैले थे:-

सबु वणजारे भए इकठाइ कोस पंच दस मिलिए जाइ
सबु विणजारे चतुर छ इल्ल, बारह सहस चले भरि बहल्ल
जो मतिहीण अबूझ अजाण सबमहि उवहिदत्त परवान (१८३-१८४)

::: ::: :::

सुनि राइ सिहि कइन्हु भाइ, संघल द्वीप पहूते जाइ
बसुणीबारा सहि डाहरि रहइ, कव विकेण दीपि यइ सरहि
मोल महंगी बाहर देहि, आपु सउंपी सारिथि लेहि
तहि धण वाहण पडु बक्कवइ, जो बवराल दीप भोगवइ
नवनिहि सवदह रयण भंडार, विजया दे राणी सुपियार (२००-२०१)
माणिक रतन पदारथ जड़ी। विविध विधि हीरा सोने घडी
ठवे पाणि मुक्ताहल जोडि, लहइ मोलि सुवबन कोडि (२७८-२७९)

रचना में कहीं कहीं हास्य रस भी निष्पन्न हुआ है। कहीं कहीं अद्भुत रस (२२५-२२७) का भी वर्णन है। कवि ने रचना को शालीन बनाने के लिए अद्भुत तथा कुतूहल पूर्ण घटनाओं का जैसे जिनदत्त का बौना बनकर राजसभा में जाना शरीर परिवर्तन करना आदि का भी समावेश किया है। कहीं कहीं अति प्राकृतिक तत्व भी है। जिनदत्त का समुद्र पार करके जाना ७२ कलाओं में प्रवीण होना, राजकुमारी

के पेट में सॉप का होना तथा विद्याधरों की राजकुमारी से विवाह कर विमान द्वारा चम्पापुरी आना सिंघल की राजकुमारी के शील के प्रभाव से जहाज का डूबने लगना आदि सभी घटनाएं अति प्राकृतिक अथवा काल्पनिक है। जिनदत्त का विमान में बैठकर आना हमारे भारतीय कला कौशल की सम्पन्नता का प्रतीक है।

कथा प्रवाह अव्याहत है रचना में इन अवान्तरघटनाओं का समाहार करके कवि ने कथात्मकता, प्रवाह और रचना के पद लालित्य में पर्याप्त योग दिया है। कथा के आरोह अवरोह चरम और विविध घटनाओं द्वारा कथानक पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।रचना की प्रबन्धात्मकता निर्भ्रान्त है।प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कवि विविध वर्णनों से कथा को पुष्ट किया है, ताकि उसमें उत्साह अनवरत बना रह सके।

पूरा काव्य चौपाई छन्द में लिखा है परन्तु जब तब वस्तु नाराच, अर्द्ध नाराच आदि भी मिलते हैं।नाराच का एक उदाहरण देखिए:-

पताहिहि ताला गवलह भाला मुंह मई ते नीसरइ

काल उदारुण विसेहड वारुणु सहि फौकरइ

हिंडइ बउपासहि दीह सहासीह काठु भयंतु

कहि गउ सो पहिरउ जमु होवइरिउ खूटउ जमु कउ अंतु ।(२२७)

हास्य और अद्भुत का एक समन्वित चित्र देखिए:-

धाछाइ लोगु हसइ मो बयणु।कुंवर कंकि किसोहर रयणु

कहा कुमरि पुहि हीमें दिनि।चरिउ कुमरउ लेइ कोइ छीनि

थाली जाइ देव जिन आल।मावह मले रयण की माल

आपु ।...। हीड कहियइ काइ।लेही पुडकि अलिय माह (३००)

उक्त वर्णन विवरणों के आधार पर कह कहा जा सकता है कि रचना की प्रबन्धात्मकता अबाध है।प्रस्तुत काव्य खंड काव्य की सीमाओं से ऊपर उठ जाता है तथा महा काव्य की सीमाओं को स्पर्श करता है इससे इसे एकार्थ काव्य कहा जा सकता है। अन्त में कवि ने सर्वसुजान जिनदत्त को राजा बनाकर मोक्ष की ओर उन्मुख होता दिखाया है। अतः रचना का अन्त निर्वेद प्रधान है।इनवर्णनों के आधार पर रचना की आलंकारिक शैली अर्थगर्भित तथा प्रबन्धात्मकता और चरित मूलक कथात्मक

का सफल निर्वाह परिलक्षित होता है।

भाषा की दृष्टि से भी यह कथा कृति पर्याप्त प्राचीन लगती है।अपभ्रंश की उकार बहुला प्रवृत्ति, अपभ्रंश के विविध शब्दों में मिल जाती है।साथ ही कवि ने अनेक विशुद्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। रचना प्राचीन होने से भाषा के विकास क्रम को समझाने में योग देती है।रचना शैली वर्णनात्मक है। जिनदत्त का जन्म से लेकर मोक्ष तक आद्योपान्त चरित वर्णन है। कवि ने सागरदत्त जैसे खलनायक की सृष्टि कर रचना की कथा वस्तु में उत्कटता का समावेश किया है। रचना काव्य कथा कृति और चरित आख्यान होने के साथ साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी पूरा पूरा महत्व है। पूरी रचना चउपइ छंद में लिखी होने से छन्द प्रधान है।अलंकारों में उपमा, रूपक,अनुप्रास, क्रम वर्णन, दृष्टान्त आदि का प्रयोग किया है। नारियों के क्षेत्र में भी पातिव्रत्य तथा शील के आदर्शों पर चलने के रूप में इस रचना का योग स्पष्ट होता है।इस प्रकार चउपइ संज्ञक रचनाओं में जिनदत्त चउपइ का महत्व जिनचंद सूरि की नेमिनाथ चतुष्पदिका के बाद भुलाया नहीं जा सकता। ऐसे चरितमूलक कथा आख्यान राजस्थान के अद्यावधि बंद भंडारों में कई मिलने की आशा है। चउपइ संज्ञक कुछ और रचनाओं का संक्षिप्त परिचय अंकित है।

पद्मावती चौपई[1]

अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर से १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिनप्रभसूरि द्वारा लिखित एक छोटी सी रचना पद्मावती चौपई मिलती है। रचना जन साधारण में धर्म प्रचार और शील निर्माण की दृष्टि से लिखी गई है।रचना ३७ छंदों में लिखी गई है। पद्मावती चौपईछोटी रचना होते हुए भी बड़ी सरस तथा कोमल कांत पदावली से पूर्ण प्रासात्मक रचना है।

रचना में पद्मावती देवि का गुण गान है।पद्मावती देवी चक्रेसरी देवि, अम्बिकादेवी आदि देवियों का वर्णन कई रचनाओं में काव्य प्रारम्भ करने के पहले मिल जाता है। अम्बिकादेवि की भांति पद्मावती देवी भी जैन समाज में पूजी जाने वाली देवियों में से है। रचना में कवि ने चौपई छन्द का प्रयोग किया अतः यह चउपइ छन्द प्रधान कृति है।

कवि प्रारम्भ में ही पद्मावती देवी की तथा पार्श्वनाथ के पद कमलों की वंदना करके पद्मावती देवी को प्रसन्न करता है:-

सिरि जिण सासणु अवधारि करि
झायहु सिरि पउमावइ देवि (१)

--- --- ---

पासनाह पय पंकय भसलि हंस विमुख किन्नायण कुवलि
सयि कर निम्मल गुण सपन्न, पउमावि मह होहि पसन्न।।
साल सरल गुरु लोयण विविहन्न, कुटुंब वसण पुय कुसुम कुम्भि
पिय सिय वस्ती कलव विहत्थि वारण सिरव सहहि गुरु हत्थि
कुलह कांर थण नमिकर जाल खिखि खिखि पसरहि गुणकराल (२-४)

पद्मावती देवी के स्वरूप वर्णन में कवि ने उसके आभूषणों और परिधानों

१- प्रति देखिए नाहटा संग्रह अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। पद्मावती की शक्ति से कवि सभी को परिचित कराना चाहता है। वह दंडक छन्द से दुष्टों का दमन करने वाली है तथा धरती पर नारियों में सबसे उत्तम, असाधारण एवं पूजनीय नारी है। वर्णन क्रम का सौन्दर्य देखिए:-

> कुन्डल मंडल मंडिय गंड, अरि खन्डण भुय दन्ड पचन्ड
> घण थण घोरिल निम्मल हार, पउमावइ नंदउ अगिसार
> नेउर कुणि विहारिय दिसि चक्क, सगुण दन्ड खंडिय दिढ वडवक्क
> मणिकंकण चिंचइय पउट्ट पउमा होहि भविवह अंगुट्ठ
> मेइल मुहलिय सोणिपट्टि, अरिकुल कोमल दीह करटि
> जय धरणिंदह उत्तम रमणि, पमउ पवि सुह मयगल गमणि
> पासंकुस वर महिरम पाणि, तंब चूड कर विसहर वर जाणि
> पउम पत्त समवन्न सरीरि, पउमपवि मा मई अवहीरि
> फंणि नमंति सुरासुर रमणि, मणि किरीउकरि रंजिय चलणि
> कि पणियहि नरवरह वराय, आराहहि सुरवर तुह पाय (५-९)
>
> --- --- - ---
>
> पढाक्खरि जे नर सुमरहि ताई, तियस कामिणि वस हुंत
> नैतपाल पइ मिणि धारणिहुं, नारस सरुवहर कलविंदु
> पउम पउम कहिनी नव अंत, सवल काम सुह पूरइ कन्त
> जम थंभ मोहे थमयन्ति, अइ अपराजय तिजयजयंति
> कन्ही पइइ सोलह हाल सबद इकन्विस विविकप्पसार

इस प्रकार पूरा काव्य पद्मावती के गुण वर्णन में लिखा गया है। क्षेत्रपाल चक्रेश्वरी देवी तथा अंबिकादेवी की भाँति तीर्थंकरों के साथ जैन समाज में पद्मावती देवी की भी पूजा होती है। तथा जैन तीर्थंकरों के साथ पद्मावती देवी का चित्र भी मिलता है। पद्मावती वाणी का प्रतिरूप है अतः काव्य प्रारम्भ करते समय भी कवियों ने इसकी अभ्यर्थना की है। छन्द में कवि मनोकामना पूर्ण करने वाली देवी पद्मा की

पूजा का सार प्रस्तुत करता हुआ, काव्य समाप्त करता है। भाषा की सरलता कोमलकान्त पदावली, अनुप्रासात्मिकता तथा वर्णन की प्रसादिकता दृष्टव्य है:-

समहर कल बारस सरजुत्त, थावर जंगम विसहर रत्त
ईसहार हर ससहर कंति, नाम गहंपि तुह दयकल हंति
बंझनारि तुह बय कारंति सुरकुमरोवम पुत्त लहंति
निइ नंदण अणइ चिराउ हुअइ मावइ वल्लह राउ
चिंतिय फल चिंतामणि मंति तुज्झ पसाईं फलई निभंतु

--- --- ---

छायंति सोहग्गि निहाण, निवुपुइअपय अभिलिय माण
कवि वाइल्लइ हुंति ते पगुण, जाईं पउमि तु होहि पसणुम

---- ---- ----

पउमावइ चउपइ पढंत होइ पुरिस ति हुयम सिरिकंत
रम्म भणइ निगजस्स कप्पूरि, सरदीयपवण जिणप्पह सूरि

रचना प्रकाशित है तथा देवियों के चरित पर लिखी गई अपने प्रकार की रचना है। चउपई संज्ञक रचनाओं में नारी पात्रों पर लिखी एक ऐसी ही रचना सुभद्रासती चतुष्पदिका है जो सती सुभद्रासती पर लिखी है। जिस पर भी प्रकाश डाला गया है।

वस्तुतः विषय की दृष्टि से भी रचना मौलिक है। पद्मावती चउपई वाणी की उपासना प्रधान काव्य है। यह रचना पर्याप्त प्राचीन है तथा प्रसादिक है अतः यह कहा जा सकता है कि अपने समय में यह कृति खूब लोकप्रिय रही होगी।

: ज्ञानपंचमी चउपई[1] :

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के द्वितीय शतक में कवि विद्धणु रचित एक

१- देखिए गुजराती साहित्य परिषद् की ५वीं रिपोर्ट पृ० २१-२४ पर स्वर्गीय श्री सी०डी० दलाल का निबन्ध।

रचना - ज्ञान पंचमी चउपइ - मिलती है। रचना कार जिनोदयसूरि के शिष्य थे। कवि ने अपने पिता आदि का परिचय रचना के प्रारंभ में दिया है। इस कृति का रचनाकाल सं० १४२३ है। ५वीं साहित्य परिषद् की रिपोर्ट में स्वर्गीय श्री दलाल ने इस रचना की सूचना दी है।[१] परन्तु रचना प्रकाशित नहीं होने तथा भंडारों में इसकी प्रति अद्यावधि उपलब्ध नहीं होने से इसके सम्बन्ध में अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उपलब्ध एक दो पदों के आधार पर ही इसका परीक्षण किया जा सकता है।

ज्ञान पंचमी जैन श्रमण संस्कृति की लेखन कला का सबसे बड़ा पर्व माना जाता है। इस दिन लिखावट के उपादानों की पूजा होती है। कवि ने उसी पर्व को दृष्टि में रखकर इस पर पूरा धार्मिक काव्य लिखा है। यह रचना बहुत बड़ी है तथा ५४८ कड़ियों में समाप्त हुई है। यदि किसी भी जैन भंडार में इसकी प्रति उपलब्ध हुई तो इसके अर्थ गौरव और पदलालित्य का मूल्यांकन किया जा सकेगा।तथा आदिकालीन कृतियों में इसका स्थान पर्याप्त महत्व पूर्ण होगा।

रचना के प्रारम्भ में ही कवि अपना वंश पारंपरिक परिचय देता है:-

ठक्कर माल्हे पुत्तु विद्धणु पभणइ सुद्धमणी
हरिसिहिं लायउ चीतु चउवइ देवी सखणे
जिण भावय इत्थासि गुरु आसरि इह अपनउ
नयर विहार पयारि पंचमि फलु इम गाइयउ । १। (५४१)

भाषा में नवीनता परिलक्षित होती है। तत्सम शब्दों का बाहुल्य है।छन्द की दृष्टि से भी इसका पर्याप्त महत्व है।बीची ढालों में प्रयुक्त सोरठा और रोला दृष्टव्य है। यों पूरी रचना में चौपाई तो सर्वत्र प्रयुक्त हुआ ही है अतः रचना छन्द प्रधान है। इस छन्द का एक उदाहरण देखिए:-

चउवइ देवी सार, मंडल नयर विहार
कियउ कवित्तु हरिसे आपने, बहु फलु होय पंचमी सुने

१- वही।

यह पूरा काव्य महात्म्य का ही परिलक्षित होता है।रचना की उपलब्धि पर इस सम्बन्ध में नये ज्ञातव्यों पर प्रकाश डाला जा सकेगा।

-: चिहुंगति चौपई :-[1]

संवत् १४९२ में कवि वाच्छिग विरचित एक सुन्दर धार्मिक काव्य चिहुंगति चउपइ उपलब्ध होती है।कवि वाच्छिग वस्तो नाम से भी प्रसिद्ध थे।अद्यावधि इस रचना के अलावा कवि वाच्छिग की अन्य कोई रचना उपलब्ध नहीं होती।रचना १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की है। तथा कुल ९५ कड़ियों में लिखी गई है और प्रकाशित है।

चिहुंगति चउपई में कवि ने सांसारिक दुखों का सजीव वर्णन किया है।विविध कर्मों के विविध फल और विविध जीव योनियों में मनुष्य किस प्रकार भटकता है। इसका रोमांचकारी वर्णन प्रस्तुत रचना में मिल जाता है। जीव की विविध स्थितियों और कर्म के सिद्धान्त पर कवि का यथार्थ वर्णन और चित्रण दोनों उल्लेखनीय है।रचनाकार ने सकल जीव, समकित आदि सिद्धान्तों पर सुन्दर प्रकाश डाला है।

रचना का प्रारम्भ ही कवि चेउव तीर्थराज तथा गौतमगणधर का नमन करके किया है:-

चेउव वंदिअ तीरथराउ गुरुआ गणहर करउ पसाउ

वाग वाणि हउं समरउं देवि चिहुं गति गमण कहउं संखेवि (१)

और अन्त में - अज्ञान घणई आशातन काय, वच्छिग लागइ श्री संघ पाय- में अपना नाम स्पष्ट कर दिया है। जीव की स्थिति का आलंकारिक प्रवाहपूर्ण

१- देखिए- गायकवाड ओरियन्टल सीरीज सी० १८ पृ० ७१।

और सरल भाषा में वर्णन दृष्टव्य है। कवि ने बुढ़ापे का अत्यन्त रोमांचकारी वर्णन प्रस्तुत किया है। वर्णन की स्वाभाविकता देखिए:-

घरधंधा पडिउ सहु कोइ, कुटुंब मेलावउ साइवा होइ
खन अखन कीधा अविचार, काकाकुर्युं करिसइ सार
जरा भणइ हिव भइ तउ साथि, पहिला दांत करइ जिम पलाति
त्रिसणा माडी रही हंघि, डोकरु पागइ हिव लापसी
धवलउ माथउं देह जाजरी, वाकउ वासउ मुलइ लालरी
घर हुंतउ ते किहां न जाइ, कुटंब सघला उबीठउ थाइ
वाडि कुकुधी कीडिउ कइ सोइ काकानी सुधीन करइ कोइ
आकउ वहुढी भणि करउ माइ, मुह मुचंकोडी पाछी जाइ
रीसाविड ते मेल्हइ फाल, सिर धुणइ मुखि पडइ लाल
सूरणइ पडिउ सुंसु करइ, कवीस डोकर कहीं अमरइ
चिहुंगति माहि नत्थी सार दीसइ दुक्ख तणउ भंडार
सुख तणी जइ वांछा करउ पंचमगति ऊपरि साचिरउ (५५-६१)

कवि संसार को दुख का भंडार कहता है।संसार की नाट कर्म भूमि मनुष्य को जैसे चाहते हैं वैसे नचाते हैं। इसको तो दृढ़ समकित का पालन करने वाले व्यक्ति ही पार १८ सकते हैं। अनंतकाल रहट की घटियां और चक्र की भांति जीवको फिराता है और अन्त में उसे अपना ग्रास बना लेता है

चिहुंगति माहि कांई नत्थी सार, दीसइ दुक्ख तणउ भंडार
चिहुगति तणउ तीहं नहीं कोइ सुंखु, जिहि मिटिइ एक वसइ जिण धुखु (१)

--- ---- ---

खडविई जीव निर्मल भलकंति आठ पहर छंई कर्म बांधति
अरहटि घटिका जिम कुइ माल तिम जीव फिरइ अनंत काल
बडह राज कीधी रंगभूमि अनेक रुपि नचाविड करमि
नव नव मुहरा नव नववेस, भमइ वेस भमइ अनारिज आरिज देस
मरइ नहीं जीव छाडइ देह भाषणकि सुहउ छइ एह
जिम फिरइ चक्र तणइ कुलार तिम जीव माहि फिर इस संसार (५-७)

चिहुंगति चउपई अद्यावधि उपलब्ध रचनाओं में अपने ही प्रकार की रचना है। जिसमें साहित्य के माध्यम से कवि ने जन साधारण को संसार की नश्वरता का कर्म के चक्र का, तथा अनेक योनियों में भ्रमण करने तथा मुक्ति आदि का ज्ञान कराया है। अतः काव्य में जैन दर्शन के सिद्धान्तों का भी सम्यक् प्रतिपादन हुआ है। काव्य की दृष्टि से चिहुंगति चउपइ एक सरस रचना है जिसको पढ़ने में और सुनने में मन लगा रहता है। कवि ने विविध आलंकारिक दृष्टान्तों द्वारा रचना को सरस बनाया है।

वस्तो ने प्रस्तुत काव्य में गर्भ मास से लेकर मृत्यु तक जीवन का सजीव चित्र खींचा है। नरक का ऐसा सजीव और रोमांचक चित्र अन्यत्र उपलब्ध नहीं हो सकेगा। पाप करने के बाद नरक में आने वाले जीव का काव्यात्मक तथा रोमांचकारी वर्णन देखिए:-

जइ ऊपजई कूभी मझारि, बाधइ देह न माइ बारि
परमाधामी किलकिलवरी, धाईं, खंडो खंडि करइं तिणि ठाइ
पारानी परि देह वली मिलइ पडिउ भूमि गाढउ सलवलइ
आरडइ नारगी पाडइ बूंब, आवइ पखिया सिरि दिइं चूंब
अनेक परिछइं ते तिनडंत, दीणवयण जीव विलवंत
नरवलणा दुक्ख अनी सिहालि, ते मेल्हइं करवत कपालि
त्रिखिउ करालिउ मांगइ नीर, ताऊउ करी ते पाईं कथीर
ऊछालइ जिम गगनि धूलि, पडतउ धाईं नइ फलईं त्रिशूलि
आ भूमि ऊकलंबइ पाणि करइं महस्त ते बालईं आगि
कहरे परधन खाधउ कीम खांडै थोडी पचारईं ईम
तापहिं पीडिउ विलवइ अपार, मेल्हउ छाइडी करीय पसाउ
ते मेल्हईं माहि वन खंड, पडईं पत्र छूटईं पल खंड
शील भंग जे करईं नरनारि, पच्छ काल हुईं ते नरग मझारि
अग्निम वर्ण पूतलि सुबंध, सहइ दुक्ख ते नव नव भंगि
पाप करी रे करतउ गेहि, ताही क्यूंहिं ऊकालईं तेल
कीईं करम नवि छेदईं थाइ ऊाडी घालइ ते तेलइ माहि (१४-२१)

सिर पर करोत रखना, कोल्हू में पेरना, तप्त स्त्री पुतलियों से संभोग कराना कुंभी पाक में डाल गगन में धूलकी भांति उछाल कर त्रिशूलों की धरती पर गिराना, आग में जलाना, खंड खंडकरना, ठंडा पानी मांगने पर तप्त कथीर पिलाना, गर्म तेल के कड़ाह में उबालना आदि वर्णन कितने सजीव और यथार्थ हैं परन्तु इन वर्णनों के वर्णन क्रम में वही परंपराजन्य रूढ़िवादिता है।

कवि ने इन वर्णनों के अतिरिक्त आलंकारिक शैली में जैन दर्शन के सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है। माता पिता भाई, बेटा कोई किसी का साथ नहीं देते। तृष्णा विनाश का कारण है। इन्द्रियों की प्यास मनुष्य को भ्रमण करती है।पुद्गल की भांति मनुष्य भ्रमण करता है। यह संसार दुःख दुखों की खान है।अतः मनुष्य को सद्कर्म जिनवर ध्यान, समकित का पालन कर जन्म को सफल बनाना चाहिए। बारह व्रत, अष्ट कर्म, सम्यक् दर्शन, चउवीस जिनेश्वर का ध्यान करना चाहिए ताकि ८४ लाख योनियों से मनुष्य बच जाय। भाषा की सरलता वर्णन का प्रवाह और दार्शनिक सिद्धान्तों का जन भाषा में प्रचार करने के लिए इस रचना की उपयोगिता द्रष्टव्य है। भाषा सरल हिन्दी है जिस पर यत्र तत्र पुरानी राजस्थानी और जूनी गुजराती के शब्दों का प्रभाव परिलक्षित होता है।कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन देखिए:-

(१) पुदगल तणीज संख्या जाणि, फिरतई जीवि न कीधी काणि
अनेकि वार जीवि कीधां काज, जनम मरणि पूरिया वउद राज
अर्नत पुदगल नउ आणिउ, छेहला पामिउ वीतराग देउ
एकमना ते आराधई जिमइ, पवहा फेरा छूटई तिमइ (४९-५०)

--- --- ---

(२) चउदं राज ऊपरि विस्तारि, सिद्ध शिला छइ छत्राकरि
अनेक गुण छंई सिद्ध विलास, सुख तणउ ते पार न लहंति
आवइ जीवनर्म घरिवां काज, जेहे कहिवं कीधउं वीतराग
अठ कर्मचरा नी मोठी वेलि, गिया इणि सिद्धिदई पेलाकेलि
चउवीसमउ जिणेसर देव, तिहिं आपणा आणिउ भेव
मोख मार्गि इम परिवाई, यति जीजा जे श्रावक धाई

सिद्धान्त सूत्र कीघई सुविचार, गुरुआ गोअम जोड गणधार
जाइ पाप जस लीधई नामि करउ पसाउ प्रभ गोतम सामि (६२-६५)

(३) कल्पद्रुम धर्म निहालि दृढ समकित मूल गिउं पायालि
बारहव्रत डालि पसरी जोइ तप नी कूपल मलकईसोइ
सीतल छायाँ विसमउ भावना नीरिहिं सीचिउ धरउ
फुल पत्रवार देवलोक जाणि, पह वृक्ष मउं फलमुकरि निर्वाणि
निश्चई तरिसिई ते संसार जे पुण ले सहं संजम भार
पंच महाव्रत सूधा धरइ मुगति सिरी ते जाई नय बरई
चरित्र भणीइ खडगह धारु पुण्यवंत पालह एविचारु
महाव्रत नउ न धरइ भार बार, व्रत नउकरउ अंगीकार
बारहंव्रत धरि समकित पालि, इसी सामग्री म नीगमि आलि
कूड कपट नइ काइ लागउ साथि, इसां व्रत बल नहीं वडह हाथि

---- --- ---

विरलउ पुन्यवंत कोइ साहु, बेटा रिद्धि सपउ समदाय
धर्मवंत विनयवंत होइ भविय, कुटुंबउ पणीई सोइ
धर्न कृतारथ ते नरनारि जे बरतइ जिणधर्म मझारि
समोसरणि प्रभ करई बखाण तीहं नी प्रशंसा महाविदेवाण

--- ---- ---

जागेतीह नइ छइ चक्क वृत्ति रिद्धि बउद रयण छइ अनय नवनिधि
राजरिद्धि सहू समुदाय जीहंघरि पकलसइ जिननाह
कामधेनु तहि बाधी बारि, चिंतामणि तीह घरह मज्झारि
मोह मयण मउ नहीं कोइ, साधु, जीहि चित्ति एक वसइ अरिहं (७२-८१)

इस प्रकार पूरी रचना सरस चउपइ छन्द में लिखी गई है।रचना छन्द प्रधान है तथा आध्यात्मिक संदेश पूर्ण जन काव्य है। जिसका प्रचार जन साधारण में खूब रहा होगा। चउपइ छंदक रचनाओं की परंपरा में वस्तो कृत चिहुंगति चउपइ का स्थान महत्वपूर्ण कृतियों में सदैव बना रहेगा।

इस प्रकार उक्त विवेच्य चउपइ संज्ञक सभी रचनाओं में चउपइ छन्द का प्राधान्य है। साथ ही इन रचनाओं के विषयों को देखकर यह कहा जा सकता है कि इसमें बारह मासों से लेकर आध्यात्मिक काव्य, चरित, कथा, प्रबन्ध, प्रशस्तिगान तक का विस्तार मिलता है। कथा की ये विविध परंपरायें इन रचनाओं के द्वारा स्पष्ट होती हैं। कवि ने चउपइ छन्द में चरित, बारहमासा कथा प्रशस्ति दार्शनिक काव्यों तथा प्रबन्ध काव्यों को भी कथा परंपरा में सूत्र-बद्ध किया है। वस्तुतः चउपई संज्ञक रचनाओं के विषय अलग अलग होते हुए भी छन्द की दृष्टि से सभी रचनायें छन्द प्रधान हैं। अतः काव्य रूपों की दृष्टि से इन्हें छन्द प्रधान रचनाओं में ही स्थान दिया गया है।

(ख)

चर्चरी काव्य

। ८ ।

चर्चरी काव्य

छन्द प्रधान रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत करते समय चर्चरी संज्ञक रचनाओं को नहीं भुलाया जा सकता। चर्चरी शब्द इतना अधिक प्रयुक्त हुआ है कि प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि इसके विभिन्न अर्थ तथा रूप देखने को मिल जाते हैं। चर्चरी नाम से अभिहित की गई रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय चर्चरी शब्द के विभिन्न अर्थ, उसके उद्भव और विकास पर प्रकाश डालना भी आवश्यक प्रतीत होता है। सच तो यह है कि पर्याप्त प्राचीन काल से चर्चरी शब्द इतना प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुआ कि विभिन्न कालों में इसके विभिन्न अर्थ होने लगे और इस प्रकार अकेली चर्चरी शब्द कई अर्थों का द्योतक बना रहा। वस्तुतः यह चर्चरी शब्द ही इतना अधिक सरस प्रतीत होता है कि इस पर चिंतन करते समय मस्तिष्क में इसके अनेक अर्थ स्पष्ट होते हैं। यह शब्द ऐतिहासिक होने के साथ साथ सांस्कृतिक और अनुभूति प्रधान साहित्यिक शब्द है और इसीलिए इसका सम्यक् विश्लेषण चर्चरी शब्द की परम्परा के विशेष प्रकाश में किया जा सकता है।

संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी के कोश ग्रन्थों में भी चर्चरी शब्द के विभिन्न अर्थ मिलते हैं कुछ में एक साम्य मिलता है तो कुछ शब्दों में पर्याप्त असाम्य। स्थिति इस शब्द के लिए मतैक्य वाली नहीं है। वास्तव में इस शब्द की परम्परा का इसके विकास के लिए विश्लेषण आवश्यक प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में क्योंकि चच्चरी, चर्चरी, चर्चरिका चाचरि, चाचरिका आदि शब्द एक ही साथ प्रयुक्त हुए मिलते हैं अतः चच्चरी शब्द का सम्यक् परिशीलन करना और अधिक आवश्यक है।

विभिन्न प्रमाणों के आधार पर चर्चरिका शब्द का विश्लेषण आगे किया जायगा। चर्चरी का जो सबसे प्राचीनतम उल्लेख है, उसी से चर्चरी का उद्भव स्पष्ट हो सकता है। चर्चरी का प्राचीन से प्राचीनतम उल्लेख हरिभद्रसूरि की प्राकृत कादंबरी नामक समराइच्च कहा (समरादित्यकथा) में मिलता है। इसमें चर्चरी विषयक चार उल्लेख उपलब्ध हुए हैं उसमें उनका अर्थ यह स्पष्ट होता है कि गायकों की टोली

जो खास वसन्तके समय में खड़ी रहती है और चौक में नाचने आती है, नाचती है, घोष करती है और लोगों का अनुरंजन करती है। इन उल्लेखों से प्राचीनकाल में अभिहित शिल्प पर प्रकाश पड़ता है। ये उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जो इस प्रकार हैं:-

१- भगवया भणिहं सुण, पत्थ वेयारन्तर जम्मे पवत्ते मयण महसवे निग्गयासु विचित्त वेसासु नगर चच्चरीसु तरुण जण वंद्र परिगयस्स वसंतकील मणुहवन्तेन दिट्ठा समासन्नचारिणी वत्थ सोहग चच्चरिति। दट्ठणय अन्नाण दोसेण जाइ-कुलाइ गव्विपर्ण कहं नीय चच्चरी अम्हाण चच्चरीए समासन्नं परिव्वयइ त्ति कयत्थि या वत्थ सोहगा -

<u>संस्कृत छाया</u>-

भगवता भणितं- श्रुणु, अत्र वैवान्तर जन्मनि प्रवृत्ति मदन महोत्सव निर्गतासु विचित्रवेषासु नगर चत्वरी (चच्चरी) षु तरुण जनवृंद परिगतेन बहुजन प्रशंसनीया वसंत क्रीडामनुभवता दृष्ट्वा समासन्न चारिणी वस्त्र शोधक चचरी इति दृष्ट्वा च अज्ञान दोषेण जाति कुलादिगर्वितेन कथनीय चर्चरी अस्माकं चत्वर्यां (चर्चर्यौ) समासन्नं परिव्रजति इति कदर्थिता वस्त्र शोधका:)

भगवान ने कहा- सुनो! यहां जन्मान्तर जन्म में मद-महोत्सव चले हुए विचित्र वेश वाली नगर की गायक टोलियां बाहर निकलकर तरुण जन समूहों से व्याप्त हुई वसन्त क्रीड़ा देखकर पास में बैठी हुई भाग लेती हुई धोबियों की गायक टोली को देखकर, अज्ञात दोष से, जातिकुल आदि से गर्ववाणी में इसे देखकर कहा- " कि किस लिए यह नीच चर्चरी गायक टोली हमारी टोली में पास बैठकर फिरती है- इस वचनों से धोबियों का अपमान किया)[१]

१- समराइच्च कहा: प्रो० हर्मन जैकोबी संपादित पृ० ५३।

उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि लेखक ने चर्चरी शब्द का जिस रूप में प्रयोग किया है वह निम्न श्रेणी वर्ग द्वारा गाये जाने वाले गीत के लिए या संगीत के किसी घटिया किस्म के प्रकार विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है, परन्तु इसी ग्रन्थ में यही शब्द विभिन्न अर्थों के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है उदाहरणार्थ:-

२- तओ तत्थेव चिट्ठमाणस्स आगओ --- वसन्त समओ वियम्भओ
मलय मारुओ फुल्लियाई काणणुज्जणाई उच्छलियो परहुयासो पयत्ताओ
नयरि चच्चरी ओ-

ह संस्कृत: ततः तत्रैव तिष्ठत आगतो वसन्त समयः विजृंभितो मलय
मारुतः फुल्लितानि काननोद्यानानि उच्छलितः पर भृतासःप्रवृत्ता नगर चर्चयः
(फिर वहीं रहते वसन्त समय आया मलयपवन विस्तार को प्राप्त हुआ,
कानन अरण्यक उद्यान तथा बाग प्रफुल्ल हुए कोयल की आवाज उठली और नगर
की चर्चरियाँ प्रवृत्ती)[१]

इस उद्धरण में चर्चरी शब्द गायक टोलियों या उत्सव मंडलियों के लिए प्रयुक्त हुआ है।इसी प्रकार शेष दो उद्धरण देखे जा सकते हैं:-

३-ह अन्नयायं समागओ वसन्त समओ।----- सुइ सुह सुवन्त चच्चरी तूर महुर
निग्घोसो।

<u>संस्कृत-</u>

अन्यदा च समागतो वसन्त समयः।--- श्रुति सुख श्रूयमाण चर्चरी तूर्य
मधुर निर्घोषो --- ।

(इसके बाद वसन्त समय आ पहुंचा।-- कैसा? अनेक विशेषणों में से एक विशेषण प्राप्त करता जिसमें चर्चरी और तूर्य वाद्य को सुनाकर मधुर निर्घोष श्रुति सुख देने वाला। ऐसा)[२]

१- समराइच्च कहा : प्रो० हर्मनजेकोबी संपादित पृ० ११८।

२- वही, पृ० ४३६।

४- एवं गुणाहिरामे य पवत्ते वसन्त समए सो सेण कुमारो किलानिमित्त मेव विसेसुज्जलनेवच्छेण संगओ परियणेणं पयट्टो अमरनन्दणं उज्जाणं।

दिट्ठोय----- पवज्जमाणेणं वसन्त चच्चरी तूरेणं नच्च माणेहि किंकरगणेहि परावणगओ विव तियसकुमार परियरिओ देवराओ विव-

<u>संस्कृत</u>

एवं गुणाभिरामे च प्रवृत्ते वसन्त समये सषेनकुमारः क्रीड़ा निमित्त मेव विशेषोज्ज्वल नेपथ्येन संगतः परिजनेन प्रवृत्तो अमरनन्दन मुद्यानम् दृष्टश्च---- प्रवाद्य मानेन वसन्त,चर्चरी तूर्णोश नृत्यद्‌भिः किंकरगणै ऐरावणगत इव त्रिदशकुमार परिकरितो देवराज इति।

(इस प्रकार के गुणों से सुन्दर वसन्त समय के आने पर वे सेनकुमार क्रीड़ा के लिए ही विशेष उज्ज्वल नेपथ्यवाले परिजनों सहित अमरनंदन उद्यान में प्रवृत्त हुए और उन्होंने देखा (क्या ? माने)वसन्त की चर्चरी गायक टोलियों के बजते हुए तूर्य वाद्यों पर नाचते हुए किंकरगण के साथ ऐरावत हाथी पर बैठा हुआ त्रिदश अर्थात् देव के कुमारों के परिकर वाला देवराज अर्थात् इन्द्र होय ऐसा)[१]

इस प्रकार इस विवेचन में तृतीय उद्धरण में चर्चरी का अर्थ सुन्दर वाद्यमान करके उसे मधुर निर्घोष युक्तियुक्त देनेवाला कहा गया है। अन्तिम या चतुर्थ उद्धरण में चर्चरी को बसन्त गान बताया है।वे टोलियां जो बसन्त में चर्चरी प्रस्तुत करती है, जिनके साथ तूर्य आदि वाद्य बजाये जाते थे। पर ये टोलियां किंकर जैसे निम्नस्थ वर्ग की होती थीं।

चर्चरी सम्बन्धी अन्यप्रमाण जो तत्कालीन सहायक ग्रन्थों में उपलब्ध होते है।उसके उल्लेख संक्षेप में इस प्रकार है। इन उल्लेखों में चर्चरी सम्बन्धी अर्थों में भी परिवर्तन भी मिलते है। चर्चरी का दूसरा अर्थ एक प्रकार का गीत विशेष है।श्री हेम चन्द्र आचार्य अभिधान चिंतामणि[२] में लिखते है:- गुणाकल्या चर्चरी चर्चरी स्मे

१- समराइच्च कहा: प्रो० जेकोबी, पृ० ११८।

२- अभिधान चिंतामणि (२-१८७) हेमचन्द्राचार्य।

ये वस्त्र प्राप्त कर उसकी स्तुति में चाकमर्यांत झुनया -(जो बड़े चारु थे वैसे सुन्दर बोलों वाली शुभ वाणी चर्चरी)[1]

अपभ्रंश काव्यत्रयी में चर्चरी पर बहुत विस्तार से विचार किया गया है तथा उसमें जिन जिन विभिन्न विद्वानों ने चर्चरी का प्रयोग किया गया है।उनका भी उल्लेख है। अपभ्रंश काव्यत्रयी के साथ साथ कुवलयमाला कथायाम् में भी चर्चरी को सम्बोधित करते हुए उल्लेख मिल जाता है।[2]

१- प्राकृतापभ्रंशादि भाषायां चच्चरी, चार्चर, इतिनाम्ना संस्कृत भाषायां च चर्चरी इति संज्ञया प्रसिद्धाया गीतेर्नृत्य पूर्व गान क्रीडन-गुम्फनादि पद्धतिः प्राचीन परिज्ञायते यतः कवि कालिदासो विक्रमोर्वश्यास्य-तुर्यांके प्रभूतानि चर्चरी पद्यान्यपभ्रंश भाषायां व्यरचयत्। हरिभद्रसूरिः समरा दित्यकथायां दाक्षिण्य चिन्होद्योतनाचार्यः कुवलयमाला कथायां, शीलांगचार्यश्चतुष्पंचाशन्महापुरुष चरिते, कविः श्री हर्षो रत्नावली नाटिकायाः प्रारम्भे चान्यत्र स्मरन्ति स्मचर्चरी मां।पिंगलनाग हेमचन्द्रोदयः प्रतिपादयन्ति स्मचर्चरी लक्षणानि निजच्छन्दः शास्त्रच्छन्दो नुशासनादौ।

प्रसिद्धमस्तु खलु कवि सोलणकृता चर्चरी इतएव प्रकाशित प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रहे । उपलभ्यते चान्या पत्तनीय जैन भाण्डागारादोवेलाउली रागेण गीयमाना शत्रुञ्जय माउनादि जिन स्तुतिरूपा पंचत्रिंशद्गाथा प्रमाणाप्रायो विक्रमीय चतुर्दश शताब्दी सम्भवा, इतरा च गुर्जरी रागेण गीयमाना गुरुस्तुति रूपा संक्षिप्ता पंचदशगाथा परिमिता।

यमकालंकारा द्दयलंकता प्रस्तुत चर्चरी तु सप्तचत्वारिंशत्पद्य प्रमिता जिन वल्लभसूरि स्तुति रूपा चैत्यविधि प्रधाना संस्कृतवृत्ति समन्विता वृत्ति कृत्सूचनानुसारेण पट (ट) मंजरी भाषया नृत्यद्भि र्गीयमाना च श्रायते। पटमंजरी रागो अद्यापि खलु नारद कृते इत एव प्रकाशिते संगीत मकरंदादौ दृश्यन्ते प्रभूतानि पटमंजरी पद्यानि विक्रमीय सप्तम शताब्दी सम्भूते लुई पाद प्रभृतिभि विरचितानु चर्यचर्या विनिश्चयादिषु श्रीयुत महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री महाशयैः सम्पादिते बंगी य साहित्य परिषदा प्रकाशिते बौद्धगाने ओ दोहा संज्ञके पुस्तके वि० सं० १३५८ वर्षे पटमंजरी

भाषया रचितं गौतम चरित्र कुलक मुपालभ्यते पत्तनीय जैन भाण्डागारे।अनेन पट(ठ) मंजरी रागस्य चिरात् प्रतिष्ठानुबन्धीय है।- अपभ्रंश काव्यत्रयी पृ० ११४ सी०डी० दलाल भूमिका भाग।

२- बहातेण कैवलिणा अवंध परखिउण पंचचोर सवाई रायकच्चमच्छलेण महामोह गह गहिआई अभिवर्धिऊण इमाए चच्चरीए संबोहियाई।

अर्थात्-

संबुज्झह किंपुण बुज्झह एत्तिअय मितार्किंचि मुज्झह
करिह धं करियव्वयं पुण बुज्झह तं मरि अच्चय।।ध्रुवयं।
कविण कमलमलिताअम चक्कवडिंहि तह चीपविमुल घण कडिअल भार किलंतउ
तालवहि रवह गायलिकमलवड्ढ्व रासयम्मि जइलभइ जुवतीसत्थउ
संबुज्झह किंपुण बुज्झह पुणोपुणवं (कुवलयमाला कथायाम्) (जे०भा० ता०३)

इस प्रकार प्राचीनकाल में चर्चरी का स्वरूप जिस प्रकार का गीतिशिल्प लिए था उसकी प्राचीनता और चच्चरी- चार्चरि इस नाम की सार्थकता के प्रमाण प्राकृत अपभ्रंश भाषा में चच्चरी-चाचरि और संस्कृत भाषा में चर्चरी शब्दों आदि के रूप में मिल जाते है। ये नाम अत्यन्त प्रसिद्ध प्राप्त गीत, नृत्यपूर्वक गान क्रीड़ा गुल्लनादि पद्धति की भांति प्राचीन है। महाकवि कालिदास ने विक्रम उर्वशी के चौथे अंक में बहुत से चर्चरी पद्यों की रचना अपभ्रंश भाषा में की। हरिभद्र सूरि ने भी समरादित्य कथा के आदि में दाक्षिण्य चिन्ह ऐसे उद्योतन आचार्य ने कुवलयमाला कथा की आदि में शीलांगाचार्य ने चतुप्पंचा पन्महापुरुष चरितमों सर्व श्री हर्ष ने रत्नावली नाटिकाके प्रारम्भ में और भी अन्य कइयों ने चर्चरी का वर्णन किया है। हेमचन्द्राचार्य के पहले के प्राकृत और अपभ्रंश कर्ताओं ने भी चर्चरी का वर्णन किया है। यह गीत बहुत ही प्रसिद्ध गीत है।[१] विक्रम की दसवीं शताब्दी में लिखी धनपाल

१- घरि घरि मंगलइ पयोसियाई, घरि घरि मिहुणइ परि ओस आई
घरि घरि तोरणई पसारियाई, घरि घरि सयणई अप्पाहियाई
घरि घरि गहुचंदन छड्य दिन्न, मरु दुंदयरगयन्दवणय पइन्न
घरि घरि सरेणुरई पिंजरीउ सोहंति चूयतरुमंजरीउ
घरि घरि चच्चरि से उकसाई घरि घरि अंदोलय सोहसहिं
घरि घरि कणवत्था पकता सोहै, घरि घरि आढधि महाजीसोह

घत्ता- घरि घरि जय मंगल कलस किय, घरि घरि घर वेवय अवयरिय
घरि घरि सिंगार वेसु धरिधि नारियउ वर जीवइहिं उत्थरिवि
(भविसयतकहा -८-९)

(घर घर मंगल का प्रदुर्भाव था।घर घर वर वधू की जोड़ी परिपुष्ट थी।घर घर तोरण बंधे थे घर घर मनुष्य आत्महित चाहते थे घर घर चंदन का छिड़कन होता था। चंदन छींटे हुए मरुवे के वृक्ष कुंदवन में होने वाले दवना जैसे फूल फूल रहे थे। रेणु एवं रंजित रति मंजर में रहने वाली आम्रवृक्ष की मंजरी शोभायमान थी घर घर चर्चरी कौतूहल थे। घर घर हिंडोले डाले हुए झूलते हुए सोहला गाते थे घर घर वस्त्र और आभूषणों की शोभा एक थी। घर घर महान जय के ओघ भरे थे।घर घर रूप से रंजित मनवाली युवतियाँ दर्पण हस्तिक देखती थी घर घर जय के मंगल कलश लिए हुए थे।घर घर देवता अवतरित थे और घर घर शृंगार वेश धारण करती हुयी उत्तम युवतियों ने नाच आरम्भ किए थे
- भविसयत्त कहा धनपालकृत (८-९)

विरचित भविसयत कहा में भी इस गीत का उल्लेख मिल जाता है। इन उल्लेखों के अतिरिक्त और भी कई सूचनायें चर्चरी शब्द की विभिन्न रूपों में महत्ता स्पष्ट करने को व्यवहृत हुए हैं।

अपभ्रंश की चर्चरी ग्रन्थों के भाष्यों में चर्चरी शब्द का अर्थ खेल बताया गया है।[1] जिनदत्त सूरि की एक चर्चरी में उसके टीकाकार श्री जिनपाल उपाध्याय ने लिखा है कि यह भाषा निबद्ध गान नाच नाच कर गाया जाता है। इस चर्चरी का प्रथम पद इस प्रकार है:-

> नबुह अउबुधु तुक्खिइ नवरस भर सहिउ
>
> लद्धुध पसिद्धिधहि सुकइहिं सायर जो महिउ
>
> सुकइ माहुति पसंसहि जे तहु सुह गुरुहु
>
> साहु न मुणइ अयाणुय मइजिय सुरगुरुहु

चर्चरी शब्द की व्युत्पत्ति का अनुमान (प्रा॰ चच्चर) चौरट्टा- चौट्टं चौक से भी किया जा सकता है। (जहाँ लोग इकट्ठे होकर नृत्य सहित गान करते हैं अतः नृत्य सहित गाने वालों के समूह को चर्चरी कहते हैं) संस्कृत चर्चरी जो कहने में आता है उसका अर्थ है हाथ की ताली की आवाज, और इसी कारण उसका संभवतः यह नाम पड़ा है। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में चर्चरी के कई अर्थ प्रयुक्त हुए हैं।[2] पाइअसद्दमहण्णवो में चर्चरी के अनेक प्राचीन अर्थ स्पष्ट होते हैं।[3] हिन्दी शब्द सागर ने भी इन्हीं

१- देखिए अपभ्रंश काव्यत्रयी- श्री सी॰डी॰ दलाल- प्रस्तावना भाग।
२- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ-संग्राहक द्वारका प्रसाद शर्मा चतुर्वेदी
चर्चरिका- स्त्री ० १ गीत विशेष, २ ताल देना
चर्चरी- पंडितों का पाठ ३ उत्सव के समय का खेल ४ उत्सव का उल्लास
५- उत्सव ६ थापकूटी, ७ घुंघराले बाल।
३- देखिए पाइअसद्द महण्णवो -पं॰ हर गोविन्द दास सेठ कृत- पृ॰ ३९७।
चच्च-पुं (चर्च) समालम्भन, चन्दन वगैरह का शरीर में उपलेप
चच्चर (चत्वर) चौहट्टा, चौरास्ता, चौक
चच्चरिअ पुं॰(दे चंचरीक-भ्रमर भमरा)
चच्चरिया स्त्री॰(चर्चरिका) नृत्य विशेष (रंभा)
चच्चरी स्त्री॰ (चर्चरी १ गीत विशेष एक प्रकार का गान- विरचरिय चच्चरीए व सुहरिअ।
(अ) उज्जाण मु भाले (सुर ३, ५४) (ब) पारंभिय चच्चरीगीया सुपा ५५)
(स) गाने वाले टोली, गाने वालों का यूथ। (द) पवढे मयण महूसव निगुणयाय विचित्तवेसासु नवर चच्चरी सु कउणंमि चच्चरी सम्हाय चच्चरीए समासन्नं परिव्वयई (सं॰ ४२) (क) छन्द विशेष (पिंग) (ख) हाथ की ताली की आवाज।

ग्रन्थों के अर्थों का समर्थन किया है [१]।

वास्तव में इन अर्थों से यह स्पष्ट होता है कि चर्चरी एक प्रकार का गीत विशेष था जो समूह के रूप गाया जाता था।यह गान इतना अधिक लोक प्रचलित था कि इसे लोकगीत की संज्ञा सरलता से दी जासकती है। वास्तव में इसकी पुष्टि १३वीं शताब्दी के जिनदत्त सूरि नामक जैन संत कवि ने लोक प्रचलित चर्चरी और रासक आदि के गीतों का सहारा लिया था, इस तथ्य से होती है।चर्चरी उन दिनों जनता में बड़े चाव से गाई जाती रही होगी। श्री हर्षदेव की रत्नावलीतथा बाण भट्ट की रचनाओं से भी चर्चरी गीत की सूचना प्राप्त होती है।१२वीं शताब्दी में सोमप्रभ ने वसन्त काल में चर्चरी गान सुना था।[२]

१३वीं शताब्दी के लक्ष्मण नामक कविने यमुना नदी के आस पास बसे रायवड्डिय नगर का वर्णन किया है[३] आगरे के पास स्थित संभवत: इस पुर में कवि ने नगर के चौराहे का वर्णन किया है जो चर्चर ध्वनि से उद्दाम था। श्री अगरचंद नाहटा का मत है कि रास की भाँति चंचल एवं नृत्य के साथ विशेषत: उत्सव आदि में गाई जाने वाली रचना को चर्चरी संज्ञा दी गई है[४]।

इन सब उल्लेखों के अतिरिक्त चर्चरी का एक छंद विशेष के रूप में भी वर्णन मिलता है।यदि वर्णिक छंदों में समवृत्त का एक भेद है। भानु के छन्द प्रभाकर में इस चर्चरी का छंद का लक्षण र स ज ज भ र के योग से बनता है जिसका रूप SIS, IIS, ISI, SII, SIS) है।प्राकृत पैंगल में इस[५] छंद का नाम चर्चरी मिलता है। छंदोनुशासन[६] में उज्ज्वल, छन्द :सून (८-१६) में विबुध प्रिया आदि नाम मिलते हैं।

१- चंचरी- संज्ञा स्त्री (सं० १ भ्रमर, भैंवरी, २ चांचरि होली में गाने का यह गीत ३-हरिप्रिया छंद ४- एक वर्णवृत्त।चचरा।चंचली।विबुध प्रिया ५ छब्बीस मात्राओं का एक छंद- देखिए हिन्दी शब्द सागर-रामचन्द्र वर्मा पृ० ३४७।

२- पर छन्द वाड़ चच्चरिय धाइ।जनपद वर्ष १ अंक ३ पृ० ५-८।

३- जउणायह उत्तर तडित्य रायवड्डिय - वही।

४- देखिए, नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५८,अंक ४ सं०२०१० पृ० ४३२ पर श्री अगरचन्द नाहटा लिखित- प्राचीन भाषा काव्यों की विविध संज्ञाएं- लेख।

५- दे० प्राकृत पैंगलम् : (२: १८४)

६- छंदोनुशासन- हेमचंद, (२:३१२-३१३)।

आलोचकों ने इस चर्चरी छन्द का शिल्प इस प्रकार माना है- इस छंद में १०, ८ वर्णों पर यति होती है पर पिंगल में ८, १० वर्णों पर यति मानी है।इसका मात्रिक रूप गीति का छन्द है।

उक्त प्रमाणों के अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध चर्चरी सम्बन्धी और भी जितने प्रमाण तथा विभिन्न अर्थसूचक विवरण एवं वर्णन मिलते हैं वे इस प्रकार हैं:-

(१) सं० १०९४ में चन्द्रावती में धनेश्वर सूरि द्वारा विरचित प्राकृत सुर सुन्दरी चरिया ग्रन्थ में चच्चरी का उल्लेख देखिए:-

> तो ओरिसे वंसते दिसि दिसि पसरंत परहुया सद्दे
> वित्थरिय चच्चरी- स मुहरिय उज्जाण भूभागो ।।३, ५४

इस प्रकार की वसंत रितु में दिशा दिशा में कोयल के शब्द प्रसारित है और विस्तार प्राप्त हुए चर्चरी के रव से मुखरित उद्यान के उस भू भाग में- (आवाज करते थे)

> कीलंत-कामिणि-यण रणंत-नेउर सेण तरु-नियरो(तरुणीनियरो)
> मयण-महूसव-तुट्ठो गायइ इव च्चुचरि जत्थ ।।३, १०८
>
> --- --- ---
>
> उद्दाम-वज्जंत-अच्चंत-वर-मद्दलं
> मत्तवर कामिणि-संघक-गुंदलं।।३, ११५

(क्रीड़ा करती कामिनियों के रणकार करते नूपुर तथा झांझर के आवाज से नवयुवतियों का समूह मदन महोत्सव से तुष्ट होकर मानों चार्चरी की भांति गान गाया जाता था ऐसा उद्यान।उद्दाम तथा जोर से बजने वाले अत्यन्त श्रेष्ठ मादल या मृदंग वाला स्वर से मत्त हुए कामिनियों के संघ में गुंदल ऐसी आनन्द की सुखद ध्वनि करने वाले चर्चरी के शब्दों से आकर्षित हुए कामुक जन, पद्धटिका छंद के शब्दों सहित नाचने वाले शब्दों सहित नाचते हुए अनेक वांकुलों वाले (कदली ग्रह में)।

(२) सं० ११९९ में लक्ष्मणमणि द्वारा विरचित सुपासनाह चारिय में भी चच्चरी का उल्लेख स्पष्ट होता है:-

तवणीय-दह-उ दिय-चीर्णसुय चय सहस्स रमणीया

रमणीय-रमणी-सहरिस-पारंभिय चच्चरी-गीया। २३-५५।

तपा कर शुद्ध किए हुए सोने के दंड ऊपर ऊँचे किए हुए चिनाई कपड़े के सहस्त्रों रमणीय चय और सहर्ष चर्चरी गीतों को प्रारम्भ करने वाली सहस्त्र रमणीय रमणियों वाली (वाराणसी नगरी)।

(३) सं० १२११ में स्वर्गीय जिनदत्तसूरि ने अपने गुरु श्री जिनवल्लभसूरि के लिए गुरु स्तुति के रूप मेंअपभ्रंश और तत्कालीन देशी भाषा में की है। उस पर संस्कृत में सं० १२९४ में जिनपाल उपाध्याय ने उस पर एक भाष्य लिखा है। उन्होंने उस स्तुति का नाम चर्चरी रक्खा है।यह प्रथम मंजरी भाषा [१] में तथा नृत्य के सहित गाई जाती है।उन्हीं जिनपाल उपाध्याय ने जिनदत्तसूरि के अपभ्रंश काव्य नाम से उपदेश धर्म रसायन रास नामक संस्कृत टीका रची है उसके प्रारम्भ में बताया गया है-

चर्च्चरी-रासक-प्रख्ये प्रबन्धे प्राकृते किल:

वृत्ति प्रवृत्ति माधत्ते प्राय: कोऽपि विचक्षण: ।।

(४) प्राकृत पिंगल में चर्चरी नामक एक छन्द विशेष है। प्राकृत पिंगल सूत्र में तथा हेमचन्द्र अपने ग्रन्थ छंदोनुशासन में २३१ वें पद्य में चर्चरी का लक्षण इस प्रकार स्पष्ट करते हैं- आदि में रगण(ऽ।ऽ)फिर सगण (।।ऽ) फिर एक लघु फिर ताल आदि गुरु विकल मध्यमें हो। फिर एक गुरु। फिर एक लघु और एक गुरु, दो लघु एक गुरु, एक लघु और एक गुरु- उद्धृत पद को देखिए

आइ रगण हत्थ काहल ताल दिज्जहु मज्झआ

सद्दहार पअन्त विण्णवि कव्वलोअ विलुक्खिआ

बे वि काहल हार णूरहु संख कंकण सोहणा

१- चर्चमंजरी नामक राग नारद कृत संगीत मकरंद में बताई गई है।जिसकी ७वीं शताब्दी में हुए अनेक चर्यमंजरी काव्य तथा लइपाद आदि विरचित चर्याचर्य आदि का महामहो० हर प्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा बंगीय परिषद् द्वारा प्रकाशित बौद्ध गान और दोहा ग्रन्थ में मिल जाते हैं।चर्चमंजरी भाषा में सं० १३५८ में रचा हुआ एक अपभ्रंश का काव्य है उससे स्पष्ट होता है कि पद मंजरी भाषा में प्रचलित राग की प्रतिष्ठा रही प्रतीत होती है।

म अराअ भणन्त सुन्दरि चच्चरी मणमोहणा।।२३१।।

उक्त पद्य की संस्कृत टीका भूषण में प्रकारान्तर से इस प्रकार मिलती है-

हारयुक्त सुवर्ण कुन्डल पाणि कंस विराजिता

पाद नूपुर संगता सुपयोधरद्वय भूषिता

शोभिता वलयैन पन्नगराज पिंगलवर्णिता

चर्चरी तरुणीव चेतसि चाकचीति सुसंगता।।

(५) प्राकृत पिंगल सूत्र में चर्चरी छंद का उदाहरण इस प्रकार दिया हुआ है-

पाअणेआ झणक्कइ हंस-सद्द-सुसोहणा

थोअ थोअ थणग्ग णच्चई मोत्तिदाम मणोहरा

वाम-दाहिण वाण धावइ तिक्ख चक्खु कडक्खआ

काहि पुरिस गेह-मंडणि एह सुंदरि पच्छिआ।।२३२।।

(जिसके पैरों में नूपुर हंस शब्द जैसा सुशोभन झनकार करता है, जिसके थोड़े थोड़े नवीन उभरे हुए स्तनों के ऊपर मनोहर मुक्ताहार नाचता है जिसके दाहिनी बाईं ओर तीक्ष्ण आंख के कटाक्ष बाण की भांति दौड़ते हैं। ऐसी सुन्दरी किस पुरुष के घर की शोभा बढ़ाती है सो तू देख)।

(६) हेमचन्द्राचार्य ने अपने छंदोनुशासन के अध्याय (७, ४६) में रथ्या वर्णक छन्द का एक सूत्र दिया है कि षचुता रथ्यावर्णकं डचैः पुरित-चमयाणः चतुर्था त्रिमन्तक त्रिमात्रश्च रथ्यावर्णक डचैरिति द्वादशभिरष्टभिश्च यतिः। इस प्रकार एक ६ मात्रा, सात चार मात्रा और एक त्रिमात्रा अर्थात् कुल ३७ मात्रा का रथ्यावर्णक है कि जिसमें १२वीं और फिर आठवीं और २०वीं मात्रा पर यति आती है। इसके पश्चात् (७, ३७) में स चच्चरी डचैः डचे रिति चतुर्दश भिरष्टभिश्च यतिश्चेत तदा तदेव रथ्यावर्णक चच्चरी। जिसमें १४वीं और २३वीं मात्रा पर यति आती है वह रथ्यावर्णक चच्चरी कहलाती है।

(७) स्वयंभूछंद में (४,१९५ तथा १९६) में भी रथ्यावर्णक का उदाहरण मिल जाता है। उदाहरण दोनों का अन्तर देखिए-

विरह रहक्कई सुहय न जंपइ न हसइ भावइ केवलु पिअपच्चासइ

अहवा किन्ति रत्थावकणणु करिसहुं निश्चई मसिसहुं (राइ) तुह जहु नासइ(४६)
(विरह के दुख से वह न तो देखती है न हंसती है परन्तु केवल प्रियतम की प्रत्याशा का ध्यान करती है या कितना रथ्यावर्णन करे वह तो शून्य वर्णन होगा, वह निश्चय ही मरेगा और उसका यश नाश को प्राप्त होगा)।

चर्चरी छन्द का उदाहरण देखिए:-

चर्चुचरि चाच्चवहिं अच्छर किविरासउ प्रेस्सहि तिविकिवि गायहिं वर धवलु
रचहि रयण-सत्थिअकि वि दहि अक्खय गिण्हहिं कीवि मुंमुसवि तुह जिणधवलह।

(हे जिन् तुम्हारे जन्मोत्सव पर कोई अप्सरा सुन्दर चर्चरी बोलती है, कोई रास खेलती है, कोई उत्तम धवलधोल गाती है, कोई रत्न के साथिए रचती है कोई दही अक्षत लेती है)।

(८) सं० १२४१ में सोमप्रभ सूरि रचित कुमारपाल प्रतिबोध में[1] भी चर्चरी का उल्लेख मिलता है-

अइ पत्तु कुयाह वसंत समाजो, संजणिय सयलजण चित्तपमओ
उल्लासिय-रुक्ख-पवाल-जुय पसरंत चारु चच्चरि व माय

(फिर एक बार वसंत समय आया।वह समस्त लोगों के मन को मुक्त करने (प्रमुदित) वाला, तथा वृक्षों के पल्लव समूह को प्रफुल्लित करनेवाला था जिसमें बेल (लता) समान सुन्दर चर्चरी गीत प्रसारित होते थे।)

(९) संदेश रासक नामक अपभ्रंश काव्य में चर्चरी संज्ञक[2] कड़ी देखिए-

चच्चरिहि केउ पुणि करिवि ताहु
नरिचयह वलम्ब बसंत काहु
घननिविडहार परिखिल्लरीहि,
कणकुण रव मेहल किंकिरणीहिं

---

[1]- देखिए कुमारपाल प्रतिबोध- सोमप्रभसूरि पृ० ५४४।

[2]- जैन गुर्जर कवियो- प्रस्तावना पृ० ५९।

(सं०कुरित-बच्चरे-हड्ड मार्गे गीत नृत्या ताल ध्वनि कृत्वा अपूर्वा वसन्त कालोनुत्यते। घन सिविड हाराभिः परिखेलन्तीभिः मेखला किंकिणीभिः रुणझुण वः क्रियते)।

(चर्चरी गाकर ताल संकेत नृत्य करके अपूर्व वसन्त काल नृत्य करता आता है घन निविड़ हारवाली खेलती स्त्रियों से उनके मेखला की किंकिणी बड़ी रुणझुण शब्द करती थी)।

(१०) ढोला मारू रा दोहा - में भी चर्चरी का प्रसंग मिल जाता है-

फागुण मासि वसंत रुत आयउ जइन सुणीरू

चाचरिउड मिस खेलती होली मंपावरु (१४५)

(वसंत रितु के फागुन मास में यदि तुम्हारा आना मुझे न सुनाई दे तो चर्चरी के बहाने मैं होली में खेलूँगा)

इसमें सम्पादक चर्चरी सम्बन्धी टिप्पणी लिखते है कि-

फागुण में होलिकोत्सव के उपलक्ष्य में होने वाले गीत नृत्य आदि से चाचरि चर्चरी होली में गाये जाने वाले एक राग विशेष को कहते है।

(११) हिन्दी साहित्य में कबीर दास की रचनाओं में बीजक में चांचर नामक एक अध्याय है। इस चांचर में चर्चरी के प्राचीन शिल्प के अंकुर विद्यमान है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है:-

खेलती माया मोहनी जिन जेर कियो संसार

रच्यो रंगते चूनरी कोई सुन्दरि पहिरे आय

नारद को मुख मांडिके लीन्हो वसन छिनाय

गरब गहेली गरब ते उलटि, चली मुसकाय

एक ओर सुर नर मुनि ठाढे एक अकेली आय

दिष्टि परे उन काहुन छोडे के लीन्हों एक धाय

(१२) जायसी और तुलसी ने भी चर्चरी के रागगुण ग्राम का उल्लेख किया है-

१- खिनहि चलहिं खिन चांचरि होइ

नाच कूद भूला सब कोई - (जायसी)

२- तुलसीदास चाचरि मिस, कहे रामगुणग्राम (तुलसी)

(०३) हिन्दी भाषा कोश में चाचर, चाचरि और चांचर, चांचरी वसंत रितु एक राग होली में 'गवाहुं गीत', चर्चरी राग, होली के खेल तमाशे अवाल उपद्रव हलव, हल्लागुल्ला, शोर आदि मिलते है। हिन्दी में चाचरी चांचर, चाचरि, चांचरी आदि प्रथगावर अनुस्वार बिना व सहित रूप वाले शब्द है।

यह तो हुई चच्चरी शब्द के विविध अर्थों में प्रयुक्त हुए स्वरूप के प्रमाण। अब आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रयुक्त चर्चरी की भी थोड़ी सी चर्चा करली जाए। गुजराती साहित्य में चर्चरी के लिए कहा जाता है कि जहां दो या दो से अधिक मार्ग मिलते है। चत्वर(संस्कृत) प्राकृत चच्चरं और पुरा० हिन्दी में चांचर।

सं० १२८९वसंत में रचे हुए आबूरास की कुछ पंक्तियां देखिए:-

गुजर देसह मज्झि पहतर्ण, चंद्रावती नयरि बक्खार्ण

त्रिग चाचरि अउहट थिरा पढमंदिर धवल हर पगारा

उक्त पद में गुर्जर देश के मध्य में चन्द्रावती नामक नगरी का वर्णन प्रस्तुत करता हूं। उसमें तीन रास्ते जहां मिलते हों ऐसा त्रिक्, चाचर- चार रास्ता मिले ऐसा चौक, चउहट्ट- चौहटों का विस्तार हो, तथा विद्यामन्दिरों का विस्तार हो, महल तथा बड़ी बड़ी हवेलियां है।

एक अन्य कोश में चाचर शब्द का अर्थ पु०(सं० चत्वर) मन्डप के बाहर जो खुला चौक होता है वह, सबको अर्थ भी दिया है जो अनेक प्रमाणों से अक्षरशः गुजराती शब्द कोश में भी मिलता है-वह चाचर के आधार से बना- चाचरियां शब्द का मूलरूप चर्चरी गीत ही है। यह चाचर में बोला जाने वाला, गायाजाने वाला गीत ही है । एक कोश में इसका अर्थ कर्त्ता ने उसको ऐसा भी लगा, विस्तार से उदाहरण प्रस्तुत करके ऐसा स्पष्ट किया है- न० चकलाकी देवी के गण लग्न के चौथे आठवें दिन चकला की रक्षा करने वाली देवी का पूजन कर बलिदान करते थे फिर उसके गणों की पूजा करते थे चारो दिशाओं को चार उपहार रखे जाते थे और फिर एक के पीछे एक पानी की धार करके पूछते थे- चाचरियां चांचरियां, तुम कौन सी

जात कहने के लिए आई हो तो पास में खड़ा कोई गणों का प्रतिनिधि बोल उठता था- कि अमुक व्यक्ति के लिए- उनमें कोई सम्बन्धी का नाम ही होता था। फिर उनसे पूछा जाता था कि इस अमुक ने क्या किया है? तो उत्तर होता था कि इसने सारी जाति को तो खूब भोजन कराया पर घर के अनुसार दक्षिणा नहीं दी। हंसो रे भाई हाहा, हाहा, इस प्रकार के चार प्रश्न होते हैं।इस प्रकार चांचरियों में अधिकतर उपहास-हास्य होता है।

चाचर- चौक में गाने वाले चर्चरी गायकों की टोली या उनका प्रमुख गायक- चाचरीया कहलाता था। उसके सम्बन्ध में पुरातन प्रबन्ध संग्रह तथा वस्तुपाल प्रबंध (क्रमशः पृ० ७६, १६९ और पृ० ७८ तथा १७६ में प्रयुक्त हुए हैं उनका सारांश इस प्रकार है:-[1]

(१)एक बक्त एक रात्रि में पाठशाला में रहने वाले श्री विजयसेन सूरि को नमस्कार करके मंत्री वस्तुपाल दूसरे भाग में रहने वाले श्री उदयप्रभसूरि को वंदन करने गए परन्तु वे वहां नहीं थे। इस प्रकार तीन दिन तक उनकी प्रतीक्षा करके चौथे दिन विनय पूर्वक बड़े गुरुजी से पूछा- तो उन्होंने उत्तर दिया मंत्री आजकल इस नगर में एक चाचरीयक महाविद्वान आया है। उसके विवेक वचनों को सुनने के लिए प्रतिदिन वेश परिवर्तन करके सूरि जाते थे। यह जानकर मंत्री वस्तुपाल वहां गए और सूरि को प्रच्छन्न रूपमें देखा। प्रातः मंत्री ने उस चर्चरीयाक को बुलाकर २०००) रुपया देकर कहा। तुम्हारी पोषधशाला के द्वार के पास के चच्चर चौक में चच्चर मांडो।इस प्रकार ६ महीने तक वह मांडता रहा फिर उसका उचित सत्कार करके उसको बिदाई दी।

(२) वीरधवल राज के बारे में कथा है कि उसके प्रदेश नाडूदी(नांदोद) में रहनेवाला अठारहीयो बहुआ हरदेव थैा।वह बहुआ चाचरीयाक का शिष्य था वह एक बार आशापल्ली में आगया।सात दिन बाद उनके परिवार का खाना समाप्त हो गया।हमें चाचर प्रदान करो। उसने कहा- धैर्य धारण करो, मैं सदैवनगर के मनुष्यों का मनोभिप्राय देखता रहता हूं। इतने में ही महाराष्ट्र का गोविंद चाचरीयाक आ पहुंचा।उसे अठारह पुराण एवं १० व्याकरण चौपाई छन्द में कंठस्थ थे। उसने उसको चच्चर दी तो फिर हरदेव ने चाचरीयाक को अपने साथियों द्वारा प्रोत्साहित होने

से साथ साथ चलते स्वाभाविक रूप से बातें करते सीताराम प्रबन्ध को कथा रूप में कहना प्रारम्भ किया पहले १० बार मनुष्य इकट्ठे हुए धीरे धीरे और अधिक हुए। मध्य रात्रि में सुखासन में स्थित मंत्री आदि भी सुनते थे। यहाँ से उठकर श्रोताओं को ज्ञात न हो ऐसा प्रयास करता हुआ वह साबरमती नदी के किनारे गया। फिर विशेष गान छेड़ा। ठंड से आक्रान्त मनुष्यों ने उसे कहा कि आप सबके सुख के लिए नगर में चलिए। फिर उसने पुनः उत्तर रामचरित का गान प्रारम्भ किया। फिर सर्व रस में निमग्न श्रोताओं को लेकर चौक में आया। फिर लोगों ने अंगूठी कर्णफूल आदि के दान से ३ लाख रु० दिया। २

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि गुजरात में काव्य में कथा प्रबन्ध कहने वाले, चार रास्ते जहाँ मिलें ऐसे चौरास्ते या चौक में बैठकर जनता के मन का अनुरंजन करते थे उनको द्रव्य मिलता था और लेखकसंस्कृति की उन्नति में पर्याप्त सहायता करते थे। अतः इससे चर्चरीयाक और चर्चरी शब्द के महत्व पर प्रकाश पड़ता है। सं० १४८१ में विरचित जयसागर विरचित जिनकुशल सूरि चतुष्पदिका में मुनिजी की दीक्षा समय के वर्णन में चर्चरी का उल्लेख आता है-

नारि दियइ तब चाचरी ए, गुरु गुआ ठिग दसादिसि संचरी ए
सरल मनोहर करिनरिय फिर कुंठिहिं कोइल अवतरीए

अतः इसका सम्बन्ध किसी राग विशेष से स्पष्ट होता है।

उक्त वर्णनों तथा प्रसंगों द्वारा चर्चरी के विभिन्न प्रसंगों में विविध अर्थ की सूचना मिलती है। वास्तव में चचरी क्या थी यह इन्हीं उद्धरणों के आधार पर जाना जा सकता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि चर्चरी छोटी जाति की टोली का एक सामूहिक गान विशेष था जो प्राचीनकाल से चौहट्टों आदि आदि पर गाया जाता था। यह चर्चरी स्त्री और पुरुष दोनों गाते थे।

इन तथ्यों के आधार पर चर्चरी के शिल्प सम्बन्धी निष्कर्षों या आवश्यक तथ्यों (पर इस प्रकार विचार किया जा सकता है:-

---

१- देखिए पुरातन प्रबंध संग्रहः मुनि जिनविजयजी पृ० ७१ और वस्तुपाल प्रबंध पृ०१६९
२- वही, पृ० ७८, वही पृ० १७६।

१- यह एक गीत विशेष है जो उल्लास प्रधान क्षणों की अनुभूति है।

२- यह निम्न वर्ग की गायक टोलियों और उनके गीतों के लिए भी प्रयुक्त है।

३- ताली बजाकर विशेष ध्वनि उत्पन्न करके वाले वाद्य को भी चर्चरी कहते हैं।

४- चर्चरी एक प्रकार का गान विशेष है जिसमें नृत्य ताल समन्वित फागुन की वासन्ती सुषमा का समावेश होता है।

५- आनन्द प्रधान मनमोहक नगर के स्थानों पर उत्पन्न होने वाली चर्चरी ध्वनि।

६- वसंत में गाया जाने वाला विशुद्ध वसंत गीत।

७- मंगल पर्वों पर आनंदोत्पत्ति करने वाला मनोहारी गान।

८- चर्चरी एक प्रकार का खेल विशेष होता है।

९- एक ऐसा भाषा निबद्ध गान जो नृत्य विशेष के साथ गाया जाता है।

१०- यह एक प्रकार का छन्द विशेष है जो विभिन्न ग्रन्थों में शास्त्रीय छन्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

११- यह एक लोक गीत का प्रकार विशेष था।

१२- चर्चरी एक प्रकार का राग था जिसको परवर्ती साहित्य में चर्चरी राग नाम से अभिहित किया गया। तुलसीदास जी ने भी चर्चरी राग को अपनाया था।

इस प्रकार चर्चरी के शिल्प पर विचार किया जा सकता है।वस्तुतः डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के शब्दों में चर्चरी में केवल गान का रूप ही नहीं लिया गया है।,आध्यात्मिक उपदेश में चर्चरी जैसेलोक प्रिय गान के प्रिय विषय श्रृंगार रस का आधार देने का भी प्रयत्न है। बीजक से यह आभास हो जाता है कि चांचर फगुआ के सम्बन्ध है फिर बीजक[१] में दो पद चांचर के हैं दोनों के छंद अलग अलग हैं इससे भी सूचित होता है कि इसके लिए कोई एक ही छंद नियत नहीं था।[२]

१- जनपद- वर्ष १ अंक ३ पृ० ५-८ देखिए-डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का लोक साहित्य का अध्ययन शीर्षक लेख।

२- बीजक की दूसरी चांचर ठीक इस पद में तो नहीं है पर मिलते जुलते छंद में अवश्य है जान पड़ता है कि चर्चरी या चांचर की दीर्घ परंपरा रही होगी ।इन दो चार उदाहरणों से यह प्रमाणित हो जाता है कि बीजक में जिन काव्य रूपों का प्रयोग किया गया है उनकी परंपरा बहुत पुरानी है और आलोचना काल में विभिन्न सम्प्रदायों के गुरुओं ने धर्म प्रचार के लिए इन काव्य रूपों को अपनाया था।स्वयं तुलसी ने चर्चरी राग को अपनाया था- जनपद वर्ष १ अंक ३ पृ० ५-८।

शेष आगे पृष्ठ पर देखिए--

अतः यह तो स्पष्ट है कि चर्चरी का प्रचलन लोक गीतों के विशिष्ट प्रकार के रूप में १२वीं शताब्दी में ही हो गया होगा क्योंकि जिनदत्त सूरि ने चच्चरी का प्रयोग किया है। शास्त्रीय दृष्टि से इस छन्द के लक्षणों का वर्णन मिलता है जो विविध नामों के रूप में प्रचलित रहा होगा परन्तु फिर भी चर्चरी को हम कोई निश्चित छन्द विशेष नहीं कह सकते। हां लोक प्रचलित रूपों में आगरा और उसके आस पास यह लोक गीत खूब गाता रहा हो ऐसा प्रतीत होता है। यों कोई भी सहृदय इस बात का भी अनुमान लगा सकता है कि यह गीत कबीर के बीजक में चाचंर बना बैठा है साथ ही जायसी में भी फागुन और होली के प्रसंग में चाचरि या चांचर का उल्लेख मिलता है। कालिदास और हर्ष के नाटकों में इस गीतका शिल्प अधिक स्पष्ट तो नहीं है परन्तु उनमें चर्चरी का वर्णन अवश्य मिलता है। अतः इतने प्रसिद्ध गीत से यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि चर्चरी लोक प्रिय गेयता प्रधान गान रहा होगा जो चांचर से भिन्न, किसी सामूहिक उत्सव या क्रीड़ा या खेल नहीं होकर सरल सम्मोहन पूर्ण बसन्त में नाच नाच कर उल्लास के द्वारा प्रकट की हुई आकर्षक गीत शैली विशेष है। यह भी सम्भव है कि लोक साहित्य की सरल तथा मोहक लोक प्रिय गीत शैली या गान शैली होने के कारण ही जैन कवि श्री जिनदत्तसूरि ने इसको अपने ग्रन्थों में अपनाया हो। एक विशिष्ट बात यह भी है कि जनरुचि का कण्ठ हार बनने और लोक प्रिय होने के कारण इस चर्चरी गीत की ध्वन्यात्मकता ने सबका मनमुग्ध कर लिया हो और यह छन्द या गीत प्रत्येक मनुष्य

कबीर की चांचर के कुछ शब्द इस प्रकार हैं:-

जारहु जग के नेहरा मन बौरा हो
जामें सोग संताप समुझ मन बौरा हो
तन धन सों का गर्वसी मन बौरा हो
भसम किरिमि जाकी साज समुझ मन बौरा हो
बिना नेव का देवघरा मन बौरा हो
बिनु कहगिल की ईंट समुझ मन बौरा हो
काल बूँद की हस्तिनी मन बौरा हो
चित्र रच्यो जगदीश समुझ मन बौरा हो-

का लोक प्रिय गीत या छन्द बने यही बात इसके मूल में रही हो और इसका शिल्प अनेक बार सफलता से प्रयुक्त होने के कारण ही इसे विभिन्न प्रकार से विषय बनाया गया हो।

इस प्रकार उक्त चर्चरी संज्ञक प्रमाणों, शब्दों अर्थों तथा अन्य बातों के आधार पर चर्चरी का शिल्प पर्याप्त स्पष्ट हो जाता है। चर्चरी की यह परंपरा संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश से अक्षुण्य रूप से चली आ रही है। जिसके प्रमुख स्थलों का विवेचन ऊपर किया जा चुका है।

वस्तुतः अद्यावधि प्राचीन प्राप्त साहित्य में चर्चरी सम्बन्धी जितने उल्लेख तथा प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनका परिचय यहां दिया गया है। चर्चरी का इस समय राजस्थान में जो स्वरूप है वह आज भ भली भांति देखने को मिल जाता है। चर्चरी गान यहां उल्लास प्रधान लोक गीत के रूप में आज भी गाया जाता है। इसका सही व यथार्थ स्वरूप फाल्गुन के दिनों में गाये जाने वाले चंग के गीतों में देखा जा सकता है। चंग केगीत जिस तरह आदि काल के साहित्यिक काव्य रूप फागु का प्रतिनिधित्व करते हैं ठीक इसी प्रकार उसमें चर्चरी का रूप भी देखा जा सकता है। चंग के गीत फागुन में ही गाये जाते हैं मधुमास के उल्लास प्रधान वातावरण को मुखरित करने वाले ये लोक गान सब सब रूपों में रात्रि रात्रि संगीत की मधुर ध्वनियों में फूट पड़ता है। ये चर्चरी गीत चंग वाद्य पर गाये जाते हैं जो बसंत की शोभा कही जा सकती है। प्राचीन काल की भांति चर्चरी गान की इन टोलियों में मध्यमवर्ग तथा निम्न वर्ग की ही टोली रहती है जो नाच नाच कर अपने बड़े अथक अबोले उल्लास को वाणी प्रदान करती है। अतः चंग के इन गीतों में इस समय चर्चरि का सम्यक् तथा क्रमिक विकास देखा जा सकता है।

जहां तक चांचर शब्द का प्रश्न है यह कहा जासकता है कि इस समय इस शब्द के अर्थ में थोड़ा अन्तर परिलक्षित होता है। चांचर इन दिनों राजस्थान की नृत्य प्रधान, वाद्य प्रधान, उल्लासमय अभिव्यक्ति को तो कहते ही हैं पर विवाह में नृत्य करती करती गान गाती विविध वाद्यों सहित नारियांकूदों पर चांचर कही है। यह एक प्रकार का उल्लास प्रधान टोना या क्रिया विशेष होती है जिसे

से हाथों की उंगलियों से सिर से लेकर पैर तक और पैर से सिर तक पूजा के सामान का प्रयोग करती हुई करती है शेष स्त्रियाँ वाद्यों पर नृत्य करती तथा गाती रहती है। इस क्रिया को चांचर करना कहते हैं। इसके मूल में क्या बात है यह तो निश्चित नहीं कहा जा सकता क्योंकि पूछने पर वे बतलाती हैं कि यह एक रूढ़ि है पुरातन नियम है अतः आंख मींच कर इसे पूरा करना ही पड़ता है ऐसा उनका दृष्टिकोण है। परन्तु इसके मूल में वर वधू के उल्लास पूर्ण सुखी जीवन और भविष्य की शुभकामना करने के लिए ही यह सब कुछ किया जाता होगा।

जो भी हो, चर्चरी या चांचर के राजस्थान में जो अद्यावधि जो भी रूप देखने को मिलते हैं उन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। बहुत संभव है कि लोक प्रथा या रिवाज होने से इस चर्चरी ने अब तक सबसे अधिक लोकप्रियता पाई हो। चर्चरी के शिल्प पर विस्तार में और भी विद्वानों ने हमारे सामने विचार रखे हैं[1] जिनसे चर्चरी के शिल्प को समझने में सहायता होती है।वस्तुतः इस सम्बन्ध में आज तक चर्चरी का जो भी सत्य है उसको स्पष्ट किया गया है। यह भी बहुत संभव है कि शोध होने पर इसके शिल्प पर और भी नये ज्ञातव्य प्राप्त हों।

चर्चरी संज्ञक रचनाओं की सरसता, काव्यात्मकता, उल्लास और मार्दव का अध्ययन आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में उपलब्ध कुछ प्रसिद्ध रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन पर हो सकेगा। यहाँ एक दो प्रमुख रचनाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण दिया जा रहा है:-

चर्चरी[2]

चर्चरी संज्ञक रचनाओं में एक कवि सोलण रचित एक कृति उपलब्ध होती है। रचना बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुकी है। यह चच्चरी गेय है और इसका रचनाकाल १४वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।रचनाकार का नाम आरम्भ में ही मिल जाता है:-

---

१- विशेष विस्तार के लिए देखिए जैन सत्यप्रकाश वर्ष १२ अंक ६ में प्रकाशित श्री हीरा लाल कापड़िया का चर्चरी शीर्षक लेख।

२- जैन गुर्जर कवियो भाग १ पृ० १२-१३ और प्राचीन गूर्जर काव्य संग्रह पृ०७१-७४।

कर जोडिउ सोलणु भणइ जीविउ सफल करेसु
बुम्हि अवधारह धम्मिउ चच्चरी हउं गाएसु [१]

इसके अतिरिक्त अन्य सहायक ग्रन्थों और समकालीन कृतियों में सोलण के सम्बन्ध में विशेष वर्णन उपलब्ध नहीं है।

काव्य का विषय गिरनार तीर्थ पर स्थित नेमिनाथ का वैभव वर्णन है। नेमिनाथ का दीक्षा वर्णन केवल ज्ञान और उनके भव्य मंदिर का चच्चरी में वर्णन है। काव्य की दृष्टि से यद्यपि इस रचना में कोई चमत्कार विशेष दिखाई नहीं पड़ता परन्तु कहीं कहीं प्रकृति का रंजक वर्णन किया गया है। साथ ही पूरा काव्य यात्रा परक है।गिरनार और उज्जयंत के लिए संघ यात्रा करता है कवि ग्रीष्म में लू के थपेटों में साहसिक और कायरों की पहिचान करता हुआ कहताहै:-

पाइ चहुट्टहइ कक्करीउ उन्हालइ लूवाइ
जे कायर ते बलिया जे साहसिय ते जाइ [२]

उस समय यात्रा में होने वाले चोरों आदि का वर्णन भी कवि कर देता है साधना और श्रद्धा में निकाले हुए संघों में कष्ट होना स्वाभाविक है। चोरों आदि के इस वर्णन से तत्कालीन सामाजिक स्थिति का पता चलता है:-

नालिकरी डुंगरि चडिहिं बहु चोरा उलिठाई
धम्मियडा वोलिउ गिया अधुल तपइसहाई [३]

रचना में एक सुभाषित भी मिलता है:-

जे मलि मइला पहिवड़ा ते मइला मौक्खेवे
पावमली जे मइलिया ते मइलाइ भुवेवे [४]

वस्तुतः रचना की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग है। यह काव्य एक ऐतिहासिक काव्य है। कवि वनस्थली गिरनार के महात्म्य पर पूर्ण सरस ढंग से प्रकाश डालता है।

१- प्रा०गु० का०सं० पृ० ७१ २- वही।पृ० ७२
३- प्रा०गु०का० सं० पृ० ७१ ४- वही, पृ० ७३।

संघ वर्णन जैन कवियों के काव्य का प्रमुख विषय रहा है। कवि ने तीर्थ
समय गिरनार की वनस्पति का उल्लेखनीय वर्णन किया है। कुछ अंश द्र

नीझरपाणिउ खलहलइ वानर करहिं बुकार
कोइल सद्द सुहावणउ तहि डुंगरि गिरिनारि
जउं मई दिट्ठी पाजडी उंच विट्ठ वटाउ
तउं पणिउ आर्ण दियउ लहउ सिवपुरिठाउ (१३-१४)

रचना दोहा छंदों में लिखी है कवि ने कुल ३८ छंदों में इसे समाप्त किया है।गिरिनार का कुछ सरस वर्णन भाषा की सरलता तथा अनुप्रासात्मिकता की दृष्टि से उल्लेखनीय है:-

हियडा संचउ जे वहइ ता ऊजिंति चडेवे
पाणिउ पीइगईयवइ दुखजलंजलि देवे
गिरिताई संकोडियउ पाय थाहर न लहंति
कहिमोडइ कहि थक्की हियडउ सोसह जंत
जाव न संघलि चलिया लहुपरली पाण
तांवकि लहुपहिं विंलिया हियडा अणताण
डुंगरडा सधो करि करि लगुणउ सीवखिवाउ
दुम पुर्ण मन देहडी अंगुलि कियउ पसाउ[1]

इस प्रकार रचना के कुछ स्थल महत्वपूर्ण है। कुछ चर्चरी गीत महापुरुषों की प्रशस्ति में भी मिलते हैं। जैसे सोममूर्तिकृत जिन प्रबोधसूरि चर्चरी धम्मु चच्चरी आदि। इन चर्चरियों में महापुरुषों के सान्निध्य के प्रशस्त होने के लिए गुणगान किया गया है। काव्य की दृष्टि से इनका साधारण महत्व है। धम्मु चर्चरी और जिनप्रबोध सूरि चच्चरी दोनों रचनाएं ताड़पत्रीय भंडार जैसलमेर दुर्ग की है तथा अप्रकाशित है। होली संबंधी चच्चरियों उपलब्ध रचनाओं में अभी तक नहीं उपलब्ध हुई । बहुत

१- वही, पृ० ७३-७४।

सम्भव है कालान्तर में इनका स्थान भक्ति प्रधान चच्चरियों ने ले लिया हो। परन्तु राजस्थान में होली के आस पास के उल्लास प्रधान गीत, जो टोलियों में गाए जाते है, चच्चरी का सही प्रतिनिधित्व करते है।

चाचरी [1]

जिनेश्वर सूरि विरचित चाचरी नामक यह काव्य उपलब्ध हुआ है। रचना की हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित है। पूरी रचना ३० छंदों में लिखी गई है। कृति के रचयिता श्री जिनेश्वर सूरि खरतरगच्छ के थे। पूरी रचना अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि कवि ने समाज की रक्षा के लिए लगभग प्रमुख प्रमुख सभी तीर्थंकरों से विनय की है। यह उत्सव चर्चरी गान मात्र के कलुष निवारण, दलितों की प्रगति तथा भक्तिपूर्ण और श्रद्धाशील व्यक्तियों की रक्षा हो उस लक्ष्य से कवि ने यह चर्चरी निर्मित की है।

प्रारम्भ में ही कवि ने रिषभ जिनेश्वर और महावीर के इन 'जनमणियों का स्मरण करके तथा सरस्वती देवी के पदकमल में प्रणाम करके भक्ति पूर्वक नेमिनाथ और शत्रुंजय की महिमा गाई है:-

> भगति करवि पहु रिसह जिण, वीरह चलण नमेवि
>
> हउं चालिउ भणि भाउ धरि हुइणि भणि सुमरेवि
>
> सरसइ सामिणि पयकमलु भउम भगति पणमेवि
>
> उज्जिल नेमि सेत्तु रिसहु, पणमिसु अंबाएवि

प्रार्थना और वंदना में कवि प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक एक तीर्थ और तीर्थंकर और प्रदेशों की महिमा का गुणगान करता है और परम श्रद्धा से भाव्यांजली द्वारा नेमिजिनेन्द्र की प्रार्थना करता है।

१- रचना अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है देखिए हस्तलिखित प्रति पत्र २३१-२३२।

सम्भव है कालान्तर में इनका स्थान भक्ति प्रधान चच्चरियों ने ले लिया हो।परन्तु राजस्थान में होली के आस पास के उल्लास प्रधान गीत, जो टोलियों में गाए जाते हैं, चच्चरी का सही प्रतिनिधित्व करते हैं।

चाचरी [१]

जिनेश्वर सूरि विरचित चाचरी नामक यह काव्य उपलब्ध हुआ है।रचना की हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित है। पूरी रचना ३० छंदों में लिखी गई है। कृति के रचयिता श्री जिनेश्वर सूरि खरतरगच्छ के थे। पूरी रचना अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि कवि ने समाज की रक्षा के लिए लगभग प्रमुख प्रमुख सभी तीर्थंकरों से विनय की है। यह उसका चर्चरी गान भाव के कलुष निवारण, दलितों की प्रगति तथा भक्तिपूर्ण और श्रद्धाशील व्यक्तियों की रक्षा हो इस लक्ष्य से कवि ने यह चर्चरी निर्मित की है।

प्रारम्भ में ही कवि ने रिषभ जिनेश्वर और महावीर के इन 'जनमणियों' का स्मरण करके तथा सरस्वती देवी के पदकमल में प्रणाम करके भक्ति पूर्वक नेमिनाथ और शत्रुंजय की महिमा गाई है:-

> भगति करवि पहु रिसह जिण, वीरह चलण नमेवि
> हउं चाच्चरि भणि भाउ धरि दुइण मणि सुमरेवि
> सरसइ सामिणि पयकमलु मज्झ भगति पणमेवि
> उज्जिल नेमि सेत्तु रिसहु, पणमिसु अंबापमि

प्रार्थना और वंदना में कवि प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक एक तीर्थ और तीर्थंकर और प्रदेशों की महिमा का गुणगान करता है और परम श्रद्धा से काव्यांजलि द्वारा नेमिजिनेन्द्र की प्रार्थना करता है।

१- रचना अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है देखिए हस्तलिखित प्रति पत्र २३१-२३२।

उस सोरठ देश को धन्य है जिसमें गिरनार है। जिसके शिखर पर प्रभु नेमि आसीन है शिखर को देखकर मनुष्यों के मन में उन्माद छा गया। वह शिखर कैसा होगा। जहां अतुल बल वाले इन्द्रियजीत जिन विश्वास करते है उस पर्वत को धन्य है। यह मनुष्यों का गिरनार समूह के शिखर पर चढ़कर अद्भुत श्रृंगार करके परिजन पुत्र कलत्र सहित यादव कुल के आभूषण तिलकरूप नेमिनाथ को प्रणाम करेंगे जो दुखों का विनाश करने वाले हैं और क्लेश रूपी मल को हरण करने वाले हैं:-

धन्नु सोरठ देसु प्रिय धनु गिरिहि गिरनारु
जासु सिहरि पहु नेमि जिणु सामिउ सोहग-सारु
महु मणुछइ उमहियउ विसउ कु गउ गिरनार
जहि निवसह जिणु अतुल बलु सो डुंगरु जगि सारु
रेवय गिरिवर सिहर चढि अदबुद करु सिणगारु
परियणि-पुत्ति कलत्तसउं पणमिसु नेमिकुमारु
जादवकुल मंडण तिलउ, पणमिसु नेमि जिणिंदु
जिण मण वांछिउ सपंडइ, तोडइभव-दुह दंदु - (१०)

सम्पूर्ण संघ जिनेन्द्र की प्रार्थना करता है कि संसार का कल्याण हो। नृत्य गान होता है विविध पूजा गान और श्रद्धा से स्तवन पाठ होता है कवि ने जीवन को सुखमय करने शांतिप्राप्त करने और पापों को दूर करने के लिए ही इस चाचरि की रचना की है। कवि ने इस रचना को दोहा छंद में प्रणीत किया है।

अन्त में कवि सभी को चाचरि पढ़ने के लिए निर्देश करता है जो संसार से मुक्ति दिलाने वाली है:-

सावय साविय जे पढहि इह चाचरि सुह भावि
ते सवि भूरिभवंतरह छुट्टिहि कलिमल पावि
भावि नवरि पुरि जिण भुवणि जे चाचरि पभणंति
नवणि जिणेसर पुरि गुरु ते सिव सुह पावंति (२९-३०)

इस प्रकार यद्यपि काव्य की दृष्टि से इस रचना का आंशिक महत्व है परन्तु रचना प्रकार के गेय नृत्य गान सूचक गीत विशेष के रूप में चर्चरी के शिल्प को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है। चर्चरी का यह गेय प्रति के चित्र को देखने पर और स्पष्ट हो सकता है।

(क)

प्रबन्ध मुक्तक काव्य

:-------oo--------:

(क)

(प्रबन्ध संज्ञक काव्य)

रास और फागु काव्यों की परम्परा और कृतियों पर विचार करने के पश्चात् हम हिन्दी जैन साहित्य के प्रबन्धों पर विचार करेंगे। यों प्रत्येक रचना अपने में एक प्रबन्ध होती है परन्तु जैन काव्यों में प्रबन्ध एक शैली के रूप में भी व्यवहृत होने लगा था और फलतः प्रबन्ध नाम से काव्य लिखे जाने लगे। यद्यपि प्रबन्ध नाम से अधिक काव्य नहीं लिखे गए। अद्यावधि इस प्रकार की प्रवृत्तियों व नामों के दो ही प्रबन्ध रचनाएं प्राप्त हुई हैं।

प्रबन्ध काव्यों की परंपरा बहुत ही प्राचीन रही है।संस्कृत अपभ्रंश आदि भाषाओं में बहुत पहले से प्रबन्ध मिलने लगते हैं।हर्षवर्द्धन के बाद चौहान, चंदेल, प्रतिहार, परमार, सोलंकी आदि राजपूतों के परस्पर संघर्षों से वीर रसात्मक वातावरण की सृष्टि हुई और वीर गाथात्मक काव्य लिखे जाने लगे।इस काल में इस प्रकार के वीर गाथात्मक काव्य दो प्रकार के मिलते हैं:-

(१) मुक्तक रूप में

(२) प्रबन्ध रूप में

इन प्रबंध का विषय युद्ध और प्रेम था। अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान कार्लाइल ने अपने ग्रन्थ में [1]इनका पर्याप्त वर्णन किया है। वीर रस के मुक्तकों के उदाहरण हेमचन्द्र[2] ने दिए हैं। इसी प्रकार के कुछ प्रबन्ध हमें वीरता व प्रेम, शौर्य या रोमांस में डूबे हुए मिलते हैं- आल्हा के गीत, बीसलदेवरास, पृथ्वीराज रासो आदि ऐसी ही रचना हैं। गुजराती का कान्हड़ दे प्रबन्ध[3] तथा आदिकाल का समरारास[4]

१-Hero and Hero-worship : by Carlyle- Page 152.

२- हेमचन्द्र कृत हेमचन्द्रानुशासन।
३- देखिए पद्मनाभ रचित कान्हड़ दे प्रबंध।
४- आपणा कवियो: श्री के०का० शास्त्री पृ० २१-२१२।

आदि इसी प्रकार के प्रबन्ध हैं। पुरानी राजस्थानी प्रबन्धसंज्ञक रचनाओं की परंपरा बहुत सुरक्षित रही है। १६वीं शताब्दी में इस प्रकार के विमल प्रबंध (सं० १५६८) माधवानलकाम-कन्दला प्रबन्ध, सदय वत्सवीर प्रबन्ध आदि ग्रन्थ इसी प्रकार के हैं।

प्रबन्ध रचनाओं के शिल्पके कुछ निश्चित तत्व नहीं है। यों मानव कल्याण और जीवन को प्रेरणा तथा आनंद की ओर ले जाने का उद्देश्य तो प्रत्येक सत्काव्य का होना चाहिए पर मोटे रूप में जो प्रमुख बातें प्रबन्ध काव्य के शिल्प में दिखाई पड़ती है उनका कथन इस प्रकार है:-

(१) प्रबन्ध गद्य अथवा पद्य में की हुई सार्थ रचना को कहते हैं[१] विक्रम संवत् १२०० से १५०० तक अनेक रचनाएं हमें प्रबंध नाम से मिलती है यथा- कुमारपाल प्रबन्ध, प्रबंध चिन्तामणि, भोज प्रबन्ध आदि।

(२) इन प्रबन्धों में वीर पुरुषों के चरित वर्णन होते है।अतः इन काव्यों में युद्धवीर दानवीर दयावीर और धर्मवीर तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों का चरित्र चित्रण होता है।

(३) उत्साह वर्णन भी इन काव्यों में होता है।

(४) प्रबन्ध काव्य-चरित, पवाड़ो, प्रबन्ध, रासो, छंद, सलोकों आदि अनेक नामों से वर्णित होते हैं जिनमें छंद वैविध्य होता है।

(५) प्रबन्ध काव्य विशेष रस प्रधान रचना होती है जिसकी शैली ओजपूर्ण या प्रवाह पूर्ण होती है।

(६) प्रबन्ध काव्य का वृत्त ख्यात या ऐतिहासिक होता है और वह एक शृंखलाबद्ध रचना होती है।

(७) चरितनायक धीरोदात्त होता है उसमें श्रेष्ठ पुरुषों के सब गुण विद्यमानव होते हैं।

(८) उनमें अनेक अवांतर और काल्पनिक कथाएं भी होती है।

(९) प्रबन्ध काव्यों में विविध वर्णन होते हैं।

(१०) उसमें जीवन के प्रति एक संदेश होता है।

१- देखिए गुजराती साहित्य ना स्वरूपो- प्रो० म०र० मजमूदार पृ० ७१।

वस्तुतः ये सामान्य बातें प्रबन्ध काव्यों में होती हैं। परन्तु रचनाओं का नाम ही प्रबन्ध हो गया। जिस तरह फागु बंध कृतियाँ हमें उपलब्ध होती हैं उसी प्रकार प्रबन्ध संज्ञक रचनाएं भी। इन रचनाओं में उक्त प्रबन्धमूलक प्रवृत्तियों का निर्वाह कहाँ तक है यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता पर इतना अवश्य है कि प्रबन्ध शैली में रचे हुए कुछ रासु और फागु काव्यों में यथा- भरतेश्वरबाहुबली रास, पंचपान्डव चरित रासु, नेमिनाथ फागु समरारासु, जिन पर हम पहले विचार कर चुके हैं, इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ पूर्णतया देखने को मिलती हैं।

इस प्रकार परवर्ती काव्यों में प्रबन्ध किन्हीं विशेष सीमाओं में नहीं बंधा हुआ दीख पड़ता है।यों प्रबन्ध शब्द किसी भी पद्य रचना या विशिष्ट प्रकार की पद्य रचना के लिए प्रयुक्त हो सकता है। स्वयं एकांगिक या स्तवन भी अपने में प्रबन्ध होता है।वास्तव में रचनाओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर ऐसा लगता है कि इनके लिए कोई तात्त्विक तत्त्वविशेष नहीं मिलते। साधारणतः ऐसी रचनाओं में कुछ इस प्रकार के जीवन्त तत्वों का समावेश अपने आप हो जाता है।

प्रबन्ध शैली पर लिखी गई, रचना में अपेक्षाकृत एक विस्तार भी होता है। उसमें कवि को अपना काव्य कौशल प्रस्तुत करने और अपनी अनुभूतियों की यथार्थ अभिव्यंजना करने का पूरा पूरा अवसर रहता है। वैविध्य की दृष्टि से भी इन प्रबन्धों का महत्व है। छंदों के रूप में इन रचनाओं में बड़ा वैविध्य मिलता है। साथ ही काव्य रूपों तथा शैलियों के रूप में भी इन प्रबन्ध ग्रन्थों की सार्थकता स्पष्ट होती है। कुछ ग्रन्थों में ऐतिहासिकता, दान वर्णन संघ वर्णन चरित वर्णन आदि का विवेचन मिलता है। कथा तत्व शैली तथा अन्य रूपों में प्रबन्ध संज्ञक रचनाओं का महत्व दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार के शिल्प के लिए कवि किसी निश्चित संदेश आदर्श तथा अन्य जीवन्त शाश्वत या मूल्य को चुनता है।प्रबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह सब प्रकार से अपने में पूर्ण हो तथा किसी निश्चित उद्देश्य से मानव कल्याण का संदेश दे सके।

"त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध"[1]

आदिकाल की इन हिन्दी जैन रचनाओं में प्रबन्ध के शिल्प सम्बन्धी कई रचनायें मिलती है परन्तु प्रबन्ध संज्ञक रचनायें बहुत ही कम संख्या में मिलती है। अद्यावधि इस दिशा में सिर्फ तीन ही रचनायें उपलब्ध हो सकी है जिनमें-

(१) त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध[2] (२) सुदर्शन सेठशील प्रबन्ध[3]

(३) भरत बाहुबली प्रबन्ध[3] प्रमुख है।

त्रिभुवन दीपक प्रबंध इस परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ी है। यह रचना अद्यावधि उपलब्ध लगभग सभी रचनाओं में मौलिक तथा अभिनूतन है। भरतबाहुबली प्रबंध की प्रति अप्राप्य है। इतिहास ग्रन्थों तथा प्राप्त टिप्पणियों के आधार पर [illegible] के उद्धरणों द्वारा ही हम कृति की भाषा का परिचय प्राप्त कर सकते है।

प्रबंध संज्ञक कृति (त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध एक बृहद रचना है) जिसमें कवि का महा काव्यत्व, विद्वत्ता, दार्शनिकता, आचार्य-जीवन-चरित आदि सभी का वर्णन निखर उठा है। यों प्रबन्ध के सामान्य तत्वों का निरीक्षण करने पर लगभग सभी तत्वों का इस रचना में हमें सम्यक् निर्वाह मिलता है।

त्रिभुवन दीपक प्रबंध के रचयिता कवि श्री जयशेखर सूरि है। सूरि जी अपने समय के विशुद्ध प्रतिष्ठित कवियों में से थे। संस्कृत और प्राकृत में भी कवि की प्रतिभा असाधारण थी। कवि ने संस्कृत और प्राकृत में कई ग्रन्थ लिखे है। जयशेखर सूरि महेन्द्रसूरि के शिष्य थे तथा अंचल गच्छ के थे। पट्टधर की पदवी प्राप्त करने के बाद कवीश्वर ने वि०सं० १४६२ में खंभात नगर में संस्कृत के ग्रन्थ प्रबोध चिन्तामणि की रचना की जिसमें कवि ने स्वयं अपना परिचय दिया है।[4] संस्कृत और

१- देखिए जैन धर्माभ्युदय ग्रन्थमाला (२) त्रिभुवनदीपक प्रबंध:सम्पादक:लालचंद भगवान गांधी पृ० १-५६। २- पुरातत्व मंदिर जयपुर में प्रति सुरक्षित
३- जैन गुर्जर कविओ:मोहनलाल देसाई भाग प्रथम पृ० ३०-३२।
४- कवि चक्रवर:श्रीमान् सूरि: श्री जयशेखर:
नास्ति मेधा विधासु सत्कवित्व मध्ना [illegible]:
नय-रस-भुवन मिताब्दे स्तम्भनकाधीश पूर्विते नगरे
श्री जयशेखर सूरि: प्रबोध चिन्तामणिमकार्षीत्: त्रिभुवनदीपक प्रबंध-पृ० २।

प्राकृत साहित्य में सूरि जी की सेवायें अधिक है। कवि का महाकवित्व उन्हीं ग्रंथों के आधार पर देखा जा सकता है। कवि के संस्कृत ग्रन्थों में १२ हजार श्लोकों का प्रसिद्ध ग्रन्थ उपदेश चिन्तामणि (सं० १४३२) है। इसके पश्चात् कवि ने सं० १४६२ में धम्मिलचरित महाकाव्य और जैन कुमार संभव नामक दो महाकाव्य लिखे। जैन कुमार संभव महाकाव्य के अन्तिम श्लोक में तो कवि को सरस्वती द्वारा वरदान देने की सूचना भी मिलती है।[1] इन ग्रन्थों के अतिरिक्त शत्रुंजय तीर्थ द्वात्रिंशिका, गिरनार गिरि द्वात्रिंशिका महावीर जिनद्वात्रिंशिका (सम संस्कृत) आत्मा व बोधकुलक (प्राकृत) धर्म सर्वस्व आदि कृतियों के अतिरिक्त उपदेश चिंतामण्यवचूरि, उपदेश माला व चूरि, पुष्प मालावचूरि, क्रियागुप्त स्तोत्र, छन्द शेखर नवतत्व कुलक अजित शान्ति स्तवन आदि ग्रन्थ भी कवि ने बनाएं हैं। इस तरह कवि अपने समय केविद्वान व्यक्तित्वों में से थे यह स्पष्ट है।

जयशेखर सूरि ने विक्रम सं० १४६२ में संस्कृत में प्रबोध चिन्तामणि काव्य रचना की। यह काव्य रूपक काव्य है। अतः इसी काव्यसे प्रभावित होकर कवि ने प्रस्तुत कृति त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध की रचना की है।त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक रूपक काव्य है। जिसके रूपकत्व पर हम आगे विचार करेंगे।

जहाँ तक कवि के काल का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः उनका जन्म १४वीं और १५वीं शताब्दी की संधि के ही किसी वर्ष में हुआ होगा क्योंकि उनके लघु गुरु भाई मेरुतुंग का दीक्षा समय सं० १४१८ है। त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध कब लिखा गया यह बहुत निश्चय पूर्वक तो नहीं कहा जा सकता परन्तु क्योंकि सं० १४६२ में कवि ने प्रबोध चिन्तामणि काव्य लिखा और क्योंकि प्रबोध चिन्तामणि एक रूपक काव्य है और त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध भी सफल रूपक

१- वाणीदत्तवरश्चिरं विजयते तेन स्वयं निर्मिते
सर्गो जैन कुमार सम्भव महाकाव्ये अयमेकादशः- त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध पृ० ३।

काव्य है अतः यह काव्य सं० १४९२ के बाद में ही लिखा गया होगा। इस काव्य के शिल्प पर प्रबोध चिन्तामणि की छाया भी स्पष्ट परिलक्षित होती है। कवि ने इसे उसी केआधार पर ही लिखा है। अतः कवि का रचना काल १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का प्रथम चरण ही रहा होगा। जयशेखर के सम्बन्ध में जाति, स्थान आदि गत सूचनाएं कुछ मिलती नहीं। यों यह अनुमानतः कहा जासकता है कि कवि का जन्म गुजरात में ही हुआ होगा। जयशेखर की शिष्य परंपरा भी बड़ी सम्पन्न थी जिसमें धर्मशेखर सूरि की जैनकुमार संभव काव्य की भाषा टीका और माणिक्य सुन्दर सूरि की उत्कृष्ट गद्यकृति-पृथ्वीचन्द्र चरित अत्यन्त प्रसिद्ध है।जो हिन्दी साहित्य में गद्य काव्य के उद्भव की सूचक है।

कृति का नाम त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध[2] या परमहंस प्रबन्ध भी मिलता है। श्री मोहनलाल देसाई ने भी इसका नाम परमहंस प्रबन्ध दिया है।[3] कवि ने त्रिभुवन दीपक के साथ प्रबन्ध शब्द क्यों लिखा है इसका कारण बहुत स्पष्ट तो नहीं बताया जा सकता परन्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः प्रबंध शैली में लिखा जाने, या विस्तार में लिखने अथवा प्रबन्ध रूप में रूपक काव्य का सफल निर्वाह करने के लिए ही रखा हो। जैसा कि पहले कहा जा चुका है यों प्रबन्ध नाम से कोई काव्य रूप अथवा इस सम्बन्ध में अन्य कोई पृथगत विशेषता स्वतंत्र रूप में नहीं मिलती। स्वयं कवि ने भी अन्त में इसे प्रबन्ध[4] कहा है। प्रारंभ में कवि जब सब श्रोताओं या पाठकों को सावधान करता है[5] उसमें वह ग्रन्थ का नाम हंस विचार लिखता है परन्तु इस नाम से अधिक संगत नाम त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध या परमहंस प्रबन्ध ही लगता है क्योंकि एक तो कृति रूपक काव्य है। दूसरे इसमें त्रिभुवन एक राज्य के रूप में वर्णित हुआ है इसके अतिरिक्त कवि ने

१- आपण कवियो: श्री के०का०शास्त्री पृ० ३०५।
२- देखिए, त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध।
३- जैन गुर्जर कवियो-प्रथम भाग पृ० २४-श्री मोहनलाल देसाई।
४- त्रिभुवन दीपक एह प्रबन्ध, पाप तणउ ए छूटइ न बंध- त्रिभुवन-दीपक-प्रबंध, पृ० ४८ श्री गांधी।
५- सावधान थइ संभलउ हरषिइं हंस विचार- वही कड़ी ८।

परमहंस नामक नायक का चरित्र वर्णन किया है अतः यह काव्य का परमहंस प्रबन्ध नामकरण भी सार्थक ही लगता है। त्रिभुवन दीपक भी उतना ही सार्थक है जितना परम हंस हंस प्रबन्ध। क्योंकि इसमें भी तमसाछन्न त्रिभुवन में कवि ने दीपक जलाया है। निस्संदेह यह काव्य मानव जीवन को माया रानी के फेरे से बचा कर आत्मोन्नति को बहुत प्रशस्त कर दिया है। त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध मोह में भटके प्राणी को सतुपथ की ओर अग्रसर करता है।यह सत की असत पर विजय है। शरीर की दुष्प्रवृत्तियों के फेर में पड़कर मन कितना गिर जाता है पर सत्प्रवृत्तियों से वह पुनः रास्ते पर आ जाता है।

रूपक काव्य

रूपक काव्यों पर विचार करने से पूर्व यहाँ रूपक काव्यों की परंपरा पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। किसी बात को समझाने दृष्टान्तों द्वारा पुष्ट करने के लिए ही कवि रूपक पद्धति का सहारा लेता है। इस रूपक का सफल नियोजन एवं निर्वाह उत्कृष्ट कला है। रूपक ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में बहुत ही कम संख्या में उपलब्ध है। रूपक काव्यों की परंपरा का उद्भव संस्कृत काव्यों सेही हुआ है। संस्कृत भाषा में इस प्रकार के काव्यों का श्री गणेश नाटकों में अधिक देखने को मिलता है।संस्कृत में मिलने वाले रूपक काव्यों की नामावली इस प्रकार है:-

संस्कृत साहित्य में- १०वीं शताब्दी की उपमिति भव प्रपंच कथा।

कृष्ण मिश्र का - प्रबोध चंद्रोदय नाटक।

यशपाल का - मोहपराजय नाटक।

वैंकटनाथ का - संकल्प सूर्योदय।

अनंतनारायण सूरि का-माया विजय।

वादिचन्द्र का - ज्ञान सूर्योदय।

पद्मसुंदर का - ज्ञान चन्द्रोदय।

आनंदराय मखी का- विद्या परिणयन और जीवानंदन नाटक

कवीश्वर का - प्रबोध चिन्तामणि? आदि संस्कृत की

प्रमुख रूपक कृतियाँ है।

प्राकृत में रूपक काव्यों का प्राय: अभाव है सिर्फ प्राकृत गाथा में कवि जगराम ने धर्म परिक्षा की रचना की। अपभ्रंश में -सं० १०४४ में हरिषेण की धम्मपरिक्खा, सोम प्रभाचार्य कृत सं० १२४१ का जीवनकरण संलापकथा, कुमार पाल का प्रति बोध नायक प्राकृत ग्रन्थ का अंश है जो धार्मिक कथाबद्ध रूपक काव्य है तथा हरिदेव कृत मदन पराजय रूपक काव्य है। इसके अतिरिक्त धूर्ताख्यान, तथा ज्ञान सर्वोदय नाटक भी प्रमुख रूपक काव्य है।

हिन्दी साहित्य में रूपक काव्यों की परंपरा जैन कवि भैया भगवती दास (१८वीं शताब्दी) के चेतन चरित्र से ही प्रारम्भ होना श्री परमानंद शास्त्री जी ने लिखा है।परन्तु उससे बहुत पूर्व १५वीं शताब्दी में जो जयशेखर सूरी का प्रस्तुत काव्य उपलब्ध हुआ है वह पुरानी हिन्दी का है। अत: शास्त्री जी के कथन का परिहार इससे हो जाता है और इस दृष्टि से हिन्दी रूपक काव्यों की परंपरा ३०० वर्ष और पुरानी सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार यदि आधुनिक हिन्दी रूपक काव्यों की से यदि एक दीर्घरेखा खींची जाय तो उसमें आदि काल का त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, भैया भगवतीदास का चेतन चरित, तुलसी का राम चरित मानस और प्रसाद की कामायनी आदि रचनाएं एक ही शीर्ष में बांधी जासकती हैं।वस्तुत: आदिकाल में रूपक काव्यों की परंपरा का प्रारम्भ करने का श्रेय त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध को ही है। यह प्राचीन राजस्थानी की भाषा की सुन्दर रचना है। १५वीं शताब्दी के चरित काव्यों में भी इसी प्रकार ब्रह्मजिनदास का लिखा एक काव्य परमहंस चरित मिलता है और इसी प्रकार यह परंपरा १७वीं १८वीं शताब्दी में मोहविवेक रास, ज्ञान कलश चउपई आदि ग्रन्थों के रूपमें सुरक्षित मिलती है। निष्कर्षत: १३वीं शताब्दी से पूर्व की कोई रूपक कृति अद्यावधि उपलब्ध नहीं है।

अंग्रेजी साहित्य में भी इस प्रकार की रूपक तत्व प्रधान रचनाओं का उल्लेख मिल जाता है। यह परंपरा विदेश में भी थी। यूरोप के मध्यकालीन क्रिश्चन भक्तों ने भी रूपक काव्य की रचना की थी।कवि बेनियन का पिलग्रीम्स

प्रोग्रेस इसी प्रकार का प्रसिद्ध रूपकारी काव्य है।

१६वीं शताब्दी के बाद गुजराती भाषा में भी इस प्रकार के कुछ काव्य मिल जाते हैं। जीवराम भट्ट कृत जीवराज शेठ नी मुसाफरी और प्रेमानन्द कृत विवेक वणजारा आदि ग्रन्थ उदाहरणार्थ लिये जा सकते हैं। वस्तुतः इस प्रकार के छोटे छोटे रूपक काव्य आदिकालीन हिन्दी साहित्य में मिलते हैं।

रूपक काव्यों की शिल्पगत विशेषतायें

संक्षेप में रूपक काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों व विशेषताओं का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है:-

१- रूपक ग्रन्थ मनुष्य के गुण स्वभाव आचार विचार आदि अदृश्य और निराकार भाव सजीव आरोपण करके उनका देहधारी पात्रों की भाँति वर्णन होता है उसमें उनका वर्णन लक्षण कार्य आदि वैसे ही सजीव होते हैं।

२- इस प्रकार आद्योपान्त रूपकों की इस शृंखला को रूपक ग्रंथी कहा जा सकता है

३- रूपक को शृंखलाबद्ध करने में कवि का काव्य कौशल दर्शन ज्ञान और वाग्वैदग्ध्य सभी का परिचय मिल जाता है।

४- इन काव्यों में कवि का सूक्ष्म अवलोकन और बारीक तथा परिमाणात्मक दृष्टि की अपेक्षा है। आद्योपान्त पूरे रूपक का शिल्प निभाना बड़ा कठिन कार्य है।

५- रूपक काव्य में रस की निष्पत्ति भी सफलता से होती है। श्री मजमुदार लिखते हैं कि- गमे तेवा रूपाला पण निर्जीव मुडदा करता कांइक बदशिकल पण आरोग्य भरेला भी भरपूर एवो चेहरो वधारे मनोहर लगे छे तेम ज आ महारूपक नुं पण छे जो एमां रस रूपी जीव नथी तो तत्व ज्ञान आपेला हाडपींजरना केवल मिथ्या अने कटाळो उपजावनारां छे। इस प्रकार रूपक काव्य में विविध शिल्पगत बातों का ध्यान रखना पड़ता है। त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध में कवि ने इन सभी बातों को लगभग सुरक्षित रखा है।

६- रूपक काव्य में अमूर्त भाव मूर्त रूप में चित्रित किए जाते हैं। हृदयस्थ मनोवेगों

का इन्द्रियों द्वारा साक्षात्कार या तादात्म्य कराने के लिए कवि इन रूपक काव्यों में रूपक और उपमा का सहारा लेता है।

७- रूपक काव्यों की रचना का उद्देश्य पाठक और श्रोताओं को अन्तर्भावों और मनोवेगों की ओर आकृष्ट करते हुए उन्हें आध्यात्म की ओर उन्मुख करना है। क्योंकि रागी और विषय वासनाओं में रत आत्माओं पर वैसे कोई प्रभाव अंकित नहीं होता।अतः उन्हें अनेक रूपों एवं उपमाओं का लोभ दिखाकर स्वंहित की ओर लगाने का उपक्रम किया जाता है। रूपक काव्यों की सृष्टि परंपरा प्राचीन काल से ही आई हुई जान पड़ती है परन्तु वर्तमान में जो उपमान उपमेय रूप साहित्य उपलब्ध है उससे उसकी प्राचीनता का स्पष्ट आभास मिल जाता है।[1]

नाट्य शास्त्र की इस उक्ति-अवस्थानुकृतिर्ना-ट्य रूपं दृश्यातयोच्यते इस सूत्र के अनुसार रूप अथवा रूपक की व्याख्या के आधार पर कवि रूपकों द्वारा भावनाओं का मूर्त स्वरूप प्रस्तुत करता है। परन्तु क्योंकि रूपक का औचित्य श्रव्य तथा रूप में अधिक होने से ये विशाल रूप वाले रूपक काव्य लोक प्रिय नहीं हो सके। क्योंकि रूपक तत्व रंगमंच पर कम ही जमता है और आध्यारोपों के अंगों में आरोपित अवास्तविकता प्रयोग की सफलता में बाधा पहुंचाती है।अमूर्तभाव अभिनय में मूर्त पात्रों का कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः रूपक की घटना दृश्य की अपेक्षा श्रव्य और कथा के विशेष अनुकूल पड़ती है।[3] इसे देखकर कवि जयशेखर सूरि ने प्रयोग बंध का मार्ग छोड़कर काव्य बंध का मार्ग लिया जो अधिक संगत बन पाया है।

१- अनेकान्त- वर्ष १४ किरण ९ अप्रैल, १९५७ रूपक काव्य परंपरा-श्री परमानन्द शास्त्री पृ० २५९-२६६।

२ वही

३- गुजराती साहित्यना स्वरूपो- द्वारा मजमूदारः पृ० ४९८।

रूपक काव्यों का दूसरा नाम प्रतीक काव्य भी है। कवि कुछ निश्चित मनोवेगों या मनोभावों को पात्र मान लेता है और वे मनोभाव आद्योपान्त पात्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस तरह पूरे काव्य की मुख्य संवेदना इन्हीं प्रतीकों के आधार पर पूरी होती है।वस्तुतः इन प्रतीकों का रूप मनुष्य के हाव भाव, गुण अवगुण, प्रवृत्तियां, शारीरिक अंग, आदि अनेक तत्वों को दिया जासकता है और ये प्रवृत्तियां जीवित पात्रों की भांति वस्तु का संवहन करती हैं। इन मनोवृत्तिमूलक पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये स्वभाविक होते हैं तथा लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों में इनका निर्वाह होता है तथा ये असत् तत्वों का पराभव दिखा मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देते हैं। इस प्रकार इन रूपक काव्यों का बड़ा महत्व है।

रूपक काव्यों पर प्रकाश डालते हुए श्री रमणलाल शाह ने लिखा है कि आमां रूपक कारे महत्वनी वस्तु ए ख्याल मां राखवानी होय छे के दरेक पात्र नु वर्तन अेनी स्वाभाविक खासियते प्रमाणे ज बतावावामां आव्युं होय अेटले के आचित्य पूर्ण आलेखन अेज अेनी मोटा मां मोटी खूबी, मोटा मां मोटी सिद्धि अने मोटा मा मोटी कसौटी होय छे। जे रूपक औचित्य पूर्ण आलेखन धरावतुं न-थी होत तो वांचवामां वाचक ने रस पड़तो नथी होतो।रूपक ग्रंथी मां जेम जधारे पात्रो अने जेम अेनी कथा वधारे लंबाती जाय, तेम तेना कविनी कसौटी वधारे। अरतेज दीर्घ सातत्यवाली रूपक ग्रंथिओनुं सर्जन करवुं ओ अेक कपरुं कार्य मनाय छे। सामान्य व्यवहार मा संसार सागर मानव अहेरावण, जीवन नाव, काल गंगा इत्यादि बहुव रूपकों आपणे प्रयोजीओ छीओ।परन्तु अेक आखी रूपक, ग्रंथीनी वार्ता सृष्टि केवी होय छे ते त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध नी कथा पर थी वधारे स्पष्ट रीते समजाशे।[1]

१- जैन युग- अगस्त, १९५८ पृ० ७।

जो भी हो, रूपक काव्यों की परम्परा में त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध एक महत्वपूर्ण सोपान है जो परवर्ती रूपक काव्यों का उद्गम कहा जा सकता है।

(त्रिभुवन दीपक प्रबंधःकथा और विश्लेषण)

संस्कृत भाषा में जब विद्वानों एवं बुद्धिवादी लोगों के लिए इसी कवि ने जब प्रबोध चिन्तामणि लिखा तो उसे जन साधारण के लिए भी संभवतः एक सुन्दर काव्य प्रस्तुत करने की इच्छा हुई होगी और उसी भावना सुधार और आध्यात्म प्रचार के लक्ष्य से प्रोत्साहित होकर कवि ने यह काव्य जन भाषा या पुरानी हिन्दी में लिखा है। काव्य में कर्ता- ने संस्कृत रूपक काव्य की लगभग सभी जीवन्त विधाओं का निर्वाह किया है। इस काव्य के रूपक तत्व और कथा तत्व का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है। कथा का लौकिक रूप में सफल निर्वाह है।त्रिभुवन एक विशाल राज्य जिसका राजा परमहंस। परम हंस के अत्यन्त सुन्दरी रानी। नाम चेतना।दोनों अपना सुखमय जीवन आनंद से बिताते है। एक बार राजा परमहंस माया नामकी सुन्दरी पर मुग्ध हो गया। चेतना को जब यह ज्ञात हुआ तो उनको रोका और उसका कारण बताया कि मायाके संग से जीवन और राज्य की हानि होगी।परन्तु राजा हठी बन गए, माने नहीं। राजा ने यहां तक कि माया के रूप सौन्दर्य के पीछे चेतना की उपेक्षा कर उसका त्याग भी कर दिया। फलतः राजा संकट में पड़ गया।माया केसाथ भटकने से उसका समस्त त्रिभुवन का राज्य चला गया।राजा विवश होगया और एक छोटा राज्य काया नगरी बसाकर रहने लगा। इस काया नगरी का समस्त कार्यभार मन मंत्री पर छोड़ कर निश्चिन्त हो जाता है परन्तु मन तो दुष्टता का प्रतिरूप है। मन अमात्य की बात मानने से राजा पर भारी व्याघात और संकट आ जाते हैं। उसने राजा पर आक्रमण करके उसको कारागार में डाल दिया, राज्य का स्वामी स्वयं बन बैठा। समस्त राज्य का विनाश कर दिया। राजा परमहंस को अब अपनी प्रियरानी चेतना की सारी बातें स्मरण होती है। राजा को बड़ी आत्मग्लानि और पश्चाताप होने लगता है।

मन अमात्य का परिवार भी बहुत बड़ा है। उसकी दो रूपवती पत्नियों का नाम प्रवृत्ति और निवृत्ति है प्रवृत्ति का पुत्र मोह और निवृत्ति का विवेक। दोनों धोखे से निवृत्ति और विवेक को बाहर भेज देती है और अपने पुत्र मोह को राजसिंहासन दे देती है। मोह अविद्यानगरी का शासन करने लगता है । अविद्या नगरी मोह स्वयं की ही बसाई होती है। मोह की रानी गर्वीली दुर्मति होती है और उसके तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ होती हैं काम, क्रोध और राग पुत्र और मारि (हिंसा) अधृति और निद्रा ये तीन पुत्रियाँ। अपने उपयुक्त आवास खोजते निवृत्ति और उसका पुत्र विवेक प्रवचन पुरी में आ जाते है और शम और दम नामक वृक्षों की शीतल छाया में जाकर वंदना करते है और अपने भविष्य के सुख दुख को पूछते है। कुलपति अपनी पुत्री सुमति के साथ विवेक का विवाह करना चाहता है उसने प्रवचनपुरि के स्वामी अरिहंतराय को प्रसन्नकर लिया और उससे कार्य में योग देने की प्रार्थना की। उसके आदेशसे दोनों का विवाह हो जाता है और विवेक के कार्यों से प्रसन्न होकर अरिहंत राय उसे पुन्य रंग-पाटण का अधिष्ठाता बना देते हैं। साथ ही विवेक को यह भी समझाते है कि यदि तुम उनकी पुत्री संयम श्री के साथ भी विवाह करलो तो शत्रुओं का पूर्ण विनाश कर सकोगे। परन्तु विवेक दो पत्नियों से परिणय करना नहीं चाहता था। धीरे धीरे विवेक वैभवशाली होने लगा। उसका राज्य विस्तृत और व्यक्तित्व सबल होने लगा तो प्रवृत्ति का पुत्र मोह ईर्ष्या करने लगा और उसे अपने अनुचर दंभ द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि अब संभवतः विवेक मेरे राज्यपर आक्रमण करेगा तो वह क्रुद्ध हो जाता है और अपने सबसे बड़े पुत्र काम को पुन्य रंग पाटण पर आक्रमण करके विवेक को युद्ध में हराने का आदेश देता है। काम का प्रयाण हुआ। आक्रमणकारी ने सबको काममय बना डाला। सब कामुक हो गए।विवेक को भी यह भय हुआ उसने उसी समय निश्चित किया कि काम से (वासना से) बचने का केवल एक ही मार्ग है और वह है संयम श्री का वरण। विवेक उसी समय प्रवचन पुरी में संयमश्रीवरण को पहुंच जाता है। इधर पुण्यरंग नगरी को काम जीत लेता है पर विवेक हाथ से निकल जाता है, अकेला विवेक। काम की विजय अपूर्ण रही।

उधर विवेक प्रवचन नगरी में संयमश्री का पाणिग्रहण कर लेता है।संयमश्री के वरण में विवेक को तप एवं संयम जैसे अजेय अस्त्र शस्त्र मिले। साथ ही उनकी बड़ी असाधारण सेना भी। सैन्य की सहायता से वह मोह पर आक्रमण कर देता है दोनों में भारी युद्ध होता है। मोह बुरी तरह घायल होकर परास्त होकर मारा जाता है।प्रवृत्ति पुत्र शोक विह्वला हो जाती है और मन को भी पुत्र मृत्यु की बड़ी पीड़ा होती है पर अपने दूसरे पुत्र विवेक के समझाने से वह ध्यानरूपी रस सरोवर में निमग्न हो जाती है औरविजितेन्द्रिया बन कर सुख प्राप्त करती है। विवेक स्वयंअपने पिता मन को भी उपदेश देते हैं। इधर चेतना रानी का कार्य भी उल्लेखनीय होता है।वह परमहंस राजा को कायानगरी और माया के मोह बंधनों से मुक्त करा पुनः उन्हें त्रिभुवन का राजा बनाती है। चेतना रानी अनेक वर्षों तक अज्ञात वासिनी बन कर रहती है और जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि मोह पर विवेक की विजय हुई तो वह पुनः विवेक से सहायता माँगती है और इस प्रकार महाराज परमहंस पुनः त्रिभुवन का सानन्द शासन करने लगते हैं। अन्त में कवि भरत वाक्य कहकर काव्य समाप्त करता है।

संक्षेप में त्रिभुवन दीपक का कथा और रूपक तत्व यही है।प्रस्तुत रूपक काव्य में रूपक तत्वों का निर्वाह कवि ने बहुत ही सफलता से किया है। प्रत्येक पात्रलौकिक रूप में भी कथा सूत्र को पूर्णतया पुष्ट करते हैं। मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में तुलसी ने रामचरित मानस में कवि ने मानस रूपक को स्पष्ट किया है इसमें भी आध्यात्मिक निर्वाह और मनोवृत्तियों के प्रतीक बहुत सफल नहीं बने हैं परन्तु कवि ने सबकी लौकिक अलौकिक अलौकिक संगति बिठाकर काव्य के कथा तत्व व रूपक तत्व को परम पुष्ट किया है। आधुनिक काव्य में जयशंकर प्रसाद की कामायनी में भी हमें रूपक तत्व की पुष्टि मिलती है।श्रद्धा मनु, मानव इड़ा पात्रों के साथ आशा लज्जा काम, निर्वेद, संघर्ष, आनन्द आदि सर्गों के नाम से ही मनोवेगों की प्रतीक योजना स्पष्ट होती है।इस काव्य को देखकर ऐसा लगता है कि संभवतः कवि ने जैन कवियों के संस्कृत में लिखे इन्हीं ग्रन्थों के प्रभाव से रूपक पद्धति को अपनाया होगा।

जयशेखर सूरि ने परमहंस, चेतना, माया, मोह, प्रवृत्ति, निवृत्ति, सुमति, संयम, श्री, अरिहंत, काम, राग, द्वेष, आदि सभी प्रतीकों का सुन्दर निर्वाह किया है। कवि का यह औचित्य और पात्र-संगति उल्लेखनीय है।

लौकिक रूप में कथा तत्व का परीक्षण करने पर भी यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने कथा तत्व के माध्यम से ही इतनी आध्यात्मिक सरस कथा बनाई है। कथा तत्व के इस विकास को हम आगे के पृष्ठ पर रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं।

रेखा चित्र द्वारा कथा का क्रमिक विकास देखा जा सकता है कि किस प्रकार नायक अधिकार रेखा से दूर होता गया और कितने प्रयासों के पश्चात् उसे पुनः त्रिभुवन पुर का राज्य प्राप्त हुआ। रूपक के रूप में भी यह स्पष्ट किया जा सकता है कि किस प्रकार परमहंस दुष्प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कष्टपाता है और जब तक संयमश्री विवेक और चेतना की सहायता नहीं पा लेता उसका त्रिभुवन राज्य विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है। उक्त रेखा चित्र द्वारा स्थिति बहुत स्पष्ट हो जाती है।

प्रारम्भ में कवि ने मंगलाचरण में परमेश्वर व सरस्वती की वंदना की है। काव्य स्तवन से ही प्रारम्भ हुआ। संगीत में डूबकर कवि ने राग धन्यासी में यह मंगल लिखा है:-

> पहिलउं परमेसर नमी अविकल अविचल चित्ति
> समरिसु समरसि भीलती हंसासणि सरसत्ति
> मानस-सरि जे निर्मलइ, करइ कुतुहल हंस
> तां सरसति रंगि रमइ, जोगी जाणइ हंस
> पाणी पाहणि सामिणी मन सरसति संभारि
> दीवई दूषण दुर्गमी, मीडे भुयण भुआरि [1]

१- त्रिभुवन दीपक प्रबन्धः श्री गांधी पृ० १ पद १-२-३।

परमहंस राजा

चेतना रानी

त्रिभुवन

माया का प्रवेश

माया व परमहंस का प्रेम

काया नगरी — विध्वंस परमहंस का छोटा राज्य

अमात्य मन का प्रवेश

मन का साम्राज्य — विध्वंस (मन की विजय)

प्रवृत्ति (पत्नी) निवृत्ति (पत्नी)

मोह (पुत्र) विवेक (पुत्र)

दुर्मति (पत्नी)

पुत्रियाँ: अवृत्ति, हिंसा

पुत्र: राग, द्वेष, काम

अविकारेरा

काम विवेक युद्ध

विध्वंस काम की मृत्यु

प्रवृत्ति व मन को विवेक की सान्त्वना

चेतना का प्रवेश

परमहंस की सहायता

विवेक की सहायता से

पुनः राज्य प्राप्ति

विवेक निवृत्ति निष्कासन

विवेक का काम पर आक्रमण

संयमश्री विवेक

विवेक व संयमश्री विवाह

राजा अरिहंत राय पुत्री (संयमश्री)

प्रवचनपुरी शम दम वृषदृवय

कुलपति विमलबोध का आवास

सुमति (पुत्री)

काम का आक्रमण

सुमति विवेक -विवाह

काम के अनुचर दंभ का प्रवेश

पुण्यरंग-पाटण नगरी (राज्य)

विवेक का अरिहंतराय के पास काम से डर कर पलायन

पुनः राज्य प्राप्ति

परमहंस

त्रिभुवनपुर

कवि ने नवम रस की महिमा सरस्वती का आधार और रसज्ञ श्रोता सबका उल्लेख प्रारम्भ में कर दिया है:-

देवी दीवी सरिस मई दिट्ठा दसम-दुआरि
करिसिउं कवित्त सोहामणउं सा सरसति आधारि

--- --- ---

जे घट-बुद्धि अजाणता, करई कथा कल्लोल
पढुंधर ते परहरी, गिरिसिरि मंडई टोल
नवमा रस।अमरिस म धरि आठि आणिउ तेहि
गुरुगा।ढं गुणि अगुगलउ मुखवढि मंडिउ तेहि
सेवीता कवि रस विरस इक्काइकिंक ओइ
नवमउ जिम जिम सेवीइ तिम तिममीठउं होइ [1]

कवि ने श्रोताओं को ज्ञान वर्णन करके की सूचना देकर मोह निद्रा से सावधान किया है:-

पुण्य पाप ते मइ टलई दीसइ मुक्ख-दुयारु
सावधान ते संभलउ हरखि हंस विचार-

कविने राजा परमहंस का स्वरूप वर्णन और माया का सुन्दर चित्रण किया है। परमहंस के और रानी चेतना के सुखमय जीवन और आनन्द प्रमोद केसाथ माया के मोहक रूप में उसके राजा को चेतना का सिखावन देखिए:-

स्वामी रे रमणी मरत मयगमणी देखी मूलउ सिद्धु भवर्ण घरणीरि
अमृत कुंडि किम विष उछलइ? समुद्र थकी खेह न नीकलइ
सरवर वाहिन दव पर जलइ, धरणि धारि शेष न सलसलइ
रवि किम वरिसइ धोरंधार? करइ सुधाकर किम अंगार?

१- वही पद ७।

नारि-भरिया हुई सपला देस चंचल चमकई छवे मुवेपु
ठामि ठामि जइ मांडिसि प्रेम, जाते दिवसि न देखउं पेमु
आपे छांड भीति जाजतरी, बेटी धन भोजनि बाजरी
ठार नेह असतीनु नेहु, दैव देखाउइ थडिलउ लेह
मांड बोलावइ पिआरउ मर्म प पूरइ छइ गणिका धर्म
जे जे आगइ पहनइं मिलया, रंक राम जिमते सवि कल्या
म करि अजाणि स्त्री वीसास स्त्री कहीइ देरी विष पास
हिवडां दिसइ प सीयली पुण ताप पिसिइ जिप सीयली
छउकि भाणि हुं न कहउं स्वामी, कीया वारउं तुमुहारइ नामि -१

रानी की इस सिखावन पर भी परमहंस न माने। माया ने उन्हें नष्ट कर दिया, और राजा की मन अमात्य से जान पहिचान हुई। मन का कवि ने बड़ा ही चित्रात्मक वर्णन किया है जो विविध दृष्टांतों और उदाहरणों से पुष्ट किया है-

मन रहिइ दीधउ तउ व्यापार, आपणबंध उतारिउ भार
मनमहि तउ मईलउ छइ धूलि, राज काज तिणिकीधा धूलि
चंचल बहुदिसि कपट फिरइ, कीजइ कोडि नकहीइं हरइ
मंत्रि म मूकी ते विधि थाइ, वणइ माहि बिलडी ने चाइ
मुहि मीठउ नइ विणठउ चीति, मायाविउं नित मांडइ प्रीति
वानरडउ नइ बीछी खाधु दाडी वरउ बलानलि वाधु
चडिउ खींचाण्ड वरडहा हाथि बूडउ भिखिउ जुआरि हाथि
वैसानर नइ वाउ विकराल विसहर बींखिउ विसहरलाल
मुकलउ मांगिउ राणी कहई पणई पेंसरउ तउ कलकलइ -(पद २९-३२)

मन की रानी प्रवृत्ति के पुत्र मोह ने अविद्यानगरी की स्थापना की।कवि ने इसी अविद्या नगरी का पूरा वर्णन किया है। वर्णन की आलंकारिकता और चित्रात्मकता दर्शनीय है। जिसमें कवि ने अपने दार्शनिक विश्लेषण का प्रतीकात्मक परिचय दिया है:

१- त्रिभुवन दीपक प्रबन्धः श्री गांधी पद १६।

मैाढी मोहि अविद्या नामि नगरी निगुणरा हियड़ा ठामि
अविद्या-नगरी गढ़ अज्ञान तृष्णा खाइ मीठु मान
कदाचारु कोसीसंडलि प्यारिइ दुर्गति बहिती पोलि
विषय व्याव वाडि आराम मंदिर अशुभा मन परिणाम
कामासन ये कहियां पुरानि चउरासी चहुंटा ते जाणि
धूरि मवंतर घेरी हुई, कठ बुद्धिवले धरि धरि धुई
ममता पाप्रलपी रखवालि कुमत सरोवर मिथ्यापालि
निर्विचारु निवसई तिहा लोक, थोडई उरत्व थोडई शोक
तिणि नगरी इकि धांई धसई इकि तालो टेडडु टेडडु बसई
इकि गैाइ इकि वाह तूर इकि आफलइ रणांगणि सूर
इकि नाचई इकि रूपई माल वात करई के ठोकी गाल (पद ६०)

इस प्रकार अविद्या नगरी में मिथ्या दर्शन मंत्री ७ व्यसन ७ अंग ७ निर्गुण संगति सभा, नास्तिक बाल मित्र, अधर्म छत्रधर, आलस सेनापति, छद्म पुरोहित, कुकवि रसोया इस प्रकार मोहराज के असाधारण परिवार का क्रमशः वर्णन किया है। प्रवचन पुरी में अरिहंतराय का वर्णन है सुमति और विवेक का विवाह होने पर कवि का नगर वर्णन करने में खूब मन रमा है। वर्णन में भाषा की सरलता, अर्थ गौरव और पदलालित्य दृष्टव्य है:-

इणि नगरि तह अरिहंतु राय भवरी सिरि दिई हावळपाय
सलसहि इन्द्र करई तस सेव कोडि देव पय प्रणमई देव
मुक्ति मुक्ति फल ते दातार भुवनतला कु न लाभइ पार
मणिमय मिलइ हेमनउ वास मणि छत्र सिरि धारियो तासु
अणकथा वाजइ नी खाण कम अर्णम पुण गजण प्रमाण
धर्मचक्र महकलि भ्रलइ इति तम्ह तिणि नाम जिटलइ
कांटा थाई अधोमुख स्वइ कनक कमलि ते पगलों ठवइ
पीढु पीयारी आगइ हरइ, अइ विवेक तस पाय अणसरइ (पद ८१-८४)

इस प्रकार कवि ने विरोधाभास में अरिहंत राय का नगर वर्णन किया है। त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध में कवि ने काम का प्रभाव उसकी सर्वत्र विजय और अजेय स्थिति का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। पर साथ ही संयमवन का वर्णन भी अत्यन्त उत्कृष्ट है:-

सिद्धजल रक्खइ सविहु कालि, बंध-सरोवरि नव सरपालि
संयम-वन अति कलियामणउं, पाप्रह देवतिजयणा मण्ड
सुकृत-महागटि पोलि बियारि, दान सील तप भाव विचारि
विरति न साइ आवइ कोडि सदाचरण को सीसा कोडि
मन परिणाम शुभा आवास साहु वसई तिहो लील विलास
श्रुतरस-कूवडी घर घर बारि, सद्गुरु वाणी पाणी हारि (पद १६४)

विवेक की पत्नी सुमति का सौन्दर्य उसका आवास वर्णन कवि ने बड़ी कुशलता के साथ किया है। कवि का आध्यात्मिक वर्णन भाषा की सरलता और प्रासंगिकता अत्यन्त मनोहारी बन पड़ी है। सुमति रानी के परिवार का प्रतीकात्मक वर्णन देखिए:-

राणी सुमति करउ अनुरागु जेठउ बेटउ तसु बयरागु
कुंवर समरस लहुअ कुमार बाल मित्र गुण सुविचार
मैत्री करुणा मुदित उवेख बेटी बहुय रुपनी रेख
मुहता मुहवडि समकितु लेखि, पडधकार तीं बलवइ देखि
उपशम विनय सरल संतोष, विहु महाधर सबर प्रघोष
बार भेद प्रतिमा बारही रह केलि विधा करसति रही
प्रायश्चित गुण पाणी हरइ शुभ ध्यान बड़ हानउ फिरइ
ज्ञान-तलार न आवइ रेशु सम घरइ विरि गुरु उपदेशु
सामाइक सुखु सारथि सार, कर्म विवर नामिं पडिहार
अभय अर्थ बहुल भंडार किया कलश सकल कोठार
शांति क्षमा सम्यक्त्व अमीव दंडाकुश गुप्तिय अमीव

नाचई पात्र तिभावन बार अविकत गुण गाई उदार

कुछः दर्शन लघु सेवई बार तेहनी ओफ न लाभइ पार (पद १७६)

और इसके बाद विवेक के राज्य का समूल विनाश करने के लिए काम अपने परिवार के साथ चढ़ आया। दल बल सबल होकर काम ने सर्वत्र त्रिलोकी में विजय प्राप्त कर ली। ब्रह्मलोक में सावित्री की अधीनता स्वीकार कर ली, गोपियों ने विष्णु को पराजित कर लिया, कैलाशपति को पार्वती के साथ बंधना पड़ा और गौतम आदि रिषियों को काम प्रभाव से उनकी स्त्रियों के वश में होना पड़ा। यहीं नहीं उसने वर अवर सबको काम पीड़ित कर दिया। कवि ने बड़े ही उल्लास में डूबकर इस वसंत रितु का चित्र हमारे सामने खींचा है। कुछ आलंकारिक उदाहरण द्रष्टव्य हैः-

ईम कहतां पुहतउ रितु वसंत तउ उट्ठउ मनमथ धसमसंत

सई हत्थि पधाइ अण मिलेस, आसीस दिंति बहिनर असेस

पापधुत कलरव करई भट्ट दुंबरिजै जय सिरि अरिध (हट)

मय अट्ठगुडिय गयवर सरंग परकरिय पंच ईंदिय तुरंग

कुंभि कल्प-महारथ वेगि संग, ते सात व्यसन-पायक अभंग

विकथा पियाम पेरि-निमाद, दल मिलिय चिट्ठ जम नरवरिंद

विषयभुत आसण लयउ हत्थि उन्माद-चिरतु मूंकिउ न हत्थि

मिल्हिय सर मल्ल अवि विविसाल, तिणि करयलि कि हिम कुसुममाल

परिहरिय पुरुष तिणि किटवीरि, बंधहिय नारि कोमल सरीरि

तीह के सपाय घिरि, विरकठामि, पट्टउली पहरइ क्वच कामि

क्ताकुल कंकण वालगंती, अभिवर जिम बीकृ करि धरंति

अंकुडिय धनहिवी पिणि कलीय, संकउ काजय-बाणावली य

नव हाव भाव हथियार किन्ध, मेडरमिषि टोडर पायबद्ध

ते वकिय धण मड किबंडंति, अलुआरी अमरडंबिडं करंति

वार्कीतुक नामिणी करई हत्थि, क्यवरं विलगुण कमंडरी-हत्थि

नारी रवि नर वार्बंधि कुस्व, मल्ली परिवेढिय रहिय रूख

रणतूर वॅद्धिय जीहं सवम-मुक्क आगंमई हीलि जे वलई लक्ख
जीहं सीस पुरंदरि न नमाईं ते चलई रंक जिम रमणि पाइ
ते पढई वेदआगम पुराण जे कला बहुत्तरि धरई जाण
जे सिद्धिय बद्धिय करतां जुद्ध गंग, तीहं मोरी कीधा मरम भंग (पद २२५)

इस प्रकार काम का पराक्रम, सत्ता, और शौर्य का वर्णन कवि ने किया है। काम ने यही नहीं समस्त ब्रह्मांड में हलचल मचादी। कवि ने बीच बीच में नारियों का काम विह्वल होकर विलाप का वर्णन गीत पद्धति से किया है:-

कयरीयड़ा रे काई तुम्हे पलउरे पलउ
मदनकुमार कि न आवी मिलउ, वयरियड़ा रे ......

कवि ने दोहा छंद का बड़ा प्रयोग किया है। उक्ति का अनूठापन और काम का वर्णन करने वाले कवि के कुछ उत्कृष्ट दोहे देखिए -

पाटू साडी कापडा अनइ नवरंग घाट,
ए अम्ह कन्हइ मागिहिं प्रेम निशु उचाट
दीवइ जइ पोतइ हुई पोकई दवइ काचि,
तउ हीअडउं हेठउं करी लागा भरडा साचि
कंन हय कंकण चूडला, नागोदर हार,
ए अम्ह कन्ह(इ) सवगिवि स्त्री लोय न पार
डालि डालि सिउं डालमे घृत पदघड घोल
ए अम्ह कन्हइ मागिवि निशु हडवड बोल
जिमि बाहई रंपी हुई तिमि माहई राडि,
करि मांचिवि लागी भली, धुन ए न लगाडि (पद २५८)

कवि ने विवेक का संयमश्री के साथ विवेक का पाणिग्रहण कराया है। विवाह की तत्कालीन रीति रिवाज, नारियों का मंगल गान, उत्साह और उल्लास का प्रासादिक वर्णन करता है। विवेक भी यही सभा में अद्भुत दिव्य बसन, अग्नि ज्वालमान तथा राधावेध आदि कार्य सम्पन्न करता है:-

वाजि अढां तुर अनेक, नारिकरई अमारणी ए
परिणीति रे वीर विवेक, साजण हूआ उतावला ए
कहि तउ धमडं वाघ विकराल कहिं तउ पिउं हुतावन जाल
गिरि उपाडं विण आधार कहि तउं चालडं करवत धार
ढीलि पंचदल करई निषेध, कहउ तउं साधउ राधावेध
तउ राजा मणावइ कुमारि सभा भरी जसु जेअण हारि
राग द्वेष उर भरता वीह बे उठया तउ सकल अवीह

--- --- ---

पंच महाव्रत पांचइ मेरु, जेह वालनउ न करिहि केरु
भुज बलिवीह उपाडिउ भार-तप-करवतनी वाठिउ धार
बावीस परिसह उपसर्ग बोल मोटा वयरी करई कलोल
साहस लगइ ते धीमई हतुआ राउत पायक सवि मनहणुआ

--- --- ----

बेठी दृष्टि जीवनडं ध्यान, उरध मुकित मणी संधान
तत्व कला विधी मन वाणि ईम परि राधावेध वरवाणि
सवेगी उभाही बाल तासु कंठि घल्लइ वरमाल
धीवरि मुद्रती कन्या वलीवेवाठी मनि पुणी छली। (१२८)

--- ---- ----

पहिलु विछन थिर हुआं ए जण दीजइ बीडा कुंकुआ ए
लेइ लगन वाधामिडं ए विण वेठा वहुड माकिहे ए
प्रवचन-पुरि म वधामणां ए, हवि गाजई कुंआं सणा ए
बेठिहि मोरडी ए पकवाने भरिई ओरडी ए
कूकि फिरई ए बबाणि अमीरस मिहु करई ए

--- --- ---

संजमसिरि वन हूकली श्रिणेवी गुणनिधि गहमहीय (१३४)

कवि ने इन वर्णनों के अतिरिक्त युद्ध वर्णन भी बड़ी सफलता के साथ किया है।

युद्ध वर्णन के स्थलों में पदलालित्य भाषा सौष्ठव और अर्थ गांभीर्य आदि दृष्टियों सेबड़ा उत्कृष्ट है। कवि का भाषा प्रवाह उल्लेखनीय है।कवि निर्वेद और आध्यात्म वर्णन में ही कुशल नहीं है अपितु विवेक और मोह के युद्ध को भी सूरि ने बड़े प्रभावशाली चित्र खींचे है:-

अखिवर झलकावई दल समहावइ सुमति कंसउ आवइ
कीधउ कटकबंध अरिहंत सूरा सुखवडि मान लहंति
घोर अभिग्रह कारक फिरई योग अंग गयवर गुडिघरई
शुभ भाव उठई असवार, रथ सहस्र सीलंग अढ़ार (३४०)
कंबाला जिम दल आफल्यां गयवर गयवरि सरिसा मिलिया
रथि रथु पायक पायकि जडई छोडउ सरिसउ भिडइ
उछिड लोह न पडसई कोपि कुयंड राउत पूरई रोपि

--- --- ---

सांढा झलकई बीजल जिसिया, सुख्ख तणा मन तीण इकसिया
पायक धुढई सही सेज, तीह उपरि अपच्छरना हेज
रुधिर पूरि रथ ताणुया जाई सिर त्रुटइ धड़ धब-मबघाइ
सेवी तुरंग मन बाहिबा रहई, परदल भाई छूटी बहइ (३७२)

--- ---- ---

जडई भिडई भेडवई अभंग, घाई घवई विधुणई अंग
हेडई ताडई हेज महघई झूझई झूझई केज
इंधइ घाई रोषिई किलकिलई बोलई बहई बे छलछलई
बे हथियार मोह पाठवइ रडि-विवेक सुमति वालवइ
अशुभ बुधि बलवउ जाणवई मोह नरिंद विवेकि हणिउ
बाजीय दुंदुहि नवरि गंभीर बंध वर्ण लहलहई वीर
जय जय मंदा सुर उच्चरई कुसुमवृष्टि भिषि ओलमकरई (३९३)

विवेक की विजय पर व मोह की मृत्यु पर उसकी मां प्रवृत्ति अनेक प्रकार से संतप्त होकर विलाप करती है। कवि ने उसकी दयनीय दशा को भी बड़ी करुण वाणी

प्रदान की है। वर्णन का वैचित्र्य द्रष्टव्य है:-

मोहा ओ ।ई कहि किहां गयुप प्रवृत्ति लेइ संघति
मोहा ओ ।कुमि कारणि अम्हि टालिया य
बाप छडई बेटउ मरइ विछइ य जमि वात
महपण तार्ई तू कपइ हूं किम होइ कुतात
गुफा केसर भूम संचरई मूकउ रवि तिमिर फुरंति
अरि मड मेजण तू गयउ, पदरल हिव पहरंति (४०५)

और अन्त में कवि प्रवृत्ति को समझाता है। चेतना विवेक की सहायता से परमहंस को पुनः त्रिभुवन का राज्य दिलाती है। कवि ने प्रवृत्ति को विवेक के शब्दों ^से ओ^ भरत वाक्य के रूप में और काव्य की समाप्ति इन शब्दों के साथ करते हैं:- मोह का संदोह छोड़कर परमेश्वर का अनुसरण करो, सब समत्व ग्रहण करो, चार कषायों का विनाश कर पांच इन्द्रियों को जीतकर समरस ग्रहण करो, और एक ॐकार में मन को स्थिर कर परमानंद की प्राप्ति करो:-

पाइ लागिय पाइ लागिय वलि सुविवेक
सिवामण दि इवी तुम्हि वात।पकिखिइं मंडिइं
परमेसर अनुसरउ मोह तणउ संदोह छंडिव,
समता संपली आदरउ, ममता मुंकउ दूरि
च्यारि कषी पांचइ जिणी खेलउ समरस पूरि
तिणि अवारि थिर थइ रहउ पामउ परमानंद (४१६)

सूक्ति कवि की सुन्दर सूक्तियां अनेक हैं जिनसे कवि की अनुभव प्रौढ़ता और आलंकारिक सरसता स्पष्ट होती है। कुछ सरस सूक्तियों के उदाहरण निम्नांकित हैं:

(१) वैसानर नइनाउ विकराल विषहर डींकउ विषहर लाल - (४।३२)

(२) रवि विन पुन्निम छाजइ नाई पुनिम विन रवि संठउ थाइ
सकल पुरुष कुलीणी नारि विहुं जोड जोडी संसारि - (१०।७८)
(३) प्रिय विन नारी राति अंधारी मेल्ही रुडे काजि निवारी

जइ पुण सुह-दीवउ झलहलइ, तउ दीवाली सब कुविकुलइ - (११।९०)

(४) जीवि गुफा केसरि वसइ, करि कुल केरव काल,
शाकि सियाल तिहां करइ बीह नही ते बाल- (११-९९)

(५) जलधर वुठई जलण न दहइ गयह थाइ गर डस किम रहइ
रवि उगुगमि अंधारउं टलई साहस धणी न साहिणि छलइ
केसरि(स) द्विप मयंद पलाइ, घट किम नीरइ घण ने थाइ
हिम पडतइ जिम दाफइ साक, भड आगलि सउं कर्म वराक

इस प्रकार कवि ने उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टान्त, क्रम वर्णन, अपह्नुति विरोधाभास संदेह, यमक श्लेष आदि अनेक अलंकारों का सफल वर्णन किया है जिनके उदाहरण ऊपर दिए जा चुके है।

काव्य शैली और छंदों की दृष्टि से इस रचना का पर्याप्त महत्व है। कवि ने इस वैविध्य को बड़ी सफलता से संजोया है।वास्तव में प्रबन्ध चिंतामणि का पद्य भाग मात्राबंध और लयबंध इन दो रूपों में विभक्त है। मात्रात्मक में अडीउ, चउपइ और दूहा है और उनके अतिरिक्त पद्धरि वस्तु छंद, मरहट्ट दुर्मिला और गीति नाम के छंद दिखाई पड़ते है जो संख्या में अधिक नहीं है। और अपभ्रंश में से जूनी गुजराती या प्राचीन राजस्थानी में आने वाले छंदों में वस्तु छंद प्रमुख है। इसके अतिरिक्त छप्पय, सरस्वती धवल, तलहरा धवल और मिश्र मात्राबंध का प्रयोग भी कवि ने किया है। अवशेष भाग में सोरठों जैसे एक कड़ी के ध्रुपद या कई कड़ियों के ध्रुपद तथा काव्यट्ट और धवल का मिश्रण मिलता है। लयबंध पूरे काव्य में पद्य भाग में ही है। गद्य भाग में तो बोली के ये उदाहरण है।[१]

प्रस्तुत काव्य में सरस्वती धवल और धवल ये देशी छंद है। दोहा छंद भी इसी तरह मिलते है। हिम का शीर्षक के अन्तर्गत बहुधा उपजाति छंद मिलता है। पद्धड़ी छंद का उल्लेख भी श्री ध्रुव बतलाते है।[२] पद्धड़ी बनाने की विधि कुछ चरणों में इन्द्रवज्रा और कुछ में उपेन्द्रवज्रा होती है।जिस प्रकार प्रस्तुत काव्य के १८०, १८१ और १८२ छंदों के[३] १२ चरणों में २, ३, ४ ५, ६, ७, ८, १०, १२ इन चरणों में विकल्प से उपेन्द्र वज्रा व इन्द्रवज्रा है।

१- प्राचीन गु०का०प्रस्तावना: श्री ही०भा०के०ह० ध्रुव, पृ० ३७-३८
२- वही
३- आपण कवियो: श्री के०का० शास्त्री, पृ० ३१०

इस कवि ने अक्षर मेल छंद में काव्य रचना की है। परन्तु यह रचना सिर्फ उपजाति से ही स्पष्ट होती है। कृति प्रबन्ध है अतः सामान्यक्रम में मात्रा मेल छंद, दूहा, चौपाई चरणकुल, पद्धड़ी सवैया आदि देशी छंदों का प्रयोग है। जयशेखर सूरि क्योंकि असाधारण कवि थे अतः इन्होंने अक्षरमेल छंदों का प्रयोग किया है जो साधारण कवियों के वश की बात नहीं है। इन छंदों पर विस्तार से विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ आगे छंद सम्बन्धी अध्याय में किया जायगा।

कहीं कहीं कवि डिंगबोली के अन्तर्गत गद्य खंडों का भी प्रयोग किया है। कवि की इस गद्य शैली का यह उदाहरण इस प्रकार है:-

ति वार पूठि मोकलाविउ, स्वामी, स्वामी तणउ आयसपामी, चालिउ विवेकराउ विस्तरिउ विषय भडवाउ तत्व चिंतन पट्ट हस्ति कुउ आसणि पीयापड पीयाणई वाघइ परिवार। जे जि कोइ प्राधइ तेह रई हइ ते वस्तुं दान अनिवार, तत्व कथा भेंभ डहडई घज अलंब लहलहई, साधुतणां हृदय गहगहइ दुष्टदोषी तणउ दोहण, पाभिउ पुण्य रंग पाटण।[1]

इस प्रकार छन्द, भाषा, भाव, शैली, काव्य, अर्थ गौरव और पदलालित्य तथा संगीत लगभग सभी दृष्टियों से त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध उत्कृष्ट काव्य है। कृति प्रसादान्त है और निर्वेद उसके मूल में है। कुल ४३२ छंदों में कवि ने इस प्रबंध को लिखा है। आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में ऐसी कृतियां अपना पूर्ण वैशिष्ट्य रखती हैं।

: भरत बाहुबली प्रबन्ध :

१५वीं शताब्दी के एक प्रबन्धभरतबाहुबली-प्रबन्ध मिलता है।[2] यह काव्य भी प्रबन्ध शैली में लिखा गया है। श्री स्वर्गीय देसाई मोहनलाल ने भी इसकी सूचना अपने ग्रन्थ में दी है। यह प्रबन्ध कैसा होगा यह तो कहना कठिन है परन्तु इसकी भाषा भाव और उपलब्ध उद्धरणों के आधार पर इसकी परीक्षा की जा

१- त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध पद १२९ पृ० १५।
२- जैन गु० कवियो: श्रीमोहनलाल देसाई-भाग प्रथम-पृ० ३०-३२।

सकती है। इस कृति की प्रति कुछ वर्षों पूर्व श्री देसाई को पाटण भंडार से उपलब्ध हुई थी परन्तु इस समय इस कृति की प्रति प्राप्त नहीं है। अतः इसके रचनाकाल लेखक समय स्थान आदि के विषय में कुछ बताना बहुत कठिन है।वस्तुतः इसके आदि भाग और अंत के कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत है:-

अउताल चौपाई

पढम जिणेसर पायनमुं निरा से डुंग केरो स्वामि
अहनीस आदित नाम जपंता दुरगति नासि नांमि
पउमावेई वर दीप अनोपम, नाकल गच्छि गुरुराय
श्रीगुण समुद्र सूरि गुरु गिरुया महि अलि पयअवाय
तास पाटि तप तेजि दिवाकर सागर जिमगंभीर
श्री गुणदेव सूरि गुणि पूरित समरथ साहसधीर
तास सीस धीर रस जंपि श्री गुण रयणह सूरि
रिसहेसर कुंवर गुंण गातां पाप पलाइ दूरि
आदि कुंअरि कइ वीनती, ब्राह्मी अमचइ दीजि
भरतबाहु बली तणो पवाडो गुरु पसायि कीजि (१-५)

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कवि ने इसे पवाडो का रूप दिया है।भरतबाहु बली के इस चरित प्रबन्ध को कवि ने लोक भाषा में जन प्रचार के लिए लिखा होगा। छंदों का वैविध्य भी इसमें होगा, ऐसा स्पष्ट होता है।

बाहुबली और भरत का चरित्र कवि ने बहुत प्रभावशाली ढंग से लिखा है। कृति के इस द्वितीय उद्धरण में बाहुबली के तप और उसके केवली बनने का वर्णन किया है।उसकी बहिन आकर के ही उसे हाथी से उतरने व अहं त्याग का उपदेश करती है।अतः कृति की कथा रूढ़ि और कथा परम्परा में कवि ने भरतेश्वर बाहुबली रास(सं० १२४१) से कुछ आगे का कदम लिया है। वर्णन में भाषा की सरलता और चित्रात्मकता स्पष्ट है:-

सती भणइ दीणि बाहुं बीरा गयवर मान कहिजि
पह थका उतरो अतुलिबल जिम सवि कर्म दहिजि
तिहिनि समउ प्रतिबोध मुणीनइ डिउं उपसम रहिउं
तात जुहारू बंधव बांदू जाइ य हूंय बसाहिउ
मान तज्यूं तब ज्ञान उपनुं अमरे कीउ उच्छाह
बखी सरणि केवलनी पांति बिठो बहुली नाह
नाभि मरुदेव्या रिषभ जिणेसर सुनंदा सुमंगला राणी
भरत बाहुबलि बंभी सुंदरि, सती सिरोमणि जाणी
ए जपतां अघि पाप न लागि अविहड़ सुख अनंत
श्रीगुणरत्न सूरि ईम बोलि श्री आदि नाथ जयवंत (१९७)

इस प्रकार कुल १९७ छंदों में लिखी यह कृतिभरत और बाहुबली के जीवन का एक उत्कृष्ट चरित्र काव्य है भाषा प्राचीन राजस्थानी है। इस प्रकार इन प्रबन्धों में कथा का तत्वही अधिक है। क्योंकि ये असाक्षरता मिटाने और धर्म प्रचार की दृष्टि से लिखे गए। परन्तु त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध जैसे काव्य ऐसी स्थितियों में अपवाद ही कहे जावेंगे। वस्तुतः जैन धर्म के दार्शनिक पक्ष पर लिखे ग्रन्थों के अतिरिक्त और धर्म के मूल तत्वों के वर्णन के अतिरिक्त लौकिक विषयों पर ऐसी प्रबन्धों की संख्या कम है परन्तु यह कहना संभवतः बहुत ठीक नहीं है।अनेक जैन भंडार अभी बंद पड़े है जिनमें हजारों ग्रन्थ पड़े हैं। शोध होने पर लौकिक और अलौकिक दोनों विषयों पर जैन काव्य उपलब्ध होंगे।

इस प्रकार यों प्रबन्ध काव्यों की श्रृंखला में आने वाले काव्य तो अनेक है उदाहरणार्थ हंसवच्छचरित्र, प्रद्युम्नचरित्र, विद्याविलास पवाड़ी आदि पुराण विराट पर्व, ज्ञानपंचमी चउपई आदि परन्तु उनका विवेचन विभिन्न काव्य रूपों के अन्तर्गत किया जायगा। भरतेश्वर बाहुबली रास, नेमिनाथ फागु और समरा रासु प्रबन्ध काव्यों के रूप में उपलब्ध होते हैं। जिन पर पिछले पृष्ठों में प्रकाश डाला जा चुका है।शोध होने पर और अधिक प्रबन्ध संज्ञक रचनाएं अवश्य प्राप्त होंगी।

॥ सुदर्शन सेठ शील प्रबन्ध[१] ॥

प्रबन्धों की इसी श्रृंखला में १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम दशक में एक महत्वपूर्ण कड़ी "सुदर्शन सेठ शील प्रबन्ध" है। रचना सं० १५०१ की है तथा रचनाकार श्री चन्द्रसूरि के कोई शिष्य है। पाटण भंडार की प्रति से लिपिबद्ध की गई इसकी एक प्रतिलिपि (सं० १५७१) की राजस्थान पुरातत्व मंदिर जयपुर में सुरक्षित है। अद्यावधि, यह प्रबन्ध अप्रकाशित है। स्वर्गीय देसाई ने इस कृति की सूचना, के साथ कई प्रतियों की सूचना गुजरात के भंडारों के लिए दी है।[२]

प्रस्तुत प्रबन्ध ४०० कड़ियों में पूरा हुआ है और जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है यह काव्य सुदर्शन सेठ के शील की उत्कृष्ट कहानी है तथा चरितमूलक कथा प्रधान काव्य है। शील का जीवन में क्या महत्व है। शील मनुष्य में उत्कृष्ट गुणों का समावेश करता है और यही आदर्श जीवन की कुन्जी है। यह एक ऐसा तत्व है जिसकी साधना मनुष्य को देवत्व प्राप्त करा देती है और सुदर्शन सेठ ऐसे ही चरित्र नायक है जिसकी चरित्र जैन समाज में आज भी आदर्श माना जाता है और उसे शील का देवता माना जाता है।

सुदर्शन सेठ के शील की कथा परम्परा अपभ्रंश ग्रन्थों में भी मिल जाती है। लोक कथा में यह काव्य पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। काव्य का कथा भाग बड़ा सरस है।वस्तुतः काव्य की दृष्टि से रचना इतनी महत्वपूर्ण नहीं लगती । कवि का मन केवल मात्र कथा भाग को अधिकाधिक विकसित, करने में लगा किया है। चरि मूलक आख्यान काव्यों की दृष्टि से यह रचना बड़ी महत्वपूर्ण है।वस्तुतः यह काव्य एक वर्णनात्मक कथा काव्य है।

सुदर्शन सेठ शील प्रबन्ध पांच ढालों में विभक्त किया गया है।इसमें ३ ढालों में कवि ने सेठ सुदर्शन के शील की कथा प्रस्तुत की है और शेष दो ढालों को सुदर्शन

१- देखिए हस्तलिखित प्रतियों का विभाग-राजस्थान पुरातत्वमंदिर जयपुर।
२- जैन गुर्जर कवियोः श्री मोहनलाल देसाई।

की महिमा, उसका वंश तथा उसकी दीक्षा और संसार त्याग।

कवि ने पहले २४जिनवरों की वंदना की है और फिर शासन देवताओं की और पश्चात् शारदा का स्मरण किया है। सरस्वती की कृपा के बिना वह सुदर्शन के शील का सुन्दर रेखा चित्र नहीं खींच सकेगा अतः यह उसने प्रारम्भ में ही स्वीकार किया है:-

> पहिलुं प्रणमीय अनुक्रमिहयं जिनवर चउवीस
> पछइ शासना देवताए सीह नामुं सीस
> समरीय सामिणि सारदाए सा निधि सौभाग्य
> मागइ याहु प्रति पसूए कवि हुं अहिकार
> तु तूठा सरसति भगवइ हुआ वि सुअंगिई
> सठि सुन्दर चित्त रास रचि जो मन रंगिइ (१-२)

संक्षेप में सुदर्शन सेठ के शील की कथा इस प्रकार है:-

भरत क्षेत्र के जंबू द्वीप की चम्पा नगरी में दधिवाहन नामक राजा और अभयादेवी उसकी रानी राज्य करते थे।उस नगरी में अर्हदास नामक धनिक सेठ के सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। धीरे धीरे सुदर्शन सकल कला सम्पन्न होता गया और उसके यौवन में प्रवेश करते ही उसके पिता ने मनोरमा नामक एक शीलवती लड़की से पाणिग्रहण कर दिया और उसके तीन सुन्दर पुत्र और एक पुत्री हुई। ऐसे गुणी तथा चरित्रवान व्यक्ति के साथ राजा के पुरोहित के लड़के कपिल ने मित्रता गांठी और प्रतिदिन इन दोनों की मित्रता घनिष्टता में परिवर्तित होती गई। दोनों मित्र सरस वार्ता में घंटों बिताते। कपिल इसी कारण विलम्ब से घर पहुंचता। कपिल की पत्नी ने उसे इसका कारण पूछा। उसके गुणी मित्र की कथा सुन कर कापिली उस पर मुग्ध हो गई और उसे काम भाव से चाहने लगी।सुदर्शन खूब जिनवर पूजा करते और शीलवान का जीवन बिताते। एक दिन पुरोहित के लड़के के बाहर जाने पर कापिली ने उसे घर बुला करएकान्त में काम भावना प्रकट की। सुदर्शन का शील न डिगा। उसने अपने को पुरुषत्व हीन कह कर उससे मुक्ति पाई। एक दिन नगर के बाहर महोत्सव था।कपिल की पत्नी ने उसमें सुदर्शन की पत्नी

मनोरमा तथा उसके सुन्दर पुत्रों को देखा और पूछने पर उसको सुदर्शन की इस चाल का पता लगा। उसने दधिवाहन की रानी को यह सब बता दिया। रानी का गर्व जाग उठा। उसने भी उसको झुकाने की प्रतिज्ञा कर ली। राजा को एक नगर के बाहर उत्सव करा कर स्वयं घर रह गई और सुदर्शन को घर बुलाया तथा खूब श्रृंगार करके उससे भोग की याचना की। सुदर्शन उस समय शीलव्रत का पालन कर रहे थे वे किंचित भी विचलित नहीं हुए। रानी ने रूप बदला और चिल्लाई कि यह दुष्ट व्यक्ति उसके अन्तःपुर में घुस आया है राजा ने उसे कारागार में डाल दिया, मृत्यु दंड दिया और उसका काला मुंह करके गधे पर बिठा कर सारे नगर में चरित्रहीन कहकर घुमाया। पर शूली पर चढ़ाने का ज्यों ही उपक्रम हुआ, जिनवर की कृपा से शूली सुन्दर पद्म के सिंहासन में बदल गई। पुष्प वृष्टि होने लगी और सुदर्शन के शील का यश स्वर्ग तक फैल गया। इस प्रकार सेठ सुदर्शनने अपने शील को अखण्ड बनाए रखा।

संक्षेप में यही कथा है कवि ने तीन ढालों में कथा का विभाजन किया है और शेष दो ढालों में साधना, ~~तथा शील का महत्व~~ तथा सुदर्शन की दीक्षा का महत्व स्पष्ट किया है।

रचना प्रबन्ध शैली में लिखी गई है तथा कवि ने राज्य, नगर, स्त्री, रूप, जन्म, प्रकृति, अन्तपुर, तथा शील आदि के सुन्दर वर्णन किए हैं। काव्य की दृष्टि से रचना साधारण है परन्तु भाषा तथा वर्णन की प्रवाहात्मकता पर्याप्त महत्वपूर्ण है। कवि ने अहिंसा, कर्मवाद, व्रत, तथा शिक्षा आदि का महत्व समझाया है। कथा का सूत्र आद्योपान्त काव्य में प्रवाह बनाए रखता है। रचना में वर्णित सूक्तियाँ भी अपना महत्व रखती हैं। इस तरह हम विविध रूपों में कवि ने सुदर्शन सेठ शील प्रबन्ध को संजोया है। कथा के प्रवाह तथा भाषा के स्वरूप के लिए कुछ सुन्दर स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है। प्रारंभ में ही कवि ने सुदर्शन के जन्मोत्सव का वर्णन किया है:-

> सायी मलक'स पुया निसु नवहमयी घरि
> मारि मिवारी नयरमाहि जिन धर्म्म सचिहुं सुरि

जिन मंदिरि जिन वरतणी, गुण गाई गोरी
अर्हदास उत्सव करि पुरि मंडलिधोरी
शुभ वेला सुत जनमीउ जागि जइ जइकार
तेज पणई तन तेहतणि, अरथनी कुमार ।। (६-७)

कवि केर दधिवाहन के नगरी का चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है जिससे और तत्कालीन सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन पर प्रकाश डाला है। भाषा सरल, सजीव सक्षम लोक भाषा मूलक तथा प्रवाह पूर्ण है।अपभ्रंश का प्रभाव एकदम हटा हुआ प्रतीत होता है। एक उदाहरण देखिए:-

विप्र वेद बहु उच्चरईए, मंदगिहि बोलि
सोना सकिहिं सु पीइए, कृपण मनि डोलई
पंच शबूद निनाद करई निघोषि निरंतर
सर्ग लोक सम वडि करइ, नवि दीपि अंतर
अरिहदास आवा सहित,अस्थान ल्यावइ
मंगल करणी कारि हरषि तो कुमर बंधावि
परी अटा परिवारि दीइ ते अबला बाल
सधर सुरंगी साचटू चुनडी बडचाल

सुदर्शन का विवाह वर्णन भी कवि की शैलीगत सरलता तथा प्रवाह का परिचय देती है।वसंत का वर्णन, क्रीड़ा, पाणिग्रहण उत्सव और कन्या के रूप का वर्णन कवि ने शृंगार के साथ किया है:-

पंच वरस कुलीयाए, उत्सव करि अपारु
सुलाह ने शालइ सु मीउए जिहां भणि राइ कुमारु
ओ जिन वेस अलंकरीय मनि भीहावी
सहि कुल कन्या जोइसु जन उलथि जाणी देठिसु
बेटी गुण सागर तणीय माणरमा अति बंगसु
सहुर्दर्शन परणावीउए बीवाहउ सु रंग सु
परणीहिसे घरि आवीउए ही अडि हरष अर्मगु
जिन कन्या जोइए जाण उवर अंगसु

पुह उगुमि गुणीइ सुर वाजइ तूर
पट्टल लानित पाल्टइप, भोजन कूर कपूर
विधि खेलइ खडी खलीय वाडीव विविध बसंत
रंगिईं राम दू रमइप हीयडा माहि हसंत
विलसिइ वसुहां विबहुरे, सुब संपति संजोग दु

कपिल की स्त्री को कवि ने किस प्रकार सूक्तियों द्वारा तथा नीति पूर्ण उक्तियों द्वारा समझाया है। दुर्दशा की भिन्नता में डूबे कपिल और उसकी स्त्री की नाटकीय संवाद योजना उल्लेखनीय है। सूक्तियों का प्रयोग कवि की इस वर्णन शैली की रही है। एकउदाहरण देखिए:-

१- मंदिर मोडइ आवीउप विप्रह लागी वारह
कवि कन्हइ पूछि धरमिईं संपति स्वामी वात
निधि नमहीन थोडं न हीय हिव दु बोलि विचारह
मूरख मुगुध मकारि कलइ महली गाम गमरिदु
जस जा मति मानव न हीय अवरन इमि संसारिदु (३२-३५)
स्त्री रुठीदु काल जिम नाथि लंगि विकराल

काम मुग्धा नारियों का एक सरस चित्र देखिए:-

२- नारि नयन देठिइ दुणीय, बोलइ बेकर जोडिदु
पोसह सुब्बार धन हीय अंगि अन्हारइ कोडिदु
महीयलि मोटउ मोहणउ, नरगिईं मुहवति कामउ
बाहिरि बोलण पाडिबइ जाइति माहरी मामउ
कामिनि कहिवं मान हीय उपक्रम करि अपारदु
अन्बोहरि झडी वह इम कपिला करवड वारदु
नर हरणन काढउ नाक्रिइय महिला जाणइ मर्मदु
सहि न सकिय सकइय, कपिला भागु धर्मदु (५२-५५)

--- --- ---

चिर हंका क्यारे सरवीया, नारि स्वामी दु नीरदु

आगा ने सभी नारी सिंगुषि, पुहविइं पुरुष सतंग सु
माया पाषित पाडीउष सई लजान्या अनंग सु
सुंहंता हरि वहिनडीम विहिसु वालि सवीरसु
नहीसुं दावानल दहिषि, सूरि जयाहि करेसु
इणि परि मारगि चालतांप, भाविउं वन उद्यानसु
काम केलि मव रथ करइप, तेह नंदन उपमानसु (७४-७७)

कवि का रूप वर्णन पारंपरिक है यद्यपि उसमें कोई नवीनता तथा मौलिकता परिलक्षित नहीं होती परन्तु फिर भी कवि ने सरल उपमानों के साथ नख शिख वर्णन किया है:-

अपछरारूपि किसिउं कवि भाखि, जा सखि अवरन हीजे दाखइ
इंद्रणि इन हीजे सुवी इंद्र महिषी, नाग लोकि नहीं नारी सरिखी
विद्याधरी नहीं वैताडि, तिहां अधिकी अपया उगाडी
पहिरी रमि .... फली, कंचू इकु सिकाके धमाली
तीहऊ परि उपचार पाए नेऊर रणझणकार
कंठ निगोदर निघटनि रेह बाह सोनूं जिषि उदेह
क्रमच ठीक बइठा झलकइ, करि सोनानी चाटी झलकि
आंखि अनोपम आंजी आडी, अपर अमरी कीधि चाडी
काने कुंडल फालि झबूकि ते देखि ते देही तप सीतंबूकि
मस्तकि चारु बेणी दंड, पाठउ पन्नग जिणित प्रचंड
सिरि कुंकुम सूरि, पंच बाण सु सकूड कम
तं अस हरितं बोल बनावइ, हाव भाव सवि फडावापि
सहबडि माया मोडी मारइ, निपुण नयण मेल्हि नीली आर
बारा सोरम चारन दंडि, तेह आमलि कड़ु नरकिम मंडि (१००-१०४)

अन्त में कवि ने सुदर्शन की सूली को सिंहासन में परिवर्तित होने की बात कह कर रचना समाप्त की है:-

आवइ मेल्हवा अंगि प्रहार, सुदरिसिन सोहि सिणगार

सूली फीटी हुई सिंहासन, सिहा वइठठ पुरी पदमासन

शीलवंत सुदर्शन को शृंगारा गया और कवि ने असद्वृत्तियों पर (काम पर) शील की विजय कराई है। सुदर्शन की विजय का वर्णन देखिए:-

पहिरूं पट हस्ती शृंगार जे ऐ रावण हाथी आणु

तेह ऊपरि सुदरिसिण चडीउ, आगलि राजा थिउकां वडिउ

मस्तकि मेघाडंबर छत्र, पंच शबद वाजई वाजित्र

स्वर्णत नाचिइ नचावी भरहा भद जाणि सठि हावी

फूल पगर भरा ठ्यारवाइ, अगर कपूरा तिहां बहु ऊवेवाइ

घरि घरि गूडी मांधीबारि, बधावई बाकू नरनइ नारि

रमढ़ी वही निरखिई मृगनयणी, धउन धउन जा जेणई जणणी

अन्त में निर्वेद में काव्य समाप्त होता है और स्वयं सुदर्शन संघ निकाल कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं कवि ने अहिंसा कर्मवाद और शील तप की सफल अभिव्यंजना और सुख्य संवेदना पर काव्यगढ़ा किया है:-

ठामि ठामि मंडप मंडाणां, मेहा सोहिई गयण समाणा

आपापि कवि पवित्र सम सइंप

किया लेपि भाव मिलीउ, सेव नाग पारडे सत सहीला

स्वामी रंगि सहू आनंदूका

--- --- ---

सर्व योग सुरिईं प्रत दीधर्ड, सर्व प्रत सामाइक लीधर्ड

हीधर्ड काय सदारीसिनव

--- --- ---

दीक्षा उरवस कीयड तेस तव माहि मविमाइ रंगि

संघहू हर्मेसम सुपत

कवि ने ५वीं ढाल में लोक गीतों की ढालों के आधार पर एक टेक विवेक का

प्रयोग काव्य को गेय तथा सरस बनाने के लिए किया है। कवि ने -माल्हंतडे- और- बूझवि जाण अजाण- आदि टेकों का प्रयोग करके काव्य में लोक गान की संगीतात्मक धुनों का प्रयोग किया है जो काव्य को संगीत प्रधान बनाने में सहायता करती है। एक उदाहरण देखिए:-

राई सवि बोलावीयाए, माल्हंतडे कोइ मधालिखि माउ
का रीतां विचि वाहिसिई ए।माल्हंतडे तेहनी केडिसिठाउ
चितन करीनिई आणीउए।माल्हंतडे राजा जोड अंगि

और शील की महिमा में कवि भरत वाक्य के साथ काव्य समाप्त करता है:-

शील तणु महिमा हुआए, माल्हंतडे जोर पृथ्वीपति कीध
सुदरा इतवीन वइए, मा-मई कीधउ अपराध

--- --- ---

शील प्रमाणिई आचरिउए मा० लीधउ श्री समकित
विरति वारा इत प्रति करइए, मा० जे अभयाउजीव

--- --- ---

शील महा तप संयमहुए मा० द० विषइ अमूल्या कय
रास तणि सेवकि रचिउए, मा० रास भूहउ रली रंगि
माउ शील सोहामणउंए माल्हंतडे अनंद उमगि अंगि

इस प्रकार कवि ने दोहा चौपाई और रास छन्द में पूरी रचना समाप्त की है। रचना का नायक सेठ सुदर्शन धीर प्रशान्त है।वर्णनों की विविधता, लोक गीतों की ढालें और भाषा की सरलता रचना की १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का स्वरूप प्रस्तुत करते है। शैली सरल है आलंकारिकता अधिक नहीं है, पर यथा संभव उपमा रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

प्रति के अन्त में प्रतिलिपिकार ने पुष्पिका दे दी है:-

।इति सुदरिसिनसेठि शीलप्रबंध समाप्त ।।छ।।

संवतु।।१५७० वर्षे फागुण सुदि पडवे कनोत्री परसने लिखितं।।छ।।

कवि ने प्रारम्भ में रचना को रास लिखा है परन्तु शिल्प के अनुसार इसका प्रबन्ध नाम ही अधिक सार्थक लगता है। १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की कृति होने से भाषा की दृष्टि से रचना का अध्ययन पर्याप्त महत्व का है। उक्त विश्लेषण द्वारा रचना का सापेक्षिक महत्व स्पष्ट किया जा सकता है।

॥ ब ॥

चरित्र - काव्य

: ब :

चरित काव्य

जैन विद्वानों और कवियों ने जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में विभिन्न काव्यों की सृष्टि की है उसी प्रकार अपभ्रंश साहित्य की भी बड़ी सेवा की है। अपभ्रंश में रचित महापुराण, चरित ग्रन्थ, स्तोत्र स्तवन की यही परंपरा अपभ्रंशेत्तर काल में भी सुरक्षित मिलती है। चरित-काव्य उनमें से एक प्रधान प्रकार है। ये काव्य जैनाचार्यों ने जन सेवा, श्रावकों की प्रार्थना और धर्म प्रचार के लिए लिखे हैं। किसी आदर्श पुरुष, महापुरुष तीर्थंकर या ६३ शलाका पुरुष आदि के जीवन पर काव्य लिखना जन समाज को उसके आदर्शों से परिचित कराना है अतः चरित काव्यों की अपभ्रंश में बहुलता दीख पड़ती है। अपभ्रंश की ही भाँति पुरानी हिन्दी (पुरानी राजस्थानी या प्राचीन गुजराती) में इस प्रकार की चरित्र या चरित संज्ञक रचनाएं अनेक मिलती हैं जिन पर हम इस अध्याय में प्रकाश डालेंगे। इन कृतियों में किसी प्रसिद्ध पुरुष ऐतिहासिक व्यक्तित्व राजा, संघाधिप या राजमंत्री की प्रेरणा या उनका इन्हें लिखाने में पूरा आग्रह स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अतः उन्हीं के लिए इसमें किसी मंगल कामना से या किसी संघाधिप दान वर्णन या किसी ब्रह्मचारी का व्रत वर्णन या किसी महापुरुष का चरित वर्णन किया गया है, क्योंकि जैन मुनि निष्काम साधना करते थे। साथ ही अपने आश्रयदाताओं का अतिरंजना से वर्णन करना ठीक नहीं समझते थे, परन्तु फिर भी समरा रासु, जिन पद्म सूरि गुरुगुण वर्णन, पेथड़ रास, आबूरास आदि इस प्रकार की अनेक रचनाएं मिलती हैं जो इस नियम का अपवाद नहीं कही जा सकती। यद्यपि जैन कवियों ने पौराणिक आख्यानों के आधार पर तथा संस्कृत काव्यों के आधार पर भी लिखा है परन्तु उनमें चरित आख्यान मूलक रचनाएं अधिक हैं। उदाहरणार्थ हेमचन्द्र का कुमारपाल चरित, वीरनंदी का चन्द्रप्रभचरित पद्मचरित, आदिनाथ चरित आदि अनेक ग्रन्थ तीर्थंकरों और महापुरुषों के जीवन चरित हैं। इन ग्रन्थों में कवि ने कथा को माध्यम बनाया है ताकि इनमें जीवन की किसी उदात्त भावना या नैतिक और सदाचार सम्बन्धी किसी उत्कृष्ट बात का जनता में प्रचार कर सके। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि

जिस प्रकार सिद्धों और नाथ कवियों ने गुरु महिमा, आध्यात्मिक प्रचार, रहस्यवाद और रूढ़ियों के विनाश के लिए अपने अपने मतमतान्तरों और धर्म के प्रचार के लिए आध्यात्मिक साहित्य लिखा ठीक उसी प्रकार इन जैन कवियों ने धर्म प्रचार, नैतिक निष्ठा और उपदेश प्रचार की दृष्टि से ही इन कथा काव्यों या चरित काव्यों की रचना की है। कुछ भी हो, इन काव्यों की पृष्ठभूमि में संस्कृत और प्राकृत की परंपरा अवश्य रही है। संस्कृत और प्राकृत की इसी परंपरा को अपभ्रंश में कवियों ने पूरा पूरा निभाया है। अधिकतर इन काव्यों में आख्यान मूलक, चरित्र वर्णनात्मक और उपदेश प्रधान काव्य ही अधिक है। अपभ्रंश में इस प्रकार के चरित प्रधान व चरित संज्ञक कई काव्य मिलते हैं पउम चरिउ, रिट्ठणेमि चरिउ महापुराण भविष्यदत्त-कहा, पाण्डव पुराण, णयकुमार चरिउ, जसहर चरिउ, जंबूस्वामी चरिउ, सुदंसण चरिउ, आदि अनेक चरित काव्य उपलब्ध हैं। अपभ्रंशेतर-काल में भी इस प्रकार की चरितमूलक रचनाएं उपलब्ध हुई है। आदिकाल में इस प्रकार की अनेक कृतियां अभी जैन भंडार में दबी पड़ी है, जिनकी शोध होने पर चरित संज्ञक अनेक कृतियों के उपलब्ध होने की संभावना है।

चरित संज्ञा किसि काव्य रूप की द्योतक नहीं है। यह नाम संभवतः इन कवियों ने विषय के आधार पर दिया है। किसी महापुरुष या तीर्थंकर अथवा किसी उदात्तगुण-सम्पन्न राजा का आदर्श चरित वर्णन करने के लिए ही इन कवियों ने यह नाम दिया है। इन काव्यों की मूल प्रवृत्तियों पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कथा तत्त्व की प्रधानता है। नायक के गुणों का वर्णन, उसका आदर्श चरित, उसके क्रिया कलाप, उसके शौर्य और वीरता आदि का वर्णन करने में कवियों ने विविध प्रभावशाली घटनाओं और कथा सूत्रों की सहायता ली है। इन ग्रंथों के विषय लगभग सभी धार्मिक है, उनके धर्म सिद्धान्तों का विवेचन है वस्तुतः जिस प्रकार अपभ्रंश के काव्यों का मूल उद्देश्य धर्म प्रचार था, ठीक वैसी ही पृष्ठ भूमि इन रचनाओं की है। इस दृष्टि से जैन रचनाएं धर्म प्रचारक रचनाएं है पर साथ ही उनमें काव्य स्थल स्थल पर निखरा है। इन चरित मूलक आख्यानों का सबसे बड़ा उपयोग जीवन निर्माण की दृष्टि है। जो साहित्य मानव हित के लिए न लिखा जाय वह साहित्य कैसा? अतः धर्म प्रचार और भाषा निर्माण

चरित मूलक ग्रन्थ वर्णनात्मक अधिक होते है। इन रचनाओं में घटना तत्व की प्रधानता है। कवियों ने कहीं कहींअवान्तर घटनाओं का या काव्य को उत्कृष्ट बनाने के लिए कुछ काल्पनिक आदर्श-कल्पित घटनाओं का भी वर्णन किया है। प्रकृति वर्णन प्रधान रूप से न मिलकर गौण रूप में उपलब्ध होता है। फागु काव्यों और बारहमासा काव्यों को छोड़कर अन्यत्र ऐसा लगता है कि इन कवियों को प्रकृति वर्णन का अवसर ही नहीं था। अतः बहुधा प्रकृति वर्णन जितना भी हुआ है वह सब पारंपरिक व साधारण है। प्रकृतिवर्णन में इन कवियों ने वृक्षों की नाम गणना व बसंत वर्णन ही अधिक किया है। नाम परिगणनात्मक प्रकृति वर्णन बहुत ही साधारण माना जाता है। इस तरह इन काव्यों में महापुरुष वर्णन, संघ वर्णन, भक्ति वर्णन, तीर्थ वर्णन, उल्लास वर्णन, कीर्ति वर्णन, उपदेश वर्णन प्रधान रूप में और प्रकृति वर्णन तथा शृंगारादि वर्णन गौण रूप में हुए है। इसका कारण जैन कवियों व साधुओं की धार्मिक मर्यादाएं है।

चरित काव्यों में कुछ चमत्कार मूलक तत्वों अप्राकृतिक तत्वों (सुपरनेचुरल एलिमेन्ट्स) का भी वर्णन देखने को मिलता है। अपभ्रंश के चरित मूलक ग्रन्थों में भी इस प्रकार की परंपरा मिलती है। इन घटनाओं को अप्रत्याशित घटनाएं ही कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ सधारु के प्रद्युम्न चरित में प्रद्युम्न द्वारा अनेक रूपों में प्रकट होना, विद्याधरों का उपस्थित होना, आकाशगमन, कामरूप करना, डराना, बदला लेना विभिन्न वेशों में एकदम प्रकट होना आदि तत्वोंका निर्वाह मिलता है। विद्याधरों और दानवों के वंश पर विस्तार में वर्णन मिलता है।

इन चरित ग्रन्थों में कवियों ने आदर्श नायक चुने है जिनका चरित विस्तार में वर्णित होता है। यद्यपि अद्यावधि हमने जिन काव्यों पर प्रकाश डाला है चरित मूलक वे भी है परन्तु कवियों ने उनका नाम रास, फागु आदि दिया है और चरित नहीं अतः यह कहा जा सकता है कि दोनों नामों व काव्य रूपों में मूलतः अन्तरअल्प है। चरित काव्य, कथा प्रधान या चरित प्रधान होते है और यह भी सम्भव है कि इन ग्रन्थों में धार्मिक वर्णनों का प्राचुर्य मिलता है तथा इनका उद्देश्य ही धर्म प्रचार होता है। जिन काव्यों में कथा का प्राधान्य है

में इन कृतियों का महत्व स्पष्ट हो जाता है।साथ ही कृतियों की संख्या और विषय व काव्य रूपों का वैविध्य इनमें बहुत अधिक है।

चरित मूलक काव्यों का कोई विशिष्ट शिल्प नहीं है।शिल्प के इन लाक्षणिक तत्वों का अध्ययन करने पर हमें इन काव्यों की वर्णन पद्धति अर्थ गौरव कथा लाघव और काव्य के सौन्दर्य आदि पर विचार करने पर लगभग वही बातें मिलती है जिनका हमने अन्य खंड काव्यों और प्रबन्ध काव्यों में विचार किया है। इन काव्यों में एक बात विशिष्ट रूप में देखी जा सकती है। कि कवि नायक के उत्कर्ष अपकर्ष का पूर्ण ध्यान रख उसके उदात्त गुणों को चरम पर पहुँचाता है। यही इन काव्यों की मुख्य संवेदना भी है। अपभ्रंश साहित्य की भाँति इन चरित ग्रन्थों में चरित महापुराण रूपक कथात्मक, ग्रन्थ पर्वआदि ग्रन्थ भी आ जाते हैं। तीर्थकरों में नेमिनाथ आदिनाथ, बारह चक्रवर्ती, नौ,बलदेव वासुदेव और प्रतिवासुदेव आदि चरितों के साथ साथ कवियों ने त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों को भी रक्खा है। कालान्तर में शिल्प व विषय में परिवर्तन होने के कारण काव्य का नायक धीरोदात्त गुणों से सम्पन्न नायक भी बनने लगा और इस प्रकार इन चरित काव्यों के कथा नायक महान पुरुष व शौर्य प्रधान राजा आदि भी होने लगे। वृत्त तोड़े मरोड़े जाने लगे। इतिहास के सिद्धान्तों को भी ये जैन कवि अपने ही सिद्धान्तों के अनुसार निर्मित करने लगे। ऐसा करने से कहीं कहीं जैनेतर ऐतिहासिक इतिवृत्त की उपेक्षा भी हो गई है। रामकथा, पंच पान्डव चरित, और महाभारत तथा कृष्ण कथा में इस प्रकार के अनेक स्थल देखे जा सकते है।

चरित मूलक ग्रंथों को सफल काव्य बनाने के लिए और जनता के समीप लाने के लिए इन कवियों ने कथा को ही माध्यम चुना। सरल भाषा और कथा प्रवाह काव्य को लोकप्रिय तथा सरस बनाने में योग देते थे।अतः यदि इन काव्यों में पुनर्जन्म एवं कर्म-विपाक के कठिन से कठिन सिद्धान्त भी हों तो उनको सदाचार की दृष्टि से महत्व देकर जन साधारण ग्रहण करने को तत्पर रहते थे। डा॰ विन्टरनित्सी ने जैन चरित काव्यों के इस प्रकार के उद्देश्य का वर्णन किया है। इन जैन कवियों ने शास्त्रीय पाठकों के अतिरिक्त जन भाषा और देशी भाषा में साधारण, असाधार

उनमें प्रेम कथाओं और प्रेमतत्वका भी समावेश होता है। इन प्रेम कथाओं में कवि ने अवान्तर घटनाओं और कल्पनाओं का रंग भर कर, इन्हें सदाचार, उपदेश नीति तथा धर्म के तात्विक तत्वों से ओतप्रोत कर जन सुलभ बनाने का पूरा पूरा प्रयास किया है।वस्तुतः अपभ्रंश में भी चरित काव्यों में इसी प्रकार की धर्म कथाओं का प्रणयन मिलता है वसुदेव हिंडी और समराइच्च कहा, भविसयत्त-कहा, पज्जुण्ण- कहा,थूलिभद्र कहा आदि अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

चरित काव्यों में कवि को खलनायक की रचना भी करनी पड़ती है नायक के जीवन में औचट डालने वाला एक प्रमुख तत्व प्रति नायक होता है। यद्यपि अपभ्रंश के इन प्रेम कथात्मक चरित काव्यों में नायक की प्रगति में बाधा उपस्थित करने, वस्तु में गति भरने तथा शिल्प को आकर्षक बनाने में स्थान स्थान पर प्रतिनायक का कार्य देखने को मिलता है परन्तु आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य के उपलब्ध इन चरित आख्यानों में बहुधा खल नायक नहीं मिलता। जंबू-स्वामी-चरित, नेमिश्वर चरित, प्रद्युम्न चरित तथा विराट पर्व जैसी कृतियों में (विराट पर्व को छोड़ कर) स्पष्ट रूप से खल नायक तीन कृतियों में नहीं मिलते। विराट पर्व में प्रतिनायक के कार्यों का विवरण है। प्रद्युम्न-चरित में भी खल नायक तो नहीं परन्तु ऐसी प्रतिकूल घटनाओं का वर्णन अवश्य है जिनसे प्रति वस्तु का सृजन हो जाता है। स्थान स्थान पर विद्याधर, यक्ष,किन्नर आदि उपस्थित होकर वस्तु में चमत्कार व आश्चर्य तत्व की सृष्टि करते हैं। यद्यपि इनका अचानक प्रस्तुत होना और अदृश्य होना बहुत स्वाभाविक नहीं लगता। परन्तु उनका परिहार पूर्वभव पूर्वकर्म या पूर्वजन्म से जोड़ कर कवियों ने उन्हें स्पष्ट अस्पष्ट रूपों में चरित नायकों के जीवन से सम्बद्ध सा कर दिया है। अतः वे कथा प्रवाह में अधिक अवरोध प्रस्तुत नहीं करते।

चरित काव्यों का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है जिसमें बहुधा कवियों ने जिनपद वंदन या सरस्वती-वंदन किया है। इन काव्यों का विभाजन सर्गों से नहीं है, परन्तु कहीं कहीं भाव आदि विभाजन सूचक अवश्य हैं।

इन चरित मूलक काव्यों में रस की दृष्टि से बहुधा शृंगार, वीर करुण

ही मिली है।यह इन कवियों की कृतियों की बड़ी महत्वपूर्ण विशेषता है। श्रृंगार रस व वीर रस अप्रधान रूप में वर्णित है। कवियों का मन इन श्रृंगार रस के वर्णन में केवल फागु काव्यों में ही रमा है अन्यत्र वीर और श्रृंगार गौण रूप से वर्णित हुए है। श्रृंगार व वीर का पर्यवसान शान्त में हो जाता है। शान्त रस ही अंगी रस है।

भाषा की दृष्टि से भी इन चरित प्रधान काव्यों की महत्वपूर्ण बात यह है कि भाषा बहुत सरल है तथा शब्दों के प्रयोग नादात्मक या ध्वन्यात्मक है जो भाषा को सरस बनाते है। भाषा भावों का अनुगमन करती हुई तथा शब्द योजना अर्थ की अभिव्यंजना व पद लालित्य में वृद्धि करती है। चरित प्रधान काव्यों में विशेषकर वस्तु छंदों के अन्तर्गत शब्दों व वाक्यों की बार बार आवृत्ति भी मिलती है। जिससे भाषा में सरलता और प्रवाह दृष्टव्य है।प्रद्युम्न चरित में इस प्रकार के अनेक उदाहरण है जिन पर आगे प्रकाश डाला जायगा।

सूक्तियों का प्रयोग एवं सुभाषितों का प्रयोग भी मिलता है अतः भाषा और भाव अधिक सरस और चामत्कारिक हो जाते है यद्यपि धर्म निरपेक्ष या लौकिक कथा वस्तु पर बहुत ही कम जैन काव्य मिलते है परन्तु इस सम्बन्ध में भंडारों की शोध अत्यनिवार्य है। इन काव्यों की भाषा में साहित्यिक और लोक भाषा अन्य दोनों रूप मिलते है ठीक इसी प्रकार शैली भी अलंकृत सरल और बोल चाल या सर्व साधारण की है। बोलचाल की भाषा में भिन्भिन्न सूक्तियों के वर्णन की पद्धति को परवर्ती भाषा कवियो और काव्यों में नहीं दिखाईपड़ती। इन चरित काव्यों में अस्त्र शस्त्रों, तंत्र मंत्रों तथा आचार्यों के ज्ञान में विश्वास दीक्षा वर्णन, स्वप्न व शकुन अपशकुन तत्कालीन धार्मिक रीति रिवाज मन्दिरों स्थानों, तथा तीर्थों आदि का वर्णन भी देखने में आता है।

इस प्रकार चरित मूलक काव्यों की सामान्यप्रवृत्तियाँ और विशेषतायें पूर्ववर्ती अपभ्रंश की परंपराओं का निर्वाह करती है। वस्तुतः चरित नाम किसी शैली विशेष या काव्य रूप के लिए रूढ़ नहीं है। आगे १३वीं शताब्दी से ही १५वीं शताब्दी मिलन तक की कुछ चरित संज्ञक प्रमुख रचनाओं का विश्लेषण किया जायगा।

: जम्बू स्वामी चरित :[1]

१३वीं शताब्दी में चरित काव्यों में सर्वप्रथम जंबू स्वामी चरित कृति उपलब्ध होती है। यह रचना जंबू स्वामी का चरित आख्यान है जिसकी वस्तु में अनेक अन्तर्कथायें और विभिन्न मोड़ मिलते हैं। रचना प्रकाशित है। हिन्दी जैन साहित्य में चरित काव्यों का प्रारम्भ करने वाली सबसे पहली कृति है।

रचना का महत्व इसकी प्राचीनता की दृष्टि से है। यद्यपि १३वीं शताब्दी की अन्य भाषा कृतियों की भांति इसमें भी अपभ्रंश के शब्दों का पर्याप्त प्रभाव मिलता है फिर भी इस चरित संज्ञक परंपरा के श्री गणेश का श्रेय इसी रचना को है। काव्य की दृष्टि से कृति में बहुत कम स्थल ऐसे हैं जिनका विश्लेषण किया जा सके। परन्तु विविध वर्णन, अन्तर्कथायें और छंदों की दृष्टि से इस रचना का स्थान है। कृति का रचना काल १३वीं शताब्दी या सं० १२६६ है। जम्बू स्वामी चरिय (चरित) का रचनाकाल धर्म कवि है जिसने कृति के बीच में तथा अन्त में अपना उल्लेख किया है:-

कहइ धम्म सो मुणिहिं वाम रहु वयण भनेई[3]

--- --- ---

महिंदं सूरि गुरु सीस धम्म भणइ हो धामीऊ
चिंतउ राति दिवसि जे सिद्धिपहि ऊमाहीमा ह
बारह वरससएहिं कवितु नीपइं छासठए
सोलह विज्जाएवि दुरिय पणासउ सयल संघ[4]

यद्यपि पूरा काव्य जंबू स्वामी का चरित ही है परन्तु कवि ने अन्त में जाकर इसे पुष्पिका में रास लिखा है। अभय जैन ग्रन्थालय की इसकी प्रतिलिपि में रास ही

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह: श्री सी०डी० दलाल - पृ० ४१
२- वही।
३- वही, पृ० ४३ पद १३-१४।
४- वही, पृ० ४६

मिलता है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि रास चरित काव्य नहीं होते। कई रास चरित मूलक आख्यान मात्र होते है और कई चरित मूलक आख्यान रास, पर्व, पवाड़ो आदि संज्ञाओं से अभिहित किए जा सकते है। कवि ने रचना का प्रारम्भ चौबीस जिनेन्द्रों और गुरु चरणों की वंदना करके की है।

जंबू स्वामी चरित पर अपभ्रंश में भी ग्रन्थ मिलते है। कईरास तथा फागु इस प्रसिद्ध नायक पर लिखे गए है।जयपुर के आमेर भंडार में जम्बू स्वामी चरित[1] सं० १०७६ की अपभ्रंश की कृति प्राप्त है। जिसका उल्लेख कई विद्वानों ने किया है।[2] यह कृति अपभ्रंशमें है तथा ११ संधियों में इसका वर्णन है। इस रचना का लेखक वीर कवि है। अपभ्रंश की इसी परंपरा में व चरित काव्यों की इसी श्रृंखला में अपभ्रंशेतर रचनाओं में कविधर्म कृत यह छोटी सी रचना भी उल्लेखनीय है। रचना कुल ४० छंदों में लिखी गई है।

जहाँ तक जम्बू स्वामी चरित के कथानक का प्रश्न है कथानक कुछ अपने में उलझा हुआ है और नायक के पूर्व भवान्तर से सम्बन्धित है।राजगृह के श्रेणिक नरेश द्वारा महावीर वर्द्धमान जंबू स्वामी के पूर्व जन्म स्पष्ट करते है कि किस प्रकार वह पद्मरथ के यहाँ शिवकुमार के रूप में फिर विद्युन्माली के रूप में और फिर रिषभश्रेष्ठी के यहाँ जम्बू कुमार नाम से उत्पन्न हुआ। बीचबीच में कवि ने कई अन्तर्कथाओं का वर्णन किया है। कवि ने सांकेतिक रूप से इस पर प्रकाश डाला है:-

> पुण्यमवंतर तणउ नेहि सागर मुणि पडुड़
> आवीउ वंदण सिवकुमार बहु भरिउ सुरंकड
> सर्व वाघुई कुमिणिहि नाह कीडै थई दीकड
> पह जम्पह तहम भवि मुरू, पाइम हूं-कड

1- आमेर भंडार, प्र०सं०पृ० १००

2- देखिए प्रेमी अभिनंदनग्रन्थ पृ० ४३९- परमानन्द जैन का लेखः।

ऊहापोह करोहि जाम पाल्लिउ भव देखइ
जा मंह कूमी सुरह रिद्धिय या कीमई लेखई
तु चिंताविउ सिवकुमार अथिरउ संसारो
भव निम्नाशण लेइसिउ अम्हि संजम भारो (पृ० ४३ पद १२)

--- ---- ---

उसभदत्त सेहिहिं घरवि धारणि उरिनंदण
होसिइ नामिई जंबुस्वामी तिहुयण आणंदण
उठीउ देव अणाढिउ हरखिई नाचेई
धनु धनु जम्हतणई कुल पयु पुरत होयइ

इस प्रकार जंबुकुमार का जन्म धारिणी और रिषभदत्त के यहाँ हुआ। बड़े उत्सव मनाए गए। जन्म के पश्चात् ही जम्बू कुमार के विचार, धारणाएँ आदि सब विभिन्न थे, अलौकिक थे।एक दिन वह गुरु के पास उपदेश सुनने पहुँचा। उसके मन में वैराग्य हो आया:-

अठत्रीसउ हूय जाम गुरुपासि पहुतु
ब्रह्मचारि हो लियइ नीम भववास विरत्तउ
योवन वेशइ पहुतु जाम कन्या मग्गमवइ
दीक्षा धूमा पाठवय सह विवाहारमय (१८)

आठ कन्याओं के साथउनका पाणिग्रहण हुआ। जम्बू स्वामी ने माता पिताओं के आदेश पालन के लिए इस शर्त पर विवाह किया कि वह विवाह के दूसरे ही दिन दीक्षा ले लेगा। लड़कियों के माता पिता को भी यह सूचित कर दिया गया। लड़कियों ने अपने शृंगार रूप और प्रथम मिलन के सुख के दंभ में जम्बू स्वामी को झुका लेना चाहा, पर जम्बू स्वामी संयम की प्रति मूर्ति होकर बैठ गए। आठों कन्याएँ भी थक कर सो गईं। ऐसे ही समय में प्रभव नाम का एक चोर अवस्वापिनी और तालोद्घाटिनी विद्या लेकर वहाँ आया। उसने सबको विद्या के प्रभाव से सुला दिया और आठों कन्याओं का द्रव्य हरण कर लिया। प्रभव के साथ उसके ५०० शिष्य थे। पर उसकी विद्या का जम्बू स्वामी पर जो कि भी

जाग रहे थे, व ध्यान मुद्रा में थे, कोई असर नहीं हुआ। चोर उनके प्रभाव से स्तंभित हो गए। ऐसी स्थिति में प्रभव उनसे बड़ा प्रभावित हुआ और प्रभव ने उनसे अनेक प्रश्न किए । प्रभव और जम्बू स्वामी का यह विवाद कवि के काव्य कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण है:-

आठइ परणी मुगलयणि बुझवणइ बइठउ
पंचसए चोरे हंसिउ प्रभवउ धरि पइठउ
नींद्र अवणीय सोयणीय आभरणलीयंता
ते थवि अछई थणीया टगमग जोयंता
प्रभवउ भणइ हो जम्बू स्वामि एक साठिव कीजइ
मिहूं विज्झावडई एक विज्ज थंभणीय ज दीजइ (२१)

और उसके स्तम्भ व विद्या मांगने पर कवि ने जम्बू स्वामी के मुंह से निर्वेद और असार संसार का बहुत वर्णन कराया है। जम्बू स्वामी का नारियों से विरक्ति तथा शृंगार सुख से परांगमुख होना और संसार त्याग का वर्णन कवि ने विविध कहानियों, दृष्टान्तों आदि से किया है:-

हिव हूं कहि नवि व लेवि पुण किवई करेसो
आठइ परिणी सविलयणी नीठई व्रत लेसो
रूपवंत अनुरत्त रमणि एव वन वरहिइ
अणहूता सुहसणीय आव मुक्कीय करेसिइ
एवहु अंतर नरई होइ प्रभवउ भिसिइ
वीस रहि वइ मयउं वन प्रभवउ पूछेई
सिद्धिव रमणि अनाहीव इलन्दि संवन लेसिव
कवणई विलवई माइ बप्प किम किम मेल्हेसिउ
इंदियाल नवि वाणीइ ए को किम छोडसिइ
आहार मार्ता एक भवि जम्बू स्वामी कहेई
पिहरा तुम्हारा जम्बु स्वामि किम कुपहि लेइजइ
पिड पडइ लोयईवणइ ए अमा जोयिवं

बाप मरवि भईसु हुऊ पुत्र अग्नि हणीजइ
इणपरि प्रभव पितर तृप्ति तिणि धीवेरि कीजइ
अणहुता सुहतणी य आस हूं तउ छांडेषिउ

इन अन्तर्कथाओं और दृष्टान्तों से प्रभव को वैराग्य हो आया। प्रभव की ही भांति आठों कन्याओं को भी जम्बू स्वामी ने अनेक अंतर्कथाओं और दृष्टान्तों द्वारा समझाकर संसार की नश्वरता बताई है। और इस प्रकार आठों पत्नियां और प्रभव और उसके ५०० शिष्यों के साथ जम्बू स्वामी प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते हैं तथा सब निर्वाण की प्राप्ति करते हैं।

<u>अन्तर्कथाएं:-</u>

प्रस्तुत चरित काव्य कथा प्रधान है कवि को कहीं भी प्रकृति वर्णन, रितुवर्णन, नखशिख वर्णन और सौन्दर्य वर्णन का अवसर नहीं मिला। अतः काव्य साधारण तथा वर्णनात्मक हो गया है। कथाओं में भी अंतर्कथाओं का अवश्य वर्णन है। इनका भी कवि ने ईंगित मात्र किया है।राजा श्रेणिक को वर्द्धमान का जम्बू स्वामी के पूर्व भव का वर्णन, भवदत्त सागरदत्त शिवकुमार आदि के रुप में विविध कथाओं का वर्णन है। इसके पश्चात् कवि प्रभव चोर को भी जम्बू स्वामी द्वारा विविध दृष्टान्तों और अन्तर्कथाओं से संतुष्ट करता है और आगे मिलन रात्रि में आठों कन्याओं में प्रत्येक को कवि एक एक पूर्व भव का दृष्टान्त व कथा सुना कर बहिर्मुखी बना कर दीक्षा व सन्यास के लिए उन्मुख कर देता है। ये अन्तर्कथाएं बहुधा जैन धर्म की प्रचलित कथाएं हैं जिनका सीधा सम्बन्ध जम्बू स्वामी के जीवन से है:-

आठों कन्याओं में क्रमशः निम्नलिखित अन्तर्कथाएं है:-

तिम कहवि जिम कलम बयइ अवहरंता करेषिउ
कुम्भ कथिहिं हईलोभ करई देखि मणहर रुयहउं
हत्थि कलेवर काग जिम ववसायर निवडई -(<u>हाथी और कौवे का दृष्टान्त</u>)
बीजी कहय कहेवि नाह जह अम्ह छंडेसिउं
तिणि वानरि जिम पच्छुताव बहु बीति धरेषिउ-(<u>लोभी वानर का दृष्टान्त</u>)

जिंहु समाण्ड विसय सुख आदर किम कीजइ
इंगाल दाहग जेम बुम्हि बुसकिम न छीजइ -(तृषित बंदर की कथा)
भीजी कलम मणइर्वि नाह अम्ह छांडेसिउ
तिणि जंबुकि जिम सामहार बहु खेद करेसउ -(सियार की कथा)
उवर पडि ऊवर बहुय संभवि कहीजई
विलखी हुई ते साच्च बात जंबू सामिन सुणई
आसासवर सुबक जाम अम्हि इसउं करेसउं
नेमिहि सिउं राइमइ जिम वयग हमकरेसउं -(नेमिनाथ व राजमती की कथा)
आठइ कलगह सुपर्वीय पंच सय सिउं प्रभवउ
माइ बाप बेउ भणई ताम अम्ह साधु सरीसउ (२८)

इसी प्रकार विद्युन्माली, कुलपुत्र, बुद्धिवृद्धि बहुप आदि का दृष्टान्त तथा तीन मित्रों की कथा दृष्टव्य है। ये सब कथायें जैन समाज में प्रचलित हैं।

कृति में शान्त रस ही प्रमुख रूप से निष्पन्न हुआ है। वैराग्य व रानियों सहित प्रभव के ५०० शिष्यों का चरित्र ग्रहण करना आदि स्थल इसी प्रकार के हैं:-

जस भय प्रसकइ राउ जस भय नींद्र नवयरीयइं ए
पसइ प्रभवउ जाइ नर नारी जोबण मिलीय

--- --- ---

चम्पुवे संपन्न रामरमणिमन चोरहु ओ
छोडइ पुनिमचन्द वइराग कोणी प्रणमीउ
सुहउ बहुलवीय सरीर जइ कोइ जणणीजाइउ
मउं छुटू नीर जिम जलहरि वरिसिउ

--- --- ---

किम कारणि वइराग संकारण अम्ह बोलीइ ए
बेल्ही बहुठइ माझ कनक कोडि नवाणवइ ए
अनइ रिद्धिय बहुत तिहिं कुण पार न जाणीय ए
(जम्बू स्वामी चरित्र मांहि मंडलि हुई सम्बरीच)

इणि कारणि वयराग तुष जिम दीठउ मेल्हतउ ओ
अम्ह सोइ जि सामि तम्हे चलई अछयिउ ओ
मोह नरिंदतणं कु फ संजम किलिइं भूकविउं ओ

----- ------ ---

कंचण ए रयणिहि दाम जिम घण वर सइ भाद्रवए
वयतऊ ए ईह गोलोक पयिय जण संवेग करो

पूरी कृति में अलंकार अर्थ गाम्भीर्य,पद लालित्य, कोमलकांत पदावली आदि का सौष्ठव नहीं मिलता। परन्तु भाषा व छंदों दोनों दृष्टियों से कृति का महत्व स्पष्ट है।छंदों के रूप में जम्बू स्वामि चरित्र में विशेषता है।कवि ने पूरे चरित्र काव्य को ठवणि के अन्तर्गत ५ ठवणियों में विभक्त किया है।

प्रस्तुत काव्य रोला छंदों में लिखा गया है।पहिले और दूसरे अवतरण में रोला छंद स्पष्ट है। लगभग सर्वत्र ४ चरण हैं परन्तु १०वीं कड़ी में ६ चरण मिलते है। अतः इन शेष दो कड़ियों का रूप सोरठा की भांति लगता है। भरतेश्वर बाहुबली रास में भी इसी प्रकार विषम पद में अनुप्रासमय कड़ियां मिलती हैं परन्तु जैसे वे सोरठे नहीं हैं इन कड़ियों के विषम पदों में अनुप्रास नहीं है फिर भी पंक्तियाँ सोरठों की सी हैं। सम्भवतः जैन कविता में इस प्रकार की कड़ियां मिल सकती हैं । अतः (१० से १६) तक सोरठा ही कहा जायगा।
उदाहरण देखिए:-

इम एक पडसाथवि राय मोक्लावण चालीय
तु सुहड समूह करेवि गुड़ी कणई भडभडई
तव भय प्रबकइ राउ वंस मय मीह न वयरीयह
एहव प्रभवउ आइ नरनारी जोयण मिलीय
वहुइ राय कुमारि पडिहारिइं बोलावीउ
वेगिइं राय पेटागि बम्हि भवं उरघुकणपाय

यद्यपि काव्य की दृष्टि से यह कृति उत्कृष्ट काव्य नहीं है परन्तु भाषा की दृष्टि से इसकी सरलता और उपयोगिता उल्लेखनीय है। १३वीं शताब्दी के जन भाषा के

स्वरूप यह रचना प्रस्तुत करती है। भरतेश्वर बाहुबली रास की भाँति पुराने रूपों के साथ नूतन लाक्षणिक रूपों वाले शब्द भी इसमें मिलते हैं।
एतदर्थ रचना का उदाहरण उल्लेखनीय है:-

सोहइ पुनिमचंद जइ इम कोपी प्रणमीउ
मुझ अछूपपीय शरीर जइ कोइ जणणी जाइउ
नयणे छूटू नीर संवेग जलहरि वरिसिउ
सामी खमि अपराध अम्हे लोक संतावीया ए
पडिवउ मोलइ राय कोपी मनि आर्णदियउ
धन्न पनुती माइ इसिउ पुत्र जिणि जाइउ ए
तो मोकलावी राउ बीर पल्ली सा सेवर ए
सजनह, कहीइंपउ अम्हे संजम लेइसउं

इस प्रकार अपभ्रंश की प्रथमा एक वचन, प्राकृत का ण तथा संयुक्ताक्षर के पूर्व ह्रस्व स्वर लोप आदि प्रवृत्तियाँ धीरे धीरे कम होती जाती हैं। भाषा के रूपों में प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती की बहुलता स्पष्ट है।

१४वीं शताब्दी के इस चरित काव्य में घटनाओं का बाहुल्य अधिक नहीं है। अतः काव्य की कथा में ही बाहुल्य परिलक्षित होता है। वस्तुतः पूरा काव्य भाषा की सरलता, छन्दों का प्रयोग और शब्दों में क्रमिक परिवर्तन, काव्य रूप तथा कथात्मक काव्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

:: प्रद्युम्न चरित[1] ::   सधारु- सं० १४१०

चरित काव्यों की शृंखला में अब तक उपलब्ध काव्यों में १५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की एक बहुत ही महत्वपूर्ण कड़ी प्रद्युम्न चरित है। प्रस्तुत रचना अपने में एक सुन्दर प्रबन्ध है और अद्यावधि उपलब्ध आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की लगभग सभी कृतियों में सबसे बड़ी है जो लगभग ७१२ छंदों में लिखी गई है। प्रद्युम्न चरित की शैली में भी शास्त्रीय गुणों व लाक्षणिक तत्वों का समावेश है। इस प्रकार की कृतियों में प्राकृत और अपभ्रंश की प्रबन्ध व चरित परम्परा का सम्यक् निर्वाह किया है। यद्यपि यह स्पष्ट है अपभ्रंश की भाँति सम्पन्न काव्य वर्णन इन आदिकालीन प्रबन्ध काव्यों में नहीं मिलता परन्तु जो कुछ भी मिलता है वह अपने ही प्रकार का है। भयंकर व्याघातों और तूफानी वातावरण में भी इस संक्रांतिकाल में प्रद्युम्न चरित जैसी रचना का मिलना बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। यों प्रद्युम्न चरित का रचना काल विद्वानों द्वारा सं० १४११ निश्चित हो चुका है। परन्तु सहायक ग्रन्थों तथा अन्तरंग साक्ष्यों की शोध होने पर इस कृति को सम्भवतः और भी प्राचीन कहा जा सकता है। यद्यपि प्राकृत और अपभ्रंश के ग्रन्थों की वर्णन शैली के शास्त्रीय व लाक्षणिक तत्व तथा काव्य निबंधन प्रद्युम्न चरित में कम दिखाई पड़ते हैं परन्तु ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि यह रचना स्वतोव्याघातों वाले काल की है।

प्रद्युम्न चरित का आद्योपान्त अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह कृति एक ओर तो महा काव्य की सीमाओं का आंशिक रूप में स्पर्श करती है और दूसरी ओर खंड काव्य की सीमाओं का भी अतिक्रमण कर जाती है। अर्थात् प्रबन्ध शैली में लिखा हुआ चरित काव्यग्रन्थ है अतः इस काव्य को एकार्थ काव्य कहा जा सकता है।

१- आमेर शास्त्र भंडार, अतिशय क्षेत्र कमेटी, श्री महावीर जी महावीर भवन चौड़ा रास्ता जयपुर में सुरक्षित।

इस ग्रन्थ की मूल प्रति दीवान बधीचंदजी के मन्दिर में सुरक्षित है।[1] इस प्रति में ३४ पृष्ठ हैं तथा यही सबसे प्राचीन है। इस प्रति का लेखन काल संवत् १६०५ है। प्रद्युम्न चरित की एक दूसरी प्रति कामाँ (भरतपुर) के खंडेलवाल के जैन पंचायती मन्दिर के शास्त्र भंडार में है जिसमें कुल ३२ पृष्ठ हैं। पत्राकार १०-४।। है तथा उसके पद्यों की संख्या ७०० के लगभग है।[2]

तीसरी प्रति देहली के सेठ के कूचे के जैन मन्दिर के भंडार से उपलब्ध है। यह प्रति वहाँ के शोध विद्वान श्री पन्नालाल जी ने श्री अगरचन्द नाहटा को प्रेषित की थी और उनके ७२ पन्नों के गुटके में संग्रहीत है तथा इसकी पद संख्या ७१४ है।चौथी और अन्तिम प्रति ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट उज्जैन के संग्रहालय की है। इसमें ७१३ छंद हैं तथा इसका लेखन सं० १६३४ है।

अद्यावधि यह ग्रन्थ अप्रकाशित है जो शीघ्र ही साहित्य संसार के समक्ष छपकर प्रकाशित होगा।विभिन्न स्थानों पर इस ग्रन्थ की जो इतनी प्रथम प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं इस आधार पर यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि उस समय में यह काव्य जन समाज में अत्यन्त अधिक प्रचलित रहा होगा। प्रतियों के संब द्ध और शाखाओं के वैज्ञानिक अध्ययन पर इसके पाठ संबंधी भ्रांतियाँ अवश्य दूर होंगी।

आमेर शास्त्र भंडार की प्रतियों का अध्ययन करते समय प्रद्युम्न चरित की प्रति तथा प्रेस कापी श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल के सौजन्य से प्राप्त हुई है जिसके लिए लेखक उनका आभारी है।

प्रद्युम्न चरित अब तक सधारु की ही रचना मानी जाती रही थी।[3] पर वास्तव में अब यह रचना सधारु की है यह स्पष्ट कर दिया गया है।[4]

१- आमेर भंडार ग्रन्थ सूची- भाग ३।
२- श्री कस्तूर चंद कासलीवाल तथा पं० चैनसुख दास द्वारा सम्पादित प्रद्युम्न चरित काव्य का पाठ एवं प्रस्तावना भाग। (अप्रकाशित)
३- हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास:श्री कामता प्रसाद जैन
४- हिन्दी अनुशीलन वर्ष ९ अंक १-४ पृ० श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

प्रस्तुत रचना प्रद्युम्न के चरित्र का एक विस्तार पूर्ण ब्योरा है। जहां तक प्रद्युम्न के उदात्त व्यक्तित्व और चरित नायक के स्फार वृत्त का प्रश्न है, संस्कृत और प्राकृत तथा अपभ्रंश में इसे अनेक कवियों ने नायक चुना है जो प्रस्तुत रचना की पृष्ठ भूमि में सहायक है। एक आवश्यक बात यह भी है कि प्राकृत और अपभ्रंश काव्यों में उदाहरणार्थ पउम चरिउ, हरिवंशपुराण, रिट्ठणेमि चरिउ आदि ग्रन्थों में अब तक नायक या तो ऐतिहासिक पुरुष ही रहे या त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों में से ही कोई। परन्तु प्रस्तुत रचना के नायक प्रद्युम्न एक ऐसे चरित नायक हैं जिनका स्थान न तो जैन तीर्थंकरों में है और न त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों में। अतः ऐसी स्थिति में किसी साधारण तथा उदात्त वीर पुरुष या राजकुमार को रचना का नायक बनाने वाली यह कृति परंपरा की सीमा में न आने वाली अपवाद स्वरूप ही कही जायगी। इसका कारण यह है कि अपभ्रंशेतर काल में परंपरा के बंधन ढीले हो गए होंगे और सम्भवतः इन नियमों की शिथिलता से आदिकाल के हिन्दी जैन कवि किसी भी धीरोदात्त गुण-समन्वित पुरुष को चरित नायक बना लेने में कठिनाई नहीं अनुभव करते रहे होंगे। यों प्रद्युम्न एक चरित्रवान और धीरोदात्त गुणों से युक्त किसी भी वीर पुरुष से कम नहीं था नहीं तो आदिकाल की पृष्ठभूमि में उपलब्ध होने वाले प्रद्युम्न संबंधी प्राकृत और अपभ्रंश के इतने ग्रन्थ न रचे जाते। यह भी संभव है कि कृष्ण का पुत्र होने से तथा नेमिनाथ के बान्धव होने से ही प्रद्युम्न को चरित नायक चुनने योग्य पात्र समझा गया हो तब तो इस दृष्टि से उसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

संस्कृत प्राकृत व अपभ्रंश आदि ग्रन्थों में प्रद्युम्न पर लिखने की परंपरा क्रमशः बहुत प्राचीन मिलती है।[1] इस चरित नायक पर जैन विद्वानों की अनेक कृतियां उपलब्ध हैं।[2] इस परंपरा के विकास को स्पष्ट करने के लिए प्रो०वेलणकर ने भी

१- देखिए प्रद्युम्न चरितः सम्पादक श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल-प्रस्तावना।

२- वही

प्रद्युम्न सम्बन्धी काव्यों की एक विस्तृत सूची दी है[1]

प्रद्युम्न संबंधी संस्कृत में सबसे प्राचीन विवेचन जैन महापुराण (उत्तर पुराण)[2] में उपलब्ध होता है। आमेर भंडार में ११वीं शताब्दी में महा सेनाचार्य कृत प्रद्युम्न चरित्र मिलता है, प्राकृत में इस सम्बन्ध में अद्यावधि कोई उल्लेखनीय कृति प्राप्त नहीं है। जो शोध के अभाव के कारण ही है।क्यों प्राकृत में ऐसे प्रसिद्ध चरित पर अवश्य उत्कृष्ट कृतियां मिलने की संभावना है। अपभ्रंश में प्रद्युम्न काव्यों की लम्बी शृंखला है जिनमें प्रमुख प्रमुख -९वीं शताब्दी में स्वयंभू रचित हरिवंश पुराण में वर्णित स्थल[3] १३वीं शताब्दी महाकवि सिद्ध द्वारा विरचित रचना, भट्टारक सकलकीर्ति और सोमकीर्ति की १५वीं शताब्दी की रचनायें महा कवि रइधू का प्रद्युम्न चरित, आदि ग्रन्थों के साथ महाकवि पुष्पदन्त का अपभ्रंश पुराण में भी वर्णन मिलता है।

हिन्दी में १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर १७वीं तक कई रचनायें प्राप्त है यथा- रविसागर कृत प्रद्युम्न चरित (सं० १६४५)[4], १७वीं सदी का यशोधर कृत प्रद्युम्न चरित[5], सं० १६२८ का ब्रह्मरायमल कृत प्रद्युम्न रास[6] तथा देवेन्द्र कीर्ति रचित प्रद्युम्न प्रबन्ध और प्रबंध और प्रद्युम्न चरित भाषा आदि ग्रन्थ लिखे गये है इस तरह परवर्ती काल में भी यह परम्परा सुरक्षित विकसित हुई है।

रचना में कुछ गुण महा काव्यत्व के दिखाई पड़ते है पर वे आंशिक रूप से होने से तथा खंड काव्य की सीमाओं से ऊपर उठे हुए होने के कारण ही इसको एकार्थ काव्य की संज्ञा दी गई है।इसप्रकार की कुछ लाक्षणिक बातों का विवेचन इस प्रकार है।

१- जिनरत्न कोश: प्रो० वेलणकर।
२- उत्तर पुराण: जिनसेनाचार्य कृत पृ० ४१० ज्ञानपीठ काशी संस्करण।
३- प्रद्युम्न चरित: श्री कासलीवाल-प्रस्तावना।
४- वही
५- आमेर भंडार ग्रन्थ सूची भाग ३ विवरण सूची।
६- वही।

मंगलाचरणः- रचना के प्रारम्भ में कवि शारदा वंदना करता है और फिर जिन को। सरस्वती के बिना उसके लिए काव्य रचना असम्भव है साथ ही कवि ने पद्मावती देवी, चक्रेसरी देवी ज्वाला देवी आदि अनेक शासन देवियों को भी नमन किया है और इसके पश्चात् २४ जिनेन्द्रों की वंदना की है:-

सारदविणु मति कवितु न होइ, मउ आखरु वि बुझइ कोइ
सीसधार पणमइ सुरसती, दीन्हि कहुं बुधि होइ कवहुती
सबको सारद सारद करइ, तिसकहु अंत न कोई लहइ
जिणवर मुखइ जु णिग्गयवाणि, सा सारद पणवहु परियाणि
अठदल कमल सरोवर वासु, कासमीर पुरल निवासु
हंस चढ़ी कर लेखणि देइ, कवि सधार सरसइ[1]
सेत वस्त्र पदमवहीण, करई अलावणि वाजहिवीण

--- --- ---

पदमावती दण्ड कर लेइ, जाला मुखी चकेसरी देइ
अंबाइ रोहिणि जो सारु सासण देवी नवइ सधारु [2]

--- --- ---

चउवीसउ स्वामी सुह करण, चउवीस उक्ने असरण
जिण चउवीस न उधरि होउ, करउ कवितु जइ होइ पसाउ

रचना का संक्षेप में अध्ययन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रद्युम्न चरित की कथा का मुख्य धार्मिक तथा श्यात है। कथा घटना या वर्णन प्रधान है इसमें अनेक कुतूहल प्रधान अवान्तर घटनाओं व कथाओं का समावेश है जो प्रधान कथानक के साथ गौण कथानक को जाती है। प्रद्युम्न चरित का नायक यदुवंश जात क्षत्रिय है प्रद्युम्न कृष्ण के पुत्र थे अतः उसमें वर्ण वीरता पुरुषत्व, शौर्य दया उदारता स्नेह, क्रोध हर्षादि क्रमशः सभी उदात्त भाव हैं। नायक धीरोदात्त है।

१- प्रद्युम्न चरित- श्री चैनसुखदास तथा श्री कस्तूरचंद कासलीवाल द्वारा सम्पादित आमेर भंडार (१-४) (अप्रकाशित)

२- वही। पद ५।

कथा वस्तु पौराणिक है तथा कथावृत्तवाली है, जो कृष्ण के जीवन व परिवार से सम्बन्धित है। कथा वस्तु अधिकतर घटना प्रधान और वर्णनात्मक है। साथ ही उसमें अन्य घटनाएं व प्रद्युम्न सम्बन्धी कौतुकों और विद्याओं से कवि ने उसको अधिक आकर्षक बनाया है।

कवि ने कथा का विभाजन सर्गों में नहीं किया है। अद्यावधि सर्ग विभाजन के लिए प्रयुक्त, पास, कड़वक, ठवणि आदि शब्दों को न ले, एक मौलिक ढंग प्रयुक्त किया है- अब यह कथा द्वारिका जाय, बाहुरि कथा और पढ़ेजाय,- आदि पदों को लिखकर किया है।यद्यपि स्वतंत्र सर्ग कहीं नहीं है पर कवि के संकेतों के आधार पर इसे खंडों में विभाजित किया जा सकता है वे हैं: स्तुतिखंड[1] प्रद्युम्न जन्म खंड[2], प्रद्युम्न हरण खंड[3],प्रद्युम्न अब संवर युद्ध खंड[4], द्वारिका पुनरागमन खंड,[5] श्री कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध खंड[6], पूर्वभव खंड[7] और अंतिम है जिनवंदना या (मोक्ष) खंड।[8]

कृति में वीर रसक प्रधान है उत्साह की निष्पत्ति युद्धों में सर्वत्र होती है। प्रधान रूप से वीर रस तथा शेष रस गौण रूप में निष्पन्न हुए है।इसी अंगी रस के क्रोड में वीभत्स (४८८-९०) वात्सल्य (५३६) आंशिक रूप से शृंगार (सत्यभामा, रूक्मणि) आदि के प्रसंग में प्रद्युम्न के रौद्र स्वरूप के चित्रण में रौद्र करुण रस, (पद १३७, १३८, १३९) तथा विविध विद्याओं के प्रयोग पर अद्भुत रस निष्पन्न होते है। अन्त में कवि शान्त रस की नियोजना में काव्य का समाहार करता है।

१- प्रद्युम्न चरित: श्री चैनसुखदास तथा श्री कस्तूरचंद कासलीवाल द्वारा सम्पादित पद- १-११।

२- वही, पद १२-१३५। ३- वही, पद १३६-१५९। ४- वही,पद- १६०-२८५

५- वही, पद २८६-४४० ६- वही, पद ४४१-५७२ ७-वही,पद ५७३-६३८

८-वही, पद ६३९-७००

वर्णनों की दृष्टि से कवि ने अनेक स्थल जुटाए है। वर्णन वैविध्य में नगर, द्वार तोरण, रनिवास, रात्रि, संध्या, प्रकृति वर्णन, युद्ध सज्जा तथा रथ वर्णन सेना वर्णन नखशिख वर्णन, युद्ध तथा शौर्य वर्णन, अनेक प्रकार की विद्याओं का वर्णन, सूक्ति वर्णन, सामाजिक तथा राजनैतिक षड्यंत्रों आदि अनेक वर्णन मिलते है जिनपर आगे प्रकाश डाला जायेगा।

कवि सधारु ने पूरा काव्य दोहा-चौपाई छंदों में लिखा है।पर वस्तु त्रुटक [1], ध्रुवक और गाथा [2] आदि छंदों का प्रयोग भी किया गया है। प्रत्येक सर्ग के साथ छंद परिवर्तन के नियम का निर्वाह कवि ने नहीं किया है। छंदों के साथ साथ अनेक अलंकारों का वर्णन भी मिल जाता है। अलंकारों में प्रमुख उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टान्त, अपन्हुति, अर्थान्तरन्यास आदि प्रमुख है। अलंकरण प्राकृतिक या स्वाभाविक है।

जहाँ तक काव्य की लक्ष्य प्राप्ति का सम्बन्ध है, अर्थ धर्म काम और मोक्ष में से प्रद्युम्न को चारों सुखों की प्राप्ति कवि ने कराई है। साथ ही संस्कृत नाटकों की भाँति प्रस्तुत काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह सुखांत के साथ साथ निर्वेदांत है। काव्य रचना का उद्देश्य जन भाषा में धर्म प्रचार, चरित्र वर्णन तथा रूढ़ियों व परम्पराओं का निर्वाह अहिंसा और कर्मवाद तथा पूर्वभव आदि सिद्धान्तों की दृष्टि में भी पूर्ण सफलता मिली है।

इन्हीं तत्वों के आधार पर यह कृति खंड काव्य की सीमाओं से ऊपर उठ जाती है और महा काव्य भी नहीं बन पाती।अतः साहित्य दर्पणकार ने ऐसी कृतियों को एकार्थ काव्य कहा है।वस्तुतः प्रद्युम्न चरित एक सफल एकार्थ काव्य है।

जहाँ तक प्रस्तुत रचना के रचना काल का प्रश्न है यह स्पष्ट है कि यह सं० १४११ में रची गई है। [3] इस सम्बन्ध में भ्रांतियाँ तीनों प्रतियों के विभिन्न

१- प्रद्युम्न चरित का पाठ आमेर भंडार पद्य १९९ का पाठांतर १७७
२- वहीं पद्य २६९।
३- हिन्दी अनुशीलन वर्ष ९ अंक १-४ पृ० १३-२०।

रचना कालों- सं० १३११[1] विक्रम, सं० १४११[2] विक्रम, तथा १५११[3] विक्रम के कारण हुई थीं। परन्तु परीक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि वि०सं० १३११ की प्रति की भाषा अधिक परिमार्जित है। सं० १५११ उज्जैन वाली प्रति में मिला है। शेष तिथियां मास नक्षत्र आदि सब समान है। पर उज्जैन वाली प्रति का पाठ पूर्ण प्रमाणिक नहीं कहा जासकता अतः ऐसी परिस्थिति में कृति का रचना काल सं० १४११ विक्रम[4] मानना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

१- पंचायती मन्दिर कांमा (भरतपुर) तथा रीवां की प्रतियों में यह पाठ मिलता है-

संवतु तेरह सौ हुइ गये ऊपर अधिक इगारारा भये, भादो सुदि पंचमी दिनवार, स्वातिनक्षत्र जानि शनिवार।

२- जयपुर दीवान मंदिर, कामां, देहली तथा बाराबंकी वाली प्रतियों में यह पाठ है:

सरस कथा रस उपजइ घनउ, निसुणहु चरितु पजूणह तणउ

संवतु चौदह से हुए भये, ऊपर अधिक इगारारा भए (जयपुर की प्रति)

भादव दिन पंचम सो सारु स्वाति नक्षत्र शनीचर वारु

---- ---- ---

संवतु चउदस इगारहः ऊपरि अधिक भइए गुवार (दीवानजी का मंदिर कांमा की प्रति)

शेष प्रतियों अर्थात् दिल्ली व बाराबंकी वाली प्रतियों में भी यह पाठ है

३- देखिए उज्जैन वाली प्रति जिसमें पाठ है-

संवतु पंचदह हुई गया सरकोत्तरनि अधिक भया
भादव वदि पंचमि तिथि सारु स्वाति नक्षत्र शनिश्वर वारु।।

४- हिन्दी अनुशीलन- वर्ष ९ अंक १-४ पृ० १३-२०।श्री नाहटा का लेख।

-कथा-

प्रद्युम्न चरित की कथा अनेक घटनाओं का संगुम्फन है।कवि ने कथा का आधार जैन पुराणों से ही लिया है। रामायण औरमहाभारत की कथाओं के वर्णन की परंपरा अपभ्रंश में पर्याप्त मिलती है।[1] आचार्य गुणसेन के उत्तर पुराण[2] तथा जिनसेनाचार्य ने अपने हरिवंश पुराण में[3]प्रद्युम्न चरित वर्णन किया है।११वीं शताब्दी में महासेनाचार्य ने[4]प्रद्युम्न पर स्वतंत्र काव्य लिखा और इसके पश्चात् महाकवि सिंह का लिखा प्रद्युम्न चरित हमें उपलब्ध है।[5] यह ग्रन्थ अद्यावधि अप्रकाशित है। इसी तरह के अन्य काव्यों पर पूर्वपृष्ठों में प्रकाश डाला जा चुका है।

इन सबके पश्चात् कवि सधारु ने इस रचना को हिन्दी में प्रस्तुत किया है। कवि ने कथा का आधार उक्त ग्रन्थों को ही रक्खा है फिर भी सधारु ने इसमें अनेक कथान्तर घटनाओं, अंतर्कथाओं और मौलिक तत्वों का सृजन किया है। कथा सार इस प्रकार है:-

एक बार नारद के आने पर सत्यभामा ने उन्हें प्रणाम नहीं किया।इस अभिमान का फल हुआ प्रतिशोध। नारद ने रुक्मणी को खोज कर कृष्ण से विवाह करा दिया तथा सत्यभामा को उसके सौन्दर्य से अनेक बार तिरस्कृत होना पड़ा। विवाह में शिशुपाल मारा गया व भयंकर युद्ध हुआ। सत्यभामा रुक्मणि से ईर्ष्या रखने लगी। रुक्मणी के प्रद्युम्न पुत्र हुआ। पूर्व भव की शत्रुता से धूमकेतु विद्याधर उसे हरण कर ले गया और उसे एक भारी शिला के नीचे दबा दिया। विद्याधर कालसंवर और उसकी पत्नि कनकमाला ने उसे बड़े प्यार से पाला। पुत्र वियुक्ता रुक्मणि संवेदित बनी रही। प्रद्युम्न बड़ा होकर अनेक युद्धों में विजयी हुआ तथा

१- अपभ्रंश साहित्य:डा० हरिवंश कोछड़ पृ० ४९ भारतीय साहित्य मंदिर,दिल्ली।
२- देखिए उत्तर पुराण: आचार्य गुणसेन: भारतीय ज्ञान पीठ काशी,पृ० ४१०।
३- हरिवंश पुराण: आचार्य जिनसेन, सर्ग ४७-४८ पद २० से ३१।
४- आमेर भंडार की ग्रन्थ सूची।
५- महाकवि सिंह रचित प्रद्युम्न चरित (१३वीं शताब्दी अपभ्रंश विरचित) आमेर भंडार, जयपुर।

उसने विभिन्न देवी देवताओं को प्रसन्न कर अनेक विद्यायें, कुंडल, अस्त्र वस्त्र आदि प्राप्त किए। कुल उसने १६ विद्यायें सीखी व प्राप्त की। जवसंवर के लड़कों ने भी ईर्ष्यावश अनेक षड़यन्त्र किए पर वे प्रद्युम्न से एक एक कर हारे। मदन का अपार बल कुमारों के सारे अहंकारों का विजेता बन गया। विद्यायें जीतकर उसने जवसंवर व कनकमाला (अपने कृत्रिम माता पिता) को प्रणाम किया। रतिभाव में कनकमाला उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई और उसे काम भाव से चाहने लगी। काम विमोहित कनकमाला ने उसे अपने स्तनों में छुपाना चाहा पर प्रद्युम्न वहां से उद्यान में दो मुनिवरों के पास गया उन्होंने उसका व कनकमाला का पूर्व भव बताया। ऋषियों ने प्रद्युम्न को ३ विद्यायें कनकमाला से मांगने को कहा। काम विमोहिता ने उसकी स्वीकृति पाकर उसे तीनों विद्यायें दे दी पर इसके बाद प्रद्युम्न ने उसके काम प्रस्ताव को मां पुत्र का सम्बन्ध बता ठुकरा दिया। कनकमाला की कामुक नारी क्रोध में भड़क उठी। उसने जवसंवर से प्रद्युम्न की अपने साथ की हुई कुचेष्टाओं की झूठी शिकायत की। क्रुद्ध जवसंवर से प्रद्युम्न के अपने साथ की हुई कुचेष्टाओं की झूठी शिकायत की। क्रुद्ध जवसंवर ने ५०० पुत्रों को उसे मारने की आज्ञा दी पर प्रद्युम्न ने विद्या के बल से सबको मूर्छित कर दिया। सबको हराकर उनको आधिपत्य स्वीकार करा पुनः जीवित कर दिया। फिर नारद के कहने से द्वारका आया। रास्ते में सत्यभामा की पत्नी बनने वाली लड़की को भील बनकर उससे छीन लिया। उदधिमाला का सम्बन्ध पहले प्रद्युम्न के साथ ही निश्चित हुआ था। अतः कन्या का बलपूर्वक हरण कर विवाह कर लिया। द्वारका आने पर अपनी विद्याओं के बल से अनेक रूप बनाकर सत्यभामा व महल के परिचारकों को अनेक प्रकार से खूब तंग किया। ब्राह्मण बनकर सब अन्न पेटू की भांति खा जाना, नौकरों को उल्टा लटका देना आदि अनेक कौतुक इस कामदेव(प्रद्युम्न) ने किए। रुक्मणी अनेक वर्षों के बाद पुत्र को पाकर वात्सल्य में निहाल हो गई। प्रद्युम्न ने कृष्ण बलराम के शौर्य की परीक्षा करने के लिए माया की रुक्मणी बनाकर उसका हरण कर लिया। प्रद्युम्न का कृष्ण और बलराम के साथ भयंकर युद्ध हुआ। उसने अपनी विद्युत विद्याओं से उन्हें स्तंभित कर दिया। पाण्डवों को हतदर्प कर

दिया। अनेक बाणों से कृष्ण की सारी सेना को विस्मित व्यामोहित और स्तम्भित कर दिया।दोनों जब प्रद्युम्न को मारने लगे, तो नारद ने वास्तविक स्थिति बताई। पिता पुत्र गले मिले। नगरवासियों ने दोनों का भव्य स्वागत किया और प्रद्युम्न व सत्यभामा के पुत्र भानुकुमार का धूम धाम से विवाह हो गया।

इसके पश्चात् काव्य के उत्तरार्द्ध में सेमंधर मुनि प्रद्युम्न को पूर्व भव वर्णन करते है। प्रद्युम्न को ज्ञात हुआ कि उसका पूर्व जन्म का भाई शीघ्र ही अवतार लेने वाला है तो उसने विद्या के प्रभाव से जाम्बवन्ती को नकली सत्यभामा कामुद्रिका पहिना कर बना दिया और पुत्र जाम्बवंती को मिल गया। पुत्र का नाम शंब कुमार रखा गया। फिर उसका पाणिग्रहण हुआ। जयसंवर व कनकमाला भी वहीं आ गए। सब प्रेम से रहने लगे। छप्पन करोड़ यादवों ने असाधारण उत्सव किया।

अंतिम खंड में प्रद्युम्न जिन वंदना करने कैलाश गए। धर्म की भावना दृढ़ हो गई और अनेक वर्षों तक जिनवंदना कर वे समवशरण आये । केवली से उन्होंने यादवों का संहार पूछा और गणधर से सबको नश्वर जान दीक्षा ग्रहण कर ली। नारायण कृष्ण और रुक्मणि विलाप करने लगे, पर प्रद्युम्न ने सबको सन्तुष्ट कर दिया और केवली अंत में कैवल्य (निर्वाण) प्राप्त किया।

संक्षेप में काव्य की कथा वस्तु यही है।वस्तुतः इस अधिकारिक कथा वस्तु के साथ अनेक छोटी छोटी घटनाएं चलती रहती हैं। जो प्रति नायक की भांति ही कथा के उत्कर्ष में योग देती हैं। इनसे नायक के कई प्रतिद्वन्द्वी होते हैं जिनसे उसके शौर्य को गति मिलती है। वस्तु संपूर्ण काव्य में एक ऐतिहासिक आनन्द सर्वत्र उपलब्ध होता जाता है। अनेक मौलिक घटनाओं के वर्णन से कथा काव्य की प्रौढ़ता व कवि प्रतिभा का परिचय मिलता है। पूरा काव्य घटना प्रधान है जिसमें विविध वर्णनों की कड़ियों का उन्मेष है।

भाव पक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से विचार करने परप्रस्तुत चरित काव्य का महत्व स्पष्ट हो जाता है। चरित काव्य बहुत बड़ी संख्या में अपभ्रंश से ही मिलने लगते है। यही नहीं, जैन कवियों की एक विशेषता यह भी रही है कि

इन्होंने काव्य का नायक उच्च वर्ग का ही नहीं, किसी भी कुलीन पुरुष को भी चुनना प्रारम्भ कर दिया। किसी युद्ध वीर दानवीर, धर्मवीर और कर्मवीर को चरित नायक बनाकर उसे जन साधारण और अशिक्षित वर्ग के लिए सरस काव्य को सुलभ कर दिया है। इस सम्बन्ध में अँग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान विन्टर निट्ज का इतिहास द्रष्टव्य है[1]। कथा को माध्यम चुन इन चरित काव्यों या कथा काव्यों द्वारा जैन दर्शन व उसके कठिन साध्य सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है।

रचनाकार:

रचनाकाल की भाँति प्रद्युम्न-चरित के कर्ता का प्रश्न भी उलझा हुआ था। और श्री कामता प्रसाद जैन ने "एयरछ नगवर संत नगर बसहि जाणि" इस एयरछ नगर में ए को रा पढ़कर कवि का नाम रायरछ लिख दिया[2]। इसी तरह नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट का भी इसी सम्बन्ध में निराकरण किया गया था[3] खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम अग्रवाल आगरा निवासी बताया है जो एक दम असंगत व अप्रमाणित है। रचयिता का नाम कवि ने प्रारंभ में ही दे दिया है। निम्न उद्धरणों से उक्त भूलों का भी परिहार हो जाता है - कवि आगरे का था अतः रचना स्थान या तो आगरा, राजस्थान या आगरे का ही कोई समीप स्थल रहा होगा:-

> सारद बिनु मति कवितु न होइ सउ अक्षर नउ बूझै कोइ
>
> सो सधारु पणवै सरसती, तिनकहु बुद्धि होइ कतहुती[1]

--- --- ---

1: हिस्ट्री आफ इण्डियन कल्चर: श्री एम० विन्टर निट्ज, भाग २ पृ० ४०४-७६।

2- हिन्दी जै०सा०का सं० इतिहास: श्री कामता प्रसाद जैन पृ०१३५।

3- प्रद्युम्न चरित: आमेर भंडार, जयपुर, पद १।

अठदल कमल सरोवर वासु कासमीर पुरि लिउ निवासु
हंसि चढी कर लेखणि लेइ, कवि सधारु सरसइ पणवेइ[1]

------ ----- -----

अंब माइ, रोहिणी जो धरइ सासण देवी नवइ सधारु
जिण सासण महि बंछियउ सारु हरि पुन चढि करइ साधारु[2]

--- --- ---

अगरवाल की मेरी जाति, पुर अगरोवइ तहि उतपाति[3]

अतः स्पष्ट है कि कवि सधारु था उसकी जाति अग्रवाल जैन थी और निवास स्थान कदाचित आगरा। रचना के अन्त में कवि तुलसी दास की भाँति-कवि नं होउ नहिं चतुर प्रवीन्- और- "कवित विवेक एक नहीं मोरे"- आदि सूत्रों की तरह सधारु भी वाणी की समक्ष अपनी लघुता को स्वीकार करता है:-

हउ बुधि हीणउ जाणौं केम्बु अखर मातह गुणउ न भेउ
पंडित जणइ मसू नमुकर जोडि, हीण अधिक जण लावहु खोडि[4]

इस प्रकार ग्रन्थ के रचना काल और कर्ता आदि के सम्बन्ध में अब तक बैठे समस्त भ्रम निर्मूल सिद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार के तथ्यों को स्वतंत्र रूप से प्रकाश में लाने के प्रयत्न भी हुए हैं।[5]

-काल्पनिक घटनाओं और अवान्तर कथाओं का विवेचन-

कवि ने मूल कथा से इतर जिन मौलिक घटनाओं और काल्पनिक कथाओं को अपने जैन सिद्धान्तों में ढाला है वे इस प्रकार हैं:-

१- प्रारम्भ में कवि द्वारा चौबीस जिनेन्द्रों का वंदन।

१- वही, पद ३।
२- वही, पद ५।
३- वही, पद ६७५।
४- वही, पद ६८२।
५- हिन्दी अनुशीलन वर्ष ९ अंक १-४ पृ० १३-२०।

२- नारद का आना, सत्यभामा का उनको नमन न करना, नारद का कृष्ण से रुक्मणि का सत्यभामा के मान भंग के लिए विवाह करना, रुक्मणि के भाई से युद्ध तथा शिशुपाल वध। वैष्णव ग्रन्थों में शिशुपाल का वध रुक्मणि-परिणय में नहीं होता। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में होता है। इसके अतिरिक्त कृष्ण रुक्मणि विवाह का कारण भी वैष्णव ग्रन्थों में सत्यभामा की नारद की उपेक्षा नहीं है।

३- पूर्व जन्म के वैर के कारण विद्याधर धूमकेतु का प्रतिशोध। शिला के नीचे से कालसंवर का उसे घर लाकर पुत्र की तरह पालन करना। जबकि वैष्णव ग्रन्थों में वह मछली के पेट से निकला था और मछुओं ने जाकर उसे राजा को भेंट किया था।

४- पूर्व भव का लगभग सभी वर्णन।

५- प्रद्युम्न को कालसंवर के लड़कों द्वारा अग्नि कुण्ड जैसे भयानक स्थानों में कुदाना और सुरक्षित लौट आना।

६- युद्ध में प्रद्युम्न का समीपवर्ती राजाओं को पराजित करना। कनकमाला का उसे काम भावना से देखना और प्रेम करना तथा आंचल में छिपाने की चेष्टा, प्रद्युम्न का मुनिश्वर के पास जाकर उसका कारण पूछना तथा कनकमाला से तीन विद्याएं मांगना व कालसंवर के पुत्रों को अपनी १६ विद्याओं से पराजित करना।

७- प्रद्युम्न का १६ विद्याओं तथा जलबाण, अग्निबाण, वायु बाण, आदि अनेक शस्त्रों को प्राप्त करना।

८- द्वारका गमन छंद ८ में रास्ते में प्रद्युम्न का भील का वेष बनाना, राजकुमारी का हरण करना, द्वारका जाकर वानर का रूप बनाकर सत्यभामा के बाग को उजाड़ना, भूखे ब्राह्मण का वेष बनाकर सब भक्ष्य को खा जाना, स्वयं का द्वार पर लेट जाना, भृत्यों को उल्टा टांग देना, अपनी विद्याओं से युद्ध में समस्त सैनिकों को मूर्छित करना।

९- संबुकुमार की उत्पत्ति तथा पूर्व भव वर्णन और प्रद्युम्न का दीक्षा लेना भी कवि की अपनी ही मौलिक तथा काल्पनिक देन है।

१०- मैतिम तथा नवीन बात कवि की शैली गत विशेषता है। वर्णन पद्धति तथा सर्ग की सूचना अपने ही प्रकार से देता है। स्तुति खंड के बाद कवि दूसरे खंड के परिवर्तन की सूचना इस प्रकार देता है:-

(१) स्तुति खंड।

(२) जिणसासण महि कहियउ सार हरिसुव चरित्र करइ उधार(पद ११)

(३) काल संवर घर,वृद्धि कराइ,बाहुरि कथा दुवारिका जाय(पद ११७)

(४) पाखमास दिन वरिसगणाय, बाहुरि कथा वीर पहंजाइ (१५९)

(५) बहुत वरत कुंवरस्यौ मिली, माउ विवाण दुवारिका चली (२८६)

(६) इहर वात तवे इहइ रही,बाहुरि कथा रुपिणी यह गई (४४१)

(७) रहइ अवध अंधतर भयउ,पूर्व विदेह जाइ सुंभयउ (५७३)

(८) कुंडलपुर सो राज कराइ बाहुरि कथा दुवारिका जाइ (६३९)

वस्तुतः इन वर्णनों में कवि ने पर्याप्त मौलिकता रक्खी है। स्वयं कवि सधारु ने प्रद्युम्न की कथा को सरस कथा कहा है।

। रस ।

भरतेश्वर बाहुबली रास की भांति प्रद्युम्न चरित्र भी वीर रस का काव्य है। वीर रस अंगी भाव में और शेष रस अंग भाव से है। वीर रस के कुछ युद्ध वर्णन कवि के काव्य कौशल के प्रतीक है। श्रीकृष्ण शिशुपाल का रुक्मणि हरण के अवसर पर युद्ध, प्रद्युम्न और सिंह रथ का युद्ध कालसंवर और प्रद्युम्न युद्ध तथा श्रीकृष्ण प्रद्युम्न का अंतिम युद्ध सभी वर्णन उत्कृष्ट है।शिशुपाल कृष्ण युद्ध की तैयारियों के कुछ वर्णन देखिए:-

> सिसपाल राजा बुझिगइ रुपिणी कुंवरि चोरी हरीलइ
> कवइ कोपि बोलियउ नरेस सुणिय बलाकउ वेमि अदेस
> तउ मन कोपिउ भीषउ राउ हा हा यमे निसाणा घाउ

तरीय पलाणहु गयर गुडहु कालरूप हुइ राम्बत चडहु
रहिवर साजहु गयवर गुरहु सजहु सुहड आजु रणवभिडहु
रावत कर साजहु करवाल, धाणुक करहु धणुह टंकारु
सेसपाल अरु भीषमुराउ दुइवल सुहनन सुभइ ठाउ
घोडउ खुर लइ उछल खेह, जिमि गाजहि मादो केम मेह
चिन्ह चमर दीसइ चमरंत, जाणी दावानल कर (लेहि) निमर्जत
चतुरंग दल भयो सजुत, पवण वेग रण अइ पहुंत
आवत दलु दीठउ अयवाहु उटी खेह लोपी ससि भाणु

--- --- ---

हाकिम वारि भिडइ दइवीर, वरसइ वाण सघण जाणी नीरु
वह सहज्यारिमाण पहरेइ, तह खेइ आठ संधाण करेइ
वह सोलह धरि मेलइ वाउ वह बत्तीसन सुभइ ठाउ
दोउवीर सरे सपराण दूणे दूणे करइ संधाण

इसी भांति श्री कृष्ण और प्रद्युम्न युद्ध के वर्णनों में कवि का मन खूब रमा है। हाथियों की गर्जना घोड़ों की हिनहिनाहट, तलवार धनुष गदा चक्र आदि शस्त्रों के प्रयोग आदि वर्णन प्रभावशाली है। प्रत्येक युद्ध में कवि ने रहिवर साजहु गयवर गरहु, सजहु सुहड आजुह रण भिडउ- पंक्तियों से युद्ध का भी गणेश किया है।कवि की श्री कृष्ण प्रद्युम्न युद्ध में उत्साह की भूमिकादेखिए:-

आयसु भयउ सुहर रण चलइ, ठाठा के खिलवाती करइ
केइ कर साहइ करवाहु केइ साजिलेहु हथियारु
केइ माथे मेवर मुडील, केइ सुहर साजिरथ चडइ
केइ तुरीन पाखर छालि, केइ सुहर साजिरथ चडइ
केइ टाटण कुम्भ लेइ केइ(उ) माथे टोपा देह

--- --- ---

कोउ कोंतु लेइ कर साव कोउ अखिवर मीकलइ भाजि
कोउ खेल सम्हारइ फरी कोउ करिहा बांधे छुरी

युद्ध के कुछ उदाहरण देखिए:-

दोउ दल सयउ महमय, कुहडनु साजि धनुक कर लए
इनउ साजि लए करवाल, नाणिक जीम पसारी काल
मयगलसिंह मैगल रण भिरइ, हैवर हयो हैवर आभिरइ
रावत पाइक भिरे पचारि, पडइ उठइ जिमवर की सारि
केउ हाकइ केउ लरइ, केउ मारमार प्रभणइ
केउ भिरइ स्मरि स्माजि, केउ कायर निकलइ भाजि

--- --- ---

कोपारूढ़ पंथ तब भयउ, बाउ चढ़ाइ हाथ करिलयउ
चउरंग बलभिडइ पचारि कौरव पंथ न सकइ सहारि
सहयो हाथ लेइ करवालु, निकुल कौवले करइ प्रहारु
हलधर जुम न पूजइ कोइ अल आयध लइ पहरइ सोइ (पद ४७४-४८१)

युद्ध में प्रद्युम्न द्वारा विद्याओं का प्रयोग (११३) तथा सबको स्तंभित करना आश्चर्य की पुष्टि करता है। ऐसे स्थलों पर अद्भुत रस की झांकी मिलती है-

मोहे सुभट सयल रण पड़े, देखइ सुहड विमाणा चढे
ठा ठा रहिवर हयवर पडे, टूटे छत्र चि टमणिनि जरे
ठा ठा मैगल पडे अनंत, जे संग्राम आहि मयमंत
सेना जुझि परी रण जाय, विलख वदन भा केसव राय
हा हा काहु कटै महमहु, बलियो वीर आइ यह कवनु (४८६)

परस्पर भयंकर युद्ध होने से कहीं कहीं बीभत्स का भी वर्णन हुआ है। गिद्धों का मंडराना चारों ओर रक्त की धारा और नरमुण्ड ही नरमुण्ड तथा यमराज का गिद्धों का भोजन का निमंत्रण देना वीभत्स का वर्णन करता है:-

हयवर रहिवर पड़े अनंत, हाय हाय मयगल मयमंतु
काका करहि काहि अफरार, हाइ ठाइ किलकइ बेताल
गीधीणी स्यार करइ पुकार, जनु जमराय जेवाकिहार
देखि चलहु हा पड़ी रसोइ, प्रघइ आइ जिम तिपत होइ

इसी प्रकार वात्सल्य (५३१) (प्रद्युम्न रुक्मणि के मिलन पर) रुक्मणी के पुत्र वियोग पर (१३६, १३८, १३९) करुण, नखशिख वर्णन रनिवास वर्णन और सज्जा वर्णन में आंशिक रूप में शृंगार, प्रद्युम्न का क्रोध में कृष्ण बलराम को ललकारना, उन्हें अमर्यादित वचनों से युद्ध के लिए उत्तेजित करना (४५१-४५७), क्रोध में आकर अग्नि बाण, जल बाण, वायुबाण आदि छोड़ना (५०९-५३५) आदि स्थलों पर रौद्र का वर्णन हुआ है। इतना सब कुछ होते हुए भी कृति की समाप्ति निर्वेद से हुई है।स्वयं प्रद्युम्न नेमिनाथ के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करते हैं। कृति का पर्यवसान प्रद्युम्न का समवसरण में जाकर दीक्षित होने में होता है:-

तिहि कुरखेत,महाहव भयउ, तिहि नेमिश्वर संजमु लयउ
बाहुरि भयम द्वारिका जाइ भोग विलास चरित विलसाइ
अगरचंदन बहु परिमलवास, सरवर बोल कुसम सर बास
ऐसी रीति कालुगत भयउ कुणि र नेमि जिन केवल भयउ
समवसरण तब आइ मुणिंद बनवासी अवर सुरविंदु (६४२-६५०)

यादवों के विनाश के वर्णन से प्रद्युम्न संन्यास ले बैठते हैं:-

दस दिसार अहुजादम भए करि संजम जिणवर पहुगयउ
दीक्षा लेइ कुमर परदवनु चिंतावस्थु भयउ नारायणु (६५६)

और नारायण के यह पूछने पर कि "कवन बुद्धि ले जननी तो आजु" जिण तपु लेइ पुत्र परदवनु" प्रद्युम्न"- प्रद्युम्न संसार की नश्वरता पर प्रकाश डालता हुआ कहता है:-

का कउ राज भोगु घरवारु बुधिनिसक जइसउ संसारु
रहट माल जिम यह जीउ फिरइ, स्वर्ग पताल भुवणि अवतरइ
हम तुम जन्मयु पुव्वह धर्मु सोहइ आणि पटाउ कम्म-

<u>प्रकृति वर्णन</u>-

साधारण है। प्रस्तुत अप्रस्तुत दोनों रूपों में प्रकृति का स्थूल रूप ही कवि ने चुना है। जनभाषा काव्य होने से उसका मन भी इसमें कम ही रमा है ऐसा लगता है। अलंकार तथा नामपरिगणनात्मक रूप में ही प्रकृति चित्रण मिलता है।

सत्यभामा के उद्यान का वर्णन करते समय कवि ने कई वृक्षों एवं फलों के नाम गिनाये है। वर्णन में कोई सौन्दर्य विशेष नहीं है केवल कवि ने वर्णन परंपरा की रक्षा मात्र की है:-

जाइ जुही पाडल कचनारु, बउल सिरि बेलु तिहि सारु
कूंजउ महकइ अरु कणवीरु, राग चंपइ केवर उग हीरु
केंडु टगर मंदारु सिंदूर जहिबंधि महइ सरीरु
दम्वाणा मरुवा केलि आणंत निवली महमहइ अनंत
आम जंमीर सदाफल घणे बहुत बिरसतह दाडिम्बतणे
केला दाख बिजउरे चारु नारिंग करुण कीपि अपार
नींबू पिंड खजूरी संख खिरणी लवंग छुहारी दाख
नारि केल कोफल बहुफले बेल कइथ घणे आवले (वही ग्रन्थ)

<u>विविध वर्णन:-</u>

विविध वर्णनों में कवि का मन खूब रमा है। सज्जा वर्णन, विवाह वर्णन नगर द्वार तोरण शकुन अपशकुन वर्णन आदि देखिए:-

<u>शकुन वर्णन-</u>

बाइ दिसा करंकइ कागु, बाट काटियो कालो नागु
महुवर दाहिणी अंगु परिहारु दखिण दिस फेकरइ सियालु
अणमा दीसइ जीव अबंधि भुजा पडइ तिन्ह ते सह पंखि
सारथि भणइ कहे सति भाउ बूटे सगु न दीजै पाउ

प्रस्तुत चरित में कवि ने परम्परानुसार अनेक वर्णन किए हैं। नगर, प्रम्ब द्वार तोरण, रनिवास वर्णन के साथ कवि ने विवाह का वर्णन नखसिख वर्णन सज्जा वर्णन आदि अनेक वर्णन लिए है- द्वारका का व-र्णन देखिए:-

सायर मांहि द्वारिकापुरी, कनक जब जो रचिकरि धरी
बारह जो जण है बिस्तार कंचण कलस ति दीसइ बार
छाजा चउबारि बहुभंति कुट्टम फटिक दीसइ सवि कंति
इकु तोरण चवलहर अवास मढ मन्दिर देवल चउपास

चौरासी चौहटे अपार बहुत भाति दीसइ सुविचार
चहुं दिस राहर गाहिर गंभीर, चहुं दिसि लहर भकोलइ नीर

---- ---- ----

ब्रह्मण छत्री बसहि तिमवर, वैस सूद तहिं निवसहिं अवर
कुली मली सत छत्तइ ठाइ, तिहि पुरि सामिउ जादउ राउ
दलवल साहण गणत अनंत करहि गर्व मोदनी विलसंतु
तीन खंड चक्केसरि राउ, अरियण दल मानइ परिवाउ (पद २०)

कवि ने १६ विद्याओं का चामत्कारिक वर्णन तथा प्रद्युम्न का विभिन्न देवी देवताओं से अनेक अस्त्र शस्त्रों की प्राप्ति का स्थल वर्णन किया है:-

राडु छाडि गयउ तपकरण सोलह विद्या आफी चरण
हरि परनाइ होइ अवतरणु तुहि निरखि लेइ पर सवतु
यह थोडी सु राजा तणी लेइ सम्हाली वस्तु आपणी
हिय आलोक अरु मोहणी, जल सोखणी रयण दरसणी
गगन गमण पाताल गामिनी सुख दरिसण सुधाकारणी
अगिनी थंभ विद्या तारणी बहु रुपिणी पाणी बंधणी
गुटिका सिधि पवाइ होइ सब सिद्धि जाणइ सबु कोइ
पारा बंधणी बंधउ पार सोलह विद्या लही अपार (१८९)

--- --- ---

विद्या सोलह लइ अविचार चम्चर छत्तसिर मुकट अपार
नाग सेज जो रयणनी जरी अधीणी कपड वीणा पावडी
विजय संख कोसाद अपार चंद्र सघासण सेवण हारु
सोलह हाथ काम सुंदरी पहुप छापकर कडिहा छुरी
कुसुम बाण कर हाथइ लेइ कुंडल जुगल सम्पल पहरेइ (२२४-२२५)

पूरा चरित काव्य दोहा चौपाई में है। परन्तु साथ ही वस्तु छूटक और धु धुवक का प्रयोग भी कवि ने किया है, जो जैन कवियों का प्रसिद्ध छंद ही रहा है कुछ छंदों के उदाहरण देखिए-

धुवक: अक्षिवइ सोलह अक्षिवइ चलइ, नित पिउ छोडइ अवरु मौगवइ

तिरियहि साहस दूणो होइ, तिरिय चरित्र जिण कुलह कोइ (२५६)

गाथा-

का भी कहीं कहीं प्रयोग मिलता है:-

दगुर्णेति गुर्णा विलर्ल् व बल्लहा सज्जनाहि वहर्ढति

विवसाय याधि सिद्धी पुरि सस्स परंमुहादिम्वहा (२६८)

गद्यड - एक स्थान पर गद्यड का प्रयोग भी मिलता है:-

कंद्पु पठयउ नयर मकरि मयण किरण रवि लोपियउ

बहि अवास वरंगिणी नारि तिनकउ मनु अपिलेखियउ

घन रुपिणी मन धरिउ रहाइ नारायण घर अवतरिउ

सुरनर अवर जयजयकार जिहि आगे कल्यर भयउ

घर घर तोरण उबेवार छप्पन कोडि उछव भयउ (५४७)

अलंकार-

अलंकार का स्वाभाविक वर्णन रचना की भाषा को और अधिक सबल बना देता है।उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, यमक दृष्टान्त, संदेह, अर्थान्तरन्यास अपन्हुति अतिशयोक्ति तथा स्वाभावोक्ति आदि अनेक अलंकार वर्णित हुए हैं। कवि ने सबसे अधिक उत्प्रेक्षाओं का ही प्रयोग किया है जो बहुत अनूठी हैं:-

(१) छूटि चून भइ मुंदडी जनु कुकथिक मरहट सलपड़ी

(२) घोड़ा सुरलइ उल्वी लेह, जनु गाजहि भादौ जिम मेह

(३) जिम्ह भमर दीसइ चमरंत, जाणौ दावानलकर (लेहि) निमवंत

(४) उड़ी खेह लोपी ससि भानु (अतिशयोक्ति)

(५) कीमइ पुरिस बिछोही नारि, की दम्बदाली वनह मझारि

कीमैं लेनु तेल घृत हरउ, पूत संतापुउ कवण गुण परयउ (१३८)

स्मरण अलंकार-

इक्के सील फलइ मैं डार, कंवण कलसह दीपइ वारि

कूवा वारि जे सूके हरे, विसइ निम्मल पाणी भरे

हीर चिक सब दीसइ, जब अंचल इ होइहहि पियरे

कमहर सुफल वहै अब रीफ सब ही आवह साहस धीफ (१५८)

उदाहरण तथा अर्थान्तरन्यास-

(१) बालउ सूर आगासह होइ तिनको झुक सकइ घर कोइ
बाल भंभुड सहसउ आइ, ताके बिसमणि मंतु न आदि
झूह छाडि गए वण ठाउ, ता कहकोण कहै परिवाउ

(२) जे विसहर मुह घाले हाथ, सो भोगहु झुफ गह समुथ (११७)

उत्प्रेक्षा मूलक अतिशयोक्ति:-

(१) विझुयाचल तहं रच्यो विमाणु, जहि ह्रदोत तोपि ससि भानु

(२) गीधीणी स्याउ करइ पुकार, जनु जमराय जणवहिसार

(३) इनउ साजि लए करवाल, जाणिक जीभ पसारी काल

(४) तउ महमहनु कोपिउ चडइ, जनु गिरिवर पव्वउ उहर डहइ
हाल्हइ महियलु सलकिउ सेस, जम संग्राम चलिउ हरिकेसु

इस प्रकार अलंकारों का वर्णन जन भाषा काव्य को धर्म तथा नीति, उपदेश प्रचार एवं कथा को आगे बढ़ाने के लिए काव्य को प्रवाहमय बनाने में योग देता है।

भाषा

प्रद्युम्न चरित की भाषा सरल हिन्दी है, जिसमें स्थान स्थान पर राजस्थानी का प्रवाह स्पष्ट परिलक्षित होता है। कहीं कहीं अवधी शब्द भी देखने को मिलते हैं जिसका कारण कवि का निवास स्थान आगरा होना ही लगता है। प्रद्युम्न चरित की भाषा को आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य की भाषा सम्बन्धी कई उलझी बातों का हल प्रस्तुत करती है।सम्भवतः तुलसी आदि कवियों ने ऐसे ही कवियों से अपने ग्रन्थ की रचना करने की प्रेरणा ली होगी। परम्परा के रूप में कुछ अपभ्रंश शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।वस्तुतः कृति की भाषा विज्ञान के शोध कर्त्ताओं के लिए अत्युपयोगी है। उक्त उद्धरणं से भाषा व शब्दों की पूरी जानकारी की जा सकती है।

सुभाषित:

कृति में कवि ने अनेक सूक्तों नीति वाक्यों सूक्तियों और सुभाषितों

का वर्णन किया है जो भाषा को सरस बनाते हैं। जहाँ कवि अपने वर्णनों में अधिक उपदेशात्मक हो जाता है वहाँ अनेक सूक्तियाँ आ जाती हैं:-

(१) जो विधि लिख्यो न मेटइ कोइ (४७१)

(२) पुन्नहि राज भोगु महि होइ, पुन्नइ नरु उपजइ सुर लोइ (२२२)

(३) नीची बुधि तिम्बरसु निहरइ, उत्तिम लोहि नीच सेवइ (२५८)

(४) तिरिय विसास करइ जो धणउ, तिहि जिउ खोयो राजा तणउ

(५) पूर्व रचित न मेटण कवणु

(६) घरी मांगत भोजन करइ

(७) अगुह कंमु नहु मेटइ कोइ।

(८) कामण कउ लालची होय, बहुत वाइ आपइ सबु कोइ (४३)

नाटकीय भंगिमा संधियाँ तथा अर्थ प्रकृतियाँ-

प्रद्युम्न चरित में पारस्परिक संवाद- जयसंवर प्रद्युम्न संवाद, कृष्ण रूक्मणी व कृष्ण प्रद्युम्न संवाद में एक नाटकीय ताप की सृष्टि होती है, जिसमें नाटकीय भंगिमा पा सकते हैं। साथ ही कथा में एक क्रम बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य तथा आरम्भ प्रयत्न प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम आदि का क्रम मिल जाता है। वस्तुतः कथा वस्तु ने इन तात्विक तत्वों का समाहार भी कवि ने इस एकार्थ काव्य में किया है।

अति प्राकृत या अलौकिक तत्व:

जन भाषा काव्य की अभिव्यक्ति को तीव्रतर व प्रभावशाली बनाने के लिए कवि सधारु ने अति प्राकृत या अलौकिक दैवीय शक्तियों का भी काव्य में सहारा लिया है। सब शत्रुओं को नायक मंत्र मुग्ध की भाँति स्तंभित कर विजय प्राप्त करता है। स्वेच्छानुसार वेश बनाकर जहाँ चाहे वहाँ प्रकट होना, अदृश्य होना, अनेक बाणों से विभिन्न प्रकार की सृष्टि होना, अनेक विद्याओं तथा मंत्र मंत्र व तंत्र आदि के प्रभाव से उनका मूर्छित होना, विद्याधरों का अपनी माया से कौतुक प्रस्तुत करना, शिला के नीचे दबाने पर भी नायक प्रद्युम्न

का जीवित निकलना आदि घटनाओं में कवि ने निश्चित रूप से दैवीय तत्व का सहारा लिया है जो कथा में वैविध्य व कौतूहल उत्पन्न करती है। पाश्चात्य साहित्य में शेक्सपियर ने नाटकों में भी वस्तुतत्व में इस प्रकार के अप्राकृत वर्णन मिलते हैं ।

सामाजिक तत्व-

कृति में कई ऐसे स्थल हैं जिनमें कवि सामाजिक तत्वों व स्थितियों पर प्रकाश डालता है। स्त्रियों का चरित्र, पुरुषों का दर्प, स्वार्थ आदि का खुलकर वर्णन है। जनसंवर को कनकमाला के धोखा देने पर जर्सवर स्त्रियों के स्वार्थ, विश्वासहीन रूप तथा कृष्ण पक्ष पर विस्तार में विवेचन किया है।वर्णन भाषा की सरलता सरसता और भाव प्रवणता देखिए:-

देखि चरित जब बोलइ राउ, अब भो भयउ मरण के ठाउ
तिरियहं छण्ड जुपति गउ करइ, सो माणस अणखुटइ मरइ
तिरियहि साहस दूणो होइ, तिरिय चरित जिण कुलह कोइ
नीची बुधि तिम्वरघु निहरइ, उतिम छोडि नीच संगइ
पकडी नीच देह सो पाउ, एसो निवइ तणउ सहाउ
तिरिय बिसास करइ जो धणउ, जिहि बीउ सोच्यो राजाहणउ
हुइजे राउ जसोधर भयउ, अमइ मता देवो सकलयउ
विस लाडु वइ मारयो राउ, पुणि कुवडउ रम्यो करि भाउ

--- --- ---

अथवा राणी किए विनाण, गुड दंसण लागि गए परान
जिहि लगि कुरु मता हो भयो, लइ तप वरषु कुर्दसणु गयउ
रावण राम जु बाडी राडि, विग्रह भयउ सुपनखा लागि
सीता हडइ, लंका पर जली, लाइ स्यो पइयाल रावण संघरइ
कौरों पंडो भारह भयउ तिहिकुरुखेत महाहउ ठयउ
अवर धोरुपी वल संघारि दुबेइ वल बोलइ दोवइ नारि (२५५-२६५)

इस प्रकार इन विविध दृष्टान्तों से कवि स्त्री चरित पर कीर्तिपूर्ण प्रकाश डालता है।

कथा परंपराएं, कथा रूढ़ि अवान्तर घटनाएं:-

कथा वस्तु में पूर्व वर्णित मौलिक घटनाओं का सुन्दर कुतूहल व घात प्रतिघात प्रस्तुत किए हैं। जहाँ तक कथा रूढ़ि और परम्परा का प्रश्न है कवि ने वर्णन पद्धतियाँ प्राचीन ही रक्खी हैं। छंद तथा वस्तु शैली आदि में अपभ्रंश की परम्पराओं का ही अनुगमन किया है साथ ही कथा परम्पराओं में भी कवि ने पूर्वरचित संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के काव्यों की कथा को मूल आधार मान कर अपने मनोवांछित प्रयोग इन अवान्तर कथा प्रसंगों के रूप में किया है। ये सब घटनाएं मूल कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं का कार्य करती हैं। यद्यपि प्रद्युम्न के विवाह के बाद आगे की घटनाओं की संगति आधिकारिक कथा से ठीक से नहीं बैठ सकी है परन्तु फिर भी उनको कथा वस्तु की वृद्धि तथा कथा में प्रगति हेतु माना जा सकता है। घटनाओं में युद्ध की चालें, विद्याओं के प्रयोग राजनैतिक षड्यन्त्रों तथा नीति प्रधान बातों का वर्णन कवि के बहुज्ञ होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अनेक प्राचीन विद्याओं का वर्णन प्राचीन युद्ध विज्ञान व पौराणिक युद्ध कौशल व अस्त्र शस्त्रों की विविधता का परिचायक है।

अहिंसा-

इतना बड़ा युद्ध काव्य होने पर भी, खून की नदियां बहने पर भी भयंकर युद्ध करने पर भी प्रद्युम्न चरित द्वारा कवि ने अहिंसा का प्रचार किया है। नायक प्रद्युम्न अपनी विद्याओं के प्रभाव से सबको स्तंभित कर अचेत कर देता है पर किसी भी व्यक्ति की हत्या नहीं करता। अपनी विद्या के प्रभाव से उन रक्तिरंजित भावना काव्य के मूल में है। वीर काव्य होते हुए भी यह काव्य सबसे बड़ा विरोधाभास प्रस्तुत करता है।

लोक काव्य:-

लोक काव्यों की परम्परा में प्रद्युम्न चरित का महत्व पूर्ण स्थान है। जन भाषा कवियों में अद्यावधि उपलब्ध लगभग सभी जन भाषा काव्यों में यह सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हुआ है। व्यवहारिक जीवन की छोटी छोटी घटनाओं के होते हुए भी इसकी मुख्य विशेषता लोकोपकारक है। सरल भाषा प्रवाह, सुक्तियां

शब्दों का सौन्दर्य, सामाजिक तत्व, भाव की उत्कृष्टता तथा गहनता द्वारा कवि जन जीवन का रहस्य प्रस्तुत करता है इससे कृति का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

<u>मुख्य संवेदना:</u>

प्रद्युम्न चरित की मुख्य संवेदना जन भाषा में नायक के शौर्य, चरित तथा धर्मोन्नति का प्रचार करना है। पूरी कृति में स्थान स्थान पर कवि उपदेश प्रधान हो जाता है। जन भाषा काव्य होने से कवि ने नायक को बहुत ही विस्तार दिया है। ताकि उसके बल पराक्रम और शक्तिशालीव्यक्तित्व से जन साधारण परिचित हो सकें। कवि ने कहीं भी नायक का पराभव नहीं दिखाया है।नायक के व्यक्तित्व के सफल विकास के साथ कवि ने जैन धर्म व दर्शन के महत्व पूर्ण सिद्धान्त कर्मवाद का भी पूर्णतया प्रतिपादन किया है। प्रारम्भ में चौबीस तीर्थंकरों की वंदना, जिनमन्दिरों व मुनियों को नायक का नमन, स्थान स्थान पर मुनियों का पूर्व कर्म व पूर्व भव कथाओं का वर्णन सब इस बात के प्रतीक हैं।

वस्तुतः १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सधारु की कृति अपना विशेष स्थान रखती है। सधारु दिगम्बर कवि थे अतः उनकी भाषा पृथ्वीराज रासो की भाषा की ही भांति है। श्वेताम्बर कृतियों से सधारु की भाषा में पर्याप्त अन्तर है जो भी हो कृति बड़ी महत्वपूर्ण है और आदिकालीन सरल हिन्दी की महत्वपूर्ण कड़ी है। चरित काव्यों में उपलब्ध कृतियों में सबसे बड़ी कृति प्रद्युम्न चरित ही है।

◊ नेमिश्वर चरित ◊[1]   माणिक्य सुंदर सूरि (सं० १४७०)

विक्रम की १५वीं शताब्दी में माणिक्य सुन्दर सूरि ने नेमिश्वर चरित काव्य की रचना की है। कवि श्री माणिक्य सुन्दर सूरि अचल गच्छ के मेरुतुंग सूरि के शिष्य थे। माणिक्य सुन्दर सूरि ने इस कृति के साथ साथ और कई ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें चतुःपर्वीचम्पू, श्रीधर चरित (सं० १४६३) धर्मदत्त कथानक, शुक राज कथा, मलय सुन्दरी कथा, संविभागव्रत कथा, सत्तर भेदी पूजा, गुणवर्मा चरित (सं० १४८३) आदि कथा ग्रन्थ संस्कृत में रचे हैं इसके अतिरिक्त अनेक टीकाएं भी लिखी हैं।[2] १५वीं शताब्दी में पृथ्वीचन्द्र चरित्र जैसा उत्कृष्ट गद्य ग्रन्थ लिखा है। पद्य में कवि का यह चरित काव्य उपलब्ध है जो भाषा शैली और पद लालित्य की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है।

कृति का रचना काल व रचनाकार का समय दोनों ही स्पष्ट हैं तथा कवि का जीवन काल भी विस्तार में उपलब्ध है।[3] रचना बहुत पहले गुजराती भाषा में प्रकाशित हुई थी परन्तु इसका पाठ कई अंशों पर त्रुटित था, जो हिन्दी साहित्य के लिए अप्रकाशित सा ही है। वस्तुतः कृति प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती है। प्रति की प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित है। यों इसकी मूल प्रति पाटण के भंडार में, तथा दूसरी बम्बई के रायल एशियाटिक सोसायटी में डाक्टर भाई दाजी के संग्रह में है।[4]

रचना के नाम के आगे फाग बंध शब्द मिलता है जो सम्भवतः काव्य के फागु शैली में लिखे जाने का सूचक है। प्रस्तुत कृति जन भाषा या बोली में लिखी

१- देखिए आत्माराम शताब्दी ग्रन्थ- नेमिश्वर चरित फाग बंध शीर्षक लेख: श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई, पृ० ४०-४५।
२- पल्पनिर्युक्ति अवचूरि, आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पिंड निर्युक्ति दीपिका, ओघनिर्युक्ति, दीपिका, दशवैकालिक दीपिका, उत्तराध्ययन दीपिका, आचरांग दीपिका, पिंड निर्युक्ति दीपिका, और नवतत्व विवरण आदि।
३- जैन गुर्जर कवियो: श्री देसाई मोहनलाल भाग २ पृ० ७७२।
४- आत्मानंद शताब्दी ग्रन्थ पृ० ४७।

गई है। यों बोली सब प्रकार के शास्त्रीय नियमों से बंधन सीमाएं नहीं रखती। प्रस्तुत कृति की वर्णन शैली से इस काव्य की जन भावगत विशेषताएं तथा पद माधुर्य स्पष्ट है। यह कृति ठीक वैसी ही सरस है जैसी अनुप्रासबद्ध गद्य रचना पृथ्वीचन्द्र चरित्र।समस्त कृति १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का ब्योरा प्रस्तुत करती है।

जहाँ तक रचना की कथा वस्तु का प्रश्न है इसमें अद्यावधि नेमिनाथ के जीवन सम्बन्धी उपलब्ध होने वाले काव्यों से कोई नवीनता नहीं है परन्तु कवि ने अनेक वर्णनों में बड़ी मौलिकता प्रस्तुत की है। जिसका अर्थ गाम्भीर्यपद लालित्य, शैली गत सौन्दर्य आदि रूपों में आगे के पृष्ठों में विवेचन किया जायगा।

कृति का प्रारम्भ कवि ने जीरापल्ली के पार्श्वनाथ और सरस्वती देवी का मंगलाचरण करके किया है। कवि की शब्दावली, छंद वैविध्य तथा आलंकारिक अनुप्रासात्मक वर्णन पद्धति का परिचय प्रारम्भिक पद्धति से ही मिल जाता है:-

नमउं निरंजन विमल सभाविहिं भाविहिं महिम निवास रे
देव जीरापल्लि वहिलय नवघन, विघन हरइ प्रभु पासरे
नाभि-कमलि कुंडलिनि निवसति, सरसति सांतु रूप रे
समरउं सामिणि पुजिउ परंपर परमब्रह्म स्वरूप रे

अढैउ

परम ब्रह्म स्वरूप, जय सुरासुर भूप, अविगत अविचल ए, निरुपम निरमलुए
अजर अमर अनंत, भवभंजन भगवंत, जनमन रंजन ए, नमउं निरंजन ए
शृंगारिउ गिरिनार, गाइसु नेमिकुमार, मार-विडारणुए, त्रिभुवन तारणु ए
यादव कुल केरउ चंद, दीठई परमानंद, शिव सुखकारणए, मोह निवारण ए

कवि का नेमिनाथ का बाल वर्णन, व ब्रह्मचारी स्वरूप, कृष्ण के धनुष का चलाना शंख बजाना आदि कभी स्थलों के रूप में उल्लेखनीय है:-

बंधव नेमिकुमार रूपतणउ भंडार,
बाल ब्रह्मचारी ए न, रमइ नारी ए
सारंग धनुष धरेवि, स्वामी शंखु पूरेवि,

पाडिया पाहरिय, मनि चमकिउ हरि ए

हारि उपरोधिइं नेमि, तसु बालिउ खेमि,

सुरनर सवि मिली ए, जोइ मन रली ए

हेला हलावी बांह, हरि हींडोलइ नाह,

मल्ला-खाडइ ए, बल देखाडइ ए (२१-२२)

प्रकृति वर्णन और वसंत वर्णन के रूप में कवि का मन खूब रमा है। शब्दों की सरलता ध्वन्यात्मकता, अनुप्रासात्मकता तथा कोमलकांत सुषमा वर्णनीय है। रास छंद में वर्णित वसंत-गमन देखिए:-

ईणि वचनि रही आण वीअला,

रितुवसंत अवसर आइला, वाइला दक्षिण वाय तु जिनजिन

कुसुमि कुसुमि भमरा रणझणीया,

मयणराय हयवर हणहणीया, भूयणि भयु भडवाय तु (ध्रुपद)

सेयगिरि मिली रमल करंतो सुगति

रमणी हीइधरंतो खेले मास वसंतु जिन जिन .....

रमे रंगि जादव भूपाला, रुक्मिणी साथे वरवाला,

माला कुसुमची हाथि तु जिन जिन ||....

पारधि पाडल के वहीए, कणयर करणी

केवडीए ए, कदली करे आणंदतु जिन जिन ....

कोफली फणस फली बीजउरी, वनस्पति

दीसे मोरी, मोरीयडा मुचकुंद तु जिन जिन ....

फागु

कुंदकली महिमहीया, मह महीया सहकार,

करइ कुच नारंग ना अंमना रंग अपार (३१-३४)

जाइ जाइ वर किंसुक, किंसुक वदन सुरूव,

त्रिभुवन-जन-आनंदन, चंदन चंपक कूच

कवि ने श्रृंगार के रूप में जल क्रीड़ा और कृष्ण की स्त्रियों का वर्णन भी सुन्दर किया

किया है। कृष्ण और नेमिनाथ का शारीरिक रूप व जलक्रीड़ा का साथ ही चित्रण किया गया है।वर्णन सरस तथा चित्रात्मक है:-

अंजनवान शरीर, बेई गिरुआ गंभीर

इकु नेमीसरु बीजइ सारंग धरु ए

हँरि हरिणाक्षी साथि, स्वामी सिउं जगनाथि,

खेलई खडो अलीए जलि पडई उकली ए

झीलईं पुलकित अंग नेमि अनइ,

श्रीरंग, सींगी जलि भरीए, रमईं अंतेउरी ए

हरि सनकारी गोपी तेहि मिली लाज लोपी

नेमि घारवलि फिरी ए, झमकई नेउरी ·

त्रिभुवन पति धरइ अमरष रमतु नारि मझारि,

ते बोलईं सुविवेक तूं एक वयण अवधारि

प्रभु।परिणेवउं मानिन मानिनी मनह वालंभ,

तरुणीय जनमन जीवन यौवन अतिहि दुलंभ   (३८-४२)

कवि ने राजमती के उल्लास का वर्णन, उसके रूप सौन्दर्य का आलेखन तथा नेमिकी अलंकार सज्जा, छत्र,चमर, लूण उतारना, धवलमंगल गीतों का उपक्रम, समस्त देवों का बरात में आकर शामिल होना, संगीत वाद्यों का अलाप,नारद का गीत गान आदि सभी सुन्दर चित्र उरेहे।हैं एक दो उदाहरण अलम् होंगे:-

चकोर लोचनी मिली, निज निज मति रली बली बली अलंकरइनाहरे

चतुर पेरावणि प्रभु चढि वालिउ आलिउ भूयणि उच्छाह रे

काने कुंडल झलकई जिम ससि रवि-मंडल, मंडल वइ ससि जोवई रे

उरिवरि हार सिरिवरि मणि मुकुट, कटक कंकणि करि सोहई रे

---- + ----

बहिन उतारह लूण स्वामी साच सलूण, पूठिई घूलही ए गाई धउलहीय
आविउ अमरह राउ, वलिउ निसाणे छडि राजा वासुकिए,आविउ आस गिए
ग्रह तारा रवि चंद, आवइ अप्सरवृंद आम दिउ मनुष, मिलिउ त्रिभुवनु ए

वर्णन की अलंकारिकता स्पष्ट है। लूण उतारना एक राजस्थानी प्रथा है जिसमें वर के विवाह करने पर नजर न लगे इसलिए बहिनें उस पर नमक उतार कर अग्नि में डाल देती है।

वस्तुतः कृति में पशुओं का क्रन्दन सुनकर नेमि के विरक्त होकर चले जाने पर राजमती द्वारा किया विलाप बड़ा हृदयकारी व करुण है- राजमती ने नेमि को बड़ी देर से एकटक निहारा था सहसा इस भयानक अप्रत्याशित विघ्न को कोमल नारी नहीं सह सकी। व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़ी, पछाड़े खाने लगी। सखियों ने चंदन जल छिड़का, कदली दल से व्यजन किया, चेतना आने पर राजुल विलाप करने लगी, कंकण तोड़ दिए, छाती पर का हार उतार कर फैंक दिया- हे मेरे जीवन,आओ। आओ। मे मोर तुम ---- हे पपीहे --- पिउ पिउ न बोलो, क्योंकि पिउ तो स्वयं ही मेघ के पास चला गया है, अदृश्य हो गया अब तो बिजली रूपी निश्वास निकल रही है। आंसुओं से सरोवर भर गए है- हे हंस। (जीव) अब उड़ जाओ। प्रियतम तो सिद्धि रमणी में रम गये और अपनी प्रीत भूल गए। हे प्रियतम ।आठ भवान्तरों का नेह अब आकर क्यों तोड़ते हो? राजमती जल विहीन मछली की भांति तड़पने लगी।वर्णन का पद लालित्य, करुण विप्रलंभ कवि के विविध रूपकों और उत्प्रेक्षाओं के द्वारा निखर उठा है। देखिए:-

राजमती बाला विविह परि विलपति पति वियोगे अपार रे
फोडइ कंकण विरह-कराली रालीय उरतणी हार रे
धाउ धाउ धाइ जीवन मोरडा मोरड़ा वासि म वासि रे
प्रीय प्रीय का करिअ पापीयड़ा,प्रीयड मेहनइ पासि रे
सही सींचइ चंदन बलि कदली दल करइ वाउ
वलिई चेतन जागिउ वलिउ यादवराउ

--- --- ---

कीता सरनर इंद, पणितू नेमि जिणिदं, मयणिन छाहीउप नारि न वाहिउ ए
देव मणई तूं देव,धर्म प्रकटि प्रभु।देव, भवियण जिणि तरंइ रे भव वनिनवि फिरइं ए

(७५-७७)

--- --- ---

गत मत्सर हिव जिनवर नव मइ रसि लीन
लेइ संजम आदरइ करइ विहार अदीन
दिवसि पंचावनि पामीय स्वामीय केवल ज्ञान
विरचइ मिलिय देवासुर समोसरण प्रधान (७९-९०)

और इस प्रकार अन्त में कवि काव्य का उद्देश्य, चरित वर्णन का परिचय तथा अपना नाम स्पष्ट करता है।कृतिनिर्वेदांत समाप्त होती है। पूरी कृति प्रबन्ध शैली में लिखी गई है और कुल ९१ छंदों में काव्य समाप्त होता है। अन्त में कवि भरत वाक्य की भांति शांति वचन कह कर काव्य समाप्त करता है:-

श्री जिनपति भारतीय प्रसादिहिं,
अंतरंग करि केसरि नादिहिं, चरितुरचिउं मनरंगि
लच्छि विलासइ लीला कमले
गमइ मोह शामलतां विमल,छेदइ कलि मल भंगि
(चरम-कमलि तुम्ह भुंग नेमीसर,
वीनवेआचार्य माणिकसुन्दर सुललित गुण भंडार)
श्री यादव कुल भूषण हीरो मेह जेम गाजइ गंभीरो
कदूप कुसुम सर वीरो
तूं अम्ह स्वामी सामल धीरो गज जिम सबहु
सहजि संडीरो, सुरिज सा मालु सरीप
रिपु अंतर हैला निरजणीया विषम मोह मद
जिमिरणि हणिया नेमिसर सेवादि
यदिकुल माणे सा राजल रामी मा तू सुभट
कविता जगि जामी विस्तल शिव प्रासादि

वय अवर जिम बे तिहि मिलीया, सुंदर परम
ब्रह्मसिउं मिलीया दुख वर्जित विलसंति
रसि ज्ञु मैनिजिण चरिय सुच्छंदिहि, कुल मति
भुणइ सुणई आणंदिहि तसु मंगल नित हुंति (९१)

वस्तुतः कृति में कवि ने रासु, अढैउ, फाग रासउ या रासो आदि छंदों में रचना की है। साथ ही बीच बीच में कवि ने संस्कृत श्लोकों में अनुष्टुप, आर्या, शार्दूल-विक्रीड़ित, शिखरिणी आदि संस्कृत छंदों को भी प्रयुक्त किया है। कृति की भाषा प्राचीन राजस्थानी है बीच बीच में अपभ्रंश के भी शब्द आये हैं। पदावली सरल है। साथ ही कवि ने अलंकारों का स्पृहणीय वर्णन किया है। अंतर यमक प्रमुख अलंकार है।

कृति की कथा वस्तु सरल है नायक राजवंशी है जिसका मन्तव्य आध्यात्मिक संदेश है। मुख्य उद्देश्य कवि का नेमिनाथ का चरित सरस रागों या ढालों में संगीतबद्ध करके जन भाषा में उनके उत्तम आदर्शों का प्रचार करना है।

कथा काव्य अखंडित रूप से समाप्त होता है। कवि ने वर्णनों में यथार्थता का प्रयोग किया है। शैली मिश्र है तथा पदावली कोमल कांत है। भाषा में अपूर्व प्रवाह है। कवि ने बसंत की बहारों से लेकर निर्वेद का जीवन्त वर्णन किया है। १५वीं शताब्दी के चरित काव्यों में नेमिनाथ चरित फागु बंध शैली में लिखे गए काव्यों में उत्कृष्ट काव्य है। कवि ने सुन्दर रूपक, उत्प्रेक्षाएं, उपमाएं, और विविध अलंकारों का स्वाभाविक वर्णन किया है।

कहना न होगा, माणिक्य सुन्दर सूरि का जिस प्रकार का स्पृहणीय काव्य पृथ्वीचन्द्र वाग्विलास है वैसा ही पद्यात्मक कृतियों में नेमिनाथ चरित फागुबंध काव्य है।

:विराट पर्व[1] : (शालि सूरि) सं० १४७८ से पूर्व

विराट पर्व पान्डवों की चरित कथा है जिसमें वनवास भोगने के बाद पान्डवों का १ वर्ष तक अज्ञातवास का वर्णन है। यद्यपि कवि ने कृति में चरित नाम कहीं नहीं दिया। पर्व नाम से महाभारत के पर्व का स्मरण हो उठता है। अतः पर्व सर्ग विभाजन के लिए रूढ़ शब्द है। अतः काव्य की कथा वस्तु के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह विराट पर्वपान्डवों के जीवन का एक छोटा सा पर्व है, जिसे उन्होंने विराट के यहां रहकर बिताया था।

पूर्णिमगच्छ के गुरु मेरुसूरि के शिष्य श्री शालिसूरि ने इस कृति की रचना की है। कृति अहमदाबाद के पास सनंद नामक ग्राम में लिखी गई है। इसकी प्रति में ६ पत्र है जिसकी प्रतिलिपि वि० १६०४की मिलती है। कवि ने अपना नाम स्पष्ट कर दिया है:-

आणिउ विराट चिहुं पंाण्डव हर्ष पुरि
कीधउ कवित्त इह कृतिमि शालिमसूरि

अतः यह स्पष्ट है कि कृति हर्षपुर में लिखी गई है। कृति का काल निर्धारण इसके समकालीन लेखकों द्वारा विराट पर्व के उद्धरणों को उद्धृत करने से निश्चित हो जाता है कि १५वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ही अर्थात् १४७५-७८ के पूर्व ही रहा होगा। क्योंकि माणिक्य सुन्दर सूरि ने इसके उद्धरण दिए है जिसका समय सं० १४७८ है।

विराट पर्व प्रबन्ध शैली पर लिखा हुआ एक बहुत बड़ा काव्य है जो ७१२ कड़ियों में लिखा हुआ है।कथा वस्तु पौराणिक है तथा जैनेतर है।शालिभद्र सूरि के प्रसिद्ध चरितमूलक रासग्रंथ पंच पंडव चरित रास के पश्चात् यही एक ऐसी कृति है जिसे शालिसूरि ने बड़ी क्षमता से संभाला है।कृति को आद्योपान्त अनुशीलन करने

१- गुर्जर रासावली।जी०ओ०एस० सी-१८ पृ० ३४-६४।

पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने कहीं भी जैन परंपराओं का वर्णन और पालन नहीं किया है। सिर्फ एक पंक्ति में जैन प्रभाव स्पष्ट होता है:-

जेणि देखि जिण मायस मोहइ [1]

कवि शालिसूरि ने विराट पर्व को दो भागों में विभक्त किया है:-

१- दक्षिण गोग्रह

२- उत्तरगोग्रह।

कवि ने महाभारत के विराट पर्व की कहानी को चुना है उसके नायक पांचों पान्डव है। रचना जैन सिद्धान्तों, परम्पराओं और अन्य किसी भी जैन प्रभाव से एकदम मुक्त है। पूरी कृति एक प्रकार का युद्ध काव्य है। विराट पान्डवों व कौरवों का युद्ध अत्यन्त प्रभावशाली काव्य कौशल प्रस्तुत करता है।पान्डवों का अज्ञातवास और अज्ञातवेश में युद्ध करना और फिर सारा भेद खुलना इसके उत्तरार्द्ध में है तथा पूर्वार्द्ध में पांचों पान्डवों का वेश बदलकर अपने शस्त्रों को बाहर खेजड़े में छिपाकर विराट के पास द्रौपदी को साथ में लेकर आना तथा पांचोंका द्यूत, ब्राह्मण, गुवाल और अश्व विद्या प्रवीण, तथा नट(नृतक) आदि विभिन्न नामों से कार्य करना, और द्रौपदी का सैरन्ध्री बनकर विराट के अंतपुर में वृत्ति स्वीकार करना, कीचक का उस पर मुग्ध होना और मारा जाना आदि वर्णन है। बीच बीच में अवान्तर कथाओं का वर्णन चरित में आख्यान की कथा वस्तु में तीव्रता प्रस्तुत करता है। यह पूरी कहानी १३वें वर्ष की है जिसमें पान्डवों ने अज्ञात वास किया थैा। अंत. को पान्डव अपनी वास्तविक स्थिति का स्पष्टीकरण करते है।

संक्षेप में यही कथा का सार है। पान्डवों की चारित्रिक विशेषताओं, शौर्य सम्बन्धी गुणों तथा सैरन्ध्री का सेवा भाव आदि अनेक रूपों में कवि ने इस महाभारत के सुन्दर स्थल विराट पर्व में चुना है।

कवि प्रारम्भ में भारती का मंगलाचरण करके वरदान मांगता है और अपनी काव्य रचना की कथा वस्तु का भी स्पष्ट उल्लेख कर देता है:-

---

१- वही पृ० ३६३। (The commentary

कासमीर मुख मंडण माडी, तू समी जगि न कोई भिराडी
गीतनाहि जिम कोइल कूजइ तू पसाई सवि कुतिग पूजइ
भारती भगवती एक मांगू चित्त मांडव तणे गुणि लागउं
आपि मू वचन तूं रसवाणि हूं करउं जिसि प्राकृत वाणी
पंच पंडवि वनंहरि विमासिउं, तेरिमूंवरस केमि गमेसिउ

नारद ने पाण्डवों को मध्यप्रदेश में रहने को समझाया। सेजड़ी में शस्त्रों को छिपाकर देव रूप को त्याग कर सब विराट के यहाँ पहुँचे तथा पाँचों पाण्डवों व द्रौपदी ने अपना वेश नाम व कार्य छिपाकर कृत्रिम कार्य व वेश तथा नामों का स्पष्टीकरण किया है वर्णन की सरलता देखिए:-

सेजड़ी सिहिरि शस्त्र निर्युज्या, देवरूप बलि मंत्र प्रयुज्यां
द्रुपदी रहई ते मति आलीगुया विराट नृप मंदिरि चाली
पाणि पुस्तक सुवर्ण जनोई रूपवंत एह बंभण कोई
जां विराट नृप चित्ति विमासइ, विप्ररूप नृप तां इम भासइ
हूं युधिष्ठिर सभासद विप्र, तूं यधिष्ठिर नरेश्वर मित्र
पांच पान्डव वनांतरि नाठा, ता हरई सरणि तु अम्हे पयठा
दूत लक्षण कला सवि जाणुं, मूं हरई कुलि राज पराणउं
ए युधिष्ठिर नरेन्द्र सुयार नामि वल्लभ भुजाबलि सार
द्रुपदी नु वनावय हार, ए बृहन्नट कला सिणगार
अश्ववंध एह वीर नकीजइ, अयव विद्रुय सघली हरइ हईइ
पांचमउ पुरूष गोरखवाल, पांडुपुत्र धरि एह गोवाल
पंच ए पुरूष लोक प्रसिद्धा, पान्डुपुत्र रिदि समृद्धा

--- --- ---

पहलंडु मच्छ रूपि सुलिंद्री, ते सुद्रुवध्व तरिउ पार्थ पुरंद्री

कवि ने सैरन्ध्री बनी द्रौपदी का सौन्दर्य वर्णन किया है। कीचक उस पर मुग्ध हो जाता है। उसके असाधारण सौन्दर्य को ने सबको चकित कर दिया- उसके सौन्दर्य की अलौकिकता देखिए:-

नागलोकि वसणाहर काली, मानवी घटिसि तू निहमाली
तिर्य लोक कोइ देव न दीसई ताहरउ जनम जेपि कहीसइ

--- --- ---

अहह रूप असंभव भूवलइ, कवण कामिनि एह सभी तुलह
हिव हठिउ मुझ मन्मथ मारिवा, एह जिऊण अंग ऊगारिवा
वदन चंद महारस लेइ छाडिउ, अमिय यहतणी रसना जडिउं
पवन चंदन गंध हरावतउ, वदनि वासि वसइ दिसि वासतु
नयण लां मृगनी उपमा किसी, हईइ हारिउं वेढि जईं वसी
चरण चारिहि हंस हरावती, वचनि जीणइ जीती भारती

--- --- ---

निरुपम कुलबाली रूप नी चित्रसाली,
अविकुल गुणवल्ली काम भूपाल भल्ली
कइ हुइ सुरराणी मानवी मईन जाणी,
अह न हुइ जि नारी तो इतु हुइ गंधारी

वस्तुतः कवि ने द्रौपदी का रूप वर्णन उत्कृष्ट उपमानों से किया है। चन्द महारस लेकर बनाया हुआ मुंह, अमृत मयी रसना, दसों दिशाओं में उसके अंगों की सुरभि तथा सौन्दर्यमयी नायिका के यौवन व रूप का चित्रण कवि ने अपन्हुति अलंकार द्वारा किया है।

कीचक ने अपने प्रेम में द्रौपदी को फंसाना चाहा, द्रौपदी जैसी महासती का प्रभाव यद्यपि विराट की पत्नी, कीचक की बहिन को लग गया पर कीचक ने उसे उलझाने के उपाय किए। कवि ने सुभाषितों और सुक्ति नीति प्रधान उक्तियों द्वारा द्रौपदी की स्थिति का चित्रात्मक वर्णन किया है:-

इ गंधकारी मिसि रूप दासी, रही अछइ उत्तम नारि वासी
किमइ न जाणिउं एक वैन वाजइ अणजाणतु अंध उवाडिदाफइ
ज्वाला ज्वलंती कहि कुण पइसइ, दुकूल नी पारहि कुण बहसइ

महासति सिउं कुण हास्य कीजइ, तु जीविवा कीचक नीर दीजइ
मेल्हि बात पर ही सखि बाइ स्त्री तणउं सवि हउं जाणूं माई
नारि नीरस न शाखि न राचई पुण्यहीन पति पद्म वेचइ (पद २६-२८)

द्रौपदी के कारण कामुक कीचक की हुई स्थिति का आलंकारिक वर्णन देखिए:-

भमरडउ मरिवा अमबीहतउ, पसरि पइ केतकिई हतउ
कठिन कंटक कोडि कुटी रडइ, पडिउ वेधि पुहइ पुणि आरडइ
गहाउ मैहि सु कीचक नीच थिउ मनिसु मन्मथ मार्गेण वेधिथिउ
अरति अंगि अनंग तणी घणी, हृदय सा खुटकइ मृगलोयणी
टलवलइ जिम निर्जल मछिली, वल वलइ अति अंग वली वली
भखइ लोखड लावर आकुलउ, विरहि विहवल वातर वाउलउ (३१)

कामुक कीचक को भी पतिव्रता द्रौपदी ने बहुत समझाया। हर तरह से उसने अपने शरीर व सतीत्व की रक्षा करना चाहा। अन्ततोगत्वा भीम ही स्वयं द्रौपदी बनकर चला गया और कीचक का वध किया। कवि की उपदेशात्मकता नीतिज्ञता और विविध उदाहरणों तथा दृष्टान्तों द्वारा किए हुए विविध वर्णन उल्लेखनीय हैं:-

मकरि कीचक कूड निकालिया मरी यमू करि मुह म जालिजा
अकल अंबुधि माहिम कांपवइ, मुहि हलाहल कवल म मूंकलइ
वदन क्रूंमिम वानर वाधिणी कउ म घालिसि नीलव नागिणी
मदनि सिउं विसवेलि न भुंटीइ, गुच्छ पांव मवे नवि छुंटियइ
भमरि मालति जेम विरोलियइ तिम न केतकि केलि घंघोलियइ
तृणह काजि न डूंगर डोलियइ, जडह काठु करी कुल बोलियइ
भूरि घरी घूमइ धाइ ताडइ, आक्रंदती भूपति वूंब पाडइ
धाय धरानायक राखि राखि, ए पापीया नईफल दाखि दाखि (४१)
रोअती रमणि भीमिमिवारी, मूं दिखाडि पुणि जीणई हूं मारी
काढि कोकम करी अधीबाली आखिजे पिशुन अवनि बाला
द्रूपदी गईय ठामि विहासइ मैत्र धंगि मिथि कीचक आणइ

आजि आविज निशा छइकाली, जीह हो नड नचावई बाली
हुईय कामिनी रुप निरुपमी रहिउ भीम तमी मुख बीसनी
बहुल भख मनुख मरे करी, गयउ सोतहि कीचक सुंदरी
भक्ष्य भोज्य सवि भीमि निहालि, खाय खासयि करा मुखि वाली
बहि माहि मुहा मलिउ भ्रीमि खीच कीचक कर भग्न भीमि (५७)

कवि ने पान्डवों के इस अज्ञातवास को नियति के द्वन्द्व के कारण ही स्वीकार किया है।अपनी इस कष्टजनक स्थिति को राम लक्ष्मण,हरिश्चन्द्र और कृष्ण की भील के साथ मृत्यु आदि अन्तर्कथाओं द्वारा स्पष्ट किया है:-

पांच पान्डव रहया इम नासी, द्रुपदी रही थाईय दासी
देव दाणव न राय न रांणउ, देव आगलि न कोइ सपराणउ
राम लक्ष्मण मही दुखि पाडया, पंच पान्डव विदेसि भमाड्या
ढूंब नईधरि जल वहिउंहरिचंदिई, भालडी मरण लाघ मुकुंदिई

उत्तरार्द्ध में कवि ने युद्धों का वर्णन किया है और इन पान्डवों के अज्ञातवास का भेद खोला है। कवि ने युद्ध की तैयारियों का वर्णन बड़े ही कौशल के साथ किया है। कवि ने अपने लोक अनुभवों को भीसाथ साथ उपदेशात्मक नीति वाक्यों के रुप में रक्खा है:-

एक बार वरिसी जलजाइसात बार गुण जाणि हुणाइ
जीणि भूखइ सदाफल होवई जेणि देखि जिण मामस मोहइ
जीह दारुण द्रारिद्र न फेडइ राग शोक जीह लोक न पीडइ
जीणि देखि नृप हुइ सपराण्उ, तीणि देखि दुखिय पान्डव जाण्उ

युद्धों के वर्णन में, सैनिकों की सज्जा, शस्त्रों की सनसनाहट, योद्धाओं का शौर्य हाथी घोड़ों और सवारों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कवि के कौशल का प्रतीक है:-

ढूंब ढूंबइ मिली धार कांपी, कूण सीम पुरनी मुष भांपी
रोषिराउ वयनी परिगाजइ, आज रे भई विराट कुण लाजइ
इन्द्र अश्वकुण होइ असाहरी, सीह रहई क्वण होइपाहरी
शेष नाग फण कुंभ कंपावइ सीम मूंकवम अचल टंपावइ

धम धमिउ घुरि नाद नीसाण नउ, गहगहिउ सुर वर्ग समाणनउ
कल कली बहली रिण काहली टलवइ प्रज हुई माकुली
दह दडी द्रमकी द्रमक्या अरी, हुटहुडाट हुउ हुडकी करी
कल कलइ जिमि वारि निधि पलइ किछिउं भूधर केपिंटल टलइ
विसम ढाक्स ढूक्स ढमढमी, भरहरी भरभेरि बिहामणी
सुहड नी महिली रिण सांभली, प्रिय कहइ सवि ते मन नीरली
प्रिय सुखिइं सुर मंदिरडउं लही, मकरिजे कइमूं विण वालही
वीर कंकण भले भडि बांध्या, राय हाथि तईं बीडां लाध्यां
जोउ जीण भड भीषण माला, बीर ना सयर केसर यालां
चपल तुंग तुरंगम पाखरिया, गुड गुडया असवार ते संचरिया
नृप विराट विलंगाज पांडवो, सहि गयउ समरांगणि मांडवे

(७४-८२)

कवि ने वीर रस के प्रतीक उत्साह की सफल अभिव्यक्ति शब्दों की मिठास, ध्वन्यात्मकता तथा अनुप्रासात्मकता विविध उत्प्रेक्षाओं में ढाल कर प्रस्तुत की है। उदाहरण द्रष्टव्य है:-

पतलइ सुशर्मा दलि ढोल वाजइं, जाणे असाढू किरि मेह गाजइ
हीया धसूकईं सर शेष सूकईं भय बीहता कायर जीव मूंकइ
सबल ने धबके धर धूजइ, अरितणा मन मुं मद छूटवईं
किल किलाट करी हबकी करईं धड पडइ भड रंक रडी मरइ
बाण धोरणि मिहुं पखि छूटईं नाद सींगिणि तणे गुणि मूंकईं
बीर बीरहिं सिउं भडी भाजइ, गूढ गयमर तणी गुडी गाजइ
अहह धानुक धारणुक धानुक सिउं जडइ, खडग धार कि कोडि खडखडइ
समरि सूर वसइ विधि भींभली, धसमस्या सुभट ते रिण सांभली
तुरकमाणक वाणक हुं सरियां सुहड वर्मति फोडईं धुंसरा
गज गजिइं रथ स्यूं रथना धणी, तुरग सिउं तुरगे रथ मांडणी
धड पडईं धड ऊपरि नाचतां, रडवडइ सिर सांमरि भूफतां (८४-८९)

--- --- ---

तउ सैन्य छांडी रथ वाम वेडिउ, गोवृंद वाली मनसाल फेडिउ
तउ वाउ वेगि कुरु राउ रूधउ, अगस्ति अंभोनिधि जेमपीधउ

---- --- ---

जाणे फिरिया सीह रहई सीयाल, मातंग नई जेम मशा भमाल
चिहु पखे अर्जुन बाण छूटइ, सन्नाह भाजिइं सर सीष फूटइं
तुरंग मातंग रथलि पाला, ते पार्थ ने वारिहूवा पंखाला
बाणवली कौरव नीखि खंड करई तुरमे मलवड चंड (६५)
एकि ना रथ हूया शत खंड, बेलि बाढी रहिया मलखंड
एकिना रथ तणा हय माठा, तीह नै मिधु करी एकिनाठा (७१)

--- --- ---

गजेन्द्र कुंभस्थल सीस डोलइ, कोइ हिंडोला जिम सीस डोलई
तुरंग मातंग ति नीद्र घोरई न पखया नीद्रलडी कगोरई (७८)

--- --- ---

एकि ना धड पडयां इकि जोई धाउतां धडू नरेन्द्र विगोई
तउ राउ दुर्योधन एवि भासइ, हाकिं हसीतुं पडिउ विरवासइ
ए मारि रूपि नर राउ कोई कइ ईम रूपिइ इह पार्थ होई (७४)

इस प्रकार १ वर्ष की इस अवधि में कवि ने विराट पर्व को युद्ध स्थल ही बना दिया है और अज्ञातवासी व अज्ञातवेषी पान्डवों को योधाओं के रूप में चित्रित किया है। कवि को प्रकृति वर्णन तथा अन्य कोमल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का जैसे कोई स्थल ही नहीं मिला ऐसा लगता है। बीच बीच में कवि ने पार्थ चिन्ता, पार्थ उवाच, गांगेय उवाच, उत्तरो उक्ति, अर्जुन उक्ति, बृहन्नडावाक्यं,बृहन्नडा उवाच, दुर्योधन वाक्यं उत्तरवाक्यं, अर्जुन चिता आदि शीर्षकों के अन्तर्गत सुभाषितयों तथा उपदेश और नीति प्रधान वाक्यों के रूप में उपदेश देकर कृति के अर्थ गांभीर्य वर्णन चातुर्य भाषा लालित्य और पद लालित्य का परिचय दिया है। कृति में वीर रौद्र आदि रसों का निर्वाह है। अन्त में पान्डवों की विजय होती है इसी हर्ष आनन्द में कवि ने कृति को समाप्त किया है। यह कृति अद्यावधि

उपलब्ध सब निर्विवाद कृतियों में अपवाद है।

विराट पर्व जन भाषा काव्य है। दृष्टान्तों अर्थान्तरन्यासों, उदाहरणों, अनुप्रासों और सुन्दर रूपकों के द्वारा कवि ने कृति को उत्कृष्ट बनाया है। छंदों के रूप में इसकी देन असाधारण व अनूठी है। जन भाषा काव्य होने से कृति के उदाहरण अनेक तत्कालीन लेखकों ने उद्धृत किए है और कई पंक्तियों में इसकी छाया है- कुछ उदाहरण दृष्टव्य है-

(१) माणिक्य चंद्र ने अपनी पुकराज कथा में[1] इस उद्धरण को दिया है:- इससे विराट पर्व को मिलाइए:-

देव दानव राउत राणउ देव आगलि न को सपराणउ

डंब नइ घरि जल वहिउ हरिचन्दइ मंालडी मरण लापुमुकुन्दिइ

विराट पर्व:-

पांच पाण्डव रम्या इम द्रूपदी रही थाईय दासी

देव दानव न राय न राणउ दैव आगलि नकोइ सपराणउ

राम लक्ष्मण महि दुखपाडया, पांच पंाडव विदेसि भमाडया

डूंबनइ घरिजल वहिउं हरचंदिईं, मालडि मरण लाघ मुकुंदिईं

१५वीं शताब्दी के श्रृंगार शतक में देखिए:-

श्रृंगार शतक[2]:-

कमलने दलि सीतल साथरउ, कदलि कोमल पत्रम पाथरउ

म करि मूकडि मूकडि, मूकडी, दमितु मेलि न वेलिन भापडी

विराट पर्व: सयण मूकडि सहरि सु सींचीइ पवण पूरिहिं बीजणां बीजीइ

कमलने दलि साथर पाथरउ, मरइ कीचक मन्मथ आकरउ

१- भारतीय विद्या: वर्ष ३ अंक १, पृ० २१०-२२३ तथा जी०ओ०ए०सी० १८ पृ० ४

२- रूप सुंदर कथा: डा० भोगीलाल जी सांडेसरा: भूमिका भाग पृ० ७ की पाद-टिप्पणी।

वस्तुतः कौन एक दूसरे से प्रभावित है निश्चित नहीं कहा जा सकता।

बुद्धि रास: अणजाणिउं फल किमइं म खाए[1]

विराट पर्व:- किमइ न जाणिउं फल नैव खाजइ

इस प्रकार कृतिमें तत्कालीन, समकालीन कवियों के काव्य से साम्य स्पष्ट है।

छंदों के रूप में इस कृति ने नया स्थान बनाया है। यद्यपि कवि ने इस रचना को कवितकहा है।परन्तु कवित्त छंद आद्योपान्त कहीं भी प्रयुक्त नहीं है। संभवतः कवित्त से उसका अभिधा में अर्थ कविता से ही है। अतः इस दृष्टि से इसे कवित्त रूप के अन्तर्गत लेना ठीक नहीं है। गुर्जर रासावली के सम्पादकों ने इसे इसी कवित्त नाम के कारणकवित्त काव्य रूप में स्थान दिया है जो सम्भवतः बहुत संगत नहीं कहा जासकता। कवि ने रचना में शुद्ध वर्णिक वृत्तों का प्रयोग किया है। त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध की भाँति इस कृति में भी वार्णिक छंद है। कवि ने इन छंदों का स्वरूप शुद्ध शास्त्रीय रक्खा है इनमें किसी भी प्रकार का मात्रा या देशी छंदों का पुट नहीं है।वस्तुतः इन छंदों औरभाषा दोनों दृष्टियों से रचना का अपना स्थान है। कुछ शास्त्रीय वार्णिक छंदों के उद्धरण देखिए:-

१- द्रुत विलंबित:

अहह रूप असंभम युवतइ, कवण कामिनि पड सभी तुलइ

तिन हठिउ मद मन्मथ मारिवा, पह विउडण अंग सगारिवा

(२१)(२६) (२३),आदि

(२) स्वागता-

वात वाजत गई कुर गेहि

दाहूय कुंभन पडिउ अति देहि

च इहिडं बल न पांडव टाली

कूड काजि अहूम पड हीयाली (१५)

१- भारतीय विद्या: वर्ष २ अंक ३- पृ० २५।

(३) <u>वसंत तिलका</u>-

बयराट उत्तर पहई कुरु राउ धायउ
अक्षोहिणी दलतणी रज सूर छायउ
नीसाण ने सहसि अंबर घोर गाजइ
ए पांच पांडव तणउ किरि मेरु भांजइ (१०२ पृ० ५१)

(४) <u>उपजाति</u>-

ए गंधकारी मिसि रूप धारी, रही अछइ उत्तमनारि नारी
किम इन जाणिउं फल नैव साजइ, अण जाणतु अंध अंनाडि दाभइ

(५) <u>मालिकी</u>-

निरुपम कुल बाली, रूपनी चित्रसाली
अविकुल गुण वल्ली काम भूपाल मल्ली
कइ हुइ सुर राणी मानवी मईन जाणी
अहत हुइ जिनारी तो इसु हुइ गंधारी (२५)

इसकेसाथ ही कवि ने इन्द्रवज्रा (भाग १ पद ३, भाग २ पद ५) तथा उपेन्द्रवज्रा (भाग १, छंद १, भाग ३, छंद १) में भी प्रयुक्त किया है। पूरी कृति का प्रमुख छंद स्वागता है। साथ ही कवि ने बीच बीच में छंदों का मिश्रित रूप भी प्रयुक्त किया है जिनमें रथोद्धता, इन्द्रवज्रा, रथोद्धता-स्वागता, स्वागता-रथोद्धता, द्रुतविलंबित-स्वागता आदि [१] उस छंद के विल्प तथा पुरानी गुजराती के उच्चारण से इन वर्णों के सम्बन्ध पर गुर्जर रासावली के संपादकों ने पर्याप्त

---

१. G.O.S.CXVIII page (8-60) The analysis of the mixed stanzas is symptomatic as the MG. Poetry is also inclined to use mixed stanzas of syllabic metres just as we find here in OG Poetry.

2. IbiD," Another point which draws the attention the varation between the spelling and the exact prosodic pronunciation of words The metrical form being syllabic metre, the stanza is governed by the length, shortness and number of the syllables. The

P.T.O.

प्रकाश डाला है।[१]

भाषा की दृष्टि से भी प्रस्तुत रचना पर्याप्त महत्वपूर्ण है। भाषा सरल हिन्दी के शुद्ध तत्सम स्वरूप प्रस्तुत करती है। कहना न होगा कृति इस प्रकार काव्य कौशल, छंद तथा अलंकार आदि सभी रूपों में महत्वपूर्ण है। चरित काव्यों में इसका स्थान पर्याप्त महत्व का है।कृति का सम्पादित पाठ उपलब्ध है।

---

spelling convention of OG. is not as exact as the SKt. convention. Thus an OG. stanza, when spoken holds a different form which is i s approximate symbol. Hence it would give us some assessment or measure of how the written OG. word represented the spoken OG. words......xxx There are a few lines which show the prosodic contamination. This is due to a great gap that came into being between the actual sung song and the song transcribed. The transcription was always a little inexxct and had only a fragmatic value. The poem was meant for singing and that was the dominating idea. (G.O.S. C XVIII- page 9-11).

: आदिनाथ पुराण:[1]

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है तथा आमेर भंडार जयपुर में सुरक्षित है। प्रति परिचय इसप्रकार है- पत्र सं० २१५ साइज हिन्दी में लिखी है।प्रति साइज १०।।- ६ इन्च प्रति पृष्ठ पर १३ पंक्तियां है और प्रत्येक में ३०-३४ अक्षर है। प्रति आमेर शास्त्र भंडार जयपुर, वेस्टन नं० ९३।

प्रस्तुत प्रति की प्रतिलिपि राजस्थान के ग्राम मैतवाला में पार्श्वनाथ के उपाश्रय में की गई। ग्रन्थकार ब्रह्मजिनदास ने और भी कई प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे है। जिनदास भट्टारक श्री सकल कीर्ति के प्रशिष्य के प्रशिष्य तथा भुवनकीर्ति के शिष्य थे।

प्रस्तुत काव्य, भगवान आदिनाथ का चरित आख्यान है। कवि ने विशाल रूप में सारा चरित वर्णन किया है। विस्तार में पुराण में कवि ने आदिनाथ के जीवन चरित के पूर्व भवों का वर्णन किया है। पुराण में आदिनाथ के पांच कल्याणकों का विस्तार में वर्णन है। आदिनाथ के दोनों पुत्र भरत और बाहुबली के चरित पर भी कवि ने विस्तार में प्रकाश डाला है।आदि पुराण में प्रारंभ में ही कविने - श्रीसरस्वती माताये नम:- अथ आदिपुराण रास लिख्यते- से रचना कारास नाम स्पष्ट होता है परन्तु रास का शिल्प नहीं होने और पूरा काव्य ही चरित मूलक होने से, तथा कथा प्राधान्य के कारण इसे चरित संज्ञक काव्यों के अन्तर्गत ही स्थानदिया है।

प्रस्तुत रचना के कर्ता दिगम्बर है अत: दिगम्बर और श्वेताम्बर लेखकों की भाषा का अन्तर द्रष्टव्य है।

कृति का प्रारम्भ कवि ने मंगलाचरण से किया है। कवि नेआदि जिनेश्वर और सरस्वती की वंदना करइस चरित आख्यान की रचना की है।

1- आमेर शास्त्र भंडार- पत्र सं० २१५

रचना पर्याप्त बड़ी है तथा २१५ पत्रों में लिखी गई है:-

वस्तु:- आदि जिनेश्वर आदि जिनेश्वर आदणमेसु

सरसती सामी ने बलीसाउ

बुधि सारु -हु मागउं निरमल, श्रीसकलकीर्ति पाय प्रणमीने

मुनि भुवन कीर्ति गुरु वाडु सीहजल, रासकरी सीहू रूवडो [1]

तम परसादे सार श्री आदि जिणंद गुण वर्णवुं चारित्र जोड भवतरि

कवि इस प्रकार अपने लिए सरस्वती से सुबुद्धि मांगकर श्रोताओं और भावुक श्रावकों को सावधान करता है:-

भास जशोधरनि -

भवियण भावे सुणो आज रास कहुं मनोहार

आदि पुराण जोइ करी कवित्त करूं मनोहार

बाल गोपाल जिम पढे गुणे जाणे बहुभेद

जिन सासण गुण नीरमला मिथ्याम ते छेदे [2]

कवि ने स्थल स्थल पर संसार की नश्वरता और कर्म विपाक विमर्श किया है। अनादि और लोकालोक तथा संसार रचना वर्णन देखिए-

अनादी नो घन छे संसार, रचियो नहीं कुणे विचार

त्रिलोक तणो कहुं हुवे भेद, जिम कुमति तणो हाये छेद

आलोका काश अनंत परदेश केवल ज्ञान गोचरनरेश

तेह मध्या छे लोकाकाश सउदरखुह सो गुणवास [3]

उक्त उद्धरण में नो, छे आदि विभक्तियां जूनी गुजराती की है।

वर्णनों में कवि ने विविध कथाओं की संयुक्ति रक्खी है।तथा गहन दर्शन को इन्हीं सरल वर्णनों से स्पष्ट किया है। इन कथाओं के वर्णन में प्रवाह आ जाता है तथा भाषा सरल और सरस बन जाती है।कथारस के कारण ही चरित आख्यानों

१- आमेर शास्त्र भंडार- पत्र सं० २१५

२- आमेर शास्त्र भंडार पत्र ३-४

३- आदिनाथ पुराण, पत्र ४।

का प्रचार व प्रसार बढ़ता है:-

> चंड सेन राजा बलवंत, घन जोगुयो तेवे बलवंत
>
> घन उपरे मोह कीवो घोर मरता अति ध्यान हुवो थोर
>
> आर्तध्यान मरी करी जाण,अजगर सर्प हुवो दुख खाण
>
> भंडार माहि अति ही अपार, कोप करे ते अतीह वीसार [१]

इस प्रकार पूर्व जन्मों का वर्णन करके पापकर्मों के निराकरण से कवि ने मनुष्यों की सद्-वृत्तियों को जाग्रत कर उनका झुकाव धर्म की ओर बनाये रखने का सतत प्रयत्न किया है।

कथा परिवर्तन और सर्ग परिवर्तन की सूचना प्रद्युम्न चरित्र की ही भांति दूहा छंदों में दी है उदाहरणार्थ-

दूहा - ए कथा हैवे इहां रही, अवर सुणो गुणवंत

> ब्रह्म जीनदास ईम वीनवै,भवीयण तुम्हे जयवंत [२]

कवि के वर्णन सरल अंतर्कथाओं से युक्त है।भाषा में प्रवाह और चरित्र गुणों के लेखन में एक चित्रात्मकता के दर्शन होते है। कथा तत्व पाठकों की रुचि को कथा नायक की ओर खींचता है। वर्णन की चित्रात्मकता अंतर्कथाओं का मिठास भाषा की सरलता और प्रवाह देखिए:-

भास रासनी-

> वानर नी कथा हवे कहूं रासमुणो सुजाणसो
>
> माया कर्म तेणं करयोए अप्रत्याख्यान दुख खांणतो
>
> सुघन नगर एक जाणीयेए, कुबेरदत्त सेठ साह तो
>
> भार्या सुदत्ता जानीयेए, रुप सो भागमो ठाम तो
>
> तेह पेहू कुखे उपनो ए, नागदत्त पुत्र जाणंतो
>
> माया कुटील अति घणोए पूर्व पणो बखाणतो [३]

१- वही, पत्र २२ २- वही पत्र ४०।

३- आदिनाथ पुराण- आमेर शास्त्र भंडार- पत्र ५९।

मास चोपईनी-

देवीय पुछे मधुरीय वाणि, कहो रांणी तुम्हें सुजाण
पुरुषोत्तम कवण संसार, ते माता तुम्हे कहो विचार
अर्थ धर्म साध्यो जिणे काम, ते छोड़वी मुगति गुण ग्राम
ते पुरुषोत्तम कहीए माय हे कहो जिम लागु पाय[१]
ए चारे पदारथ सार, साधि सके को पुरुष गमार

प्रस्तुत रचना में कवि ने सुन्दर सूक्तियां और सुभाषित लिखे है। सुन्दर सुन्दर नीतिप्रद बातें जो मानव जीवन के लिए विशेष उपयोगी है तथा विविध आख्यानों से ओत प्रोत नीति मूलक वर्णन कवि की काव्य दक्षता को प्रस्तुत करता है।दुष्प्रवृत्तियों का प्रभाव वर्णन भी पर्याप्त स्पृहणीय बन पड़ा है। सूक्तियों का वर्णन दोहा छंदों में देखिए:-

दुहा-

जिनदान घटे रहहो रिम तिम परमानंद
श्रेयांस मने निपजे बाधो धरमह कंद
सयल देव परमावीया अंतरीक्ष रहा गुणवंत
कुसुमवृष्टि करेनिर्मली रत्नवृष्टी जयवंत
दुंदुभि सबद होहरममणा मंघोवकवलियार
मलयावलि मेह करे ही सुगंध अतिहि अपार[२]

---- --- ---

मास राहनी-

कालखे छूटे कहीए बीस वरस नर आवुहो
होय हाथ शरीर कहीय धुम वर्ण दीसे काय हो
नयर पाटण थका वेम ठाम घर मंदिर नवि होमते
ना हो नहीं माय बाप तणाए, पशुपरिति तिणे जोयतो
अबर वध वीचार नहीं ए, पाप करे दिन रात को
नवि ओढणो नवि पहिरणो ए नवी भूषण नवी कांत हो[३]

१- वही ग्रन्थ,पत्र ९२। २- वही ग्रन्थ पत्र १२३ ३- आदिनाथ पुराण पत्र १५९।

इस प्रकार उक्त वर्णन में एक चित्रात्मकता तथा स्वाभाविकता है कलियुगी वर्णन की भांति कवि ने अमर्यादित कृत्यों का पूरा रेखा चित्र प्रस्तुत कर दिया है।

कहीं कहीं नारियों का वर्णन भी कवि ने पर्याप्त प्रभावशाली किया है। नारी के पास किन उत्कृष्ट आभूषणों को होना चाहिए उनका कवि ने क्रमशः वर्णन किया है। कवि की उपमाएं व रूपक उल्लेखनीय है:-

<u>दूहा:-</u>

सील शरीरह आभरण सोभे नारी अंग
मुख मंडण साचो वयण, विणु तंबोलह रंग
परिमल विण फूल जिम ससि विणी रयणीजाण
तिम सील विणु नरनारी सोहे नहीं दुख खाण [१]

इस प्रकार कवि ने शील की महिमा स्पष्ट की है।

वस्तुतः कवि ने इसी प्रकार की नीति, उपदेश, पूर्वभव वर्णन तथा कर्मवाद पर प्रकाश डालते हुए आदिनाथ का चरित्र चित्रण किया है। स्थल पर अनेक अन्तर्कथाएं और दृष्टान्त काव्य को लोकप्रिय बनाने में सहायक है। कवि की भाषा सरल है।छंद वैविध्य अनेक रूपों में मिलता है जिनमें, वस्तु, भास दूहा, भास चौपईनी, भास रासनी, दुहरा, भास नरेसुवानी भास वीनती -इस प्रकार शीर्षकों के अन्तर्गत कवि ने छंदों और भासों का उल्लेख किया है। कवि ने प्रकृति वर्णन, चरित्रिक गुण वर्णन भरतेश्वर बाहुबली संघर्ष वर्णन तथा आदिनाथ कैवल्य तक का वर्णन किया है। इस प्रकार कृति लोक भाषा काव्यों की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। ब्रह्मजिनदास १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध व अंतिम शतक में आते है। भाषा एक दम सरल तथा बोल चाल की हिन्दी है। जिनमें पुरानी राजस्थानी व गुजराती के शब्दों का प्रभाव है।

१- आदिनाथ पुराण- पत्र १५५ २०७

प्रस्तुत पुराण में पर्याप्त विस्तार है। काव्य समाप्ति पर कवि कुछ भरत वाक्यों का चयन दोहों में करता है:-

बखाणे जे रुवड़ा सभा मांहि गुणवंत, रुचि सहित जे सांभले तेह ने पुण्य महंत
समकीत गुण उपजे करम नीम यलीसार, तत्व पदारथ जाणीये ज्ञान उपजे भवतार।

इस प्रकार आदिनाथ का यह चरित्र काव्य भाषा और काव्यप्रवाह तथा कथा तत्व की दृष्टि से अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

(ग)

(- विवाहलो काव्य):-

(विवाहलोकाव्य)

रास, फागु और अन्य काव्य रूपों की भांति विवाहलो संज्ञक रचनाएं भी मिलती है। विवाहलो या विवाहलउ, वेलि तथा मंगल शब्द विवाह सूचक रचनाओं के लिए सामान्यतः प्रयुक्त हुए मिलते है। विवाह जीवन का उल्लासपूर्ण पर्व है। जब कि मनुष्य अपनी समस्त प्रसन्नता को, आनन्दाको साकार रूप में एक ही साथ संजोकर एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव करता है।संस्कृतिक रूप में भी यह पर्वबड़े ही आनन्द और मंगल का प्रतीक है। अपनी मांगलिकता के फल स्वरूप ही इस महान संस्कार को वर्ण्य विषय बनाने वाली कृतियां मंगल नाम से अभिहित की गई है। सामान्यतः विवाह एक उत्कृष्ट सामाजिक प्रथा है जिसमें वर और वधू अपने विवेक ब्रह्मचर्य जीवन को समाप्त कर गार्हस्थ में प्रवेश करते है। दोनो के नये सम्बन्ध होते है, नई आत्मीयता और नया साज श्रृंगार जीवन का एक नया पहलू लेकर सामने आ जाते है। विवाह के लिए वर और वधू दोनों पक्षों की ओर से हुई तैयारियां, साज सज्जा और नारियों के मांगलिक गान, धवल मंगल गीत तथा अन्य अनेक प्रसंग इस संस्कार की पवित्रता और उल्लास या आनन्द के द्योतक है।

इस पवित्र प्रसंग को लेकर इसे अपना वर्ण्य विषय बनाने वाली जो कृतियां मिलती है उनके विवाहला, विवाहलो, धवल,मंगल आदि अनेक नाम मिलते है। इनमें धवल और मंगल काव्यों की परंपरा तो बहुत बाद की (१७वीं शताब्दी) की मिलती है परन्तु विवाहला संज्ञक रचनाओं की परंपरा पर्याप्त प्राचीन है। विवाह का प्रारम्भ तो मानव जीवन के आदि काल से ही निश्चित हैपरन्तु इस नाम से लिखी जाने वाली कृतियों की परम्परा अपभ्रंश से ही मिलने लगती है।

आदिकाल में उपलब्ध विवाहला संज्ञक रचनाओं के शिल्प, वस्तु तथा अन्य प्रवृत्तियों में एक मौलिकता मिलती है उनकी मुख्य संवेदना में एक वैचित्र्य है जो जीवन को अनुपम संदेश देता है। बहुधा यों प्रकारान्तर से विवाह के वर्णन तो लगभग सभी चरित काव्यों में या कथा काव्यों में मिल ही जाते है। साथ ही चरित

नायक का विवाह प्रसंग लगभग सभी चरित काव्यों में एक विशेष तथा महत्वपूर्ण अंश रहता है जो बहुधा अन्य रचनाओं में देखने को नहीं मिलता। सामान्यतः प्रत्येक भाषा में विवाह का वर्णन करने वाली अनेक रचनाएं उपलब्ध हो जाती हैं। प्रादेशिक भाषाओं में भी इस साहित्य का पर्याप्त सृजन हो चुका है तथा हो रहा है। बंगला, मराठी, तामिल, तेलगू, आंध्र, कन्नड़ आदि भाषाओं में विवाह मंगल संज्ञक अनेक रचनाएं मिल जाती हैं।

विवाहला संज्ञक रचनाओं की परंपरा अपभ्रंश से ही मिलती है। विवाहलउ वर्दि यों प्रकारान्तर से तत्कालीन उपलब्ध बारहमासा संज्ञक रचनाओं से जुड़े हुए हैं। अपभ्रंश की एक रचना जिनप्रभसूरि विरचित अंतरंग विवाह है। यह छोटा सा विवाह काव्य एक अनूठे विवाह का प्रारम्भ करता है। यह विवाह आध्यात्मिक स्वरूप है। इस काव्य में वसंत राग का भी निर्देश है।[१] अतः विवाह धवल और विवाहला नामक रचनाओं का मूलोद्भव अपभ्रंश की ऐसी ही रचनाओं में निहित है। यह रचना १३वीं शताब्दी की है। इसके पश्चात् विवाह संज्ञक रचनाओं की परंपरा आदिकाल की हिन्दी जैन कृतियों द्वारा परिवर्द्धित हुई है।

इन विवाहलों में तीर्थंकरों के नाम पर अनेक विवाहले मिलते हैं। बहुत से विवाहले जैनाचार्यों के नाम पर भी उपलब्ध होते हैं।

प्रादेशिक भाषाओं में भी १४वीं शताब्दी से विवाहले तथा मंगल संज्ञक रचनाएं मिलती हैं। जिनमें सं० १४८१ का कृष्ण विजय काव्य मालाधार वसु का है जिसकी प्रसिद्धि कृष्ण-मंगल के नाम से हुई है।[२] इसी प्रकार मनसा मंगल चंडीमंगल

१-See preceddings and transactions of the all India Oriental Conference seventeenth session Ahamdabad October-November 1953-Section XIV RajasthanHistory and Culture *

*के अन्तर्गत श्री अगरचंद नाहटा लिखित विवाहलो और मंगल काव्यों की परम्परा शीर्षक पृ० ४१३-४२४।

२- भारतीय साहित्य, जनवरी १९५६ पृ० १४० मंगल काव्य शीर्षक लेख।

शीतला मंगल आदि अनेक रचनाएं १८वीं शताब्दी तक मिलती है और इसी प्रकार मराठी तेलगू आन्ध्र, कन्नड़, गुजराती आदि भाषाओं में मंगल काव्य मिलते है परन्तु उनका प्रारम्भ १७वीं १८वीं शताब्दी ही है।

इधर प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती में अनेक रचनाएं मिली है जिनकी परंपरा बड़ी लम्बी है। इन रचनाओं में जैन और जैनेतर दोनों प्रकार के काव्य हैं जिनकी संख्या १५० तक है और उनमें से अनेक जैसलमेर ग्रन्थ भंडार पाटण भंडार, श्री अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर में सुरक्षित है। इनकी भाषा पुरानी हिन्दी (पुरानी राजस्थानी या जूनी गुजराती है) है यह काव्य परंपरा २०वीं शताब्दी तक सुरक्षित मिलती है।

गुजराती में अधिकतर विवाह काव्य ही लिखे गए हैं। मंगल नहीं धवल संज्ञक रचनाएं १४वीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर १७वीं तक उपलब्ध हैं। धवल या धौल रूप गुजरात की ही देन है। कुछ धवल नामक प्राचीन रचनाएं भी मिलती है। विवाह के अवसर पर मांगलिक गान, तथा उल्लासपूर्ण गीतों के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है।

मंगल काव्यों का प्रारम्भ १६वीं शताब्दी से ही मिलता है। ये काव्य मराठी आदि प्रादेशिक भाषाओं में खूब लिखे गए जो २०वी शताब्दी तक उपलब्ध होता है। राजस्थानी में १६वीं शताब्दी के बाद भी ऐसे मंगल संज्ञक काव्य मिलते है। जिनकी संख्या बहुत बड़ी है।[1] इन काव्यों का विषय वैष्णव धर्म से सम्बन्धित महापुरुषों आदि तथा जैनेतर अन्य सामाजिक रूपों में भी मिलता है। इस प्रकार मंगल और धवल संज्ञक जितनी भी रचनाएं मिलती हैं वे बहुत पुरानी नहीं है। जहां इन रचनाओं के वर्ण्य विषय और शिल्प का प्रश्न है ये रचनाएं एकदम वेलि या विवाहलो संज्ञक रचनाओं से मिलती जुलती है। काव्य रूप में वैभिन्य प्रस्तुत करने के लिए ही इनका नाम अलग रक्खा गया है।

१- भारतीय साहित्यः जनवरी १९५६ पृ० १३९-१६१।

विवाहलो परम्परा के विकास में अपभ्रंशेतर काल या पुरानी हिन्दी की कृतियों का भी बड़ा हाथ है। हिन्दी जैन साहित्य में इस रूप में मिलने वाली जो रचनाएं हैं उनका प्रारम्भ १३वीं शताब्दी से ही हो जाता है। मंगल शब्द १७वीं शताब्दी के पूर्व व्यवहृत नहीं हुआ । अद्यावधि इस काल में जो विवाहलो संज्ञक रचनाएं मिली हैं उनमें दो प्रकार की रचनाएं मिलती हैं:-

१- ऐतिहासिक विवाहले

२- रूपक काव्य

राजस्थान गुजरात में विवाहलो काव्य अधिक उपलब्ध होते हैं। यों बेलि और मंगल की संज्ञाओं से भी काव्य सृजन हुआ है। १६वीं शताब्दी की बेलि क्रिसन रुकमणी और रुकमणी मंगल आदि प्रसिद्ध हैं। बेलि काव्यों के रूप में लगभग छोटे छोटे १५ काव्य उपलब्ध हुए हैं, जो यद्यपि काव्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं परन्तु संख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। लेकिन बेलि काव्यों का प्रतिनिधित्व करने वाला सबसे प्राचीन और महत्व पूर्ण ग्रन्थ बेलिक्रिसन रुकमणी है जो १६वीं शताब्दी से ही प्रारम्भ होता है। बेलि और विवाहलो संज्ञक रचनाओं का शिल्प, कथा रूढ़ियों की वर्णन पद्धति तथा काव्य रूप दोनों में एक ही है।बेलि रचनाएं विवाहलो से पहले की नहीं मिलती।

आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य की विवाहलो संज्ञक रचनाओं का शिल्प उक्त दो प्रकारों के आधार पर ही वर्णित है।एक में महापुरुषों या तीर्थंकरों के क्रियाकलापों को एतिहासिक सूत्रों में बांधकर विवाह वर्णन किया गया है और दूसरे प्रकार के अन्तर्गत रूपक विवाहला काव्य है। इन विवाहों को भी भाव और द्रव्य दो उपविभागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। रूपक विवाहले वही मौलिकता की सृष्टि करते हैं। द्रव्य विवाह का सम्बन्ध लौकिक रूप में,पति पत्नी का वर्णन मिलता है और भाव विवाह में रूपक बांधा जाता है। जैन समाज में दीक्षा ग्रहण करते समय आचार्यों का विधिवत् संयमश्री से विवाह होता है।

दीक्षा को दीक्षा कुमारी तक कहा गया है। संयमश्री या दीक्षाकुमारी के साथ दीक्षित होने वाले का विधिवत् विवाह होता है।ऐसे विवाह आत्मा का आभ्यंतरिक गुणों से सम्बन्ध स्पष्ट करते हैं। अपभ्रंश का जो अतरंग विवाह हैउसमें अंतरंग विवाह का रुपक बांधा गया है।

आध्यात्मिक विवाह का हिन्दी साहित्य में भी वर्णन मिलता है।रुपकात्मक विवाह परम्परा में कबीर का दुलहिन बनकर मंगलगान करना और आध्यात्मिकता में डूब कर प्रियतम से तन मन एक करने को मिलने व श्रृंगार करने का पद प्रसिद्ध है। अतः कबीर के ऐसे रुपक, मीरा के"सखी री मैं तो झुरमुट खेलने जाती" जैसे पदों व आध्यात्मिक विवाहों के मूल में अपभ्रंश के अंतरंग विवाह जैसी ही रचनाएं रही होंगी। आदिकालीन इन काव्यों में प्राचीन राजस्थानी या प्राचीन गुजराती की ऐसी ही एक सुन्दर रचना जिनेश्वर सूरि संयमश्री विवाह वर्णन रास है।

भारतीय साहित्य में विवाहलो परक रचनाओं में मंगल तथा शिवेतरक्षतये आदर्श को स्पष्ट किया है। इसी पूत भावना को प्रश्रय(साहित्य में स्थान) इन्हीं विवाहलो धवल या मंगल संज्ञक रचनाओं द्वारा मिला है। मंगल भावना से जीवन का मंगल सूत्र विवाह की प्रेरित होता है और इस मंगल भावना में मंगलाचरण, नांदी अशीर्वाद आदि प्रशस्तियां भारतीय काव्यों में मिलते हैं।

विवाहलो संज्ञक रचनाएं भी ठीक इसी प्रकार की हैं। विवाह परंपरा पर इस प्रकार की अनेक रचनाएं मिलती हैं। इनमें आध्यात्मिक विवाह की भांति आनन्द मिलने लगता है।

जो भी हो, अद्यावधि इस परंपरा में जितनी कृतियां जैन कवियों द्वारा विरचित हुए हैं उनमें से कुछ प्रमुख रचनाओं का अनुशीलन आगे केपृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है। धवल संज्ञक रचना गीतियों का वर्णन आगे स्तोत्र स्तवन और गीत संज्ञक रचनाओं के अध्याय में किया जायगा। विवाहला संज्ञक रचनाओं की परम्परा और कृतियां स्वतंत्र ग्रन्थ व शोध का विषय है। यहां कतिपय रचनाओं का ही परिचय दिया जा रहा है।

: जिनेश्वर सूरि विवाहलो व रास[1] :

इस कृति के रचनाकार सोममूर्ति है, और इसका रचनाकाल सं० १३३१ के पश्चात् ही लगता है। कवि ने इस विवाहलो काव्य की रचना अपने गुरु भाई जिनेश्वर सूरि के शिष्य संयम या दीक्षा वर्णन के लिए की है।सोममूर्ति का जीवन चरित्र, कवि एवं ऐतिहासिक पुरुष के रूप में कई स्थलों पर विस्तार से मिलता है[2] अन्य ग्रन्थों में भी संक्षिप्त संकेत मिलते है। प्रस्तुत रचना प्रकाशित है। मुनिजिनविजय जी ने पहले इसे अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित किया और इसके पश्चात् श्री अगरचन्द नाहटा ने इसे अपने ग्रन्थ ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में स्थान दिया है[3] इसकी एक प्रति श्री अभयजैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है। कृति का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करने पर भी महत्व स्पष्ट हो जाता है।

जैसा कि प्रस्तुत रचना के नाम से ही ज्ञात हो जाता है कि यह दीक्षा के समय पर रची हुई जिनेश्वर सूरि के सम्बन्ध की कृति है।नेमिचन्द भंडारी के पुत्र ने जिसका दीक्षा का नाम जिनेश्वरसूरि व बचपन कानाम अंबड था, बाल्यावस्था में ही संयमश्री से विवाह करने का मां से निवेदन किया। मां ने तपस्या के कष्ट समझाये, पर बालक अडिग रहा और अन्त में धूमधाम से संयमश्री से नायक का विवाह सम्पन्न हुआ। दीक्षोत्सव भी भंडारी ने सोत्साह पूरा किया।

संयमश्री के विवाह की परम्परा आज भी सुरक्षित मिलती है। वीतरागी और निस्पृह जैन मुनियों के दीक्षा ग्रहण करने पर श्रावक लय ताल नृत्य क्रीड़ा रास आदि करते थे। संयमश्री से विवाह करने पर मुनि काम क्रोध मोहादि पर विजय

१- देखिए- जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय: श्रीमुनिजिनविजय पृ० २२४-२२७।
२- जैन युग वर्ष २ पृ० १६४।
३- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह- श्री अगर चन्द भंवरलाल नाहटा पृ० १०८।

प्राप्त करते थे। कथा वस्तु और शिल्प की दृष्टि से रचना में मौलिकता मिलती है।कृति कलात्मक है और छोटी होते हुए भी अपने में रसपूर्ण है। वैष्णव सम्प्रदाय के किसी कवि ने श्रृंगार और शम का इस प्रकार समन्वय उपस्थित नहीं किया।

प्रारम्भ में ही कवि भक्ति से गुरु का चिन्तन करके पिता श्री नेमिचन्द और माता लखिमादेवी का कलात्मक परिचय देता है:-

कंठ दसण कला केलि आवासु महुरवाणी अमिअं भरंतो
रैहए तत्थ भण्डारिओ पुन्नि मा चंद जिम नेमिचंदो
सयल जण नयण आणंद अमिय-छड़ा रूप लावण्य सोहाग चंद
पणइणी लखमिणी तासु वक्खणि पवर गुण गण रयण राग रखाणि

पदुमांड की अलंकारिता में यमक श्लेष और रूपकों का आयोजन उल्लेखनीय है। बालक अंबड का मां का संयमश्री से विवाह के लिए हठ तथा मां का उसको संयम व तप की दुर्धरता और उसकी अवस्था की शैशवता समझाना अत्यन्त सरस और काव्यात्मक बन पड़ा है और बालक का संयम की कठिनाइयों को जानते हुए भी पुनः दृढ़ता से उत्तर देना आदि स्थल दृष्टव्य है:-

<u>अंबड-</u> इह संसारु दुहइ भंडारु ता हउं मेल्हिसु अतिहि असारु
परणिसु संजम सिरिवर नारी माइ माइए मज्झु मणह पियारी

<u>मां की उक्ति-</u>

तुहु नवि जाणइ बालउ भोलउ, ब्रह्मव्रत होइस्स बरउ दुहेलउ
मेरुपरे बिणु निय भुय दंडिहि जलहि तरेउ अप्पणि बाहहि
हिंडेवउ असिधारह उप्परि लोहचणा चावेवा इणि परि
ता तुह रहि घर कहियइ लागि, अंगुइ भावइ बच्छ तु मांगि[1]

<u>अंबड-</u> किंपि न भावइ विणु संजम सिरि, माइ भणइ जं रुच्चइ तं करि
कुंवर भणइ दुक्करह विणु नहु छलियइ कलिकालु

१- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह: श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पृ० ३७७।

और आरात चढ़ चली, लोगों ने आध्यात्मिक संयमदेवी को श्रृंगारा। गीत और बधावे होने लगे। भाषा की सरलता प्रवाह शब्द चयन और अनुप्रासात्मक छटा के कतिपय उदाहरण स्मृतव्य हैं:-

(१) आवहि आवहि रंगभरि पंच महव्वय राय,
गायहि गायहि महुरस्सर अट्ठय पवयण माय।

(२) कुमर चल्लिउ कुमर चल्लिउ गरुय विच्छड्डि।

(३) कुसलिहि खेमहि जान उत्त पहुतिउ खेउ मज्झरि।

(४) अह सयल नाण समद्दु अवगाहए वीर प्रभु गणि (निय) गुरु पसाये

(५) नाण चरण दंसण जुवइ केलि विलासु पहाणु
साउ राउ सोवन्नितयइ जिनेश्वरसूरि जगि भाणु

इस प्रकार नायक निर्वेद का उपभोक्ता बन जाता है। रचना दोहा, चौपाई वस्तु, और झूलना छंदों में लिखी गई है।वस्तु छंद तो पूर्व परिचित छंद है पर झूलणा जैन साहित्य में कभी कभी ही प्रयुक्त होता है। झूलणा के प्रत्येक चरण में ३७ मात्रायें होती हैं तथा २०, १७ पर यति होती है। वस्तु छंद रास रचनाओं में अधिकतर इससे पूर्व भी प्रयुक्त हुआ है[१] कथा का विभाजन घत्ता में हुआ है। अलंकारों की दृष्टि से एक नई बात इसरचना में यह है कि संयपर्दान में अंत्यानुप्रास नहीं है इसका प्रयोग सम्भवतः आगे जाकर ही हुआ है।

रास की भाषा सरल, काव्यमयता तथा जन भाषा के गुणों से युक्त है। मुनिजिनविजयजी लिखते हैं कि: "इस धार्मिक विवाह की मनोहर कृति की रचना चरित नायक सूरि के शिष्य श्री सोममूर्ति गणि ने उनके निर्माण के पश्चात् की है। यह १४वीं शताब्दी के प्रारम्भ की भाषा का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करती है।[२]

१- भरतेश्वर बाहुबली रास: शालिभद्रसूरिकृत, सम्पादित संस्करण श्री लालचंद भगवान गांधी में प्रयुक्त छन्द।

२- ऐतिहासिक जैन गुर्जर काव्य संचय: मुनि जिनविजय- पृ० ११५।

कवि की यह रचना विवाहले के अन्तर्गत आती है। विवाहले शीर्षक से हिन्दी जैन साहित्य में आदिकालीन अनेक रचनाएं मिलती हैं। कवि ने यह रास रमण और क्रीड़ा के लिए लिखा है। रेवंतगिरि रास की भांति अन्त में सोममूर्ति ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया है।

एह विवाहलउ जे पढहि दियहि खेलाखेलिय रंग भरि

ताह जिणेसर सूरि सुपसन्नु इम भणइ भत्ति गणि सोममुनी

इस प्रकार जिनेश्वर सूरि का चरित्र वर्णन इस कृति में रास रूप में वर्णित किया गया है। रचना छोटी और सरस है और प्रवृत्तियों की दृष्टि से अपने ही प्रकार की है।

:जिनोदयसूरि विवाहलउ:[1]

इ०००४०७०४

विवाहलो संज्ञक रचनाओं की परम्परा के पश्चात् प्राप्त प्रतियों में से कुछ विवाहलो का परिचय लेना भी आवश्यक है । यों अन्य काव्य रूपकों के रूप में वर्णित कुछ विवाहलों के शिल्प का विवेचन प्रस्तुत करने वाली कुछ रचनाओं पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है जिनमें सं० १३३१ का सोममूर्ति द्वारा विरचित जिनेश्वर सूरि विवाह वर्णन रास[2] तथा सं० १३९० की सारमूर्ति की प्रसिद्ध रचना जिनोदयसूरि पट्टाभिषेक रास है।[3] रास रचनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उस अध्याय में हमने इन रचनाओं पर विचार किया। साथ ही विवाहोत्सव में गाई जाने वाली रचनाओं में गीत या धवल मंगल संज्ञक रचनाओं पर भी आगे प्रकाश डाला जायगा। इन रचनाओं में १३वीं शताब्दी के शाहरयण और भत्तउ द्वारा विरचित जिनपति सूरि धवल गीत है। ये सभी रचनायें प्रकाशित हैं[4]

विवाहलो में पट्टाभिषेक रास या दीक्षा विवाह वर्णन रास आदि संज्ञक कृतियां भी आ जाती है क्योंकि इनमें भी कवि लौकिक अलौकिक रूप में बहुधा उन्हीं क्रिया कलापों पर प्रकाश डालता है जो विवाहलो संज्ञकरचनाओं में होता है आध्यात्मिक विवाह के रूपकात्मक चित्र इनमें प्रस्तुत किए जाते हैं। कुछ एक कृतियों में मारविजय के दृश्य तथा इसके उपरान्त नायक का संयम कुमारी से विधिवत् पाणिग्रहण आदि वर्णनों के चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। ऐसे काव्यों में काव्य की दृष्टि से भी विशेष निखार आ गया है, उदाहरणार्थ फागु संज्ञक रचनाओं के अध्याय में देवरत्न सूरि फाग इसी प्रकार की रचना है। उक्त रचनाओं के शिल्प में तथा विवाहलो

१- देखिए ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ३९०-द्वारा श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा।
२- वही, ग्रन्थ पृ० ३७७
३- वही ग्रन्थ, पृ० ३८४
४- वही ग्रन्थ, पृ० ६ से १०।

संज्ञक रचनाओं के शिल्प में बहुत अधिक साम्य है परन्तु केवल नाम में अन्तर है बहुत सम्भव है कि कवियों ने विविधता प्रस्तुत करने के लिए अथवा इन आध्यात्मिक विवाहों को रास का रूप देने या गीत का रूप देने और अधिक व्यापक बनाने के उद्देश्य से भी अन्य काव्य रूपों की संज्ञा से अभिहित किया हो। जो भी हो, इस सम्बन्ध में स्थिति संदिग्ध नहीं है।

विवाहलो संज्ञक रचनाओं के नाम से अभिहित की जाने वाली कृतियों में जिनोदयसूरि विवाहलउ एक महत्वपूर्ण रचना है। कृति का रचनाकाल सं० १४३२ है और रचनाकार मेरुनन्दन। रचना जिनोदय सूरि के दीक्षा-विवाह जन्य-साधना को लेकर लिखी गई है। जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है। यह रचना प्रकाशित है[1]। जिनोदय सूरि का पूर्व नाम सोमप्रभ था। पालनपुर में जिनकुशल सूरि जैसे जैनाचार्य के आगमन पर बालक सोमप्रभ या समरा ने अपनी मां की गोद में बैठे मुनि जी से दीक्षा कुमारी से विवाह करने की प्रार्थना की। मां ने बहुत समझाया, संयम पालन की दुष्करता और उसकी लघ्वावस्था बताई, पर बालक न माना और अन्त में उसका आध्यात्मिक विवाह रचा दिया गया। उत्सव हुए लोगों ने जय जयकार किया। याचक लोग मंगलगान करने लगे, वादित्र बजने लगे अनेक सुन्दर रास हुए, मृदु भाषिणी कुलांगनाओं ने मंगल गीत गाए और इस प्रकार जिनोदय सूरि का दीक्षा कुमारी के साथ पाणिग्रहण उत्सव विधिवत् सम्पन्न हुआ। संक्षेप में रचना की यही कथा वस्तु है।

विवाहलो के प्रारम्भ में ही कवि अपने रचना उद्देश्य का परिचय देता है-

सयल मण संछिय काम कुम्भोवमं, पास पय कमलु पणमेवि भत्तिए।

सुगुरु जिणउदयसूरि करिसु वीवाहलउ सहिय उवाहलउ पुन्न चित्तिए[2]।।

कवि बालक सोमप्रभ के शैशव का वर्णन बड़ी कुशलता से करता है। भाषा शैली

१- देखिए: ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह- पृ० ३९०

२- वही, पृ० ३९०।

आलंकारिक और प्रासादिक है। एक उदाहरण देखिए:-

समरिगो भमर जिम रमइ निय सयण मणि, कमलवणि दिणि रयणिवहु पयारं
लाये लोयण दले अभिर्ड वरसंतउ वलए वुद्ध जिम बीय चन्दो
निच्चु नव नव कला धरइ गुण निम्मला ललिय लावन्न लोइगुग कंदो[१]

मां के वात्सल्य भरे आग्रह, बाल हठ, दीक्षा कुमारी की अलौकिक रूप लावण्य और दीक्षा की तितिक्षा आदि सब के बड़े सुन्दर चित्र कवि ने उरेहे हैं। मां बार बार अपने प्रिय वत्स को सुन्दर राजकुमारी से विवाह कराने का लालच देती है और पांचों प्रकार के भोग भोगने के लिए कहती है। कवि ने इन्हीं वर्णनों को विविध उक्तियों से श्रृंखलाबद्ध किया है।

माइ भणइ निसुणि वच्छ भोलिम घणी, तउं नवि जाणए तासु सार
रूपि न रीजए, मोहिन भीजए, लेहिली जलवीजइ अपार।।
लोभि न राचए मयणि न माचए, काचए चित्ति सा परिहरए।
अवरनारि अवलोयणि रूसए, आपण पई सयि सत्त वरए।।

हसिय अनेरीय वात विपरीत, तासु तणी छंद घणी सचउ।
तेण कल कमल दल कोमल हथि, बाध मनाउलिविसितउं।
रूपि अनोपम उत्तम वंश, परणाविसु वर नारि हउं।।
नव नव भंगिहिं पंच पयार, भोगिवि भोग वच्छ कुमार[२]

आध्यात्मिक विवाह का चित्रात्मक वर्णन कवि के भाषा-कौशल वाणी की विदग्धता, पद लालित्य, अर्थ गौरव और विच्छित्ति के साथ साथ आध्यात्मिक रस की सृष्टि करता है। निम्नांकित उद्धरण कबीर के दुल्हिन गावउ मंगलाचार और मीरा के "सखि री मैं तो गिरधर के रंगराती ---- पंचरंग चोला पहन सखी मैं झुरमुट खेलन जाती, झुरमुट मैं मेरा पिया मिलेगा। खोल अडंबर गाती" जैसे पदों में जिस आध्यात्मिक आनन्द का रहस्य छिपा है वैसा ही मधुर रस जिनोदयसूरि विवाहलों के अधोकित उद्धरण में निष्पन्न हुआ है। दीक्षाकुमारी का

१- वही, पृ० ३९१ पद्य ७

सौन्दर्य वर्णन, दूल्हा का पाणिग्रहण करने का उत्साह बराव की साज सज्जा आदि सभी चित्र दृष्टव्य है:-

> मेलिय साजण चालइ नियपुरे, धवल धुरन्धर जोत्रिय रहवरे।
> चालु चालु रत्न सही वेगहिं सामहि, धारल नन्दणवर परिणय महि।।
> इम पमणतिय सुललिय सुन्दरी, गायईं महुर सरि गीयह रिस भरि
> क्रमि क्रमि जान पहुतिय सुहदिणि, भीमपली पुरे गुर हरखिउ मणि
> अहा सिरि वीर जिणिदंह मंदरि, मंडिय वेहलि नदिसुवा सरि
> तरल तुरंगमि चडियउ लाडणु, मागण वंछिय दास दियइ घणु
>
> --- --- ---
>
> आविउ जिणहरि वरु मन हरवउ, दीख कुमारिय सउं हथ लेवउ।
>
> (पद २३-२६)

पूरी रचना घात(धत्ता) भास में विभक्त कर दी गई है। कवि ने वस्तु छंदका कईवार प्रयोग किया है।रचना की भाषा अइलंकारिक वाक्य छोटे और सारपूर्ण है। शब्दावली कोमल है।जन भाषा काव्य होने से रचना में मिठास का समन्वय होना स्वाभाविक है। संघ वर्णन, दीक्षा समारोह, संयमश्री विवाह और संसार त्याग इस प्रकार की रचनाओं के विषय रहे है।

कवि की अलंकारिक शैली तथा पद्धति उल्लेखनीय है:-

<u>घात:-</u>

> अत्थि गुज्जर अत्थि गुज्जर देसु सुविसालु
> जहि पल्लण नयरो अलहि जैण नर रयणिमंडिउ
> तहि निवसइ साहु-वरो खेमालु गुण गणि अखंडिउ
> तसु मंदिर धारल उअरे उपन्नउ सुकुमारू
> समरनामि सो समर जिम वद्धइ रुप अपारू (८)

रचना की उपयोगिता काव्य बंध की दृष्टि से स्पष्ट होती है।

छंदों के प्रयोग का वैज्ञानिक वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:-

पद १ से ७ तक फूलणा छंद कुल मात्रा ३७ (कुकुभ)

८ से २१,२२,३३,३९,३४ और ४० घात के अन्तर्गत वर्णित वस्तु छंद।

१ से २० तक - झूलणा छंद।

२४ से २८ तक -पादाकुल १६ मात्राओं का।

३० से ४४- शुद्ध ३७ मात्राओं का झूलणा छंद वर्णित है।

इस प्रकार झूलणा छंद का प्रयोग अंबदेव सूरि ने अपनी प्रसिद्ध रचना समरा रासु में भी किया है।[1] गुजराती भाषा में १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नरसी मेहता ने भी इस छंद का वर्णन किया है। भल्हउ के जिनपति सूरिधवल गीत में भी यह छंदमिलता है।[2] मेरुनन्दन के इस छंद का एक उदाहरण देखिए:-

अत्थि गुज्जर धरा सुन्दरी सुन्दरे, उअरे रयण हारो वमार्ण
लच्छि केलि हरं नयरं पल्हणपुर, सुरपुर जेम सिद्धाभिहार्ण (१)

--- --- ---

माई भणइ निसुणि वच्छमोलिम घणो, तउं नवि जाणए ताहु सार
रुपि न रीभए मोहिम भीजए दोहिलि जाल बीजइ अपार
लोभिन राजए मयणि न मावए, कावए विति सा परिहरए
अवर नारी अवलोयणी स्मए, आपण पई सयिं सजवरए (१४-१५)

--- --- ---

कटरि गुण संचियं कटरि इंद्रिजय, कटरि संवेग निव्वेय रंग
बापु देसण कला बापु मइ निम्मला, बापु लीला कसायाण भंग
तरस पह गुण गणं जेम तारायणं, कहिउ किम सक्कई एक जीह
पार न पावए सारदा देवता, सहस मुहिजणइ जइ रत्ति दीह(४१)

भाषा की दृष्टि से रचना में मध्यकालीन राजस्थानी की प्रवृत्ति स्पष्ट है। साथ ही उत्तर कालीन स्थिति परिलक्षित होती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह रचना महत्वपूर्ण है। कुल चवालीस छंदों में लिखी

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह- पृ० ३४।

२- ऐ०जै० काव्य संग्रह पृ० ८-९।

हुई इस रचना में कवि ने भीमपल्लीपुर, गूजर, सिंधू मेवाड़ आदि प्रमुख प्रदेशों और जिनोदयसूरि, जिनचन्द्र सूरि, छत्रपाल, पालनपुर आदि ऐतिहासिक स्थानों और व्यक्तियों का वर्णन किया है।

सामाजिक दृष्टि से रचना में तत्कालीन विवाहों का वर्णन, बारात उसकी साज सज्जा दूल्हा आदि की सज्जा, तत्कालीन सामाजिक प्रथाएं उत्सवों में पर्याप्त अर्थव्यय करना, धार्मिक प्रवृत्ति, हाथ घोड़े सैन्य आदि सभी का वर्णन मिल जाता है। रचना के अन्त में कवि के रूप में कृति की मुख्य संवेदना इस प्रकार स्पष्ट करता है:-

एहुगुरु राय वीवाहलउ जे पढ़इ, जे सुणइ जे बुणइ जे दियंति।

उभय लोगी विलसई भण वांछियामेरूनंदन गणि इम भणंति।।

इस प्रकार रचना पर्याप्त सरल और तत्कालीन जन भाषा काव्य का प्रतिनिधत्व करती है। प्रस्तुत कृति का उक्त रूपों में महत्व स्पष्ट हो जाता है।

---

४ नेमिनाथ विवाहलउ ४

१५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विवाहलो संज्ञक रचनाओं में कवि जयसागर द्वारा लिखित एक रचना नेमिनाथ विवाहलउ मिलती है। प्रस्तुत रचना अप्रकाशित है तथा अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर में संगृहीत है। जयसागर १५वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध में बड़े प्रसिद्ध जैन कवि हुए है जिन्होंने विविध विषयक अनेक काव्य रूपों में रचनाए की है।

प्रस्तुत विवाहले में कवि ने नेमिनाथ और राजुल के पाणिग्रहण विछोह का वर्णन किया है। प्रारम्भ में कवि नेमिनाथ के वंश परिवार का विस्तार में परिचय देता है। रचना की भाषा सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। पूरी रचना २६ छंदों में पूरी हुई है।

कविवेलि या विवाहलो की मंगल सूचक परम्परा का परिचय प्रारम्भ में ही दे देता है:-

जादव कुल सिर तिलउए, गंगाजल निरमल गुण निलउए
लोयण अमिय निवेसुए, हउं गाइसु नेमि जिणेसुए
सोरिय पुरि उछाहुए, सिरि समुद्र विजय नरनाहुए
सिवा देवी तसु वर घरिण घर मंडणि माण ठमण हरिणि (१-२)

रूप वर्णन, नखशिख वर्णन आदि कवि ने साधारण ही किए हैं। रचना में काव्यात्मकता अधिक नहीं है परन्तु भाषा अत्यन्त सरल है तथा शब्द चयन माधुर्य पूर्ण है। कुछ उदाहरण स्वरूप देखे जा सकते है:-

<u>नेमिनाथ का रूप वर्णन-</u>

नेमि नाम अभिरामु ए, सो बाधइ कुंयर कि कामु ए
रूप सुधारसिरि भरिय, क्रमि जोबन वय वनि संचरिय
चवलउ मयंउ बहुयपरे, मुहि लागउ बोलइ सुहिर सरे
हरि करि सायरि जो वसिय जसु लंछणि सोहइ सोहसिय
बंभि रंभि रहि सागलउ ए, बहु बुद्धि कला जल वाहलउ ए
गुणगण मणि भंडारु ए गंभीरिम धीरिम धारु ए (४-६)

दुल्हा तथा बारात की सज्जा का वर्णन -

हिव यादव सविगह गहिया ए, गुरुयइ रिधि समधि सामहीयाए

गुडिया गयवर अति घणाए, गुण गायइ यण जिण तणाए

तिवल तूर तडयडि ए पगि पगि पट्ट नाटक पाटडिए

वर सिंगारिउ रथि चडडिउए, परणेवा उछवि अति चडुए

इसी भाँति राजुल के श्रृंगार वर्णन में कवि का मन पर्याप्त रमा है। सरल भाषा में कवि ने राजुल के सौन्दर्य का वर्णन किया है। श्रृंगार के क्रोड़ में कवि धीरे धीरे शान्त रस का परिपाक करता है। विरक्त नेमिनाथ पशुओं की कारुण्य घटना से प्रभावित हो चले जाते हैं। भाषा की सरलता और प्रवाह सुषमा राजुल के विलाप में सजल हो उठती है। कुछ पंक्तियाँ देखिए:-

मइ नेहि रचि राजलए, नवि माञ्चइ रायइ साविलए

अंत सु प्रति मन रीजुए, इहु जाणे अवरिवी जू ए

तडविहू सो तुह मनि वसइए, तसु नरुम गुणीतनु उल्हसइए

जीहा तसु गुणि गुणि रमए, जउं सउं इकि मानिय मूढिमए

सहिय तिवारिय बोलतिए, जम सगलउ तनमय देखतिय

नेमि ध्यानि निश्चल हियए, राजीमति कर दिय दिन रतिए

अह सावण हिय छट्टिट जिए सो देव दयालुय व्रत लियए

आउ अमावधि किवय कर केवल वरदंसण नाणधर (१८-२१)

- जिन चंद सूरि वीवाहलउ[१] -

जैसलमेर दुर्ग के ताड़पत्रीय भंडार से यह प्रति मिली है। रचना अप्रकाशित है। इसके रचयिता मुनि सहजज्ञान है। रचना का मध्यपत्र त्रुटित है। पूरी रचना ३५ छंदों में समाप्त हुई है। कवि ने रचना का विभाजन भास और वस्तु संज्ञक शब्दों से किया है। प्रारम्भ के १ और २ छंद नहीं मिलते। प्रति १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की ही लगती है। कवि का समय सं० १४७१ है।

---

१ देखिए: ताड़पत्रीय भंडार जैसलमेर दुर्ग, पत्रांक ३४४-४५-४६।

प्रस्तुत विवाहलउ की कथा वस्तु संयमश्री सेविवाह करने की ही है जिसमें विशाल संघ निकालने का वर्णन मिलता है। संघ सज्जा और लोगों का उत्साह मुनिजिनचन्द्रसूरि के संयमकुमारी परिणय का चित्र प्रस्तुत करते हैं। भाषा शब्द चयन सरल तथा प्रवाहपूर्ण है संघ सज्जा का वर्णन की अलंकारिकता देखिए:-

कमि कमि चउविह संघसउ हल्ल कल्लोलहि जंबु
पहुतउ संघवइ तहिं नयरि कुसुमाणइ विहसंबु
जिम जिम केल्हउ मंति तहिं पेखइ संघु अथाहु
तिम तिम वाधय तासु मणि जात्र करेवि उच्छाहु

--- --- ---

ठामिहि ठामिहि संघतहि, लोय मिलंति अपार
बाजइबाजइ ढोल अनुपंम सबद सविचार
दीसइ दीसइ पाइ जण, रहवर हयवर थाट
कांपइ कांपइ बइरियण अवह वहावह वाट

रचना शैली पूर्ण आलंकारिक है। बच्चे को माँ संयमश्री की दुर्निवारता तथा कष्ट पूर्ण स्थिति और उसकी कोमलता का परिज्ञान कराती है-

खिव जणणि पारवि गंहुण पभणेइ अवर वयणं बवो मोलि भाय
माइ वय गहणु छउ पभणिय नंदणे बहुयभणि रवि जंपेइ मायां
भरउं तुह मुह कमल वत्स उत्संगि बइसि वलि कीसु तुह लोयणाणं
नयण सलूणड़ा मोलिया वाव मोलवउ वयण इहु किम कहेवि
महुमणि तुह जिम वहडए आस होवि हउं अम्ह कुल रयणु दीवो
निय जणणि वयणु रुयड़ा निसुणि वत्स वेसु विनिवाड हउं तुवफलाई
मुंकवडा अणुवास विवाम देउसु लाडणं विविह सुख ठाई
सील सोहसुम लावण्य गुण मालिया, चंद मुही मृग लोयणीय
भमर भोलडिय रूयवर वालिया परणाविसु तुह रंग भरे
वंद किरणेहि किउ अहव कप्पूरि किउ अहव अमियेण किउ जणणिमणु
वासु किरि जेण सा भोलावइ बहुपरे विविह वयणेहि अय कोमले ।हिं(१३-१८)

इस प्रकार रचनाकार ने भास और वस्तु में काव्य को विभक्त करके पूरे विवाह की कथा वस्तु लिखी है।

रचना की भाषा सरस है। कवि ने वस्तु छंद का प्रयोग किया है।काव्यात्मक प्रवाह भाषा-जन्य-सरलता और आलंकारिता सेरचना का महत्व स्पष्ट हो जाता है। कथा शिल्प की दृष्टि से रचना साधारण है। शिल्प वही प्राचीन ही है।वर्णन पद्धति सरल और प्रेक्षणीय है।

: सुमतिसाधुसूरि वीवाहलो [1]:

यह रचना कवि लावण्य समय द्वारा विरचित है।रचना में कवि ने भी रचना समय तथा स्थल का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु इसकी भाषा और काव्य को देखते हुए ऐसा लगता है कि यह रचना १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की है। सुमतिसाधु सूरि की यह रचना भी पूर्व उल्लेखित रचनाओं की भांति विवाहला शिल्प की है तथा कवि ने इसका वर्ण्य विषय " एक बालक का वैराग्य श्री की ओर आकर्षित होकर संयमश्री के साथ पाणिग्रहण" ही रखा है।

कवि ने रचना का प्रारम्भ एक अनूठे स्वप्न से किया है। जिसका वह संकेत करता है। रचना में मेवाड़ के जावर नगर के गजपतिशाह तथा उसकी स्त्री संपूरी देवी का वर्णन है। प्रारम्भ में ही कवि ने शाह की पत्नी को आये हुए स्वप्न का वर्णन किया है:-

लहिय सुपन सोहामणउ जागीउ बीनवि नाह रे

नापउं वेडुंजि आइड कीजइ निरमल गात्ररे

कवि ने स्वप्न आने का तात्पर्यपुत्र होना स्पष्ट किया और आगे पुत्र जन्म के वात्सल्य का सुन्दर वर्णन किया है। ५ वर्ष का बालक अध्ययनशाला में प्रेषित

१- ऐतिहासिक रास संग्रह: भाग १ संशोधक विजयधर्म सूरि (१९२०)

कर दिया गया वहां उसनेरत्नशेखर सूरि जैनाचार्य का दर्शन किया और उनके नित्य प्रति के उपदेशों के प्रभाव से बालक के हृदय में दीक्षा लेने का भाव जाग्रत हुआ और बार बार उसने "दीक्षा कन्या मईवरी ए" की रट लगा दी।

बालक विजयी हुआ।अनेक स्थानों से आये विविध संघों ने उसका स्वागत समारोह किया। नारियों के रासगान, अनेक वाद्यों सहित हुए तथा मांगलिक उत्सव सम्पन्न किए गए कवि के काव्य का एक उदाहरण देखिए। कवि ने दीक्षा महोत्सव का छटादार वर्णन किया है।भाषा की सरसता तथा प्रवाहात्मकता देखिए:

नयराजुकुंवर परिणिसिइ ए, परिणिइ संयम नारि हु
चउरी गूढर ताडिया ए, तलिया तोरण चंग हु
माहाजन सहू जीमाडीइ ए मंदिर मोटउ जंग हु
कुंवर हिव सिणगारिइए मस्तक मरइ सूंप हु
बांहे बहिरखा ए, दीसइ रूअडलउ रूप हु
कडि नवरंग पछेवडउ ए, ओढणि आछउ चीर हुं

तत्कालीन सामाजिक प्रथाओं, वैवाहिक मांगलिक उत्सवों, तथा संयमश्री के वरण में बालक का उत्साह चित्रात्मक रूप में दिखाई पड़ता है। भाषा की सरलता और शब्दों का चयन प्रवाहपूर्ण है। कुछ उद्धरण देखिए:

सार तुरंगम आणिउ ए, सहित बावन वीर हु
कामिणि मुखि मंगल भणइ ए भट्ट भणइ बहु छंदहु
लूण उतारइ बहिनडी ए, कुंअर अति आनन्द हु
वर पोसालइ आविउए,दुखिय गया सवि दूरि हु
श्री रत्नशेखर सूरि वंदिया ए, सफल मनोरथ पूरि हु

कवि का वर्णन अलंकारिक है। विविध आलंकारिक वर्णनों में कवि की यमक की छटा भी द्रष्टव्य है।एक उदाहरण अलम् होगा:-

नव नविय वाणिहि, मति विनषिहिं हियइ हरिष घणउघरी
मई पक चित्तिहि करीअ भतिहि अंगि आलस पहिहरी
जा सात सायर वर दिवायर गयणि रोहिणी चंदलु
तां प अनुपम, सुगुरु चरितउ जयउ जगि वीवाहलु

वर्णन की अनुप्रासिकता स्पष्ट है। रचना आलंकारिक तथा गेय है। भाषा सरल है। रचना निर्वेदान्त है। इसी प्रकार की प्रवृत्तियों वाली और भी रचनाएं उपलब्ध होती हैं, जिनमें आध्यात्मिक विवाहलों का सफल वर्णन मिलता है।काव्य की दृष्टि से भी विवाहलो संज्ञक रचनायेंमहत्वपूर्ण हैं।

॥ ख ॥

॥ पवाड़ा काव्य ॥

पवाड़ा काव्य

पवाड़ों की परम्परा का इतिहास पर्याप्त प्राचीन लगता है। प्राचीन रचनाओं में जिस प्रकार रास फागु, चौपई संधि ,प्रबन्ध संज्ञक रचनाएं मिलती हैं, उनमें पवाड़ो भी वैसा ही एक काव्य प्रकार है। यों पवाड़ो चरितमूलक काव्यों लिए ही प्रयुक्त होता है परन्तु आगे चलकर इसमें प्रशस्तियों, प्रबन्ध काव्यों, वीरों के पराक्रम तथा कौशल सूचक विषयों का भी समावेश हो गया। पवाड़ो की परम्परा का उद्भव आदिकाल ही है।यों संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में चरितमूलक काव्य तो अनेक मिलते हैं परन्तु पवाड़ा नाम से स्वतंत्र रूप में कोई रचना नहीं मिलती। पवाड़ा संज्ञक एक सबसे प्राचीन रचना सं० १४२७ की एक जैनतर कवि असाइत की मानी गई है।[1] इसी प्रकार की एक रचना सदय वत्स चरित मिलती है जो पवाड़ो तो नहीं है परन्तु चरितमूलक रचना है पर इस रचना का भी पवाड़ो की परम्परा में विशेषयोग नहीं। वस्तुतः इन दोनों कृतियों के काल ही ठीक से निर्धारित नहीं हो पाये हैं। ऐसी स्थिति में सं० १४८५ में रचित जैन कवि हीरानंदसूर द्वारा विरचित रचना विद्या विलास पवाडो ही इस परम्परा की प्रारम्भिक रचना कही जा सकती है।यों सं० १४५३ में विरचित हरिचन्द पुराणकथा के प्रारम्भ में दो बार पवडो शब्द का उल्लेख मिलता है।[2] परन्तु पवडो शब्द का अर्थ प्रकट भी होता है या ऐसे ही कोईऔर अर्थ भी किया जा सकता है। अतः पवडो शब्द पवाडो के एक दम निकट नहीं लगता है। इसी प्रकार कान्हड दे प्रबन्ध, वैतसी का रास, रुक्मणी मंगल आदि में भी पवाडो शब्द मिलता है परन्तु इनसे पवाडो संज्ञक रचनाओं की परम्परा के विकास में कोई योग नहीं मिलता।

१- आपणा कविओः श्री के०का० शास्त्री।पृ० २८५

२- कल्पना अगस्त अक्टूबर १९५०, पृ० १२१।

(अ) बुधि बुद्धि मति देकर करउ पवाउ
ज्यूं बुरि पवडो हरिचंद राउ

(ब) सत हरचंद पवडो संसार।

१५वीं शताब्दी से हिन्दी में पवाडो की परम्परा में सर्व प्रथम रचना विद्या विलास पवाडो ही है यद्यपि १५वीं शताब्दी में अधिक संख्या वाली रचनाएं इस काल में नहीं मिलतीं, परन्तु इससे परवर्ती काल में इस परम्परा में पवाडो संज्ञक अनेक रचनाएं मिलती हैं। १६वीं शताब्दीमें जैन कवि ज्ञानचन्द द्वारा रचित बंकचूल पवाडो है, जिसकी रचना सं० १५६५ में काठियावाड़ में हुई[१]।

१७वीं शताब्दी में राजस्थानी में लिखे पाबूजी के पवाडे प्रसिद्ध हैं।१८वीं शताब्दी में पवाड़ो की परम्परा में असाधारण संख्या में योग देने वाला मराठी साहित्य है, जिसमें शिवाजी केक समय में ही अनेकों पवाड़े लिखे गए जिनकी संख्या लगभग ३०० है। इनमें अधिकांश गेय वीर काव्य है[२] शिवाकाल से साहू काल तक के सात पेशवा काल के १५० और बाकी १८०० ई० के बाद मिलते हैं, जिनमें अज्ञान दास का अफजलखां वध, और तुलसीदास का तानाजी मालसुरे का पवाड़ा, बहुत प्रसिद्ध है।[३] वस्तुतः मराठी भाषा में भी शिवाजी के पहले पवाड़े प्राप्त नहीं थे। इस प्रकार प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती से प्रारम्भ कर यह परम्परा सम्पन्न रूप में सुरक्षित मिलती है। पवाडो के स्वरूप की रचा देवताओं की स्तुति प्रशस्ति के रूप में रिगवेद से ही प्रारम्भ हो जाती है परन्तु परवर्ती ग्रन्थों में पवाड़ा किसी विषय विशेष के रूप में रूढ़ नहीं थे। अतः यह स्पष्ट है कि पवाडो की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और उसके वर्ण्य विषयों में भी अनेक रूपों में परिवर्तन परिलक्षित होता है।

१- कल्पना अगस्त अक्टूबर १९५०-श्याम भणइ कुणि पर कई पव्वाडउ परबंध
बंकचूलरा कीसिउ एक चरित परिवऊ
(अ) बंकचूल किय वणिवू पव्वडउ परबंध
इति बंकचूल पव्वाडउ विद्याधरादिवि वैवक्यावर लब्ध प्रथम खंड

२- मराठी और उसका साहित्य; प्रभाकर माचवे पृ० ५० राजकमल प्रकाशन दिल्ली

३- कल्पना वर्ष १ अंक ५ पृ० ११९ पर पवाडों कीप्राचीन परम्परा शीर्षक-लेख श्री अगरचन्द नाहटा।

पवाडों संज्ञक रचनाओं की परम्परा पर विचार करने के बाद पवाड़ा शब्द के अर्थ उसके प्रचलित प्रयोग और उसके उद्भव की संभावना पर भी विचार कर लेना चाहिए।

भाषा शब्द कोश में पवाड़ा, पवाड़ा, पंवारा संज्ञा पुल्लिंग, देराज (संस्कृत प्रवाद) लम्बा चौड़ा या विस्तृत इतिहास कथा बहुत विस्तार से कही हुई बात के गीत अर्थ में मिलता है।[1]

गुजराती जोडणी कोश में पवाडा संस्कृत प्रबन्ध से व्युत्पन्न है।[2] आप्टे के संस्कृत अंग्रेजी कोश में पवाडो का अर्थ)सूचना, किमवंदती, कहावत अथवा लोक विश्वास बताया गया है।[3] डा० सत्येन्द्र ने परमार शब्द से पवाडो की उत्पत्ति बताई है।[4] विद्वान् डा० टर्नर ने इसकी व्युत्पत्ति 'संस्कृत प्रवादक शब्द से बताई है।[5] जो कुछ अंशों में ठीक भी लगती है।डा० टैसीटोरी ने अपने (Bardic Chronicles) में परवाडा राजस्थानी व गुजराती में प्रवाडा शब्दोंका स्पष्ट किया है।यह भी संभव है कि संस्कृत प्रवाद ही पवाडो के मूल में रहा हो यथा प्रवाद पवाअ पवाअडउ अतः यह पवाडउ प्राचीन राजस्थानी या पुरानी हिन्दी का शब्द है। बंगाली लोग प्रवाड़ा की व्युत्पत्ति पयार से मानते हैं।अनेक विद्वान प्रवाद, प्रबंध आदि शब्द भी इसके मूल में बतलाते हैं।कहीं कहीं लोक गाथा या लोक काव्य का भी प्रयोग पवाडो के रूप में मिलता है परन्तु अद्यावधि पवाडो शब्द की व्युत्पत्ति के लिए की गई अनेक सम्भावनाओं में कोई भी शब्द ठीक से पवाड़ा का अर्थ स्पष्ट नहीं करता। यों प्रवाद शब्द में इसकी कुछ संगति बैठती है पर वह अर्थ भी किसी

१- वही।पृ० १२२ २- जोडणीकोश: काका कालेलकर।
३- Talk report:Rumour,popular sayings or belief.

४- ब्रज लो सा० का अध्ययन पृ० ३४०-४९

५- मध्यभारती वर्ष ४ पृ० १०

निश्चित तथ्य के बिना अपूर्ण सा ही लगता है।यों विद्वान् इसी अर्थ से सहमत है पवाडा शब्द निस्संदेह भाषा विज्ञान के शोधकर्ताओं के लिए एक महत्व पूर्ण शब्द है। अंग्रेजी कोश मैंभी पवाड़ा शब्द की विभिन्न रूपों में व्याख्या की गई है।

जिस प्रकार पवाडा शब्द की व्युत्पत्ति पर मत वैभिन्नय है ठीक वैसे ही पवाडो के उद्भव पर भी मैतैक्य नहीं है। इस सम्बन्ध में स्वतंत्र चिन्तन ही आधार कहा जा सकता है।लोकगान के साथ पवाडो का अधिक सम्बन्ध स्पष्ट होता है। लोक गीत जीवन की उल्लास पूर्ण अभिव्यक्ति है उनमें पवाडेसं और अधिक सरस और स्पृहणीय लगते है। यों पवाडो का शिल्प देखते हुए उसमें अनेक गुणों व तत्वों का समावेश होता है। लम्बा कथानक, सरस संगीत, प्रवाहपूर्ण अलंकरण रहित शैली, पक्तियों का आवर्तन, अलौकिकता,अति प्राकृत घटनाओं का आरोह अवरोह, नीति मयता व उपदेश प्रधानता रहती है।जहां तक वृत्त का सम्बन्ध है।पवाड़ो में अधिकतर वीरता मुलक या प्रेमाख्यान मुलक लोककथा हो होती है। सृजन, निर्माण और मिलन ही इनकी लक्ष्य प्राप्ति होती है। इसप्रकार पंवाणे संसार के हर प्रदेश में मिल जाते है। प्रो० ग्रिम और गम्भीमर जैसेपाश्चात्य विद्वानों ने इस सम्बन्ध में विस्तार में लिखा है।वस्तुतः प्राचीन समय में स्वाभाविक अभिव्यक्ति के साथ चारण भाट आदि जिस काव्य को मुक्तछंद में सुनाते व रचते थे वह पवाड़ा ही था। पाश्चात्य विद्वानों ने इनकी इन्हीं विशेषताओं के कारण इनको साहित्यिक, लोकगाथात्मक, परम्परागत और चारणी पवाडे (Literary Broadside Ballads, Traditional ballads tatha Ministrel Ballads.)

---

1. (i) Pawada or Panwada m. A panegyric or encomiastic prece in a kind of alliterative poetry recounting the achivements of a warrior, the talents and attainments of a scholar, or the power, virtues and excellencies of a person gen.(Molesworths Marathi English Dictionary,1857(

(ii)Pawada S. (Substantive) m. (masculine) An epic poem, 2 Satire, Slader 3 useless talk, babbling (Meta's modern Gujarati English Dictionary, 1925.)

आदि भेद किए है।लोक काव्य होने से अनेक प्रकार के विषयों का समाहार इन रचनाओं में हुआ है। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक लोक कथात्मक आदि अनेक क्षेत्र पवाड़ो के विषय है। उक्त वर्गीकरण से भी उपयुक्त वर्गीकरण राजस्थानी पवाड़ा साहित्य का किया जा सकता है।वीर कथाओं के अतिरिक्त प्राचीन बात और ख्यात साहित्य के रुप में राजस्थानी साहित्य विशालरहा है अतः इसमें लोक गाथात्मक पवाड़ो के अतिरिक्त प्रेम कथात्मक, वीर कथात्मक, भोगमूलक धार्मिक तथा जीवट से भरे साहसिक कथानक वाले पवाड़े भी मिलते है। पाबूजी के पवाड़े अत्यन्त प्रसिद्ध है इसी प्रकार ढोला मारु रा दूहा भरथरी आख्यान आदि उल्लेखनीय है-

वस्तुतः पवाड़े लोक आख्यान के लिए रुढ हो गए है। अनेक पवाड़ो की परम्परा तो अविच्छिन्न मिलती है। बहुत प्राचीन परम्परा होने से पवाड़ा काव्यों के शिल्प से कई परम्परा अन्य काव्यों का क्रम जाना जा सकता है। सबसे पहले मानवनेइसी तरह किसी वीर की प्रशस्ति या विशिष्ट कार्य को गीतात्मक रुप दिया होगा वही सम्भवतः पवाड़ा रहा होगा। पवाड़ा साहित्य यों भारत के हर एक प्रदेश में मिल जाते है। अन्य देशों की अपेक्षा हमारे भारतीय साहित्य की परम्परा अधिक प्राचीन है।पंजाबी में पवाड़ा को वार महाराष्ट्र में पोवाड़ा, ब्रजभाषा में पमारा, बंगाली में गाथा अथवा कथा, मालवा तथा राजस्थान में पवाड़ो, कन्नड़ में लोवानी,यु०पी० में पवारे आदि अनेक रुप मिल जाते है।

पवाड़ो का आदि रचयिता कौन था यह जानना अत्यन्त कठिन है।यों अलिखित साहित्य का सबसे बड़ा सौन्दर्य व रहस्य उसके निर्माताओं के मौन रहने में ही है परन्तु पाश्चात्य लेखकों ने समुदायवाद और व्यक्तिवाद को लेकर गुम्मेयर ग्रिम, स्टेन्थल, वाइल्ड, किटरेज प्रेक्स तथा चाईल्ड ने पवाड़ो के रचयिताओं पर विस्तार में विचार किए है। पाश्चात्य साहित्य[1] में पवाड़ो के शिल्प आदि

---

1. Old English Ballads page 35.

पर वैज्ञानिक रुप में कई विचार करने वाले लेखक हैं। वस्तुतः इन विभिन्न मतों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि पवाड़े किसी जाति विशेष या व्यक्ति विशेष की रचना है परन्तु इनकी परम्परा अनुश्रुतिबद्ध परम्परा होने से तीनों ही तथ्य इनके उद्भव में आंशिक रुप में कुछ योग देते हैं। लोक गीत कलाकारों में कोई भी जो अपने को स्व से पर की सीमा में लीन कर देता है, वही सच्चा लोक कलाकार है। यों इसकी उद्भावना महाकाव्यों, रोमांस काव्यों तथा स्तोत्र आदि से भी मानी गई है [1] पर इससे केवल विषय उलझता है।पवाड़ों की सबसे बड़ी विशेषता ही यह है कि वे लोक गान हैं तथा उनका रचयिता कोई प्राणी विशेष नहीं है। यह तो हुई पवाड़ों की शिल्प सम्बन्धी प्राचीन बात।अब परवर्ती साहित्य में जितने भी काव्य मिलते हैं वे विविध विषयक हैं। ज्यों ज्यों कथा में वैभिन्नय आता गया त्यों त्यों कथा वस्तु में भी वैभिन्नय आता गया।यों लोक कथानक होते भी ये काव्य अत्यन्त सरस हैं अतः उनको शिष्ट साहित्य का ताना बाना पहिना कर प्रस्तुत करने के कालान्तर में अनेक प्रयत्न हुए हैं। वास्तव में ये किसी व्यक्ति विशेष के विशिष्टकार्यों का स्पष्टीकरण करने वाली रचनाएं हैं। यद्यपि प्रारम्भ में यह काव्य लोक आख्यानक कथा का प्रतीक था परन्तु परवर्ती काल में यह वीर आख्यानक काव्यों के लिए [2] रुढ़ हो गया है।बाइमा फूला विरचित नागदमण में पवाड़ा पवमां शब्द तथा १८वीं शताब्दी में विरचित देवी विलास ग्रन्थ में भी पवाड़ा शब्द ही उल्लेख है। [3]

उपर्युक्त सब विवेचन को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि पवाड़ा एक

१- मरुभारती वर्ष ४ अंक ४ पृ० ८
२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५८ अंक ४ पृ० ४३१
३- हे मारिले ते वर बोढे। आंपीक ही साधन गाढे मगनादेन पवाडे एक लाचि और तुकाराम गाथा में अनन्त हे थोरी। गर्जवाती पवाड़े तथा कृष्णे पवाड़ा हा केला।(गुजराती साहित्य न स्वरुपो पृ० १२४)।

प्रकार का चरित काव्य है जिसमें कथा व गीत संगीत को महत्व दिया जाता है। ये काव्य वीर, सामाजिक, श्रृंगारिक से प्रेमादि किसी भी प्रकार के आख्यानक से सम्बन्धित हो सकते है।राजस्थान में कई स्थान पर पवाड़े)पड) गाने वाले काव्य के नायक आदि का एक विस्तृत चित्रपट भी साथ में लेकर उनके विविध क्रिया कलापों का प्रदर्शन करते हुए गाते हैं। अतः प्रेमुात्मक वीर गाथाओं के साथ साथ लोक आख्यानक व सामाजिक कथा वस्तु भी पवाड़ो में स्वाभाविक रुप में मिल जाती है। वास्तव में ये काव्य वीरों की प्रशस्तियां, विद्वानों का सामर्थ्य वर्णन, गुण कौशल आदि का काव्यात्मक वर्णन करते है। मराठी ज्ञानेश्वरी में पवाड़ा काव्यों का सम्बन्ध सामर्थ्यवान व्यक्ति के साथ जोड़ा गया है।[१] १५वीं शताब्दी में विरचित त्रिभुवन दीपक ,प्रबन्ध में भी पवाडा शब्द तीन बार मिल जाता है। नागदमण में"पवाडो पन्नागसिरं जदुपति कीनो जाग" में कृष्ण के नाग दमन की कथा को ही पवाड़ा का रुप दिया गया है।

इस प्रकार परवर्ती काल में पवाड़ा एक शैली विशेष और काव्य रुप विशेष ही हो गया। काव्य की शैली के अनुसार उसमें प्रधानतया चौपाई छंद होता है और बीच बीच में पर्याप्त संख्या में दोहे तथा अन्य छंद होंउसमें विभिन्न रागों में गाये जाने वाले अनेक पद हों तथा जिसमें सर्ग विभाजन या विभाग सूचक शब्द हों- वे काव्य रचना शैली की दृष्टि से पवाड़ा कहे जा सकते है। कान्हड़ दे प्रबन्ध में तो छंद का नाम ही पवाड़ु मिलता है।[२]

इस प्रकार पवाड़ों की परम्परा स्वरुप उद्भव तथा शिल्प आदि पर विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में सबसे अधिक प्राचीन पवाड़ा संज्ञक रचना १५वीं शताब्दी की विद्याविलास पवाडो ही है। आदिकालीन कृतियों

१- त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध-लालचंद गांधी-

(अ) पुत्र पवाड़ा सम्भली आणन्दिउ मरनाह (ब) आपण कइउ केतला तुकि आगलि पवाडा (स) सुभटंड पर्यंडि पुघडघड भंजइ चडिय पवाडई पवसर।

२- गुर्जर रासावली- ,प्रस्तावना पृ० १५।

में पुरानी हिन्दी में लिखी हुई यह रचना लोक आख्यानक है तथा जैनाचार्य श्री हीरानन्द सूरि द्वारा लिखी हुई है। अतः प्राप्त रचनाओं में सबसे अधिक प्रमाणित कृति विद्या विलास पवाडो ही है । हिन्दी साहित्य में वस्तुतः पवाड़ों संज्ञक रचनाओं का यदि श्री गणेश कोई रचना करती है तो यही हीरानंद विरचित विद्या विलास पवाडो ही।रचना का अध्ययन हम आगे के पृष्ठों में प्रस्तुत कर रहे है।

। विद्या-विलास पवाडो ।

विद्याविलास पवाडो की प्रतियां बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध है। पाटण भंडार में इसकी प्रतियां कई है। रचना का सम्पादित तथा प्रकाशित पाठ प्राप्त है। हीरानन्द सूरि का काल निश्चित है।इनकी कृति कलिकालरास पर रास अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है।हीरानन्द पिप्पल गच्छ के थे तथा इनका समय १५वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध था। प्रस्तुत कृति की रचना सं० १४८५ में की गई है। रचनाकार ने पवाडो को प्रवादक: या प्रशस्ति काव्य कहा है:-

विद्या विलास नारिंद पवाडउ हिय डा भिंतरी जाणी[१]

वस्तुतः इसी रचना की कुछ प्रतियों की पुष्पिका में इसे रास, चरित आदि कहा है परन्तु लोक कथा काव्य के रूप में यह काव्य लोक आख्यायन परम्परा को सुरक्षित रखने वाला उत्कृष्ट काव्य है।विद्या विलास पवाडो,कान्हड दे प्रबन्ध, माधवानल तथा त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध के समान ही है। तुलना करने पर अनेक कड़ियों तथा छन्दों में साम्य मिल जाता है।[२] विद्या विलास पवाडो में विद्याविलास का जीवन चरित वर्णित है। विद्याविलास की कथा प्रेरणा मूल संस्कृत के विनय चन्द्र कृत मल्लिनाथ काव्य (सं० १२८४ के समीप) है।इसके द्वितीय सर्गकी मूर्खचट्टया विनयचट्टकी कथा ही इस रचना का मूल है। परन्तु इस कथा में उससेपर्याप्त अन्तर स्पष्ट होता है।आगे भी श्यामल भट्ट ने गुजराती में विद्याविलासनी नी वार्ता काव्य लिखा है जिसमें विद्याविलासनी को नायिका के रूप में चित्रित किया है।

१- विद्याविलास पवाडो के (१) निसि भरि सोहग सुंदरि रे (१।२८१-२९७)
(२)उज्जेणी नयरी सभी वरनारी है रंग धरेवि(१।३७०-३८४)
(३)महीमहीयरम वरचाणीह (१।४२९१४०)आदि पद
कान्हडदे प्रबन्ध, और त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध में उपलब्ध है।

२- इसी प्रकार प्रहेलिका, दूहा, प्रबन्ध तथा राग आदि रूपों में भी कृति विद्याविलास पवाडो उक्त तीनों समकालीन कृतियों से पर्याप्त साम्य रखती है।

प्रस्तुत काव्य ४४० कड़ियों में लिखा गया है। पवाड़ा शब्द को कवि ने चरित मूलक अर्थ ही मे लिया है धरमिहिं अचल बधामणउ प विद्या विलास वरीउ से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

विद्याविलास पवाडो की कथा वस्तु बड़ी रुचिकर है। कथा तत्व मे घटनाओं की प्रधानता, तथा वैचित्र्य है। पूरा काव्य घटना प्रधान है। कथा तत्व कीसरसता काव्य का पदलालित्य बढ़ा देती है।कथा संक्षेप मे इस प्रकार है:-

कथा सार

उज्जयनी नगरी मे धनवाह सेठ के चार पुत्र थे।उस नगरी का राजा जगनीक था। धनावह सेठ के चार पुत्र थे। चारो पुत्रों को उसने बुलाकर धनोपार्जन की विधि पूछी तो प्रथम तीन ने रत्न परीक्षा, सोने चांदी के व्यापार, कपड़ों का विक्रय आदि के माध्यम को बताया पर छोटे श्रीवस्त ने कह दिया कि मै तो राजा की भांति राज्य करुंगा। इस पर बिगड़ कर पिता ने उसे घर से निकाल दिया।श्रीवत्स या धनसागर रत्नपुर नगर मे आकर एक पाठशाला में अध्ययनार्थ प्रविष्ट हो गया। पर पूर्व जन्मों के संस्कार से उसे कुछ भी याद नहीं रहता था।सब उसे मूर्खचट्ट या विनयचट्ट कहने लगे। इस प्रकार मूर्खचट्ट ने १२ वर्ष तक गुरु की सेवा की। इसी पाठशाला मे नगर की राजकुमारी और प्रधान का पुत्र पढ़ता था दोनों मे प्रेम हो गया। संजम मंजरी ने उसे विवाह करने को बाध्य किया पर प्रधान का पुत्र नहीं कर सका। इसने एक युक्ति निकाली।लग्न स्थान पर प्रधान पुत्र ने विनयचट्ट को भेजा, उसे समझाकर कि वह फिर आजायेगा।रातों रात विवाह होकर ऊंटनी पर बिठाकर पुत्र उज्जैन को जाना। विनयचट्ट राजी हो गया और जाकर उसी रात गुरु से आज्ञा मांगी। गुरु ने अपनी कृपा से सरस्वती को अभिमुख कर के अनेक गुणों को इसकी सेवा से प्रसन्न होकर वर दान दिए। मूर्खचट्ट महान विद्वान हो गए। सरस्वती उस पर बड़ी प्रीत हो गई।लग्न हो गया।अंधियारे में ऊंटनी पर बैठकर दोनों निकल भागे। पर प्रातः जब संजम मंजरी ने मूर्खचट्ट को अपने साथ देखा तो महान दुःख हुई।उज्जैन मे आकर विनयचट्ट महान काव्य बनाने लगा।उसकी

सरसता पर अनेकों ग्रंथ हो गए थे। विद्या से लोकानुरंजन करने वाले विनयवट्ट को विद्याविलास नाम दे दिया गया। संयम मंजरी दुख में दिन निकालने लगी। सखी के यह कहने पर भी कि विनयवट्ट महान विद्वान है उसे विश्वास नहीं हुआ। ऐसे ही समय में काश्मीर से एक सन्धि विग्रह का एक लिपि पत्र आया। उसे नगर का कोई व्यक्ति, सिवाय विद्याविलास को छोड़ कर नहीं पढ़ सका। राजा ने उसे प्रधान बना लिया। लेख से विद्या विलास की बड़ी प्रशंसा हुई। पति पत्नी की यह अनबन राजा को भी ज्ञात हुई। उसने इसका कारण जानना व भेद लेना चाहा और उसके यहां भोजन करने गया पर संयम मंजरी ने अनेक वस्त्र बदल बदल कर पहने। अतः राजा न जान सका। दूसरी बार राजा ने दूसरी युक्ति सोच नगर पालिका के सामने प्रधान को सपत्नीक नृत्य गान करने की कुल रीति बताई। संयम मंजरी ने कहा कि यदि प्रधान गीत गाता और वादित्र बजायेगा तो वह नृत्य जरूर करेगी। ऐसा ही हुआ। दोनों तब मिले। जीवन में आनन्द छा गया। दोनों पति पत्नी का वर्षों का मौन टूट कर दूर हो गया। दोनों हाथी पर बैठे। पर इतने में राजपुत्री की अंगूठी गिर गई। विद्याविलास को उसने लाने को कहा वह नीचे उतर कर लाने गया तब तक सवारी आगे [illegible] पीछे रह गया और नगर में प्रवेश करते करते नगर के दरवाजे [illegible]। विद्याविलास एक छेद में से प्रविष्ट होने को गया तो उसे [illegible] आया। उसके सौन्दर्य को एक वैश्या ने देखा तो उसे मंत्र [illegible] तोता बना कर पैर में काला डोरा बांधकर अपने पास रख छोड़ा। एक दिन तोता उड़कर संयम मंजरी के पास चला गया। राजकुमारी तड़प रही थी उसका डोरा तोड़ दिया विद्याविलास पुनः प्रधान बन गए। गणिका ने भी उसे उसकी पत्नी को सौंप दिया।

राजा ने दीक्षा लेकर प्रधान को राजा किया। विद्याविलास ने राजा बनकर अपने पिता के नगर पर चढ़ाई की वहां के राजा को परास्त किया। फिर संधि करने के लिए नगर सेठ आये। तब या विद्याविलास ने पूछा क्या आप मुझे पहिचानते हैं? पिता पुत्र मिले आनन्द छा गया। श्रीदत्त पूर्वजन्म के

संचित तप के प्रभाव से राजा हुआ व अन्त में निर्वाण को प्राप्त हुआ। कथा संक्षेप में यही है।

कथा को देखते हुए यह कहा जासकता है कि प्रस्तुत काव्य घटना प्रधान प्रेम काव्य है। काव्य में घटनाओं के तीन बड़े मोड़ है जो काव्य में कौतूहल का समावेश करते है वे है:-

(१) राजकुमारी का लपुन श्रीवत्स के साथ अंधेरे में होना व ऊंट पर बैठकर निकलना।

(२) कारमीर के लेख का पढ़कर प्रधान बनना तथा

(३) राजकुमारी व कुमारी का नृत्य वाद्य आयोजन व राजा का भेद आदि लेना तथा दोनों का पुनर्मिलन आदि।

कवि ने मंगलाचरण से ही काव्यप्रारम्भ किया है:-

पहिलउं पणमिय पढम जिणेसर सित्तुंजय अवतार
हथिणा उरि श्री शांति जिणेसर उजलि नेमिकुमार
जीराउली पुरि पास जिणेसर साचउरि वर्द्धमान
कासमीर पुरि सरसति सामिणि दिउमज्झ निव्रु वरदान

कवि की भाषा का प्रवाह व सरलता उल्लेखनीय है:-

तसु घरि नंदन च्यारि निरोपम पहिलउ पुरि धनसार
बीजउ नंदन बहुगुण भरिउ बुद्धिवंत गुणसार
त्रीजउ पुरतिलंकउ सागर सागर जिम गंभीर
चउथउ नंदन गुणि धनसागर समरथ साहस धीर
एक दिवस ते च्यारि नंदन रमलि करता रंगि
तापि बोलाव्या कहव किम घरि भार धरेसिउ अंगि
पहिलू चडिलउ नंदन बोलइ हूं घरि मांडिसु हाट
बीजउ बोलइ प्रवहण पूरीय आणिसु सोवान घाट
त्रीजउ बोलइ घरह तणं हुं मोक चारिसु साव
चउथउ बोलइ कुलखिव नाणी सुणि प्रभु मोरी वात

ऊजेणी नउ जीपी राजा लेई सर्वस राज

इम परि बाप तणां हुं सारिसु मन वांछित सवि काज (६-८)

कवि ने संयम मंजरी का रूप वर्णन पर्याप्त सरस किया है। कवि की आलंकारिकता और प्रवाह द्रष्टव्य है:-

तीणि नयरि सुरसुन्दर राजा तसु घरि कमला राणी

सोहग सुन्दरी तासतणी धूअ रुपिई रंभ समाणि

सोल कला सुन्दरि ससि वयणी चंपकवन्नी बाल

काजल सामल लहकइ वेणी चंचल नयण विसाल

अधर सुरंग सजस्या परवाली सरल सुकोमल बाह

पीण पयोहर अतिहिं पनोहर जाणे अभिय पवाह

उरु युगल किरि कदली थंभा चरण कमल सुकुमाल

मयगल जिम माल्हंती चालइ बोलइ वयण रसाल (१७-१८)

परम्परागत उपमानों की छटा तथा अनुप्रासात्मकता रचना में प्रवाह का निठाव घोल देते है। राजकुमारी का मंत्रि पुत्र पर मुग्ध हो जाना और मंत्री पुत्र का स्वामी की पुत्री पर हुए इस नीच मनोरथ से बचने के लिए अनेक संकल्प विकल्प करना द्रष्टव्य है। कवि विविध दृष्टान्तों और अर्थान्तरन्यासों द्वारा कितना सुन्दर वर्णन करता है:-

सामिणि सेवक ऊपरिई नीच मनोरथ काइ

एह वात सुणती नहीं आवी अवरम थाइ

किहां सायर किहां छिल्लर किहां केसरि किहां साल

किहां कायर किहां नर सुहड किहां वन किहां सुरसाल

किहां सरषिव किहां मेरु गिरि किहां सर किहां केकाण

किहां बाहर किहां सारस किहां सूरज किहां जाण

किहां कस्तूरी किहां लवण, किहां मानव किहां देव

किहां कांजी किहां अमिय रस, किहां राणिम किहां सेव

किहां रीरी किहां वर कनय, किहां दीवउ किहां भाण

सामिणि मझ तुझ अंतरउं ए एवडउ प्रमाण

राजकुंअरि वलतुं भणइ म करिसु घणउ विचार

इण भवि पर भवि एक तुं निश्चिइं करिसु भरतार

रचनाकार ने अनेक वर्णन किए हैं जिनमें भोजन वर्णन नृत्य गीत वर्णन, विरह वर्णन आदि प्रमुख हैं कवि के काव्य कौशल के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है। राजा के संजम कुमारी के यहां भोजन करने आने पर कवि भोज्य सामग्री का वर्णन करता है:-

ततखण सामहणी सवि करी,राजा तेडिउ ऊलट धरी

आविउ राजा सिउं परिवारि जिमवानइ मिलि जोवा नारि

मूंक्यां आसण नइ आडणी, घुर बइठउ आडउपुर धणी

मूंक्यां सोवन मय बहु थाल मूंक्यां कचोलं सुवि साल

पहिरि अंग समार्या वेस निरुपम रुप किया नववेस

तै सतरह सोहामी बाल तिणि मंडपि आव्या तत्काल

पहिली मूंकी फलफुल गली, मूंकी साकर दूधई मिली

मूंक्यां सरस गविल पकवान, मूंक्यां आणी उन्हा धान

मूक्यां नव नव परि सालणं, मूंक्यां सरहा घी अति घणं

मूंकी मांडी मुरकी वेव, मूंकी सीर खांड घृत हेव

मूक्यां सघलां सुरहां चोल जिमवानउ किव कुछ निरोल

आव्यां वास्यां निरमल नीर आव्यां कर लूंवेवा चीर

आव्यां बीड़ा पानह तणां आव्यां लूंगड़ घोड़ा घणा

इणि परि राजा भगतमिउ करइ पहुंतु घरि आविउ (७९-८५)

यहीं नहीं नृत्य और वाद्यों का वर्णन कवि के संगीतज्ञान या लय ताल सम्बन्धी ज्ञान पर भीप्रकाश डालता है। वर्णन ध्वन्यात्मक है। बहुत अनुप्रासात्मक तथा अनुरणन युक्त है जिससे एक नाद की सृष्टि होती है।भाषा की सरलताऔर वर्णन का अनुप्रासात्मक-चमत्कार द्रष्टव्य है:-(चालवी गुड़, हिव सुघई)

नृप आयस लही वरवेशुत्र रंगगणि कीधउ प्रवेश

धां धां धमधु महुर मृदंग, थथथय थथयट ताल सुरंग

कंधुगनि थोंगनि धुंगा नादि, गाई नागड दोंदों सादि

मणधुनि थोंश मपधनि झणझण बीण, निनिझुणि झणि आउज लीण

बाजी ओं ओं मंगल शंख, धिधिकट धंकट पाड अशंख

फागड दिगि दिगि शिरि वल्लरी, झुणण झुणण पाउ भेउरी

दों दों लंदिहि तिविल रसाल झुणर्ण घुघुंरि घमकार

रिमि भिमि रिमि भिमि भिभिम कंसाल, कररि कररि करिघटघटताल

भरर भरर शिरि भेरिअ साद पायडीउ आलवीउ नाद

निझुणी एवं बिह बहुताल मनि चमकी ते नवरंग बाल

नाची अति घन उल्लट धरी राजकुंअरि सोहागसुंदरी (१०१- १०६)

कवि के इन सब वर्णनों के अतिरिक्त विरह वर्णन बड़ा मार्मिक बन पड़ा है। विप्रलंभ का वर्णन सोहागसुन्दरी विविध विलापों और वियोग सूचक उद्दीपनों से स्पष्ट करती है। श्रृंगार का यह वियोग पक्ष वर्णन की यथार्थता और सरसता से अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़ा है। सौभाग्य मंजरी विहुया विलाप के बिना अधूरी है। उसका प्रतीक्षा वर्णन , आंखों में नींद न आना, चंदन, चांद, शीतल वायु आदि सबका भयानक लगना सभी वर्णन स्पृहणीय है:-

(राजस्थ-सू-संपुट)

निशि करि सोहग सुन्दरि रे जोइ वालंभ वाट

नींद्र न आवइ नयणडेरे, छिबडइ सरड सपाट

सुणि सामी सोक विलाप, बलि वालंभ विहुया विलाप

मन धुक विण चहीय उ माय, प्रभु पूरिन मन की आय

इम विरहिं झिक बिण मीलइ-

हीडी अलमाणी सेजडी रे, चंदन जेहवी भाल

दावानल जिम दीसइरे,कमल जिस्यां करवाल

मन न सुहाइ चांदलु रे, जाणे विष वरसंति

सीतल वाउ सोहामणु रे, प्रियविण ताप करंति
दासी डाहिम आपणीरे, रंजी मुझ मन मोर
छयल पणई छानउ रहु रे, हीयडउं करी कठोर
पहा दीह न जाणीया रे, निरगुण जाणी कंत
हिव खिण जाइउ वरसहु रे, जाइ मुझ विलवंत
जइ करवत सिर साहरइ रे, दीजइ सिरजणहार
वर वछोड्या साजणं रे, तउ तउजाणत सार (११५-१२१)

विवाह का प्रासादिक वर्णन कवि ने विवाहला ढाल में किया है। संगीत की दृष्टि से भी प्रस्तुत काव्य बड़ा महत्वपूर्ण है। विवाह का उल्लास, नारियों का श्रृंगार और मंगलगान आदि सबकी राजस्थानी परम्पराओं के वर्णन तथा तत्कालीन स्थानीय रंगों (लोकल कलर्स) का स्पर्श करते हैं। "ए" शब्द की आवृत्ति उसे रागमय बनाती है:-

(हिव वीवाहला नउढाल)

सुंदर लगन गणवीउं ए, मणि माती रयणि वधावीउ ए,
वल्लह सज्जन तेड़ावीउ ए, वरमंडप तिहा मंडावीउ ए
लाडण वामि वढ़ावि‌उ ए, परिमेसा तोरण बांधिउ ए
लाडी हिव खिण मारीइ ए, वर पीठी तेह उवारीइए
बहिरणि गवबड फालडी ए, ओढणि नवरंग छाटडी ए
कर अंकि चूड़ी खलकती ए सिरि सोवन राखडी झलकती ए
लाडी बहुजि सोहामणी ए, गुहि सोलह मंगल कामिणी ए
हाथ मेलावइ सांवरइ ए, वर राजकुंआरी हेवरी ए
च्यारि मंगल वरतीयां ए, वर बहुन्न जी आयति थियां ए
वैस्वानर साखिइं करी ए, इम वरिवी जिन गुण संदरी ए

रचना में वीर रस का भी परिपाक देखने को मिलता है। विद्युन्मा विलास का राजा बनने के बाद अपने पिता के नगर के राजा पर आक्रमण करना, सेनाओं का भिड़ना, शस्त्रों की झंकार, सवारों, रथों घोड़ों, हाथियों तथा तलवारों

आदि का उत्साह पूर्ण वर्णन वीररस की निष्पत्ति करता है।वर्णन ध्वनात्मक है:-

(भीम पलासी)

गयवर गयवरि रथ रथि सिउं, असवारिहिं असवार
इणई परि झूझई थला सुभग सवि मसरंगणि तिणिवार
बिहुं दलि ढों ढों ढोल ढक्की अंमा भोरिनदूब
बिरहरसि सरणई बज्जइ डमडमडमक सुसदूद
द्रैं द्रैं गटि गटि द्रह द्रह नादिं, वाजीय गुडिरनी वाण
रण काहली सुणी समरंगणि, कायर पडइ पराण
सुहड कन्हलि पणीयाला आयुध सूरकिरण भलकंति
देखी सुहड सयल रोमंच्या नीसस नासीजंति
गयवर गुडिया रथ पाखरिया, सुहडलीया संनाह
गाहो गाहई बाहई भाटक वाहइ रुधिर प्रवाह
मारि मारि कहतां इक ऊठहंकंपकिउ करवाल
रोसिचडिआ राउत झूझई जिम जेहा विकराल (१४५-१५०)
एक तणा घडहड घूजई एक हीडई सुललिवई
सिर पाखइ एक उठी झूझई सुहडा आसि फलंति
फोडइ पक्खर वरद अबीखर, तीरइ तीर चढंति
नासंतां एक नर मारीवइ, परदल इम त्रिलइंति
भूंगा गयवर गूडि भाजई, सुणइ तणा घोंकार
सुडादंडि उमाडी गइ, ऊलाळइ असवार

और अन्त में रचना निर्वेदान्त हुई है। विद्याविलास अपना पूर्व भव पूछता है तथा अन्त में दीक्षा ले लेता है:-

(राग वसंत)

इसुं सुणीपुरजन वेदइ वाणी समर भरियों
लील विलास सुह राचि थायी थामी परमानंदो

ए संसार असार सुणीजइ दुक्ख तणउ भंडार
आप सवारथ सहूई मिलीउं पुत्र कलत्र परिवार
लच्छी चंचल पवन तणी परि यौवन संध्याराग
नीर बिंदु जिम जीवी जाणीइं आणी मनि वइराग
संजम लेईं शिवपुरी पहुतउ धन धन विद्याविलास
भणइ हीरानंद श्री संघ पूरउ मन वंछित सवि आस

प्रस्तुत रचना का लोक कथा काव्यों की दृष्टि से तो महत्व है ही साथ ही छंदों और रागों की दृष्टि से भी इसका बड़ा योग है।पूरी रचना में देशी सवैया और दूहा चउपइ में काव्य लिखा गया है। वस्तु छंद, गीत राग और ढाल आदि सभी का विश्लेषण इस प्रकार है:-

छंद	राग
कड़ी १ से २१ -	सवैया देशी पवाडु- मात्रा १६ १२
२२ से २७	दूहा - मात्रा १३ ११
२८ से ९४	दूहा, अंत में ए का प्रयोग वाला देशी सवैया(जयदेव द्वारा आयोजित)
९५ से ९९	वस्तु
१०० से ११९	सवैया देशी पवाडु - १५ १३ अंत में रमण अंत में संगीतात्मक "ए" की आवृत्ति(राग देशाख) जिम सुणइ, मालवी गुड
१२०-१५२	वस्तु तथा दूहा
१५३-२४७	चउपइ (१५ मात्राओं का हरेक पद) तथा दूहा
२४८-२८०	चउपइ, (राग मालवी गुड) तथा वस्तु
२८१- २९७	गीत, (राग [illegible]) दूहा (१३ ११)
२९८-३२१	चउपइ (१५ मात्रा राग रामगिरि)
३२२-३३८	विवाहला ढाल-प्रथम पद की पुनरावृत्ति दूसरी बार (१४ १३ मात्राएं। तथा ए का आना हरेक पंक्ति के अन्त में ए। तथा वस्तु छंद।
३३९-३६९	पवाडु (देशी) मात्रा १६ १२ - राग भीमपलासी, वस्तु

४७०- ४२८ हिव वधावणानउ ढाल।।राग देवाष।।यह पद भी १३, १३ मात्राओं का दूसरा रूप है। पढाबु मात्रा १६, १२ (राग वसंत)

४२९- ४४० पद मात्रा १४, १४ (राग वसंत) ढाल विवाहलउ,

इस प्रकारविविध रागों में कवि ने इन कड़ियों को गाने का निर्देशन भी साथ ही दे दिया है इससे स्पष्टहोता है कि कवि का संगीत ज्ञान भी शास्त्रीय तथा असाधारण था।

छंदों के रूप में प्रस्तुत कृति बड़ी महत्वपूर्ण है कवि ने इसी प्रकार कई मौलिक छंदों व विभिन्न रागों के साथ उन्हें गाने का सुझाव दिया है। वस्तुतः जो भी छंद[1] हमें इस रचना में उपलब्ध हुए है, उन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

भाषा की दृष्टि से यहरचना भी त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, पंच पंडव चरित रासु तथा नेमिनाथ फागु की ही भांति १५वीं शताब्दी की सरल हिन्दी है। तत्सम शब्दों का प्राधान्य है। प्राचीन राजस्थानी या गुजराती के विविध शब्द मिल जाते हैं जो साधारण भाषा प्रवाहपूर्ण और प्रासादिक है। वर्तमान गुजराती की प्रारम्भिक भूमिका इस कृति की भाषा से मिल सकती है।अपभ्रंश की लाक्षणिकता इन कृतियों में आंशिक भी कठिनाई से मिलती है और उसके साथ तत्सम प्रयोगों ने सब दुरूहता को समाप्त कर दिया है।एतदर्थ अनेक उदाहरण ऊपर दिए गए हैं।

समस्याएं:- लोक कथा काव्य होने के साथ साथ रचना में एक महत्व गुण उसमें

---

1. The detailed analyis af the metrical form used im this poem is of great imprtant in painting out how at the basis there were matra metres which becames loose as the musical considerations began to enter its form. The syllables of one matra or two matrasdid not remain rigidly so and were lengthened out short ened according to the musical or giving requirements. Even the pads has originally at the basis the well known matra forms. The musical syllables are added and then the poetic narrations were composed by taking Yals and Deshi w.th out any consideration of Matra metre basis. All these matters concerning the chages of metrical forms through AP. O.G. to Mg. Akhyan Poems and Pads are of great importance G.O.S.C. XVIII PAGE- 571.

वर्णित समस्याओं और प्रहेलिकाओंका है। ज्ञान परीक्षा करने की कुछ कठिन समस्याएं देखिए:-

राजा बोलइ मुकी लोक निपुण्य नयरलणा सवि लोक
मुझ बेटी छइ गुणसुंदरी रूपिइ रंभावइ अवतरी

--- --- ---

अंब पसारी ऊभउ कीउ पगि दीठउ दोरउ बांधिउ
ते छोडी मइ नाख्यउ जाम विदुग्याविलास हूउ ताम

--- --- ---

आलिंगन देई नर नाइ दीधी वैश्या मनि उल्हाहि
अरघराजसिंउ राजकुंआरि परिणावी नृपवइं आचारि [१]

३९वें पद में बुध (Son of the Sun) तथा पिउ में बप्पीहा चिड़िया की ध्वनि भी है। [२]

<u>प्रहेलिका:-</u> ४०, ४१ और ४२ कड़ियों में कवि ने प्रहेलिकाओं का वर्णन किया है जो इस प्रकार है:-

(१) स्त्री परणी किहां जाइ- जीवन का सार क्या है?-(उत्तर)सास(श्वांस)

(२) प्रिय के मिलने पर क्या होता है-(उत्तर) रइ (रति) संस्कृत

(३) फूलों में सर्वोत्कृष्ट क्या है- (उत्तर)- जाइ(जाति) संस्कृत

इन सबको यदि मिला दें- सासरइजाइ- तो स्त्री परणी किहां जाइ का उत्तर

१- वही, पृ० ३७२ पद १२५-१३४

२- This 39 st. is a stanza addressing "oh intelligent (Budh) the son of the Sun) dear one (Piu i.e. the sound of Bapphi bird also):O! you who can be known by the name w ich the Bappiha bird utters with its mount,O! you for whose name there is the name of the son of the sun, tell/me, to my satisfaction, you will knowing one.G.O.S. CXVII PAGE 373

निकल आता है। कुशल लाभ माधवानल कथा में भी यह प्रहेलिका मिल जाती है-

कुण आधार जीवित तणे काम धरणि कुणि थाइ

आंगण धुरि फुल्लइ स्त्री धरणी किहां जाई [1]

४१वीं कड़ी में भी एक प्रहेलिका एक स्त्री के लिए है जो पानी में रहती है बहुत काली है तथा जो उसे देखना नहीं चाहती:-

एक नारि अति सामली पाणी माहि वसंति

ते तुम दरसण देखिवा अलजउ अतिहि करंति ॥४१॥

इस पहेली का उत्तर है -आंख (अक्षि)

४२वीं कड़ी में भी इसी प्रकार की पहेली है:-

श्रीपति सुत अरि मंडणह मेअण नंदन नाह

तसुअरि बंधव वल्लही तसु ऊपरि उछाह [2]

इस पहेली का उत्तर है -नाद। सम्पादकों नेइसकी पर्याप्त व्याख्या की है।इसी भांति पहेलियों में निम्नांकित कड़ियां दृष्टव्य हैं:-

सार किसिउं जीवी तणुं प्रिय संगमि सिउ थाइ

फूल माहि सिउं मूक गउं स्त्री धरणी किहां जाइ (४०)

आदि सर प्रभु नामहि , अंतर प्रिय दाहि

1- कुशल लाभ माधवानल कथा।
G.O.S. XCIII Page 406.

2- The ornament of the son of the consort of Laxmi(i.e. the son of Krishna i.e. Praduman or Kamdeo) and Rati@i.e.Chandra) the lord of the son of earth @i.e. Mangalpati i.e. Grahpati i.e.Chandra) Its brother who is in its heart (i.e.Harin is in in the heart of Chandra and dear to Harin is Sarangi or Lu Lute. I have a seat for some thing on it(it i.e.the Nad or tune of Sarangi)The answer of this Prahelika is Nad or a musical tune.
G.O.S. CXVIII P. 373.

सा कमलंतरि कामिनी, काइ रहिअ प्रभु साहि [१] (४३)

इस प्रकार इस लोक कथा को इन पहेलिकाओं ने और भी सरस बना दिया है

. सामाजिक तत्वों, स्थानीयरंगों तथा सामाजिक रिवाजों विवाह की परम्पराओं वाणिज्य की नीतियो, राज दरबार खान पान, स्त्रियों के लिए हुआ कलह, राजकीय झंझटों और विवाह के धूमधाम पूर्ण वर्णनों ने रचना के वर्णन शिल्प तथा सरलप्रासादिक शैली की सुषमा और बढ़ा दी है। लोक-कथा-काव्यों में पवाड़ा नाम से परवर्ती काल में अनेककृतियां उपलब्ध होती है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य में पवाडो का प्रारम्भ करने वाली प्रामाणिक रचनाओं में विद्याविलास पवाडो सर्व प्रथम महत्व पूर्ण रचना है।

---

1. The first letter is theletter in front of Prabhu(i.e.P) dear one the last letter is found in fire(i.e. Agni i.i. Ni that loving women is in Kamal(i.e.Padam) who do you, O; Lord torment her? (The answer:Padamni Padmini The first of the three types of the women i.e. Padmani Chitrani and Sankhani.

(९०)

संधि-काव्य

-संधि काव्य-

संधि काव्य नाम से अपभ्रंश में कई रचनाएं उपलब्ध होती हैं। इसके पूर्व प्राकृत में सन्धि संज्ञक कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। अतः यह कहा जा सकता है कि संधि काव्यों की परम्परा का प्रारम्भ अपभ्रंश भाषा से ही होता है। संधि नाम से कई बातें ध्यान में आ जाती हैं कि या तो संधि काव्य संक्रांति काल में लिखे गए काव्य होने या दो प्रान्तों की सीमा पर लिखे गए होंगे अथवा दो भाषाओं के सम्मेलन से निर्मित हुए होंगे। आदि आदि परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। संधि कोईकाव्य रुप भी नहीं है। इसका कोईशास्त्रीय शिल्प भी अद्यावधि उपलब्ध नहीं होता पर फिर भी संधि संज्ञक रचनाएं मिलती हैं। वस्तुतः इन संधि काव्यों में संधि शब्द का विशेषमहत्व है।

सन्धि शब्द की परम्परा पर विचार करने पर इस वर्ग की रचनाओं का स्वरुप स्पष्ट हो जाता है। बहुत सम्भव है कि इन काव्यों की पूर्ववर्ती परम्परा में दो भाषाओं का सम्मिलन अथवा अन्य कोई संक्रांतिकालीन स्थिति रही हो पर इस सम्बन्ध में अब तक कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। काव्य रुपों, शैलियों तथा विभिन्न छन्दों की दृष्टि से विचार करने पर भी संधि न कोई विशेष काव्य रुप ही है और न कोई विभिन्न छन्द विशेष ही। तथा कोई शैली विशेष भी नहीं है। ऐसी स्थिति में सन्धि का पारिभाषिक अभिधामूलक अर्थ पर संतोष करना पड़ता है।

सन्धि शब्द अपभ्रंश काव्यों में अधिक मिलताहै। जिस प्रकार संस्कृत में सर्ग विभाजन या अध्याय के अर्थ में सन्धि का स्पष्टीकरण होता है ठीक वैसे ही सन्धि सर्ग विभाजन के लिए अपभ्रंश काव्यों में प्रयुक्त होता है। बहुधा अपभ्रंश के कईमहाकाव्य संधियों में विभक्त हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि संधि किसी विभाजित सर्ग का नाम हो, या किसी वर्ग का अथवा यह शब्द अध्याय का समानार्थ होप्रत्येक सर्ग जब समाप्त होता है और नये सर्ग का प्रारम्भ किया जाता है तो

सन्धि उस स्थान पर प्रयुक्त होती है। वस्तुतः इसका प्रारम्भ हेमचन्द से ही मिलता है।हेमचन्द्र ने सन्धि को अपभ्रंश सर्ग विभाजक शब्द का नाम दिया है।

पद्य प्रायः संस्कृत प्राकृतापभ्रंश ग्राम्य भाषा निबद्ध-भिन्नान्त्यवृत्त सर्गा श्वास सन्ध्यवस्कंध- सत्संधि शब्दार्थ -वैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्- इस प्रकार इस सूत्र से स्पष्ट होता है कि संस्कृत के महाकाव्यों का विभाजन सर्गों में, प्राकृत के महाकाव्यों का आश्वासा में अपभ्रंश के महाकाव्य संधियों में और देशी भाषा के महाकाव्य अवस्कंन्धों मेंविभक्त होते थे।[१] इस प्रकार अब तक अपभ्रंश के महाकाव्यों में सन्धि शब्द कड़वक, ठवणि, आदि शब्दों की भाँति सर्ग विभाजन के लिए ही प्रयुक्त होता था। यही नहीं अपभ्रंशेतर काव्यों में भी यह शब्द मिलता है।

अपभ्रन्श में कड़वक समूहात्मक सन्धि अर्थात् बहुत से कड़वक मिलकर एक संधि की रचना करते थे।अतः सन्धि काव्यों को हम कोईसर्ग विशेष या छंद विशेष कह सकते हैं। इन काव्यों में सन्धि किसी छन्द विशेष के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। यों इन सन्धि काव्यों में कई काव्यों का विभाजन कड़वकों में किया गया है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा हो ही। अनेक काव्यों में कड़वक नहीं ही मिलते। अतः स्पष्ट है कि अपभ्रंश काव्य परम्परा में जिस प्रकार कड़वकों के समूहों के रूप में सर्ग विभाजन के रूप में सन्धि शब्द का प्रयोग मिलता है। पुरानी हिन्दी में वही शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त है परन्तु रचनाकारों ने सन्धि शब्द देकर छन्द काव्य की भाँति इन काव्यों की रचना अलग से कर दी है। वस्तुतः सन्धि सन्धि शब्द किसी धारा विशेष का द्योतक न होकर अपभ्रंश काव्यों की सन्धि काव्य परम्परा का निर्वाह करने वाला है।अतः यह कहा जा सकता है कि सन्धि काव्य महाकाव्य के सर्गों की भाँति स्वतंत्र काव्य है औरइन कई सन्धि काव्यों के द्वारा महाकाव्य का सा प्रभाव प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु प्रत्येक काव्य अपने में स्वतंत्र है।

१- देखिए- राजस्थानी वर्ष अंक० पृ० ५५-६४।

अत: इन कवियों ने एक संधि वाले इन खन्ड काव्यों को या प्रबन्धों में सन्धि नाम दिया है।

विषय के आधार पर विवेचन करने पर भी स्पष्ट होता है कि सन्धि काव्यों के वर्ण्य विषय बद्ध नहीं है इनमें से कोईभी विषय सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, चारित्रिक आदि चुने जा सकते है। अत: साधारण रूप में सन्धि का स्वरूप एक सर्ग की ही भांति स्पष्ट होता है। ये काव्य अपने में पूरे होते है।

सन्धि काव्यसद्यपि आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं होते है परन्तु यह शोध का अभाव ही कहा जा सकता है। अनेक जैन भंडार अभी बन्द पड़े है। १३वीं शताब्दी से ही सन्धि संज्ञक काव्य मिलते हैं जिनमें भावना संधि आनन्द प्रथमोपासक सन्धि, शील सन्धि, केशी गौतम सन्धि, तपसन्धि, उपदेश सन्धि चउरंग सन्धि- आदि रचनाएं है इनमें से तप सन्धि, उपदेश सन्धि, चउरंग सन्धि आदि में तो अपभ्रंश शब्दों कीबहुलता है उन्हें अपभ्रंशेतर काव्यो में स्थान नहीं दिया जा सकता। फिर भी इन काव्यों के उदाहरणों में भाषा में विकास के अंकुर अवश्य परिलक्षित होते हैं। उन काव्यों के कुछ उदाहरण पृष्ठ भूमि के रूप में देखे जा सकते है। शेषकाव्यों में भी अधिक अपभ्रंश शब्दावली है। परन्तु १३वीं शताब्दी की भावना सन्धि, आनन्द सन्धि और केशीगोयम सन्धि प्राचीन हिन्दी के काव्य है जिन पर हम आगे विचार करेंगें। यहां पृष्ठभूमि के रूप में कुछ अपभ्रंश बहुल सन्धि काव्यों के उद्धरण दे रहे है:-

-<u>चउरंग सन्धि- रत्नप्रभ-</u>

पणमवि सुर-वंदण दुरिय निंदण जग मंडण जिण सिद्धिवठिय
मुणि-जण रयणप्पहु गुणगण वारसु चउरंग मुणि सन्धि जिय
इह अत्थि चाउ भव वाव चाउ बहु-जीव-ठाउ विसयाभिराउ
वीसंकियत्थ अणच्छिद्द छेद बहु-रोग-सोग दुह जोय भेद (पाटण भंडार)

तप सन्धि- राज राजसूरि शिष्य-

सिरि सोम सुन्दर गुरु पुरन्दर पाय पंकय हंसओ
सिरि-विसाल-राया सूरिराया-चन्द गच्छ वंसओ
पय नमीय सीसई तासु सीसइ अेस सन्धि विनिम्मिआ
सिव सुक्ख कारण दुह निवारण तव उवएसिइ कम्मिआ [१]

(पाटण भंडार)

उपदेश सन्धि- गाथा १४, हेमसार

उवएस सन्धि निरमल बंधि, हेमसार इमरिसि करए
जो पढइपढावइ सुहमपि भावइ बहुइ सिद्धि बुद्धि लहए [२]

अभय जैन ग्रन्थालय से [३]उपलब्ध एक रचना शील सन्धि मिलती है। यह कृति भी अपभ्रंश शब्द बहुला है परन्तु इसमें भी भाषागत परिवर्तन परिलक्षित होता है। इसमें कवि ने शीलवान पुरुषों, देवियों और सती नारियोंका वर्णन कर उनको नमन किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं:-

(१) तित्थयर चक्किवल वासुदेव सुर असुर निरिंदहि विहिय सेव
अन्नेवि तिहुयण सिरि मिहाल, ते शील कप्पतरु कुसुम जालि
भंजिवि सुरनर असुर भोग आजन्म काल मय रोग सोम
अखंड शील साहिय सरीर, सिव सुक्ख लहु लहइ धीर

--- --- ---

१- जैन गुर्जर कवियो- मोहन लाल देसाई भाग १ पृ० ७९
२- वही, पृ० ८२।
३- अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर- सं० १४९३ में लिखित गुटके से प्राप्त ।

(२) सयल सुर विषय जं तेण इय थल्लिया, मयण मल्लेण इक्खुव संपिल्लिया
राज गइ गहिय पुण विस्समित्तइणो, लोय पयउ वि अंबा पडिसेविणो

--- --- ---

(३) रहनेमि पराजय विसय समुग्गि, पडिबोहवि ठाविय जीह मग्गि
सा सीलवंत उग सेण धूम सीलियं तिहुं भुवणहि पयउभूय

(४) सुभदारय सुन्दरि अंजण सुन्दरि दोवइ दवदंती पमुह
गुण रयण समिद्धिय भुवण पसिद्धिय जयइ महासइ सीलधर [१]

(५) रोग जल जलय विस भुअगह मगुणया, सीह करि सव्य चोरुरि उवसग्गया
भरि उभरारि भय करण जे देवई, सील मंताण नामेणले नासउ

इन कृतियों के उद्धरणों से स्पष्ट है कि भाषा में तत्सम शब्दों के प्रयोग क्रमशः बढ़ने लगे थे। (१३वीं -१४वीं) शताब्दी की कुछ पुरानी हिन्दी की संधिसंज्ञक कृतियां हैं:-

(१) भावना सन्धि सं० १३०० - जयदेव।

(२) आनन्द प्रथमोपासक सन्धि-सं० १३५२ के पूर्व विनयचन्द्रसूरि।

(३) केशी गौतम सन्धि- अज्ञात कविकृत - १४००

इसमें भावना सन्धि प्रकाशित है[२] तथा शेष दो कृतियां अप्रकाशित हैं।

-- भावना सन्धि --

भावना सन्धि एक उपदेशात्मक छन्द काव्य है। जिसको कवि ने सम्भवतः १३०० विक्रम के आस पासरचा होगा। कवि ने इस रचना को ६ कडवकों में पूरी की है। प्रत्येक कडवक में दस कड़ियां हैं और अन्तिम कडवक में ११ कड़ियां है।इस रचना के रचयिता मुनि जयदेव है जो मुनि शिवदेवसूरि के शिष्यों में थे।

१- अभय जैन ग्रन्थालय- बीकानेर- सं० १४९३ में लिखित गुटके से प्राप्त।
२- जैन युग: वर्ष- ४ अंक ११-१२ पृ० ३१४।

जहाँ तक काव्य की वस्तु का सम्बन्ध है इसमें कवि ने मुंज और विलासवती की प्रेम कथा का उल्लेख किया है।सम्भवतः यह काव्य कवि ने मुंज (१०५४) की मृत्यु के पश्चात् ही लिखा है। काव्य भाव प्रवण है। भाषा सरल है। यह काव्य कवि ने वस्तुतः जन साधारण में धर्म प्रचारार्थ ही लिखा है।अतः प्रस्तुत काव्य में लोक उपदेश और नीतिमत्ता है। कवि ने कथा के अतिरिक्त संसार की नश्वरता, ऐहिक जीवन के सुख दुखों का सम्बन्ध और उससे उत्पन्न हुई घृणा, नरकों का असह्य दुख और जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् कर्मानुसार पुनः जन्म ही इस काव्य का वर्ण्य विषय है। पूरा काव्य उपदेश प्रधान है।कृति शैली आलंकारिक है जिसमें विविध दृष्टान्त उदाहरण औरउत्प्रेक्षादि अलंकारों की प्रमुखता है।

भावना नाम को कवि ने अनेकभावनाओं का वर्णन करके सार्थक किया है। कृति की भाषा में शब्दों का चयन उत्तम है परन्तु अपभ्रंश शब्दों कीबहुलता है।

कवि ने रचना का प्रारम्भ मंगलाचरण से किया है और पांचवी कड़ी में मालवनरिंद मुंज की प्रेम कथा पर प्रकाश डाला है। कवि प्रारम्भ में ही जीव को प्रतिबोधन देता हुआ काव्य प्रस्तुत करता है:-

रे जीव, निसुणि चंचल सहाव, मिल्हेविणु सयलवि बज्झ भाव
नवभेय परिग्गह विविह जाल, संसारि अत्थि सहु इंदियाल (२चव)

मुंज और विलासवती के प्रेम आख्यान का चित्रण देखिए:-

मनरंजिय रमणि रमणीय देह, सयलंगकरहिर सक्कुरत नेह
तह देविण्हु मालव नरिंद, मयरज्झ बाणहय सुहणि चंद (५)

पुण्य सम्बन्धी इसी गाथा का उल्लेख कर मनुष्यों को कर्मों की ओर संलग्न रहने के लिए कवि ने उपदेश दिए है:-

पंचिदिय विसय पसंगरेहि, मण वयण कायनवि संवरेवि

---   ---   ---

बहुविह कसाय विहारहर एस्त,जिणवयण सुणहि जे पुन्नवंत
पम पुरूसय संगमपि सिद्धपईसि, सिम हच्छि वाच्छे ते हारंहि

विषय विषधरों की चर्चा के पश्चात् कवि ने बारह भावनाओं का भावन करने का उपदेश दिया है। पूरा काव्य संसार की नश्वरता, आवागमन के बंधन और नरक वर्णन आदि में ही समाप्त हो जाता है। कुछ उत्कृष्ट उदाहरण देखिए:-

ईय बारह भावण सुवण सुहावण, भणवि हेमजीवई चरिउ

दुलहु मणुयत्तण धम्मचवित्तण दस दिट्ठहिंहि मज्जुरिउ

कवि की भाषा का प्रवाह विविध दृष्टान्तों और उदाहरणों की सुषमा, छन्दोचित्य प्रधानता, ध्वन्यात्मकता तथा आलंकारिकता और आदि काव्य कौशल दृष्टव्य है। कुछ चुने हुए उदाहरण इस प्रकार हैं जिनमें जीव, कर्म अज्ञान, संसार व नरक के वर्णन है:-

(१) जिम दुह मणु रद्दिघहिं विसय समुद्दिघहि, तिम जइ धंमिवि होई जीय
ता जिव उक्कंणिय करयलसंठिय सुरनर सुह अणु संगि हुय, सो धम्मउ धम्मउ साहिमदुम (२१)

(२) जं अंनजंम कम्मे रुयंत, पईमारिय निग्घण जंतु हंस
तं रोग सोग दुह विहुर देह, अक्कालवि मच्चहि सुच्चगेहिं (२७)

(३) आरम्भ करे विणु जीव विहेविणु विविह वाहि किम सहसि जीय
सलसलंता संपई छियहउ कंपइ, मंका घडिघिइ ढंभ हुई (३१)

(४) समममाहार मीहार कमकेयमो, दुमम कुवास मीसाव विम्बयमे
हं नियुगोयदु मम्मुम भव भीडिओ, आविरे जीव, वीयरायचरिपीडियो (३३)

चरखे और पेड़ों का साथ संसार की नश्वरता, और कर्म की स्थिति आदि सबका वर्णन कवि ने बड़े मधुर छन्दों में किया है। छन्दों का प्रवाह व आलंकारिकता आदि का वर्णन दृष्टव्य है:-

(५) सो बहुचमम्म चरखे व दह संमयो, मूक मड विंटवलवीय मुच्चंमओ
वो कुवाडेहि मी महुम्मो मडुमो साव हिम जलम जलावली दिट्ठओ

(६) पुड विकाय मीठिय चवि कोमको, तमवि मणि रयण हरियाल हय हिंगुली
कुचम कुडालवल झुझवय सुम्मिमो, सफर सत्थेहि छिक्वेहि तं वत्थिओ

(७) मीर मीरेम छिन्नेम खारेम मा, कडुय कसायम अंबिलेम महुरेम
सिसिर उन्हेम उन्हावि सिसिरेम मा पवण पवणेम निहिणिज्ज वलणेणवा।

(८) अनुढंकहि मुक्तउ तडफडंत, अवेहिं निपीडिय कउयडंत
    रहि जुत्तउ त्रुट्टउ तडयडंतु बज्जावलि चक्कउ कड कडंतु

(९) कत्थय घण मुग्गर मारि ओसि हर सिवलि सूलिय विंधओसि
    कत्थय निब्बसं खाइ ओसि, अन्नत्थय तउ ओ पाइओसि

(१०) मणुऐसुवि दीहर रोग सोग, दालिद्द पराभवविप्पओग
    धणहरण मरण बारय निरोह सहियाई परब्वसि विवह दोह [१]

इस प्रकार पूरा काव्य इन्हीं नीति प्रधान भावनाओं के आवरण की शिक्षा में पूरा हुआ है।मुंज की गाथा से काव्य को प्रारम्भ कर कवि ने संसार की नश्वरता और कर्म विपाक का स्पष्टीकरण किया है। कवि ने यह काव्य क्यों लिखा यह कठिन है। कवि ने १२ भावनाओं- मसरणं, संसारो, एगया, अन्नतं,असुइतं, आसव, संवरो, निज्जरा, नवमा, लोकसहाओ, बोधिश्च दुर्लभा,धर्म स्वधावो अहंत: का भी विस्तार में वर्णन कर सांकेतिक परिचय दिया है।

१- पज्झडिय:- प्रस्तुत रचना में कवि ने कड़वक (१,३ और ५) में एक प्रकार का २,४ और ५ में दूसरा छंद अर्थात् -पज्झडिय -

वउमत करहु मणवारि ठाई
कवि अंस चवोहर पाईवाई
चउ घट्टिह मत्त पञ्चरइ ईहु
गम वारि पाय पज्झडिय हुहु

इस प्रकार इस छंद में ४ चरण है, हरएक चरण मे ४ गुण, और हरएक गण में चार मात्रायें है। अन्तिम गण पयोधर है उसकी स्थिति ∪ – ∪ है कड़वा १,३ और ५ में यह छंद है उदाहरणार्थ -रेजी[४] ।न निहुवि[४]।   संकल ऍठाॅव आदि।

२- निध्यिमालछंद- २,४,६ में प्रयुक्त इस छंद में चार चरण हैं हरएक चरण में ४ गण है और हरएक गण में पांच मात्रायें है। अन्तिम गण की स्थिति - अत:इस छंद के लक्षण निध्यिमाल छंद से बिल्कुल मिलते है अत: सम्भवत: यह छंद सही है। शास्त्रीय लक्षण है:-

हारु चउ हिण्णि सउ हिण्णि करि हिम्रुवमा

पञ्च गुरु बुगुण लहु अन्त कुरु सुगणा

पत्थ सहि चन्दमुहि वीस लहु मालणा

कव्ववर सप्प भण छन्द णिसिपालआ _(काव्य काल-प्राकृत पिंगल सूत्राणि)

इसके अनुसार णिशिपाल छंद में हरएक चरण में २० मात्राएं तथा ५ पांच मात्राओं के ४ गण होते है। पहले गण में स्थिति - और अंतिम में - - होती है। सन्धि का छन्द देखिए:-

इय अणो । यंमिते । सार तणे । णाइओ

आसि गो। लेवु कं । म्मेहिमु । क्लाइओ (१२)

३- घत्ता- १ यह छंद प्रत्येक कड़वक की अन्तिम कड़ी में है। स्तुति और काव्यारम्भ इसी छंद से हुआ है। इसके लक्षण इस प्रकार है:-

पिंगल कइ दिट्ठउ छंद उकिट्ठ घत्त मत्त बासट्ठि कउ

चउ मत्त सत्त गण बेवि पाअ भण तिणि तिण्णि लहु अंतधरि

पढ़मं दह वीसामो बीए मत्ताई अट्ठाई

तीए तेरह विरई घत्ता मत्ताई बासट्ठि

इस छन्द में दो चरण है।ऊपर के दोनों छंदों में चार चरण होते है अतः घत्ता द्विपदी का प्रकार है। ऊपर के छन्द चतुष्पदी के प्रकार है। एक चरण में ४ मात्राओं के ७ गण- ३ लघु मात्रा अन्त में। इस आधार पर हरएक चरण में ३१-कड़ी और पूरी कड़ी में ६२ मात्राएं होगी साथ ही तीन यति भी। उदाहरण देखिए:-

१० ८

पणमवि गुणधामा।भुवण पियामह

१३

जीवदयावीसइ पवक्क मवि = ३१

अप्पं पडिबोहइ। मोह निरोहइ।कोइ भव्व भावय वियसु (१)

इस प्रकार छन्दोंकी दृष्टि से इस कृति का महत्व स्पष्ट है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है आलोचकों ने इसे एक दम अपभ्रंश की कृति ठहराया है। परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। अपभ्रंश शब्दों का बाहुल्य यद्यपि मिलता है परन्तु फिर भी कहीं नवीन शब्दों का समावेश होना भी प्रारम्भ हो जाता है।संक्रांतिकालीन रचना होने से अपभ्रंश का प्रभावअधिक है। कृति काव्य व साहित्य की दृष्टि सेसाधारण

-- केशी गौतम सन्धि --

यह कृति अप्रकाशित है तथा रचना की प्रति अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है। प्रस्तुत कृति का समय १५वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। रचना का वृत्त धार्मिक है। कथा दर्शन के सिद्धान्तों पर रचनाकार ने प्रकाश डाला है। इस कृति में महावीर के शिष्य गौतम गणधर और पार्श्वनाथ के सिद्धान्तों के अनुगामी श्री केशी कुमार का संवाद है। दोनों के व्रतों तथा अन्य सिद्धान्तों का मत भेद ही इनके पारस्परिक संवाद का कारण है। रचना साधारण है तथा प्रारम्भिक दो कृतियों की अपेक्षा इसमें राजस्थानी का प्रभाव तथा राजस्थानी शब्दों की अधिकता है। दोनों ओर के शिष्य मंडल एक सभा करते हैं जिसमें केशीकुमार के पूछे प्रश्नों का समाधान गणधर करते हैं और दोनों में सन्धि हो जाती है। विचारों की सन्धि में पार्श्वनाथ के सिद्धान्तों का महावीर के सिद्धान्तों में परिहार हो जाता है। दोनों परस्पर सहमत हो जाते हैं और इस प्रकार पार्श्वनाथ के व्रतादि सिद्धान्त महावीर के सिद्धान्तों से समन्वय कर लेतेहैं। उदाहरणार्थ कुछ मतभेद सम्बन्धी प्रश्न इस प्रकार हैः-

(१) साधु समुदाय को श्वेत वस्त्रों की आज्ञा महावीर ने दी थी और पार्श्वनाथ ने सभी रंग के कपड़ों के प्रयोग में लेने की छूट दी थी- इसका क्या कारण है?

(२) शत्रु कौन कौन से है?

(३) काया के बंधन कौन कौन से है?

(४) हृदय के गहरे भाग रूपी जमीन में एक बेल उगी है और उस बेल में लगे जहरीले फलों का मूलोच्छेदन किस प्रकार किया जाय?

उत्तर हैः- तृष्णा बेल का विनाश।

(५) यह जो अग्नि जल रही है वह क्या है? उसका शमन कैसे हो?

उत्तर हैः- कषाय ही अग्नि है।

(६) मन रूपी घोड़ा वश में कैसे हो?

उत्तर है-उसे धर्म शिक्षा रूपी लगाम द्वारा वश में करो

(७) मनुष्य का स्थान व गति क्या है ?

(८) प्राणियों को प्रकाश कौन देगा?

उत्तर है:-ब्रह्मचर्य, सत् अहिंसा- का साधन करो तभी जीवन उन्नयन की ओर बढ़ सकेगा।

प्रस्तुत रचना में कवि ने दोनों के इन्हीं प्रश्नों का सफलतापूर्वक समाधान किया है। रचना बड़ी सरस है। काव्य तथा भाषा प्रवाह के अध्ययन के लिए कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं।

(१) आमवि गुरुवय वेस विसेसु अच्छहि निय निय गुरुह असेसु
सो नाण धणाणी कारण जाणी पीसण संसय हरण कए
गोयम सीस संघ संजुत्तउ केसी,पेसेविणु आवंतु
कुसु तिण आसणु आदरि देइ, विनयकरी गोयम बइसेई (६)

--- --- ---

(२) ससि रवि तेय सरिस ते सोहइ निम्मल नाण गुणे जग मोहइ
विहु धावि मिलिय पिक्खि विणु लोय कोऊ हलि आवइ सपमोय
सो मुणि संसय भंजण रेसी कर जोडे विणु पभणइ केसी

--- --- ---

च्यारि महव्वय साहि पयासिय, तेहि ज पंच वी जिण भासिय
काज हु एक दुइ साधेवउ किणि कारणि विहु बहुमंतेउ
रिसह काले जिय रिजु जड्डुंता, पच्छिम जुग रिजु वक्कजड्डंता (१२)

--- --- ---

(३) वरण वरंसइयालिय विसेसु, किणि कारणि किय विहुं परिवेसु
जीह जहुं मन निच्चल होइ, तिह जिणवेस विसेसन कोइ
वे धक विह कुमार विचारे, ते विहुं वेस विसेस विलोवे
निच्चल भव मलोवर राउ, विणु मुणि केसहि केवली जाउ
पच्चक्खण जो कामहि धारउ, वेस विसेस देहि सो नलियउ (१७)

(५) पास बंध मइ मुलह तोडिय, आपण पइ आपहं जिवि छोडिउ
मोह पास पसरंत सणेहु, वर व रगुग रव गच्छि देहु
मोह बंध जाणंतउ मुंकइ बंमदत्त जिम किमइ न बुज्फइ
साहु साहु गोयम तुहपन्ना .... (२६)

(६) दहु मव विस बेलि मंडति तिहुयण तक लाया विहरंती
विसमइ विसतरु फल हलमुली, सा तइ गोयम किम उनमली
मइ विस बेलि मूल साणि सौहिउ, तउ हुंत हेमिस माहिन मोहिउ
बेलि किसी पुछइ इम केसी तउ गोयम गुरु कहइ सुहेसी
मव तिण विस वेलि माणिज्जइ, विसइमूल सवेगि साणिज्जइ
जंजगि विसय विवास न डीया दोवि सुकन्नकार भव पडीया (३०)

(७) तेयम तिणि तुरंगम वडीउ, तउहुं किहीउ माग न पडिउ
मइसु तुरंगमि दमि वसि कीधउ तु हुं तिणिड माग न लीधउ
आसकिसाउ केसि पूछेइ, तउ सहू गोयम उत्तर देइ
चंचल चित्त तुरंगम जाणउ, सोइ जप कुदमीविसी आणउ
रामदमी मनु तिमवारि कीधर जिम सी तन्द्रिय माग न रमीधउ
साहु साहु गोयम तुह पन्ना .... (३४)

और इसी प्रकार उत्तर प्रत्युत्तर शैली में पूरा काव्य चलता है। कवि अहंकार मन, मार्ग, अंधर, तथा पंच प्रश्नों आदि की स्थिति समझाता है।भाषा सरल है तथा प्राचीन राजस्थानी है।भाषा के प्रवाह की दृष्टि से रचना महत्वपूर्ण है।साहु साहु गोयम तुह पन्ना- सम्बोधन से गीत शैली में पूरा काव्य चलता है। सैद्धान्तिक काव्यों में केशीगोयम सन्धि महत्वपूर्ण रचना है। जिसमें कवि ने गीत पद्धति द्वारा धार्मिक, कर्मवाद, व्रत सम्बन्धी तथा अन्य दार्शनिक तत्वों का स्पष्टीकरण किया है। उत्तराध्ययन सूत्र में केशी और गौतम का संवाद विस्तार से मिल जाता है। काव्य जन साधारण के लिए रचा गया है अतः भाषा में अपभ्रंश के शब्दों के साथ साथ बोलचाल की प्राचीन राजस्थानी शब्दों की ही बहुलता है।

(ब)

॥ कक्क मातृका काव्य ॥

कक्क मातृका काव्य :

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में अनेक काव्य उपदेशप्रधान उपलब्ध होते हैं। कक्क और मातृका संज्ञक रचनाएं उपदेश प्रधान काव्यों की परम्परा के विकास में योग देती है। कक्क संज्ञक रचनाओं की परम्परा का उद्भव प्राकृत और अपभ्रंश में मिल जाता है परन्तु अपभ्रंशेतर रचनाओं में कक्क, मातृका शिक्षा की पद्धति प्रस्तुत की गई है। बालकों को जो प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है उसका प्रारम्भ कहाँ से हो, बालकों को सीखने में सरलता हो, तथा अक्षरों का साधारण ज्ञान उन्हें यथा सम्भव शीघ्र हो जाय इसी उद्देश्य को लेकर ये रचनाएं लिखी गई है। इस प्रकार की रचनाएं हमारे सामने तीन रूपों में आती है:-

(१) मातृका

(२) कक्क

(३) बावनी

इन रचनाओं की एक शैली विशेष है। कक्क बावनी और मातृका काव्य रूपों के रूप में भी एक शैली के काव्य कहे जा सकते हैं परन्तु इन रचनाओं को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य रूपों का कोई भी प्रकार इनके अन्तर्गत प्रयुक्त किया जा सकता है। वास्तव में बावनी कक्क और मातृका आदि एक ही वस्तु के पर्याय है। अपभ्रंश से ही इन कृतियों का प्रारम्भ मिलने लगता है। अपभ्रंश के इतर प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती में इस प्रकार की कई रचनाएं मिल जाती है। १५वीं शताब्दी से ही इन रचनाओं की प्राप्ति होने लगती है। हिन्दी में आगे चलकर ऐसी प्रवृत्तियों वाली रचनाओं का नाम अक्षरावट के रूप में प्रचलित हो गया सा लगता।

बावनी संज्ञक रचनाएं मातृका और कक्क के बाद से ही लिखी गई है। सम्भवतः कक्क और मातृका नाम बावनी के पूर्व ही व्यवहृत होता रहा होगा। और १६वीं शताब्दी से तो ऐसी रचनाओं का नाम स्पष्ट रूप में बावनी मिलने लगता है।

१- नागरी प्रचारिणी पत्रिका: वर्ष ५८ अंक ४: सं० २०१० पृ० ४२८।

ककक मातृका का शिल्प

जहां तक इन रचनाओं के शिल्प का सम्बन्ध है ये कुछ निश्चित नियमों से ही बनाई जाती हैं। इनके शिल्प सम्बन्धी कुछ आवश्यक तत्व हैं वे इस प्रकार है:-

१- ये रचनाएं वर्णमाला से प्रारम्भ होती हैं।

२- इसमें स्वर और व्यंजन दोनों से ही विविध पदों का प्रारम्भ किया जाता है।

३- इन अक्षरों में सेप्रत्येक अक्षर से प्रारम्भ होकर (अक्षर अनुक्रम से रचे हुए) ५२ अक्षरों वाले ५२ पद लिखे जाते है।

४- ये रचनाएं विविध छन्दों में लिखी जाती हैं।पद का प्रारम्भ पहले अक्षर से होता है जिनमें या तो ऊँ से होता है या प्रथम स्वर।

५- इन पदों को किसी भी कथा, ~~चिर~~ रास चउपई, उपदेश तथा नीति प्रधान वस्तु में बांधा जा सकता है।

६- इनरचनाओं के शिल्प में ज्ञान उपदेश के साथ साथ वक्रोक्ति,कटाक्ष तथा उग्र विचारों का प्रकाशन भी मिलता है।

७- बालक के प्रारम्भिक शिक्षण कौ इसके शिल्प में पहले ध्यान रखा जाता है अत: बालक सामान्यत: पहला अक्षर किस प्रकार याद रक्खे व क्या याद रक्खे उसी का पहले विवेचन करती है।

८- इनमें बावन अक्षरों का विस्तार होता है और शिरेफनवा अक्षर परब्रह्म है। बावन अक्षरों का दूसरा नाम मातृका या बावनी है।

९- इस प्रकार इन अक्षरों का ज्ञान कराने के लिए इन पदों में काव्यगत सरसता कथा अथवा नीति का समावेश होता है, जिससे कठिन विषय भी सरल हो जाता है।

१०- इनरचनाओं में पहलेसिद्धों को नमस्कार किया गया है यह नाम बहुधा "ऊंनमः सिद्धम्" होता था जो आज भी बोला जाता है।

११- ये अक्षर क्रमशः इस प्रकार हैं[1] ऊँ नमो सिद्धं"

१- मधुकर, वर्ष ५ अंक १९-२० पृ० ४९४।

(स्वर)- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, रि (ऋ) री (ॠ) लि, (ऌ), ली (ॡ)
 ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

(व्यन्जन)- क,ख,ग,घ,ङ, च,छ,ज,झ,ञ , ट,ठ,ड,ढ,ण, त,थ,द,ध,न, प,फ,
 ब,भ,म, य,र,ल,व, श,ष स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ।

इस प्रकार बावनी में कुल ५२ अक्षरों का समावेश होता है

१२- इन रचनाओं की शैली-अक्षरानुक्रम से ही प्रारम्भ होती है अतः इस प्रकार कीरचनाओं का एक निश्चित काव्य रूप हो गया है जिनमें विविध छन्दों का समावेश हो सकता है।

इन नियमों में वस्तुतः कुछ अपवादों की सृष्टि भी हुई है।परवर्ती काव्यों में ५२ अक्षरों के स्थान पर ५६,५७ पद भी मिलते हैं तथा साथ ही कक्क मातृका के स्थान पर बावनी और इसके बाद बारह खड़ी[1] संज्ञक रचनाएं मिलती हैं। इसी प्रकार परवर्ती हिन्दी साहित्य में अखरावट[2] या ककहरा[3] संज्ञक रचनाएं मिलती हैं। जायसी और कबीरने भी इस प्रकार की रचनाओं का सृजन किया है[4] परवर्ती रचनाओं में कई अक्षरों में भिन्नता भी मिलती है।जैनेतर रचनाओं में ॐ न म सिधं (ॐ नमो सिद्धम्) अक्षरों से प्रारम्भ होती है। बावनियों में ङ, ञ के स्थान पर न, ष के स्थान पर ख,स और अः के स्थान पर ज और ब (रचना में कठिनता केकारण) प्रयुक्त किए गए हैं।[5]अनेक रचनाएं ऐसी भी हैं जिनमें स्वर प्रयुक्त नहीं होकर व्यंजन अक्षर ही प्रयुक्त हुए हैं।यों प्रादेशिक भाषाओं में तामिल कर्नाटक और महाराष्ट्र में भी मंगलाचरण और प्रारम्भ ॐ नमः सिद्धम् ही है। परवर्ती कृतियों में धीरे धीरे तेलगू में नमस्कार संज्ञक ॐ नमः शिवायः"सिद्धाय नमः" आदि शब्द हैं।उड़िया और कलिंग में सिद्धिर स्तु तथा महाराष्ट्र में श्री गणेशाय नमः। ॐ नमः सिद्धम् आदि शब्द इस प्रकार मंगलाचरण में प्रयुक्त हुए हैं।

इस प्रकार कक्क मातृका बावनी, बारखड़ी और ककहरो सम्बन्धी

१- नागरी प्रचारिणि पत्रिका वर्ष ५८ अंक ४ सं० २०११ पृ० ४३०
२- मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित अखरावट। ३-कबीर का बीजक व ककहरा
४- वही। ५- मधुकर वर्ष ५ अंक १९-२० पृ० ४९४ में श्री अगरचन्द नाहटा का हिन्दी भाषामें बावनी साहित्य शीर्षक लेख।

रचनाओं की परम्परा १९वीं और २०वीं शताब्दी तक सुरक्षित मिलती है। जैन में अजैन लेखकों की हिन्दी राजस्थानी और गुजराती लेखकों की लगभग ५० बावनियां और कई बारखड़ियां तथा बत्तीसियां आदि संग्रहीत हैं।जिस पर विवरण प्रकाशित हो चुका है।

अतः यह कहा जा सकता है कि अपभ्रंश में जो इस रूप में रचनाएं मिलती हैं उनमें कक्क मातृका के आंशिक तत्व भी नहीं मिल पाते। अतः यह कहने में कोई आपत्ति परिलक्षित नहीं होती कि कक्क मातृका संज्ञक रचनाओं की परम्परा के उद्भव का श्रेय आदिकालीन इनरचनाओं को ही है। अपभ्रंश में यों स्पष्ट रूप में इस आशय की कोई कृति उपलब्ध नहीं होती।श्री नाहटा जी ने इसका प्रारम्भ करने वाली वर्णमला संज्ञक रचना पृथ्वीचन्द्र रचित (सं० १३०० के लगभग) मातृका प्रथमाक्षर दोहक को ही कहा है वे इस रचना को अपभ्रंश शब्दों की बहुलता से अपभ्रंश की ही मानते हैं।परन्तु वास्तव में यह प्राचीन राजस्थानी की ही है। इन भाषाओं में बहुत कम ही अन्तर है। इसलिए अद्यावधि उपलब्ध रचनाओं के आधार पर यह कह देने में आपत्ति नहीं है कि कक्क मातृका और बावनी साहित्य का श्री गणेश करने वाली रचनाएं प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती की यही मातृका प्रथमाक्षर दोहक रचना है।इस संज्ञा की कुछ महत्वपूर्ण कृतियों का विश्लेषण यहां किया जा रहा है:-

:मातृका प्रथमाक्षर दोहा:[१]

प्रस्तुत रचना चान्द्रकुलीय श्री पृथ्वीचन्द्र द्वारा विरचित है।पृथ्वीचन्द्र अभयसूरि के शिष्य थे। इसी रचना को कवि नेरस विलास कहा है।विविध उदाहरणों व दृष्टान्तों द्वारा कवि ने रस, संसार, नर, नारी, कलियुग, काम और आनन्द आदि के लिए अनेक अलंकारों में सुन्दर उदाहरण दिए हैं। दोहा छंद में होने से काव्य सरस और प्रवाहपूर्ण है। यद्यपि रचना अपभ्रंश शब्दों से

१- हिन्दी अनुशीलन- वर्ष ८ अंक १ पृ० ११७।

अधिक प्रभावित है परन्तु अनेक राजस्थानी शब्दों का आना अपभ्रंश की उत्तरवर्ती स्थिति का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते है।रामसिंह मुनि के ग्रन्थ पाहुड़ दोहा की भाँति ही यह ग्रन्थ उपदेश प्रधान है। कवि प्रारम्भ में ही रचना के रसविलास नाम के साथअपना नाम स्पष्ट कर देता है। रस का चित्रण करके कवि ने संसार की नश्वरता कलियुग का प्रभाव आदि का स्पष्टीकरण किया है।

मातृका प्रथमाक्षर दोहा को कवि ने ओ नम सिध (ॐ नमो सिद्धम्) के रूप में प्रारम्भ की है। भाषा, भाव, प्रवाह, रचना कौशल तथा उपदेश व नीति आदि सभी दृष्टियों से रचना के कुछ उदाहरण दिए जा रहे है:-

माई अक्खर पुरि धरिवि वर दूहय छंदेण
रस विलास आरंभियइ सुकवि सुहवि चंदेण

--- --- ---

चंचोला मण कल्लहड जिम जिम सुहन अंसु
तिम तिम चोलमजिट्ठ जिम, नवल मकल्लड रंगु

--- --- ---

आसंधिया जिठाय तहिं मण छंदइ ववहरइ
ठवि जा मेली अपाय जउ लगि हाथन पाविवइ
इच्छा ऊरीमारि धरि सो किम्व बाहिरि ठाइ
अंमणि कहियइ केलिमणि बोरकु नीमणवाइ
ईसक अरु दावाक मन कल्हु अरु विसय पक
वाम्हिउ अइ मुनिवहि तिम्मिड सुमइ पालियहि
रिपु जिम विसवहि पारियहिं कहिमण वस कल्ह पुरी
काम्भिण मन परि विलसियहि उमुमइ उमुमइ पुरि
कुमइ जइ वहि पिरु सो तिणि दिट्ठइ रंजियइ
पहु मेवारउ होई गोर झमहि तिणि गज्जिवइ
धरिहि अक्खरि पावियइ मणइ मणोरह पुरी
कम्मि मम्मि पइसमइ सुपणु वावहरीरि
देवह माणुसु लोहमउ मिमवइ इहिं संसारि

इस रचना में कवि ने अ से ह तक मातृका वर्णन किया है। श्री मोहनलाल देसाई ने प्रस्तुत रचना को १५वीं शताब्दी की लिखी है[1] परन्तु वास्तव में पृथ्वीचंद के गुरु का समय सं० १२७८ है अतः इस कृति का रचना संवत् १३०० के पूर्व ही कहा जा सकता है।

रचना का प्रत्येक दोहा अपने में स्वतंत्र है। तथा मातृका के नियमों का निर्वाह किया गया है।अन्त में कृतिकार ने अपना नाम स्पष्ट कर दिया है।कृति की भाषा अपभ्रंश बहुला राजस्थानी है परन्तु अपभ्रंश का उत्तरवर्ती रूप स्पष्ट है। १३वीं शताब्दी की सभी रचनाओं में अपभ्रंश का प्रभाव इसी प्रकार मिलता है।

: सम्यकत्वमाई चउपइ[2] :

१४वीं शताब्दी में सम्यकत्व माई चउपइ रचना प्राप्त होती है।रचनाकार जगडू है। कृति का रचनाकाल सं० १३३१ के पूर्व है। जगडू जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। कृति में कवि ने स्वयं अपना परिचय दिया है:-

हासामिसि चउपई बंधु कियउ, माइतणउ ?कु मई नियउ
उणउ आगलउ किंपि भणेउ, जगडू भणइ संघु सयलु समेउ
श्रीमंडउ सुता घरि रहइ, मंडउ सिहि मंदिर कवि कहइ
मंडउ जिणेसर सूरि मुणिंदु जा रवि उगइ उगइ चंदु[3]

रचना में पूरी वर्णमाला स्वर व्यन्जन सहित वर्णित है।प्रस्तुत कृति का रचना शिल्प ठीक वैसा ही है जैसा सं० १३२७ में रचे हुए एक सप्तक्षेत्री रासु के लेखक की कृति मातृका चउपइ का।यह भी बहुत सम्भव है दोनों कवि एक दूसरे से प्रभावित रहे हों। कवि ने काव्यके अन्त में ६२, ६३ व ६४वीं कड़ियों में अपना परिचय दिया है। मातृका चउपइ और सम्यकत्व माइ चौपई दोनों कृतियों के प्रारम्भ में साम्य मिल जाता है।

१- जैन गुर्जर कविओ; मोहनलाल देसाई पृ० १४७७ भाग ३ खं० २।
२- प्रा०गु० का०सं० सी०डी० दलाल: पृ० ७८-८२।
३- वही,पद (६२-६४)।

सम्यकत्व माई चउपइ में कविने सम्यकत्व का मातृका शैली में विश्लेषण किया है।सम्यकत्व माई चउपइ में कवि जिनवचन को महत्व कम स्पष्ट करता है उसका उपदेश जन जीवन को सम्यकत्व द्वारा ही ऊपर उठाना स्पष्ट होता है। मातृका चउपइ और सम्यकत्व माई चउपई दोनों की मूल भावनाओं का तत्वतः विरोध प्रारम्भ में ही देखा जा सकता है:-

सम्यकत्व- भले भणउं माई धुरि जोइ धम्मह मूलहु समिकत होइ

समकतु विणु जो क्रिया करेइ तारह लोहिनीरु बोलइ

"तारह लोहि नीरु घालेइ"से सम्यकत्व का महत्वकवि प्रस्तुत करना चाहता है जबकि मातृका चउपइ में कवि इस आधार को नहीं मान जिन वचन पर ही जोर देता है:-

मातृका: भले भलेविणु भणीअइ भलउं, तिहुयर्ण माहि सारु एतलउं

जिणु जिन वचनु जगह आधारु इसीउ मूकिउ अवर असारु

वस्तुतः दोनों कृतियोंका सैद्धान्तिक अन्तर पूर्णतया स्पष्ट है। रचनाकार ने ६४ कड़ियों में चउपइ छंद में पूरी रचना लिखी है। कवि ने ऊं से ही प्रारम्भ करके अ से लेकर ह तक की वर्णमाला को पद्यों में बांधा है। काव्य की दृष्टि से रचना कोई महत्वपूर्ण नहीं है। पूरा काव्य उपदेश प्रधान है।कवि विविध दृष्टान्तों और अंतर्कथाओं द्वारा उन धार्मिक सम्यकत्व जैनियों का धार्मिक सिद्धान्त व साधना की ऐसी स्थिति है जो अनेक जन्मों तक तप व शिक्षा द्वारा ही प्राप्त होती है।पूरे काव्यमें कवि इसी तरह दान महिमा,सुगुरु कुगुरु का भेद, पात्र कुपात्रका पुंडरीक वज्रकुमार, दशार्णभद्र, वयरस्वामी जंबूस्वामी आदि की अन्तर्कथाओं द्वारा सम्यकत्व का महत्व स्पष्ट करता है। कविदान महिमा और देव परमेश्वर तथा पात्र कुपात्र भेद तथा मन के चांचल्य आदि का स्पष्टीकरण बड़ी ही सरल भाषा में करता है।कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं:-

मन मंकडउ कुवरि जमडउ, चउदह पुब्बह जो समुद्धरउ

समकित वइ लागई संसारि, वाये हुई पडी भंडारि

मनु मंकडु मट कापि चडेइ, घडिय माहि वारविय करेइ

तसु मणमकु जुय प्यानु करंति प्रसन्न चंद जिम सिद्धिहिजंति (४)

आगम वयणु पंचमइ अरइ, केवल नाणु प्रभव हुइपरइ
इसइ कालि समिकत दृढ चित्त ते नर जाणे अगह पवित्त
इण भवि परभवि सुरकु लेहउ सगुरु तणेउ वयणु पालेहु (८)
वीतराग जउ वंदिवि पाय, ऊडइ पाप होइ निम्मल काय
सूधउं दानु मुनिहि जो देइ, संगम तणउ लाभु सो लेइ
रिद्धिहिं तणउ लाभु जगि लेहु, दस खेत्रे तुम्हि धनु वावेहु
दीना दानह नासु म जोइ सुपात्रि दीन्हइ बहु फल होइ
रीतिहि दानह नथी निवार, उचितु दान दीजइ सविवार
लिहियं जगि लोडइ सउ कोइ, कुपात्र विहुदर साहसु होइ
सीरु आणि जउ मुक्ति घातियइ पाप विसेषिहि तसु विसुधियइ
लीहन लंघउं सगुरुतणी किया करउं जा आगमि भणी (१०-१६)
विधि मारगु मानउं सविवार जाणउं जइ छूटउं संसार (१६)

कवि ने सम्यकत्व के पालन कर्ता श्रेष्ठ आदर्श महापुरुष जम्बू स्वामी व प्रभव तस्कर संवाद को कथा का माध्यमक बनाकर रचना को प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया है:

भणइ प्रभवु नव जोवण नारि परिणिय पुन्न वखिण संसारि
काम भोग भोगवि इणि समइ, जोवण गइ व्रतु लेजे तिणइ
पयणु चरहु सोभई वसि किय्उ, मोहराउ माढिउ माथियउ
मधुबिंद साहस इहु संसारु, निसुणि प्रभव मुहु जोइ विचारु
जगु पिंडारु समउ बरेवेइ मुह जिम पितरह पिंडु कु देइ
रतिपति जाणउ हुई वसि कियउ नाका तणउं संबधु किम थियउ
अढारह नाता कथा कहेवि प्रभवु सांभली कउ मुकेति (४९)

कवि ने स्थूलिभद्र के दृष्टान्त से शील के महत्व को स्पष्ट किया है। सैयम सम्यकत्व की नींव है:-

छ विगइ भोजनु चित्रसाली रहइ, जगह मांड थूलिभद्रलीह लहइ
अडमड राखि न इणि संसारि, युगप्रधान जोइ जम्बु विचारि
मलइ आउ जिम अंचलि नीरु सीलु जो पालइ सो नर धीरु

कवि ने अपनी रचना में तालारासु और लकुटा रासु का भी उल्लेख किया है परन्तु स्त्रियों के लिए यह रास वर्जित किया गया है:- कवि ने इस संबन्ध में सप्तक्षेत्री रास का विरोध किया है। सप्तक्षेत्री रास (सं० १३२७) में दोनों रास आनन्द सूचक है पर जगडू दोनों का विरोध करता है:-

सप्तक्षेत्री:-

पीछे ताला रास पढइ बहुभाट पढंता
अनइ लकुटारस जोइई खेला नाचंता
सुललित वाणी मधुरि सारि जिन गुण गायंता
ताल मानु छंद गीत मेलु, वाजिय वाजंता

सम्यकत्वमाई:-

अंखड विधि अविधिहि जाणंति, मंदिर पइठ निसिहिन करंत
ताला रासु रमणि क्षण नहि देइ, लउडा रसु मूलह वारेइ

वस्तुतः पूरी कृति में काव्यात्मक उत्कृष्टता नहीं है।कृति साधारण है तथा उपदेश व नीति प्रधान है।

भाषा की दृष्टि से इस कृति का महत्व स्पष्ट होता है। जगडू ने रचना को सुबोध और सरस बनाने के लिए इसमें अनेक लोकोक्तियों, सुक्तियों नीतिवाक्यों और उपमाओं का प्रयोग किया है। यद्यपिकृति में काव्य कौशल व रचना चमत्कार नहीं के बराबर है परन्तु कई सूक्तियां काव्य को लोकप्रिय व सरस बनाने में योग देती है:-

(१) छाहइ लोहि नीरु चाखेइ

(२) सक्खिं जणि लोडइ बहु कोइ, कुपात्रु निवहर वाहलु होइ
    खीरु जाणि जइ पुणि चाखिवइ, पात्र विसेखिहि बहु विसु थियइ

(३) उपसमवंत बहु रहइ न किमइ गायडी भणि भणि लाभइ लिमइ

(४) गलइ आयु जिम अंजलि नीरु, बीहु तु पाडइ तो नर धीरु

(५) समकित जइ लाभइ संसारि जाणे छुरी पड़ी भंडारि

(६) कुगुरु वाणि तउ विछुडलरेइ, सुगुरु वाणि जउ आणिउ करेइ

(७) मनु मयगलु शुम ध्यानुंकरंति, प्रसन्न चंद जिमसिद्धिघहि जंति

(८) धन जि गुरु धारकउ करंति गुरु विणु समकतु किमइन हुंति

(९) अच्छइ मोह चरणु इणि समइ, समकितु न रयणु न लाभइ किमइ

(१०) विधि मारगु मानउं सविचार, जाणउं जइ छूटउं संसार[१]

(११) ओया दीसइं बहुत गमार धंमह तणी न पूछई सार

वस्तुतः उक्त उदाहरणों से रचना की सरलता और लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

१४वीं शताब्दी में इसी प्रकार की कई कृतियां मिलती है जो काव्यकी दृष्टि से साधारण महत्व की है पर भाषा और कक्क मातृका शैली तथा छंदों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ये कृतियां नीति प्रधान है तथा धर्म प्रचार के लिए ही लिखी गई है। वर्णमाला के ५२ अक्षरों का सम्यक् निर्वाह होने से इसरचना का नाम मातृका बावनी भी मिलता है।अतः मातृका बावनी व सम्यकत्व माइ चउपई दोनों एक ही रचना के दो पर्याय है। इस प्रकार सम्यक् दर्शन तत्व की प्रतीति, श्रद्धा, तथा वस्तु का सम्यक् बोध आदि सभी रूपों का दर्शन यह रचना करती है। जैन धर्म के सिद्धान्तों का इन रचनाओं द्वारा पूरा पूरा प्रचार किया गया है। निस्संदेह काव्य और धर्म दोनों ही दृष्टियों से ऐसी रचनायें महत्व पूर्ण है।

:- मातृका चउपइ[1] -:

यह रचना प्रकाशित है।कृति का रचनाकार अज्ञात है।इसी की समकालीन एक रचना सप्तक्षेत्री रासु मिलती है।दोनों कृतियों के आदि अन्त में पर्याप्त साम्य है अतः यह कहा जा सकता है कि संभवतः दोनों कृतियां एक ही लेखक की रही होंगी।[2] सप्तक्षेत्री रासु और मातृका चउपइ का परस्पर साम्य देखिए:-

सप्तक्षेत्री-

सवि अरिहंत नमेवी, सिद्धसूरि उवझाय
पनर कर्म भूमि साहू तीइ पणमिय पाय

मातृका:-

सवि अरिहंत नमिवि सिद्ध सूरि
उवज्झाय साहू गुण भूरि

इसी प्रकार अन्त में भी पर्याप्त साम्य है। पूरी रचना चउपइ छंद में है।रचना कक्क पद्धति या शैली में लिखी गई है। मातृका इसका मूल अक्षर है। हर एक मूलक्षर से पद्य प्रारम्भ होकर क्ष तक गया है।इस रचना में ञ नहीं है तथा ड०,ज,ल की राजस्थानी रूप क को कवि ने मान्यता दी है। ॐ नमो सिद्धं से लेकर पूरी ६४ छंदों में लिखी गई है। मातृका चउपइ भी सम्यकत्व माई चउपइ की भांति नीति और उपदेश प्रधान है जिसमें कवि ने कर्मवाद के सिद्धान्त पर,संसार की नश्वरता, मन की चंचलता एवं आदर्श महापुरुषों के जीवन आदि पर प्रकाश डाला है। रचना की भाषा और आलंकारिकता तथा काव्यात्मकता के कुछ स्थल देखिए:-

(१) मनु चंचलु जे अभिनहु करई, जिणह आण सिर ऊपर धरइ
कमइ कषाय दंडीय संवरई, ते शिव नयरि सुखि संचरइ

--- --- ---

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह- पृ० ७४

२- आपणा कवियो: श्री के०का० शास्त्री पृ० १८७-१८९।

(२) इणि संसारि दुख भंडारी, लइन जीवकाय धम ऊगारि
वीत रागि जं आगमि कहीउ, करेतइ जियणु भावन सहीउ
जोइउ आगम तणउ विचारु पाच्छइ भारिन परत भंडारु
उप्पल दल उप्परि जिम नीरु ते सउंबंधतु जीव सरीरु
उपर सिंचे भावनानीरि वगसरु नोही जिम तारइ सीरि
सुगुरनी जाम विलगीङकरी, जान जीव भव साइसतरी
अंतु न लाभई इह संसार काई तु जीव हिइन विचार (८-३५)

अनुप्रास का निर्वाह देखिये:-

(३) धरि धरु हिंडिसि जीव अणाहु
जइ न नमिति जिनु तिहूअण नाहु
जिनु धमु विणु सुखु नहीं संसारि,
अवर रमालि दीस मन हारि

(४) जग गुरु जग रखणु जग नाहु
जग बंधवु जग सथनाहु
जग तारणु जिउ जग आधारु
जिण विणु अवरि नहीं भव पारु (११७ ४)

(५) थर थर कंपई कायर चित्त, देखीउ मुनिवर भाषा सत्त
धीरा सत्तवंत जे जाण, भाळई दीव सहीउ जिम भाण (४१)

(६) मइणु जि मारई ते जगि सूर
जे मारीयई मइणि ते भूर
धीरा सुभट बहु छटकइ
मारीउ कमु ना'उ मीडवइं

अन्त में कवि भरत वाक्य की भांति मंगलगान करके कृति समाप्त करता है:-

मंगल करउं सवि अरिहंत,
ते अच्छई जिन लच्छी कंत
मंगल सिद्धिय सूरि उवझाय

मंगल करउं साहुणा पाय
जा ससि सूरु सूयणु व्यापर्यंति
जा ग्रह नक्षत्र तारा हुंति
जा वरतइ वसुह व्यापारु
तो सिव लच्छि करउ मंगलाचारु

इस रचना के शब्दों में तत्समता स्पष्ट परिलक्षित होती है- महिमा,नानाविधि, जिनभवन रूप पद्म पुस्तक क्षेत्र मूर्ति प्रसाद आदि अनेक शब्द है। पूरी कृति साधारण है और जन भाषा का एक नीतिपूर्ण उपदेश प्रधान काव्य है।

॥ संवेगमातृका ॥[1]

१४वीं शताब्दी की एक ऐसी ही रचना संवेग मातृका है। रचना ६१ कड़ियों की है और श्री दलाल ने सं० १३५० के ताड़पत्र द्वारा इस का पाठ प्राप्त किया था। संवेग मातृका भी मातृका शैली में ही लिखी गई है तथा मुनियों के लिए, धर्म प्रचारार्थ इसकी रचना हुई है। रचना साधारण है।भाषा में पूर्व प्राप्त कृतियों की भांति पर्याप्त प्रवाह है परन्तु काव्यात्मकता का अभाव है।

इस रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने इसमेंशून्य (०) का भी मूल्यांकन किया है। रचनाकार मातृका का प्रारम्भ बिन्दु (०) से ही करता है। रचना चउपइ छंद में लिखी गई है। शून्य का महत्व प्रतिपादन देखिए:-

मींडउ भणीइ किम कवि कहइ
मींडा विणु संसारु जु भमइ
मींढा वणीअ ज एवड सक्ति
मींडउं घ्यातां हुअइ ज मुक्ति[2]

इस प्रकार कवि ने शून्य को मुक्ति या साध्य बताया है कि किस प्रकार बिना शून्य की साधना के संसार भ्रमण करता है।

कुछ उदाहरण इसी तरह के दृष्टव्य है, जिससे स्पष्ट होता है कि कृति का भाषा की दृष्टि से भी कोई बहुत परिवर्तन स्पष्ट नहीं है।रचना साधारण है। भाषा में अन्य कृतियों की भांति नवीन रूपों का आगमन और तत्समता की ओर झुकाव मात्र लगता है।

भले भणउ आपुउ परमत्थु
दुलहउ नरविह संभइ सत्थु

१- प्राचीन: जैन भाडागारीय ग्रन्थ सूची: श्री सी०डी० दलाल, पृ० १८९-९०

२- वही।

एह जणे विणु लाहउ लियउ

निय विढत्थु घणु धम्मि दिउ

पूरी कृति धर्म प्रचार की दृष्टि से लिखी गई है।रचना में अपभ्रंश के शब्दों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है परन्तु अधिकांश तत्सम तथा राजस्थानी है।

अन्त में कवि मंगल गान करता है तथा रचना का श्रावकों के लिए रचने का अपना मंतव्य स्पष्ट करता है:-

मंगलु महासिरि सउ संघु, जसु आय देवह अलंघु

उवसमि सउ संवेगिहि रची, बहुमाली सावय मुणि रचि

॥ शालिभद्र कक्क[1] ॥

कवि पद्म विरचित एक सुन्दर कृति सालिभद्र कक्क उपलब्ध होती है। जो अद्यावधि उपलब्ध कक्क मातृका संज्ञक काव्यों में उत्कृष्ट रचना है। प्रस्तुत कृति ने अब तक प्राप्त लगभग रचनाओं से यह शिल्प गत और वस्तुगत नवीनता प्रस्तुत की है। शिल्प गत वैभिन्नय से तात्पर्य रचना की कक्क पद्धति से है। कवि ने स्वर व्यंजन का क्रमशः वर्णन नहीं कियाहै। इसमें प्रत्येक व्यंजन को दो दो बार अकार आकार लगा लगा कर लिखा है।साथ ही कोई भी स्वर वर्णन पद्धति में ग्रहण नहीं किया गया। यथा क का, ख खा, ग गा, घ घा ...., आदि पद्धति से पूरा काव्य लिखा है। दोनों श और स एक ही स सा में चले हैं।

रचनाकार पद्म का समय निश्चित नहीं मिलता परन्तु भाषा और अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर सं० १३५८ के आस पास ही निश्चित कियागया है। क्योंकि यह रचना जिनप्रभ की रचनाओं के साथ लिखी मिलती है।[2] पूरा काव्य वे दोहा छन्दों में लिखा गया है। रचना श्री दलाल के संग्रह[3] में प्रकाशित है।

रचना का कथा शिल्प काव्यात्मक है।पूरी रचना में शालिभद्र अपनी माता को संसार को छोड़ने का उपदेश देता है।माँ उसे संयम और वैराग्य की शिक्षा पूर्ण स्थितियों को समझाती है परन्तु शालिभद्र उसका सुन्दर शब्दों से उत्तर दे देता है और अन्त में माँ को उसे दीक्षा का आदेश देना पड़ता है। शालिभद्र बहुत ही सरस दृष्टान्तों और उदाहरणों से माँ को सन्तुष्ट करता है और जीवन की निस्सारता समझाता है। पूरा काव्य उत्तर प्रत्युत्तर शैली में लिखा गया है। शालिभद्र और उसकी माँ के पारस्परिक प्रश्नोत्तरों में कवि ने धर्म, संसार, जीव, तत्व, संकल्प आदि सभी का सुन्दर विश्लेषण किया है।अस्तु पूरे काव्य को संवाद-काव्य कहा जा सकता है।

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ० ६२।
२- वही।

मंगलाचरण कर कक्क पद्धति व अपने नाम का कवि प्रारम्भ में ही परिचय देता है:-

मलि मंजणु कम्मारिबल वीरनाहु पणमेवि

पउमु भणइ कक्करकरिण सालिभद्द गुण केइ

क का, ख खा, ग, गा, घ घा आदि इसी नवीन कक्क पद्धति को इस प्रकार देखा जा सकता है:-

गयगमइत्त वीरिय पवर जे जगि पुरि सघहाण

सालिभद्द भद्दा भणइ सो संजमु सोहइताण

गारव वज्जिउ विन्नवउं काइउ मगुगीं माइ

जइ मोकलउ कउ प्रसलिवउं तुम्हह पाय पसाई

घणकुंकुम चंदण रसिण तुह तणु वासि उवच्छ

वयह परीसह किम सहिणि मुणि गंगाजल सच्छ

खाणइ पीलिय पंच सई संदग सूरिहि सीस

साहु माइ दुस्सहु सहई परिस धर्म्म जगीस

रचना के माता पुत्र संवाद के सरस, भाव पूर्ण उपदेश, तथा वैराग्य पूर्ण विचार तथा इस संसार की नश्वरता सम्बन्धी एवं संयम के महत्व का प्रतिपादन करने वाले कुछ स्थलों का परिचय दृष्टव्य है।जिसमें काव्य की उत्तर प्रत्युत्तर संवाद शैली का स्पष्ट प्रयोग मिलता है।पूरी रचना दोहा छंदों में लिखी है। वर्णन आलंकारिक भी स्पृहणीय है। उक्ति का अनुप्रासन कृति को सरस बनाने में पूर्णयोग देता है।

सार समुद्दह आगलउ,माइ।कहिउ संसारु

संजम पवहण हीण सहु बिम्मंइ न लहइ पारु (५)

मां कहती है हे पुत्र, मणिधारी सर्प की भांति संयम मणि भी प्राण हर लेती है प्राप्ति बड़ी कठिन है:-

फणिरायह सिरि पुत्त, मणि मुल्लेण न बहुमुल्लु

सा गिण्हंता प्राणहर संजम भर तस तुल्ल (४४)

शालिभद्र का उत्तर दृष्टव्य है:- हे माँ, संसार के दुःख बड़े नारकीय है। ये दुख ऐसे है कि करवट वेधिर कटवाले और अधीर की प्राप्ति हो:-

फडिज्जइ करवत्तेंहु सिरि पाइज्जइ कत्थीरु

माइ। दुक्खु नारय सुणिउ महु उद्दुसवई सरीरु (४५)

इसी तरह सुभ्ठुक्तियों में पूरा काव्य चलता है।कुछ सुन्दर काव्यात्मक उदाहरण और देखिए:-

नविवउ लिज्जइ तउणपणि सालिभद्द सुकुमाल

महु कुल मंडण कुल तिलयकुल मईव कुल बाल (प्रश्न) (९)

नाउं गव्विडिं कुल तणई पाविज्जइ भव छेहु

माइ मरीचि भव भमिउ वद्धमाण जिणदेउ (उत्तर) (१०)

छण मइ लंछण सववयण तुह भज्जा बत्तीस

ते विलवंती पेम भरि किम करिसि कुल ईस (प्रश्न) (१४)

छारु जेम उड्डइ सयलु अंते उरु घर सारु

माइ जीव जउ संचरइ छंडे विणु ढंढारु (उत्तर) (१५)

ठणकइ पुत्त सु विरित्त महु पुत्त विहूणिय नारि

विहवह मुच्चइ दुहु सहइ दीणी परघर बारि (प्रश्न) (२४)

ठामि ठामि जिम हिंडिइउ भव चउरासी लक्ख

माइ जि सहिया नरय दुहु ताह कुणाणइ संख (उत्तर) (२५)

संसारिक वैभव का लोभ भी मां देती है। वर्णन की प्रवाहिकता द्रष्टव्य है:-

ढलइ चमर वर पुत्त तुहु सीसि धरीज्जइ छत्तु

मणि सींहासणि बइठ्ठउं किणि कारणि वयचित्तु

ठाउ विलग्गउ माइ मइ सिवपुरि रज्जहरेवि

बोला बउ ठउ वीर जिणु रहिसु न मणह किलेवि

--- --- ---

नव कच्छूरिहि पुरिया मंडल कोमल केस,

केसणि मारइं माखिया, किम उद्धरिसि असेस

नारायण बंधवु निहुणि हारि विणि दिक्खिउ बाहु

सीहु कमिण कुणइ सहइ माइ सुगय सुकुमाल (४१)

--- --- ---

कलह पणीरह पूजि सई, सज्जण होसिइ सोसु,
नंदण तुं थाइसि समणु एहु महुकम्मह दोसु
बास सासवेयण पमुहवाहि माइतणु मूलु,
जीवतेहिं धंधोलिमइ उड्डइ जिम लहु तूलु

इस प्रकार पूरी रचना कथात्मक पद्धति में शालिभद्र के चरित्र से सम्बन्धित है। शालिभद्र संयम की उत्कृष्टता द्वारा अमर हो जाते हैं। पूरा काव्य सरस दोहा छंदों में संयम व आदर्श चरित्र की महत्त्व स्पष्ट करता है तथा जैन दर्शन के अनुसार कर्मों के बंधन नश्वर संसार और नरक के विविध दुखों का तथा कामिनी कांचन के स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है।रचना कक्क पद्धति की होते हुए भी सर्वांश सरस है।

[दूहा मातृका][1]

इसी कवि पद्म की एक दूसरी इसी प्रकार की रचना दूहा मातृका है। यह रचना कक्क व मातृका शिल्प की दृष्टि से शालिभद्र कक्क से भिन्न है। इसमें कवि ने परम्परानुसार ओंकार से प्रारम्भ करके ह तक वर्णन किया है। रचना छोटी परन्तु सरस और आलंकारिक है।अनेक दृष्टान्तों को कवि ने माला की भांति पिरो दिया है। कवि ने अक्षरमाला का क्रम इस प्रकार रक्खा है:-

ॐ नमो सिद्धं - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, रि, री, लि, ली, ए, ऐ, ओ, और, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ०, च, छ, ज, झ, , ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, ज (य), र, ल, व, स(श),ष, स, ह,ख।

कवि ने ङ०वि को नवि और ञ को नइ के रुप में रक्खा है। श के स्थान पर कवि ने दन्त्य स का ही प्रयोग किया है।

कृति की सबसे बड़ी विशेषता इसकी सरसता और आलंकारिकता अपभ्रंश गत काव्य सौन्दर्य इसमे ज्यों का त्यों परिलक्षित होता है। काव्य में चमत्कार सर्वत्र विद्यमान है। कवि ने इसे धर्म मातृका नाम भी दिया है। पूरा काव्य दोहा छंदों में लिखा गया है।कवि ने रचना का प्रारम्भ जगत गुरु प्रणाम से ही किया है:-

> ऊंकारिहि उच्चरउ, परमिट्ठिहि नवकारु
>
> सिव मंगल कल्लाणकरो, जाइवि माउच्चारु

संसार की नश्वरता, मन को सिखावन, विषय कषायों सेबचने को संयमश्री का महत्व तथा सांसारिक सुख वैभव विलास की नीरसता सम्बन्धी कुछ दृष्टान्त का काव्यात्मक सरस स्थलों और भावपूर्ण सूक्तियों को देखिए:-

> (१) अणहंता चडेवि सुइ दोस पराया मूढ
>
> निअ दोसह ढक्कम करिस, ते सवि कारिस मूढ (७)

---

[1]- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह: श्री दलाल पृ० ६७।

(२) ईसरु देक्खिउ कोइ नरु नीचिधु मणि दूमेइ,
पक्ष न जाणइ मूढजिउ, जणु वाविवउं लुमेइ (१०)

(३) उप्पल दल जल बिंदु जिम, तिम चंचलु तणु लच्छि
धम देसंता जाइसए दइ मन मेलत आच्छि (११)

(४) एकहि ठावि वसंतड़ा, एवहु अंतरु होइ
अहि डंकिउ महियलु मरए, मणि जीवइ सहुकोइ (१७)

(५) चंदूपल किरणेहितहि, दूरठिया विहसंति (२०)

(६) अंधउ अंधइ ताणियए, कवणु कहेसइ मग्गु
केवलि पहु निव्वाणिगउ, धम्मु मतंतरि भग्गु (२१)

(७) चंचल चित्त पवंगु जिम, वय बंधण न धरेवि
धम्मारामि विणासिवइ, मूढा हत्थ मलेवि (२८)

(८) नइ वहमाणि लवण जल, मुक्कइ इयर तलाय
दायर वहूढइ रिद्धिघडी, मगुणण निधण थाइ (४२)

(९) पढिउ गुणिउ अणुतउ तविउ, संजमु किउ चिरकालु
लइ कसाय नवि वसि करसि, ता सहु ईंदिय जालु (४३)

(१०)जसि पवलिय जगु जेहि गुणि, मार्द लेहाविउ वंदि
कम्म हणवि जे सिद्धिगमय, ताह चलण निबुवंदि (४८)

(११)रे नाहा मनूमेण बहि, मा उम्मूलि पलाव
कन्हे जलहरु धम्मिक सए, कवण घराइ आव (४९)

(१२)धण मंगुरु देहड़ लग्ग, अरि जिम कोइ विसासु
माव न मुच्चइ जिणु मणह आव मुक्कइ सासु (५६)

इस प्रकार पाहुड दोहा की भांति यह रचना भी अपना आध्यात्मिक महत्व रखती है।इसमें आलंकारिक है तथा भाषा अपभ्रंश बहुल राजस्थानी या जूनी गुजराती है। रचना सरस तथा काव्यात्मक है।

॥ काकबंधि चउपइ ॥

१५वीं शताब्दी में देव सुन्दरसूरि शिष्य विरचित एक कक्क परम्परा की कृति काकबंधि चउपइ उपलब्ध होती है। रचना चोपाई छंदों में है तथा पूरी कृति ६९ कड़ियों में लिखी गई है। कवि के विषय में कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता। क्योंकि रचनाकार ने कृति के प्रारम्भ में ही देवसुन्दरसूरि का पद नमन करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि रचनाकार कोई देवसुन्दर सूरि का शिष्य ही रहा होगा।

पूरी रचना कक्क पद्धति में लिखी गई है। और इसकी पद्धति भी सालिभद्र कक्क की भांति क का, ख खा, ग गा, आदि हरएक व्यंजन को दुबारा प्रस्तुत करने की ही है। काव्य की दृष्टि से १५वीं शताब्दी की रचना होने पर भी कृति बहुत महत्व पूर्ण नहीं लगती।भाषा के क्षेत्र में इसका अवश्य महत्व परिलक्षित होता है। कक्क पद्धति का कवि ने ष्लि निर्वाह किया है।कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं:-

> सरई चित्ति नाम एवड़ा, चित्ति अक्षरसि पूरिय घड़ा
> घरत ज पामिउ पढम जिणंद, बहइ सिखा नवि पड़इ इकु बिंदु
> नाचई सुमवि उवर नवि होइ दीघउं पात्रि दान ऊगरेई
> खीर थाल दीधउ संगमइ सालिभद्र होइ हुइउ सिमइ (४-५)

प्रस्तुत रचना भी धर्म प्रचारार्थ लिखी गई है जिसमें शीलभद्र जैसे संयमी पुरुषों तथा जिनवर, अरिहंत, देव धर्म आदि पर प्रकाश डाला गया है।भूले मन को सिखावन धर्म करने की ओर प्रेरणा, संसार कीअस्थिरता तथा कर्मों की गति पर विविध दृष्टान्तों द्वारा प्रकाश डाला गया है। मन को सिखावन देखिए:-

> करउ धर्म मन भूला जमउ, भावब भव कांई आलि निगमउ
> दान शील तपभावन सार, सुगुरु वयण पालउ सविचार

१- आपणा कविओ: श्री के०का० शास्त्री पृ० २९३।

२- वही।

कांइ उ दीजइ दान, तिहां विलंवइ नवि अभिमान

विरित्र विरित्र पतिहि सवि पुरुष, सो श्रेयं सई लीलइ लद्ध (२-३)

गुरु का महत्त्व, धर्म की महत्ता, कर्मों के दुख, और जिनवचन रत्नों का आख्यान विविध दृष्टान्तों तथा आलंकारिक उक्तियों द्वारा स्पष्ट किया गया है।वर्णन द्रष्टव्य है:-

समरस रात्रि दिवस मनि धर्म,

धर्म तणउ मन छंडउ भ्रम

राखइ धर्म चिहंगति दुख

धर्म लगइ पामी जइ मुक्ख

सायर मर्यादा पुण रहइ

चंदसूर गयणिं संचरइ

कुशल पंच ते दि आचार

सोइ सहगुरु बुभवइ विचारु

हिव गुरु जाणउ सो संसारि

जेह गुरु बूभइ विचार

चालइ अने चलावइ सोइ,

चउ सुहगुरु जाणई सहुकोइ

हाथि चडिउ चिंतामणि रत्न

जउ लाभइ जिण वरनूं वचन

जिणवर देव धर्म गुरु साधु,

जैन समकित भेंपि कराई लद्ध

जण एकु मन जउ थाहर रहइ,

कर्म जिवर मिच्छं सो लहइ

कर्म जिवर खीजइ सवि काल

लाभइ मुगति सूं वइ राज (१४-१८)

रचना का महत्व भाषा की सरलता की दृष्टि से स्पष्ट हो जाता है। अपभ्रंश की

उकार बहुला प्रवृत्ति लगभग समाप्त प्राय: है। तत्सम शब्द भी अधिक प्रयुक्त हुए हैं। निष्कर्षत: ६८ कड़ियों का यह काव्य सर्वांशत: बहुत महत्व पूर्ण नहीं है। साधारण ही है।

अष्टापद तीर्थ बावनी

अष्टापद तीर्थ बावनी "बावनी संज्ञक रचनाओं में सबसे पहली सं० १४८५ के आसपास की रचना है जो अप्रकाशित है। रचनाकार श्री जयसागर हैं। आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य को जयसागर ने लगभग ४० रचनायें प्रदान की हैं। जिसमें अनेक स्तोत्र, स्तवन, कलश, वीनंति, नमस्कार, रास, आदि काव्य रूप संज्ञक रचनायें हैं। कक्क, मातृका परम्परा में यही एक ऐसी कृति है जो बावनी नाम से लिखी मिलती है। यों अद्यावधि उपलब्ध कक्क मातृका संज्ञक रचनाओं में बावन अक्षरों का वर्ण्य विधान तो मिलता ही है परन्तु उनका नाम स्पष्ट रूप से बावनी नहीं मिलता।

अष्टापद तीर्थ बावनी ऐसी ही रचना है जिसमें कवि ने पूर्व विरचित रचनाओं की परम्परा में नवीनता प्रस्तुत की है। कक्क शिल्प की भांति इसमें कवि ने क्रमश: अक्षर (वर्णमाला) से प्रारम्भ नहीं करके कुल ५२ पद्यों में ही सारा वर्णन लिखा है। रचना की प्रति व प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है। रचना धार्मिक उद्देश्य से लिखी गई है। कवि ने अष्टापद तीर्थ पर यह बावनी लिखी है। पूरा काव्य धार्मिक और वर्णन प्रधान है।

कृतिकार ने प्रारम्भ में सरस्वती और २४ अरिहंतों की वन्दना की है:-

एक सरसति अतिसय गुणवंत वंदिय चउवीसइ अरहंत

श्री अष्टापद तीरथ तणी बात विचारउं रलिया मणी

प्रारम्भ में ही कवि ने सरस वाक्यों तथा चित्रात्मक वर्णनों द्वारा अष्टापद तीर्थ का सजीव परिचय दिया है:-

नामय सरवर जहि सुप्रसिद्ध, सेवइ सुर विद्याधर सिद्ध

दिद्धिणहिं महुअड जहिं रिसहेस, सुहरि क्रियमणि थुम निवेस

गिरिवर सिरि बउगाऊ दीह, पिहुलप्याणि बुइगा ठुलीह
सीह निसिज्जा मामिप्रसाद ऊंबउ गाउ त्रिणि प्रवाद
सोलस तोरण माणिक तणं, झब झब झबकई सोहामणां
अठ मंगल सोलस सोहंति जे देखी रिखिवइ मोहंति
च्यारि च्यारि बिहु बारे भला चहुं दिसि मुख मंडप मोकला
तहि आगुगलि मणिमय पीढिया मुख्यउ घाट वे ढिढिवेढिया
तहुवरि माणिक चइय थुम, सेवा सारई सुरनर ऊम (५-१०)

--- --- ---

तसु वरि इन्द्रधजा लहलहइ कीरति भरततणी गह गहइ
बउ नंदा नामि वावडि तोरण मंडित त्रिणि पावडी (१५)

कवि ने प्रतिमा के सौन्दर्य का सुन्दर चित्र खींचा है। अष्टापद तीर्थ की शोभा और प्रतिमा का असाधारण सौन्दर्य श्रावक श्राविकाओं को तीर्थ के प्रति श्रद्धा अनुभव कराने में योग देते है।वर्णन शैली सरल व अत्यन्त सरस है।

नाभि जीभ श्री बछवछ पही, हाथ पाय तल तालुय सही
अंत भूमि जो केसह तणी ते तपनिय मय सोहामणी
नयण लोम लोचन अति थिर्क की की कविलाइ नउं सिरवुं
मासणि मस्तक मूछ जवाल रिष्ट रत्न वडिया सकुमाल
होठ सिबी परवाला वेलि, दंत कली फटि कोमल मेलि
रगराती सोवन मय राग, वीत बही वज्रमय तक ताक
रकत रत्नहल मय प्रतिरेक, बिहुं छेहे जाणे फिर पक
सिचिहि लहुमी नइ सामली, दृष्टिहि दृष्टि निरीदुमिली
इम परिबहुविह रचना थई, अष्टापदगिरि प्रतिमा हुई
प्रतिमा प्रतिमा केरिकुहि छत्र धान प्रतिमा दुह मूठि (२३-२७)
बिहुं पासिहि बे चामर ढोलि रत्न मइ दीसइ धूम कोलि
कुंडाधार वडिमा बे जाणि हेमरतन नी निश्चल ठाणि

--- --- ---

नगर मगर सागर श्रविछ, नर किंनर वानर सरमच्छ

हरि करि केसरि चामर चित्ररतन थंम सय सहस विचित्र

कंचणमय धज दंड विशाल, रयण पताका किंकिणमाल

ऊपरि पउम राउ मकुर्म, करई गयणि वहता रवि थंम

एवहुं जिण हरु तहि मन रमइ संधिहि संधि मिली तिम किमइ

एक पिंड जिमि जाणइ सहू ठीक सिला ग्रोतम थल अहू (३४-३७)

---- --- ---

जिणहर बिंब प्रतिष्ठा अंग इहु अष्टापद तीरथ चंग

तीरथ भगतिहि लायह शुद्धि होइ शुभोदय शुंदा बुद्धि

दूरिहि कलिमलकरु मल जाइ काय वचन मन निर्मल थाइ

इस प्रकार पूरी रचना में तीर्थ का महत्व, मूर्ति की प्रतिष्ठा,करतेश्वर का प्रतिमा पूजन व उल्लास तथा प्रतिमा पूजन प्रभाव व पुन्य का वर्णन है।रचना वर्णनात्मक अधिक है।काव्यप्रवाह गौण है। रचना साधारण है।

अन्त में कवि ने बावन अक्षर का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है:-

जिम बावन अक्षर पाठसार, नंदीसर बावन जिण विहार

तिम बावन पावन नव कवित्त, बुज्झिह समण्ह निसुणहु एक चित्त

कृति की भाषा रचल है, जिसमें कहीं कहीं अपभ्रंश शब्दों का प्रभाव है और शेष सब राजस्थानी शब्द है।कृति एक दम साधारण है।

निष्कर्षतः १३,१४वीं और १५वीं शताब्दी में इन कक्क मातृका और बावनी संज्ञक रचनाओं में प्रतिनिधि रचनाओं का यही इतिहास है।

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य(२) गौणकाव्य परम्पराएं

पिछले अध्यायों में काव्य के जिन विविध रूपों की परम्पराओं तथा तत्संबंधक जिन कृतियों का अध्ययन किया गया है उनके अतिरिक्त भी कुछ विशिष्ट काव्य रूप तथा कृतियां और अवशेष है। उन पर विशिष्ट महत्व होने से रचना प्रकारों में वैविध्य की दृष्टि से स्वतंत्र रूप से विवेचन वांछनीय है। ये रचनाएं अपने ही प्रकार की है। यद्यपि ये संख्या में कम है परन्तु फिर भी इनका अपना स्वतंत्र महत्व है इसीलिए इन्हें गौण काव्य परम्पराएं कहा गया है।इन काव्यरूपों और काव्य कृतियों में कुछ तो ऐसी है कि जिनकी परम्परा के प्रारम्भ का श्रेय ही आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य को है।विषय, कला, अर्थ गौरव और वैविध्य को दृष्टि में रखते हुए गौण काव्य परम्परा के अन्तर्गत इन काव्य रूपों पर संक्षेप में विचार किया जाअकका रहा है। इस प्रकार इस साहित्य में विविध काव्य परम्पराओं का श्रीगणेश तथा उन्नयन हुआ है। काव्य की दृष्टि से ये रचनाएं खंड काव्य तथा मुक्तक दोनों रूपोंमें प्राप्त है। विषय की दृष्टि से इनका अध्ययन करने पर इनमें व्रत, साधना, भक्तिगान, नर्तन अभिनय, तीर्थवर्णन, तीर्थंकर वर्णन आचार्यों की दीक्षा महोत्सव वर्णन तथा नीति-मूलक आदि वर्णन मिल जाते है। जिनका अध्ययन रचनाओं के विवेचन द्वारा हो सकेगा। इन काव्य रूपों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:-

(१) छन्दप्रधान रचनाएं, और

(२) विषय प्रधान रचनाएं।

(१) छन्द प्रधान रचनाएं:-

१- दोहा

२- छप्पय

३- छन्द

४- [illegible] वस्तु

५- द्विपथिका

६- गाथा

७- रेलुआ

८- चंद्रायण

९- अष्टक

इन रचनाओं पर क्रमशः आगे प्रकाश डाला जायगा।

(२) विषय प्रधान:- दूसरा आधार है विषय के अनुसार कृतियों के वर्गीकरण का। इनमें छन्दों से इतर केवल मात्रा किसी भी छन्द विशेष में, विषय का विवेचन करने वाली अनेक रचनाएं लिखी गई है। जिनका नामकरण छन्दों के आधार पर नहीं होकर विषय के आधार पर किया गया है। ऐसी रचनाओं का वर्गीकरण निम्नांकित रूपों में किया जा सकता है:-

विषय प्रधान रचनाएं

धार्मिक	लौकिक	नीतिप्रधान	पारम्परिक
१- तीर्थवर्णन संबंधी	१-बारहमासा	१- कथा	परम्परा से आए हुए
२- यात्रा संबंधी	२- कुलक	२- संबोध	विषयों पर ये रचनाएं
३- महात्म्य वर्णन	३- संवाद		धार्मिक रचनाओं के
४- महापुरुष वर्णन	४- चौर		अन्तर्गत आ जाती है
५- दीक्षा वर्णन	५- अंग वर्णन आदि		
६- संघ वर्णन	६- पवाड़े		
७- जीर्णोद्धार वर्णन	७- चरित		
८- चैत्य परिपाटी	८- रास आदि		
९- गुरु वर्णन			
१०-दान वर्णन			

उक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत आने वाले इन विविध रचना प्रकारों की प्रतिनिधि रचनाएं जो साहित्य के संकल्प से लिखी गई है और जिनके काव्य सौष्ठव पर संक्षेप

में विचार किया जायगा, इस प्रकार हैः-

१- चैत्य परिपाटी

२- बारहमासा

३- पट्टावली

४- गुणवर्णन

५- संवाद

६- कुलक

७- महात्म्य

८- चौर

९- शिलालेख

१०- हलहरा

११- संबोध

१२- आणंदो

१३- मृगापुत्रकम्

:- छंद प्रधान रचनायें और उनका विश्लेषण-:

छन्दों को आधार मानकर लिखी गई इन रचनाओं में भी वैविध्य बहुत है। इन रचनाओं का नामकरण छन्दों के आधार पर किया गया है। प्रत्येक रचना में अधिकतर एक ही छन्द का प्रयोग मिल जाता है परन्तु इस नियम का बहुत कठोरता से नहीं पालन किया गया है।कहीं कहीं इसके अपवाद भी मिलते हैं। यह भी आवश्यक नहीं है कि उसी छन्द विशेष में पूरी रचना वर्णित हो। हां यह अवश्य कहा जा सकता है कि ऐसी रचनाओं में उल्लेख्य छन्द का वर्णन प्रायः मिल जाता है और सम्भवतः इनके नामकरण में भी छन्द के प्रयोग की ही प्रमुख दृष्टि रही होगी।

विषय के अनुसार विवेचन करने पर छन्द संज्ञक इन रचनाओं में भी धार्मिक नीति प्रधान तथा पारम्परिक वर्णन मिल जाते हैं। अतः इनका अध्ययन इन तीन विभागों के अन्तर्गत किया जा सकता है। इन कृतियों में से कई रचनायें ऐसी है

जिनको कवि ने पूरा छन्द में लिखकर समाप्त किया है परन्तु कई इसके अपवाद भी हैं। छन्दों के आधार पर नामकरण की गई रचनाएं अपभ्रंश से ही मिलने लगती हैं। यों इसके पूर्व प्राकृत में भी इसकी परम्परा का होना निर्भ्रांत ही कहा जायगा क्योंकि छन्दों की परम्परा संस्कृत से निर्बाध रूप में आगे बढ़ती एवं काव्य को गति प्रदान करती रही है। वस्तुतः इन काव्य रूपों का महत्वपरम्परा को पुष्ट करने के लिए भी सार्थक है।

छन्दों के आधार पर मिलने वाली इन रचनाओं का संक्षिप्त अध्ययन इस प्रकार है:-

उपदेश प्रधान:-

दोहा

दोहा छन्द अपभ्रंश का लोकप्रिय छन्द रहा है। इसका प्रारम्भ छठी शताब्दी के पश्चात् से ही मिलने लगता है। प्राकृत साहित्य में जिस तरह गाथा छन्द अत्यन्त लोक प्रियता को प्राप्त हुआ ठीक उसी प्रकार अपभ्रंश में भी दोहे का खूब प्रयोग हुआ। अपभ्रंश में तो मुक्तक पद्यों के रूपमें अनेक दोहों के संग्रह मिलते हैं। बौद्ध सिद्धों ने भी दोहे का खूब प्रयोग किया है। वज्रयानी सिद्ध सरहपा (८वीं शताब्दी) की रचनाओं में दोहा प्रयुक्त हुआ है। हेमचन्द्र के साथ साथ अन्य अनेक कारिकाकारों और व्याकरण आदि लक्षण ग्रन्थ रचने वालों ने इस छन्द का खूब प्रयोग किया है। स्वयंभू के पउम चरिउ में भी दोहे का प्रयोग मिल जाता है। यह छन्द अपभ्रंश का परम लाडला छन्द रहा है। अपभ्रंश को दूहा छन्द के ही कारण

१- (अ) दोहा अपभ्रंश का लाडला छन्द है। सातवीं शताब्दी के बाद भारतीय साहित्य में इसका दर्शन होता है। प्रवेश तो इसका बहुत पहले ही हो चुका था पर सातवीं आठवीं शताब्दी में इसने शृंगार को और को, धर्म को और नीति को लोकचित्त में प्रवेश कराने का व्रत लिया। धर्म के क्षेत्र में जोइन्दु और रामसिंह के मर्मी उपदेशों को इसने प्रचारित किया। सरहपाद, तिलोपा आदि बौद्धों सिद्धों की रहस्यवादी भावनाओं का वाहन बना, गोरखनाथ जैसे अलख जगाने वालों का सहायक हुआ और कबीर जैसे फक्कड़ का संदेश वाहक बना। शृंगार क्षेत्र में इसकी दुंदुभी बहुत पहले ही बज

अतः बहुत सम्भव है कि यह द्विपथा शब्द का ही दोहा के मूल में रहा होगा। द्विपथा का तात्पर्य है दो प्रकार से। अर्थात् दोहा क्योंकि दो पंक्तियों में लिखा जाता है अतः उसका नाम दोहा कहा जाने लगा होगा। वस्तुतः उक्त सभी विचार किसी ठोस प्रमाण की प्राप्ति के बिना अनुमान पर ही आधारित है। अपभ्रंश में मुनि योगीन्द्र मुनि रामसिंह देवसेन ने खूब प्रयोग किया। ११वीं शताब्दी में माहेश्वर-सूरि की संजम मंजरी में भी इसका प्रयोग मिलता है। हिन्दी ने यह छन्द अपभ्रंश से लिया। हिन्दी साहित्य के प्रबन्ध काव्यों, सतसई आदि मुक्तक काव्यों दोनों में यह छन्द सफलता से प्रयुक्त हुआ है। आज भी दोहे की परम्परा प्रचलित है। वस्तुतः दोहा हिन्दी साहित्य की अनेक कृतियों में सफलता से प्रयुक्त हुआ प्रमुख छन्द है।

मातृका दोहा[1]

यह उपदेश प्रधान काव्य है और दोहा छन्द में लिखा गया है। इसमें ५२ अक्षरों को लेकर पूरी रचना में आचार विचारों का, संसार, नर, नारी, कलियुग काम, आनन्द आदि का वर्णन किया है। रचना अप्रकाशित है तथा लेखक द्वारा इसका विस्तृत विवेचन क्रमक मातृका परम्परा और तत्सम्बन्धित रचनाओं के अनुशीलन में पूर्व अध्यायों में किया जा चुका है। कवि ने इसी परम्परा का सुन्दर निर्वाह करते हुए विविध दृष्टान्तों और उदाहरणों द्वारा संसार की नश्वरता, कलियुग जीव काम आदि का सुन्दर आलंकारिक वर्णन किया है। इसके रचनाकार श्री खरतरीय प्रमोदचन्द्र है। कवि ने इसका दूसरा नाम रस विलास भी दिया है। दोहा छन्द में होने से वास्तव में रचना प्रभावपूर्ण और सरस बन पड़ी है।

: बारहखड़ी दोहा :

इस रचना का नाम मातृका दोहा भी है। रचना महानन्द द्वारा रचित है। कृति का रचनाकाल १७वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। प्रति परिचय इस प्रकार

१- हिन्दी अनुशीलन वर्ष ८ अंक ३ पृ० ११७

उपदेश माला कहाणय छप्पय[१]

१३वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में कुछ काव्य छप्पय छन्द प्रधान भी लिखे गए हैं। जिनमें उपदेश माला कहाणय छप्पय अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। छप्पय छन्द में काव्य लिखे जाने की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। प्राकृत और अपभ्रंश में छप्पय छन्द का प्रयोग होता आया है। जैन ही नहीं, तत्कालीन अजैन काव्यों में भी छप्पय छन्द का प्रयोग हुआ है।पृथ्वीराज रासो को पहले उद्धृत किया जा सकता है।

आदिकाल की इस जैन परम्परा में इस छन्द से कृतियों के नाम कारण ही होने लगे और उनमें उपदेश माला कहाणय की पूरी रचना इस नाम का उत्कृष्ट प्रमाण है।यह रचना प्रकाशित है। पूरी रचना क्योंकि छप्पय छन्द में लिखी गई है तथा छप्पय छन्द की इसमें आद्योपान्त प्रधानता है अतः इसका नामकरण इस छन्द के आधार पर ही हुआ है।

छन्द के रूप में छप्पय एक संयुक्त छन्द है जो रोला (११, १३) चार पद और उल्लाला (१५, १३) के दो पाद के संयोग से बना है।यों उल्लाला के भेदों में तो इसके अन्तिम चरणों की मात्राओं का क्रमशः २६ और २८ तक बताया है और २८ मात्राओं में कवियों ने खूब लिखा है। छप्पय छन्द के प्रस्तार की भानु ने अपने छन्द प्रभाकर में ७१ भेदों तक पहुंचा दिया है।

जो भी हो, इतना स्पष्ट है कि यह छन्द प्राचीन काल से काव्य में प्रयोग होता रहा है। प्रस्तुत रचना कुल ८१ छन्दों में लिखी गई है।इस कृति के रचनाकार भी उल्लेख्य हैं। रचनाकार के सम्बन्ध में यहां एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है और वह यह कि श्री के०का० शास्त्री ने अपने ग्रन्थ आपणा कवियों में इस ग्रन्थ के रचनाकार का नाम नेमिनाथ चतुष्पदिका के विनय चंद्र सूरि

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह: श्री सी०डी० दलाल -पृ० ११-२६।

लिखा है।[१] परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। रचनाकार अनुमानतः उदयधर्म है जिन्होंने रचना की समाप्ति पर अपना नाम स्पष्ट कर दिया है:-

अंरिहंत आण अणुदिण, उदय धम्म मूल मत्थइ हवं।

मो भविय भत्ति सविहि सहल सयल लच्छि लीला लहउ।।

इसमें उदयधर्म कृति के रचयिता के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। छप्पय में कोई विशेष कथा नहीं है। कवि उपदेश की दृष्टि से संसार की असारता,उपदेश के अंगों का विश्लेषण, जैन धर्म के व्रतों आदि के सम्बन्ध में कर्तव्य पालन, गुरु भक्ति,साधु पूजा, क्षमा, अहिंसा, दया और तप आदि गुणों को पालन करने का उपदेश देता है। कविता में प्रत्येक पद में विभिन्न दृष्टान्त और अन्तर्कथाओंका समावेश है।हे साधुओं, गुण सुनो, संसार को अपने समान गिनो, क्रोध कषायोंकी छोड़, समरसता धारण करो- इस प्रकार के उपदेश सर्वत्र विद्यमान है।

छप्पय की भाषा में यद्यपि अपभ्रंश के शब्दों का बाहुल्य अधिक है फिर भी काव्य का अपूर्व प्रवाह है।कुछ उदाहरणों से कविता का यह प्रवाह स्पष्ट हो जायगा:-

सब साहु सुणिड सुणउ सुणउ, गणउ जग अप्पसमाणउ

कोइ कउ वि परिहरउ, धरउ समरस अपराणउ

तिहुयण गुरु सिरिवीर, वीरपण धम्म धुरंधर

दान सेठ दुक्कयण सहइ, तव तवइ निरंतर

नरसिरिसेण उवसग्ग सहु, कह कम गुरु जिणवर सहइ

तिम समउ थंति अहमति करी,जेम्ह सिवपउ बहु लहइ

१- अपने मत की पुष्टि में शास्त्री जी का लिखना है कि- "हवे आपणी सामे बे जैन कवि आवे छे,बे ने विशिष्ट प्रकार नी कविता गुजराती भाषा में रची आपे छे,तेमा बे बे काव्य जाण्या छे तेमां ऐक बारमासी काव्य छे, अने तेमा बारमासी काव्य नेमिनाथ चतुष्पदिका ने सौ थी जुनी पुष्पिका ऊपर थी जणाय छे, जेम के,शालि भी विनयचन्द्र सूरिकृत नेमिनाथ चतुष्पदिका।तेना बीजा काव्य उपदेशमाला कथानक छप्पय (उपदेशमाला कथानक षटपद) मां पण कवि नुं नामनथी। बे कृतियो जैन बे कविनी छे ते तेमा आवता मुख्यामना साम्यथी समकाल छे।
-आपणा कवियो पृ० १०१।

सव्व सुणइ जिणवयण नयण, उल्हासिहि गोयम
जाणइ जइ वि सुयत्थ तहवि पुच्छइ पहु कहु किम
षट्पद कवित्त पवित्त पढम गणहर गुणखाणी,
न करइ गव्व अपुव्व करवि मनि मन्नइ वाणी
छंडीइमान जाणह सणउ विण अंगि इम जाणीइ
गुरु भगति कहवि भवि भिन्डीइ ग्रंथ कोडिवइ जाणीइ [१]

दधि वाहन, चंदनबाला और नेमिनाथ को कवि जन समाज के लिए आदर्श चरित्र ठहराकर उन्हें उपदेश देता है। काव्य का प्रवाह इन अन्तर्कथाओं में खूब विकसित हुआ है। तथा इस प्रकार की अंतर्कथाओं में पूरा काव्य कवि ने गूंथ सा दिया है।काव्य सौष्ठव के नेमिनाथ और भरतसम्बन्धी आदर्शों के कुछ आलंकारिक अनुप्रासात्मक उदाहरण देखिए:-

वाणारसिनयरी नरिंद नाभिहिं संवाहण
पुर अंतेउर पवर अवर हय गय बहु साहण
कन्ना सहस सुरूव अछइ पुण पुत्र न इक्कय
राय भरह चंदरह कम्मि सिवइ रिउ दुक्कय
नेमिचरित्तमणि राणी रुवरि कुंवर जाणि पट्टिहिं चढिउ
तिणि अंबीरि भरि बाहुबी रज्जलंब सहु सहिउ
जिम सिंगार उदार अंग आरीसइ निरखइ
वाणीपखी सुंदरी केवल लहु तिणि भरि निरखइ
अंतेउर आवासि चाखिय नारि विरत्तउ
भरतेसर वर काय नाण केवल संपत्तउ

१- देखिए- प्राकृत काव्य की डी०डी० मनःकाल-उपदेशमाला कथानक छप्पय (३-४) पृ० ११।

एउ अक्कमट्टिट पिययारविहिं रमइ रंगि जसु इम गमइ

तसु अप्पकज्ज अप्पिपहिं सरिउं किं परजण बाधा जणइ (६-७)

--- --- ---

भरह चरिउ बल पुज्जि कुम्भ कंजण अणसरउ

कुण वंदइ तहु भाव ठाय तिणि कारणि करउ

इह उत्तंग नाण माण धरि मच्छररहिउ

चडइ पुरक नहु दुरक सहवि नहु केवल लहिउ

निय महिनिर्मणि सुन्दरि क्वणि मय मयगल जब परिहरइ

रिसहेसरनंदण बाहुबलि सयल कम्म हरकणि सरइ (९)

और इसके पश्चात् कवि का काव्य चंपापुरी और कौशाम्बी की अमराइयों में घूमता हुआ जंबूस्वामी को अपने उपदेश का विषय बनाता है यहां तक कि इन्हीं महापुरुषों के उत्कृष्ट आदर्शों और चारित्रिक गुणों से वह हृदय के समस्त मनोभाव को उभारना तथा जीवननिर्माण कर दुष्प्रवृत्तियों का निराकरण कराना चाहता है। चरित्र के शील प्रतीक पुरुष स्थूलिभद्र का चरित्र उठाने वाले गुरु वचनों की काव्यात्मक महिमा देखिए:-

थूलभद्द गुरु वयणि कोस वेसा हरि पत्तउ

चित्त सालि कयसालि रहिउ रइविलइ निरत्तउ

पुव्वभेद संभारि समर समरेवि विरत्तउ

जिम रायवि समरंत सुहड सुपरीहिं विचित्तउ

करवृणधारहिरि संवरिउ सरिय सील विमउम्मन्न

से सील माणसुवसु वरई से सु साहु से धन्न धन

वस्तुतः यही शील भाव मानव जीवन को ऊंचा उठाता है तथा मानवता को चिरंजीवि बनाता है। शील का पालन करना: तलवार की धार पे चलना है- और वास्तव में चरित्र निर्माण और जीवन को स्वस्थ दृष्टिकोण और वस्तुओं की ओर आकर्षित करने वाला यही काव्य इसके छंदों में कविता है जो मानव जीवन के साथ हर क्षण समझौता करके चला है। प्रस्तुत छप्पय का निर्माता कवि जनता का

:- खरतर गुरुगुण वर्णन छप्पय :-

जैन समाज में जैन लेखकों और कवियों के अनेक सम्प्रदाय मिलते हैं।इनको जैन समाज में गच्छ कहते है। ये गच्छ सैकड़ों प्रकार के है। इनमें से ८४ प्रमुख रूप से जाने गए है। इन गच्छए में भी तीन या चार गच्छ ऐसे है जिनमें अनेक लेखक और कवि हुए है। इनमें से प्रमुख है :- खरतर गच्छ, तपागच्छ, अंचलगच्छ और लौंका लोंका गच्छ। इनमें खरतर गच्छ के लेखकों एवं आचार्यों की परम्परा बड़ी असाधारण रही है। इस खरतर गच्छ के लेखकों का जीवन बड़ा प्रखर ढंग से चलता है। इसीलिए इस गच्छका नाम खरतर है। ये चैत्य जीवन के घोर विरोध में है। वस्तुतः खरतर गच्छ के इस सम्प्रदाय में हुए गुरुओं के गुणों का वर्णन करने में एक रचना प्राप्त हुई है उसका नाम है खरतर गुरु गुण छप्पय। यह रचना आज से कई वर्षों पूर्व ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है[1] यह रचना अज्ञात लेखक द्वारा विरचित है तथा इसमें खरतर गच्छ में हुए कवियों तथा लेखकों का छन्दोबद्ध ऐतिहासिक परिचय दिया गया है। इस छप्पय में ऐतिहासिकता तथ्यों का पूर्ण समावेश है। जिन जिन कवियों का इसमें गुण वर्णन किया गया है ऐतिहासिक दृष्टि से उनका बहुत महत्व है। यह कृति १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की है। गुरु गुण वर्णन परम्परा अधिकतर इसी शताब्दी से मिलने लगती है। छप्पय में जिन गुरुओं के गुणों, जीवनगत विशिष्ट बातों, काव्य तथा अन्य रचनाओं का वर्णन किया गया है,इनमें से कुछ प्रमुख है- जिनवल्लभ, जिनदत्त, जिनचन्द्र, जिनपति, जिनकुशल, जिनराज और जिनभद्र।

इस खरतर गच्छी गुरुओं का जीवन इतना अधिक लोकप्रिय हुआ है कि इतिहास के अंग बन गए है। प्रस्तुत रचना में इन्हीं गुरुओं की साधना, जन्मस्थान कुल, तथा वंश पूजा, महोत्सव तथा प्रभाव आदि का काव्यात्मक वर्णन है। कवि

१- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह: प्रकाशक अगरचन्द भंवरलाल नाहटा-पृ० २४:२८।

ने इन गुरुओं की महिमा आदि को स्पष्ट किया है। वास्तव में साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से इस रचना में अधिक कुछ नहीं है परन्तु फिर भी इनका ऐतिहासिक महत्व है जिसमें रचनाकार ने विभिन्न गुरुओं की पट्ट परम्परा से लेकर विविध सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक स्थानों के साथ उनका महत्व स्पष्ट किया है। कृति का प्रारम्भ कवि ने गुरु महिमा और आदर्श गुरु के गुणों द्वारा किया है:-

सो गुरु सुगुरु जु छविह जीव अप्पण सम जाइण
सो गुरु सुगुरु जु सच्चउ सिद्धान्त वखाणइ
सो गुरु सुगुरु जु सील धम्म निम्मल परिपालइ
सो गुरु सुगुरु जु दव्व संग विसम सम मणि टालइ[१] (१)

सद्गुरु के साथ ही साथ कवि ने सद्धर्म की महिमा का गौरवगान किया है:-

धम्म सुधम्म पहाण जत्थ नहु जीव हणिज्जइ
धम्म सुधम्म पहाइ जत्थ नहु कूड भणिज्जइ
धम्म सुधम्म पहाणजत्थ नहु चोरी किज्जइ
धम्म सुधम्म पहाण जत्थ परत्थी न रमिज्जइ
सो धम्म रम्म जो गुण सहिय,दान सील तव भावजुअ
जो भविय लोय सुम्मिइ परकरिवि नर भव साहिलमणिजइ (२)

आगे प्रत्येक छन्द में कवि ने विभिन्न मुनि की साधना, तथा भक्ति प्रभावना पर विचार किया है। जिसमें मुनियों के अभीष्ट स्थान, पद आदि का ऐतिहासिक महत्व स्पष्ट होता है। यहां दो उदाहरण जिनचन्द्रसूरि और जिनकुशल सूरि सम्बन्धी प्रस्तुत होगी। वर्णन क्रम में काव्यात्मक प्रवाह दृष्टव्य है:-

(१) तव चउबइ जिन समवि सूर पट्टहि सुपसिद्धउ
वावाइड मवि पडवि हसवि पट्टागम सिद्धउ

१- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह: खरतर गुरुगुण वर्णन छप्पय पृ० २४।

तासु पट्टिहइ सुगुरु ठविय चउदहसय छहोत्तरि
जेसलमेरह माह दसमि सुदिवह सुह वासरि
नर नारिराइ मंगल करइ जिण सासणि उच्छवघणउ
जिण चन्द सूरि परिवार सउं सकल संघ अणुदिणुजयउ (१०)

(२) कुशल सहो संसार, कुशल सज्जन जन बाहइ
कुशलइ मइगल नारिलछि कुशलहि घरि आवइ
कुशलहि धणवरसंति कुशलि धण धन रवन्नउ
कुशलहि लोह पट्टि कुशलि पहिरिय सुवन्नउ
एरिसउ नाम सुहगुरु तणउ कुशलहि जग रलियामणउ
जिण कुशल सूरि नाम ग्रहणि घरि घरि होइ वधामणउ (१०)

इन काव्यात्मक ऐतिहासिक वर्णनों के साथ साथ प्रस्तुत कवि की आलंकारिक शैली भी दृष्टव्य है। प्रकृति के उपमानों द्वारा कवि ने अलंकारों को सम्पन्नकिया है और उनका रूपक और सुन्दर दृष्टान्तों द्वारा कवि ने इन गुरुओं के गुणों का विविध रूप में विश्लेषण किया है जिससे उसके वर्णनक्रम भाषा शिल्प शैली और अर्थ गाम्भीर्य पर प्रकाश पड़ता है। भाषा सम्य सरल प्रवाह आलंकारिक सुषमा और ऐतिहासिक सौन्दर्य के लिए कुछ उद्धरण दृष्टव्य हैं:-

(१) जिम जलहरंमि मोर जिम अंबवणि कोकिला हुंती
सूर उग्गमणे कमलु तह भमिया गुरु आगमणे
जिम जलहर आगमणि मोर हरखिय मण नच्चइ
जिम दिणियर उग्गमणि कमल वणसिरि सिरि विकसइ
ससिहर संगम जेम कमल सायर जल विलसइ
जिम जाइ जूहि चंपकि कोयलइ महमहइ (१७)

--- --- ---

(२) जिम सायर वर रयण चंद नहिरिहिं गयणंगणि
सरय कुरंगमणि पडलि ढंढिक्कर समुद्र गडेमिणु (१९)

--- --- ---

व्याख्यान उपमानों के साथ तुलना करके एवं विविध दृष्टान्तों में बांधकर किया गया है। पूरी रचना ३७ छप्पयों में लिखी गई है।

छप्पय संज्ञक रचनाओं के १४ और १५वीं शताब्दी में और भी रचनाएं उदाहरणार्थ आत्मारामा षटपद, षटपदानि, ज्ञान छप्पय मिलती है परन्तु इनमें उक्त दो ही अधिक प्रमुख है।

मुक्तक काव्य की दृष्टि से छप्पय सम्बन्धी इन रचनाओं का पर्याप्त महत्व स्पष्ट होता है साथ ही छन्द की दृष्टि से भी इन रचनाओं का अपना महत्व है।

छन्द

छन्द विषयक रचनाओं में छन्द संज्ञा से अभिहित की हुई कई छोटी छोटी रचनाएं उपलब्ध होती है। इन रचनाओं के आगे छन्द शब्द व्यवहृत हुआ है इससे अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि छन्द विशेष में लिखी जाने के कारण ही छन्द नाम का प्रयोग इनके आगे किया जाता होगा परन्तु छन्द शब्द के प्रयोग की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। रचनाओं के आगे यह शब्द कईरूपों में जैसे छन्द, छन्दावलि, छन्दानि आदि कई रूपों में मिलता है।रचनाओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कालान्तर में छंद नाम से कोई स्वतंत्र छंद विशेष भी बन गया हो।वस्तुतः इनरचनाओं में जो छन्द सम्बन्धी विविध नाम मिलते है उनसे यही स्पष्ट होता है कि कवि ने मुनियों के यश गान, प्रशस्ति गीत और उल्लास में डूबकर संक्षेप में जिन छोटी छोटी चरित मूलक रचनाओं की व्याख्या की है उसी से इनका नामकरण छन्द, छन्दावलि या छंदानि किया गया हो। बहुत सम्भव है कि इनमें छन्द शब्द किसी विशेष छन्द के लिए भी प्रयुक्त हुआ हो। यों सामान्यतः रचनाओं में छन्द शब्द का प्रयोग बहुत पहले से होता चला आ रहा है। सर्व प्रथम छन्द शब्द रिग वेद में मिल जाता है जिसका उद्गम छद्धातु है। छदु का अर्थ ढकना या प्रसन्न करना हो सकता है।अतः आदि कालीन इन रचनाओं में छन्द शब्द जिस लिए प्रयुक्त किया गया हैउसके मूल में प्रसन्न करना अर्थ ही कवि को अधिक अभीष्ट रहा होगा। यों छन्द एक अलग धातु भी मिल जाती है। कुछ विद्वानों का मत हैकि छन्द शब्द को इसी धातु से सम्बन्ध मानना चाहिए।

एक पक्ष इन रचनाओं में प्रयुक्त छन्द का लोक सम्बन्धी भी हो सकता है।लोक भाषा में अपनी पूर्वरीति का गुण वर्णन करने या उन्हें प्रसन्न करने के लिए भी बहुत सम्भव है ये रचनाएं लिखी गई हों। छंदों के इस पक्ष का विभाजन हमें पिंगलाचार्य के छन्द सूत्र में भी मिल जाता है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से छन्दों के ये दो विभाग वैदिक औरलौकिक कुछ ठीक भी लगते है। अतः इन रचनाओं में लौकिक छन्द प्रयुक्त हुए

हुए है इसीलिए इनका नामकरण ऐसा कर दिया गया हो। यों शास्त्रीय दृष्टि से लौकिक वर्ग के अन्तर्गत इन छन्द प्रधान रचनाओं के लौकिक छन्दों का मूल्यांकन उनमें प्रयुक्त पद्यों के आयोजन से किया जा सकता है।कहीं कहीं छन्द चरित वर्णन के लिए भी प्रयुक्त होता है। जो भी हो, लौकिक पक्ष को ही यदि इनके मूल में मानकर चला जाय तो समस्या कुछ हल हो जाती है और यह कहा जा सकता है कि लौकिक पर्वों में अनुरंजन करने या प्रसन्न करने की दृष्टि सेही इनरचनाओं के आगे इस शब्द का प्रयोग किया गया होगा। विभिन्न भंडारों से प्राप्त छन्द संज्ञक कुछ रचनाओं का विश्लेषण यहाँ किया जा सकता है:-

---

श्री गौतम स्वामी छन्द[1]

१४वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कवि मेरुनन्दन ने विविधहिन्दी जैन रचनाओं का सृजन किया है।जीरापल्ली पार्श्वनाथ फागु, सीमंधर स्तवन, अजित शान्ति स्तवन और जिनोदय सूरि विवाहलउ आदि रचनाओं के प्रसिद्ध निर्माता कवि श्री मेरुनन्दन की वर्णित कृतियों में से कुछ विश्लेषण पूर्व अध्यायों में किया गया है। इन रचनाओं के अतिरिक्त कवि ने छन्द संज्ञक भी कई रचनायें लिखी हैं।जिनमें गौतम स्वामी छन्द, श्री स्थूलिभद्र छंदादि, श्री जिनोदय सूरि प्राकृत छंदानि आदि प्रमुख हैं।मेरुनन्दन का समय १५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रथम दशक से ही प्रारम्भ होता है। इनरचनाओं में से कुछ रचनाओं का मूल्यांकन यहाँ किया जा रहा है।

गौतम स्वामी छन्द अप्रकाशित है तथा इसकी प्रति तथा प्रतिलिपि बीकानेर के अभय जैन ग्रन्थालय में संकलित है।यह छन्द चरित वर्णन के लिए ही प्रयुक्त हुआ। इस रचना में कवि ने गौतम गणधर के चरित का आख्यान प्रस्तुत किया है।श्री गौतम गणधर महावीर के पट्टधर शिष्यों में से थे उन्होंने किस प्रकारसिद्धि लाभ किया। साथ ही

१- हस्तलिखित प्रति विभाग- अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

कवि ने छन्द में उनके गुणों के प्रभाव का सुन्दर वर्णन दोहा चौपाई छन्दों में किया है। रचना छोटी है तथा कुल ११ छन्दों में है जिसे एक चरित मूलक प्रशस्ति स्तवन कहा जा सकता है भाषा सरस और सरल है कुछ उदाहरण देखिए:-

मंगल कमल विलास दिणिंदह, पढम वीसु चउवीर जिणिंदह
सयल संघ मणवंछिय दायकु वन्निसु सिरि गोयमु गण नायकु
नायकु जिहं भुवणह तणा जोयइ जासु पसाउ
इक्क जीह किम वन्निवइ सो गोयम गणराउ (१-२)

-------- ----

सिरि गोयम गुरु पय कमलु हियइ सरोवर जाहं
बालक जिम रंगिहि रमइ, नव निहि अंगणि ताह (७)

--- --- ---

कज्जा रंभिहिं जे भविय गोयमु चित्ति धरंति
ते गल हत्थिय दुरिय भड दुत्तरु भत्ति तरंति (६)

--- --- ---

गोयम सामिय मह सुणिय इम मच्छर गुणवन्नु
संघ मेरु मंडण नमिहिं सुरतरु जिम मयवन्नु (११)

श्री गौतम स्वामी छन्द (द्वितीय)

इसी प्रकार एक दूसरी भी १० छंदों में लिखी गई है। मेरु मंडन का काव्य इस रचना में पूरा चमत्कार लिए हुए है। प्रवृत्ति महत्ता गौतम के वैभव, साधना और तपस्या को प्रशस्ति रूप में लिखी गई है।

रचना में प्रयुक्त कवि की उपमाएं तथा रूपकात्मक एवं आलंकारिक शैली के कुछ स्थल उल्लेखनीय हैं:-

हा सुरतरु जिम मयवन्नु महामणि,

सुर मंदारि चिन्ता मणि
दिण मणि जिम सोहइ गयणंगणि,
तिम जिण सासणि सिरि गोयम गणि
ता सिरि गोयम गणि तिम जिण सासणि
सोहइ जिम निसि चंदु
वर गुज्जर मागि मडइ महिमंडलि अंध संध आनंदु।।(१-२)

कवि ने गौतम के स्वरूप की भी सुन्दर प्रतिष्ठा की है। ज्ञान के प्रतीक गौतम कल्पवृक्ष थे, जिनको देवता लोग तथा किन्नर भी नमन करते थे जो गुरु के परम भक्त थे तथा चराचर के भेदों को जानने वाले सिद्ध बुद्ध तथा मान और अहं के मद का भंजन करने वाले गौतम का रूप चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। वर्णन की सजीवता और प्रभावात्मकता द्रष्टव्य है:-

जो कंचण कमल विमल कोमल तणु सरल हत्थ सुपमाणु
तिहुयण जणमण नयण मण मोहण लवणिम रूवनिहाणु
जिणि बिहुं उपवासिहि निसु पारंतह लाद्धिय लवधि अपार
सो अमनि मुनि वंदसु गुरु गोयमु मनि समरउं सविचार
जो काम कुंभ सुर धेनु सुरतरु सुरमणि सारिं महाणु
जिणि अक्खयमहस अणूंस सहिअइ चयाण केवलनाणु (३-५)

--- --- ---

रोहण गिरि रयण समणि तारायणु सायरि जलकण जेम
जो गुणइ नियमणु सोवि न जाणइ, जसु गुण वन्निउ अनंत
सो सिद्ध बुद्ध सिरिगोयम सामिउ संसरउ विमरविय
जइ वन्निय किंपि वेद मन्नउ थिर निवमणमंडिय कन्नि
नियसमि मंडिय करिय भणई जसु सुरनर किन्नर
सुर वंद नरिंदिय असुर विज्जहर मुणिवर
उच्छव मंगल रिद्धि सिद्धि जसु नामि पमासइं
रोग सोग दोहग्ग दुरिय दूरंतरि नासइं

जो वीर सीसु सूरीस बहु महिम गरिम गुणि मेरु गुरु

सिरि गोयम गणहारु जयउ चिरु सयल संघ कल्याण करु (१-१०)

इन अवतरणों से स्पष्ट होता है रचना छोटी होने पर भी सरस है। भाषा प्रवाहपूर्ण और अलंकारों की छटा उसके सौन्दर्य में वृद्धि करती है।

अम्बिका छन्द

छन्द संज्ञक रचनाओं में अन्तिम रचना अम्बिका छन्द है। १५वीं शताब्दी के कवियों में छोटे छोटे कईकाव्यों के रचयिता श्री कीर्तिमेरु की यह रचना सं० १४८० की है। रचना यद्यपि पूरी उपलब्ध नहीं होती परन्तु अंश मिलताहै उसको देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने छन्दों, अनुप्रासात्मक वर्णनों द्वारा काव्य को सरस बनाया है।

रचना का विषय अम्बिका देवी का यश वर्णन है। कवि के वर्णन में सुन्दर लाघव के दर्शन होते हैं। प्रारम्भ में ही कवि ने हरिगीतिका की एक कड़ी दी है। अम्बिका देवी के प्रसंग से कवि ने सुन्दर अनुप्रासों का प्रयोग किया है। भाषा सरल सरस और कोमल कान्त पदावली से युक्त है।हरिगीतिका एक प्रारम्भिक उद्धरण देखिए:-

कुसुम मन्दिर अतिहि सुन्दर, सिरि सिखर धारिणी

कामि कुंडल सूर मंडल लील, गजगति गामिनी

रूप रंभ कि, मयण संबलि, मयणकंदप हारिणी

जयपि अंजन जलद रंजन जलद गंजन भामिनी

रचना सुन्दर संक्षिप्त और गेय है और छन्द संज्ञक रचना प्रकार में उपलब्ध होने वाली रचनाओं में काव्य प्रवाह की दृष्टि सेअम्बिका छन्द दृष्टव्य है। इस प्रकार छंद संज्ञक रचनायें छोटी पर सरस और काव्यात्मक हैं।

::श्री स्थूलिभद्रमुनि छन्दादि[१] ::(प्रथम तथा द्वितीय)

मेरुनन्दन द्वारा रचे इसी प्रकार के दो सुन्दर छन्द और उपलब्ध होते हैं। प्रथम छन्द ८ छन्दों का है तथा द्वितीय रचना २५ छंदों में लिखी हुई है।ये दोनों रचनाएं प्रकाशित की जा चुकी है। रचनाओं की मूल प्रति बीकानेर के अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है।

दोनों छन्द तपोनिष्ठ संयमशील श्री मुनि स्थूलिभद्र पर लिखे गई है इन दोनों मेंपहली रचना काव्य की दृष्टि से बिल्कुल साधारण है परन्तु वर्णन की मधुरता सर्वत्र विद्यमान है।संयमश्री की प्रतिमूर्ति स्थूलिभद्र का सुन्दर वर्णन देखिए:-

प्रथम- जिण सासणि सिव सासणिहि मुणिगई बहुमणि सील
कविन पालिय सील मुणि थूलिभद्द जिम लील (१)

--- --- ---

जे भुयवली सायरु तरई अनुपरुालि उडंद्गति
थूलि मद्दिव लोचिय जनइ तिणिवेइ मुझंति
थूलि भद्द मुण अमिय रसु जे अहनिसि घुट्टन्ति
काम भुअंगम विसम विस लहरिहिं ते छुट्टन्ति
थूलिभद्दु मुणिवरु अवर सप्तगुण रयण निहाणु
सयल संघ मंगल करउ धीरिम मेरु समाणु (८)

द्वितीय रचना छंद संख्या लगभग सभी रचनाओं में सरस है।कवि ने थूलिभद्र के संयम तथा कोशा के शृंगार में अपूर्व कौशल दिखाया है। कवि प्रारम्भ में ही शील के परम प्रतीक स्थूलिभद्र को वैराग्य का परिचय देता है:-

<u>द्वितीय</u> मेरु समाणु सु धीरिहि परिहरउ, कोस वेस रस रंगिन विहुरउ
महिय मयण जीं जिणि आवेसरि, जयउ सुथूलिभद्दु मुणिवेसरि

१- [illegible] पत्रिका, अभिनन्दन विशेषांक पुस्तक १ अंक २ पृ० १९-२०, सन् १९५७-५८।

जो बार बरस मुनि भोग पुरन्दरू ममरजेम मयमदतु
नव कुब्बनि कोशा वेस वर कामिणि कमलिणि रमरसि ररतु
ता पुरतउ विक्रम महारस सागरि अमानियउ कंचलि सिरिया गणि
राउ पसार कहाविउ रायह घर भणि गमण जणविउ सायणि
जिणि तावह मरणु सुणवि मणि चिंतउ, धिगुधिगु पहु संसारू
अधिकार भार पय अप्पण अवसरि लिद्धउ संयम भारू (१-३-)

संयमशील ग्रहण करने पर स्थूलिभद्र ने अपने गुरु से प्रथम चातुर्मास कोशा के ही यहां करने की स्वीकृति मांगी। वैश्या भी उनको पुनः प्राप्ति की कामना से अपाने आई। मुनि केरहने के लिए चित्रशाला शृंगारी गई। वैश्या कोशा ने अनेक शृंगार किए।कवि ने यह वर्णन अत्यन्त प्रासादिक ढंग से किया है। वैश्यह कोशा का उल्लास देखिए:-

वरसालइ मुणिवर लिंह अभिगाह चिक्खणि मण उल्हासि
को मयणराय परिभवु समरंतउ इम जंपइ गुरु पासि
पहु करि पसाउ आपणु समप्पउ, रहिसु यह चउमासि
भोयण रस रंगिहिं नवनव भंगिहि कोस वेस आवासि (५-६)

--- --- ---

आवइ घण पुण मेहर रणकंतइ, हरि हउ कंठइ धारि
हणि नवणि बयणि विहसिय रोमंचिय चिंटिहइ भिम भरधारि
धाधारउ धाणि पय सर्वांडिय नव्वइसण आणंदि
कम्पीमइ करणि पुणवि पिउ आइउ कचरिउ बिंदु गईंदि
सा रहिय कुसुमि चिय धाविय मज्जिमय, घन लिभारि नारि वा कज्जिमय
धक्खि नवरंगु अंगु पक्खालिय परिहरिय अभय सुकोमल फालिय (८-९)

कोशा वैश्या के शृंगार का भी कवि सुन्दर चित्र खींचता है।कोशा का नवविध अभिनव यौवन, शरीर पर धारण किए हुए विविध आभूषण और परिधान और सुगठित शरीर रंभा की भांति रूप, काम के बाणों के विविध कटाक्ष और भाकन्ही प्रकृति सुभारा उसकी कामुक वृत्ति में वृद्धि आदि सभी के वर्णन कवि ने सरल भाषा कोमल मधुर वचन, तथा प्रासादिक वर्णन क्रम में संजोये हैं भाषा की सरलता और

॥ जम्बूस्वामी सत्कवस्तु ॥

सत्कवस्तु नाम से अभी तक कोई दूसरा काव्य नहीं मिलता है। यह रचना जैसलमेर भण्डार[१] में है तथा श्री नाहटा जी ने इसे प्रकाशित कर दिया है। पूरी रचना में आदर्श महापुरुष जम्बू स्वामी के जीवन चरित्र का वर्णन है। जम्बू स्वामी सुधर्मा स्वामी के पट्ट शिष्यों में से हुए थे। जैन धर्म के अनुसार यही अन्तिम केवली थे। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों के कवियों ने जम्बूस्वामी के जीवन को अपने काव्यों का विषय बनाया है। अपभ्रंश में वीर कवि का जम्बूसामी चरिउ विशेष उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत रचना का नामकरण कवि ने - जम्बू स्वामि सत्कवस्तु- किया है। सत्कवस्तु शब्द पर विचार करने पर यही स्पष्ट होता है कि इस शब्द का तथा इस नाम से अभिहित की हुई रचनाओं की परम्परा का अलग से इतिहास नहीं मिलता। कवि ने जम्बू स्वामी के चरित वर्णन करने की पद्धति तथा नाम में नवीनता प्रस्तुत करने के लिए ही संभवतः रचना का यह नामकरण किया है। दूसरी प्रमुख बात इसके नामकरण के लिए यह भी कही जासकती है कि क्योंकि कवि ने पूरी रचना वस्तु छन्दों में लिखी है अतः जम्बू स्वामी सत्कवस्तु उसका नामकरण कर दिया है। वास्तव में पूरी रचना जम्बू स्वामी के जीवन, तप, दीक्षा और साधना तथा कैवल्य मोक्षादि का वर्णनहै। पूरी रचना एक ही छन्द में होने से वस्तु छन्द की लोकप्रियता की ओर भी प्रकाश डालती है साथ ही जम्बू स्वामी के जीवन को भी कवि ने सरलता से प्रभावपूर्ण भाषा में ढाला है।

रचना जैसलमेर की सं० १४३७ की स्वाध्याय प्रति में उपलब्ध हुई है अतः यह कहा जा सकता है कि यह अवश्य १५वीं शताब्दी की होगी। भाषा के रूप को देखते हुए रचना की प्राचीनता सिद्ध होती है। चरित संज्ञक काव्यों में

१: देखिए जैसलमेर बड़ा भण्डार-प्रति विभाग सं० १४३७ की स्वाध्याय पुस्तिका: इस प्रति की प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है।

से एक जम्बू स्वामी विषय चरित काव्य पर पहले विचार किया जा चुका है। जम्बूसामि चउपइ कुल २१ वस्तु छन्दों में लिखी गई है।अतः पूरी रचना छंद प्रधान है।

प्रारम्भ में कवि ने नमस्कार आदि की पद्धति का प्रयोग न कर एकदम काव्य प्रारम्भ कर दिया है। भगवान जम्बूकुमार विविध आभूषणों से सुसज्जित विवाह कर आ जाते हैं कवि ने यहीं से रचना का प्रारम्भ किया है। रचनाकार ने जम्बू स्वामी के इससे पूर्व के चरित्र पर आंशिक भी प्रकाश नहीं डाला। कवि पहले ही-

कणय कुण्डल कणय कुण्डल मउड वर हार
बीगंगुव कल्पतहि विविह भंगि सिंगारु भावहिं
परिणेइ वर कन्न तहि अट्ठ पवरु मंगल बवरिहिं
नव नव कोडि सुवन्न सहि परिमिउ आणिउ वारि
ठावि ठावि कुलहरइ पइसइ घरह मज्झारि (२)

जम्बू स्वामी के आदर्श जीवन के आधार पर कवि ने नश्वर संसार की कथा को विविध निर्वेदात्मक दृष्टान्तों द्वारा स्पष्ट किया है।कथा सूत्र इन दृष्टान्तों में अत्यन्त सफल है। कथा के माध्यम से कवि ने जैन दर्शन के कठिन सिद्धान्तों को जन सुलभ बनाया है। जम्बू स्वामी राजगृह के श्रेष्ठि भारत तथा धारिणि के पुत्र थे।परिजनों के अनुरोध से इन्हें नगर के धनपतियों की आठ कन्याओं सिंधुमति, पद्मश्री, पद्मसेना, कनकसेना,नागसेना, कनकश्री, रूपश्री और कमलावती सेविवाह करना पड़ा। उनके दहेज में सोने के हार कुण्डल बीगंगुव तथा ९।९ कोटि स्वर्ण मिला जैसा कि उक्त पद से स्पष्ट है।रात्रि को प्रभव नामक चोर ने अपने ५०० शिष्यों सहित घर में चोरी करने को प्रवेश किया। पर जम्बू स्वामी के तप ने उसे स्तंभित कर दिया और उसकी समस्त सिद्धियां व्यर्थ सिद्ध हुईं।जम्बू स्वामी के इस प्रभाव के कारण वह भी अपने ५०० शिष्यों सहित दीक्षित हो गया। रचना में कवि ने प्रत्येक पत्नी के साथ विविध दृष्टान्तों को प्रस्तुत किया है। भाषा की प्राचीनता, काव्य की दार्शनिकता, तथा कथा तत्वका उपयोग और काव्य का प्रवाह रचना की विशेषतायें है। उदाहरणार्थ कुछ उत्कृष्ट पदों को पदार्थ देखा जा सकता है:-

यौवन की अस्थिरता पर देखिए:-

एहु जोव्वणु एहु जोव्वणु अथिरु मन्नेहिं
बोलावइ समयरिसु, चंचदीइ पाहुणय जुव्वणउं
विहसावण सुह सुहरसिय, काइ चिरहु सुह पहु जुव्वणउ
सुणि सुन्दरि जम्बू भणइ, जोव्वण विसमय हारि
चंचल जोव्वणु पहुपह चम्मिवि किज्जइ नारि (७)

पूरा काव्य संवादशैली में लिखा गया है। उत्तर प्रत्युत्तर शैली के कारण रचना के प्रवाह में अपूर्व वृद्धि हुई है।वर्णन के इस क्रम को नाटकीय संलाप कहा जा सकता है-

कंत जीविय कंत जीविय सफल फल एहु
ज रमइ पर घरणि, नव विलास रस हाव भाविय
सिंगार रस रंग सुह विविह भंगरय संगमारहि
भउम सेम जंपिह सुण सामिय तम इन दीहु
विलुध समइ दुक्कर वरणु करहुं होअउ दीहु (८)

जम्बू स्वामी का उत्तर:-

जम्बु कुमारु पयपेहि कम्मिन कयंतह हत्थु
कहहि अनतेह चालिसइ नवि संबहु नवि सत्थु (९)

संसार नश्वर है, विविध योनियों में जीव परिभ्रमण कर क्रम के चक्कर से मुक्ति नहीं पा सकता।सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान जीवन मुक्त करने के लिए परमावश्यक है। यौवन, धन सब अस्थिर है, मनुष्य को शाश्वत संपत्ति प्राप्त करनी चाहिए, जो कैवल्य है, आदि दार्शनिक बातों को कवि ने प्रवाह से संजोया है:-

विविह जोणिहि विविह जोणिहि भमिय संसारि
जीव विहु सुक्ख दुख जम्मणमरण बंधण वियोगहु
कलकलवि कम्मह विभारि पत्तु सम्मतहुवउ सुजोगहु
सिद्धुवई घर मवमु भविहरिक्त फिर वारु
केवलि वरमिहि हारवइ छलिंबिइ कहु संसारु (४)

--- --- ---

जो सुण सुण्णइ नाणिवह को छाडइ गणियेह
सुक्क रिद्धि परिहरइ, वारम संपइ लेइ (११)

सकता है। वस्तुछंद जैन कवियों का प्रिय छंद रहा है। भाषा को देखते हुए रचना की प्राचीनता निर्धारित है। अपभ्रंश के शब्दों की अधिकता रचना को प्राचीन भाषाकृति कहलाने में सक्षम सिद्ध करती है। पूरी रचना में विविध दृष्टान्तों अन्तर्कथाओं, उत्तर प्रत्युत्तर शैली, कथातत्व और प्रथम चोर आदि सभी की कथाओं आदि ने कृति को दर्शन की ठोस बातों को भी सरलता से प्रस्तुत कर जन सुलभ बनाने में पर्याप्त योग दिया है।

: खेत्रपाल द्विपदिका :

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कवि छेल्हू रचित एक छोटी सी रचना खेत्रपाल द्विपदिका उपलब्ध होती है। रचना जन भाषा में द्विपदियों में लिखी हुई मिलती है। द्विपदी संज्ञक रचनाओं में यह अकेली रचना है। खेत्रपाल द्विपदिका कुल ८ छंदों में समाप्त हुई है। द्विपदियों में लिखी होने से ही बहुत सम्भव है कि कवि ने इसका नाम खेत्रपाल द्विपदिका रख दिया हो। द्विपदी छन्द विशेष भी हो सकता है क्योंकि कई कृतियों में प्रयुक्त छन्दों में पदों के नीचे द्विपदिका लिखी है। रचना के प्रमुख छन्द की कड़ियों को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि दो दो कड़ियों को एक साथ लिखने के कारण भी कवि ने इसका नामकरण द्विपदिका कर दिया हो। अतः इस सम्बन्ध में अनुमान पर ही आधारित रहना पड़ता है। रचना अप्रकाशित है तथा अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है।

खेत्रपाल एक देवता होता है जो ग्राम सेनापति होता है। तथा यह प्रत्येक देश में पूजा जाता है। कर्मकाण्डों के भैरव को भी खेत्रपाल कहते हैं। राजस्थान में आज भी यह प्रथा पाई जाती है कि यदि कोई शुभ कार्य करने के लिए ग्राम छोड़कर बाहर

जाते हैं तो क्षेत्रपाल की पूजा करते हैं। अतः क्षेत्रपाल क्षेत्र विशेष के देवता को कहते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास भी है कि क्षेत्रपाल की पूजा न करने पर गांव में पत्थरों की वर्षा होती है, वर्षा नहीं आती, अकाल पड़ जाता है।महामारी हो जाती है क्योंकि क्षेत्रपाल के आधीन भूत, प्रेत, वैताल, पिशाच आदि रहते हैं और उनके क्रुद्ध होते ही पृथ्वी डोलने लगती है।पर्वत कांपने लगते हैं। जैन समाज में भी क्षेत्रपालका बड़ा सम्मान है। ढोल मृदंग, वीणा, वाद्य कंसाल आदि वाद्यों द्वारा वे क्षेत्रपाल का स्वागत करते हैं। प्राकृत में तो ऐसा सूत्र भी मिलता है जिसमें- खित्त देवे आये निमित्तं करेमिकाउसग्गं क्षेत्र देवता के निमित्त मैं कायोत्सर्ग करता हूं अतः इससे यह कहा जा सकता है कि क्षेत्रपाल जैनसमाज के सम्मानित देवता हैं ।

<u>विशेष:-</u> प्रस्तुत छिप्पदिका में कवि ने क्षेत्रपाल के गुणों की स्तुति की है।पूरी रचना में कवि क्षेत्रपाल के वैभव का व्याख्यान प्रस्तुत करता है। उसकी शक्ति का स्तवन तथा प्रशस्ति गान इस रचना में मिलता है।वास्तव में कवि यह दिखाना चाहता है कि वह कितना शक्तिशाली देव है जिसकी पूजा के बिना जीवन के साधना शान्ति पूर्वक होना असम्भव है।

इसरचना का काव्यात्मक दृष्टि सेमहत्व साधारण है परन्तु भाषा का प्रवाह तथा शब्द चयन और छिप्पदियों की दृष्टि से १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ऐसी रचनाओं का महत्व उल्लेखनीय है।कवि का जन भाषा प्रवाह तथा कृति में प्रयुक्त शब्दों की अनुरणनात्मकता द्रष्टव्य है।

कुछ काव्यात्मक उद्धरण देखिए:-

घुम्मइ डमडमंतु महमाह मच्चइ समुहु महमहे
घुम्मइ खणखणंत वण भीसण भेरु तहउ परिमले
घत्त कुल घत्त कुल भैरव सव चावा लहु पडुत्तउ
नच्चइ छित्तवाल जिणमंदिरि बहु आणंद जुत्तओ

जिस प्रकार शैवों में शिवजी के सामने उनके प्रमुख गण तथा भैरव आदि नृत्य करते हैं ठीक उसी प्रकार जिनमन्दिर में भी क्षेत्रपाल आनन्द निमग्न होकर झूमते हैं।क्षेत्रपाल के प्रभाव का वर्णन कविअनुरणनात्मक शब्दों में करता है। भाषा का प्रवाह उल्लेखनीय

है। क्षेमपाल का बल एवं विविध दृष्टान्तों से उसकी पुष्टि देखिए:-

जो भुयदंड बलिय बावन कह मोडइ मयुह होलय
विल्लाहिवइ केम उवमिज्जइ ओमर तरुणि लोलए
जसु पय, वंसि पुट्ठ डाइणि मह भूप पिवायर रक्खणा
जसु मइ उवसंमति बेयाल मणा वण मयण कक्कवा
विसहर वीह घोर अरियण घड़ जे किवि विमुख कारया
गुह मावंत हुंति विल्लाहिव ते डंक मुक्क कारया
जसु पयभार भरिय वर कंपइ संकइ सेसु नियमणे
गिरिटलटलइ ववहि उछलइ विभउ फरित पुरनणे
करि करवाहु गहिवि कविमुज्जहु, मुणहारु हिउ हिंडए
कुमरिय भिच्चु पक्पम वंरिउ पूरइ अरि विहंडए
बहुलावन्न पुन्न तिय सालय रमणी चित्त मोहिओ
विज्जाहर नरिंदु नारी गुण पय सय हरित होहिओ (२-५)

उक्त उद्धरण द्वारा कवि की वर्णन शक्ति प्रवाह तथा भाषा का स्वरूप आदि देखे जा सकते हैं। अन्त में कवि स्वयं अपना परिचयदेकर रचना समाप्ति करता है:-

मिलवइ मुज्झ सुज्झ बहु विह परि कुसु न होइसवक्खण
दिक्खायरण विज्य केवंत समीहिय ताहु वंधव
योज्झ पढइ सुणइ चिल्लाहिव इयकवि छन्दु वंधव (८)

(गाथा)

गाथा साचके अतिरिक्त की जाने वाली रचनाओं की उपलब्धि के कारण गाथा शब्द की परम्परा पर विचार किया जा सकता है।या तो आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में मुक्तक काव्य के रूप में जितनी रचनाएं उपलब्ध होती हैं उनमें कईरचनाओं के नाम के पीछे गाथा शब्द प्रयुक्त मिलता है जो छन्द सूचक है।

परन्तु कालान्तर में गाथा नाम से स्वतंत्र रचनाएं भी मिल जाती है इनके अध्ययन से यह कहा जासकता है कि गाथा एकस्वतंत्र छन्द विशेष ही बन गया है। वस्तुतः इस दृष्टि से गाथा छंन्द की परम्परा पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

गाथा शब्द चिर प्राचीन है रिगवेद में गाथा शब्द यज्ञ पर गाने के लिए प्रयुक्त होता था। रिगवेद में गाथा और गाथिन[1] शब्द मिल जाते है। गाथिन् उसमें गाने वाले के लिए प्रयुक्त होता था। वैदिक संस्कृत के पश्चात् प्राकृत में हाल की गाथा सप्तशती जैसी सुप्रसिद्ध रचनाएं मिल जाती है। बौद्ध साहित्य में भी जो रचना श्लोकबद्ध हो उसे गाथा कहा गया है।इसके पश्चात् अपभ्रंश में गाहा शब्द कथा के लिए प्रयुक्त मिलता है।वस्तुतः यह गाहा संस्कृत गाथा का ही स्वरूप है। गाथा शब्द के अन्यत्र प्रयुक्त अर्थों को देखने पर यह कहा जा सकता है कि यह शब्द अनेक रूपों में प्रयुक्त हुआ मिलता है। बौद्धों की थेरी गाथाएं, ब्राह्मण ग्रन्थों में भी गद्य अंशों के बीच में प्रयुक्त पद्य तथा श्लोकों को गाथा कहा जाता था। वस्तुतः वैदिक संस्कृत के पश्चात् गाथा प्राकृत का प्रमुख छन्द बन गया था।वैदिक काल में भी वे पद्यबद्ध रचनाएं जो यज्ञ के समय गाकर सुनाई जाती थी, गाथा कहलाती थी। इस प्रकार प्राचीनकाल ऐतिहासिक कथाओं और पौराणिक आख्यानों को गाथा में निबद्ध किया जाता था। अथर्व वेद में (१५:६:१०:११,१२,१३) गाथा और गाथा नाराशंसी शब्द मिलते है।

इधर राजस्थान के लोक साहित्य का अध्ययन करने पर उसमें गाथा शब्द के लिए नये सादृश्य प्राप्त होते है। इसके अनुसार गाथा को लोक साहित्य का कथा प्रधान तथा गेयता पूर्ण लोकप्रिय वृत्त कहा जा सकता है।अतः गाथा में छंदोबद्धता, और कथा की प्रधानता इन दोनों तत्वों का होना आवश्यक प्रतीत होता है।

गाथा की उत्पत्ति कैसे हुई? इस सम्बन्ध में आलोचकों का मतैक्य नहीं है।इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के अनेक मत उपलब्ध होते है उदाहरणार्थ

१- कथा गृणन्त गाथा कुश वीर्णो कुराम्नु कथा इन्द्रमिदं गाथिनोबृहद्
(रिग्वेद १।१६७।६)।

स्टेन्थल इसे जनवादी कहते है विशप पर्सी चारणों द्वारा प्रणीत।गिम गाथा को एक व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं मानते समूह की उपज मानते है।श्लेगल का दृष्टिकोण सबसे अलग है वह गाथा की उत्पत्ति में व्यक्ति विशेष को उत्तरदायी ठहराता है। वाइल्ड गाथा के सर्व प्रथम निर्माण में व्यक्तिवाद को तो स्वीकार करता है परन्तु उसमें किसी व्यक्तित्व विशेष (परटीकुलर परसनेलिटी) का अस्तित्व नहीं मानता।

इसमें सत्य क्या है यह तो नहीं कहा जा सकता परन्तु आलोचकों ने गाथा कीउत्पत्ति में लगभग सभी सिद्धान्तों का सहयोग बताया है।[१] जैन साहित्य की प्राचीन प्रतियों में प्रयुक्त गाथा शब्द भी आख्यान तथा छन्द के ही सूचक है। १५वीं शताब्दी में उपलब्ध होने वाली अनेक रचनाओं में तो गाथा छन्द के लिए ही प्रयुक्त हुई है। गाथा शब्द के शिल्प और इस चिरप्राचीन आधार पर यह कहा जा सकता है कि गाथाओं में जिस आख्यान का संकेत है, वही परवर्ती काल में कथा चरित काव्यों के मूल में रहा होगा।गाथा ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को भी पर्याप्त रूप में प्रभावित किया है।मुक्तक साहित्य और गाथा सप्तशती की भांति हिन्दी में लिखे गए सतसईग्रन्थ इसके उदाहरण कहे जा सकते है। अतः लोक साहित्य तथा शिष्ट साहित्य दोनों में गाथा शब्द इतना अधिक प्रचलित था कि इस नाम से स्वतंत्र ग्रन्थ ही उपलब्ध होते है। लोक गाथाएं बड़ी जनप्रिय होती थीं। इन की परंपरा भी अनुश्रुतिबद्ध थी। साथ ही इनमें गेयता, कथात्मक,अलंकरण रहितता, पदों की पुनरावृत्ति मूलक टेक पद, स्थानीय रंगों में सराबोर, नीतिमूलकता, उपदेश तथा प्रवाहपूर्ण लम्बे आख्यों की गाथाएं होती है जिनका रचयिता सदैव ही अज्ञात रहता था। राजस्थानी या गुजराती काव्यों तथा वार्ताओं में इस तरह के कई प्रसिद्ध कथानक तथा प्रेमाख्यान जैसे ढोला मारू, कान्हडदे प्रबन्ध, महेन्द्र-मूमल, सदयवत्सा, तथा कुविनारदे आदि मिल जाते है, जो उत्कृष्ट गाथाएं कहीं जा सकती

१- देखिए हिन्दी साहित्य कोश पृ० २४८ प्रकाशक ज्ञान मंडल काशी, ।
प्रधान सम्पादकः डा० धीरेन्द्र वर्मा।

है । पाश्चात्य साहित्यमें भी अंग्रेजी में बैलड् को गाथा का रूप दिया जाने लगा है परन्तु लोकगीत को गाथा कहना बहुत समीचीन प्रतीत नहीं होता क्योंकि लोक गीत में वे सभी विशेषताएं नहीं होती जो गाथा में होती है।

जो भी हो, उक्त विवेचन से गाथा की प्राचीन परम्परा और शिल्प का परिचय मिल जाता है।गाथा संज्ञक उपलब्ध हिन्दी जैन कृतियों में छोटी छोटी रचनाएं उपलब्ध होती है जिनका शिल्प भी गाथा की गेयता से ओतप्रोत है।गाथा संज्ञक छोटी छोटी तीन रचनाएं मिलती है। यों तो उपलब्ध जैन साहित्य कैसेव तथा आख्यान मूलक लगभग सभी चरित्र ग्रन्थों को गाथा कहा जा सकता है।परन्तु गाथा नाम से अभिहित की जाने वाली निम्नांकित रचनाओं का साहित्यिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व परिलक्षित नहीं होता।उपलब्ध रचनाएं है:-

१- मंगल गाथा

२- आरात्रिक गाथा

३- जन्म भूमि गाथा

ये तीनोंरचनाएं जैसलमेर के बड़े भंडार की है।रचनाएं अप्रकाशित है काव्य परिचय के लिए एक उदाहरण अलम् होगा। इन रचनाओं में छन्द प्राधान्य है आख्यान भी गौण है:-

जो मंगलु सिरिरिसहनाह नाह भुवणेमिहि जिणवइ

जो मंगलु नेमिजिणनाह रिसमेसि सर्वन्नइ

जो मंगलु वसु पासनाह सम्माइयि जिणवइ

जो मंगलु वर वद्धमाण तित्थाई जिणवइ

जो मंगलु कय बीसह जिणह मुणापरिमि वेयवरहि

जो मंगलु चउविह सु संघ हवि, [illegible] दृष्टि से ही ये तीनों रचनाएं लोक प्रसिद्ध रही होगी। इन रचनाओं में कथातत्व नहीं के बराबर है। महापुरुषों का नाम मात्र है।अतः गाथा की परम्परा सम्बन्धी विवरण को कथात्मक या लेखाख्यानमूलक रचनाओं के लिए समझा जा सकता है।यह भी सम्भव है कि अद्यावधि उपलब्ध रचनाओं में गाथा संज्ञक रचनाओं की ठीक से शोध नहीं हो पाई

हो।वस्तुतः और शोध होने पर गाथा मूलक अनेक कथा प्रधान गेय रचनाएं उपलब्ध हों।

॥ रेलुआ ॥

रेलुआ संज्ञक जो रचनाएं उपलब्ध होती हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि परम्परा की दृष्टि से रेलुआ शब्द बहुत प्राचीन नहीं लगता। अपभ्रंश में भी शास्त्रीय दृष्टि से रेलुआ के नाम पर कुछ भी नहीं मिलता है। परन्तु इस जैनकृतियों में रेलुआ नाम से अभिहित कईरचनाएं उपलब्ध होती हैं। वस्तुतः रेलुआ शब्द का अर्थ रलियाइ या खेलना है।वह खेल जिससे मन को आनन्द प्राप्त हो, मन की रुचि हो। मनरली, रलियामणउ आदि शब्द कहीं कहीं प्रयुक्त होते मिलते हैं इनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि मन की रुचि से परिपूर्ण खेल को जो उल्लास प्रधान होता है रेलुआ कहते हैं। एक दूसरी प्रमुख बात यह है कि राजस्थान के लोक साहित्य का अध्ययन करने पर रेलुआ शब्द लोक गीत के लिए उद्धृत हुआ मिलता है।अतः यह लोकगीत का एक प्रकार था।धीरे धीरे यह रेलुआइतना अधिक प्रसिद्ध हुआ कि जैनी कवियों तथा जन भाषा काव्यकारों ने इसे काव्य में प्रयुक्त करना प्रारम्भ कर दिया। लोक साहित्य की यह शैली धीरे धीरे इतनी अधिक प्रचलित हुई कि कालान्तर में चलकर रेलुआ एक प्रकार का छन्द विशेष ही बन गया।अद्यावधि रेलुआ पर इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी।बहुत सम्भव है कि इस सम्बन्ध में शोध होने पर रेलुआ के शिल्प सम्बन्धी नये तथ्य सामने आ सकें।

विषय की दृष्टि से अध्ययन करने पर रेलुआ संज्ञक रचनाएं भी महापुरुषों के प्रशस्ति गान ही होती हैं जिनमें उनके चरित्र की आकर्षक झांकियां सर्वत्र परिलक्षित होती हैं।ये गीत लोक गीतों की शैली पर लिखे जाते थे, जिनको उल्लास में आकर खेला जाता रहा होगा। ये रचनाएं गेय तथा लोकतत्व को लिए होती हैं।

रेलुआ संज्ञक रचनाएं मिलती हैं उनमें अद्यावधि अधिक तो नहीं मिलती पर जो मिलती हैं उनमें भी काव्य की दृष्टि से साधारण सा ही उपलब्ध होता है। लोक

गीतों के तत्वों का आधार लेकर चलने तथा इस शैली को शिष्ट साहित्यमें प्रचलित करने के कारण ही रेलुआ महत्वपूर्ण रचना प्रकार कहा जा सकता है। अज्ञात कवियों के कुछ रेलुआ काव्यों का रेलुआ के शिल्प को समझने के लिए अध्ययन किया जा सकता है।

: जिनचन्द्र सूरि रेलुआ :

९ छंदों की एक छोटी सी रचना है जो जैसलमेर के भंडार से उपलब्ध हुई है। रचनाकार अज्ञात है। कवि ने प्रारम्भ में ही आंचली या टेक के रूप में "चतु चतु सखि रलिअइ गाइए"- एक कड़ी दे दी है। काव्य की दृष्टि से रचना साधारण है भाषा १६वीं शताब्दी के आसपास की है।रचना गेय और जन प्रचलित है। महापुरुषों के उज्ज्वल चरित्र को अपना आदर्श बनाने के रूप में लिखी गई है। भाषा का प्रवाह और शब्द चमत्कार दृष्टव्य है:-

देसण जलहरि अवयरिउ गज्जवि करंतउ भविय साहहि मोरंडु
काजल मनउ तवणु पणु पम्म छिदु धुंधुरतउ गुरुविहि तापु टंणु
ठामि ठामि गुरुय विलासुवर कामिणि मिलिया गायहि जिणचंदसूरि
काजल अन्ना मेहु जिम गाजवि करेवडु संघ मयोरह पूरि।।चतु०।।
गुरुविहि सम्मलिहि बखिकड़ इह पंडिय सरेइमिह समझन धाराउ
मय मिच्छिन रडइ बाम अन्नो सुणि पवर परिरोमिय संजमसिरि धाराउ (१)

----- --- ---

नवरस देसण, सुजलसाम सवसाल अन्नउ उदरमेहु अनाहु
संजम हय पूर चढि चमि सिरि जिणचंदसूरि कवउ जयउ मुणिनाहु (८)

- - ---

: शालिभद्र रेलुआ :

शालिभद्र के सम्बन्ध में लिखी हुई यह रचना है। भाषा और काव्य की

दृष्टि से यह रचना साधारण है पर लोक गीत की भांति गाये जाने के कारण यह एक प्रकार के छन्द की भांति प्रयुक्त होने लगी और प्रारम्भ में आंचली और फिर एक उसी कड़ी को बार बार दुहराया जाने का क्रम मिलता है।

शालिभद्र के अनशन कर देवलोक पहुंचने के सम्बन्ध में रचना ९ छंदों में समाप्त हुई है।रचना अद्यावधि अप्रकाशित है। मूल प्रति जैसलमेर भंडार में है सं० १४३७ की प्रति में से लिखी गई है। रचनाकार अज्ञात है रचना १४वीं शताब्दी की लोक भाषा मूलक है:-

तप सोषिय सरीर धणु अथिरतणु चिंतविउ देहडिया दवे दउ
धनउ अनइए शालिभद्दु मुणिवरभावरे पहुंता ऊतउ किंपि न लधु
तव तेय मुनि मल मलिन गात्र तेउ संचरिया पहुता वउहटए दहिउ विरि
विरचइ नारि
अउहीणि दीठउ शालिभद्र उरय सीउं पलोट प नइ उपगरइ त पारि

--- --- ---

धिगुधिगु इड घर जीवियउ अणुसणुपडिवज्यउ गय डूंगरिवेमारि
काउ सग्गिगहि मुणुपि ठियवर भाविण पहुता सवठ मझारि
कणय चूडामणि मंडल मउड चट्टणुय मुणछुय मणुय सिणगारि
वेसुकारिवीर विसु अंचियउ मुनि वणसु मे भेउं शालिभद्र परिवार (तप०)।।
धनउ अनए शालिभद्दु मुण्य मेलि पहुता सहं गहु अंचिया काई
अनसणु ले निमरि मत्ता पहुंता मेघ लोकिहिं सोहिय कम्म धर्माइ।।८।।तप०

इस प्रकार पूरी रचना चरितमूलक लोक गान है। मुक्तक काव्य की दृष्टि से ऐसी रचनाओं का पर्याप्त महत्व परिलक्षित होता है। रचना छोटी मेय तथा जनभाषा मूलक प्राचीन राजस्थानी की है।

---

§ गुरावली रेलुआ §

१३ गाथाओं में लिखी हुईएक अन्य रचना गुरावली रेलुआ मिलती है। देशी रेलुआ में लिखी यह लोक गीति मूलक रचना सोममूर्ति की है। मूलप्रति जैसलमेर के दुर्ग भंडार में सुरक्षित है। गुर्वावली पट्टावली की भांति जैन गुरुओं के वंश का वर्णन है। वर्णनक्रम शृंखलाबद्ध तथा प्रवाहपूर्ण है भाषा की दृष्टि से रचना सरल है। भाषा की सरलता और काव्य का गुरावलीक्रम दृष्टव्य है:-

नरकुम पहाण गुरुचरियहार जिम कंठि ठवउ तिय लोयभार
ए सुणिस रमणि जिसु तुम्ह वरेइ।।आंचली ।।(१)

--- --- ---

सव अंगहं चिरतण मिसेण जणि जिण बद्धारिय नवकिरि अमियह कुंड
दुम पवरागमु अमयसूरि सो पवणय मंजु पेहुड अम्हणविणंड
सो जिण वल्लहु दुल्लहउ सूरिहिं सिर सेहरु लयहड सुण्णिरहिमाइ
जसु संजमु अइ निम्मलउ तिहुयण मणहरु जसु नामि दुरियउ जाइ (४)

--- --- ---

अइ सव भिंगड कुलकमल वाहइ कुंवर पहु जसु दंसणि नारंगि
सूरि पंचमठ कुल पवरु सो जिनवइ सुहगुरु धन्ना केवि करंति
सुरि सुरि अइ हरिस वंस जिणि जिणि हर डालिय सोहण पह पहुंचइ
तासु जिणवर सुपवरइ सूरिसीहह पालहु नाण भणंड (७-८)

अन्त में कवि गुरावली पढ़ने का सुफल बतलाता है:-

यह गुरावलि जो पढइ जो गणि अनपारइ रंगिहि जो गायइ
सोममूर्ति मणि इह भवइ सो भव संसारह दुह जलंजलि देइ (१३)

इस तरह गुरुओं की परम्परा का क्रमबद्ध गुणगान रेलुआ में होने से इस रचना का नामकरण गुरावली रेलुआ किया गया है।इस प्रकार रेलुआ संज्ञक रचनाएं छोटी, गेय तथा लोक साहित्य के देशी ढालों से निर्मित छंद प्रधान है। काव्य की दृष्टि से ये रचनाएं साधारण है।गुरावली संज्ञक और भी कई रचनाएं मिलती है जिनमें मेरु कवि सं० (१३०१ पूर्व) विरचित गुरावली सं० १४८२ में जिनवर्द्धमान गणि विरचित

तपागच्छ गुर्वावली आदि प्रमुख है परन्तु काव्य की दृष्टि से ये रचनाएं साधारण है।

- चांद्रायण -

चांद्रायण संज्ञक रचनाएं भी छन्द प्रधान हैं। यह छंद मात्रिक छन्द का एक भेद है। इस छन्द में भानु¹ ने जो लक्षण बताए हैं उस नियम की प्रायः कवियों ने उपेक्षा की है। पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त इस छंद का प्रयोग चन्द ने किया है। सूरदास² से भी चान्द्रायण मिल जाता है। इस छन्द का सामान्य लक्षण है- कुल २१ मात्राएं तथा १०, ११ पर यति। ११ मात्रा जगण से अन्त में (।।), तथा १० मात्रा रगण में तथा अन्त में (।) मिलता है।वस्तुतः यह छन्द प्राकृत पैंगलम में उल्लिखित प्लवंग छन्द से मिलता जुलता है। सूरदास ने पदों में टेक के रूप में इस छन्द का प्रयोग किया है। जैन कवियों ने इस छन्द को इतनी अधिक प्रसिद्धी प्रदान की कि इसके नाम से उन्होंने रचनाओं का नामकरण भी प्रारम्भ कर दिया। अस्तु चान्द्रायण की परम्परा प्राकृत से भी मिल जाती है। कुछ रचनाएं विश्लेषण अंकित है:

॥ जिन प्रबोध सूरि चन्द्रायणा ॥

प्रस्तुत रचना जैसलमेर के बड़े उपाश्रय के भंडार में है तथा अप्रकाशित है। रचना अज्ञात है। प्रस्तुत रचना जिनप्रबोधसूरि गुरु गीत है। जिनप्रबोध सूरि के जन्म से लेकर साधना तक कवि ने उनकी तपस्या और व्रत का वर्णन किया है।

चंद्रायण एक प्रकार का व्रत विशेष भी होता है जो बहुत कठिन और तितिक्षा प्रधान होता है।बहुत सम्भव है कि कवि ने उपासना में डूबकर जिनप्रबोध की कीर्ति वर्णन में यह नवविन्यास किया हो। रचना में छन्द की नवीनता,

---

१- सगनी जगा बिचारि भाव सब कीजिए- देखिए भानु का छन्द प्रभाकर पृ०(५५-५६)

२- यह मति अचरज पीरि कहाकारन ठगो-देखिए सूरसागर-पद ११९०।

अद्यावधि प्राप्त सभी रचनाओं से भिन्नता प्रस्तुत करती है। रचना भाषा को देखते हुए १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की परिलक्षित होती है। पूरी रचना ६ गाथाओं में लिखी गई है।कुछ उदाहरण देखिए:-

पढम सुरगुरु पउमनाहु निरखण विहरंतउ

मयउरि पुरि संपत्तु सामिकुमरउ धरियमउ

कवि ज्ञान के साकार स्वरूप जिनप्रबोधिसूरि को भक्ति से नमन करता है।जिन प्रबोध चन्द्रमा की भांति सुशोभित होते हैं:-

वंदहु निम्मल नाण निहि जिण पबोह मुणीसु

लद्धिवहि गोयमु अवयरिउ सूरिजणेसर सीसु ।।१ ।।

सीसु जिणि सरह सूरिस्स गुण सायरो, लद्धिवकिरि अवयरिय गोयमो गणहरो

सयल सुहविंद विवेण वंदिय पहु, नाण निहि वंदवउ ।।२।।

सोहइ सायरु चंद जसु जिणि पबोह मुणिराउ

भविय कुमय पडि बोहयरु तिहुयणि जो विक्खाउ।।१।।

जोय विक्खाउ गुरु पय जिण वल्लहो, मंद पुमाण जंतत्तण जो दुल्लहो।

किरिह तुम्हाइ जो सयलु जसु बोहय चंद मधुर सोहए।।२।।

इस प्रकार कवि ने सामय के ज्ञान का चांद देखक बांधकर ज्योत्स्ना रूपी बोध किरणों का प्रकाश किया है। अन्तिम पद में छन्द का यह माधुर्य और भी निखर उठाता है। जिसमें कवि ने सागर को तारा रवि को सूर्य और चन्द्रमा को कलंकित ठहराया है परन्तु गुरुओं में केवल जिनप्रबोध को निष्कलंक गुणगण गेह- कवि ने उपमानों की उपमेय के समय अपनी आलंकारिक शैली में फीका सिद्ध किया है। वर्णन की स्वाभाविकता उल्लेखनीय है:-

सायरु खारउ रवि तवइ चंदु कलंकिउ देहु

किणि उवमिज्जहि सुहु गुरु निक्कलंक गुण गणगेहु।।१।।

गेहू निक्कलंक गुणगण गेहू सुहगुरु केण उवमिज्जए भविय कप्पतरु

चंदु सकल कुमर तवइ तेम से मरो

खारु जल खारु जल खारु जल सायरो- (२ ।।चंद्रायणा)

इस प्रकार कवि ने एक दोहा देकर उसके द्वितीय विषय चरण की पुनरावृत्ति करके मौलिक छन्द बनाने का प्रयास किया है। रचना छोटी, सरस तथा अपभ्रंश के शब्दों का आधिक्य लिए है जो उसकी प्राचीनता सिद्ध करती है। पूरी रचना भक्ति भाव में डूबकर गुरु दक्षिणा के रूप में कवि ने लिखी है, ऐसा प्रतीत होता है।

- श्रीजिनेश्वर सूरि चंद्रायणा -

१२ छन्दों की एक और रचना जिनेश्वर सूरि चन्द्रायणा उपलब्ध हुई है। कवि प्रारम्भ में नमस्कार करके रचना प्रारम्भ करता है। इस रचना में भी जिन प्रबोधसूरि चन्द्रायणा की भाँति जिनेश्वर सूरि की पूजा की गई है। परन्तु इसमें कवि ने यथा सम्भव छन्दों में परिवर्तन किया है। रचना गेय है तथा बार बार सुरे शब्द का प्रयोग बड़ा सुन्दर लगता है। भाषा में अपभ्रंश के शब्दों का बाहुल्य है। कवि रचना का संकल्प प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देता है:-

> हलि पंच कुसुम धरि विसह नमिज्जइ करिधरवरधारंगो
> भवि समरि चिंतिवह सूरि जिणेसर गुण हवि ठाण सुचंगो
> रह भणइ भवण सुणि घरसु कंकुह निम्मिह करह कोचंडो
> जो भवह न विरसु केमवि विज्जइ चिंपि धर सूरि पर्यंडो (१)

आगे रचना में मुनि प्रवर की साधना और प्रभाव का वर्णन किया गया है। रचना की भाषा १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की परिलक्षित होती है। रचना का कर्ता अज्ञात है। पूरा काव्य संसार, पाप, दुख, काम आदि भावों से सचेत रखने वाले तथा उनको दूर करने वाले जिनेश्वर सूरि के लिए लिखी गई है:-

> सुरे ससल संसार तारण हंडो, सुरे पवय वर विमल गुण मणि करंडो
> सुरे पट्टि जिनपतिय सहगुरण धीरो, सुगई जिन जिणसर सुरिंदि धीरो
> जे जिरह महीयल संघल्ल राया जे विणमहियल मुणि सिरायो

अहे चिरत गइ अक्ख अक्खावहीर्य, कहहि कामरत जिमि सरमुणीर्य
जुरैकन्द वर गन्छ उक्करम धीरो जुरे सयल मुवत्थ आगमगहीरो
जुरैकाम घरि चडह मंजम मंदो मुकिम्बहई जिप्पय मुणिवरिंदो (५-७)
रचना में कवि ने यथा स्थान छन्द परिवर्तन भी किया है जिससे उसमें गेयता बनी रहती है:-

मुरहेधि विवाह मुठागुअरे रइ मयण भणइ मम चलम हरे
पिढि पढ़सि जिणेसर सुरिगुरु नरवाम न माम न वाउ धरे (१०)
गम मुढिहय पक्खरि धंवरदलं मन करहि मयण मन चलहिबलं
यह कुवइजिणेसर सूरि गुरुंतत पक्खर नहय न गुढिय गर्य

इस प्रकार छोटी सी रचना होते हुए भी इसका अपना महत्व है।काव्य की दृष्टि से रचना का महत्व साधारण है। पर रचना प्रकार की दृष्टि से काव्यप्रकार का अपना स्वतंत्र महत्व है।

- अष्टक -

द्विपदिका, छप्पतिका, आदि की भांति अष्टक संज्ञक रचनायें भी उपलब्ध होती हैं। इनरचनाओं के मूल में भी संख्या कार्य करती है। आठ छन्दों में जो रचना सम्पूर्ण होती हो सम्भवतः कवि ने उसी रचना को अष्टक कहा है। अष्टक भी स्तवों की भांति गेय और प्रभावशाली रचनायें होती हैं कवि उल्लासप्रधान आठ छन्दों में क्योंकि अपने नायक का गुण गान करता है। अष्टक कालान्तर में कोई छन्द विशेष बन गया हो ऐसी प्रतीति असंदिग्ध नहीं कही जा सकती। अतः प्राप्त रचनाओं के आधार पर यही कहा जा सकता है कि इनमें ८ पदों की ही प्रधानता है।

मोह कोह मउड़ पमुह मयण रायह बहु पमुगउ
परणि भणइ हे कंत कांइ महवयणि न लग्गउ
सोमयण राउ दल बल सहिउ जिमा अगुरु रणि पाडियउ
खरतर गच्छि जिणचंद सूरि जगि जस पडह बजा वियउ (७-८)

इस तरह जिनपद्म सूरि अष्टक सूरि जी के साधना पथ में आने वाले विकारों के निराकरण का प्रकाशन करता है। रचना अप्रकाशित है। भाषा की दृष्टि से रचना १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की ही कही जा सकती है। इसी रचना की भांति एक अन्य अष्टक संज्ञक रचना कल्पभूमि गाथाष्टक और मिलती है पर यह काव्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है।

<u>विषय प्रधान:</u>

विषय प्रधान रचनाओं में विषय का वैविध्य मिलता है और मूर्ख विषय के आधार पर ही इनका अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यों तो चरित, पवाड़े कथा काव्य तथा प्रबन्ध संज्ञक लगभग सभी काव्य विषय प्रधान ही है लेकिन अधोलिख रचनाओं के विषय में जैसा वैविध्य मिलता है वैसा पूर्ववर्णित रचनाओं में नहीं मिलता। इसीलिए इनका स्वतंत्र रूप में विवेचन अपेक्षित समझा गया है।

- चैत्यपरिपाटी -

चैत्यपरिपाटी जैन धर्म में पूजा उपासना पद्धतियों पर प्रकाश डालती है। मन्दिरों की विविध प्रकार की उपासनाएं तथा विभिन्न मन्दिरों की परिपाटियों के प्रकाशन के लिए ही चैत्यपरिपाटी शब्द से रचनाओं का नामकरण किया गया है। यह भी संभव है कि विभिन्न मन्दिरों की संख्या का बोध कराने के लिए जो एक सूची मिलती है उसका शीर्षक इस प्रकार की रचनाओं में हो। चैत्य परिपाटी, चैत्य परिपाटी, अथवा चैत्य प्रवाडी आदि शब्द मिल जाते हैं जो सब एक ही शब्द के पर्याय हैं। चैत्य परिपाटी में श्रावकों का गमन, वंदना तथा उपासना आदि

सभी आ जाते हैं। उपलब्ध चैत्य परिपाटी संज्ञक रचनाओं में जैन महापुरुषों तथा प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों के चैत्यालयों और वहां के तप के प्रभाव वर्णन मिलता है। चैत्य परिपाटी संज्ञक कई रचनायें मिलती हैं ये सब रचनायें एक ही विषय चैत्य वर्णन से सम्बन्ध रखती हैं। इनमें छन्द वैविध्य भी है परन्तु प्रधानता वस्तु वर्णन की ही है अतः इन्हें विषय प्रधान कहा जा सकता है। कुछ प्रमुख रचनाओं का विवेचन उल्लेखनीय है:

*** श्री शत्रुन्जय चैत्यपरिपाटी ***

श्री शत्रुंजय चैत्य परिपाटी रचना जैसलमेर दुर्ग भंडार में सुरक्षित है। रचना अप्रकाशित है तथा कृतिकार है श्री सोमप्रभमणि। रचना १४वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध की है भाषा आदि को देखकर यह कहा जा सकता है कि प्रतिदिन गाये जाने के कारण ये रचनायें बड़ी लोकप्रिय रही होंगी। पूरी रचना ११ छंदों में लिखी गई है।

प्रस्तुत रचना का विषय शत्रुन्जय तीर्थ के चैत्यों तथा देवताओं का मय वर्णन है। रचनाकार ने रिषभ की वंदना कर कृति को प्रारम्भ किया। कृति में आराधना और उपासना आदि के वर्णन है तथा साधक के सामने भक्त की लघुता दर्शायी है:-

> वीछइ आदि जिणेसरिहिं तिमललदरिसु मवाह
> लोयण अमिअह रसु भरई भवइ कलिमलुचार
> जिमबर वामहि रंगवरि राविखुलु गायेसु
> कवि यु कुमई कुमार बधि निय चीविमल देसु (३-४)

कवि ने मन्दिर में स्थित सभी प्रतिमाओं का क्या स्थान तथा सम्बन्ध वर्णन किया है तथा चार बलिष्ठ से उनका वैभव बढ़ाकर बहुत से नमन किया है। भाषा सरल तथा बोलचाल की है। प्रस्तुत परिपाटी का प्रतिदिन चैत्यालयों में पाठ होता है। कवि ने दोहा छन्दों में पूरा काव्य लिखा है। भाषा के प्रवाह कवि ने विभिन्न चैत्यकुलकों के वर्णन में देखा जा सकता है। कुछ उदाहरण देखिए:-

देखिउ अपच्छु मोहियए लोयण अमिय थाइ
तीरथ थोड़ा माहि इवि अवयरिउ वहिँ ठाइ

--- --- ---

तेम कुडिय बाहत्तरहिं भंडाड जिणवर देव
अट्ठावय सम्मेय गुह, करउँ कुतीरथ सेव
मठह कुवारिउ भोरडिय गुरु वंदउ तहिठाइ
गोयम मंडपि जाइ करि नमहा निभिवइ पाय
नंदीसर वरि आठमइ कीधिय चेइय रम्म
ते अवतारिय विमलगिरि मोढिउ हो ठिय कम्म
निय कुवरिय वलि जहि हुवय माणुय इणिमावंइ
इंद मंडपि तिणि बाइकरि पुच्छिमु जिणवर विंदु
ताकल बर्मुं छत्तमु तामिउ नेमिकुमार
पूजउं सब, पडुम्न सउं दीठउ किरि गिरनार (१९:२४)

अन्त में कवि चैत्य प्रवाड़ी को सबसेपहुले को प्रबोधकर मंगल की कल्पना करता है:-

एहजि चैत्रप्रवाडिनर पढइ गुणइ निसुणंति
तिरि सर्वंग कायफलु ते निश्चइ पावंति

रचना सरल तथा वर्णनात्मक है। काव्य की दृष्टि से अधिक चमत्कार उपलब्ध नहीं होताहै।

: श्री चैत्य परिपाटी :

१५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कवि जयसागर विरचित चैत्य परिपाटी उपलब्ध होती है[1] जयसागर बहुमुखी प्रतिभा के कवि थे और उनके द्वारा रचित विविध प्रकार की अनेक रचनायें मिलती है प्रस्तुत रचना २१ छंदों में लिखी गई है तथा ग्राम और नगरों तीर्थों के अन्तर्गत विभक्त है। रचना में कवि ने लगभग

१- पाटण भंडार: मुनिपुण्य विजय जीके संग्रह: पत्र प्रति पत्रांक २-१०।

उसमें बारहमासे संज्ञक कुछ फुटकर वर्णन प्राकृत में मिल जाते हैं।[1] अपभ्रंश में उपलब्ध होने वाली रचनाओं में भी डा० नामवरसिंह ने बारहमासा संज्ञक सर्व प्रथम रचना जिनचन्द्रसूरिकृत-नेमिनाथ चतुष्पदिका- को ठहराया है[2] साथ ही उसे अपभ्रंश का भी कहा है परन्तु ये दोनों ही तथ्य ठीक नहीं हैं। नेमिनाथ चतुष्पदिका अपभ्रंश की रचना नहीं होकर प्राचीन राजस्थानी या पुरानी हिन्दी की रचना है। नेमिनाथ चतुष्पदिका के काव्य पर विस्तार में विचार पिछले षट्पद संज्ञक रचनाओं के अध्याय में किया गया है। नेमिनाथ चतुष्पदिका एक तो अपभ्रंश की कृति नहीं पुरानी हिन्दी की है। अपभ्रंश की रचनाओं में भी बारहमासा संज्ञक एक प्राचीनतम रचना उपलब्ध हुई है जिसका नाम है- बारहमावर्ड-। यह रचना श्री अगरचंद नाहटा ने प्रकाशित की है।[3] गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज से प्रकाशित पत्तनस्थ जैन भांडारीय ग्रन्थ सूची का प्रथम भाग में ताड़पत्रीय प्रतियों का जो परिचय दिया गया है उसमें धर्मसूरि स्तुति नामक अपभ्रंश रचना की प्रारम्भिक की गाथाओं और अन्त की ४१ से ५० तक की उद्धृत १० गाथाओं का नाम श्री गांधी ने भी- बारहमावर्ड द्वादश मास अपभ्रंश दिया है।[4] वस्तुतः अपभ्रंश की अद्यावधि उपलब्ध बारहमासों में यह रचना प्राचीनतम है।

अपभ्रंश की बारहमासा वर्णन पद्धति पुरानी हिन्दी की आदिकालीन रचनाओं में भी सुरक्षित रही है। अपभ्रंश से मिली अंतिम काव्य कृति अब्दुलरहमान कृति- संदेशरासक- में भी ऋतुवर्णन के रूप में बारहमासा का स्वरूप मिलता है।

१- देखिए जैनचित्रा- सम्पादक-मुनिपुण्यविजयजी।
२- देखिए हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग: डा० नामवर सिंह, पृ० २१९
३- देखिए, हिन्दी अनुशीलन- वर्ष ६ अंक ४ पृ० ३०
४- पत्तनस्थ जैन भाण्डागारीय ग्रन्थ सूची- गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज द्वारा प्रकाशित, प्रथम भाग पृ० ३७०-७१।

जैन कवियों द्वारा लिखे बारहमासे १३वीं शताब्दी से प्रारम्भ हो जाते हैं तथा प्रत्येक शताब्दी के उपलब्ध होते हैं। १३वीं से लेकर २०वीं शताब्दी तक जैन कवियों ने बारहमासों की इस धारा को अव्याहत आगे बढ़ाया है। बीसवीं शताब्दी के सौ से भी अधिक बारहमासे नाहटा जी के संग्रह में विद्यमान है। इन कवियों में सामान्यतः चैत्र बसन्त से ही बारहमासा प्रारम्भ करने का नियम है परन्तु भिन्न भिन्न कवियों ने अपनी रुचि के अनुसार किसी भी महिने को मुख्यमानकर उसी से वर्णन प्रारम्भ कर दिए है।

बारहमासों का सामान्यतः विषय विरह वर्णन होता है।बसन्त ग्रीष्म वर्षा शिशिर हेमन्त आदि रितुओं में विरहिणी नायिकाओं का जीवन विप्रलंभ पूर्ण हो जाता है अतः बारहमासों में विप्रलंभ श्रृंगार ही प्रमुख रस होता है। अन्त में मिलन द्वारा कवि रसनिष्पत्ति में सहायक होता है परन्तु कई बारहमासों में मिलन नहीं भी हो पाता। ऐसी स्थिति में ऐसे बारहमासे विप्रलंभ में सराबोर विरह काव्य बन जाते है। संस्कृत का मेघदूत, अपभ्रंश में संदेश रासक और पुरानी हिन्दी की विनयचन्द कृति नेमिनाथ चतुष्पदिका ऐसे काव्यों में से है जिनमें विरहरस पूर्णतः छलकता है।

बारहमासों में कवि को अपनी काव्यात्मकता और वर्णन चामत्कारिकता का पूरा पूरा अवसर मिलता है।सच तो यह है कि यह सजीव वर्णन ही ऐसा है, जिसमेंकवि नायक नायिकाओं के माध्यम से रितुओं का जीवन पर प्रभाव स्पष्ट करता है। रितुसौन्दर्य, और उससे उत्प्रेरित रितु गान, कोयल और पपीहे की वाणी, रितुजीवन के उपादान आदि सभी तत्व जीवन में एक विचित्र सी ललक और मस्ती उत्पन्न करते हैं। हमारा देश प्रकृति और मानव के इस मधुर सम्बन्ध और सम्पर्क के लिए प्रसिद्ध है।

लोक जीवन में तो रितुएं और भी अधिक उल्लास और आनन्द की वर्षा करती है। विभिन्न रितुओं में होनेवाली रितुओं के अनुसार उत्सव, व्रत तथा प्रचलित रिवाज जीवन को प्रभावित करते हैं। और उससे जीवन में एक गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त रितुएं जब हमारे खानपान विवाह भोजन

आदि को प्रभावित करती है, लग्नोत्सव,धार्मिक क्रिया प्रक्रिया, आदि सब पर जब रितुओं का अक्षुण्य प्रभाव पड़ता है तब रितु काव्य अपनी समस्त मधुरता से अभिभूत होकर अनुस्यूत क्यों न होगा। रितु काव्य के नूतन अंकुर और किसलय क्यों नहीं फूटेंगे? वेदों में रितुओं के सम्बन्ध में अनेक सूत्र मिल जाते हैं।[1]

अस्तु रितुकाव्य एक प्रकार से जीवन से समझौता करके चलने वाले मर्मगीत है जिनमें फूल भी है तो शूल भी है जीवन भी है तो मृत्यु भी, आनन्द भी है तो दर्द भी, विरह भी है तो मिलन भी। बारहमासे निस्संदेह प्रकृति और मानव के चिरन्तन प्रेम और अभिन्नता के प्रतीक काव्य है।बारहमासे लोक जीवन से अनुस्यूत लोक काव्य हैं। इनरचनाओं को आज भी राजस्थान में खूब गाया जाता है। जनता की रुचि का आह्वान करने में ये काव्य बड़े सबल और सक्षम है। अजैन विद्वानों ने भी अनेक बारहमासे लिखे हैं परन्तु जैन कवियों की भांति उनमें लिखने की क्रिया और परंपरा का अभाव होने के कारण रचनाएं सुरक्षित नहीं रह सकी।अतः जैनेतर रचनाएं प्राचीन नहीं मिलती।हिन्दी साहित्य में भी बारहमासों का वर्णन क्रम जायसी से पूर्व अद्यावधि नहीं मिलता था। जैनेतर राजस्थानी ग्रन्थों में माधवानल कामकंदला में बारहमासा मिलता है। परन्तु ये दोनों ग्रन्थ भी १६वीं शताब्दी के है।

यद्यपि अधिकांशबारहमासों का वस्तु विधान विरह वर्णन और संवेदन है परन्तु अन्य कवियों द्वारा लिखे बारहमासे इस वस्तु वर्णन के अपवाद कहे जायेंगे। बारहमासे मुसलमानों ने भी लिखे है। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर में कुतुबन की मृगावती की प्रति के अन्त में लिखा है- "गंगा का बारहमासा" हिन्दी की सबसे प्राचीन रचना है।[2] इसके पश्चात् तो भक्ति और रीतिकाल में केशव,सुन्दरदास, कृष्ण बिहारी आदि में बारहमासे मिलते हैं। मुसलमानों

१- वैदिक अथर्व वेद का० १२ पृथ्वीसूक्त, श्लोक ३६-३७।

२- हिन्दी अनुशीलन वर्ष ६-अंक ४ पृ० ४० पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

में मुल्लाशाह समद काजी, महम्मद पुरमही अहमद सैराशाह आदि ने १२२ पद्यों तक के बड़े बारहमासे लिखे हैं[1]। आदिकालीन हिन्दी जैन काव्य में उपलब्ध बारहमासों में कुछ का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है:-

-नेमिनाथ चतुष्पदिका-

नेमिनाथ चतुष्पदिका ने ही हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम बारहमासा को प्रारम्भ किया है। नेमिनाथ चतुष्पदिका राजमती के विरह और विप्रलंभ का एक रंग सौध है जिसमें कवि ने राजुल के विरह को अपूर्व तल्लीनता तथा काव्यात्मकता से संजोया है। रचना के काव्य पर पूर्व चतुष्पदिका संज्ञक रचनाओं वाले अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है।

- नेमिनाथ बारहमासा रासो[2] -

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह रचना मिली है।यह बारहमासा अपूर्ण है। रचयिता का नाम पाल्हणु है। प्रस्तुत रचना की प्रति १५वीं शताब्दी की उपलब्ध हुई है। अतः रचना १४वीं शताब्दी की ही हो सकती है। रचना में सिर्फ पौने सात पद्य ही हैं। प्रति खंडित है।अतः वर्णन श्रावण मास से पौष तक ही मिलता है।रचना की भाषा सरल सरस और व्यवहृत जन भाषा है। कवि ने सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।आगे का अंश यदि उपलब्ध होता तो रचना का पद लालित्य और माधुर्य दृष्टव्य था। फिर भी जो भी पंक्तियाँ प्राप्त हैं रचना के काव्य के मूल्यांकन और भाषा के परिचय के लिए पर्याप्त हो सकती है:-

---

१- वही।

२- श्री अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित।

कासमीर मुख मंडण देवी वाएसरि पाल्हणु पणमेवी
पदुमावतिय चक्केसरि नमिउं अंबिक देवी हउं वीनवउं
चरिउ पयासउ नेमिजिण करेउं कवियण गुण धम्म निवासो
जिम राइमइ वियोगु भयो बारहमास पयासउ रासो।।१।।
भणइ विचक्खण रायमइ सामल धीर वयणु अवधारे
परिहरि देव न दोस विणु सामि मयणु करि गिरनारे।
सावणि सघण गुहुक्कइ मेहो पावसि पत्तउ नेमि विछोहो
दददुर मोर लवहिं असंगाह दह दिस बीजु खिवई चउवाह
कोयल महुर वयणु सवदरवइ विवीह उपाह करेई
सावणु नेमि जिणिंदं विणु भणइ कुमारि किम गमणउ जाए

रचना का नामकरण कवि ने रास किया है।यद्यपि प्रस्तुत पद्यों से रचना में रास की शास्त्रविशेषतायें परिलक्षित नहीं होती परन्तु कवि के प्रारम्भिक कहे गए रास लिखने के संकल्प से यह स्पष्ट है कि रचना अवश्य ही बारहमासे की वस्तु के रूप में रास में लिखी गई होगी। पूरी रचना के प्राप्त होने पर संभवतः रचना के शिल्प का महत्व स्पष्ट हो सकता था।रचना का प्रारम्भ कवि ने पदुमावती, वागेश्वरी, पदुमावती, चक्केसरी तथा अंबिका आदि देवियों को नमन करके किया है। रचना में बारहमासों का वर्णन स्वाभाविक तथा सरस प्रतीत होता है।

-थूलिभद्र बारहमासा-[१]

१५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हीरानन्द रचित थूलिभद्र बारहमासा उपलब्ध होता है। रचयिता हीरानन्द ने अनेक काव्य ग्रन्थों का प्रणयन किया है। रचना १० पद्यों में पूरी हुई है।

१- देखिए अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर। हस्तलिखित प्रति विभाग सं० १५४९ की प्रति पत्र सं० ११६

पूरी कृति में कवि ने बारहमासा प्रारम्भ करने की अपनी ही मान्यता रक्खी है।कवि चैत से प्रारम्भ न कर बारहमासा मार्गशीर्ष से ही प्रारम्भ करता है। पूरी रचना में कोशा के विरह का अनुताप है। रचना में काव्यात्मक सरसता है।हीरानन्द सूरि की काव्य साधना का परिचय उनकी विभिन्न प्रकार की अनेकों रचनाओं के विश्लेषण द्वारा पूर्व अध्यायों में दिया जा चुका है।

विरही कोशा का चरित्र बारहमासे के लिए चुन कर कवि ने अपने काव्य को विरह का छलकता स्त्रोत बनाकर प्रस्तुत किया है। कोशा वास्तव में बारहमासे के उपयुक्त नायिका है जिसका सारा यौवन और विलास स्थूलिभद्र की साधना और तितिक्षा से प्राप्त दीक्षा की अग्नि में झुलसकर रह गया। वस्तुतः प्रस्तुत बारहमासे में कवि ने बड़ी सफलता से कोशा के विरह अनुताप का वर्णन किया है। भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है। स्थूलिभद्र बारहमासे की भांति कवि ने नेमिनाथ बारहमासा भी लिखा है। रचनाएँअप्रकाशित है तथा अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित है। प्रस्तुत रचना की भाषा आदि के लिए एक दो उद्धरण इस प्रकार है। इसमें कई पाठ सम्बन्धी त्रुटियां मिल जाती है:-

सरसति सरसति सीमणि समरीईए पामीय पामीय सुगुरु पसाउ
कि भंडइ थुलीभ कोशावणीय। थूलिभ मुनिवर राउकि सरसति
सीमणि समरीइय ॥१॥

--- --- ---

समरीयइ सरसति सुगुरु वाणि थूलिभद्र वखाणीये
सिणगार रस सिर चेतन्यवस पाडलीपुर वाणीयइ
बरस बारे कोशि बारह वेशि जु सिणगी करी
माह सावणिर रंगम सीख कोश हीयडइ गहगरी

इस प्रकार पूरी रचना एक विरह प्रधान कथा काव्य है। इस प्रकार बारहमासा काव्यों में स्थानीय रंग, विरह गान, ऋतुओं का वर्णन आदि सभी मिलते है तथा नायिकाओं के विरह का सच्चा चित्रण किया गया है।

। नेमिनाथ फाग बारहमासा ।[१]

पाल्हणु की इस अपूर्व कृति के पश्चात् १५वीं शताब्दी में फाग रूप में लिखी गई एक बारहमासा काव्य-नेमिनाथ फाग बारहमासा- उपलब्ध होता है। इस बारहमासा के रचयिता कवि कान्ह है।[२] पूरी रचना २९ गाथाओं में पूरी हुई है। कवि ने स्वयं अपना नाम अन्त में स्पष्ट कर दिया है:-

कान्ह भणइ सखि राइमइ नेमिसु होइ स्वामि

आठ भवंतर प्रीतड़ी शिद्धिय अविरठाम

प्रस्तुत काव्य में फाग के रूप में ही लिखा गया है।अतः इस रचना में फाग और बारहमासा दोनों काव्य प्रकारों के गुण विद्यमानहै। रचना काव्यात्मक तथा पर्याप्त सरस प्रतीत होती है।भाषा सरल और जन साधारण की है।पूरा काव्य बड़ा ही कथन बन पड़ा है। कवि ने नेमिनाथ के तोरण से भाग जाने के प्रसंग से ही काव्य प्रारम्भ किया है। भाषा की प्रासादिकता दृष्टव्य है:-

अहे तोरणि आलमं आवीउ यादव केरु चंद

पशू देखी रथ वालीउ विह वखिळ विलंद (१)

अंधियारी रात, अकेली राजुल और मोरोंका मधुर बोल सब उसको पीड़ा देने लगे। विरह रूपी शत्रु बढ़ आया। पापी विरह से कैसे बचाव हो, उसे बुरी तरह सता रहा है। प्रियतम ही उसको दूर कर सकते है लेकिन प्रियतम बहुत दूर चल और जाकर बैठ गए है। रात्रि के सन्नाटे और प्रकृति का विरह का साथ देने में योग देखिए:-

निशि अंधारी एकली मधुरई बारई च मोर

विरह संतापइ पापीउ बालंभ ही एक ठौर (२)

और ऐसे समय में आषाढ़ का आगमन हुआ।श्याम घटाओं की सरसता देख गौरी (राजुल) का हृदय प्रेम स्नेह से सराबोर हो गया। आंसे भर आई बादलों के गर्जन से पीड़ित राजुल बोली हे बादलों,जोर से गर्जन मत करो हे मेघ मत बरसो,

---

१- देखिए नाहटा जी के भंडार की प्रति सं० १५४९ पत्र सं० ११६-११७।

२- जैन गुर्जर कविओ:श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई भाग ३ खंड २ पृ० १४८२।

॥ खरतरगच्छ पट्टावली ॥[1]

१५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अन्तिम दशक में सोमकुन्जर विरचित एक काव्य खरतरगच्छ पट्टावली उपलब्ध होता है।पट्टावली संज्ञक रचनाओं में यह रचना पर्याप्त महत्व की है। ऐतिहासिक दृष्टि से रचना में खरतरगच्छ का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत पट्टावली का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि यह विविध रागों में लिखी गई है। भाषा की दृष्टि से रचना सरल है।कवि ने गच्छ के कवियों की पट्टावली प्रस्तुत की है। राग और छन्द का समन्वय कर कवि ने अपनी अपूर्व काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है।

-प्रथम श्री (धवल) राग-

धन धन जिण (शासन?) पाठ नायक त्रिभुवन गच्छई गह गहय
जासु तणउ यशुवाद गंगाजल निरमल महियले महमहय
श्रीवयर स्वामी गुरु अनुक्रमि विहुंदिये, चंद्रकुल चउपट आणिहुए
गच्छ चउराशीय माहि अति गरुअड खरतरगच्छ बखाणिइए[2]

इस तरह कवि ने विविध छन्दों और रागों में खरतरगच्छ की सम्पन्नता पर प्रकाश डाला है। छन्दों की दृष्टि से इस कृति का बहुत अधिक महत्व है।कवि ने छन्द के अन्तर्गत सरल और सरस छन्दों का प्रयोग किया है।भाषा वर्णनात्मक काव्य होने से जन साधारण की है।कवि ने छोटी छोटी कड़ियों के पद देकर प्रत्येक के अन्त में शुद्ध हरिगीतिका छन्द की एक एक कड़ी का प्रयोग किया है:-

गुरु गुण तणउ भंडार मनहर, सकल संयम भर धरी
कामड़ी देवि भवानी जिनदत्त कउतहल संथक करी
सीखड ऊपरि देवि चामुंड, प्रतिबूध जिणि प्रतिबोधिया
जिणि सूरि जिन शासन वईवरि कवण लोय न मोहिया

१- देखिए- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह: श्री अगरचन्द नाहटा-पृ० ४१
२- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ४१।

श्री जिनदत्त सूरि गुरुगच्छ ए
अम्बिकादेवी आदेशि जाणियइ त्रिहुंजुग जुग प्रधान
संघपरीष राखइ जेहि, दीधउ श्री जिन धर्मदान[1]

इस प्रकार पूरी रचना ३० छन्दों में समाप्त हुई है और विविध ढंग से कवि ने गच्छ के महापुरुषों का सुन्दर गुण गान किया है।संगीत की दृष्टि से भी कवि ने देशाख, छाया,राजवल्लभ, धन्याश्री, आदि रागों का समावेश किया है। रचना में धन्याश्री के अन्तर्गत कवि के ध्रुव पद वाले पदों का शिल्प विशेष दृष्टव्य है:-

नव अंगह तणइ बटवानि श्री अभयदेवसूरि गुरु पवरो
प्रगटिउय थंभण पास श्री जयतिहु अणि जेणगुरो[2]

प्रत्येक पद में ए का चमत्कार पादपूर्ति के रूप में उल्लेखनीय है:-
कवि ने रचना प्रकार में नवीनता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।भाषा की सरसता दृष्टव्य है।कवि के पदों का वर्णनक्रम पहले एक गेय पद तथा फिर शुद्ध हरिगीतिका छन्द से चलता है। वर्णन क्रम की यह छन्द तथा पद पद्धति इसके पूर्व उपलब्ध नहीं होती। सरसता तथा मधुरता की दृष्टि से भी काव्य में कई सरस पद उपलब्ध होते हैं।वर्णन माधुर्य की दृष्टि से साखेली सखुद की पुनरुक्ति से बढ़ा हुआ सौन्दर्य दृष्टव्य है:-

साखेली ए मिलु मन हरष बहाए ए आवि सकल विधुवान्त वारो
साखेली ए मधुकर कवि अमोघ संघम निरमल गुण भंडार
साखेलीय सोहम संघु कि कमितक सुलखुद नयर पुरो
साखेलीय संघइ प्रभव अकलाति श्री जिनमसूरि गुरु पवरो (२८)

--- --- ---

१- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ३४

२- वही, पृ० ३५

साहेली ए नयरि देराउरि सुरतरु, सुगुरुवर श्री जिनकुशल सूरे

साहेली ए थूभिहिं प्रणमइ तसु जस भविकजन ममति उगति सूरे

साहेली ए तीहतणे आवहि दोहग दुरिय दालद दुह सयल दूरे

साहेली ए तीहतणइ मंदिर मिलइ संपति घन भरउ भरि पूरे ।।३४)

--- --- ---

पट्टावली की ही भाँति गुर्वावली रचनाएं भी मिलती है जिनमें जैसलमेर भंडार की गुरावली गाथा ६, गुरावली गाथा २८ आदि रचनाएं प्रस्तुत हैं। ये रचनाएं भी गुरु की परंपरा तथा क्रम पर प्रकाश डालती है। काव्य की दृष्टि से गुर्वावली संज्ञक रचनाएं साधारण है।

- गुण वर्णन- (जिन वल्लभ सूरि गुरु गुण वर्णन)

१३वीं शताब्दी की रचनाओं में श्री नेमिचन्द्र भंडारी द्वारा विरचित एक रचना श्री जिनवल्लभसूरि गुरु गुणवर्णन मिलती है। गुरुओं का गुणगान करने की परम्परा बहुधा जैन और अजैन सभी प्रकार के साहित्य में मिल जाती है। रचनाकार ने दोहा छन्दों में सरल भाषा में जिनवल्लभ सूरि का यश गान किया है। पूरी रचना का उद्देश्य गुरु का गुण वर्णन है और कवि ने इस रचना का नामकरण भी गुण वर्णन इसीलिए किया ऐसा प्रतीत होता है। गुरुओं के गुण वर्णन की परम्परा संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश से ही चली आ रही है। आदिकाल के जैनेतर विशुद्ध साहित्य में भी गुरु की महत्ता का गुण गान मिल जाता है। अतः नेमिचन्द्र भंडारी ने प्रस्तुत रचना से गुणवर्णन के विषय और परम्परा को इस रचना द्वारा आगे बढ़ाया है। रचना का समय सं० १२३५ के आसपास का है भाषा की दृष्टि से इसमें अपभ्रंश के शब्दों की बाहुलता है। कुछ नीतिपूर्ण दोहे संसार के सुख पर लिखे गए हैं। संसार के दुखों से छुटकारा दिलाने वाले केवल मात्र गुरु ही होते हैं। काल का मल बड़ा दुष्ट है जो सबको खा जाता है। माया मोह से दूर रहकर मनुष्य यदि गुरु की शरण में चला जाय तो संसार में उसका जीवन

सकता है।सांसारिक रोग शोक सदैव उससे दूर रहेंगे। इन्हीं आध्यात्मिक भावनाओं की ओर समाज को उन्मुख कर धर्म प्रचार करने के लिए कवि ने रचना लिखी है।भाषा की अलंकारिकता लोकात्मक स्वरूप और प्रवाह को देखने के लिए कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

(१) मूढा मिल्हहु मूढपहु, लागहु सुद्धह धम्मि
जो जणवल्लह सूरि कहिओ गच्छहु जिम सिव धम्मि
अथिर मायपिय बंधवह, अथिर रिद्धि गिह वासु
जिणवल्लह सूरि पय नमओ छोडइ भव दुह पासु (७-८)

--- --- ---

(२) जो जिह कुल गुरु आइयउ तहि ते मति करंहि
विरला जोइसि जिणवयणु जहिंगुण तहिं रच्चंहि
हाहा दूसम काल बहु खल मक्कडय जोइ
नामेणइ सुविहिय तणइ मिच्छवि कवरिओ होइ (१४)
माया मोह चयउ जण कुलहरं जिम विहि धम्मं
जो जिम वल्लह सूरि कहिओ सिधुंधं देव धिव संभु (१९)

वे धन्ना सुकयत्थ नरा वे संसार तरम्मिह
जे जिण वल्लह सूरि कमय आणसिरे वहम्मिह (२२)

देहि न रोगो सोगमुगु बहु तह मंगल कल्लाणु
जे जिणवल्लह सूरि गुणिहि गिज्जिन्ति सुविहाणु (२३)
कवण सु होसइ दिवसडओ कवण सु तिहि सु मुहुत्त
वंदिसिहिं जिणवइ सुगुरु निसुण सुवण्णह तत्त (३३)

रचना ३५ छन्दों में लिखी गई है तथा पूरी रचना में कवि ने इसी तरह संसार के दुःखों का वर्णन करके गुरु की महिमा का मूल्यांकन किया है।अन्त में रचनाकार सरस वाक्य पर काव्य की समाप्ति करता है:-

जगुद्धसार करेउ कह, चालि सुगुरु सम्मतो
वैधिमन्थ इम विनवइ, सुगुरु गुण मन रत्तो

नंदउ विहि जिण मन्दिरहिं नन्दउ विहि समुदाओ

नंदउ जिणपत्तिसूरि गुरु, विहि जिण धम्म पसाओ (३४-३५)

गुरु गुण वर्णन में एक इसी प्रकार की रचना छप्पय छन्द में भी मिलती है।जिसका नाम खरतरगुण गुण वर्णन छप्पय है उसका उल्लेख छन्द प्रधान रचनाओं में किया गया है।

काव्य की दृष्टि से यद्यपि इस रचना में अधिक चमत्कार परिलक्षित नहीं होता पर आध्यात्मिकता और गुरु की महत्ता पर प्रकाश डालने में प्रस्तुत रचना का पूरा महत्व है।

कृपण नारी संवाद

संवाद संज्ञक रचनाओं का विषय पारस्परिक संलाप द्वारा किसी वस्तु विशेष का स्पष्टीकरण करना होता है। यह रचना १३वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की उपलब्ध होती है। यह अपने प्रकार की पहली ही रचना है जिसमें विषय भी मौलिक है। तथा जीवन की महत्वपूर्ण परिस्थिति का स्पष्टीकरण करता है। रचनाकार आसगु है जिसने सं० १२५७ में चन्दनबाला रास की रचना की थी प्रस्तुत पूरा काव्य उत्तर प्रत्युत्तर शैली में लिखा गया है जिसमें कृपण और उसकी नारी के पारस्परिक संवाद द्वारा कृपण की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है। रचना नीति प्रधान है।काव्य की दृष्टि से यद्यपि यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी विषय की मौलिकता तथा भाषा की प्राचीनता के लिए ऐसी रचनाओं का मूल्यांकन अपेक्षित है। काव्य भाषा तथा विषय वैशिष्ट्य की दृष्टि से कुछ उद्धरणों का पर्यवेक्षण किया जा सकता है:-

कंचुक संचइ कृपण घड सिंचइ लिलिकर वेषि

कीरण भक्खिय मानुणा कुक्की कहवि न देखि

किमइ धवणइ किम कवई धम्मु अजिय धणु धोडिलइक्क कोडि मिट्ठाह मुच्चइ

मिठु जं बहइ मिठु वेचिवइ मिठुआयु नम हाउ वज्जइ (१)

घरिणिहि थविवउ मीवरइ कवावइ करताक
जंजं दियह त ऊयरइ मम्महु पिवउ वंसाक (३)

--- --- ---

दीठु मंसडिछुणनु वयसु कुलह वज्जालिसु नाउं
जइ मारउ तो मारि पिय किवइ न पीहर जाउं
किवणु तालउ दिणहु घर मारि लगाविय विणि वरणि तिणिय जाइ
माचेलि लागउ

नवलक्ख ब्रम्मह थविय गंठि इक्कु थ्याउ नवदुवउ
नयणिहि न पडइ निरुद्धीय दह दिह कोयउ कम्मु
नवलख ब्रम्मह आंसिवउ किमपि जिडतउ ब्रम्मु (६)

अन्त में कवि आसगु के विषय में भी दो पंक्तियां उपलब्ध होती है रचना तत्कालीन प्रचलित जन भाषा में है।अतः प्रयोग कुछ कठिन हो गए है। अपभ्रंश के शब्दों का भी प्रयोग अधिक है।आसगु की भाषा १३वीं शताब्दी की होने से उस पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक रूप में मिलता है।काव्य की दृष्टि सेरचना साधारण है।

- कुलक -

कुलक शब्द की परम्परा संस्कृत में मिल जाती है।कुलक शब्द किसी कुछ विशेष के लिए नहीं प्रयुक्त होता।कुलक शब्द के अर्थ उस रचना प्रकार से होता है जिसमें एक भाव अथवा एक छन्द से प्रारम्भ होकर दूसरे छन्द या तीसरे छन्द में समाप्त होता है।यों तोकुलक संज्ञक कुछ रचनाएं उपलब्ध होती है पर काव्य की दृष्टि से ये रचनाएं साधारण है।

- उत्तम पुरुष कुलक -

यह रचना उत्तम पुरुषों के विशेष गुणों को प्रस्तुत करती है।काव्य की दृष्टि से रचना साधारण है।कुलक रूप में लिखी गई रचनाएं यद्यपि अधिक नहीं है परन्तु दो तीनरचनाएं मिली है उनमें से एक तो अपभ्रंश बहुला है दूसरी

काव्य की दृष्टि से साधारण है।

अनाथी कुलक

पाटण भंडार में उपलब्ध एक अप्रकाशित रचना अनाथी कुलक है।रचनाकार अज्ञात है तथा १६ कड़ियों में पूरी हुई है।भाषा और काव्य की दृष्टि से रचना १४वीं शताब्दी की लगती है। अनाथी कुलक के विषय वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है इसमें संसार दुख से मुक्ति प्राप्त होने के लिए साधना की विविध बताई गई है।रचना सामान्य है।आदि अन्त के उद्धरण देखिए:-

(१) पणमिवि सामिय वीर जिणिंद लोया लोय पयास दिणिंदा
अन्नाथिय अनाण भेय पभिणि किंपिई तुम्हिहा मीहुपेह

----- ----- ---

(२) केवलसरि सइवर आवेय क्रमिक्रमि सिद्धिय सुख पामेइ
पढ़इ गुणइ जो पह चरित्तो विधिहुं शुभिउ तसु जनम पवित्त
ते संसार दुख परिहरी वई अवेसि ते शिवपुरी

इस प्रकार रचना में कवि ने अज्ञाने भेदों का रहस्योद्घाटन किया है।संसार से संतरण कैसे प्राप्त हो यह जानने के लिए धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि से रचना महत्वपूर्ण है। रचना की भाषा १४ वीं शताब्दी की जन भाषा है। भाषा में प्रवाह तथा सरलता सर्वत्र परिलक्षित होती है।काव्य की दृष्टि से रचना में अधिक चमत्कार नहीं मिलता।

- नवकार महात्म्य[1] -

१२वीं शताब्दी (सं० ११६७ के लगभग) जिनवल्लभसूरि द्वारा विरचित महात्म्य संज्ञक नवकारमहात्म्य मिलता है। रचना अत्यन्त प्राचीन तथा प्रकाशित है।[2] यह रचना विषय प्रधान है।रचना छोटी है।नवकार मंत्र के महात्म्य के लिए विरचित है।वस्तुतः इसमें नवकारमंत्र की क्षमता और महिमा पर प्रकाश डाला गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से नवकार सम्बन्धी इस महात्म्य का महत्व स्पष्ट होता है।प्रारम्भ में ही कवि अरिहंत का स्थान बतलाता है:-

निज सिर ऊपर काय मज्झ विवै कमलवर
कंचण मय अठदल सहित तिहां माहे कणवर
तिहां बैठा अरिहंत देव पदमासण फिटकमणि
सेय वत्थ पहरेवि पढम पयसिंहे नियमणि
पवर मये तिहां सिद्ध बीय पद वे आराहे
राते विद्रुम समे वन्न निय सोहग साहे
राती चोवी पहर जपै सिद्धपद्धि पुण्वेदिसि
सयल कोय सिह नरदि होइ सतविण सेवसि (१-४)

नवकार मंत्र को आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाशन करते हुए कवि के काव्य प्रवाह और काव्य के गीतितत्व का महत्व विविध कथाओं और दृष्टान्तों में मुखरित हो उठता है:-

ही के बैठो चोर एक आकाशे गामी
अहि फिट्टि हुई फूल माल नवकारह नामी
बाहड आचारंत बाल्यक बदी प्रभावे
बींध्यो कंटकी उपर मंत्र जपियो मन माहे

१- देखिए- अभयरत्नसार पृ० १५० प्रकाशक अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर
२- वही।

चिंत्या काज सवे सरे इरत परत विभास
पालित सुरिवणी परे विद्या सिद्ध आकास

अंत में कवि नवकार के प्रभाव से परता वाक्यों की पुष्टि करता है और सबके लिए नवकार के महात्म्य को स्पष्ट करता है।कवि का नाम रचना के अन्त में स्पष्ट होता है।रचना की भाषा अपभ्रंश प्रभावित प्राचीन राजस्थानी लोक भाषा है। यही कारण है कि यह महात्म्य आज भी रोग शोक निवारण करता हुआ जैन जनता के कण्ठ का हार बना हुआ है।प्रत्येक दिन हर एक जैन इसका एक पारायण करता है और इसके बल से उसके रोग शोक नष्ट होते है।

गुरु जिणवल्लह सूरि भणे सिव सुक्खह कारण
नरय तिरय गय रोग सोग बहु दुक्ख निवारण
जल थल महियल वन गहण समरण हुवे इक चित्त
पंच परमेष्टि मंत्रह तणी सेवा देज्यो नित्त

इस प्रकार रचना में लोक भाषा का गीति तत्व आद्योपान्त विद्यमान है।

* भरतेश्वर बाहुबली घोर[1] *

विषय प्रधान रचनाओं में एक अपने ही प्रकार की रचना भरतेश्वर बाहुबली घोर है जो अद्यावधि प्राप्त रचनाओं में पर्याप्त प्राचीनतम है। सं० १२४१ में विरचित शालिभद्रसूरि विरचित भरतेश्वर बाहुबली रास ही अब तक सबसे प्राचीन कृति समझ जाती रही है।परन्तु यहरचना इससे भी पुरानी है।रचना की मूल प्रति जैसलमेर के खरतरगच्छीय पंचायती भंडार में सं० १४७० की संग्रह प्रति में लिखी हुई है। यह रचना श्रीभंवर लाल नाहटा ने प्रकाशित कर दी है[2] रचना की पुष्पिका[3] तथा अन्य विवरण को देखकर यहस्पष्ट हो जाता है कि यह पर्याप्त महत्वपूर्ण और प्राचीनतम है।

घोर संज्ञक रचनाएं अद्यावधि एक से अधिक नहीं उपलब्ध हो सकी।तथा घोर नाम से कोई छन्द विशेष या रचना प्रकार का भी उल्लेख नहीं मिलता अपितु इसके विषय को देखकर यह कहा जा सकता है कि भरतेश्वर और बाहुबली की युद्ध जन्य भयानकताके कारण ही कवि ने इसका नाम घोर रख दिया है।

भरतेश्वर और बाहुबली के युद्ध का प्रसंग नया नहीं है। प्राकृत और संस्कृत में इस कथा पर कई विस्तृत उल्लेख मिल जाते है।[4] साथ अनेक मन्दिरों और मूर्तियों में भी भरत औरबाहुबली की मूर्तियां सम्बन्ध इतिहास को स्पष्ट करती है। प्रति में कहीं भी रचनाकाल नहीं मिलता पर क्योंकि इसका रचनाकाल

१- पंचायती भंडार जैसलमेर-स्वाध्याय पुस्तिका कुल पत्र ४४०-पत्रांक ३६२ से ३६८।
२- शोधपत्रिका भाग ३ अंक २ पृ० १४१-१४७ पर श्री भंवरलाल नाहटा का लेख।
३- पुष्पिका-सं० १४७० वैशाख सुदि त्रिभुवनीया दिने गुरु श्री जिनराजसूरि सदुपदेशेन पं० देवकुमार शिष्य मुनि [illegible] चिन्तामणि [illegible] [illegible] भाक् [illegible] श्रावक पुण्यार्थ स्वाध्याय पुस्तिका लिखिता वाच्यमाना आचंद्रार्क नंदतु ६।।
४- वर्द्धमान सूरिरचित आदिनाथ चरित (जैसलमेर)।

इसके रचना कार वज्रसेन सूरि के गुरु देवसूरि का काल ११७४ तक था अतः इसका रचनाकाल १२वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अथवा १३वीं के पूर्वार्द्ध के प्रथम दो दशकों में ही कहीं रहा होगा। रचना प्राचीन है और युद्ध की भयंकरता को कवि ने कुल ४८ छंदों में संजोया है। १३वीं शताब्दी में गुजरात और राजस्थान में युद्ध चल ही रहे थे अतः कवियों की समयानुकूल प्रेरणा स्वाभाविक थी जिसके फलस्वरूप घोर और उसके प्रसंग की परवर्ती रास दोनों रचनाएं लिखी गईं।

घोर की इस भाषा में प्राचीनता दृष्टिगोचर होती है।कृति में रचना स्थान भी कहीं नहीं मिलता।पर बहुत सम्भव है कि यह राजस्थान में ही रचा गया होगा। क्योंकि वादिदेव सूरि के शिष्यों की प्रसिद्धि नागौर सेहुई जो मारवाड़ का प्राचीन नगर रहा है।

रचना नमस्कार से प्रारम्भ हुई है।काव्यात्मक दृष्टि से यह कृति वीर रस की सुन्दर रचना है।क्योंकि पूरा काव्य युद्ध के प्रसंग को लेकर शान्त रस में जाकर समाप्त हुआ है। कथा में भरतेश्वर की दिग्विजय ही प्रमुख प्रसंग है। प्रथम पंक्ति से १० पदों तक एक छन्द और ११वें पद से अन्त तक दूसरा छन्द प्रयुक्त किया है। भरतेश्वर के गर्व पर बाहुबली का विजयश्री प्रारम्भ में ही चित्रित कर देता है:-

पहुभरहेसर भेव, बाहुबलिहि कहा विषउ
बइ बहु मन्नहि देव तो प्रणव संतामिचिव
भव्या पकइ गाव,सूलोकिहि गंजण कढिय
तो बाहुबलि साव सूक्ष पकइ क्षिवाचिवउ[1]

भाषा की सरलता वर्णन का प्रवाह और काव्य की सुगठितता का अध्ययन युद्ध के इस वर्णन से हो जाता है।ओज का प्रवाह रस निष्पत्ति में पूर्ण योग देता है।कवि ने विविध दृष्टान्तों द्वारा काव्य में युद्ध के वातावरण को उभारा है। कुछ विविध चित्र देखिए:-

---

१- भरतेश्वर बाहुबली घोर- पद ११-१२ पृ० १४४ शोध पत्रिका अंक २।

मुट्ठि पुबदंडेहि मल्ल मुट्ठहिं निम्मिवं
मुठिहिं अच्छंडहि भरहुवीरु बाहुबलिहिं

--- --- ---

करियालि चक्कु धरेवि, जाल फुल्लंगा मेल्हइ
मूकइं बलि अक्लेवि, प्रवडइ नाहई गोत्रियह (४७)

--- --- ---

तो पावे लागेवि भर हेसरि मन्नावियउ
बंधव,मुच्चु हणेहि हई जीतउ भई हारियउ
ऊतरु ताव न देइ, बाहुबलि भरतहेसरह
रायै सरिसउ ताव, भरहेसरु धरि आइयउ (४१)

--- ---- ---

भावण लिय भावेत, लिव पावी भरहेसरिहिं
तउ केवल पावेइ (प) राजु करेता तेणजिय (४८)

रचना की समाप्ति शान्त रस में हुई है। उक्त उद्धरणों से रचना की काव्यात्मकता स्पष्ट हो जाती है। वस्तुतः रचना पर्याप्त प्राचीन होने से इसका ऐतिहासिक और काव्यात्मक महत्व है।

अम्बिकादेवी पूर्वभव वर्णन छलहउरा[1]

शक्ति पूजा और शक्ति साधना की दृष्टि से जैन धर्म में भी कुछ ऐसी देवियों की पूजा होती है जिनका नाम शासन देवियों के नाम से प्रचलित है। अन्य धर्म के प्रभाव के कारण ही यह देवी देवताओं की पूजा तीर्थंकरों के साथ साथ होने लगी। २४ तीर्थंकरों के साथ साथ २४ शासन देवताओं और देवियों को प्रश्रय दिया गया जिनमें पद्मावती देवी, अम्बिकादेवी, चक्रेश्वरी देवी आदि कई देवियां है जिनमें सर्व प्रथम स्थान अम्बिका देवी को ही मिला है। यद्यपि आगे चलकर यह नेमिनाथ की भक्त शासन देवी के रूप में रुढ़ कर दी गई है।[2] वस्तुतः सभी तीर्थंकरों के साथ साथ एक स्त्री मूर्ति भी मिलती है जो सम्भवतः इसी अम्बिकादेवी की ही है। प्रस्तुत रचना अम्बिकादेवी के सम्बन्ध में ही है। रचना के नाम से ही स्पष्ट हैकि यह अम्बिकादेवी के पूर्वभव वर्णन सम्बन्धी कृत से सम्बन्धित है। अम्बिकादेवी के सम्बन्ध में रचे जाने वाले साहित्य की परम्परा का प्रारम्भ प्राकृत से ही हुआ है।अपभ्रंश काव्यों में भी अम्बिकादेवी पर वर्णन मिल जाते है। ९वीं शताब्दी के जैन स्तोत्र साहित्य में अम्बिका की स्तुति पाई जाती है।नाचिचन्द्र ने तो पूरा अम्बिका चरित ही लिख दिया था। वस्तुतः श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में अम्बिकादेवी सम्बन्धी कथा मिल जाती है। श्वेताम्बर विद्वान् श्री प्रभाचन्द्रसूरि के सं० १३३४ में रचित प्रभावक चरित्र में प्रबंध रूप में वर्णित अम्बिकादेवी के पूर्व भव वर्णन की कथा का सार प्रकाशित भी हो चुका है।[3] इसके अतिरिक्त भी अंबिकादेवी के जीवन पर प्रकाशित किए गए लेख मिल जाते है।

१- हिन्दी अनुशीलन- वर्ष ८ अंक ४ पृ० १७५-१७८
२- वही, अंक, वही पृष्ठ।
३- देखिए वीरवाणीः वर्ष ४ अंक २१ में श्री भंवरलाल नाहटा का लेख।
४- जैन सिद्धान्त भास्करःभाग २ अंक १ मेंश्री कामता प्रसाद जैन का लेख।

प्रस्तुत रचना अम्बिकादेवी ढलहरा प्रकाशित की जा चुकी है।इस रचना की मूल प्रति बीकानेर बड़े ज्ञान भंडार में सुरक्षित है।रचना का प्रारम्भिक अंश खंडित मिला है। प्रारम्भ की चार गाथायें इस रचना में प्रति का पत्रा न मिलने से उपलब्ध नहीं हो सकी है।अतः कृति ५वें छन्द से ही प्रारम्भ हुई है।अम्बिका देवी का यह ढलहारा लोकभाषा की १४वीं शताब्दी की सुन्दर काव्यात्मक रचना है। कृति में रचयिता का नाम कहीं भी स्पष्ट नहीं होता पर कवि ने एक जगह उदयरिद्धि[1] का नाम लिया है अतः बहुत सम्भव है कि इस उदयरिद्धि से कवि का तात्पर्य स्वयं के नाम से ही हो। रचना की प्रति क्योंकि सं० १४२० की ही है अतः बहुत सम्भव है कि यह कृति १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम दशक में हुई होगी।रचना का नामकरण ढलहरा क्यों कियागया है इस सम्बन्ध में कोई विश्लेषण नहीं मिलता तथासाथ ही अद्यावधि किसी प्राचीन भंडार में भी इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं हुई। अतः ढलहरा की काव्य परम्परा क्या हुई इसके लिए निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।रचना के वृत्त को देखते हुए यह एक कथा प्रधान काव्य है जिसमें अम्बिकादेवी के पूर्व भव वर्णन का विश्लेषण कियागया है। साथ ही इसका खोया अंश भी सम्भवतः अम्बिकादेवी के वंश परिचय आदि प्रारम्भ के पदांशों में रहा होगा।

कवि ने पूरी रचना को ३० पदों में लिखा है जिसमें प्रारम्भ के पदों में अम्बिकादेवी चरित्र की तुलना करता हुआ प्रारम्भ करता है:

सीलहिं सपु सीता सवदेहि रागी अंजन सुन्दरी रायमइ

सोहग सुन्दरि जगह वखाणी जीविहि निम्मल निम्मविया।

पूरी रचना में अम्बिका के पूर्व भव की कारुण्य जनक कथा है।अतः जिसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है:- अम्बिकाजैन धर्मावलंबी थी और वैदिक धर्मानुयायी के घर ब्याह की गई।उसके सिद्धुध बुद्ध दो पुत्र हुए। एक दिन उसके ससुराल

१- हिन्दी अनुशीलन- वर्ष ८ अंक ४ पृ० १७५ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

में पितृ पक्ष श्राद्ध का दिन था अम्बिका ने बिना पूछे जैन मुनि को भोजन दे दिया। मां के कहने से उसके पति ने उसे बाहर निकाल दिया। पति की भर्त्सना से वह अपने बच्चों को लेकर चली गई पीछे से उसके प्रभाव से पत्तलें सोने की हो गई। हीरा मोतियों से घर भर गया।पति अम्बिका के प्रभाव से यह सब हुआ। जान पुनः उसे लेने दौड़ा पर वह बच्चों के साथ कुएं में कूद गई और देवी हुई। इधर उसका पति सोम भी गिर गया और फिर वह सिंह हुआ।आज भी अम्बिका की मूर्ति का सिंह वाहन है एक हाथी की उंगली एक बच्चा पकड़े है तथा दूसरा बच्चा अंक में है। उसके सिर पर आम का लुंब उत्कीर्ण किया मिलता है क्योंकि उसके पुण्य प्रभाव से सूखे वृक्षों में आम लगा दिए थे तथा शुष्क तालाब में पानी भर आया था। आज भी श्वेताम्बर समाज में अम्बिका की पूजा कुल देवी के रूप में होती है।

कवि ने पूरे काव्य में इसी कथा का विस्तार किया है।भोजन सामग्री औरपिंडदान क्रियादि का प्रसंग का वर्णनदेखिए:-

इणि परि सयउ महलकर्मताई कुलगरि आयउ अपर पारवु
सोभि निर्मलिय मंगलताल यज्ञ आरूप साधादिवि
कत्थवि मंगल वेद पढंति कत्थवि पिण्ड प्रदानु होइ
कत्थवि देति कुवारे करेति कत्थवि कीजइ बहल खेउ
सालि दालि पकवान पकार चौरि खांड घिउ विजनइ
सरस वंचादिय भीयण भार मावुय वहहिय नागकिंहि (९)

सास का सोम को बहकाना और सोम का क्रोध तथा भर्त्सना करके उसे घर से बाहर निकाल देना आदि घटनाएं काव्य की कथा में प्रवाह और कारुण्य का समावेश करती है:-

विहरि समोसमु वालिय वाल दिट्ठि पलोयंतु मुणिपहु
साहु किम्हालिय ऊठिय ताम देखिवि नियमणि मच्छरिय
रसोमहि आमयो कहियउ वच्छ वहुडिय सयलु अशुद्ध कियउ
कोपि चडेउ सोमु पभणइ मच्छेव, अपछंदि प कई कियउ

अजउ न पूजिय अम्हि कुल देव, अजउ न भंपण जेमिया इं

अज्जवि पिंड भराविय मेय,कइसइं दिम्मिय पढम सिहा (१४)

काव्य की दृष्टि से कुछ उत्कृष्ट उदाहरण एतदर्थ द्रष्टव्य है।अम्बिका अपने दोनों बच्चों को लेकर जंगल में निकल जाती है तथा उसके पुण्य के प्रमाव को पूर्वभव का रूप देकर कवि ने देवी के रूप में समाज में उसकी स्थापना की है:-

अंबिणि दीठउ कूअउ मग्गि, तक्खणि मणि जिणु अणुसरिउ

तत्थई पावइ पाणवि दग्गि सुह फासिजीविउ तजिउ तिणि

कूअह मांहिवि भणि उपन्न सोहम दलि वड जोयणिहिं

सोपात्र दानि प्रभावि रुपनं, अंबिक देविय नामिहव

अंबिणि सजिय जिणाराहिवि, सोवन ताल कवोल थिय

अठहिं रूप पुणु पडिय जिकेवि,मोतियमाणिक देवि हुय

सासुय देखिवि विम्हिय ताम, किन्हइ बहुय सलक्खणिय

मण पछताविय जंपइ सोमु, भणहि क्वालउ तउ करउ (२०)

--- --- ---

साम्यि नेमि जिणिदहसिरिय, अंबिक सासणि देविहुय

संघहं दुरिय दलणि सुपसरिय, निवसइ गिरि गिरनार सिरि

सीसि मउड मणि कुंडल कानु सोहइ मोतिय हार उरि

कमल चूडिय करि कंकण दुम्मि पाइहिं नेउर रुणुरुणहिं

सुरु तारा तोरर भैरव मं सोहम विष्णा देवि दुई

एक जि तिहुयणि दुह जु पमंडि भइ वह बहु मिछत्तचरा (२६)

इस प्रकार कवि ने अम्बिका की देवी के रूप में प्रमाणना कर दी है।सामाजिक दृष्टि से भी विचार करने पर इस रचना से तत्कालीन समाज के पारिवारिक छोटे कलहों द्वारा कितने बड़े अनर्थ हो सकते थे यह प्रतिपादित हो जाता है। पूरी रचना एक घटना प्रधान कथा काव्य है।अन्त में कवि मंगल वाक्यों में काव्य

को निर्वेद निष्पन्न कर समाप्त करता है:-

> वणहि समय सुर कुमर समान सुह पय भायंति तिहुं नारि
>
> दूसव पावहि पियहं सम्माण जीवहि नंदण निठुवह
>
> सुहयण नयणह किंपि सुणेवि, किंपि सुणियनिय मइबलिण
>
> चरिउ तुम्हारउ बनिउदेवि पूरि मणोरह अम्ह सयउ
>
> नेमि जिणेसर चरण संपोय मकुयरि अंबिका देविहुं
>
> संघह सानिधु करि सुह भीय, देहि मणछिय उदयरिद्धि (३०)

इस प्रकार पूरी रचना का शिल्प अपने ही प्रकार का है। बहुत सम्भव है कि कवि ने कथा होने से ही इसका नाम करण तलहरा किया हो। प्रस्तुत तलहरा घटना प्रधान है।भाषा लोक भाषा है। अतः पूरा काव्य अत्यन्त सरल तथा प्रवाहपूर्ण है।

- नर नारी संबोध[1] -

विषय प्रधान रचनाओं में १५वीं शताब्दी की एक सुन्दर एवं उपदेश प्रधान काव्य- नर नारी सम्बोध- मिलताहै। रचना को श्रीलालचन्द्र भगवान गांधी ने बहुत वर्षों पूर्व ही गुजराती भाषा में प्रकाशित कर दिया है।कृति के रचनाकार का नाम कहीं नहीं मिलताहै। रचना का प्रारम्भ मंगलाचरण से ही किया गया है। कवि नेरचना में परिच्छेदों अथवा शब्दों के स्थान पर प्रबन्ध शब्द प्रयुक्त किया है।[2]

संबोध नाम उपदेश के लिए प्रयुक्त किया है।क्योंकि पूरा काव्य ही उपदेश प्रधान तथा संसार की नश्वरता एवंआध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होने के कारण ही संबोध नाम से अभिहित किया है। रचना की प्रतियां जैसलमेर के तपागच्छ उपाश्रया के प्राचीन पुस्तक भंडार तथा काठियावाड़ के लींबडी भंडार में मिलती है। कृति के संशोधक मुनि श्री सम्पदविजय तथा संशोधक तथा अनुवादक श्री लालचन्द्र भगवान दास गांधी है। आज से २५ वर्ष पूर्व यह रचना श्री गांधी ने प्रकाशित की थी।

नर नारी संबोध अद्यावधि प्राप्त कृतियों में अपने ही प्रकार का अनूठा काव्य है। पूरी रचना ४ प्रबन्धों में है। प्रत्येक प्रबन्ध में २१ पद्य है। कवि ने देश भाषा के साथ साथ कवि ने प्राकृत और संस्कृत के पदों का भी प्रयोग किया है। जिसमें पुरानी हिन्दी के पद १००, प्राकृत के १० एवंसंस्कृत के ७ पद्यों का प्रयोग मिलता है।

काव्य की भाषा सरल अनुप्रास पूर्ण तथा साहित्यिक सरसता से युक्त है।रचना को मोटे रूप में दो भाग किए जा सकते हैं:-

१- नर संबोध

२- नारी संबोध

१- नर नारी संबोध: संशोधक मुनि सम्पदविजय, संशोधक और अनुवादक लालचंद भगवान भगवान गांधी, प्रकाशक सेठ नामचन्द मूलचंद कोठीपोल बड़ोदरा, सं० १९९०

२- वही।

पहले कवि ने नारी, संसार आदि की नश्वरता स्पष्ट की है।पहले सम्बोध में कवि ने मनुष्यों को नारी से बचने का आदेशदिया है तथा दूसरे सम्बोध में नारी को अपने शील चरित्र के रूप में सिखावन दिया है। पूरी रचना में दोहा छन्द ही प्रधान रूप में प्रयुक्त हुआ है।

रचना की आलंकारिता आध्यात्मिकता, काव्यात्मक प्रवाह, पद लालित्य तथा साहित्यिक सौन्दर्य को समझने के लिए नीचे नर और नारी दोनों सम्बोधों से यहां कुछ उद्धरण दिए जा रहे है। पूरी रचनामेंआध्यात्मिक विषय तथा संसार की नश्वरता का उपदेश दिया है। रचना के विविध रूपक और दृष्टान्त दृष्टव्य है:-

नर सम्बोध-

(१) रे जीव रामिइ चहिउं, जओ मन रंगि रमेवि
दु अंधारहि पुतलीय सिउ, चरउं कोडि गमेवि

(२) रमणि रुपि न रंजीया जे य पुरष सधारि
ते नर नामिइ सुभइ मे विरलता नर नारि (२०)

(३) सुन्दर सुन्दरि प जाणे मोडवल (द्वितीय प्रबन्ध १)
जड रवि वाहिओ पहलइ हउ सही गिओ भव हारि

(४) छली छली छलीया जिण्णा सूक छला बोड
मुक करई मरमट चमड़, सौस्मन पहुचईसोड (५)

(५) ईसई हीडड आल, सुरत महुअड मोडता
कांता हरिखड काल, छाया जिसि वेचइ नहीं (तृतीय प्रबन्ध ३-४)
भीतन्नजसी म हाथ, सौह चड्या बाधड चहिउं
सोल छांडि आव सिर लीयइ लीलरि चहिउं

(६) अडिग सिखावइ सिरि रहियों दहिया न फलकियो अंगि
कोय कटाय डंडावीइ सील घरइ मन रंग (१६)

<u>नारी संबोध-</u>

(७) कामिणि,करणं काइं? विषय सौख्य नहीं सासतउं
सुख संतोषिइ माणि शील धम्म छइ सासअो
भामिणी भ्रमि विषया तणइ भमिहिसि भव संसारि(द्वि०प्र०४-१९)
जोइ भोग विषय नडिया नरगि पडइ नर नारि

१- रे जीव ,राग में डूबकर मन मत रंग। अन्यथा तामरस की पुत्तली केसाथ करोड़ों वर्ष क्लिष्ट करना है।
२- संसार में जो पुरुष रमणी के रूप से रंजित न हो विरक्त रहते है उनके नर नाम से सुदृप होते है।
३- हे सुन्दर पुरुष।सुन्दरि को मोह की फाल समझ।यदि इस रस में डूबा तो यह समझ कि तेरा संसार व्यर्थ गया।
४- मूढ मनुष्य मूढ आदमी को रो रो के मरते देखले। यह गंवार जूझता है तो भी उसमें सुख नहीं।
५- मूर्ख मनुष्य व्यर्थ ही मुंह मरोड़ के भूलता है। वह छाया की भांति काया के साथ में रहने वाले काल को देखता नहीं। हे निर्लज्ज।सिर धौला दांत गिर गया, स्वजनों ने आशा छोड़ दी है , शरीर शिथिल हो गया परन्तु फिर भी तुझ निर्लज्ज को लाज नहीं आती।
६- जो अग्नि शिखा के ऊपर रहा वह शुद्ध विशुद्ध नहीं हो सका। परन्तु वह ऐसा चमका कि जिसने कोशा के कटाक्ष को छुड़ाया और मन में शील धारण किया।
७- हे कामिनी।तुझे और क्या करना है? विषय सुख शाश्वत नहीं है।सन्तोष में सुख मान।शील धर्म ही शाश्वत है।हे भामिनी, विषयों में पड़कर तुम संसार में अनेक योनियों में चक्कर काटोगी विषयों विरक्त हुए नरनारी इस विषयों से नरक में पड़ते है ऐसा तू जान।

(८) री मुग्धे, जो मैथुन सम्बन्ध में देह का सुख अनुभव करते है ऐसी योनि में कीचड़ में असंख्या जीव मरते है जैसे आकाश की पूर्ति पवन नहीं कर सकता, सागर पानी से भरता नहीं। आग ईंधन से तृप्त होती नहीं वैसे ही है जीव विषय सुख से तृप्त नहीं सकता।

(९) कामिनी के काम कुंभ जैसे सारथि पति को सूझो तथा कला केलि खेलते स्थूलिभद्र के गुणों पर रीझो।

(१०)वही उत्तम स्त्री है जो पहले कदाचित मोह पाये पर फिर बोध। विषय का कुपरिणाम देख कर मन सुख से निवृत्त हो जाता है।

(८) रे मुगधि,जं बधि देह सौख्य संपालि
जीव असंख्य तिहं मरइ येनि तणइ अंबालि
अंबर पवणि न पुरिईं नवि सायर सलिलेण (१०)
आगनि न तिप्पइ इंधणि तिम जीव विषय सुहेण

(९) काम कुंभ कामिणि तणो, सारथिपति जिण बूफवियो
कला केलि केलंतिय स्थूलभद्र गुण रीफवियो (चतुर्थ प्रबन्ध १४)

(१०) तिम जे उत्तम नारि मूंफइ पण मुंजइ पछइ
देखी विषय विपाक मन मुल्हिघइ विरमइ फाई (१६)

इन उद्धरणों से पूरी रचना की विषय वस्तु जानी जा सकती है। इसी तरह कवि ने नर और नारी दोनों को संबोधा है तथा विषय समुद्र से संतरण करने की प्रत्येक विधि पर प्रकाश डाला है। पूरी रचना इसी प्रकार की पद्धति में लिखी गई है। नर नारी सम्बोध अपने आपमें एक महत्व पूर्ण कृति है।

: आणंदा :

विषय की दृष्टि से रचनाओं में विचार करने पर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना "आणंदा" उपलब्ध हुई है। रचना अप्रकाशित है तथा इसकी एक प्रति अतिशय क्षेत्र कमेटी महावीरजी भंडार जयपुर के अनुसंधान विभाग में सुरक्षित है और एक प्रति अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में।

प्रस्तुत रचना का नाम कवि ने आणंदा रखा है।जो आनन्द शब्द का राजस्थानी रूप है। पूरी रचना में प्रत्येक छन्द के साथ साथ कवि ने आणंदा छंद का नियोजन किया है। रचना का विषय आध्यात्म है।अद्यावधि प्राप्त रचनाओं में आणंदा का विषय विवेचन मान में आनन्द का स्फुरण करना है।जीव और ब्रह्म,आत्मा परमात्मा, तथा सद्वृत्तियों का आध्यात्म की ओर उन्नयन करना ही आणंदा की मुख्य संवेदना है।आदिकाल के अपभ्रंश जैन साहित्य में जिस प्रकार मुनि रामसिंह की कृति :पाहुड़ दोहा: मिलती है ठीक इसी प्रकार की आध्यात्मिक रचना आणंदा है। -अप्पा बुज्झिउ परमपउ सो वरसाउ भेउ- अपनी आत्मा को समझो, आत्मा ही परमात्मा है उसका निवास घट घट में है अन्यत्र नहीं। तीर्थयात्रा करना बिल्कुल ठीक है।आदि भावनाओं को कवि ने इस आध्यात्मिक काव्य में ढाला है।

इस कृतिमें रचनाकार का नाम पर मतभेद है।पर काव्य का अध्ययन करने पर यह प्रश्न हल हो जाता है। आणंदा शब्द का बहुत बार प्रयोग होने पर भी कस्तूरचन्द कासलीवाल ने अपने लेख[1] में कृति के रचनाकार का नाम आनन्द तिलक बताया है अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने आणंद शब्द के बार बार हुए प्रयोग तथा -मुनवइ आनन्द उल्लसई, मस्तक नामतिलक- आदि भावों को ही मूल में रखकर यह नामकरण किया है। यों इस पंक्ति को पढ़कर तो इस आनन्दतिलकनाम के स्थान पर नाम तिलक (नाम तिलक) नाम भी दिया

1- देखिए वीरवाणी वर्ष ३ अंक १४-१५ पृ० १९७-१९८ श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल का लेख।

जा सकता है क्योंकि आनन्द तिलक से ज्ञान तिलक की संगति ठीक बैठती है। पर इसका परिहार श्री अगरचन्द नाहटा ने निम्न पद्य से कर दिया है।[1]

आरम्भ- विदार्णंद सार्णंदजिणु सयल हंसो (इ)

महार्णंदि सो पूआयइ

आर्णंदा गयन मंडल थिरहोइ आर्णंदा ॥१॥

अन्त- महार्णंदियइ वालियइ

आर्णंदा जिणि दरसाविउ भेउ आर्णंदा ॥४१॥

----- महार्णंदि देउ आर्णंदा

जाणिउ मणइ महार्णंदि देउ, जाणिउ भाणउ भेउ आर्णंदा ॥४२॥

इस निष्कर्ष से उन्होंने इसके रचयिता का नाम- महानंद देउ- महानंद देव किया है।यह नामकरण कहां तक सही है बहुत निश्चित पूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु नाहटा जी का यह मत बहुत सम्भव है कि यथार्थ के निकट हो। जो भी हो, इस सम्बन्ध में रचयिता का नामकरण सन्देह से परे नहीं कहा जा सकता।

रचना के रचयिता की भांति इसकी भाषा और रचनाकाल भी सर्वसम्मत वाला नहीं है।श्रीकासलीवाल इसकी भाषा को अपभ्रंश कहा है।[2] तथा इसका रचनाकाल ११वीं शताब्दी बताया है। परन्तु इसकी भाषा वास्तव में प्राचीन राजस्थानी है।[3] और रचना की भाषा को देखकर यह कहा जा सकता है कि यह १३वीं शताब्दी की रचना होगी।क्योंकि इसमें अपभ्रंश का जनभाषा के साथ सुन्दर समन्वय स्पष्ट होता है।

१- वही, वर्ष ३ अंक २१, पृ० ५८१ पर नाहटा जी का लेख।

२- वीरवाणी वर्ष ३ अंक १४-१५ पृ० १९८।

३- श्री अगरचन्द नाहटा का कथन है कि-इसकी भाषा को कासलीवाल जी ने अपभ्रंश बतलाया है पर वास्तव में इसे प्राचीन राजस्थानी या प्राचीन हिन्दी कहना अधिक उचित प्रतीत होता है।यद्यपि यह अपभ्रंश के बहुत निकट की अवश्य है पर बहुत प्रयोग परवर्ती लोक भाषा के यत्रतत्र पाये जाते है।वीर वाणी वर्ष ३ अंक २२ पृ० ५८२।

आत्मा का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि प्रारम्भ में ही मनुष्य को उसकी ऊंचाई पहिचानने की प्रेरणा देता है। शरीर से वह नितान्त अलग है। पाप में लिप्त मनुष्य के लिए आत्मा की पवित्रता अत्यावश्यक, पाप पंकमय शरीर को आत्मक ज्ञान के साबुन से ही धोकर स्वच्छ किया जा सकताहै। अतः पाप मल को ज्ञान के ज्ञान सरोवर में अवगाहन करके छुड़ाना चाहिए:-

भितरि भरिउ पाउमलु, मूढा करहिं सण्हाणु
जेमल लाग चित्तमहि आणंदा रे किम जाय सण्हाणि
ज्ञाण सरोवरु अभिय जलु मुणिवर करइ सण्हाणु
अट्ठ कम्ममल धोवहिं आणंदा रे णियड़ा पाहु णिवाण ।१

इन भावनाओं में पाहुड़ दोहा से पर्याप्त साम्य है।इनको देखकर यह कहा जा सकता है कि कवि पर सं० १००० में विरचित पाहुड़ दोहा काव्य का पूरा पूरा प्रभाव पड़ा है और यह भी कहा जा सकता है कि पाहुड़दोहा ही इस रचना के मूल में रही हो।

रचनाकार ने गुरु की महत्ता पर प्रकाश डाला है गुरु ही एक ऐसा साधन है जो आत्मा से मिला सकता है।गुरु भी कैसा जो सद्गुरु है कुगुरु में इतनी क्षमता नहीं हो सकती। इससे गुरु की दृष्टि में सम्यक्त्व होता है और वह आत्मस्वरूप हो जाता है और वही "अप्पा" भाव में रम जाता है।पाहुड़ दोहा की इन पंक्तियों को देखिए:-

गुरु दिणयरु गुरु हिम किरणु, गुरु दीवउ गुरु देउ
अप्पा परहं परंपरहं, जो दरसावइ भेउ-

पंक्तियों की ही भांति निम्नांकित पद देखिए:- साथ ही पाहुड़ दोहा के उक्त दोहे से इन पंक्तियों को मिलाइए:-

गुरु जिणवर गुरु सिद्ध सिउ, गुरु रयणत्तय सारु
सो दरिसावइ अप्पपरु आणंदा भव जल पावइ पारु
कुगुरु पूजिय जिरण जम्हु तीरथ कारु मनेहु
देव सवेसु संयगुरु जो दरिसावइ भेय

--- --- ---

मुणतहं आणंद उल्लसह मस्तकि माणतिलकु
मुकुटमणि सिर सोहवई आणंदा साहु गुरु पालइ जागु
समरस भाव रंगिया, अप्पा देखइ सोई
अप्पह जाणउ परहणइ आणंदा करई णिरालंब होई।

वस्तुतः उक्त रचना में जो आणंदा शब्द बार बार आया है उसके लिए यह भी कहा जा सकता है कि आणंदा शब्द के बार बार प्रयोग के लिए यह भी सम्भव हो कि कवि ने उसे मन या जीवन का प्रतीक माना हो-

आनन्द के कामी- मन; अर्थात् हे आणंदा;
या हे आनंद के प्रतीक;- मन;
या हे साकार आनंद-

इस प्रकार रचना में आणंदा शब्द के बार बार सम्बोधन के लिए ये अर्थ भी लगाये जा सकते हैं।

तीर्थों में कवि की श्रद्धा नहीं। तीर्थ करके व्यर्थ समय नष्ट करने सेपूर्व तो कवि मनुष्य को अपने घट की शोध करने को कहता है उसे कुदेवों पर भी विश्वास नहीं:-

अट्ठ सट्ठि तीरथ परि भमई मूढा मरइ भमंतु
अप्पबिंदु ण जाणंहि, आणंदारे घट महि देव अणंतु

अतः घट में निवास करने वाले अनन्त देवों की पहिचान कुगुरु नहीं करा सकता वह तो दर्शनों में ही भ्रष्ट है उसकी दृष्टि ही मिथ्या है-

मुणवह सिवहइ कवलइ, मस्तकि उप्पवइ मूछ
अप्पा बहावइ बहु हि पइ, आणंदा मिच्छा दिट्ठी जोगु

कवि का काव्य प्रवाह आध्यात्म के महानन्द जैसे तत्वों की व्याख्या करने में स्पष्ट होता है और रचनाकार स्वयं इस विषय में डूब कर उसका प्रतिपादन करता है।जिन कवि है चिन्दानन्द की उपासना महाआनन्द की पूजा बिना नहीं हो सकती चाहे कोई शरीर का कुंचन शोषण, ताप, जप, आदि द्वारा कितनी ही तितिक्षा क्यों न दे, जटा क्यों न बढ़ाए, वर्षा, सर्दी, गर्मी, योग,

मंडली तभी स्थिर हो सकता है जब शील गुणों की सम्यक प्रकार से रक्षा हो, जप तप व्यर्थ समझ कर मन की शुद्धि की जाय, चिदानंद जो सभी शरीरों में स्थित है उसे समझा जाय:-

चिदानन्दु सोधेहु जिणु सयल सरीरहं सोई
महाणंदि सो पूजियई आणंदा रे गगण मंडलु थिर होइ

--- --- ---

केइ केस लुचावहिं केइ सिर जट भारु
अप्पु वि हुण जाणहिं आणंदा रे कि मयावहि भवपारु
सिद्धी काहु वाहिव सहि, सहहि परीसह भारु
देहम णायहं वाहिरउ, आणंदा रे परिसय जमकालु
पाणि मावि मोयणु करहिं पाण्डि गालु निरालु
अप्प णाइण जाणहिं आणंदा विहलाइ जम पुरियालु

--- --- ---

जापु जपइ बहु तव तपईतो विण कम्म हणेइ
एक समउ अप्पा मुणइ आणंदा चउगइ पाणिउ देई
अप्पा संजम सील गुण अप्पा दंसण णाणु
कउ हउ संजम सेउ गुरु आणंदा तो पावहि णिवाणु

और कवि इस आध्यात्मिकता को महानन्द के निवास स्थान तक ले जाता है। भाषा की सरलता, रचना की गीतिमयता, लोक भाषा मूलकता, शब्द चयन तथा प्रासादिकता दृष्टव्य है। रचना में पद लालित्य के साथ साथ अर्थ गांभीर्य भी है। कवि ने निर्वाण की प्राप्ति कराने वाले महानंद का निवास स्थान किसने सर्व कथन द्वारा सम्पन्न किया है:-

जिमवइ सायर कहमहि कुसुम परिमलु होई
तिंहु देह महं वसइ जिव आणंदा विरला बूझइ कोइ
हरिहरबंभु विधि नवी मणुबुद्धि लखिउ जाइ
मध्य सरीरहं सोमवइ, आणंदा लीजहिं गुरुहि बताई

पूरी रचना हिंडोला छन्द में लिखी गई है।तथा कुल छन्द ४४ है। कवि ने भाषा प्राचीन राजस्थानी जन बोली ही रक्खी है और १३वीं शताब्दी के आस पास की रचना होने से उस पर अपभ्रंश के शब्दों का प्रभावसर्वत्र परिलक्षित होता है। ज्ञान जैसे क्लिष्ट विषय को कवि ने बड़ी सरल शब्दावली, अनुप्रासात्मिकता तथा कोमल एवं प्रसादिक पदावली में समझाया है।उसके उपदेश का व्यक्तित्वस्थल स्थल पर स्पष्ट होता जाता है जो रचना का महत्वऔर भी अधिक बढ़ा देती है।

इन बातों के साथ साथ अंत में कर्मों के दोषों को दलने के लिए रचना को रोज पाठ करने का आदेश दिया है:-

गढइ पढावइ अणचरइ चउ सिवपुरि जाई

कम्मह्रण मवभिच्छमि आणंदा भविपण हियइ समाई

उक्त पद मरत वाक्य या फलश्रुति के रूपमें ग्रहण किया जा सकता है।निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि रचना सर्वांग सुन्दर और ज्ञानोन्मुख करने वाली है।

॥ मृगापुत्रकम ॥[१]

विषय प्रधान रचनाओं में १७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की एक सुन्दर सी रचना मृगापुत्रकम उपलब्ध होती है। विषय की दृष्टि से यद्यपि इसमें कोई नवीनता नहीं उपलब्ध होती परन्तु फिर भी भाषा और वर्णन क्रम की दृष्टि से रचना का पर्याप्त महत्व परिलक्षित होता है। प्रस्तुत रचना कालेतक अज्ञात है।मूल प्रति अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित है।

प्रस्तुत रचना का विषय मृगावती और उसके पुत्र का दीक्षा ग्रहण करने के लिए परस्पर विचार विनिमय है।साथ ही पुत्र के द्वारा कवि ने पूर्वभव वर्णन, संसार का क्लेश,विभिन्न योनियों में परिभ्रमण, तप की उच्चता आदि का महत्व स्पष्ट कराया है। पूरी रचना संवादों के रूप में लिखी हुई है। कवि ने नरकों का वर्णन बड़ा ही सजीव किया है।रचना का विषय आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। वर्णन शैली सरस, शब्द चयन सुन्दर और रचना अर्थ माधुर्य से परिपूर्ण है।

विषय सुखों में डूबी हुई मृगावती के पुत्र को पूर्वभव का स्मरण होता है और उसको दीक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा होती है।आद्योपान्त रचना में निर्वेदात्मक भावनाओं का वर्णन होने से शान्त रस व्याप्त है।भाषा की सरलता,अनुप्रासात्मिकता और लालित्य दृष्टव्य है:-

> सुमनया मोहमह सुणि मुगलोयणी
> मृगावति घरणि सुरयणि मन मोहणी
> मृगापुत्र वा सुरत सुक्ख सुख भाहीउ
> विषय सुख विविधु विलासिहिं लालीउ
> मंदले मंदिरि रमणि आणंद
> सुन्दर चित्र अवर देवहु को सुन्दर
> अन्यदिनि अवर पाताइ सिरि संठिउ
> अवर निम निरागि मनमनि उकंठिउ (१-४)

१- प्रस्तुत रचना- आणंदो-काव्य के साथ ही लिखी हुई मिली है।देखिए अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर।

अहि मिहालेइ तव नियम संजमधर
संजयं सीलगुण मंडियं मुणिवरं
जाइ समरेवि तहु दरिसणे तक्खणे
पुव्वभव कुमर वर समरए नियमणे
विछु संसारु मुहकरइ तउ उवसमं
माय पिय पणमिउ कुवरु जम्पए
भव भवि भक्ख भव भाम आकम्पए (४५)

और पुत्र के द्वारा दीक्षा ग्रहण करने का विचार पूर्वभव जान लेने पर अत्यन्त क्रुद्ध हो जाता है।भोगों और सांसारिक सुखों की नश्वरता का सुन्दर वर्णन कवि प्रस्तुत करता है। भोग विष है शरीर स्त्री और यौवन चंचल है लावण्य स्वयं भी चपल है वह जीव का साथ नहीं देता।वह तो अकेला ही जाता है।सु विषय सुखों का परिणाम मनोहर नहीं होता। ऐसे पथिक का पंथ में धर्म को छोड़कर और कोईसबल नहीं बनता। वर्णन शैली सरस और शब्द चयन कोमल है:-

भोग भोगविस विस सरिस मह अइघणा
मरइ मइ तिरिय गइ वेयणा कारणा
जोइ अब रेहि जगि जीवु सवि दुक्खहइ
संचइ देह नह भमिय जम जम इकरहइ
चपल लाइन्न जीवीउ चंचल सरो
धणु घण समणु सहु रहइ पूठि घरे
जीव एक्कल्लउ जाइ अन्नंतरे
सुरयवि सक्कइ विमु साहु मह सु न्दरो
विसयसुह हेम परिणामु मह मणहरो
तेम पंथिड पंथि सुहिय मिसंबली
है भव पंथि जिय धम्म विम संबली (८-१०)

और पुत्र के समक्ष दीक्षा ग्रहण करने पर होने वाली तितिक्षा का चित्र खींचती है। पांच महाव्रत, दुष्कर मार्ग भूख प्यास सहना, सुकुमाल देह, केश लोचन और ग्राम विहार सब दुख के कारण है। और वहीं से उत्तर प्रत्युत्तर शैलीमें नरकों का

सजीव वर्णन कवि प्रस्तुत करता है। वर्णन की प्रसादिकता द्रष्टव्य है:-

सुख मिल्हेवि समुल्लया संजमो, चित्त चिट्ठोवि ठावेवउ वेसमो
पंच मुंडव्वया भारु अहि दुक्करो, वच्छ आजम्म वहेवउ दुक्करो
छुहा तण्ह हाय बावीस परिसहा, मुव्व सुकुमाल देहेण सुह दुस्सहा
केस लोच सिरे दुक्करो दारुणो, गाम गामेसु विहार दुक्काक्खो (१३-१४)

पुनः सृगापुन समस्त नरकों दुखों का और पूर्व भव में किए पापों द्वारा पाये हुए संकटों का सजीव और रोमांचक वर्णन प्रस्तुत करता है। नरकों में कोहे में भुनाना, पहाड़ से गिराना, करोड़ों वर्षों तक की यातनाएं करवत से काठ की भांति चीरा जाना, कोल्हू में पीस्का जाना तप्त सर्वों से जलाना, गर्म स्त्री-पुतली से पर स्त्री गमन का दण्ड आदि सभी हृदय द्रावक है। वर्णन की अनुप्रासात्मि-कता तथा सजीवतादेखिए:-

वेवकर वतसिरि कट्ठ जिम विदरिउ, सवण वणनिवण छणहिंहु चोडउ
लोह जंतहि तिल जेम हूं पीलीउ, निवड नाराय नारणीयहू छिल्लिउ
पुव्वभव पाव पवारिकउं पीडिउ, विवम बंधेहि बहु रहिहूं पीडिउ
तत्त तव्वाइ तंबाइहुं पाइउ, पुरा मनसाई दुवरिय पवारीउ
संमरा वेवि परत्मणि परिरंभणं, सव पुत्तलीय करिंतिहे फरिसणं
पण बई सहिव सुह मरणइ गिंदरे, मुहवि अणवेउ वाउ वणइ गिंदरे

(१९-२१)

--- --- ---

छिरिय पंविदि मइ कलयवोलहूपव, ताडिव अंकपिइं छिमडिहुं वहुपउ
पुरव तव्वणइ या पहिंहुं वाइउ, गिरहिं गिकंरणि निलणो वाडिउ
वहल मवि बहुय मारं महुद्दरउ, वेहुया मंव मञ्चणि विमूढउ
करइ मवि भूरि मारेहिं हउं पीडिउ, पुठि मालेण पमुपहिं हउ पीडिउ
सवव संवरह वारंम सुअर वेम, हुंठ नारिवं हुवी पालिउ नवनये
वलहि गिंदरहिं छिवतंत हउं दारुणो, परिय पीयरिहिंविदारिउ अवरणो(६५)

--- --- ---

पुत्तय मइ गई सहि दुक्ख गब्भे गए,
बालपणि सहिय दुह बहुय अन्नाणए
जुव्वणे जुवइ अणराइ हउं रोलीउ,
मयण मल्लेण मव जलहि तलि बोलिउ (२७)
बसण सय किनडिउ परवणा पहरणो,
मारिउ विविह शायहिहुं सकरणो
कुम्पह चढि कि हउं बाढिउ बब्बरे,
नरय नारगीय जिम नदीय नदीय परे
कटुहु पशुपहि रोगेहिं दु खंडीउ, रंक जिम रोलीउ सयलगुण छंडीउ
वल्लहाणं विजुगेहिं दुखाउलो, विवरीउ विसय सुह विकल जिम बंवलो
मणुयमइ ईम कम्मोहि हउं विनडिउ, ताव तउ संवमे भावईमवडिउ
हीण देवत्ति दुह सहिय दुक्करहरं, माइहु विलत इणि इसुह निकरं (२९-३१)

इस प्रकार पूरी रचना माता और पुत्र के संवाद के रूप में चलती है।आध्यात्मिक दृष्टि से भी रचना का महत्व स्पष्ट हो जाता है।असार संसार को छोड़कर मनुष्य को शिव गति या निर्वाण की ओर उन्मुख होना चाहिए संसार में अनेक जन्म होते हैं। पाप होते हैं तथा पूर्वभव के संचित शुभ अशुभ कर्मों का प्रतिफल हमें यहाँ आकर भोगना पड़ता है। वस्तुतः भोग सुख और दैहिक सुख ऐश्वर्य ही जीवन का चरम लक्ष्य नहीं है इससे परे भी अनेक आध्यात्मिक आकर्षण है जिन्हें मनुष्य संसार के इन इन्द्रिय जन्य सुखों से ऊपर उठकर ही प्राप्त कर सकता है। इस तरह पूरी रचना में कवि ने मृगावती के पुत्र के पूर्वभवकी कथा का वर्णन किया है। पूरी रचना ४२ छन्दों में पूरी हुई है। भाषा की दृष्टि सेरचना पर्याप्त महत्वपूर्ण है। साथ ही जैनदर्शन की कर्म, भव, जन्म, नरक, शिवगति, पंच महाव्रत समकित आदि अनेक कठिन बातों पर सुन्दर दृष्टान्तों और कथा सूत्रों से प्रकाश डाला है।

यह रचना एक चरित्र कथानक है जिसे पढ़ने से शिवत्व की प्राप्ति होगी ऐसा कविका मत है:-

तिजग समचित्त रिसवरह सुपवित्तयं
मिग्रा पुत्तस्स जे भणई सुचरित्तय
विगइ विपाम विलेसेवि विगडपरे
लहहि सो सत्त रजस्सावयं सिवपुरे (४२)

पूरी रचना सरस और जन भाषा प्रधान है। भाषा में यद्यपि अपभ्रंश के शब्दों का प्रभाव सर्वत्र है परन्तु फिर भी अधिकतर पुरानी राजस्थानी के शब्दों की प्रयत्न-सर्वत्र ही भरमार मिलती है। रचना प्राचीन है तथा कथात्मक संवादों में लिखी गई है। मृगापुत्रकम की प्रति का चित्र भी संग्रहीत कर दिया गया है। १३वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के प्रमुख काव्यों में से एक मृगापुत्रकम् भी है।

इसी प्रकार उक्त अध्याय में जितनी रचनाओं पर प्रकाश डाला गया है वे सब पर्याप्त महत्व की है इसीलिए इनका गौण काव्य परंपराएं शीर्षक के अन्तर्गत मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

------::०::------

अध्याय - ८

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य (३) स्तवन काव्य परंपराएं

(आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य(७) स्तवन काव्य परंपराएं)

गीत, स्तोत्र और स्तवन साहित्य की परम्परा चिर प्राचीन है।संस्कृत साहित्य में गीति काव्य मुक्तक और प्रबन्ध दोनों शैलियों में उपलब्ध होता है। गीत जीवन की एक केवल अनुभूति होती है जो अपने में पूर्णतया मुक्त होती है। गीति रचनाओं में अपेक्षाकृत एक मधुरता होती है।उसमें संगीत तत्त्व विद्यमान रहता है। मधुर पदावली, और संक्षिप्त भावपूर्ण शब्दावली सरस सुबोध शैली संगीत तथा छन्द में घुलकर प्रयुक्त की जाती है। इनमें कोमलता या अन्य किसी भी मधुर भाव की उत्कृष्ट अनुभूति होती है।गीत जीवन के मार्मिक अंश होते है जिनमें भावुकोपाम्य रसोद्रेक होता है।संस्कृत साहित्य में मुक्तक दो प्रकार के पाये जाते है लौकिक तथा धार्मिक। लौकिक काव्यों में गीत आदि अनेक प्रकार हो सकते है और धार्मिक में स्तोत्र स्तवनादि।

इस प्रकार के मुक्तक काव्यों की परम्परा संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश में सुरक्षित चली आ रही है।स्तवन काव्य परम्परा के अन्तर्गत आने वाले ये लौकिक और धार्मिक गीत संक्षिप्त, सम्पूर्ण और व्यक्तित्व प्रधान होते है इनमें व्यक्तिगत भावधारा और अनुभूतियों का सुन्दर संगुम्फन होता है। साथ जीवन की उदात्त भावनाओं का समावेश रहता है। अलंकृत हृदय तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से अपार प्रभुता इन्हें और भी असाधारण बना देती है। इन गीतों में संक्षिप्तता होती है। क्षिप्र संचलन (रैपिड मूवमेन्ट) होता है तथा हृदय की अपार भावनाओं की छाया (आउटरिंग आफ ह्यूमन पैशन्स) के कारण यह अभिव्यक्ति अनायास ही बाहर फूट पड़ती है। जिसमें संगीत और स्वरों का उदात्तीकरण होता है। अंग्रेजी में (लिरिक) शब्द "गीति" शब्द के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। परन्तु यह भी गीत का वास्तविक अर्थ नहीं देता, जो अर्थ हमारा "गीत" शब्द दे सकता है। वस्तुतः इस विशाल भावसागर में ऊर्मियों की भांति आलोड़न करने वाले इन गीतों को हम ऊर्मि काव्य कह सकते है।

उर्मि काव्यों या गीति काव्यों के रूप में आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में धार्मिक स्तवन विशाल संख्या में पाये जाते है। धार्मिक मुक्तकों में स्तोत्र और स्तवन आदि का प्राधान्य है। लौकिक और धार्मिक दोनों काव्यों में संस्कृत की प्राचीनता पर्याप्त रूप में विद्यमान है।समग्र वैदिक संहिताएं देवताओं की विशिष्ट स्तुतियां है। इस प्रकार इन लौकिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक मुक्तक काव्यों की संख्या असाधारण है।

स्तोत्र साहित्य संस्कृत में बड़े विशालपरिमाण में मिलता है। इन स्तवनों व स्तोत्रों में हृदय की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, भक्त का दैन्य, तथा साध्य के स्वरूप की क्षमता, कोमलता, दयार्द्रता और उदारता का वर्णन किया जाता है। इन देवताओं की महिमा वर्णन में भक्त अपने हृदय की उदात्त भावनाओं केअभिव्यक्ति में हृदय की समस्त शक्ति लगा देता है। भगवान का विशाल हृदय पापों का भय, जीवन में संसार की नश्वरता और स्वकर्मों का ध्यान उसे बेचैन बनादेते है और साध्य की महानता में साधक अपनी लघुता या क्षुद्रता अनुभव कर स्वयं को उनमें खो देता है। अपने इष्ट या रूप से भक्त निस्संकोच होकर सब मांग लेते है अतः उन्हें अपनी दीनता वर्णनीयता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, कोमलता, उदात्त अभिव्यंजना और सच्ची भाव प्रवणता को प्रकट करने का पूरा अवसर मिलता है। इन्हीं लाक्षणिक तत्वों के कारण ये स्तोत्र स्तवन और गीत बड़े रोचक प्रतीत होते है। मधुर और संगीत का पुट लग जाने से इन गीत स्तोत्रों की क्षमता चौगुनी हो जाती है। अतः भक्ति मार्ग के विकास में ये स्तोत्र बड़े सहायक है इष्टदेव की स्तुति की अंतर भक्ति भावना को प्रकट करने की यह परम्परा वेदों से ही मिल जाती है। वेदों में भिन्न भिन्न देवताओं की भिन्न भिन्न प्रकार से स्तुतियां मिलती है। गीता में अर्जुन कृष्ण की अनेक मुक्तकों में स्तुति करता है। महाभारत में भी अनेक स्तोत्र मिल जाते है। स्तोत्र स्तुतियों का क्रम पुराण साहित्य में और अधिक विशाल संख्या में उपलब्ध होता है।भागवत और विष्णु पुराण सर्वथा उत्कृष्ट है। भागवत पुराण में ब्रह्मा विष्णु, महेश, कृष्ण तथा विभिन्न रिषि

मुनियों और अन्य अनेक देवताओं की स्तुतियां और स्तोत्र• तथा अनेक गीत• आदि मिल जाते हैं। प्राचीन स्तोत्रों का विशाल संग्रह बृहत स्तोत्र रत्नाकर के नाम सेप्रसिद्ध है। भागवत में अनेक गीत हैं जिनमें •गोपी गीत सबसे प्रसिद्ध गीत है।

प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में भी भक्ति सम्बन्धी धार्मिक वृत्तों वाले अनेक गीत, पद, स्तोत्र या स्तवन उपलब्ध हो जाते हैं।द्राविड़ ग्रन्थों के तामिल साहित्य में उपलब्ध स्तोत्र उल्लेखनीय हैं।ऐसे ही समय में मध्यकाल में भी महाराष्ट्री शौरसेनी आदि प्राकृतों में भी अनेक प्रकार के गीत, स्तोत्र व स्तवन आदि स्तुति मूलक रचनाओं का निर्माण हुआ होगा पर वे उपलब्ध नहीं होती है। अपभ्रंश में भी कृष्ण भक्ति मूलक कुछ मुक्तक काव्य मिल जाते हैं। इन स्तोत्र स्तवनों की विशेषताओं पर और शिल्प पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ये स्तोत्र गीत वास्तव में भक्ति परक, ज्ञान मूलक तथा वैराग्य की प्रधानता लिए हैं।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में सं० ११०० से १५०० तक इन रचनाओं की शृंखला बहुत विशाल रूप में उपलब्ध होती है।इस साहित्य में स्तोत्र, स्तवन, गीत, आदि स्तुति मूलक रचनाओं की संख्या तो २०० से भी ऊपर है। अतः इनमें कीर्तन भक्ति ध्यान, उपासना, स्तुति, अभिषेक, कलश, सज्झाय आदि अनेक रूपोंमें यह साहित्य उपलब्ध होता है।प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती में लोकभाषा मूलक अनेक गीत, स्तुति स्तोत्र स्तवन आदि मिलते हैं। ये रचनाएं बड़ी उल्लासपूर्ण हैं। यद्यपि इन स्तोत्र स्तवन संज्ञक रचनाओं का विशुद्ध साहित्यिक रूप में महत्व सामान्य ही है परन्तु फिर भी इनसे तत्कालीन भाषा साहित्य की सम्पन्नता का परिचय मिलता है।हिन्दी जैन साहित्य में इस प्रकार विविध तीर्थंकरों, तीर्थों, साधुओं आचार्यों संतियों आदि सम्बन्धी अनेक गीत स्तोत्र व स्तवन मिल जाते हैं। यद्यपि इन गीतों व स्तोत्रों की कथावस्तु धार्मिक है, परन्तु फिर भी वे साध्य के प्रति कवियों के आत्मार्पण के गीत हैं। इनमें श्रावक श्राविकाओं की धार्मिक अनुभूतियों का सहज उल्लास है।इस प्रकार ये आत्मोन्नति और भक्ति भावना को बल प्रदान करते हैं। इन गीतों में कलह की लघुता,

श्रावकों की दीनता और तीर्थों आचार्यों, महापुरुषों और तीर्थंकरों का गुण वर्णन तथा उनके उच्च आदर्शों का स्तुति गान है। ये प्रशस्तियां अनेक रूप में पाई जाती हैं। इनमें अनेक प्रकार से जैन दार्शनिक सिद्धान्तों, कर्मों के भोगों व अन्य सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। इह लौकिक और पारलौकिक दोनों स्थितियों के चित्र कवियों ने इन स्तुतियों में खींचे हैं।

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य के गीतों, स्तोत्रों और स्तवनों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी विविधता है।इन रचनाओं का अनेक रूपों में वर्णन मिलता है। उनमें प्रमुख निम्नांकित हैं:-

१- उत्साह ।

२- गीत

३- स्तोत्र

४- स्तवन

५- कलश

६- चौलिका

७- स्तुति

८- वीनंती

९- सज्झाय

१०- नमस्कार

११- प्रशस्ति

स्तुति और प्रशस्ति गान संबंधक ये रचनाएं उक्त विविध रूपों में विशाल संख्या में उपलब्ध होती है इनका वर्गीकरण गीति, संगीत और वर्ण्य विषय के अन्तर्गत किया गया है।इन रचनाओं को स्तवन या गीति काव्य की परम्परा में इस रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:-

स्तवन काव्य

लौकिक   ऐतिहासिक   धार्मिक गीतिस्तवन

१- गीत
२- स्तोत्रादि

उत्साह   गीत   स्तोत्र   स्तवन   कलश   चौलिका   स्तुति   वीनंती   सज्झाय

नमस्कार   प्रशस्ति

इस विशाल स्तोत्र, गीति व स्तवन साहित्य के यथार्थ वर्णन के लिए स्वतंत्र अध्ययन व ग्रन्थ की आवश्यकता प्रतीत होती है।अतः यहां इनमें से कतिपय रचनाओं का अध्ययन बहुत संक्षेप में परिचयात्मक रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।इन रचनाओं में क्योंकि सत्यपुरीय महावीर उत्साह धनपाल की सं० १०८१ की सबसे प्राचीन ऐतिहासिक गीति रचना है अतः इसका विस्तार में अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। शेषस्व रचनाओं का केवल मात्र परिचय ही दिया गया है। हिन्दी साहित्य की सबसे प्राचीन आदिकालीन रचना "सत्यपुरीय महावीर उत्साह है, जो ऐतिहासिक गीत है तथा इस रचना का सबसे बड़ा महत्व इस दृष्टि से है कि इससे अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के बीच विभाजन रेखा खींची जा सकती है। गीति और स्तवन साहित्य की इन शेषरचनाओं का अध्ययन भी सत्यपुरीय उत्साह की भांति विस्तार में किया जा सकता है, परन्तु विस्तार भय से ऐसा अध्ययन केवल सबसे प्राचीन इसी उत्साह गीत का किया गया है।

"सत्यपुरीय महावीर उत्साह"

आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य में ११वीं शताब्दी में उपलब्ध होने वाली सर्व प्रथम और महत्वपूर्ण कृति "सत्यपुरीय महावीर उत्साह" है। यह रचना एक उत्साह प्रधान गीत है।जिसे स्तुति भी कहा जा सकता है। गीत पुस्तकों में इस प्रकार की अनेक रचनाएं परवर्ती साहित्य में विशाल संख्या में उपलब्ध होती हैं। परन्तु प्रस्तुत रचना की भांति "उत्साह" संज्ञक रचनाओं का लगभग अभाव ही है। "सत्यपुरीय महावीर उत्साह" एक स्तुति प्रधान गीति रचना है जिसकी विषय वस्तु का सीधा सम्बन्ध इतिहास से है। गीत रचनाओं में ऐतिहासिकता का समन्वय करने वाली रचनाओं की कड़ी में महावीर उत्साह को शीर्ष स्थान दिया जा सकता है।

"उत्साह" नाम से रचना के नाम व शिल्प का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है तथा न आगे ही इस नाम की अन्य कोई रचनाएं पाई जाती हैं इसके

अतिरिक्त इस प्रकार का कोई काव्य रूप भी परवर्ती रचनाओं में परिलक्षित नहीं होता। पूर्ववर्ती साहित्य में अर्थात् संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में गीति प्रधान रचनायें तो पर्याप्त मिल जाती हैं, परन्तु "उत्साह" संज्ञा विशेष से किसी काव्य रूप का बोध कराने वाली कोई अन्य रचना नहीं मिलती। वस्तुतः अपभ्रंश से इतर पुरानी हिन्दी में सर्व प्रथम यही रचना उपलब्ध होती है जिसका कई दृष्टियों से महत्व है।

प्रस्तुत कृति का नाम "उत्साह" है।उत्साह वीर रस का स्थायी भाव है अतः इसकी निष्पत्ति किसी उल्लास या आल्हादक महोत्सव अथवा अन्य किसी घटना विशेष के कारण ही हो सकता है।यह भी सम्भावना हो सकती है कि किसी चमत्कारिक दैवीय घटना के कारण भक्ति का चरम आनन्द या उद्वेग होने पर ही कवि के ये उद्गारोद्गार फूट निकले हों। यों परम्परा का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्याश्रित जितने भी कवि होते हैं, वे राजा की स्तुति या प्रशस्ति स्तवन स्वरूप गीत रचा करते थे। तथा राजा की विजय या पराजय के पश्चात् पुनः राज्यप्राप्ति के अवसर पर हर्षोल्लास और अपरिमित आनन्द में निमग्न स्तुति मूलक रचनाओं का निर्माण कियाकरते थे। वस्तुतः उत्साह नाम इसीलिए सार्थक परिलक्षित होता है। अस्तु यह स्पष्ट है कि उत्साह संज्ञक रचनाओं का वस्तु शिल्प किसी काव्य रूप विशेष के लिए रूढ़ नहीं है। यह तो एक स्तुति मूलक गीति रचना है जो कवि के आल्हाद विशेष और उत्साह की सूचना प्रस्तुत करती है।यों सरलता के लिए उसे वीर रस प्रधान स्तवन या गीत कहा जा सकता है, परन्तु फिर भी संख्या में केवल एक होने से यह परिभाषा रूढ़ नहीं कही जा सकती। जो भी हो, यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार की रचनाओं में एक स्वाभाविक तथा असाधारण उत्साह का उन्नयन होता है। वस्तुतः विशिष्ट प्रकार की कोई भी आल्हादक स्तुति "उत्साह" नाम से पुकारी जा सकती है।

"सत्यपुरीय महावीर उत्साह" का रचना काल सं० १०८१ के लगभग है तथा इसके रचनाकार धनपाल हैं। इस कृति का सम्पादन भी मुनिजिन विजय जी ने किया था और बहुत पहले यह रचना प्रकाशित भी हो गई थी[1]। पर इस रचना को अपभ्रंश तथा प्राचीन राजस्थानी की समझ कर इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कृति अपभ्रंश और हिन्दी भाषा के बीच की एक कड़ी है और इसके द्वारा अपभ्रंश और हिन्दी के शुद्ध रूपों के बीच में एक विभाजन रेखा खींची जा सकती है। इस दृष्टि से इस रचना का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

प्राप्ति स्थान-

प्रस्तुत कृति पाटण के भंडार से उपलब्ध हुई[2] तथा सं० १३५७ में लिखी प्रति के स्तोत्रों में से निकाल कर मुनिजिनविजय जी ने इसको प्रकाशित किया था, परन्तु गुजराती पत्र में प्रकाशित होने से यह कृति अप्रसिद्ध और अप्रकाशित की भांति ही बनी रही। पर कृति की पौराणिकता के कारण यह और भी आवश्यक हो जाता है कि इसका सम्यक् अनुशीलन प्रस्तुत किया जाय।

सत्यपुरीय महावीर उत्साह के रचनाकार धनपाल की एक कृति प्राकृत में पाइयलच्छीनाम माला[3] सं० १०२८ की भी उपलब्ध होती है। यों तिलक मंजरी की अपूर्व शैली को देखकर ही लेखक की रचना शैली व रचना शक्ति का अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

रचना स्थान:-

प्रस्तुत स्तुति का स्थान सत्यपुर है। महावीर की मूर्ति इसी स्थल पर वर्णित है। सत्यपुर मारवाड़ का सांचोर नामक स्थान था। यह स्थान अब भी जोधपु

१- जैन साहित्य संशोधक: सं० १९८३ पृ० २४४ सम्पादक मुनिजिनविजय।

२- वही लेख।

३- देखिए आपणा कवियो: के०का० शास्त्री, पृ० ४५।

राज्य के दक्षिण भाग में है।सत्यपुर सांचोर का संस्कृत रूप है और सच्चउर प्राकृत है जिसका अपभ्रंश सांचौर हो गया। यही स्थान महावीर का एक अत्यन्त प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ है। सत्यपुर केलिए जग चिन्तामणि ग्रन्थ में जयउ वीर सच्चउरि मंडण-उल्लेख मिलता है तथा जिनप्रभसूरि के विविध तीर्थ कल्प में भी सत्यपुर को विवेककल्प बताने का उल्लेख मिलता है।अतः यह स्पष्ट है कि सत्यपुर जैनियों का एक विशिष्ट तीर्थ था।

कथा:-

कृति की विषय वस्तु स्तुति परक या धार्मिक है तथा घटना ऐतिहासिक। स्तवन या उत्साह का विषय भी सत्यपुरीय महावीर की प्रतिमा है मूर्ति का आक्रमणकारी के हाथ से बच जाना, मूर्ति के प्रभाव से आक्रमणकर्ता का पुनः लौट जाना आदि घटनाओं ने, जो उत्क्रांति और विध्वंस की प्रतीक है, श्रद्धालु भक्तों को गाने, नाचने, मूर्ति का यश वर्णन करने तथा किसी भी प्रकार अपनी हर्षोल्लासमयी भावनाओं के उद्वेग की उत्साहपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए बाध्य किया और धनपाल का यह स्तवन उसी प्रतिक्रिया का प्रतिफल है। धर्म की अधर्म पर विजय, विध्वंसकों का पराभव सभी के लिए प्रसन्नता का विषय था । अतः धनपाल की प्रेरणा के यही सब कारण विषय रहे होंगे। क्योंकि महावीर के दैवीय सामर्थ्य के कारण व्याकुल होकर यवनीपति चला गया और जैन संघ जब पूर्णतया परितुष्ट हुआ तो सब और उसने पूजा, महिमा, गीत, नृत्य, वादित्र बजा बजाकर, द्रव्यों का दान आदि प्रभावनाएं करने लगे। वस्तुतः इसी प्रभावना प्रसंग पर उपस्थित हो महाकवि धनपाल ने अपनी भक्ति और उल्लास में झूम कर यह उत्साह गीत प्रस्तुत किया होगा, परिलक्षित है।

१५ छंदों की इस छोटी सी कृति में कथा यही है कि किस प्रकार मूर्ति-भंजक आक्रमणकर्ता ने कुल्हाड़ों से महावीर की सत्यपुर स्थित प्रतिमा पर आघात

१- जैन साहित्य संशोधक पृ० २१४।
२- विविध तीर्थकल्प- श्री जिनप्रभसूरि पृ० ९०-९१
३- सत्यपुरीय महावीर उत्साहः जैन-सा०सं०-पृ०-२१४-पद ७।

किया वह घाव आज भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है जिसको कवि ने स्पष्ट किया है:- पुणवि कुहाड़ा हत्थि लेवि जिम वरतण ताडिउ

पच्छइँ घडवि कुहाडेहिं सो सिर अंगाडिउ

अज्जवि दीसहिं अंगि घाव सो हिय सुधीरह

चलण जुयहु सच्चउरि-नयरि पणमहु सुवीरह [1]

आक्रमणकर्ता ने कोरिंट, श्रीमाल, धार, नराण, अणहिलवाड़पाटण विजयकोट, पालीताणा, चन्द्रावती, सोरठ और देलवाड़ा आदि मन्दिरों की मूर्तियों की प्रतिमाओं को भी ध्वस्त किया, अपार धन लूटा पर सत्यपुर या सांचोर के महावीर स्वामी की प्रतिमा का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका। साथ ही सिद्धार्थ का चमत्कार श्रावकों की भांति नृत्य तथा उल्लासादि उत्सवों का उत्कृष्ट वर्णन कियागया है तथा कवि की इस संक्रांतिकालीन रचना में भी शैली की उत्कृष्टता परिलक्षित होती है। धनपाल अपनी तिलक-मंजरी के कारण बाण के समान ही प्रतिभाशाली कवि थे। संक्षेप में रचना के इन १५ छन्दों का यही सार है।

रचना साधारण है परन्तु संक्रांतिकाल में अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी की विभाजन-रेखा-स्थल पर स्थित है अतः महत्वपूर्ण है।

<u>कृति का ऐतिहासिक महत्वः-</u>

जहां तक इस रचना के ऐतिहासिक महत्व का प्रश्न है इसमें ऐतिहासिक स्थलों नामों तथा घटनाओं का उल्लेख है। स्वयं कवि ने सत्यपुर की ऐतिहासिकता को स्पष्ट किया है:-

भंजेविणु सिरिमाल देसु अनु अणहिलवाडउं

सोमेसर सो तिहि भग्गु जणमण आणंदणु

भग्गु न सिरि सच्चउरि वीर सिद्धत्थह नंदणु [2]

तुर्कों ने श्रीमाल देश, अणहिलवाड़ पाटण, चन्द्रावती, सोरठ देलवाड़ा और मनुष्यों के मन को आनन्दित करने वाले सोमनाथ के मन्दिरों को भग्न किया पर सत्यपुर

१- सत्यपुरीय महावीर उत्साहः जैन सा०सं०पृ० २४२ पद ७।
२- वही पृ० २४० पद ३।

या सांचोर के सिद्धार्थ महावीर को भग्न नहीं कर सका। इसके अतिरिक्त स्वयं कविधनपाल मालवपति मुंज और भोज की सभा का विद्वान और अग्रणी पंडित था।[1] भोज की सभा में ही धनपाल ने तिलक मंजरी की रचना की थी। सत्यपुरीय महावीर उत्साह में किसी आक्रमण कर्ता का वर्णन है। तिलक मंजरी रचने के बाद कवि भोज से रुष्ट होकर सत्यपुर आ गया था। उस समय देश पर तुर्कों का आक्रमण हो रहा था जिसमें गजनवी की सोमनाथ चढ़ाईअत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त भोज का समय भी निश्चित वि० सं० १०६१ से ११२० है। अतः मुहम्मद गजनवी के आक्रमण का वर्णन भोज ही के शासनकाल में पड़ता है और यह भी स्पष्ट था कि भोज के कहने पर ही धनपाल ने तिलक मंजरी की रचना की थी। बहिरंग प्रमाणों से भी ज्ञात होता है कि धनपाल ने ही यह आल्हादक स्तुति की थी।[2] यों इतिहास में यह प्रमाण नहीं मिलता कि [illegible] महमूद गजनवी ने सत्यपुर पर आक्रमण किया हो।[3] जिनप्रभ सूरि द्वारा लिखे तीर्थ ग्रन्थ में भी यह वर्णन मिलता है कि महमूद ने सत्यपुर पर सोमनाथ की भांति आक्रमण किया, पर वह सफल नहीं हुआ।[4] प्रभावक चरित्र और प्रबोध चिन्तामणि ग्रन्थ भी महमूद को प्रसिद्ध आक्रमणकर्ता मानते हैं स्वयं कवि धनपाल ने अपने स्तोत्र में तुरुक नाम को स्पष्ट किया है:-

"भूमिहि भग्ग तुरुक्क कोई सच्चउरि- [illegible]"[5]

तीर्थ के ऐतिहासिक होने के लिए यह भी अनुमान किया जा सकता है कि ऐसा [illegible] तीर्थ, जिस पर तुर्कों ने अनेक सम्मिलित चढ़ाई की, की ओर महमूद लुटेरे का ध्यान नहीं गया हो।

१- [illegible] [illegible] कविओ की केशवराम काशीराम शास्त्री पृ० ३४ (सन् १८४८ संस्करण)
२- प्रभावकचरित्र में ऐसी सूचना मिलती है कि धनपाल ने सांचोर के महावीर की स्तुति की थी।
३- जैन सा०इ० पृ० २०४ (भूमिका)
४- तीर्थकल्प- जिन प्रभसूरि पृ० ८८ से ९६ प्रकाशक- एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता।
५- जैन सा०इ० पृ० २०२-३ पद ४।

अतः यह स्पष्ट है कि रचनाकार ने कृति में ऐतिहासिक सत्यों और तथ्यों का भी वर्णन किया है।रचना के विषय से भी यह सिद्ध होता है कि आक्रमण के समय स्वयं कवि भी वहीं प्रस्तुत था तथा उसने प्रतिमा की शक्ति का उत्साह से यशोगान किया। यह दूसरी बात है कि आक्रमण कर्त्ता महमूद हो, उसका सेनापति हो,या कोई अन्य रहा हो। वस्तुतः धनपाल का समय सं० १०८० है और उसी ने यह उत्साह -गीत घटनास्थल पर उपस्थित रह कर लिखा है। उक्त प्रमाणों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि तुर्क मूर्तिभंजक और धनलोलुप आक्रमणकर्त्ता ने सत्यपुर पर चढ़ाई अवश्य की थी अतः वह अनुमानतः अवश्य ही महमूद गजनवी रहा होगा।

इस प्रकार कृति का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व स्पष्ट हो जाताहै जिससे तत्कालीन समाज पर हुए शकों के हिन्दुओं की मूर्तियां और शिल्प की अद्भुत कला को नष्ट करने हेतु किए गए अत्याचारों का भी परिचय मिलता है। रचना के एक स्थल पर कविने आक्रमणकारी का नाम जोग लिखा है:-

कसिवाणि गु चिरकालि आवि कुवि जोग नरेसरु

उव्वसियइ सच्चउरि दिट्ठ तहि वीरु जिणेसरु

आरंभिउ आहुट्ठ रंग चामीयर वरतणु

वर तुरंग दो रहि निबिड़ु नरवइहि चलिउ मणु [१]

सम्भवतः महमूद के पूर्व या महमूद के अतिरिक्त किसी अन्य जोग नामक आक्रमण कर्त्ता के मूर्ति तोड़ने का प्रयत्न किया हो। जोग नरेश का यह इंगित यथेष्ठ जानकारी नहीं देता, पर अनुमानतः वह भी कोई समकालीन राजा रहा होगा। आक्रमणकर्त्ता ने हाथी और घोड़ों के बल पर मूर्ति को ही बाहर निकालना चाहा, कुल्हाड़ों के प्रहार किए, जिसके चिन्ह आज तक भी स्पष्ट मिलते हैं। ऐसा कवि ने लिखा है।

अस्तु शिल्प विवेचन की दृष्टि से विचार करने पर हमें रचनाकार की काव्य शक्ति का परिचयसहज ही मिल जाता है। धनपाल ने इस रचना का प्रारंभ

१- जैन गु० सं०, पृ० २४२।

प्रार्थना से किया है। कवि ने महावीर के यश की विशालता का वर्णन किया है। महाकवि की इस कृति में, यह स्पष्ट है कि विशाल पैमाने पर काव्यगत अलंकारों, छन्दों तथा अन्य कलापक्षीय उपादानों का अभाव है। जो आदिकालीन अधिकांश रचनाओं में ही है, परन्तु फिर भी भाषा काव्यत्व तथा तत्कालीन समय में साहित्य की प्रामाणिक रचनाओं के रूप में सत्यपुरीय महावीर उत्साह जैसी छोटी कृतियों का भी पर्याप्त महत्व है। प्रस्तुत गीति मुक्तक में एक अवसन धारावहिकता है।प्रत्येक पद में कवि का उल्लास है। वह उसका उत्साह प्रधान गीत है।जिसमें अपभ्रंश की अनुरणनात्मकता तथा ध्वन्यात्मकता जैसी काव्य प्रवृत्तियाँ स्पष्ट होती हैं। कवि के स्वर में महद् अनुभूति और मधुरता का समन्वय है अतः अनुरंजन की क्षमता होना स्वाभाविक है। कवि ने ऐतिहासिक तथ्य को काव्य के माध्यम से प्रचुर रूप में प्रभावोत्पादक बनाया है। प्रस्तुत गीत की सबसे बड़ी विशेषता इसके जनगीत के रूप में लोक प्रिय होने में है।जीवन के मनोवेगों और भावों को जगाने में ये जन काव्य बड़े प्रभावशाली हैं। जैन समाज में आज भी सत्यपुरीय महावीर उत्साह जैसे आल्हादक गीत कंठस्थ करके प्रतिदिन पाठ किए जाते हैं

कवि ने सत्यपुरीय जिनेन्द्र महावीर के शौर्य का वर्णन पर्याप्त कुशलता से किया है। वर्णन का प्रवाह स्पष्ट है:-

"बहुयहि तारायणेहि रवि प्रकट किं भिज्जइ
बहुयहि वि विसहरेहि मिलि वि किं गरुड़ गिलिज्जइ,
बहु कुरंग आरुट्ठ करहि किरि काय मयंदह
पुणिवि बहुय कुवाक कोइसव्वहरि- जिणिंदह"[1]

(अनेक तारागण मिलकर जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश का भेदन नहीं कर सकते, वैसे अनेक विषधर मिलकर भी क्या गरुड़ को निगल सकते हैं? जिस प्रकार

1- वही ग्रन्थ, वही पृ० ५४२।

अनेक हिरणों का समूह भी मदोन्मत्त हाथी का कुछ नहीं कर सकते, उसी प्रकार अनेक तुर्क मिल कर भी सत्यपुर के जिनेन्द्र का कुछ नहीं बिगाड़ सकते)।

कवि ने विविध दृष्टान्तों से उक्ति को पुष्ट कियाहै। प्रस्तुत उत्साह कवि की आल्हादमयी अभिव्यक्ति (स्पान्टेनस एक्सप्रेशन आफ ज्वाय) होने से अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है। श्रद्धा, भक्ति और भावावेश में कवि ने महावीर की महिमा की क्षमता को अनेक उपमानों में बांधा है। जिस प्रकार पहाड़ों में श्रेष्ठ सुमेरु, तारागणों में दिवाकर तथा सुरलोक देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ है उसी प्रकार तीनों लोकों में जिनेन्द्र सत्यपुरीय श्रेष्ठ है:-

जिम महंतु गिरवरह मेरु महगणह दिवायरु
जिम महंतु सुरवरह मज्झि उवहिहिं रयणायरु
जिम महंतु सुरवरह मज्झि सुरलोइ सुरेसरु
तिम महंतु तियलोय तिलउ सव्वउरि जिणेसरु"[१]

(चांद सूरज के प्रकाश की भांति उज्जवल(प्रकाशित), सागर की भांति गंभीर महावीर का अमृत बरसाने वाला प्रतिबिम्ब तीनों लोगों में अनुपमेय है "तिहुयणि तसु पडिबिंबु नत्थि जसु उप्पम दिज्जई" ऐसे अनुपमेय और अनिर्वचनीय मन्दिर के वर्णन करने को अनेक मुंह और देखने को अनेक नेत्र चाहिए।जबकि कवि के पास तो सिर्फ एक ही जीभ व दो आंखें मात्र है:-

सहसेण विलोयणह तित्तु न होय निर्यतह
वयण सहस्सेहि गुणसमूह मिट्ठि महि पुर्णतह
एक्क जीह चमचाहु भणइ इक्कु जं महनिमयवणु
कि अन्नह सव्वउरि वीर हर्ड पुणु इक्कामणु"[२]

प्रतिमा के स्वागतार्थ अनेक पुरुषों के सवकों, छत्रों, चामरों, किन्नरों व गन्धर्वों

१- जैन साहित्य संशोधक खंड ३३, अंक ३, पृ० २४३ पद ११।

२- वही पृ० पद १४।

की देव ध्वनियों और दुंदुभि घोष के लिए इस पूजा गीत की अभिव्यक्ति देखिए:

"कुसुम वुट्ठि किं किलिल चमर किन्नर देव कुणि
स्सत्विंघ दुंदुहि निघोके संठिउ सीहासणिं"[१]

इसी प्रकार अपूर्व प्रवाह और छन्दों के अनुरणन में यह पूजा गीत बढ़ता जाता है।अलंकारों के रूप में उपमा, उत्प्रेक्षा मालोपमन, रूपक,दृष्टान्त उदाहरण आदि का सफल वर्णन है। रचना संक्षिप्त है पर गीतिमत्ता से ओतप्रोत है। जन काव्य होने से यह स्तोत्र हर जैन व्यक्ति का कंठ गान बन गया है।अन्त में कवि भरत वाक्य या फलश्रुति के रूप में प्रतिमा से यही याचना करता है कि हे स्वामी।प्रसरित मोह से मुझे बचा। राग या स्नेह को तोड़।सम्यग् दर्शन ज्ञान और चरण इन तीन रत्नों से क्रोधरूपी योद्धा का समूल विनाश कर। हे सत्यपुर केवीर! तुम्हारे मन में यदि भाव हो तो अपनी कृपा का प्रसारण कर। धनपाल कहता है कि इस लोक में से जो गया वह पुन: नहीं लौटता:-

" रक्खि सामि पसरंतु मोहु नेहुकुम तोडहिं
सम्मदंसणि नाणु चरणु भडु कोहु विहाडहि
करि पसाउ सच्चउरि वीर जइ तुहु मणि भावइ
इह वुच्चइ धणपाल जाउ जहि गयउ न आवइ" [२]

और इसी मंगल उद्भावना से गीत समाप्त होता है।पूरे स्तोत्र में कवि के उत्फुल्ल हृदय की अभिव्यक्ति एवं तीर्थ महात्म्य है। रचना का उद्देश्य तीर्थ का महात्म्य गान व प्रतिमा की स्तुति है जो धर्म प्रचार ही कहा जायगा पर उसकी अभिव्यक्ति में कवि का वाक् चातुर्य और कौशल है जो इस छोटे से धार्मिक स्तुति गान की तुलना में कुण्ठित कर देता है।

रचना के प्रमुख गुणमें कवि चातुर्य तथा मधुरता औरप्रसादात्मकता है। गीत अनुरणनात्मक है। जहाँ तक रस निर्धारण का प्रश्न है, प्रधान रूप में भक्ति

१- वही पृ० ३४२, पद १०

२- जैन साहित्य संशोधक खंड ३ अंक ३ पृ० २४३ पद १५।

रस ही सर्वत्र निष्पन्न होता है। यों उत्साह भाव का इसमें आद्योपान्त संचार है। भरत वाक्य के समय कवि का निर्वेद भाव निष्पन्न हो जाता है। रचना गेय है तथा ऐतिहासिक कथा वस्तु से सम्बन्धित होने हुए भी काव्यात्मक, तथा स्पृहणीय है। संक्षिप्तता उसका गुण है। प्रत्येक पद अपने में स्वतंत्र है। रचना मुक्तक गीति है, जिसके प्रत्येक पद में अपना अपना स्वतंत्र भाव है।

पूरी रचना रोला छंद में[1] रची गई है। यों रोला अपभ्रंश का अत्यन्त प्रसिद्ध छन्द है, जो अपभ्रंश के किसी भी गीति मुक्तक में देखा जा सकता है। निष्कर्षतः रचना साधारण होते हुए भी अनेक कारणों से महत्वपूर्ण हो गई।

। सत्यपुरीय महावीर उत्साह की भाषा ।

"सत्यपुरीय महावीर उत्साह" की भाषा के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद है। रचना १०वीं शताब्दी की होने से भाषा की जानकारी के लिए महत्वपूर्ण है। तत्कालीन भाषा का स्वरूप, उसका पुरानी हिन्दी की ओर या तत्सम शब्दों की ओर बढ़ने का प्रयास, लोक भाषाके शब्दों का उसमें समावेश तथा अपभ्रंश की उत्तरवर्ती स्थिति आदि सभी महत्वपूर्ण तत्वों का समावेश धनपाल की इस रचना में सन्निहित है। सत्यपुरीय उत्साह एक ऐसी कड़ी है जो परवर्ती अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी या देशी भाषाओं से मिलाती है। अतः भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी रचना महत्वपूर्ण लगती है। इस रचना की भाषा के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। श्री मुनिजिनविजय जी[3] तथा श्री के०का० शास्त्री[4]

१- देखिए आपणा कवियो खंड १, पृ० ४५:श्री के०का० शास्त्री।

२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४६, अंक ३ में श्री नाहटा जी का लेख-वीरगाथाकाल का जैन भाषा साहित्य।

३- जैनसाहित्य संशोधक सं० १९८४खंड ३ प्र०३ सत्यपुरीयमहावीर उत्साह परिचय पृ० २४४।

४- आपणा कवियो, पृ०३५-पर श्री शास्त्री जी लिखते हैं कि महकवि मालवपति मुंज सिंधुराज और भोज की विद्वत् सभा में अग्रणी था। इसी कवि ने १५ गाथा का सत्यपुरीय महावीरोत्साह मंडन नामक अपभ्रंश काव्य रचना है।

दोनों इसको अपभ्रंश की ही ठहराते है।पर श्री अगरचन्द नाहटा इसे शुद्ध अपभ्रंश की न मान, प्राचीन राजस्थानी से प्रभावित उत्तर अपभ्रंश की ही मानते है तथा उन्होंने इसे वीरगाथा काल के भाषा काव्यों के अन्तर्गत ही रखा है[1] कई गुजराती विद्वान इसे जूनी गुजराती की कृति समझते है एवं मुनिजी ने गुजराती समाज में जैन साहित्य की गुजराती की सबसे प्राचीन रचना ही मानकर इसका प्रकाशन किया है।[2]

यद्यपि विद्वानों ने इस की भाषा को अवश्य विवादग्रस्त बना दिया गया है, पर रचना की भाषा का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रचना प्राचीन राजस्थानी की है जिस पर अपभ्रंश के परवर्ती रूपों का प्रभाव है। साथ ही तत्कालीन प्रचलित कुछ विदेशी शब्द भी आ गए हैं। कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति पर विचार करने पर इसमें पुरानी राजस्थानी और उत्तर अपभ्रंश का समन्वय स्पष्ट परिलक्षित होता है तथा कई शब्द तो एक दम संस्कृत के ही अपभ्रंश रूप है यथा:-

पसरंत (सं०) प्रसरंत पसाउ पसाडु सं० प्रसाद
रविह (सं०) रवि कोहु (सं०)क्रोध
सामि (सं०) स्वामिन् सच्चउरि (अपभ्रंश) साचोर
(प्रा०) सच्चउर (सं०) सत्यपुर[1]

विहोडवि (सं०) विस्फोटय

उत्तर अपभ्रंश के रूपका प्रस्तुत करने वाले कुछ शब्द देखिए:-

<u>अपभ्रंश</u>:- (१) इसरनर, मनूमड, तिहुयण, जगडण, मयण, विहुपत्थइ, पच्छंडइ, नयरि,
(संज्ञाएं) माडु, गहगमइ, दिवाअड, रयणायर, मज्जि, तियलोयतिलउ, .आदि

(क्रियाएँ)(२) भिज्जइ, जाडिज्जइ, मयुषु, मिलिज्जइ, उज्वसियइ, पुच्छुत्थउवि,
विरच्चइ, पयडिज्जइ, दिज्जइ आदि।[2]

१- ना०प्र०प० वर्ष ४६ अंक ३ श्री नाहटा का लेख।
२- जैन सा०इ०,पृ० २४१-२४४।

प्राकृत के भी कुछ शब्द मिल जाते हैं:-

कुट्टकुट्ठ, कम्म, कुट्ठ, आसट्ठ, पाविट्ठ, चहुठावल्लि, सोरट्ठ,

अज्जवि, कुट्ठपडिहि, किंकिल्लि, कमणसहस्सेहि, गुणकुट्ठ, अत्थि,

तिल्लु, नत्थि कुट्ठइ आदि।

अनेक राजस्थानी शब्द की बहुलता से परिलक्षित होते हैं:-

<u>प्रा०राजस्थानी</u>

१-संज्ञा- ⎫
२-सर्वनाम- ⎬
३-विशेषण- ⎪
४-क्रियाएँ ⎭

वेण, किण, तणु, जासु, सरूवरिहि, करसु, तेरिस, जाव, ताव, होतेहि सिरि, कोइ, जिणु, कुहाड़ा, भामंडलु, सिरिमाल, जम, मण, आणंदण

मोडिय, विछोडिय, तोडहि, फोडहि, वल्लिउ करहि मिलि, रहि, माणिओ संदाणिओ, निविडिय, ताडिउ, दीसहि, सोहिय, सहवि, नमहु, उवहि, हरवि लेवि, दीसइ, पईसइ, मणइ, भावइ, आवइ आदि

तत्सम शब्दों की वृद्धि ⎫ निम्नलिखित तत्सम रूपों से यह ज्ञात हो जाता है कि कृति की भाषा अपने पुराने रूपों को छोड़ नये रूप ग्रहण कर रही है:-

कम्मूल, वासु, चहरंत, नयणिहि, सिरिमाल देसु, सौभेवक, अनु, सिरि, मिलि, करहिं, चिरकालि, वाणीसरं, मरघुरंत, मिमिलत, अंगि, सु, मोताला, सेसवय, अपर, कुसुम, अमर, गिरिवर पेहु किम आदि आदि।

विदेशी: ⎫ "सुल्तान" शब्द विदेशी है।

अपभ्रंश की उकार बहुला प्रवृत्ति यद्यपि इन शब्दों में स्पष्ट है परन्तु फिर भी उ में एक उत्तरोत्तर विकास परिलक्षित हो जाता है। यदि इसी विकसित रूप को देश भाषा या लोक भाषा के इन रूपों के उत्तर अपभ्रंश का विकसित स्वरूप कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी।

करेवि, सुमरेवि, मेलेवि, आदि शब्द अपभ्रंश के परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं और अन्यत्र प्राकृत तत्सम की भांति ही लगते हैं। भाषा के इन उदाहरणों

से ऐसा लगता है कि अपभ्रंश के दो रूप उस समय प्रचलित रहे होंगे एक स्वाभाविक और दूसरा कृत्रिम। साथ ही साथ इन शब्दों में सरलता आने का आग्रह है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि ११वीं शताब्दी में अपभ्रंश अपने अवसान पर थी।और उसमें उत्तरोत्तर पुरानी हिन्दी के स्वरूप का ढांचा निर्मित हो रहा था। अद्यावधि अन्य विधाकाओं में सत्यपुरीय महावीर उत्साह के अतिरिक्त तत्कालीन कोई प्रति नहीं मिलती अतः पुरानी हिन्दी के प्रारम्भिक रूपों को बीज रूप में इस कृति में देखा जा सकता है।

निष्कर्ष:-

इन तथ्यों पर विचार करते हुए लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि इस कृति की भाषा अपभ्रंश के परवर्ती रूपों से प्रभावित प्राचीन राजस्थानी है।राजस्थानी साहित्य के एक प्रसिद्ध विद्वान श्री नरोत्तमदास जी भी इसको प्राचीन राजस्थानी को ही स्वीकार करते है।[1]

इस प्रकार भाषा, काव्य सौन्दर्य, शिल्प तथा अन्य उपादानों का अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि यह सर्व प्रथम रचना है जो आदिकालीन रचनाओं को शीर्ष स्थान पर पहुंचा देती है, तथा इसी में ये परवर्ती अपभ्रंश के या पुरानी हिन्दी के अंकुर के रूप सुरक्षित है। अतः धनपाल की १५ गाथाओं का यह छोटा सा स्तोत्र साहित्यिक, राजनैतिक,ऐतिहासिक, सांस्कृतिक आदि सभी दृष्टियों से अपना विशिष्टमहत्व रखती है।उक्त मूल्यांकन से यह स्पष्ट हो गया कि यद्यपि विद्वानों ने धनपाल की इस रचना को अपभ्रंश की मानी है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है।इस रचना को किसी भी प्रकार विशुद्ध अपभ्रंश की रचना नहीं कहा जा सकता। यह स्पष्ट है कि रचना के शब्दों की ध्वनियों व ध्वनि मूलक प्रवृत्तियों में अपभ्रंश का प्रभाव है परन्तु यह भी स्पष्ट है कि रचना का व्याकरण पर्याप्त तद्भव व देशज शब्दों का है। ये लोक भाषायें कब और किस सीमा से प्राप्त हुई यह बतलाना बहुत कठिन है, और इसके लिए कोई निश्चित

१- ढोलामारू रा दोहा-प्रस्तावना भाग पृ० १५० (सम्पादकत्रय)स्वामी नरोत्तमदास।

सीमा रेखा भी नहीं खींची जा सकती क्योंकि इस संक्रान्ति काल में भाषा परिवर्तन में शताब्दियां लगी होगीं। अस्तु प्रस्तुत कृति को उत्तर अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी, पुरानी राजस्थानी या जूनी गुजराती की परम्पराओं का स्पष्टीकरण करने का श्रेय दिया जा सकता है। यह भी संभव हो सकता है कि शोधकर्त्ताओं को इस कृति से भी कोई पूर्व की प्राचीन कृति मिल जाय पर ज्ञान व शोध की वर्तमान स्थिति में धनपाल की यह कृति सत्यपुरीय महावीर उत्साह ही सबसे प्रथम कृति कही जा सकती है।

इस उत्साह प्रधान गीत के पश्चात् गीति मयता से युक्त और भी छोटी छोटी रचनाएं मिलती हैं। मुक्तक साहित्य के रूप में आदिकाल का यह जैन साहित्य पर्याप्त सम्पन्न है।इनगीतों के विषय धार्मिक हैं तथा इनमें इसी प्रकार के वर्ण्य विषय रखे गए हैं।आगे मुक्तक काव्य के इन विविध गीतों, स्तोत्रों तथा स्तवनों का परिचय कराया गया है।

॥ गीत ॥

जिनपति सूरि धवल गीत [१] - सं० १२७८ शाहरयण

जिनपति सूरि धवल गीत [२] - सं० १२७८ भत्तउ

गीति रचनाओं में १३वीं शताब्दी की दो प्रसिद्ध रचनाएं उपलब्ध होती हैं। ये दोनोंरचनाएं एक ही शताब्दी में लिखी गई हैं तथा इन का रचना काल भी एक है।[३] पहली रचना के लेखक शाहरयण हैं और दूसरी के भत्तउ।दोनों की गाथाएं २० हैं तथा रचना संवत् भी सं० १२७८ । रचना के पाठों में भी पर्याप्त साम्य है और विषय साम्य तो है ही। दोनों गीतों में आचार्य जिनपति के जीवन की विविध घटनाओं औरसाधना मूलक स्थितियों का वर्णन किया गया है।

१- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह: श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पृ० ६

२- वही।

३- वही पृ० १६, ८ और ९।

दोनों रचनाएं बड़ी सरस और घन भावात्मक हैं। पदावली कोमल कांत, भाषा सरल और प्रासादिक है। रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन ही उचित प्रतीत होता है। दोनों रचनाएं प्रकाशित हैं।

धवल गीत का एक प्रकार विशेष कहा जा सकता है जो विशेषतया मंगल कार्यों या उद्गारों का सूचक है। धवल गीत विशेषतया विवाहोत्सवों में गाये जाते हैं। यों विवाह और धवल को पर्यायवाची माना जा सकता है।धवल संज्ञक रचनाओं में यही दोनों गीतियां सबसे अधिक प्राचीन हैं। अतः धवल प्रबंध की परम्परा का श्री गणेश १३वीं शताब्दी से ही होता है। विवाहलों को भी अधिकतर धवल ही कहा जाता है।यों विद्वानों ने भी विवाहलो, धवल और मंगल संज्ञक को ही माना है।[1]

दोनों रचनाएं, गीत हैं। इनगीतों में अनुभूति की तीव्रता, उल्लास, भाषा गत सरलता और सरसता है। प्रांजल कोमल शब्दावली तथा सुन्दर चयन है यद्यपि दोनों १३वीं शताब्दी के शेषार्द्ध की रचनाएं हैं। छन्द अलंकार प्रवाह में अपूर्व गति प्रदान करते हैं। पदन्यास प्रासादिक योजना सम्पन्न है।दोनों गुरु प्रार्थना से प्रारम्भ होते हैं। दोनों में पाठ साम्य भी मिलता है।प्रारम्भ ही देखिए:

शाहरयण:-

वीर जिणेसर नमइ सुरेसर तस पह पणमिय पयकमले
युगवर जिणपति सूरिगुण गाइसो, भत्तिभर हरसिहि निम्मले
तिहु अण तारण सिव सुह कारण वंछिय पूरण कप्पतरो
कलिमल विनासन पाव पणासन दुरिय तिमिर भर सहसकरो[2]

भत्तउ:-

वीर जिणेसर नमीय सुरेसर तस गह पणमिय पय कमले
युगवर जिणपति सूरि गुण कंदन गुण मन गाइसो मनि रमले
तिहुअण तारण सिव सुह कारण वंछिय पूरण कप्पतरो
कलिमल विनासन पाव पणासन, दुरिय तिमिर भ (प) र सहसकरो[3]

१- नागरी प्रचारिणी पत्रिका: वर्ष ५८ अंक ४ सं० २०११ पृ० ४१८-४३६।
२- ऐ०जै० का० सं० पृ० ६ पद १-२।
३- वही, पृ० ८।

कामधेनोत्तम काम कुंभोपम , पूरण जेम चिन्तारयण

श्रीय जिण सासणि नव नव रंगिहि अतुल प्रभाव प्रगटीयकरण

दुहुजण रंजण भव दुह भंजण दंसण नाण चरित्र जुतो

सकल जिणागम सो हग सुन्दर अभिनवउ गोयम उदयवंतो

पुहवि पसिद्धउ सूरि सूरीसर चन्द कुंअर

कमल नयण मंगल कुल गंग जलवाहु जसु निरमलउए

इण कालिकालिहिं अवतरिय सुपिइए सिरि माल्हूय कुलोसिरि तिलउए

सोहन वंसिहि वयरा सारिवहिं जिणवइए सूरि महिमा निलउए

इस प्रकार जन भाषा में रचे जाने से दोनों गीतों की भाषा सरल है।काव्य रूप की दृष्टि से दोनों गीतियां सरस और लोक प्रिय हैं। भाषा का पिरव राजस्थानी मिठास,है। दोनों गीत छोटे और गेय हैं।

मधु बिन्दु गीत पद

१४वीं शताब्दी की एक सरस और गेय रचना जिन प्रभ सूरि रचित मधु बिन्दु गीत पद है। रचना अप्रकाशित है। प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है।

रचना में प्रभवतस्करा और जंबुकुमार स्वामी का संवाद है। इसमें विषय सुखों को मधु बिन्दु पद कहा गया है। कुछ उदाहरण देखिए-

कोइ पुरिसु अडवी मज्झि पडउ, वन हत्थिहिं सो दीठउ

ताहु भयंभिहि कूउं पासिउ तसु तलि अजिगर दीठउ

दीसइ तहि अनीय फुंकारिय चहुदिसिं चारि भुयंगा

मूसक वेय कुणन कुह कुव्वंति पाडुअरि मिलमति अंगा

कूव गेरहि वड चाहिर मिलिमिलि मक्खिय गण फिरि मिल्हइ

उपरि सब्व मुह मधु ताहु चिरंचिर मिल्हइ

इयइ कष्ट मज्झि पिरठ सुहड मज्झि मडइ पडइ मधु बिन्दुआ

साव सुख नरि किपि सो जिनवड़ इसउ विषय सुख अथवा

रचना में संसार की नश्वरता का रूपक कुंए में डाली पकड़ कर गिरे हुए मनुष्य के साथ बांधा है जिसकी डाली को दिन रात रूपी चूहे काट रहे है और कुंए में अजगर (मृत्यु) और डाली पर लगे छत्ते से मधु बिन्दु (सुख विषय) गिर रहे है। बाहर मत्त गज दहाड़ रहा है। जम्बू स्वामी ने इसी रूपक अन्तर्कथा के प्रभव चोर को स्पष्ट किया है।

भाषा सरल राजस्थानी है। पद सरस शैली में लिखा गया है तथा गेय है।

स्थूलिभद्र गीतम[1]

स्थूलिभद्र के सम्बन्ध में यह रचना है। रचनाकार अज्ञात कवि कृत है।यह अप्रकाशित है। रचना १४वीं शताब्दी की ही है। अपभ्रंश से प्रभावित सरल राजस्थानी है। उदाहरण दृष्टव्य है:-

" सरिस सम माकुम मसु टलिउ सयु सुणि मरहि, कर जोडिवि पाइहि पडइ
अकोसइय भणइ।
सयु भावा जिणि चरिसु मावउ गुणनिधान मुनिवर तिलउ

----- ---- ----

अनिक हाव भावदरिसन अहमहेम मग्गु नचिय परि
चक मारा चिडि करि सम्मुहिय अन्ह यय करहु

---- ---- ----

जिन सहि कंवल जिन अवण कुसकइ छडिय
सुहु मेक सयाणह अंगु सयाणय चरिसल करि जिम सामिअउं

रचना साधारण है तथा स्थूलिभद्र के चरित्र से सम्बन्धित है।

१- अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित। २- वही।

श्री वयर स्वामी गीतम्[१]

वयर स्वामी के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला यह छोटा सा गीत है।यह जन भाषा काव्य रचना ७ कड़ियों की है। रचना स्थूलिभद्र गीत की ही भांति अज्ञात लेखक की है। भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनगीतों में कथा तत्व भी मिल जाता है। भाषा का उदाहरण द्रष्टव्य है:-

"मुनि सो वंदहु वइर सामि मिलिअ सकिल साधो
हुंति संमुच्छिअ बाहु अर मिओ हुंडु धारि
राति दिवस रोवइ छमास मुनि आजु धरि
सुनंदा भणइ अम्हिं देई पुत्रो वइ लेहु तुम्हि
धनगिरि भणइ इम्हि लेइवा लेवइ देहु तुम्हिं
होइसी मामनी पछितावहउ वइ लेवि इम्हं
कंना हेडए जिणि पढिअ गृयारह अंगूत
भवि वह वंदहो वइर सामि जो जगि पवीतो

वयर स्वामी नेमिनाथ, जम्बू स्वामी तथा अनेक तीर्थों के सम्बन्ध में अनेक गीत है जिनका नाम सूची में दे दिया गया है। इस प्रकार इनगीत काव्यों से इनके संक्षिप्त और भावप्रवण होने की प्रवृत्ति स्पष्ट है।काव्य की दृष्टि से ये रचनाएं ऐतिहासिक महत्व की है।संस्कृत स्तोत्रों की भांति इनमें वह सरसता नहीं है परन्तु काव्य रूपों के वैविध्य के कारण ही इनका महत्व है।

स्तोत्र

स्तोत्र संज्ञक रचनाएं भी बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध होती है जिनमें से कुछ रचनाओं का परिचयात्मक विवरण दिया जा रहा है।शताब्दी से ही इन रचनाओं का बाहुल्य मिलने लगता है। जयसागर (सं० १४८५) ने अनेक स्तोत्रों की रचना की है। ये स्तोत्र गीतों की भांति संक्षिप्त नहीं है जिनमें से कुछ इस प्रकार

१- अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित।

चउवीस जिन स्तोत्र

यह स्तोत्र जयसागर विरचित है।कवि ने २४ जिनेन्द्रों का प्रशस्ति गान किया है। पूरी रचना वर्णनात्मक है। कुछ प्रवाहपूर्ण उदाहरण इस प्रकार है:-

"विमल महामति सुह दातार, विमल जिणेसर सेवउंसार
जिण अनंत मणमई मउमत, कउपट वंचक इंद्रिय वंत
धरमनाथ जिन धरम सुगाल पामउंमई भाडर दुक्काल
संतिनेमि समरउं समकर करई चिद्ध सेवर कयवार

--- --- ---

हिव जिन जपिउ सेवी समउ पासनाह तवियानु समउ
महावीर महिमा भंडार जो सेवइ सो पामइ धार

इस प्रकार सामान्य रूप में सरल भाषा में कवि ने चौबीसों जिनेन्द्रों को श्रद्धा स्निग्ध प्रणाम कियाहै। रचना का उद्देश्य धार्मिक है।

॥ नेमिनाथ भाव पूजा स्तोत्र ॥

पूरी रचना भाव प्रवण शैली में तीन भाषों में लिखी गई है।रचना की अनुप्रासात्मकता अपूर्व है।नेमिनाथ की पूजा को कवि ने उल्लास प्रधान शब्दावली में अभिव्यक्त किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है:-

"सुरंगा सुचंगा सुअंगा सुगंधा, भले भाव आणंद कल्लोल कंदा
भली कुसुम श्रेणीमि जउ देव देवा, करउं भाव पूजा भली सुम्ह सेवा
नवी चीरजी चोकि पहरेवि पूरी, मनोरंग संयोग्के कलस पूरी
करउं देव मइ अंगि पक्खाल याम, पखालउं महामोह मल पडल याम

---- ---- ---

मायक चोखिम वय आमाए‍ने अख अलंग कंचण गुण धरणे प्रभु पूरति अति चंग
चंपक केतकी मइ केवड़ि ते पुष्प गूंथी सूत्रिई बेवडि, सोडर कुमर सुरंग
जिम जिम देखि न कंठिहिं सोहइ तिम तिम जग मन नयण विमोहइ

सिर गिलाल मचुकुंद कंपिहिं, पाडल मइ अरविंद
दमणउ मरुयउ जूही कुंदा, वालउ बेउल कंद

--- --- ---

जय जंगम सुर तरु सरिस सेव, सेवक जन वंछिय करण देव
वरनाण सरोवर राजहंस, जादव कुल कोमल कमल हंस
तउ तिहुयण तारण तरण सूर, हउं दह दिसि पसरिय सुजस पूर

इस प्रकार पूरी रचना भाव प्रवण है। भाषा सरल एवं सरस है।कृत्य धार्मिक तथा उपासना सम्बन्धी है।

पंचतीर्थंकर नमस्कार स्तोत्र

आदिनाथ, शांतिनाथ पार्श्वनाथ नेमिनाथ आदि पांच प्रमुख तीर्थंकरों को नमस्कार करने के रुप में तथा उनके गुण वर्णन करने के रुप में कवि जयसागर विरचित "पंचतीर्थ नमस्कार स्तोत्र" प्राप्त है। रचना उल्लास प्रधान गीति काव्य है जो कुल १६ छंदों में लिखी गई है। भाषा के उदाहरण देखिए:-

" रोमविहिं जसु ऊगडइ हियडइ परमाणंद
नयण अमिय रस सींचवइ, सींचइ आदि जिणंद
माय ताय गुरु देव तउं, तूह जि मुझ आधार
तुय बिण अवर न कोई मइ, आदि नाह करि सार

--- --- ---

नमउ नेमि जिणवर रयण, चयण विहंगम धीर
सीरिय मुणि गिरिनार सिरि, जिण मांडिउं मवतीर
तीरथ मांहि सिसेहीयइ, मुणि सिरुओ गिरिनार
जसु सिरि परमय गणि हरिसु, सोहइ नेमिकुमार

कवि अन्त में रोग शोक आदि शारीरिक व्याधियों से बचाने की मंगल कामना कर काव्य समाप्त करता है। रचना की भाषा स्पष्ट सरल हिन्दी है।वस्तुतः

१५वीं शताब्दी में इस प्रकार के अनेक स्तोत्र मिलते हैं। जिनका विस्तार भय से परिचय दिया जाना सम्भव नहीं है।

स्तवन

स्तवन संज्ञक रचनाओं में मेरुनन्दन और जयसागर ने अनेक रचनाएं लिखी हैं। इन रचनाओं का शिल्प भी ठीक वैसा ही है जैसा स्तोत्र संज्ञक रचनाओं का। वास्तव में स्तोत्र और स्तवन एक ही काव्य प्रकार के पर्याय हैं इस सम्बन्ध में कुछ स्तवनों का परिचय अग्रांकित हैं:-

श्री चतुर्विंशति जिन स्तवन

अज्ञात लेखक की १४वीं शताब्दी की स्तवन संज्ञक रचना श्री चतुर्विंशति जिन स्तवन है। इसमें भी २४ तीर्थंकरों का प्रशस्ति गान किया गया है।भाषा पर अपभ्रंश प्रभाव परिलक्षित होता है। तीर्थंकरों की स्तुति बड़े उत्साह से कवि ने प्रस्तुत की है:-

" मोह महा मद भय महण, रिसह जिणेसर देव
करि पसाउ जिम होइ मम, भवि भवि तुम्ह पयसेव
भुवण तिभुवण अजिय जिण, जिणया देवयि मल्हार
भवसागरनिवडंत मह, राखि न तिहुयण सार
संभर पुत्र संभर भरिय, संभर छम्हि निहाणु
अभिनंदणु तुह पय नमवि, तुह तूठइ भविहाणु

---- --- ---

पय भवि सोहिय सिरि कमल, सुहमी नंदण देव
जय जय सामि सुपास जिण, सुहरमि रइय सेव

--- --- ---

सिरि करि अंजलि विमल जिण निज्जिय मोह गयंद
तुम्ह तुह पणमउं पायजुअ तिहुयण नयणाणंद

साथि अनंत अनंत गुण, सुयता देवि मल्हार

भवसायर बोहित्थं सम भण जय जिणधार॥

इस प्रकार कवि ने जिनवंदन प्रशस्ति में ही पूरा स्तवन लिखा है।रचनाकाव्य की दृष्टि से साधारण है।

स्थंभनेश पार्श्वनाथ स्तवन (प्रथम)

खंभेश्वर स्थित पार्श्वनाथ की प्रतिमा की प्रशस्ति रूप में प्रस्तुत स्तवन लिखा गया है। कवि का काव्य कौशल और भाषा की सरलता द्रष्टव्य है। रचनाकार जयसागर है। स्तवन का रचनाकाल १५वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। उदाहरण देखिए:-

"अमिय महारस खीरखंड घय सक्कर घोलिय

अहवा पुहु दुह आणि वाणि महु मुद्दिय घोलिय

जं निसुणे वणि भविय लोय तिस भुक्ख पणासइ

जीविय भवि पूरेइ नाह जइ धम्म पयासइ

अति कन्चण सामल छलिय काय, जे पणमइ जिणवर सुन्दर पाय

बहु कम्मिलि करइ हाछि, जिन सोहम चिरि सोहन्न रासि

--- --- ---

सोहग्ग सोह पय धीर मय संकरा, रोम भय सोग भय योग भय हंकरा

अनिल जल जलन छलछलन भय भैरवो, तायगहु आप मणि पाव अक्खैरवो

रचना अनुप्रासात्मक तथा सरस है।रचना की प्रति अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है।

स्थंभनेश पार्श्वनाथ स्तवन (द्वितीय)

इसी नाम से एक द्वितीय स्तवन भी मिलता है जो इसरचना से सरल व प्रासादिक है। यह भी जयसागर विरचित ही है।वर्णन चित्रात्मक और अनुप्रासात्मक है:-

" कंचणमय आभरणह माला, कंठिहि झम झम करइ झमाला
निरखिहि निरखिहिरंगि
मानस सरि जिमि हंस निवासी, जिम सर्वंति वणराइ विकासी,
जिम उदयाचल भानु
गरथिहिं मध्यह चिन्तामणिसइ, थंभायहिपुर सरगसरीसइ,दीसइ पास प्रकाश
--- --- ---
सोहग सुन्दर रुपिहि रुड़ड, महिमा गुणमणि मोहिम मुड़ड, पास नाह
जिणचंद
चिंतामणि जिम चिंतव आपइ, आपण जिम जग मुगतिहि थापइ,
कापइ पापइ कंद
कामि करोवरि कंटि कवोकिहिं उरवर माहि परंमुहि मोकिहिं प्रभु
केरड मन डागी

इस प्रकार दोनों रचनाएं सरल और गेय है।

श्री सीमंधर स्वामी स्तवनम्

सीमंधर स्वामि के चरित गान को कवि ने इस स्तवन में संजोया है रचना २१ गाथाओं में पूरी हुई है। रचनाकार अज्ञात है।प्रति अभय जैन ग्रन्थालय मेंहै। भाषा अपभ्रंश शब्दों से यत्किंचित् प्रभावित है। रचना सरल और चरितमूलक है जिसमें जीवन के विशिष्ट आदर्शों को चरित के रूप मेंउभारा गया है। भाषा का एक उदाहरण अलम् होगा।

"धन्न ते नयर जहि सामि सीमंधरो, विहरए भव्व जण सव्व संसयहरो
कामघट देवमणि देवतरु कलियउ सीय परिजीय हवं सामिउ हुं मिलियउ
नाण गुणि झाण गुणि चरण गुणि मोहिया, सार उवगार संसार संबोहिया
रयणि दिणि हरिस वसि थुरत आगरमणा, ताउ ममाम कायंति तिहुयण जणा
सिद्धिकर रिद्धिकर बुद्धिकर संकरा, विजय विजय अभिनभर सामि सीमंधरा
कर जुयलु जोडिकरि बयणु तु निसुणिसो, नाह जिम हेल दे पाय तुह पणमिसो
मोह भर मान भर लोभ भर भरियउ दंभभर रागभर काम भर पूरिओ

इस प्रकार कवि जीवनोद्धार के लिए अनेक शुभ संकल्पों की याचना करता है। रचना साधारण है। इसी प्रकार स्तवन संज्ञक अनेक रचनाएं हैं जिनका उल्लेख परिशिष्ट में कर दिया है।

: कलश :

तीर्थंकरों व महापुरुषों के मांगलिक पर्व, जन्मोत्सव तथा संयमश्री वरण के अवसर पर उन्हें विविध तीर्थों के जल से कलश द्वारा स्नान कराते हैं स्नान कराते समय जिन भावनाओं का उदय होता है उनको "कलश" या अभिषेक कहते हैं। तीर्थंकर प्रतिमा को आनन्दित हो कलश से स्नान कराते समय ये रचनाएं प्रशस्ति स्तुति आदि के रूप में पाठ की जाती है। कलश संज्ञक रचनाएं मुक्तक हैं तथा संख्या में अनेकों प्राप्य हैं। एक दो का परिचय नीचे दिया जाता है। इन रचनाओं में नादात्मक समूह इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। ये रचनाएं १५वीं तथा १६वीं शताब्दी तक मिलती हैं।

: श्री कल्पप्रभ स्वामि कलश :

कल्पप्रभ स्वामी नामक जैन महापुरुष की स्तुति मूलक यह रचना है। भाषा सरल है। लेखक अज्ञात है। रचना की काव्यात्मकता के उदाहरण दृष्टव्य हैं।

देव देविन्द विमिगिरि मंदरे, देव संदम्पह सामिणी सुंदरे
समय सपर्वक संडण महामंडला, मंडिया संडसु संडसा संडला

मय नई यक्नइ तित्थ जल पुरियां, सुर रव सुर पूरंत वर चूरिया
मेरु सिगंमि तुंगंमि अवठाविया देव कोडिहि कय कलस कोडीसयम

--- --- ---

महुर गायंति बहु किन्नरी सुमहुरा, लंकिया किन्न किन्नरवरा वेसरा
विउल दल कमलकेल कोमला मलकरा, किरण रमणीय रमणीय रायणवरा

इस प्रकार रचना अनुप्रासात्मक और सरस है।

शान्तिनाथ कलश

शान्तिनाथ के अभिषेक का प्रशस्ति गान है।रचना की भाषा और शब्दों की अनुरणानात्मकता और ध्वन्यात्मकता दृष्टव्य है। लेखक अज्ञात है। रचनाकाल १५वीं शती है। वर्णन की नादात्मकता देखिए-

" घण रयण रुम्य मिय कणयमय कलसिहि पुहवण करेमि लहु
पंच वन्न कुसुमिहि महिमि, हरिसिय सुर नच्चंति बहु
घुघगि घुघुगि घुगि धोंगि धोंगि धों धों गिम मद्दल
कटटिम कटटिम टिटिम टिटिम बहु पडह समगूमल
फिफिगि फिफिगि फिगि फैंगि फैंगि बाजय सज्जिय
छलके ललाल छपल छपल केसारमग बज्जिय

इसी तरह रचनाकार ने गीत को संगीत व माधुर्य प्रधान बनानेके लिए अनेक नृत्य व ध्वनिमूलक शब्दों का प्रयोग किया है। रचना की अलंकारिकता दृष्टव्य है।

आदिनाथ कलश

इस कव में भी उक्त रचना का ही अनुगमन है।कलश संज्ञक रचनाएं लगभग सभी एक ही प्रकार से लिखी गई है। प्रति अभयजैन ग्रन्थालय में है। रचना गेय व संगीत तत्व प्रधान है। रचना १५वीं शती की व रचनाकार अज्ञात है।इसमें भी ध्वनिपूर्ण शब्दों का चयन देखिए:-

" तै मदलतिवल ढकपडह कंसालई, तै भलरि करडि काहल वरसालइ
तै डुडुक टंनक बुक बुगल संखा, तै वजहि मनोहर सुर असंख्या
तै वी वेनु विनु तिवरिय सुद सवि वायहि, तं किन्नर सुंदर गंधर्व सुह गायहिं
तै घणपीण कठिन उनत घट, तिडणि, तै अमि मिस रमणि नवइ सुमवयणी
तै हाव भावविभ्रम विलास मणहरण, तै अमि सवि करतिय जिण सुण महषु"
इस प्रकार रचना जिन वचन की प्रशस्ति मात्र है।

महावीर कलश

महावीर के अभिषेक पर अनेक वाद्यों के साथ उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति से गाई हुई यह सुन्दर रचना है। नृत्य और गान का सुन्दर वर्णन उल्लेखनीय है। रचना का लेखन काल १५०० के पूर्व व लेखक अज्ञात है:-

"हहि घुटहिं घुट्टि जिकगिड़दि घुटहि घडडु घडडु धुमक्कय
भानां कि रिंड रिंड रिंड कि रिंड रिंड रिंड कराडि कि रिंड रिंड
रिंग रिंड वज्जय
कटक थोईं ताला थोईं तथीईं ताला थोईति डालिया वर सुन्नय
गिड़वुगथोंक मंगथोंक धुंगिथों मद्दल धुम्मय
अमर्म वीणा वेणु वज्जइ, कटहि के वे भम्मरे
कटरे गिड़दि मद्दला वक्व वेगिड दिमि दंदि तिमरी भमरी
इस प्रकार पूरा वाद्यों व तालों का वर्णन सभी कलश संज्ञक रचनाओं में है। कलश संज्ञक रचनाओं की संख्या बहुत विशाल है। जिनमें संक्षेप में इन कतिपय रचनाओं के ही उदाहरणों से कलश सम्बन्धी विशेष सुषमा अवश्य स्पष्ट हो सकेगी।

: कोलिका :

कोलिका संज्ञक रचनायें भी स्तवन की पर्याप्त ही है।इनमें कवियों के धार्मिक

स्तवन प्रस्तुत करने के बोल है।उल्लास के इन बोलों द्वारा कवि अपने हृदय की श्रद्धा और भक्ति का प्रकाशन करता है।इन बोलिका संज्ञक रचनाओं मे अधिकतर पूर्व रचनाओं की भांति साम्प्रदायिक या धर्म प्रशस्तियों तथा स्तवन है। इन रचनाओं में अधिकांश सं० १४३७ की प्रति से उपलब्ध है। प्रति अभय जैन ग्रन्थालय मे सुरक्षित है। भाषा में अपभ्रंश शब्दों का बाहुल्य है। बोलिका और बोली दोनों एक ही प्रकार की रचनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है।कुछ रचनाओं का परिचय निम्नांकित है:-

---

श्री वासु पूज्य बोली

रचना अप्रकाशित है।इसका पाठ सं० १४३७ की हस्त लिखित प्रति (अभय जैन ग्रन्थालय) से प्राप्त है।रचना धार्मिक तथा देव अर्चन और उपासना आदि के लिए लिखीगई है। कृति गेय है।तथा इसमे ध्वन्यात्मक शब्दों और वाद्यों का वर्णन है। वासु पूज्य तीर्थ को नमन किया गया है। आराध्य की पूजा मे साधक की पूजा विधि व उल्लासजन्य बोल द्रष्टव्य है- लेखक अज्ञात है:-

"तउ सरसि सुंदरि मणि मिलउ करि उकृष्ट करि सिणगारु
तउ गहिवि अगरु कपूरु कुसुम चंदन कस्तूरी सारु
तउ पूज रचावहि भावण धविहि अंगि मिलेवणु वंसु
तउ पडि रावले विविह करावहि सघडिमिणु नव रंगि
तउ झल्लरी ढोंढी तिवली कच्छहिरि मिलि करहि झंकारु
तउ दों दीं मिदुन्ग दुन्दुहा मादल किलकहि महु अहिसारु
तउ वजु वजु कारहि झल्लरि मण हरकंच मुंकावी ताल
तउ करर करर कोरी हुवई छमक छमक कंसाल
तउ धुम धमकइ माहव बजहि बीण वेणु महुरंग
तउ धुम धुमुर धरि मधुर करिगावहि गायण लोकहि अंग
इस प्रकार बोलिका संज्ञक रचनाओं मे भी गीत तथा वाद्यों की प्रधानता है तथा

आदिनाथ बोलिका

आदिनाथ के स्तवन के लिए कवि ने आदिनाथ पर उल्लासमय बोलों से यह ८ कड़ियों का स्तोत्र प्रस्तुत किया है। भाषा सरल स्तोत्र सरस तथा गेय है। १४वीं शताब्दी की रचनाओं में इसी प्रकार की स्तोत्र रचनाएं उपलब्ध हैं एक उदाहरण देखिए:-

" ता बापु दिखावहि जीव रक्खहि लोयह मिलियइ लंक
ता जमाभिषेउ कहहि मिलेउ उम्मूलहि दुव कंदु
ता कल समिगारिहि सावय सारिहि हिमज्जिउ रिवह जिणिंदु
ता करइ अंगिइ सरइ मुवंगइ पहिरावणी सुरंग

--- --- ---

ता नव भावा देयहि रासा, मल्हंतिय मल्हंति
ता वज्जहि देवहि देवहि घुम्मी, महुरइ वा मायंति
ता तिवलीहि छंदिहि मण आणं दिहि रंगिहि मच्चहि बाल
ता आवुंत्र सज्जिरि धंमलि वज्जह मद्दल सम कंसाल"

इस रचना में कवि ने लय ताल, रास घूमर या घुम्मुरि आदि का वर्णन किया है। अतःयह स्पष्ट होता है कि इन भावात्मक स्तवनों के गान के साथ रास और घुम्मर आदि भी होते होंगे।

जिन प्रबोध सूरि बोलिका

आचार्य जिन प्रबोध सूरि के आदर्शों, तप, प्रभाव और दीक्षाभिषेक के सम्बन्ध में यह रची गई है। पूरी रचना १२ गाथाओं में लिखी गई है।वर्णन व भाषा सरल और सरस है:-

"सिरिरविंद मयंक कउन कंठन, कुम्ह नंदण गुण धणा
सरसम्बद्द तिहुयण सविसु गज्जहि कटरि रंजिय जणमणा
सिर सोय उवर धरि सिरंतउ चंद कंति सु निम्मंल
बरिसंति बहु बहु लोय कलिमल पेडणिमक कलाकले

खेलंति संतिम्व गुरु चतुइय सन्मवाल अणुगेसरा
गायंति धवलण मायरो व्व, दुमुण अणेरजण सरा

--- --- ---

इण भणइ प्रिय गुरु साखि जिणि मोह निबुगल डाखिव
जिण प्रबोध सूरि महुएहु मज्जह सुर असुर नरसंथुव

वस्तुतः ये रचनाएं जिनचन्द्रों पट्टोत्सव के उल्लास में भी लिखी जाती थीं। रचना में अपभ्रंश प्राचीन राजस्थानी तथा तत्सम शब्दों का प्रयोग स्पष्ट है। स्तोत्र अलंकारिक है।

श्री शत्रुंजय आदिनाथ बोली

प्रस्तुत रचना आदिनाथ का गीत पाठ है। रचना आलंकारिक व जन भाषा से लिखी होने से पर्याप्त सरल है। उदाहरण देखिए:-

" जसु चंदकुंद समुज्जिल दिट्ठिहि सयलु तिहुयणु धवलिये
जसु पाय पंकय हंस जिणवुर असुर रायहिं सेविये

--- --- ---

नव कुंद बकुल कुंद बे डल केवकी सेवंतीया
कल्हार चंपक जाइ कुसुमिहिं वाणि पूज सुपरिठ्या
तहि गहिर गज्जिर संख झल्लरि थोंगि भंभक महमहइ"

इस तरह शत्रुंजय तीर्थ के आदिनाथ तीर्थंकर पर ७ गाथाओं में पूरी बोलिका या बोली लिखी गई है। रचना अलंकारिक है। रचना का प्रकृति वर्णन दृष्टव्य है।

नेमिनाथ बोली

नेमिनाथ के लिए नाट्य नृत्य गान आदि सभी का वर्णन कवि ने ध्वन्यात्मक शब्दों में प्रस्तुत किया है। उपासना व पूजा पद्धति व भक्ति गान का

काव्यात्मक वर्णन इस स्तोत्र में मिलेगा। भाषा प्रवाह पूर्ण व सरस है:-

वरकनय कलस भरि कुंड गइय भक्ति न होवहु नेमि कुमारु
कुंकुमि कप्पूरी कत्थूरी चंदणि अंगि विलेवणु सारु
रय चंपय पडुडल बेल बहल, सिरि पुपहि पूरिय रंगी
निय निय निय चडिहि सुर कवा बहु इम परि नव नव भंगी
तहि दोंदों दिहलि वज्जइ धींधीं मृदंग सुरंग
अरु क्रिडिडिडि क्रिडिडिडि क्रिडिडिडि महहि करडि रडइ बहुभंगि
जहि छं छं छं छंछा आफुज सुसरं भरं भरं भेरि
अत्यक मुर्दंगक द्रें द्रें द्रें द्रें द्रें द्रें वज्जहि चेरि

--- --- ---

कटकट टिम कट टिम टिटिम टिटिम रिम पडहुलडहु उत्ताल
छल छल छल छपक छपक कंसाल सुचंगी ताल
जहि तरूरु तुरूरु धुंगल मणहर फडयरि कुणय करि
तहि नच्चहिं नाडि धुगि धोंगिनि अपछर मधुमरिया कमकारि

इस प्रकार इसी नादात्मक वर्णन में ७ गाथाओं में यह बोली समाप्त हुई है। स्थवल वर्ग में बोलिका संज्ञक रचनाएं विशेष सरस एवं विविध वाद्यों के संगीत पूर्ण तथा आलंकारिक है। इसी तरह कई अन्य रचनाएं हैं जिनका आंशिक परिचय इनसे हो जायगा।

स्तुति विनंति

स्तुति और विनंति या वीनंती संज्ञक कई रचनाएं उपलब्ध होती है। ये रचनाएं भी जैन है तथा प्रचलित नाम हैं।इनमें भक्त के हृदय की लघुता व उसका दैन्य बहुत ही गहरी टीस व प्रार्थना बनकर अभिव्यक्त हुए है। ये रचनाएं भी उपकार प्रधान भावपूर्ण काव्यात्मक स्तोत्र है इनका उद्देश्य भी धार्मिक पुरुषों तथा जिनेन्द्रों का स्तुति गान ही है।रचनाओं की भाषा प्राचीन राजस्थानी है। ये रचनाएं अज्ञात लेखकों की हैं मूल प्रतियां जैसलमेर जैन भण्डार तथा अन्य जैन

: विरहमान स्तुति :

यह रचना भी जयसागर विरचित ही है। यह भी बहुत संक्षिप्त है। कवि ने विहमान की भांति अनेक जिनेन्द्रों को नमस्कार किया है। भाषा उक्त स्तुति की ही भांति है उदाहरण द्रष्टव्य है:-

"जयवंत महंत मकन्द करा, कलिकाल कराल कुबोध हरा
सीमंधर स्वामी पमुक्ख जिणा महविंदु समहि मुहंमिहिणा
भरहेसर कारिय देव हरे अटठोवय बक्खय सोह करे
नियवन्न पमाण सरीर धरे चउवीसई वंदउ तित्थयरे
सितुंजय आदि जिणिंद वरं गिरि नारिहि नेमि सु तित्थयरं
वीराउलि पास पसन्न मुंह जइसाया वंदई ताम मुंह
भरहेरे वय विजय मुक्का नर निब्बर निम्मिय जन्म महा
विहरंत हरंत दुरंत मया, मुक्केसर सत्तरि मेम सया"

इस प्रकार यह स्तुति संस्कृत पद्धति से लिखी गई है।रचना में अपभ्रंश का प्रभाव मिलता है।स्तुति गीतिमय है:-

---

: विनंती :

विनंती संज्ञक अनेक रचनाएं भी स्तुति की ही भांति उपलब्ध होती है ये रचनाएँ भी भक्ति का दैन्य निवेदन करती है। इनका विषय भी स्तुति की ही भांति है। ये रचनाएं नित्य प्रति पाठ धर्म प्रचार और लोक प्रियता के लिए लिखी गई है:-

महावीर वीनती

१५वीं शताब्दी की अज्ञात कवि कृत महावीर के जीवन चरित के गुणगान के लिए यह रचना लिखी गई है। पूरी वीनती तीन भागों में विभक्त है। रचनाकार जयसागर है।प्रति अभयजैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है-

श्री गिरनार मण्डन नेमिनाथ बीनती

यह रचना भी बड़ी सरस है रचनाकार जयसागरहैं। रचना अप्रकाशित है। पूरी रचना १५ गाथाओं में है। बीच में कवि ने धारा लगाकर विभाजन कर दिया है। रचना आलंकारिक व गेय है:-

" काम मद राज मद, रूप मद पूरिओ, अवि परद्रोह पर ताति अंपूरिओ
विषय सुख विषय विष, वेग उन्मत्तओ, कहवि हउ तुम्ह पय अमिय
                                        सरि पत्तओ
कारवि कृपा वेगी करि सारि करि सामिया जाणि अर्ड त्रिविह
                                        महपरियसर पामिया
पडुत मव कूपि आलंब मह दिज्जए पम तई उत्तमाचार पर्यडिज्जए
लंबणि माकंद अहि नेमि अवमन्नउ सायपियमाय संबंध पुणि पन्नओ
जलदगल गज्जि जल बुद्धिय सोहामणे, नेमि जिन जन्म कल्याण सुण सोहणे

---   ---   ---

संसार तारण, दुरिय वारण, सुक्ख कारण संगमो, गिरिनार मंडण
                                        दुरिय खंडण कज्जतुर वर जंगमो
मइ सुणिय जायव, राय नंदण, सुजइ सायर वंदिओ, सो नेमि जिणवर
                                        विजय मंडिय मोषियकक वणिविह"

इस प्रकार पूरी रचना गेय है तथा कवि ने गिरनार मंडन नेमिनाथ को संसार की गति विषय सुख वर्णन और पापों के प्रति क्षमा भावना की है। इसी भांति नमस्कार और प्रशस्ति संज्ञक रचनायें भी स्तुति प्रधानहैं। इनरचनाओं में _चतुर्विंशति नाम जिन नमस्कार तथा रिषि मंडल नमस्कारो और प्रशस्ति सज्झाय मान सम्बन्धी रचनायें प्रसिद्ध हैं। सज्झाय का एक उदाहरण देखिए:-

" कमल बणायंसरं, पुणहिउयं निम्मलं पयासकरं
मंगल कमला केलि मवमइ जिण महुद गुरुवर्द
सुयुकण पायमुले सहरसणा तेय जियलोय
धन्नाण मिले धन्ना सुरि जिण महुद सुरि बखाण

जे संसार असमं दुर्गति से इत्थ पवर भरहीय
सूरीस पायमूले चरणं सेवंति निस्संक॥

सज्झाय मूलक प्रशस्तिगान "स्वाध्याय" से बने हैं ये रचनाएं नित प्रति पाठ की जाती हैं। उक्त सब रचनाएं जैसलमेर बृहद् ज्ञान भंडार की व अभयजैन ग्रन्थालय की है।

इस प्रकार इन स्तोत्र स्तवन संज्ञक रचनाओं का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि वे विविध प्रकार की मिलती हैं। वैविध्य आदिकालीन हिन्दी जैन रचनाओं की प्रमुख विशेषता है। काव्य रूपों में विविधता शिल्प वैशिष्ट, छन्द वैविध्य आदि सभी हिन्दी जैन रचनाओं में मिल जाता है। ये सब रचनाएं भक्ति और श्रद्धा से आज भी गीत नृत्य के साथ मन्दिरों में गाई जाती हैं। विविध वाद्यों से इन स्तोत्र स्तवनों व गीतों द्वारा आनन्द की सृष्टि होती है।

काव्य की दृष्टि से बहुत कम रचनाएं ऐसी हैं जिनका काव्यात्मक महत्व हो, ये स्तवन साम्प्रदायिक दृष्टि, धर्म प्रचार, उपदेश तथा नीति रूप में बहुधा जन भाषा में लिखे गए हैं। अतः काव्य की दृष्टि से इनका महत्व साधारण है।

(अध्याय - ९)

(आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य(४) गद्य परम्परायें)

॥ आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य(४) गद्य परंपरायें ॥

॥ विषय प्रवेश ॥

गद्य और पद्य हिन्दी साहित्य की दो प्रसिद्ध विधायें है जिनमें गद्य का उद्भव कब हुआ? यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के परिशीलन से यह विश्वास तो होता है कि गद्य इतना बहुत प्राचीन काल से होने लगी थी पर इसका निश्चित रूप क्या है यह बहुत निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सका। प्रायः ऐसा सर्व विदित है कि पद्य ही गद्य से पूर्व बना था परन्तु संस्कृत और प्राकृत के अनेक ग्रन्थ गद्यों के जन्मदाता कहे जाते हैं, और इसीलिए पद्य का उद्भव गद्य से पूर्व नहीं माना जा सकता। हिन्दी साहित्य के प्राचीनतम गद्य साहित्य को प्राप्त करने के लिए सभी की दृष्टि आदिकाल की ओर उठ जाती है। आदिकाल में उपलब्ध रचनाओं में हिन्दी साहित्य की अनेक प्राचीनतम गद्य रचनायें प्राप्त हुई हैं। प्राचीनतम गद्य के स्वरूपों को सुरक्षित रखने वाली रचनाओं को जन्म देने का श्रेय इस आदिकाल को ही है।इसीकाल में सिद्ध, नाथ जैन आदि अनेक स्रोत हमें उपलब्ध होते हैं।

यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि हिन्दी साहित्य की प्राचीनतम गद्य और पद्य की अनेक रचनाओं को जन्म देने का और सुरक्षित रखने का श्रेय इस जैन वाङ्मय को है।इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि अन्य प्रकार की गद्य कृतियां बिल्कुल ही नहीं मिलती हैं पर वे इस जैन वाङ्मय से संख्या में बहुत कम मिलती है अतः इस दृष्टि से जैन साहित्य की इन कृतियों का अध्ययन अत्यावश्यक हो जाता है। यह साहित्य विशाल साहित्य है जो अनेक भाषाओं में लिखा गया है। इन जैनी साधकों ने अपने विचारों, अपनी मनोवृत्तियों और लोकोपकारक दृष्टिकोण का प्रचार करने के लिए उत्कृष्ट साहित्यिक भाषा से लेकर जन साधारण की बोलियों तक में लिखा है।मानव मात्र को अपने

विचार अभिव्यक्त करने का प्राकृतिक अधिकार होता है। अतः आदिकालीन इन उपलब्ध जैन गद्य कृतियों कृतियों में इन जैन साधकों और कवियों की तीव्रतम अनुभूतियों और अभिव्यक्ति का पूर्णतया ज्ञान प्राप्त होता है।

जैन गद्य परम्परा

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की जैन गद्य परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। गद्य की प्राचीनता का परिचय देने वाली १४वीं शताब्दी की एक जैन रचना जिनप्रभसूरि की प्राप्त हुई है। जिसमें उन्होंने देशी भाषाओं में चार नायिकाओं का संवाद दिया है। इनमें से तीन नायिकाएं हिन्दी प्रदेश की है। उनके संवादों के उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं पहले गूजरी नायिका का संवाद देखिए:-

१- प्रथमा वानवा जरी नायिका भणइ:-

अहे बाई एहु तुम्हारा देसु कवण लेखा माहि गणियइ। किसउ देसु गुजराडु सांभलि माहरी बात। पउ जु लाधउ माणुस जो जमार जो आदि मारि कांइ हारउ, प जि सम्यकत्व मूल बारह व्रत पालियहि किसा किसा बारह व्रत।---- प दशा बारह व्रत पालियहिं। आशातना टालियहिं। पूजिय श्री आदिनाथ देवता। पापनासहि शत्रुंजय सेवता। अनी किसउ वर्ण्णउ भणियइ माहरी बाइ एहु देसु गुजराति छाडी करि अनइ अनेरइ देसि किसी परि मनु जाइ। जिणि देसि बावन्न जणा चौकार १ छिबिलतणा चौकार, २ मंत्रणा चौकार ३ गुरुतणा समाचार ४ तालताल‌कर ५ आवजी ६ परवजी ७ पटावची ८ डंबावची ९ मुमलिया १० करडि ११ मल्लरी १२ महड १३ वंसु १४ मैवलतु बाइयइ। गुजरी गीत बाइयइ। तालु हाम्हणं बाजियइ नृत्यु बाइयइ है देविसी बाई किसी वर्णियइ[१]।

उक्त उद्धरण में एक गुजरी नायिका के मुंह से जो गद्य गुजराती के नाम से कहलाने का है उन्हें वास्तव में प्राचीन राजस्थानी, कहा जा सकता है अथवा पुरानी का रूप हिन्दी[२]।

इसी प्रकार मालवी का संवाद देखिए:-

१- जब मालवा देस की बावली बोलण लागी, तब अवर देस की परि भागी। विक्खु रे मोरी बहिणी। कुणि कुणि मोरा देसु काइउ वक्खाणहि। मोरा देस की बात न जाणहि।जिणि देसि मंडवगढ़ केरा ठाउ, जयसिंहदेवराउ। मयूर का थान। अवर देस का काइउ मानु काटा धूड अरु डुट्टणा। कोरा साडा अरु भूणा। ठाली अरु वाजणी। पेटिली अरु नावणी। विक्खु रे मोरी बहिणी। बलि बलि काइउ बिलवाइ। तोरा बोल्या सुवाइयइ। मालवा देस की परिनीकी सिरि की नीकी सेत चीर का साढ़ा।पूजियइ आदिनाथ युगराज। दिठे बाइकणि परिपूजियइ।

उक्त उद्धरण मालवी का है जो प्राचीन-राजस्थानी की एक बोली है। यह भी राजस्थानी से पर्याप्त साम्य रखती है। पुरानी हिन्दी की ओर इस बोली के रूप में बढ़ते दिखाई देते हैं। खेद है मालवी में लिखे हुए आदिकालीन जैन या वैदिक साहित्य की कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई।वरो बहुत सम्भव था कि आदिकालीन गद्य और पद्य के उद्भव में मालवी से भी पर्याप्त सहायता मिल सकती।

अब पूर्वी संवाद देखिए:-

१- अब पूर्वी नायिका का बोल्या सुणहुगे रे बइना। इसु कुणि वाणिकइ धीरे विहुरे मोरी बहिनी कुणि कुणि मोर देसु किसहु करहि आहि। मोरे देस कीबात न जानहि,जेहि देस ऐसे मानुस कैसे- इनकु धीरे धीरे विवेकिए। चरण बाय के मोडन बराट बरल कुम्भ कहुके जान कहुके पराण, बवा की बाम। अम्बो कुम्बो बहुत बैठक आहि। कहहु बैठक कुम्भ के मानुस तरि चोटें, ऊपरि मोटे, विचि छोटे। अब कुम्भ के मानुसतरि नान्हे ऊपरि नान्हे विचिं कुछ रूप मु मोटे आहि। अइस दीसहु हइ, जइसा कुम्भ का चौडु

इधकोदव के चावर वाइयहि।गीवु गाइयइ घुठि नीके वानिए वसहिं।

कइसे वानिए आवक्ववा।[1]

पूर्वी भाषा के इस गद्यउद्धरण से हिन्दी का बहुत साम्य स्पष्ट होता है। श्री नाहटा जी लिखते हैं कि-"हिन्दी भाषा का विकास पूर्वी भाषा से हुआ जान पड़ता है।"[2] परन्तु खड़ी बोली के बहुत निकटतम उद्धरण होने पर भी इस समय का साहित्य इस भाषा का हमें उपलब्ध नहीं होता व ब्रज भाषा में भी गद्य रचनाओं के उद्धरण बहुत बाद के मिलते हैं अतः रचनाओं की अनुपलब्धि और शोध के अभाव में पूर्वी भाषा का उद्धरण अत्यन्त महत्वपूर्ण होने पर भी इस परंपरा को विकसित न करने में अधिक योग नहीं देता। सम्भवतः इस दिशा में शोध होने पर आदिकालीन गद्य की प्राचीनतम प्रतियाँ गद्य और पद्य के रूप में उपलब्ध हो सकें।[3]

श्री अगरचन्द नाहटा हिन्दी के पूर्व प्रान्तीय सबसे प्राचीन गद्य का उदाहरण भी जैन लेखक द्वारा लिखा ही मानते हैं। वे लिखते हैं कि-"हिन्दी के पूर्व प्रान्तीय रूप का उदाहरण जैनाचार्य जिनप्रभसूरि के लिखित चार नायिका के संवाद में मिलता है वही अब तक सबसे प्राचीन हिन्दी गद्य का उदाहरण समझिए।[4]"
परन्तु नाहटा जी की इस उक्ति का परिहार १०वीं शताब्दी के एक अपभ्रंश जैनेतर शिलालेख से हो जाता है (देखिए- प्रस्तुत ग्रंथ का अध्याय-२)

जिन प्रभसूरि की उपर्युक्त रचना के अतिरिक्त हिन्दी के आदिकाल की रचनाओं का विभाजन दो कालों के अन्तर्गत किया जा सकता है:-

१- प्रारम्भिक काल (सं० १३०० - १४००)

(अ) प्रारम्भिक रचनाएं

(ब) परवर्ती रचनाएं

१- राजस्थानी वर्ष ३ अंक ३।

२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका ; वर्ष ४६ अंक ३ पृ० २०३।

३- गुजराती गद्य संदर्भ: मुनि जिनविजय जी।

४- राजस्थानी वर्ष ३ अंक ३(राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता)

(२) विकास काल (सं० १४०० - १५००)

१- प्रौढ गद्य

२- गद्य काव्य

प्रारम्भिक काल में प्रारम्भिक रचनाओं के अन्तर्गत आनेवाली कृतियां हैः

१- आराधना सं० १३००

२- बालशिक्षा सं० १३३६

३- अतिचार सं० १३४०

४- नवकार व्याख्यान सं० १३५८

५- सर्वतीर्थ नमस्कार स्तवन सं० १३५८

६- अतिचार सं० १३६-९

तथा परवर्ती रचनाओं की सीमा में आने वाली कृतियां हैः-

७- धनपाल कथा (सं० ११०० से १२०० के लगभग)

८- तत्वविचार प्रकरण-सं० १४०० के लगभग।[1]

अद्यावधि जैन गद्य परम्परा की जितनी भी प्रारम्भिक गद्य रचनाएं मिलती हैं उन सबकी प्रतिलिपियां भी १४वीं शताब्दी की ही मिलती हैं। अतः इनका जन्म काल यदि वि० १३०० से ही माना जाय तो कुछ असंगत नहीं कहा जासकता। श्री अगरचन्द नाहटा का भी यही मत है।

प्रारम्भिक काल

उपलब्ध प्रारम्भिक काल की रचनाओं का विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:-

(अ) धार्मिक कृतियां-

१- उपासना पद्धति ग्रन्थ

२- धार्मिक सिद्धान्त मूलक

१- देखिए- देवनागरी वर्ष १ अंक ३ पृ० ५८।

(ब) साहित्यिक-

(अ) कथात्मक

(अ) धार्मिक कृतियाँ

(१) उपासना पद्धति ग्रन्थ-

उपलब्ध कृतियों में सबसे प्राचीन कृति अज्ञात लेखक कृति आराधना है। इस कृति का दृष्टिकोण धार्मिक है और धर्म के प्रमुख स्तंभ उपासना से यह सम्बन्धित है।आराधना नाम से ही कृति का अनुमानतः उपासना मूलक होना स्पष्ट होता है।यह कृति पाटण के ताड़पत्रीय प्रति से मिली थी इसका प्रकाशन सर्व प्रथम सन् १९२० में बड़ौदा सेप्रकाशित प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह के सम्पादक श्री सी०डी० दलाल ने इस ग्रन्थ में कियाथा।[1] तथा इसके आठ ९ वर्ष बाद श्री मुनिजिनविजय जी ने अपने ग्रन्थ प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ में सं० १९२८ में किया।[2] इनदोनों ग्रन्थों के द्वारा गद्य साहित्य के प्रारम्भिक काल की प्रथम ५,६ रचनायें विद्वानों के सामने पिछले कई वर्षों से आ चुकी हैं।

विषय-

आराधना की वर्णन पद्धति श्रद्धालु भक्त के हृदय के विकारों के विनाश व पश्चाताप की अभिव्यक्ति का स्पष्टीकरण करती है जिससे उपासना करते समय मन में किसी भी प्रकार का कलुष न रहे। आराधिक स्वयं अपनी त्रुटियां आराध्य के समक्ष स्वीकार करता है तथा अपने पूर्वकृत समस्त पापों और मिथ्या कृत्यों पर वह इस उपासना पद्धति से आत्म ग्लानि अनुभव करता है। पंच परमेष्टि का स्मरण, सर्व जीवों से क्षमायाचना एवं आरिहंत सिद्ध साधु और धर्म इन चार महापुरुषों की शरण में जाना ही आराधना[3] का मुख्य लक्ष्य है।

१- देखिए- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह श्री सी०डी० दलाल सम्पादित पृ० ८६
२- प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ:सम्पादक मुनिजिनविजय जी पृ० २१८-१९
३- देखिए, वर्ष १ अंक ३ पृ० ५६।

विषय:- उपासना, आत्मग्लानि, पाप स्वीकृति, मानस विशुद्धि, दुष्कृत्यों का परित्याग महापुरुषों के उच्चतम गुणों का स्मरण तथा अपनी लघुता पर विचार और आराध्य को आत्म समर्पण ही इसका आराधना के प्रमुख वर्ण्य विषय है। संभवतः यह भी कहा जा सकता है कि विषय वस्तु के आधार पर ये गद्यात्मक रचनाएं कालान्तर में मद्य वर्णन की पद्धतियां हो गई होंगी।

विषय एवं शिल्प की दृष्टि से आराधना और अतिचार संज्ञक रचनाओं में पर्याप्त साम्य दिखाई पड़ता है। आराधना के कुछ उदाहरण देखिए:-

१- ज्ञानाचारि पुस्तक पुस्तिका संपुट संपुटिका टीपणा कक कवली उतरी ठवणी पाठा दोरी प्रभृति ज्ञानोपकरण अवज्ञा अकालि पठन अतिचार विपरीत कथन उत्सूत्र प्ररूपणु अश्रद्धान प्रभृतिकु आलोचहु।

२- सम्यक्त्व प्रतिपत्तिकरहु, हरिहंतु देवता सुसाधु गुरु जिन प्रणीत धर्म्मु सम्यक्त्व दण्डकु उचरहु सागार प्रत्याख्यानु ऊचरहु, चऊहु सरणि पवसरहु।

३- परमेश्वर अरहंत सरणि सकल कर्म निर्मुक्ति सिद्ध सरणि संसार परिवार समुत्तरण यान पात्र महासत्व साधु सरणि सकल कर्म निर्मुक्त सिद्धसरणि संसार परिवार समुत्तरण यान पात्र महासत्व साधु सरणि सकल पाप पटल कवल नकलंक कलिहु केवलि प्रणीतु धर्म्मु सरणि सिद्ध संघगत केवलि गुरु आचार्योपाध्याय सर्वसाधु श्रमिणी श्रावक श्राविका इहभ काइ काइ आशातना की हुंति ताहि मिच्छामि दुक्कडं।[1]

४- पंच परमेष्ठि नमस्कार स्मरहि, श्रु कुण्डि विशेषि स्मरेवउ, अनइ परमेश्वरहि तीर्थंकर देवि इसउ अर्थ भणियइ अछइ अनई संसारकणिय प्रतिभउम करिस्यइ, अनइ चतुर्विध नमस्कार इहलोकि परलोकि संपादियइ। आराधना समाप्तेति।।[2]

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ० ८६
२- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ० ८७।

भाषा शैली:-

उक्त चारों उदाहरणों से १४वीं शताब्दी की इस सर्व प्रथम कृति आराधना की भाषा शैली की विशेषतायें जानी जा सकती हैं। कृति की भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुत प्रचुरता है पर बहुते हुए अपभ्रंश के शब्दों की भी कमी नहीं है। गद्यांशों को देखने पर लगता है कि वाक्य अत्यन्त लम्बे और विराम दूर दूर पर हैं अतः वर्णन की यह शैली पूर्णतया समासप्रधान कही जायगी। अनेक शब्दों को एक साथ मिलाकर कहा गया है। जहां तक कृति में उसके विषय के विवेचन सम्बन्ध है उक्त दूसरे और तीसरे उदाहरण इस पर पर्याप्त प्रभाव डालते हैं।

यद्यपि इन उदाहरणों की भाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक के पास वर्णन का सौन्दर्य तथा शब्दों की कोमलता नहीं है पदावली का चयन भी रुक्ष सा है। परन्तु कवि की काव्यात्मकता से उसमें एक अपूर्व प्रवाह अवश्य परिलक्षित होता है। अतः वर्णन शैली वर्णनजन्य सौकर्यरहित व बोझिल बोझिल सी जान पड़ती है। पर शैली की अनुप्रासात्मकता पदों का प्रवाह और शब्दों की नादात्मकता लोम विलोमता तथा अपूतपूर्व सन्तुलन देखिए:-

" दृष्ट अदृष्ट, ज्ञात अज्ञात, श्रुत अश्रुत, स्वजन परिजन मित्र शत्रु प्रत्यक्ष परोक्षि जैकेइ जीव चउरासी लक्ष योनि अथवा चतुर्गति की संसारि भ्रमंता मई दुखिया वंचिया संतापिया हंसिया निंदिया किला मिया वामिया पाडिया व्रकिया भविभवांतरि भवशति भवसहसि भवलक्षि भवकोटि वनिभवनि काई तीह सर्वहई मिच्छामि दुक्कडं।" सार्थक और विपरीतार्थक शब्द युग्मों की योजना कितनी असाधारण है शब्दों में संस्कृतमयता होते हुए भी अपभ्रंश की प्रभाव सर्वत्र है और साथ में प्राचीन राजस्थानी भाषा का भी। इन्हीं सब कारणों से कृति में एक सरसता और सरलता आ गई है।

१४वीं शताब्दी की गद्य की इन प्रवृत्तियों के आधार पर यह कहा जासकता है कि यद्यपि इस युग में गद्य की प्रवृत्ति हुई परन्तु ये रचनायें अधिक नहीं प्रतीत होती। इनमें स्वतंत्र रूप में कथा आदि नहीं है। आराधना अतिचार बालशिक्षा आदि कृतियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये रचनायें

टीकायें और टिप्पणियाँ मात्र हैं। परन्तु इन से भाषा का तत्कालीन स्वरूप सुरक्षित अवश्य है। १४वीं शताब्दी की काव्य कृतियों की भाँति इन गद्य कृतियों से भी हम तत्कालीन भाषा के स्वरूप की जानकारी अधिक कर सकते हैं। कारण यह है कि यदि पद्य में तो भाषा के प्राचीन स्वरूपों की रक्षा जान बूझकर भी की जा सकती है परन्तु गद्य के द्वारा तत्कालीन पर्वों आदि के द्वारा तथा जैन प्रचलित विचारों के द्वारा इन साधारण गद्य रचनाओं में गद्य के स्वरूप अधिक सुरक्षित मिलेंगे। ऊपर जो उदाहरण आराधना में से दिए गए हैं, उनसे स्पष्ट है कि लेखक ने समासान्त पदों का प्रयोग किया है तथा साथ ही अनुप्रासात्मिक या प्रासानुप्रास शैली का भी प्रयोग है। अतः इनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लेखक ने प्रौढ गद्य लिखने का प्रयत्न किया है। इनमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य है। तत्कालीन जन भाषा के कुछ उदाहरणों का उद्भव संस्कृत के आधार पर देखा जा सकता है।यथा सं० कृता-किया।सं० मिथ्या-मिच्छा। सं,युष्मे,तुम्हि,सं० दुष्कृतं,दुक्कडं। सं० येन जिणि। ये रूप पुरानी प्राकृत या अपभ्रंश के हैं। इसके पश्चात् प्रथमा और द्वितीया में प्रयुक्त उ प्रत्यय तथा क्रिया पदों में कृदन्त रूपों के इ तथा इउ प्रत्यय प्रयुक्त किए गए हैं।

अनेक शब्दों में प्रयोग भी मिलता है यथा- हवमि, पाठ, पांच, ईह, तणइ, लिखइ, पनर, अढार, करावमि, तुम्हि, अनई, आदि। इनसे कहा जा सकता है कि भाषा के ये संक्रांति कालीन रूप हैं जिनका यह विकसित प्राचीन राजस्थानी स्वरूप है। उक्त उद्धरण पत्रकों देखा जा सकता है। इस रचना से यह ज्ञान होता है कि उस समय प्रौढ गद्य लिखने का अवश्य ही प्रचलन रहा होगा।

यद्यपि आराधना टिप्पणी की भांति एक छोटी सी रचना है परन्तु फिर भी गद्य को अपनाने वाले जीवों को रखने का श्रेय इसी को रहेगा। उपासना प्रधान रचना होते हुए भी धार्मिक प्रचार के उद्देश्य से लिखी हुई होने पर भी आचरण की पवित्रता में पूर्ण निष्ठा सिद्ध करने वाली कृति है।

कृति का लेखक अज्ञात है आराधना की प्रति गुजरात प्रदेश में ही मिली है जो वास्तव में प्राचीन राजस्थानी का ही प्रदेश था। हिन्दी साहित्य में

गद्य का उद्भव करने वाली यह प्रथम कृति कही जा सकती है। कृति के वर्ण्य विषय, ताड पत्रीय पौराणिकता, आचारगत पवित्रता तथा उपासना की विधियों और वर्णन शैली के आधार पर यह अनुमानतः निर्णय किया जा सकता है कि इनका कर्त्ता अवश्य ही कोई तपस्वी साधक विद्वान कवि और जनसेवी लोकोपकारक जैन साधु रहा होगा।

जो भी हो, कृति साधारण होते हुए भी सर्वांशतः महत्वपूर्ण है।

२- धार्मिक सिद्धान्त मूलक:-

कुछ सैद्धान्तिक कही जाने वाली इसी काल की कृतियों में निम्नांकित तीन कृतियों को लिया जा सकता है।

१- अतिचार[1] - सं० १३४०

२- अतिचार[2] - सं० १३६९

३- तत्व विचार प्रकरण

जहां तक इन कृतियों के नामकरण का प्रश्न है अतिचार से इनका विषय स्पष्ट होता है।सम्भवतः अतिचार शब्द से दोषों का परिहार परिलक्षित होता है। यह भी आचरण सम्बन्धी वर्णन प्रस्तुत करने वाली ही कृतियां है। दोनों कृतियां सैद्धान्तिक हैं और इनके वर्ण्य विषय भी नैतिक मनोवेगों से सम्बन्धित होने के कारण धार्मिक है। प्रथम अतिचार जरसा में लिखे जाने वाले ताड़पत्र में से लिया गया है।[1] तथा दूसरा अतिचार सं० १३६९ में लिखित ताड़पत्र की रचना है।

जहां तक अतिचार संज्ञक रचनाओं के वस्तु शिल्प का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि ये रचनायें धर्म के सिद्धान्तों का विधिवत् पालन करने के नियमों का प्रतिपादन करती है।आचार में संयम भंग या किसी नियम का अतिक्रमण ही अतिचार कहलाता है जिसके नियम भंग में अति का स्थान प्रमुख होता है

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह- श्री दलाल - पृ० ८८

२- प्राचीनगुर्जरगद्य संदर्भ - मुनि जिनविजय पृ० २१९।

आराधना और अतिचार-

ये दोनों गद्य रचनाएं पर्याप्त समनार्थक हैं अतिचार सं० १३४० में लिखी ताड़पत्रीय रचना है।समानार्थक ही नहीं, इनके वर्ण्य विषय और शैली शिल्प में भी पर्याप्त साम्य है।अन्तर सिर्फ इतना ही है आराधना में उपासना की विधियों पर प्रधान रूप में विचार किया गया होता है और अतिचार में आराध्य व आराधना के सैद्धान्तिक तत्वों का। दोनों धार्मिक कृतियां हैं तथा ऐसी कृतियों का मन्तव्य स्पष्टतया धर्म प्रचार ही कहा जायगा।

इस जिस प्रकार आराधना में साधना और आराधना की विविध क्रियाओं व उपकरणों आदि की विधियां स्पष्ट की गई होती हैं तथा धर्म की यह एक ऐसी स्थिति विशेष होती है जिसमें आचारों की श्रेष्ठता स्पष्ट की जाती है और साधक को अतिचारों से एक दम दूर रहने का एक महत्वपूर्ण सुझाव होता है। पापों के १८ स्थानों, एवं गुह्य रहस्यों का प्रकटीकरण, दुष्कार्यों पर पश्चाताप तथा सत्कार्यों आदि का विवेचन आदि आराधना में होता है।[1] अतिचारों में ज्ञान दर्शन तप चारित्र्य और वीर्य- इन पांच आचारों और बारह व्रतों के दोषों की आलोचना की जाती है।श्री नाहटा जी लिखते हैं कि "आज भी पाक्षिक चतुर्मासिक एवं संवत्सरिक प्रतिक्रमण के समय यह अतिचार लोक भाषा में बोला जाता है जब कि प्रतिक्रमण के अन्यसूत्र अधिकांश प्राकृत में हैं।"[2]

जहां तक अतिचार केवल दोनों कृतियों में वर्णित गद्य की भाषा का प्रश्न है वह आराधना के समान ही है।अतिचार का एक उदाहरण देखिए:-

> कालवेला पढ़इं विनय हीन बहुमानहीणु, उपधान हीणु गुरुनिण्हव अनेरा कन्हइ पढ़इं,--- ज्ञानो पकरण पाटी पोथी कमली सांपडं सांपुड़ी वाकालत पगु लागइ, थुंक कागल पढतां प्रद्वेष मच्छर अंतराइ

१- आराधना प्रा० गु० का०, पृ० ८९

२- वैश्वानर वर्ष १ अंक ३ पृ० ५७।

हर्ड कीधइ हुई तथा ज्ञान ज्ञब्यु भविष्यु उपेक्षितु प्रज्ञापरिाधि विणास्य विणासितर्ड उवेक्ष्यं हुंती सविस सार संभाल्न कीधियइ, अनेरइ ज्ञाना चारिइ, कोइ अतिचार हुइ सुक्ष्मबादु मनि वचनि काइ, पचदिवस माहि तेह सवहि मिच्छामि दुक्कडं।[1]

उक्त उद्धरण में अपभ्रंश का उकारात्मक प्रवृत्ति स्पष्ट है। उद्धरण में तत्सम शब्द अधिक है पढ़ये (पढ़ा) उवेक्ष्यं (देखा) तथा करंता, पढ़ंता, गुणता आदि वर्तमान कृदन्त आज भी राजस्थानी में प्रयुक्त है। शब्दों के नये रूप भी उल्लेखनीय है उदाहरणार्थ -सातमइ, लागउ, पानि, आगलइ, अंगजिल, कीधी, केलवणां, सोपुड, मोटी पीचउ आदि। माणि शब्द सानुनासिक है, जो आज भी "मे" तृतीया के एकवचन में सानुनासिक है" इकार" प्रवृत्ति प्राचीन है ए के रूप में प्रयुक्त शब्द नये है।

इसी प्रकार सं० १३६८ में विरचित अतिचार का उद्धरण उल्लेखनीय है। व्यंजनकूट, अक्षर कूट कानइ मात्र आगलउ, ओछउ देव वंदणइ, पडिक्कमणइ सज्झाओ करतां पढ़तां गुणता हुओ, हुइ, अर्थकूट तदभय कूट ज्ञानोपकरणि पाटी पोथी ठवणि सांपडा सांपडी पति आशातना पगुलागउ पढ़ता गुणतां प्रद्वेषु मच्छरू अंतराइ हुई कीधई हुई मबसमलावइ, माहि तेह मिच्छामि दुक्कडं[2]

इसमें जो उकार है वह अपभ्रंश प्रवृत्ति के कारण है।कुछशब्दों जैसे सं० स्वाध्यायक/सज्झाओ और मूलतः हुओ में उ का वर्तमान राजस्थानी मे- याहिन्दी स्वरूपहो गया है। प्राचीन राजस्थानी के अनेक शब्द थाहोरि, कीधइ, आठमि, अम्हारउ,कीधी, लिखाब्या, राडि,कुडी,दुक्कडं उवरउ, अण मोकलाविउ दृष्टव्य है। अपभ्रंश की लाक्षणिक प्रवृत्ति अभ्युदय काल में जाते जाते एकदम घिस गई ऐसा इन उद्धरणों से प्रतीत होता है।

१: प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ० ८७

२- वही पृ० ९११

दोनों कृतियों में अपभ्रंश के तद्भव व प्राचीन राजस्थानी या पुरानी हिन्दी के शब्दों का बाहुल्य देखा जासकता है। दोनों कृतियों के दो उदाहरण यहां पर्याप्त होंगे:-

१- रयत्याग्रु, काय किलेशु संलेखना कीधी नहि तथा प्रत्याख्यान पकाखणा विपरिणहुइ साहमी रिथि पौरिसि भंगु अतिचार नीविम आंबलि उपवासि की घर विराधई सचित्त पाणीउ पीधई हुयइ पद्य विवसमांहि।[१]

उक्त उदाहरण में अधिकांश शब्द प्राचीन राजस्थानी के हैं दूसरा उदाहरण व्रत, मृषावाद तथा विरमण के अतिचार से सम्बन्धित है।

२- मृषावादि- सहसाक्कारि आलु अभ्याख्यानु दीधउं, रहसमंत्र भेद कीधइ, मृषोपदेश दीधउ, कूडउ लेखु लेखिउ, कूडि साखि थापणि मोसउ कुणइ इसउ राठि मेठि कलहु मिठा कुकोइ अतिचरइ मृषावादिवृति भवसभलाइमाहि हुइ मिथिव मिथिध मिच्छामि दुक्कडं[२]

३- इन हिया माहिं सम्यक्त्व धरउ, अरिहंत देवता,सु साधु गुरु जिन प्रणीतु धर्म, सम्यक्त्व दंडकु उच्चरउ, हिव अठार पाप स्थानक वो सिरावउ[३]।

आराधना की भाषा से तुलना करने पर इन दोनों अतिचारों को भाषा की भाषा में बहुत ही अन्तर स्पष्ट होने लगता है।उक्त दोनों अतिचार संज्ञक रचनाओं में समास प्रधान शैली कम होती गई है। वाक्य छोटे, सरल और प्रवाह लिए है।भाषा में अधिकांश शब्द हैं प्राचीन राजस्थानी के है।यह गद्य थोड़े प्रयास से ही सरल गद्य कहा जा सकता है।या वर्ण्य विषय धार्मिक होने से भले ही थोड़ी कठिनाई उपस्थित हो सकती है परन्तु जहां तक गद्य की सरलता और शब्दों में सौष्ठव का प्रश्न है वह सर्वत्र परिलक्षित हो जाता है कि गद्य की सरलता और सुगठित वाक्य योजना तथा प्राचीन राजस्थानी शब्दों के बाहुल्य की दृष्टि से ये दोनों रचनाएं आदि कालीन हिन्दी जैन साहित्य की बहुत ही महत्वपूर्ण रचनाएं मानी जायेंगी।

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ० ८८

२- वही,पृ० ८९।

३- वही ग्रन्थ, वही पृ०।

॥ तत्वविचार प्रकरण ॥

प्रारम्भिक काल की परवर्ती रचनाओं के अन्तर्गत आने वाली धार्मिक सिद्धान्तों की पोषक गद्य साहित्य की एक बहुत ही सुन्दर कृति-तत्व विचार प्रकरण है। इस कृति का रचना काल सं० १४०० के लगभग है। इसप्रति को प्रकाश में लाने का श्रेय श्री अगरचन्द नाहटा को है।[1] लेखक को यहकृति भी उन्हीं के सौजन्य से प्राप्त हुई। श्री नाहटा को यह रचना बीकानेर के बड़े ज्ञान भंडार की सूची बनाते हुए अभयसिंह भंडार में जिनप्रभ सूरि परम्परा की २३० पत्रों वाली एक प्रति में लिखी हुई मिली।

तत्व-विचार इनगद्य कृतियों में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है।इसका समय १४वीं शताब्दी निश्चित रूप से होना चाहिए क्योंकि यह रचना जिसमें मिली है वह प्रति १५वीं शताब्दी में लिखी हुई है और इस संग्रह में अधिकांशतः जिनप्रभसूरि जी तक की ही रचनाएं उपलब्ध होती है जिनका रचना काल १४वीं शताब्दी है।

तत्व विचार प्रकरण संग्रह की प्रति के १३५ से १३८ पत्रांको में लिखी हुई है।इस संग्रह में १३वीं १४वीं शताब्दी की अनेक पद्यबद्ध रचनाएं रास, चतुष्पदिका, द्विपदिका, भास, दोहक आदि महत्वपूर्ण रचनाएं मिली है। तत्व विचार में धर्म के कुछमहत्वपूर्ण अंगों का प्रकाशन मिलता है श्रावकों के लिए नियम, साधकों के लिए व्रत तथा त्रेसठ शलाका पुरुष चरित्र तथा त्रैलोक आदि का वर्णन है। श्री नाहटा जी ने लिखा है कि "इस ग्रन्थ में श्रावक के १२ व्रत जीव आदि नौ पदार्थ, देव गुरु धर्म त्रिषष्ठि शलाका पुरुष और त्रैलोक्य आदि का वर्णन है।[2]"

गद्य के वर्ण्य विषय को समझ लेने के बाद इस कृति के भाषा विषयक अनुशान व महत्व पर भी विचार करना अत्यावश्यक है। नीचे इस कृति के कुछ गद्यांश उद्धृत

१- त्रैमासिक राजस्थान भारती, भाग ३ अंक ३-४ पृ० ११७-१२७

२- वही, पृ० ११८।

किए जा रहे है उनके आधार पर इसकी गद्य के क्षेत्र में सरलता, स्पष्टता, और हिन्दी गद्य साहित्य में योग स्पष्ट होगा:-

एउ संसारु असारु, रत्न-मंगरु, अणाइ चउगईउ।अणोरु अपारु संसारु। अणाइ जीव --- पुणु मनुष्य गति। पुणु देव गति। ईम परिभरि-भमता जीव जाति कुलादि गुण संपूर्ण दुलगु पामुख्उ जनगु। सर्व्वहीं भव मद्धि महा प्रधानु--

प्रश्नवाचक शैली में कृति के उपदेशों की सरसतादेखिए-

२- सोइ धर्मु किसउ भणियइ? दुर्गति पड़ता प्राणिआ धरइ सुधर्मु भणियइ सोइ कति विधु होय- दुविधु प्रथमु यति धर्मु। बीजउ श्रावकु धर्म। यति किया भणि यहि? प्रतिमा चारित्रिया।अढ़ार सहस्त्र सीलांग धारक। पंच महाव्रत पालक।

श्रावक किसा होहिं? श्रृणोति श्रावकः प्रतियापापि धर्मु सांभलिहिं। वानु अनिबस्तु श्रवहि।ए श्रावक भणि जहि।।

श्रावकों की परिभाषा व कार्यों के स्पष्टीकरण के बाद लेखक ने धर्म के भेदों, पांच व्रतों और जीव कैसे हो आदि का विश्लेषण किया है:-

३- साइ श्रावक धर्मु केते भेदे? बार भेदे। पांच अणुव्रत।त्रिण्णि गुणव्रत। चारि शिक्षाव्रत। जीव किसा होहि? चितु चेतना संसा वाई हुइ ति जीव भणियहिं। ते पुणु अनेक विधहुंहि। इसी पुणु पंच विधु अधिकारु- एकेन्द्रिय बेइंद्रिय, तेइं द्रिय, चउरिंद्रिय पंचेन्द्रिय-- बादर ति मोकला।बेइंद्रियादिक बादर। संकल्पजनि त्रवनि काहइ न हणउ न हणवउं। आरम्भु सापराधु मोकलउ। पउ पहि लउ अणुव्रतु।।७।।-- चउथउ व्रतु- मैथुनु न सेवउ --- एक विध एक विधि मनुष्य सउं मैथुनु ना सेवउं। स्त्री पर पुरिस परिहारु पुरुष हुतां स्वदार संतोष परदार वर्जनु पउ चउथउ अणुव्रत ।।७।।

भौम परिशोष आहार और श्रावक धर्म और अहिंसत देवता के विषय में गद्य के बहुत ही सुन्दर उदाहरण देखने को मिलते हैं:-

४- भोग परिभोग व्रतु द्विविध भोजनत कर्मत जं भोजन।तताई दुविधु भोगुधु एक बार भोगविय। आहार, तंबोलु,फलु, विलेपनु।परिभोग जं पुनु पुनु भोगवियइ। भवन विलया।आभरण वस्त्रादिकु --- सर्वहि परिभोगु निवेध कीजइ।

५- एउ बारह विध श्रावक धर्म होइ। धर्म सम्यक्त्व मूलु।तं किसउ? अरिहंतदेवो गुरुणो सुसाहणो जिणमयं महापकायं।

६- अरिहंत देवता किसउ होइ? चउत्रीस अतिशय संयगत्तु अष्ट महाप्रतिहार्य कृत शोभु अष्टादश दोष रहितु।नीरागु।निर्दोषु।सर्वज्ञु।।और अंत में कृति का उद्देश्य तथा उसकी मुख्य संवेदना निम्नांकित गद्यांश द्वारा समाप्त होती है:-

७- बारहे भेदे तपु कीजइ। सतरहे भेदे संजमु पालियइ। आठप्रवचन माता उपयोगु दीजइ। रजोहरणु। मुहुती।गोच्छु।पडिगहउ धरइ ।।छ।।

एयं तत्त विचारं रइयं सुय सागराइ उद्धरियं

थोवक्खरं महत्थं भव्वाण मणुग्गहट्ठाए ।।छ।।

तत्व विचार प्रकरणं समाप्तमिति ।।छ।।

उक्त सभी उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृति धर्म प्रचार, चरित्र संयम और शुद्धाचार के परिपालनार्थ लिखी गई हैसाथ ही दान, श्रावक, व्रत, अरिहंत आदि मूल बातों की सरल व सम्यक परिभाषायें भी लेखक ने दी है। अतः स्पष्ट है कि लेखक ने यह रचना जन साधारण के लिए लिखी है।

साथ ही जैन धर्म व दर्शन की कुछ कठिन बातों को भी कवि ने जन साधारण के लिए सुलभ बनाने का उत्तम प्रयास प्रश्नोत्तर शैली को अपना कर किया है।

प्रस्तुत रचना का वर्ण्य विषय धार्मिक होने से ही इसमें विभिन्न तत्वों का लेखक ने विश्लेषण किया है।उसकी पद्धति पहले प्रश्न रूप में एक सूत्र रख कर उसकी व्याख्या करने की है।

तत्व विचार प्रकरण में हमें कोई भी कथा या श्रृंखलाबद्ध वर्णन उपलब्ध नहीं होते और उपलब्ध गद्य में एक उत्कृष्ट गद्यात्मक लालित्य का अभाव है

परन्तु वर्ण्य विषय अत्यन्त अधिक कठिन होने पर भी लेखक ने बोलचाल की भाषा में उसे समझाकर जन साधारण के लिए सुलभ बनाया है।

भाषा:-

जहां तक तत्व विचार की भाषा निर्णय का प्रश्न है यह बहुत ही सरलता से कहा जा सकता है कि यह सरल गद्य है।उपलब्ध गद्य रचनाओं में एक क्रमिक विकास इन कृतियों से स्पष्ट कियाजाता है और यदि आराधना से लेकर तत्वविचार प्रकरण की भाषा का एकतुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया जाय तो उसमें कहीं दुरुहता तथा इसमें सरलता की ओर आने का प्रयास परिलक्षित होगा। इस रचना के पाठ को थोड़े से प्रयास के बाद हिन्दी के सरल गद्य की भांति पढ़ा जा सकता है। शब्दों में समान संतुलन, शब्दसमूहों का सुन्दर निर्वाचन भाषा में प्राचीन रूपों और क्रियाओं के साथ नई उत्क्रांति, तत्सम शब्दों के साथ प्राचीन राजस्थानी या गुजराती शब्दों का बाहुल्य व प्रभाव आदि सभी गुण इस रचना में है।उक्त उद्धरणों में इन बातों सरलता से देखा जा सकता है।

(ब) साहित्य गद्य

धनपाल कथा[१] (११:११वीं शताब्दी)

कथात्मक गद्य की परम्परा को पुष्ट करने वाली कृतियों में बीकानेर के भण्डार से उपलब्ध हुई एक छोटी सी कृति-धनपाल कथा- मिलती है।धनपाल संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों के एकल अधिकारी विद्वान थे। इनके प्राकृत अपभ्रंश के अनेक मौलिक ग्रन्थ तथा टीकायें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत कृति को प्रकाश में लाने का श्रेय श्री अगरचन्द नाहटा को है।नाहटा जी ने इसे राजस्थान भारती में प्रकाशित किया।

रचना की कथा वस्तु अत्यन्त सरस और मौलिक है।इस कथा में वर्णित छोटी सी घटना ने महाकवि धनपाल के जीवन में असाधारण परिवर्तन उपस्थित कर दिया। किस प्रकार उनकी तिलकमंजरी कथा को अग्नि की भेंट चढ़ा दिया गया।धनपाल के स्वाभिमानी व्यक्तित्व पर राजा की असामयिक अप्रसन्नता ने

सारे ग्रन्थ को अग्नि शरण कर दिया। ग्रन्थ अग्नि शरण हो जाने के बाद किस प्रकार वह पुनः लिखा गया, इसी सरस कहानी को प्रचलित जन भाषा में कवि ने प्रस्तुत किया है।

ग्रन्थ वाली इस घटना के बाद कवि धनपाल राजाभोज से रूठकर सत्यपुर (सांचोर) चले गए और वहीं उन्होंने महमूद गजनवी के महावीर की मूर्ति पर आक्रमण करने पर कवि ने परम उत्साह से -सत्यपुरीय महावीर उत्साह (सं० १०८१) में लिखा। कहते हैं कि भोज का दरबार धनपाल के बिना दरिद्र हो गया। पुनः धनपाल को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया गया। बहुत संभव है कि धनपाल ने पुनः वहीं से लौटकर ही अपने ग्रन्थ नष्ट करने के मनस्ताप को गद्य के रूप में वाणी दी हो। रचना का समय अनुमानतः ११वीं १२वीं शताब्दी का संधिकाल रहा होगा।११वीं १२वीं शताब्दी की यह रचना तत्कालीन गद्य की सम्पन्नता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करने में सक्षम है।गद्य की सम्पन्नता के कुछ उद्धरण द्रष्टव्य देखे जा सकते हैं:-

(१) उज्जयनी नामि नगरी तहिठे भोजदेवु राजा। तीयहि तणइ पंचह सयह पंडितह माहि मुख्यु धनपाल नामि पंडितु। तीयहिं तणइ घरि अन्यदा कदाचिम साधु विरहिम निमित्तु पइठा।पंडितहणी भार्यह भीजा दिवसहणी दधि लेव ऊठी।भीजई काई तिणि प्रस्तावि ग्रहिया विहराववा वारी केई नूईतउ ग्रहिया भणियउं। केता दिवसह भी दधि।तिणि ब्राह्मणी भणियउं, भीजा दिवसहणी दधि ।

(२) ग्रहिया हीला भीखरता पंडित धनपालि गवाक्षि उपविष्टि हूंतइ दीठा चिंतवियउ किसइ कारणि हाला गवाक्षि उपविष्टि हूंतइ दीठा। चिंतविउ किसइ कारणि हाला भीखरिया पंडियाणी दधि किमइ छइ। उत्कंठ गवाक्ष हूंतउ ऊतरि महामुनि समीपि आवियउ।महामुनि ग्रहिया। कहेसु। किसइ कारणि दधि न विहरु।महामुनिहि भणियउ। भीजा दिवसहणी

१- देखिए राजस्थान भारती-भाग ३ अंक ३ जनवरी,१९५१,पृ० ९३-९६ पर श्री अगरचन्द नाहटा का धनपाल कथा-शीर्षक लेख।

दैवि न उपगरी।पंडितु भणइ, किसउं बधि मांहि पुण पूमरा छई?
तउ महामुनि भणइ फूलिणि हूयइ।

(३) तहिंवार धनपाल पंडित प्रतिबोध हुयउ। परम श्रावक हुयउ।तउ तिणि श्रावक विधि कीधी अनइइसउ अभिग्रह कीयउ, तीर्थं गुरु देव मूकिउ। अनेरउ इणि जीभ करिउ स्तवउ नहीं।अन्यदा परमेश्वर रुषभनाथहणउं चरितु कीयउ। ब्राह्मण जाइउ भोजदेव राजा आगइ कहियउं। भोजदेव रइ पुस्तक अणाविउ। वाचियउं। भणियउं, पंडितराज चरित्तु अपर विशिद्धघाओ।पुणु गहिंठे रुषभनाथु, पातियउ छइ तिणि स्थानकि महेश्वरु थापि।धनपाल पंडितु भणइ, तीर्थं गुरु देवु मूकिउ अनेरउ न स्तुवं।

(४) भोजदेवु राउ अति आग्रहि लागउ। धनपाल पंडित रीस चडी। सीयालउ हूंतउ। सगडी बलती हुंडीयहि मांहि घातियउं।भोज देव राजा बांधा पुस्तकु बालियउं। बइठा ऊठिया राति कहिठे पंडियाणी पुछियउ, किसइ कारणि पमालिवि करउ? धनपाल पंडिति भणियउ परमेश्वर हणउ चरित्तु कीयउ अनइबालियउ। तउ कष्टु।तिणि भणियउं, तुम्ह करता मो केताहि एकि श्लोक आविया।पंडितु भणइ कहि।पंडियाणी जेतला पद आविया तेता कहिया।पंडिति केतउं एकु चरितु रुषभनाथ हणउं कीयउं।–

उपर्युक्त उद्धरण से रचना की भाषागत सरलता, सरसता तथा सौन्दर्य का अनुमान लगाया जा सकता है। हिन्दी साहित्य की कथात्मक रचनाओं की परम्पराओं में धनपाल कथा का स्थान सर्वप्रथम माना जा सकता है। साथ ही अद्यावधि प्राप्त हिन्दी जैन गद्य परंपरा की रचनाओं में इस कृति को गद्य की प्राचीनतम और सर्वप्रथम माना जा सकता है।

---

(२) विकास काल

गद्य के प्रारम्भिक काल के उपलब्ध होने वाली इन रचनाओं के पश्चात् गद्य साहित्य का विकास काल हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है।यह काल गद्य साहित्य का उत्कर्ष काल या स्वर्ण काल कहा जा सकता है। उत्कर्ष काल की पूर्वोल्लिखित गद्य कृतियों के अतिरिक्त इस काल में मौलिक रूप से गद्य की अनेक विधाओं का स्फुरण होता है। भाषा में भी एक अपेक्षाकृत स्थिरता मिलती है।

गद्य का परिष्कार परिलक्षित होता है। शब्द चयन और पदच्छेदों में भी वैज्ञानिकता और तत्सम शब्दों का प्रयोग मिलने लगता है। गद्य में अभूतपूर्व उत्कर्ष के दर्शन होते हैं। शैली में विभिन्न रूपों का विकास पाया जाता है।अतः १४०० से सं० १५०० तक के इस काल को गद्य साहित्य का उत्कर्ष काल विकासकाल या अभ्युदय काल की संज्ञा दी जा सकती है।

इस काल में अनेक कृतियां उपलब्ध होती हैं।हिन्दी जैन साहित्य में उत्कर्षकाल की रचनाएं अपनी उत्कृष्टता , और गद्य क्षेत्र में अपनी मौलिक प्रवृत्तियों का श्रीगणेश करती हैं।

इस काल में गद्य के प्रारम्भिक काल की कमियों में बहुत सुधार हुआ। भाषा व शब्द चयनमें अपूर्व प्रवाह आया। गद्य के रूपों की अस्थिरता दूर हुई उनमें अपेक्षाकृत स्थिरता आ गई। जैन विद्वानों की लेखन शैली में भी परिवर्तन हुए।गद्य साहित्य के इस उत्कर्ष काल में मिलने वाले लगभग सभी ग्रन्थ धार्मिक ही हैं,पर धार्मिक साहित्य की प्रधानता होते हुए भी स्फुट रूप में लिखा गया गद्य भी मिलता है कहीं कहीं स्मृति लेखों के रूप में भी गद्य मिलताहै। जैनियों के साथ चारणों ने भी गद्य लिखा। दोनों शैलियों में से एक को हम चारणी शैली व दूसरी को जैन शैली कह सकते हैं।जैनियों ने ऐतिहासिक गद्य की भी रचना की अनुवाद ग्रन्थ भी लिखे गए। इतना सब कुछ होते हुए भी इस काल में ऐसा सुन्दर गद्य भी लिखा गया जिसमें कला का एक निखार स्पष्ट परिलक्षित होता है।यही नहीं,इस काल में लिखे गए इस कलात्मक गद्य ने हिन्दी साहित्य के गद्य में एक धारा विशेष या शैली विशेष से एक नया अध्याय भी जोड़ा है। गद्य के इन परिवर्तनों ने उसके बाह्य विषयों को भी बदल डाला। जैन व जैनेतर दोनों धाराओं में वचनिका, वचनिका, बाला व बोध टब्बा, मुक्तक, अनुप्रास, पद शैली, मौलिक, टीका, आदि सब शैलियों के रूपों में कलात्मक,ऐतिहासिक, धार्मिक व वैज्ञानिक सब साहित्य लिखा गया। इस काल में जो विभिन्न प्रकार की कृतियां मिलती हैं वे इस प्रकार हैं:-

१- षडावश्यक बाला व बोध -	सं० १४०१	तरुणप्रभसूरि
२- व्याकरण चतुष्कबाला व बोध		मेरुतुंग सूरि
३- सट्टिपत बाला व बोध		मेरुतुंग सूरि
४- नवतत्व विवरण बाला व बोध		साधुरत्नसूरि
५- कल्याण मंदिर बालावबोध	सं०१४८५	मुनिसुंदरसूरि शिष्य
६- उपदेशमाला बाला व बोध		सोमसुंदर सूरि
७- षष्टिशतक बाला व बोध	सं० १४८९	सोमसुन्दर सूरि
८- योगशतक बालावबोध		"
९- भक्तामर स्तोत्र बालावबोध	सं० १४३०	"
१०- नवतत्व बालावबोध	सं० १४०२	"
११- पर्यन्त आराधना बालावबोध		"
१२- षडावश्यक बालावबोध		"
१३- विचारग्रन्थ बालावबोध		"
१४- तेम समास बाला०	सं० १४२९	
१५- शीलोपदेश माला बाला०		
१६- विचारग्रन्थ बालावबोध		
१७- संग्रहण बालावबोध	सं० १४९७	दयासिंह
१८- श्रावक बृहदतिचार	सं० १४६६ के आसपास	जयशेखर सूरि
१९- पृथ्वी चन्द्र वाग्विलास	सं० १४७८	माणिक्यसुंदर सूरि

इन रचनाओं में अधिकतर रचनायें बालावबोध संज्ञक हैं[१] गद्य ग्रन्थों में बालावबोध एक शैली सी होगई थी। इसे दूसरे शब्दों में बालावबोध भाषा टीकात्मक पद्धति कहा जा सकता है। वास्तव में जैन धार्मिक गद्य अधिकतर प्राकृत भाषा में लिखा गया है। अतः जन साधारण एवं सुलभ बनाने के लिए जैन विद्वानों, लोक

१- देखिए- प्रस्तुत लेखक का "साहित्यकार" वर्ष २ अंक २९ पृ० ९८ पर हिन्दी साहित्य की प्राचीनतम गद्य रचनाएं- शीर्षक लेख।

सेवक जैन कवियों और उनके अनुयायियों ने उसे सर्व सुलभ, जनभाषा में बोधगम्य तथा सरल अनुवादों, टीकाओं, तथा विस्तृत टिप्पणियों के रूप में प्रस्तुत किया। साथ ही उन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी किया कि शास्त्रीयता के बंधनों में बंधे ग्रन्थों के आधार पर स्वयं भी मौलिक ग्रन्थ रचे। अधिकतर ये अनुवाद और टीकायें प्रमुखतः दो रूपों में मिलती हैं: १- टबुआ एवं
२- बालावबोध

टबुआ:: यह भी टीकात्मक पद्धति है।इस रूप में जैन टीकायें इस समय की बहुत ही कम प्राप्त है इस प्रकार की शैली में विस्तार नहीं होता।इस शैली का शिल्प बहुत ही संक्षिप्त होता है। बालावबोध से इसका आकार अत्यन्त सूक्ष्म होता है।इस शैली में पहले मूल शब्द लिखा रहता है, और फिर उसका अर्थ दायें बायें या उसके क्रोड़ में, अथवा मूल शब्द का अर्थ या तो नीचे या ऊपर अथवा उसके पार्श्व में ही दे दिया जाता है। टबुआ संज्ञक रचनाएं उक्त काल में लगभग नहीं ही मिलती है। कालान्तर में इस संज्ञा की कई रचनायें उपलब्ध होती हैं।

बालावबोध: आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य के गद्य के विकासकाल या अभ्युदय काल में बालावबोधक संज्ञक शैली ही प्रमुखतया उपलब्ध होती है।बालावबोध से तात्पर्य सरल सहज बोधगम्य अनुवाद से है। यह शैली जैन कवियों ने पढ़ेलिखे व्यक्तियों के लिए नहीं अपनाकर बहुत ही कम पढ़ेलिखे अथवा अपढ़ धर्मप्राण श्रावकों के समझाने के लिए बनाईथी।मूल ग्रन्थ की व्याख्या इस शैलीमेंबहुत ही विस्तार के साथ होती है।कथा इस शैली की मुख्य विशेषता है ताकि कठिन से कठिन सैद्धान्तिक ज्ञान भी सरल व सहजगम्य हो सके व जन साधारण उससे लाभ उठा सके।अतः मूलसूत्रों व सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में कथा का प्रयोग कियागया है।वस्तुतः इस प्रकार की शैली को हम कथा प्रधान शैली भी कह सकते हैं। कथाओं में भी अनेक प्रकार की कथायें हैं, जैसे :-

१- मौलिक कथायें

२- परम्परागत कथायें

३- लोक कथायें

४- उपदेशात्मक कथाएं

५- धार्मिक कथाएं

६- विविध विषयक कथाएं

वस्तुतः इन सब कथाओं के माध्यम से धर्मोपदेश और धर्मप्रचार ही स्पष्ट होता है। प्रत्येक कथा धर्म के अंग उपांगों पर प्रकाश डालती है।जैन धार्मिक ग्रन्थों में इस शैली में आगम,आचारंग,सूत्र कृतांग, अंग, उपांग,मूलसूत्र,स्तोत्रग्रन्थ, व्याख्या प्रज्ञप्ति साधुप्रतिक्रमण, दशवैकालिक, षडावश्यक, पिंडविशुद्धि, उत्तराध्ययन के साथ साथ स्तवनों तथा चरित्रग्रन्थों के साथ दार्शनिक ग्रन्थों पर भी विस्तृत रूप में मिलती है। इसके अतिरिक्त भी विविध विषय रूपों में हमें चूर्णचरण, वेश, समाय, शीलोपदेश माला, पद प्रबंचना,व्याख्यान, विधि विधान, उपदेश माला, शोभिम स्तुति, योग शास्त्र,संग्रहणी, गौतमपृच्छा,खण्डन मंडन, धार्मिक कथाओं के रूप में तथा सिद्धान्त ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध होती है। बालावबोध में अन्त में भरत वाक्य की भांति जैन धर्म के किसी तत्व विशेष की सूचना होती है सामान्यतः प्रारम्भ में इस प्रकार की बात दिखाई नहीं देती पर अन्त में इस का समाहार किसी विशेष धर्म सूत्र, या दर्शन सिद्धान्त या किसी उपदेश प्रधान तथ्य से होताहै। वस्तुतः इस शैली का पहले तथा कालान्तर दोनोंकालों में खूब प्रचार हुआ। यह शैली भाषा टीकात्मक पद्धतियों में सबसे उत्कृष्ट तथा प्रधान है।

उक्त सूची में विषय के आधार पर इन कृतियों का वर्गीकरण निम्नांकित रूप से किया जासकता है:-

१- व्याकरणमूलक गद्यसाहित्य

२- कथात्मक गद्यसाहित्य

३- धर्म सम्बन्धी गद्यसाहित्य

४- ऐतिहासिक गद्य साहित्य

५- गद्य काव्य का उपमात्मक एवं प्रेरक गद्य साहित्य

६- अन्य (विविध विषयक)

व्याकरण और कथात्मक गद्य साहित्य के साथ साथ धार्मिक साहित्य के रूप में मिलने वाली अनेक जैन गद्य रचनाएं उपलब्ध होती है। यों प्रमुख रूप में यदि देखा जाय तो प्रारम्भिक और अभ्युदयकाल दोनों कालों में मिलनेवाली रचनाओं में अधिकतर रचनाएं धार्मिक गद्य की ही है परन्तु-परन्तु फिर भी गद्य के क्षेत्र में जैनाचार्यों द्वारा लिखी सरल गद्य कथात्मक साहित्य निबन्धमूलक गद्यात्मक साहित्य, तथा भाषानुवाद टिप्पणियां टीकाओं, बालाओं और बालाव बोध व्याकरण आदि के रूप में विशाल संख्या में उपलब्ध होती है। इस धारा का विस्तार में परिचय आगे के पृष्ठों में दिया जायगा। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक जैन गद्य साहित्य, गद्य काव्य का प्रेरक साहित्य तथा अन्य विविध विषयक गद्य साहित्य भी जैन गद्य परम्परा के विकास हेतु महत्वपूर्ण है। जिनका विस्तार में विश्लेषण इस प्रकार है:-

(१) व्याकरण मूलक गद्य साहित्य :

गद्य साहित्य के अभ्युदय काल में व्याकरणमूलक गद्य रचनाएं उपलब्ध होती है। व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थों की परम्परा गद्य के प्रारम्भ काल सं० १३०० से ही मिलनेलगती है। व्याकरण पर लिखी गई इन कृतियों की परम्परा का श्रीगणेश संग्रामसिंह की सं० १३३६ की रचना-बालशिक्षा[१] से होता है। बाल शिक्षा राजस्थानी का एक महत्वपूर्ण व्याकरण ग्रन्थ है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस ग्रन्थ में बालकों को व्याकरण की शिक्षा दी गई है। लेखक ने बहुत ही सुगम शैली का प्रयोग किया है। व्याकरण सम्बन्धी शिक्षा देने में श्रीसंग्रामसिंह बड़े सरल रहे है। भाषा में राजस्थानी का अधिक है और उकारमूलक प्रवृत्ति भी अधिकांशतः दिखाई पड़ती है। लेखक ने इस रचना में विषय के संक्षिप्त विवेचन के साथ साथ सरल व्याख्या भी की है।

१४वीं शताब्दी की इस रचना का महत्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि यह व्याकरण मूलक प्रवृत्तियों पर लिखित रचनाओं के उद्भव की

१- प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ- सं० मुनि जिनविजय जी परिशिष्ट पृ० २०५।

द्योतक है। रचनाकार संग्रामसिंह श्रीमालकुल के जैन थे। तथा संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। अस्तु संस्कृत के व्याकरण को जन भाषा में बहुत ही सरल बनाने के लिए ही लेखक नेयह रचना लिखी है। कृति की व्याख्या पूर्णतया तुलनात्मक ढंग से की गई है। पहले संस्कृत शब्द दिए गए है तथा पश्चात् तत्कालीन भाषा के शब्दरूप। जन भाषा या तत्कालीन राजस्थानी के शब्दों के इस तुलनात्मक विवेचन से यह ज्ञात होता है कि लेखक का मन्तव्य यह रहा होगाकि इनकी संस्कृत मेंअभिव्यक्ति किस प्रकार संभव हो सकती है, इनमें कौन से रूप व्यावहारिक हैं और कौन से अव्यवहारिक भाषा के प्राचीन रूप कौन से है तथा प्रचलित रूप क्या है आदि प्रवृत्तियों को इस कृति से समझा जा सकता है। संग्रामसिंह की बालशिक्षा की शैली अनुवाद प्रधान है।रचना की समाप्ति संस्कृत के कई शब्दों संस्कृत की क्रियाओं विशेषणों विशेष्यों तथा अन्य अनेक शब्दों के रूप तत्कालीन भाषा रूपों के साथ संग्रहीत है। रचना संस्कृत की व्याकरण की एक सरल व्याख्या है।वास्तव में यह कृति विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है अतः व्याख्या में बहुत अधिक सरलता और सरसता विद्यमान है कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैः-

(१) लिंगु ३ पुल्लिंग, स्त्रीलिंगु, नंपुसंकलिंगु भलु पुलिंगं, भली स्त्रीलिंग भलुं नपुंसकलिंगु [१]

(स्यादि प्रक्रमणां)

(२) सि एक वचनु और द्विवचनु जस बहुवचन (संज्ञा प्रक्रमणा)

(३)स्वतर केता १४, समान केता १०, सवर्ण १०, ह्रस्व ५, दीर्घ ५, नामीया स्वारा १२, संध्यक्षर ४, व्यंजन ३३, वर्ग ५, कचटतप, अघोष १३, घोषवंत २०।[२]

कारकों केवल विभिन्न शब्द रूपों को तथा संस्कृत की विभिन्न विभक्तियों क्रिया रूपों, कालों आदि के भाषा रूपों का विस्तृत विवेचन निम्नांकित उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की जाती है:

१- प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ- सं० मुनिजिनविजय परिशिष्ट पृ० २०५।
२- वही।

। कारक प्रक्रमणा ।

अथ प्रत्येक विभक्ति प्राप्ति महा-कहई, लियई, दियई, इत्यादी वर्तमाना।१।कीजई, दीजई- लीजई इत्यादी वक्रोक्ती कर्मणि वर्तमानाया आत्मनेपदम्।करिवे, लेवे, देवे, इत्यादी एकारांत वचने सप्तमी।२।

--- --- ---

कीजउ दीजउ लीजउ, इत्यादी कर्मण्यात्मनेपदं।

--- --- ---

म कीधु, म लीधु, म दीधु इत्यादी कर्मणि मा शब्दयोगे जई करत, जई लेत, जई देत, इत्यादी क्रियातिपत्तिः

--- --- ---

करि सिई, लेस (सि) ई०, देसिई इत्यादी नहीं करई नही लियई नही दियई इत्यादी भविष्यान्ति

अथ कृत्प्रत्यय प्राप्ति माह-

करतउ, लेतउ, देतउ, इत्यादी कर्तरि वर्तमाने शतृडानशौ।

कीजतउ, लीजतउ, दीजतउ, इत्यादी कर्मणुशानश।

--- --- ---

करीउ, लेउ देउ, इत्यादी क्त्वा।

करी जाणुं वली सकउ, करिवउ, लेवउ देवउ इत्यादी कर्मणि तव्यानीयौ

(अथ विशेष प्रत्यय प्राप्ति माह)

करावई, कराविवउं, करावियई, करावतउ, करावी, कराविवा इत्यादी, णिगंतात प्रत्यया।।(उक्ति प्रक्रमः षष्ठ)।

उक्त उदाहरणों से कृति मेवाड़स्थानी शब्दों के माध्यम से वर्णित व्याख्यात्मक शैली स्पष्ट होती है।वस्तुतः बाल शिक्षा का महत्व व्याकरण ग्रन्थों पर लिखे ग्रन्थों में सर्व प्रथम कृति होने के कारण और भी बढ़ जाती है।इस रचना

से स्पष्ट है कि इसमें बोल चाल की भाषा का साधारण स्वरूप है। पहले ही लेखक ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है उनका विभिन्न विभिन्न कालों का स्वरूप देखा जा सकता है:-

वर्तमान में - लियइ, करइ, दीजइ, कीजइ, लीजइ आदि

विधिलिंग - करिजे देजे, लेजे।

लोट - करि लइ, दइ, कीजउ दीजउ आदि

भूतकाल - कीधउ लीधउ

भविष्यकाल - करिसि, देसि, करिसिइ, देसिइ, लीजिसिइ दिजिसिइ आदि

कृदन्त साधारण-करिवउ, देवउ

कृदन्त वर्तमान - करतउ, देतउ, कीजतउ, दीजतउ,

भूत कृदन्त - कीधउ दीधउ लीध,

भविष्य कृदन्त - करणाहार, देणहार देणाहार

अनेक शब्दों तथा क्रिया रूपों का अध्ययन इन उदाहरणों से कियाजा सकता है:- कीहां जीहां तीहां (कहां जहां, तहां)।छिवड़ा (हमणां) सवहि गमा (सब तरफ) उबीआलु (ओढियालो) घूंघटउ (घूंघटो)।पलोवउ (पिल्ला) बाप (पिता) फूटरउ (सुन्दर) महक (महकवार) बल्लमलीउ (वाचाल)। इसी प्रकार क्रियाओं के ई इकार बहुला अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं यथा- बिगड़इ, फाड़इ, झांपइ, बापरइ, पीडइ, राचइ, बांधइ, सोपडइ, निरखइ,मनावइ, पेलइ, फोकइ, ढांकइ, चाखइ चरइ, करइ, लिखइ, बघारइ, बखाणइ, ओलंबइ, लोडइ नाचइ, घूंटइ, चालइ हालइ, भाजइ, पलाणइ, बूडइ आदि इस प्रकार वर्तमान हिन्दी के शब्दों मूल स्वरूपों का प्रयोग इस रचना में दिखाईपड़ता है।इन शब्दों से स्पष्ट है कि अपभ्रंश की विशिष्ट क्लिष्टता का प्रभाव इनमें बिल्कुल परिलक्षित नहीं होता।

बालशिक्षा के पश्चात् व्याकरण पर लिखी कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण कृतियां जैन साहित्य के अनुसंधान में मिलती हैं। जिनमें प्रमुख हैं:-

१- मुग्धावबोध औक्तिक कुलमंडनकृत - सं० १४५०

२- औक्तिक श्री सोमप्रभसूरि १५००

३- उक्ति संग्रह   श्रीतिलक

इन तीन रचनाओं में प्रथम दो बहुत ही महत्वपूर्ण है शेष तीसरी रचना साधारण सी है।साथ ही उसके लेखक के विषय में भी कुछ सामग्री तथा सूचना उपलब्ध नहीं होती। यों रचना भी बहुत मौलिक नहीं है।व्याकरण सम्बन्धी जितनी उक्तियों का इसमें संग्रह है वे सब प्रथम दो ग्रन्थों के आधार पर ही है तथा पर्याप्तरूप में मिलता जुलता भी है।

औक्तिक संज्ञक इन रचनाओं का विषय व्याकरण मूलक ही है। ये रचनायें भी व्याकरण के रूपों पर ही प्रकाश डालती है।इनकी भाषा भी राजस्थानी प्रधानहै। शब्द छोटे और व्याख्या विस्तृत तथा सरल है।

मुग्धावबोध औक्तिकः

इस कृति के लेखक श्री कुलमंडन सूरि है। सूरि जी की यह बहुत ही महत्वपूर्ण कृति है जो प्रकाशित भी हो चुकी है[१] औक्तिक संज्ञक रचनायें यों सामान्य अर्थ में व्याकरणमूलक ही होती है और प्रस्तुत कृति में भी राजस्थानी के द्वारा संस्कृत व्याकरण को सरल करने के लिएविस्तार में व्याख्या की गई है। कुछ उदाहरण भाषा शैली की सरलता लेखक की सरसता तथा व्याकरण गत कठिनाई को सरलता तथा वैज्ञानिकता से समझाने आदि बातों को हृदयंगम करने को पर्याप्त होगी। इन उदाहरणों से गद्य के तत्कालीन रूपों को समझा जा सकता है।लेखक ने कृति में विभक्तियों पर विचार किया है तथा साथ साथकृदन्त भेद, उक्तिभेद आदि पर भी विस्तृत प्रकाश डाला है।कृति अनुवाद रूप में है:-

(१) जं कीजइ, लीजइ, दीजइ, पढीइ, गुणीइ, इत्यादि बोलिवइ
   युक्ति, क्रियां करी उक्ति मांहि जे वस्तु कर्त्ता व्यापीइ,संकर्म।
   तिहां द्वितीया।जेम कटुकरइ, करइ इसी क्रिया।कउण करइ चैत्र।
   जु करइ सु कर्त्ता।तिहां प्रथम।किसउं करइ, कटु जं कीजइ तं कर्म्म।
   तिहां द्वितीया।चैत्रः कटं करोति।एवं चैत्रः काष्ठं दहति।ग्रामंयाति।

१- प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ पृ० १७२-१७४

शास्त्रं पठति।[1]

(२) जेहनई कारणि क्रिया कर्त्ता कर्म्म हुइ, अनइ जहरहई दान दीजइ, कोप कीजइ तिहां सम्प्रदानि चतुर्थी। विवेकिउ मोक्षनई कारणि तपइ। तपइ इसी क्रिया इत्यादि।-- धर्म्मु सुखनई कारणि हुइ। क्रिया कर्त्ता पूर्ववतु। किसानई कारणि धर्म्मु हुइ, सुखनई। तिहां चतुर्थी।-- साधु मोक्षनई कारणि तपु करइ।

(३) जिहां देशि कालि जेहनइ विषइः इत्यादि इ कारणइ बोलिवइ जे कर्त्तानउ अथवा जे कर्म्मनउ आधारु हुइ ते अधिकरण तिहां सप्तमी। चैत्रु ग्रामिवसइ। क्रिया कर्त्ता पूर्ववतु। किहां वसइ, ग्रामि। तिहां अधारि सप्तमी।

क्रियाओं का विश्लेषण भी सुन्दर है-

(४) मेघि वरिसतइ मोर नाचई। नाचई इसी क्रिया। कवण नाचई मोर। जे नाचई ते कर्त्ता। तिहां प्रथम। किसइ हुंतइ नाचई मेघि तिहां भाव लक्षणि सप्तमि।

कारकों का विवेचन भी सुन्दर है।

(५) छ करक, सातमउ सम्बन्धु, कर्त्ता, कम्मु करणु, सम्प्रदान, अपादानु, अधिकरणु, सम्बंधु जु करइ सु कर्त्ता। जं कीजइ ते कर्म्मु। जीणकरी क्रिया कीजइ तं करणु। मइ देवतणी पोतउ। जेह भणइ कीडई। धरीइ कोई ते कारकु सम्प्रदान संज्ञकुहुइ। जेह तउ आपाय विश्लेषु हुइ, जेह तउ भय हुइ, जेह तउ आदान ग्रहणु हुइ ते कारकु अपादान संज्ञक हुइ। जेह कन्हइ, जेह पाछि जेह पास, जेह सरउ, जेह सरी, जेह तणउं जेह रहीं इत्यार्थे सम्बन्धु। मांहि, माहइ, वेसि, वलि, विहि पाछि पाखरि इत्यार्थे अधिकरणु।[2]

१- प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भः मुनि जिनविजय।

२- राजस्थानी गद्य का विकासः डा० शिवस्वरूप शर्मा पृ० ५८ (अप्रकाशित शोधप्रबंध राजस्थान विश्वविद्यालय)

दूसरी रचना मौक्तिक है। इस रचना को सी० दलाल ने १५वीं शताब्दी की निश्चित की है। इसके रचयिता श्री सोमप्रभसूरि थे।सोमप्रभ विद्वान जैनाचार्य थे तथा वे तपागच्छीय थे। रचना छोटी सी है तथा व्याकरण पर लिखी गई है।

व्याकरण ग्रन्थों में तृतीय तथा अन्तिम ग्रन्थ उक्ति संग्रह है। इसके रचयिता तिलक है तथा तिलक के विषय में तत्कालीन सहायक ग्रन्थों में भी विशेष कुछ उपलब्ध नहीं होता।उक्त दोनों रचनाओं के उदाहरण क्रमशः इस प्रकार है:-

(१) करावइ लिखावइ यथा लभाउइ, लंभयति, संपादयति, उतारउ उत्तारयति, हलकीजइ, तीण कीजइ यथा देवदत्ति गइ, हुइ, थइ, धुइ अइ यथा सेहि आवश्यकु पढिउ, औउ सवेहि राजि जाणीइ तथा करतउ लेतउ देतउ इत्यादि यथा गुरि अणु जाणिउ चेलु व्याकरण पढइ।

(२) देवदत्ति मयि पापिउ पावइ, उपाध्यायु मइ पढावइ, देवदत्तु पढीयइ --- देवदत्त करइ --- पापियउ सांपु मारइ।

व्याकरण मूलक इन तीनों रचनाओं से संस्कृत व्याकरण सरलतापूर्वक समझाई जा सकती है। रचयिताओं ने इसीलिए इन्हें राजस्थानी भाषा या सरल हिन्दी में ढाला है।व्याख्यात्मक पद्धति सरल है।वाक्य छोटे और विषय प्रतिपादन के पूर्ण अनुकूल है।

(२) कथा प्रधान गद्य साहित्य

गद्य साहित्य की दूसरी और प्रमुख धारा है कथा प्रधान हिन्दी जैन गद्य साहित्य। अध्ययन काल में अनेक कथायें ऐसी मिलती है जिनमें तत्कालीन गद्य के सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं। रचयिताओं की इन कृतियों में गद्यात्मक प्रौढता परिलक्षित होती है तथा काव्यात्मकता का भी गद्य में पर्याप्त समावेश है। इन कथाओं में से अनेक कथायें प्रकाशित हो चुकी है। गद्य साहित्य के उत्कर्ष

१- देखिए गुजराती साहित्यपरिषद् की ५वीं रिपोर्ट पृ० ३५-३६ द्वारा श्री सी०डी० दलाल।

मे जैन कथा साहित्य का असाधारण हाथ है। सहस्त्रों जैन वार्ता और कथाओं का साहित्य अभी तक जैन भंडारों मे अप्रकाशित पड़ा है।

जहाँ तक इन कथाओं के विषयों का प्रश्न है ये कथाएं अनेक प्रकार की मिल जाती है -१- लोक आख्यानक, २- धार्मिक, ३- श्रृंगारिक, ४- ऐतिहासिक ५- उपदेशमूलक ६- चरित प्रधान, ७- नीतिजन्य, ८-मनोवैज्ञानिक सामाजिक तथा विविध विषयक।

वस्तुतः इन सभी कथाओं मे विषय की मुख्य संवेदना धर्म प्रचार तथा चरित्रनिर्माण और ज्ञान प्राप्ति ही है।कथात्मक पद्धति से इन रचनाकारों मे श्रोताओं के मनोविज्ञान का स्पर्शकिया है।इन कथाओं द्वारा वर्णित मनोविज्ञान भी उल्लेखनीय है। जैनदर्शन, आचार कर्म, तथा भक्ति व जैन धर्म के विभिन्न अंगों जैसे कठिन व दुरुह विषयों पर प्रकाश डालने और उनको सरलतम भाषा मे समझाने के लिए जैन लेखकों ने एक कथात्मक शैली अपनाई है और दूसरे वर्णन मे गद्य को ही ठीक समझा है। अतःये कथाएं अत्यन्त सरस, मधुर, स्वाभाविक, सरल, भावप्रधान, उपदेश, नीति तथा चारित्रिक गरिमा औरदार्शनिक सिद्धान्तों औरउपासन पद्धतियों को स्पष्ट करती है। इन कथाओं मे महत्वपूर्ण कथाएं प्रमुख जैन विद्वान् तरुण प्रभसूरि सं० १४११ से ही उपलब्ध होती है। इनमें प्रमुख रूप से सम्यक्त्व, बारव्रत, सोलह कारण, श्रावक अतिचार उपदेशमूलक, गृहस्थधर्म तथा योग शास्त्र सम्बन्धी नमस्कार बाला व बोध, कथा प्रकीर्णक आदि अनेक विषयों पर लिखी कथाएं उपलब्ध होती है। इन गद्य कथाओं के रचयिताओं मे प्रमुख रचनाकार है:- श्री तरुणप्रभसूरि (सं० १४११), श्री सोमसुन्दरसूरि (सं० १४५०-१४९९), श्री माणिक्यसुन्दरसूरि (सं० १४७८ श्री हेमहंसगणि (वि०सं० १५००) आदि है।

विभिन्नविषयों तथा धर्म प्रचारार्थ जन भाषा मे लिखी गई इन गद्य कथाओं मे धार्मिक अर्थों पर लिखी गई अनेक कहानियां है। विषयानुसार इन कथाओं मे कुछ के उदाहरण, शैली भाषा तथा इनके प्रवाह का अध्ययन करने के लिएनीचे दिए जा रहे है-

(१) सम्यक्त्व तथा व्रतों सम्बन्धी-रचयिता श्री आचार्य तरुण प्रभसूरि सं०

१४११ -कथा प्रथमव्रत ऊपर- चन्द्रशूर राजा पुत्र कथा प्रथम अहिंसा व्रत पर लिखी एक कथा के गद्य का उदाहरण देखिए:-

(१) जय पुर नामि पुर। शत्रुंजय नामि राज। शूर चंद्र नामई करी बि पुत्र। ज्येष्ठा नड्डागि करी राजेन्द्रि ज्येष्ठु युवराजा कीधउ।कुशिल करी। चंद्रु पवित्र माभाई करी गण्डि नहीं। ए अपमान मनइ करि चंद्रि देशांतर लीधउ।[1]

(२) कालंती नामि नगरी, कीर्ति पालु नामि राजा, धीरु नामि सेठ तपउ पुत्र। पुत्र की कन्हा अतिवल्लभु सिंहु नामि श्रेष्ठि।सु पुत्र परम श्रावकु जिन भक्ति चंतु वरतइ। अनेरइ दिनि सभा माहि कीर्ति पालु राजा सिंह श्रेष्टि पुत्र कमलु भ्रमर जिम जोयतउ हुंतउ वरतई। तेतलइ प्रस्ताव प्रतीहारु आवी राजेन्द्रहई वीनवइ- महाराज।तुम्हरहई देखणहारु एकु पुरुषु दिव्याकार दुआरि आविउ छइ। राजा भणहि मांहि मेल्हि।[2]

धर्मकल्प तथा श्रावकों के आचार पर भी अनेक कथाएं उपलब्ध होती हैं जिनकी भाषा अत्यन्त सरल व प्रवाहपूर्ण है। इन कथाओं को प्रारम्भ करने की शैली लगभग एक सी है परन्तु फिर भी प्रत्येक कथा अपनेमें पूर्ण तथा प्रभावशालिनी है।वाक्य छोटे, पैने तथा भावपूर्ण है जिनमें एक सौकर्य सर्वत्र विद्यमान है शैली में कहीं भी शिथिलता नहीं है।पंचाव्रत व्रत ऊपर लिखी मंत्रीपुत्र कथा का एक उद्धरण देखिए:-

> प्रभात समइ घन नाडु सेठी करी सकल गृह जनि शोकु करतउ हुंतउ सेठि पोषहु पारी करी दिवस कृत्य विधि कई करिवा लागउ। पुत्रानुसारि सेठ नई परिकली पणाई विधन हुआं।अनेरइ दिनि सु अवस्थाय लिहुआ चोरु सेठिना घरहुंती अ वस्तु चोरी हुंती सेठ वस्तु मांहिलउ एकु अमूलिकु मुक्ताफलनउ हारु ले करी।तिणिहिं जि नगरि वीथिका आविउ। सु हारु सुवर्णु श्रेष्ठि तणइ वाणउ भि ओळखिउ। सु चोरु धरी करी तलार रहई आपिउ।सु चोर-धरण

1- प्रा०गु० ग० सं० पृ० ७
2- वही।पृ० ५४।

सुबोधु सुदन्तु जाणी करी इसउं बोलवइ।[1]

इन कथाओं में जन भाषा काव्य की सरसता सर्वत्र विद्यमान है। विविध विषयों पर लिखी तत्कालीन अनेक प्रकीर्णक कथायें इस बात का प्रमाण है।

एक बुढ़िया पर लिखी एक तत्कालीन प्रकीर्णक कथा का एक उदाहरण देखिए:

ए ग्रामि एकि अति दरिद्रताकरी दुःखित डोकरि एक हुंती। अंबउ इसइ नामि बेटउ दीकिरउ एकु हुंतउ। सु आजीविका कारणि ग्राम लोक तणा वाछरू चारतउ। अनेरइ दिनि संध्यासमइ उद्यान वन हुतउ वाछरूं आवतउ हुंतउ सुसर्पिं डसिउ, मूर्छा आवी तिहां ईं जि महाविष वेग संगत हुंतउ हेठउ ढलिउ। विष काष्ठ विषवेल्लि हुयइ तिम थाई मही पीठि पडिउ।[2]

उक्त उद्धरण में डोकरि दीकिरउ वाछरू हेठउ आदि शुद्ध ठेठ राजस्थानी में है जो आज भी बोले जाते है।

उपदेश प्रधान धार्मिक कथाओं में अनेक नीतिमूलक कथायें मिलती है जिनकी मुख्य संवेदना केवल ज्ञान या नश्वर संसार से विरक्ति ग्रहण करना ही है। मृगावती कथा- का एक उदाहरण गद्य की प्रांजलता को पूर्णतया स्पष्ट करता है:-

अंधारा चूकडओ साप आवी दीठउ। चंदन बालानु हाथ परहउ कीधउ।
चंदनबाला जागी। पूछइ मृग- कन्हें कां माहरू हाथ टालिउ।
मृगावतीइं कहिउं- साप जाइ छइ, तेह भणी। चंदनबाला साप न देखइ।
मृगावतीइं कहिउं- तुं किम देखइ? तुम्हइ कोई ज्ञान छइ? तीणइं कहिउं-
केवल ज्ञान।[3]

इसी प्रकार सोमसुन्दर सूरि द्वारा अनूदित अनेक कथायें जैन दर्शन पर प्रकाश डालती है। इन कथाओं में गृहस्थ के कर्तव्य तथा गृहस्थ धर्म व मुनिके सुन्दर वर्णन है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है:-

(१) [illegible] ते कुण बाप पिता महादिक नउ वंश कहीइ। अनइ शील

१- प्रा०गु०गद्य सं० पृ० ४१   २- वही पृ० ५८-५९
३- प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ पृ० ७०

मांस रात्रि भोजनादिकनउ निषेधरूप य आचार।एहे विद्वाने करी जे समान सरीखा हुई।कुलिई करी, आचारिई करी जे सरीखा हुई।

(२) प्रसिद्ध च देशाचार- जे उत्तम मनुष्य मांहि प्रसिद्ध देशनउ आचार भोजनाच्छादिक लोक व्यवहार जे न समाचरई ते धर्म योग्य नहीं, जे समाचरइ ते धर्म योग्य।

(३) राजेंजादि:- राजा मंत्रीश्वर पुरोहित शेठी प्रमुख मोटानउ अवर्णवाद विशेषि न बोलई। ते बोलतां इहलोकि इ लक्ष्मीनी हानि, जीवितव्य विनाशादिक दोष उपजई तेह भणी कहिनउ दोषन बोलई ते धर्म योग्य।[1]

इस प्रकार हिन्दी गद्य साहित्य के अनेक उदाहरण इन आदिकालीन कृतियों द्वारा प्रस्तुत किए जा सकते हैं।यद्यपि इनमें से अधिकांश कथाएं अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों सेअनूदित है परन्तु तो भी इनके उदाहरणों से तत्कालीन भाषा के गद्य क्रम और विकास का इतिहास स्पष्ट हो जाता है।

---

(३) धर्म सम्बन्धी गद्य साहित्य

धर्म हिन्दी जैन रचनाओं के मूल में प्रेरणा बन कर सर्वत्र विद्यमान है। धार्मिक रचनाओं के रूप में गद्य साहित्य अत्यन्त सम्पन्न है।मध्ययुगकाल में अधिकांश रूप में धार्मिक वस्तु प्रधान गद्य रचनाएं उपलब्ध होती हैं। जैन लेखकों से इतर रचित तत्कालीन चारणी गद्य साहित्य में भी इसी प्रकार गद्य के उत्कर्ष के दर्शन होते हैं। कुछ चारण उस समय भी जैन शैली पर लिख रहे थे और कुछ जैन चारण शैली पर। चारणी गद्य शैली में उपलब्ध-अचलदास खीची-री वचनिका सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जिसका रचना काल १५वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।पृथ्वी चन्द्र

१- प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ पृ० ११८-११९।

चरित्र (जैन रचना) भी इसी शैली की है।

कथा साहित्य निबन्ध साहित्य, टीका, भाष्य और अनुवाद के रूप में अभ्युदय काल का जितना गद्य साहित्य मिलता है उसमें प्रमुखता बालावबोध शैली[1] की है। अभ्युदय काल में जितने प्रमुख गद्य लेखक हुए उनमें से लगभग सभी ने इसी भाषा टीकात्मक बालावबोध शैली में अपनी रचनाएं की हैं।आचार्य तरुणप्रभसूरि, सोमसुन्दरसूरि, मुनिसुंदरसूरि, रत्नशेखर, जिनसुन्दर, मेरुसुन्दर (खरतरगच्छ) शिवसुन्दर जिनसूर (तपागच्छ) साधुरत्न, राजवल्लभ (धर्मघोष गच्छ) तथा हेमहंसगणि आदि अनेक प्रमुख विद्वान हैं जिन्होंने विविध रूपों में गद्य के क्षेत्र का सम्पन्न किया है।आदिकालीन हिन्दी जैन वाङ्मय के इस गद्य साहित्य को सम्पन्न करने वाले तत्कालीन जैन लेखकों प्रमुख रूप से ५ महारथी उल्लेखनीय हैं: १-आचार्य तरुणप्रभसूरि, २- श्री सोम सुन्दरसूरि, ३- श्रीमेरुसुन्दर, ४- श्री पार्श्वचन्द्र, ५- मानि क्यसुन्दरसूरि। इन पांचोंमहारथियों के कारण विकासकाल को आदिकालीन गद्य साहित्य का स्वर्णकाल कहा जा सकता है।

<u>षडावश्यक बालवबोध</u>[2]:-

अभ्युदयकाल की इस रचना के लेखक श्री आचार्य तरुणप्रभसूरि हैं। कृति अभी अप्रकाशित है।श्री नाहटाजी के संग्रह से लेखक को इस प्रौढ़ कृति हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई। प्रति के गद्य को देखकर आचार्य जी की विद्वता का परिचय मिलता है। विषय वस्तु यद्यपि धार्मिक है परन्तु हिन्दी साहित्य की प्राचीनतम गद्य रचनाओं में अभ्युदय काल या स्वर्णकाल की इस षडावश्यक बालावबोध कृति को सबसे प्रौढ़ कृति कहा जा सकता है।

१- साहित्यकार-नवम्बर-दिसम्बर", १९५८ में लेखक का हिन्दी साहित्य की प्राचीनतम गद्य रचनाएं" लेख।
२- षडावश्यक बालावबोध- आचार्य तरुणप्रभसूरि (हस्तलिखित प्रति-अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित)।

आचार्य सूरि का व्यक्तिगत जीवन, जन्म आदि स्पष्ट नहीं होता। मात्र सहायक ग्रन्थों से ही कुछ परिचय मिल पाता है।[1] खरतर गच्छ में इनकी सं० १३६८ में दीक्षा व साहित्य साधना प्रारम्भ हुई। अपने ग्रन्थ में इन्होंने अपनी शिक्षा दीक्षा तथा साधना पर प्रकाश डाला है। तरुणप्रभ धुरन्धर महारथी थे तथा संस्कृत प्राकृत और लोक भाषा या तत्कालीन बोलियों में रचना करने में उनकी शक्ति अभूतपूर्व थी।

ग्रन्थ का विषय-

बालावबोध शैली भाषा टीकात्मक गद्यपद्धति है जिस पर पूर्व पृष्ठों में प्रकाश डाला जा चुका है। प्रस्तुत कृति जैन धर्म के आवश्यक कर्मों पर लिखी गई है जिसकी मुख्य संवेदना, धर्मोपदेश, शील तथा धर्म प्रचार ही है। कृति का रचना काल स्वयं लेखक के शब्दों से सं० १४११ स्पष्ट होता है।[2] रचना शैली उपदेशात्मक है शब्द छोटे और गम्भीर विवेचन करने में सक्षम है। आचार्य की कृति उनके गंभीर अध्ययन, मनन और अनुशीलन का परिचय देती है। कथात्मक शैली उदाहरणों, अर्थान्तरन्यासों और दृष्टान्तों से पुष्ट किए हुए गद्य को प्रस्तुत करती है।

जहाँ तक कृति की भाषा का प्रश्न है, ऐसी उत्तम गद्य कृति दूसरी नहीं है। संस्कृत प्राकृत और उसके साथ जन भाषा के उदाहरण उपस्थित हैं। लेखक का भाषा पर असाधारण अधिकार है। शब्द सधा हुआ तथा शैथिल्य रहित है उसमें एक अद्भुत पूर्ण संभार है। शब्दों का सुगठित स्वरूप हिन्दी साहित्य में गद्य की तत्कालीन सम्पन्नता को सिद्ध करता है। आचार्य जी का काव्यात्मक प्रवाह गद्य की सरसता को और भी निखार देता है। बालावबोध शैली में रचा गया यह पहला ग्रन्थ है जिसमें प्रौढ़ गद्य लेखक की अभिरुचि, जनता की धार्मिक मनोवृत्तियों

१- देखिये- युगप्रधानाचार्य गुर्वावली-प्रति(क्षमाकल्याण ज्ञान भंडार बीकानेर में सुरक्षित
२- षडावश्यक बालावबोध- पुष्पिका-सं० १४११ वर्ष दीपोत्सव दिवसे शनिवारे श्री मदणहिल्ल पत्तने षडावश्यक वृत्तिसुगमा बालावबोध कारिणी सकल सत्वोपकारिका लिखिता।

व चरित्र को सबल करने के तत्व तथा रचयिता के भावों को सरल भाषा में प्रस्तुत करने की असाधारण क्षमता है।कृति की भाषा दुरूह नहीं, एकदम सरल है।क्लिष्टता से यह कृति कोसों दूर है।

गद्य के कुछ उदाहरण देखिए:-

१- वसंतपुर नामि नगर।जिनदास नामि श्रावकु।तेह तणउ महेसरदत्त नामि मित्रु।जिणदास आगास गामिणी विद्यातणइ बलि नंदी स्वरि द्वीपि शाश्वत चैत्य वांदिवा यउ।[1]

२- अन्नाणी किं काही किंवा नाहीति पावयंती (प्राकृत)

३- अज्ञानु किं करिष्यति - (संस्कृत)

४- किसौं करिसइ किसउ जाणिसइ-इत्यादि

५- आविउ हूंतउ महेसरदत्ति भणिउ मित्र ताहरइ देहि अपूर्व सुगन्धु गंधाइ। तिणि नंदीश्वर यात्रा वृतान्तु कहिउ।तउ महेसरदत्तु भणइ मूरहई पुणि आकाश गामिनी विद्या आपि तउ अति निर्बंधि कथइ हूंतउ जिण दासि महेसरदत्त रहई विद्या दीधी।

६- चन्नु जिनदत्त व इसी परिभावना भावइ।तदा तिणि नगरी केवली आविउ। राजादिके लोके वांदी पुछिउ-भगवन् जिनदत्तु पुण्यवंतु किंवा। अभिनवु पुण्यवंतु, केवली कहीइ जिनदत्तु पुण्यवंतु। लोक कहइ-भगवन अभिनव पाराविउ जिनदत्तु न पाराविउ

उक्त उद्धरणों द्वारा कृति की लोक प्रियता का अनुमान सहज ही लगाया जासकता है।राजस्थानी शब्दों के सरल प्रयोग और मधुर के संकाल में इस कृति ने चार चांद भरा है।कवित्वमय तथा सरस शैली से प्रस्तुत कृति को कवि ने स्वरंग देकर संवारा है।षडावश्यक बालावबोध में जैनियों ने ६ धार्मिक अंगों कर्मों का विवेचन किया है। वे षडकर्म है; १- सामायिक,(सम भावग्रहण) २- गुरुवंदन, ३- चतुर्विंशति स्तवन (चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति) ४- प्रतिक्रमण (पापों का

१- वही ग्रन्थ।द्वितीय प्रकरण पृ० १३-१४।

प्रायश्चित व त्याग) ५- कायोत्सर्ग (कष्ट पाना) ६- प्रत्याख्यान व्रत नियम, आहार आदि का त्याग।

उक्त कृति के पश्चात् गद्य साहित्य क्षेत्र में आचार्य सोमसुन्दरसूरि ने प्रवेश किया। गद्य को दिशा आचार्य तरुणप्रभ ने दी और सोमसुन्दर ने बालावबोध के क्षेत्र में लगभग ८ प्रसिद्ध कृतियों का योगदान किया है:-

(१) उपदेशमाला बालावबोध सं० १४८५

(२) षष्टि शतक बालावबोध सं० १४९६

(३) योगशास्त्र बालावबोध

(४) भक्तामर स्तोत्र बालावबोध

(५) नवतत्वबालावबोध

(६) पर्यन्त आराधना बालावबोध

(७) षडावश्यक बालावबोध

(८) विचारग्रन्थ बालावबोध।

इन ग्रन्थों में कुछ उद्धरणों पर विचार किया जा सकता है। क्योंकि इन कृतियों की शैली शिल्प और वस्तु में लगभग पर्याप्त समानता है। इन कृतियों में छोटी छोटी कथाएं हैं भाषा अधिकांश कृतियों की प्राचीन राजस्थानी या पुरानी गुजराती है। इनमें उपदेशों का सुन्दर संग्रह है। प्राकृत और संस्कृत के दुरूह वाक्यों को सरलतम बनाने के लिए तथा जन साधारण के लिए सुलभ करने के लिए ही इन कृतियों की रचना हुई है। योग शास्त्र हेमचन्द्र का ग्रन्थ है इसी पर कई बालावबोध तथा कथाएं रची गई हैं।

जहां तक इन ग्रन्थों के साहित्यिक तत्व का प्रश्न है वह अधिक नहीं है फिर भी इन कृतियों में भाषा कड़ियाँ स्पष्ट परिलक्षित होती है। उक्त रचनाओं में सभी का विश्लेषण करना यहां संभव नहीं है। एक दो रचनाओं का परिचय तथा गद्य के उद्धरण यहां दिए जा सकते हैं।

उपदेश माला बालावबोध में आचरण की पवित्रता पर प्रकाश डालने वाली छोटी बड़ी प्राकृत कथाओं का ग्रन्थ है। रचना का उद्देश्य धार्मिक उपदेश है।

प्राकृत गाथाओं का विश्लेषण करने के लिए ही इसमें रचनाकार ने उनकी व्याख्या प्रस्तुत की है।योगशास्त्र बालावबोध श्री हेमचन्द्रसूरि का लिखा संस्कृत ग्रन्थ है। श्री सोमप्रभसूरि ने उसी पर यह बालावबोध लिखा है। रचना के नाम से ही स्पष्ट है कि लेखक ने उसमें योग सम्बन्धी तत्वों का विश्लेषण किया होगा।योग की स्थिति, योगी पुरुष व योग के गुण वर्णन,पंच महाव्रत, आदि के साथ श्रावक के गुण, सम्यकत्व का विश्लेषण, इन्द्रियों का वर्णन,मन का शुद्धिकरण और उसका स्वरूप, भावनाओं का वर्णन तथा ९ आसनों तथा अतिचार और श्रावक के ५ अणुव्रतों का परिचय मिलता है। इन धार्मिक उपाख्यानों की भाषा सरल है। कथा तत्व की सरसतासे धर्मगत उपदेशों की सारी शुष्कता मिट जाती है।इन कथाओं में भाषा के विकास के सोपान हैं।

दोनों कृतियों में साहित्यिक तत्व साधारण है यहां तक कि षडावश्यक बालावबोध की भांति ये रचनाएं प्रौढ़ नहीं है परन्तु फिर भी गद्य साहित्य के विकास क्रम में उल्लेखनीय है। दोनों के गद्य के कतिपय उद्धरण देखिए:-

१- पर्वतक अर्ध राज्यनु लेणहारमणी एक नंदराजनी बेटी तवणे करी विषकन्या आंणी मईपरणाविओ कम्प्रयुक्त विसना उपचार करतओ वारिओ।

२- अनइ एक पर्वतक राजा विष कीधो छई। तेहनइ मरि चाणक्यइ कटकसी पाडलि पुरि आवी नंदराय काढी राज्य लीधउं।

३- तिम अनेराई आपापणा काज करिवा धूर्ति मिलइ अनर्थ करई

४- चाणक्य चाहमणि चन्द्रगुप्त राज्य बीजूअ भणी संभालियो छ।(उप०मा०)

इसी तरह का एक उदाहरण और देखिए:-

पाडलपुरि धन सार्थवाहनई करि रही महासती गई श्रुति श्री वयर स्वामिना गुण सांभली सार्थवाह नी बेटी इसी प्रतिज्ञा करई वापई भणि श्री वयर स्वामिहिटालीबीजाअई पाणिग्रहण करउं इसि एक बार श्री वयर स्वामी तीणइ नगरि पा उधारिया धन सार्थवाह अनेक सुवर्णरत्ननी कोडि सहित आपणी कन्या लेइ श्री वयर स्वामी कन्हइ आविउ।मनमांहि ते सार्थवाह सूकवित तेहनी बेटी सूणी दीक्षा लेव रावी लगाडइ मनि लोभ

माणिक[1]

५- एक बार लोके विनचिद-स्वामी को एक चोर नगर लसुइ छइ, पुण चोर आणीर नहीं। राजई कहिउं थोड़ा दिहाडा मांहि चोर प्रगट करिसु तम्ह असमाधि म करिसउ।पछई राजा इतलार तेडी हांकिउ।तलार कहइ मई अनेक उपाय कीधा पुण ते चोर धराइ नहीं।---

६- पछइ राजा आपण मई रात्रिइं नीलउ पछलउं पहिरि नगर बाहरि जेवे चोर स्थान के फिरते, चार जोवउ एकई स्थान कि- जइ पुहत।तेतलई मंडिक चोरई दीठउ जगाविउ पूछिउ- स्वम तउं सीधि कहिउं- हुं कापडी भीकारी। मंडिक चोरि कहिउं आवि तउं मूं साथिई जिम तुहई लक्ष्मीवंत करउं।(यो०मा०)

षडावश्यकबालावबोध- (सं० १५०१) का उदाहरण भी तुलनात्मक दृष्टि से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है:-

वाराणसि नगरी, कीर्तिपाल राजा।भीम बेटउ।राजानइ मित्र सिंह श्रेष्ठि। एक बार दूत एक आवी राजा हइं बीनवइ स्वामी नागपुरि नगरि नागचंद्र राजा तम्ह गुणमाला कन्या। ते ताहरा पुत्र हई। देव बाळई प्रसादकरउ।पुत्र मोकलउ राजा सिंघ श्रेष्ठि नइ कहिउं।जाउ कुमरनउ विवाह महोत्सव करि आवउ श्रेष्ठि कहई नागपुर इहां थकउ सो योजन वाहिलउ हुइ मक रहिउं। इसी जो अम उपकरउ आया भीम छंड।तिह भणी नहीं जाउ राजा कुपिउ कहइ जउ माहि आवं तउ तुहई डंटि पाली।जो अम कहउ करई मूकाविसु।

बालावबोध शैली की अन्य कई ग्रन्थ मिलते है जिनमें खरतर गच्छ के मेरु सुन्दर सूरि का नाम उल्लेखनीय है।इनका रचना काल सं० १४८० से १५३० तक है। राजस्थानी में इनकी अनेक टीकायें उपलब्ध होती है।बालाव बोध रचनाओं में सबसे अधिक इन्हीं की है।वे रचनायें इस प्रकार है:-

---

१- अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित।

२- अभय जैन ग्रन्थालयबीकानेर में सुरक्षित।

(१) शीलोपदेशमाला बालावबोध।
(२) पुष्पमाला बालावबोध।[१]
(३) षडावश्यक बालावबोध।[२]
(४) शत्रुंजय स्तवन बालावबोध।[३]
(५) कर्पूर प्रकरण बालावबोध।[४]
(६) योग शास्त्र बालावबोध।[५]
(७) पंच निर्ग्रंथी बालावबोध।
(८) अजितशांति बालावबोध।
(९) भावारिवारण बालावबोध
(१०) कल्प प्रकरण बालावबोध
(११) योग प्रकाश बालावबोध।
(१२) षष्टि शतक बालावबोध।
(१३) वाग्भटालंकार बालावबोध तथा
(१४) विदग्ध मुख मंडल बालावबोध[६]।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त मेरु सुन्दरसूरि की कुछ अन्य रचनायें भी उपलब्ध हैं। राजस्थानी गद्य लिखने में मेरुसुन्दर की सभी रचनायें पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं। उक्त रचनायें विविध विषयों पर लिखी गई हैं पर, अधिकांश रचनाओं के मुख्य धार्मिक हैं। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि हिन्दी जैन वाङ्मय की आदिकालीन

१- वही संग्रहालय २- मु०संघ भंडार पाटण में। ३- भंडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना।
४- पुराना संघ भंडार पाटण। ५- मोदीजी भंडार उदयपुर तथा मुनिजिनविजयसागर संग्रह, कोटा। ६- जैन कृतियाँ डूंगरजति भंडार जैसलमेर, डोसाभाई अभयचन्द्र भंडार भावनगर, विवेकविजयभंडार उदयपुर आदि में।

६ इन कृतियों की सूचना श्री अगरचन्द जी नाहटा ने दी। इनमें से पहली रचना का नाम अंजनासुन्दरी कथा-विनय जैन साहित्य मंदिर, पालीताना में और दूसरी प्रश्नोत्तर ग्रन्थ-नहिका यति भंडार, बीकानेर में सुरक्षित है।

बालावबोध संज्ञक हिन्दी गद्य रचनायें विशाल संख्या में उपलब्ध हैं।

इन कृतियों में तथा प्रसिद्ध लेखकों के अतिरिक्त गद्य साहित्य को विकसित करने वाली अनेक रचनायें और भी मिलती हैं।

जयशेखर सूरि(सं० १४००-१४१२) इस काल के प्रमुख गद्य लेखक थे जिन्होंने १९ ग्रन्थों का सृजन किया।[१] जयशेखर सूरि अपने समय के प्रसिद्ध कवि तथा आचार्य रहे हैं। जिनकी जैन अजैन विषयों पर उपलब्ध काव्यों का परिचय हम पहले के अध्यायों में करा चुके हैं। त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध जैसे रूपककाव्यों के इस निर्माता ने गद्य ग्रन्थों में भी अपना स्थान बनाया है। इनका प्रमुख ग्रन्थ श्रावक ब्रहदतिचार है।[२] इसके अतिरिक्त इस काल के गद्यकारों में तपागच्छ के श्री साधुरत्न सूरि का नवतत्व विवरण बालावबोध (सं० १४५६)[३],हेमहंसगणि (सं० १५०१) का षडावश्यक बालावबोध[४] आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। इन लेखकों की रचनाओं में प्रौढ़ गद्य के दर्शन होते हैं। अनेक कृतियां ऐसी भी उपलब्ध होती हैं जिनके लेखक ही अज्ञात हैं ऐसी रचनाओं में प्रमुख हैं- श्रावक व्रतादि अतिचार(सं० १४६६)[५] तथा कालिकाचार्य कथा[६] (सं० १४८५) इनमें कालिकाचार्य कथा बड़ी महत्वपूर्ण है। गद्य की शैली में यह रचना काव्य का सा रस घोलती है।प्रासादिक शैली में माधुर्य का उन्मेष दृष्टव्य है।नाहटाजी के भंडार में यह रचना सुरक्षित है।लघु वाक्य सरल लाक्षणिक तथा प्रभावपूर्ण और अनुप्रासात्मक योजना दृष्टव्य है।उदाहरण और दृष्टान्तों की जो छटा भी इसकी जाती है एकाध उदाहरण इस परंपरा का उल्लेखनीय है:-

---

१- जैनसाहित्य का संक्षिप्त इतिहास:श्री मोहनलाल देसाई-टि०४०९,१४,१०७तथा१०८
२- जैन गुर्जर कविओ- भाग १ पृ० १५०३- श्री देसाई।
३- मोहनलालजी भंडार बम्बई में सुरक्षित(नाहटा जी की सूचनानुसार)
४- मेहरचन्द भंडार बीकानेर तथा अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर।
५- प्राचीन गुजराती संदर्भ पृ० ६८ मुनिजिनविजय।
६- अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में।

१- जिसउ चंचल इन्द्रधनुष नु आकार जिसउ चंचल मन नउ व्यापार।
जिसउ चंचल बीजनु झुत्कार।जिम दौहिल्उं प चारित्र।जिसउ चंचल
ठाकुरनउ अधिकार। जिसउ पीपलनुं पान तिसी चंचल राज्य लक्ष्मी
जाण तुम सरीखा सुविवेकी प्राणी इसीया संसार खीया कूआ मांहि
कांइ पडइ दुर्गति कांइ रडवडइ।[१]

श्रावक बृहदतिचार की भाषा का एक उदाहरण अलम् होगा:-

पडमइणयबइ विनय वैयावच्चि देव पूजा सामाजिक पोषहि दान
शील तप भावनादि की धर्मकृत्य मन वचन काय तणउ छतउ बल छतवउं
वीर्य गोपविउं। वमासण दीधा नहीं। वांदणाना आवर्त विधइं साचविया
नहीं। बइठा पाडिक्कमणं कीधउं। वीर्याचार अनेक जुको अतिचार[१]।

इस प्रकार धार्मिक गद्य साहित्य में बालावबोध टीका साहित्य और अतिचार
संज्ञक रचनाएं मिलती हैं जिनका लक्ष्य धार्मिक होते हुए भी उनमें साहित्यऔर भाषा
विषयक सौन्दर्य पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

---

(४) ऐतिहासिक गद्य साहित्य -

गद्य की इस धारा में इतिहास से सीधा सम्बन्ध रखने वाली कुछ गद्य
रचनाएं उपलब्ध होती हैं। इन ऐतिहासिक रचनाओं में कुछ महापुरुषों जैनाचार्यों
और गण, गच्छ तथा पट्टों का विवरण मिलता है।ऐतिहासिक गद्य साहित्य का
प्रतिनिधित्व करने वाली इस प्रकार की रचना अद्यावधि सिर्फ एक ही उपलब्ध
हुई है परन्तु अजमेर, नागौर, बीकानेर, दिल्ली, मेरठ मुजफ्फरनगर, अम्बाला
छावनी आदि स्थानों के जैन भंडारों की सम्यक् शोध होने पर यह बहुत सम्भव है
कि इस विचारों शोध में वाली कई गद्य की रचनाएं उपलब्ध हों।

१- अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में।

उपलब्ध कृति गुर्वावली है। रचना बीकानेर में सुरक्षित है। रचनाकार श्री जिन-वर्द्धन हैं और रचनाकाल सं० १४८० के बाद। जिनवर्द्धनने इसमें तपागच्छ के जैनाचार्यों की पट्ट नामावली महावीर स्वामी से सोमसुन्दर सूरि तक दी है। इसमें विशेषता यह है कि इन पट्टधर आचार्यों का कवि ने गद्य काव्य की भाँति प्रवाहपूर्ण भाषा में वर्णन किया है। पूरा वर्णन अन्त्यानुप्रास से युक्त है। पट्टधर आचार्यों की सम्यक् नामावली प्रस्तुत करने में उनका धार्मिक तथा सामाजिक इतिहास प्रस्तुत करने में यह रचना पर्याप्त सहायता करसकती है। भाषा में विकास, गद्य की क्रमोन्नति, शब्द चयन का सौष्ठव, लेखक की समास प्रधान शैली भाषा का प्रवाह गति शीलता क्रियापदों की सरलता और तुकान्तता रचना का महत्व और अधिक बढ़ा देता है। एक उदाहरण एतदर्थ पर्याप्त है:-

जिम नरेन्द्र मांहि राम, जिम रूपवन्त मांहि काम

जिम स्त्री मांहि रंभा, जिम वादित्र मांहि भंभा

जिम सती मांहि सीता, जिम स्मृति मांहि गीता

जिम साहसीक मांहिं विक्रमादित्य, जिम ग्रहगण मांहिं आदित्य

जिम रत्न मांहि चिन्तामणि, जिम आभरण मांहि चूडामणि

जिम पर्वत मांहि मेरु भूधर, जिम गजेन्द्र मांहि एरावण सिंधुर

जिम रस मांहि शृङ्ग, जिम मधुर वास्तु मांहि अमृत

जिम तीर्थ प्रतिका कि, सकल गच्छ अम्बरार्क।[1]

इस प्रकार गद्य साहित्यका प्रतिनिधित्व करने वाली यह अकेली रचना १५वीं शताब्दी की होते हुए भी इसका गद्य बड़ा प्रौढ़ है। उपमायें सुन्दर एवं सरल हैं रचना अलंकारित है। भाषा की सरलता, शब्दों की तुकान्तता अनुप्रास पूर्ण तथा लगभग सभी अंश ही काव्यमय है। अनेक उदाहरण भाषा गत सौकर्य के लिए द्रष्टव्य हैं:-

---

१- अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर में श्री अगरचन्द नाहटा के पास संग्रहीत।

चारित्र्य लक्ष्मी कंठ कंदाल हार, निरुपम ज्ञान भंडार सकल सूर
शिरोमणि, श्री तपोगच्छ नभरे मणि क्यादित मतांग सीह, निर्मल
क्रिया वंश महिलीह वाउद विद्या आगर गंभीरिम तर्जित सागर अज्ञान
तिमिर निराकरण, सूर कषाय दावानलवारि पूर निज देश ना
विबोधि तानेक देशजन निजगुण लक्ष्मी प्रणीत सज्जन।
नवकल्प विहार अट्ठाशीस वज्जित आहार श्री शासन शृंगार, प्रग
प्रधानावतार

वस्तुतः इसी प्रकार की गद्य रचनायें गद्य साहित्य के विकासक्रम में नया मोड़ देने में सक्षम है।

---

(५) गद्य काव्य का उद्भावक एवं प्रेरक गद्य साहित्यः

अभ्युदयकाल में गद्य काव्य की उद्भावक रचनायें मिलती है इसलिए काव्यात्मक दृष्टि से अभ्युदय काल आदिकालीन हिन्दी गद्य का स्वर्णकाल कहा जा सकता है। अब तक प्राप्त रचनाओं में तुक प्रधान गद्यात्मक रचनायें तो कई मिलती है जिनका विवेचन पहले किया जा चुका है परन्तु उनका काव्य की दृष्टि से महत्व साधारण ही कहा जायगा।यों वैविध्यतामें बहुत है तथा संख्या में भी वे अनेक है। अतः गद्य काव्य का उद्भावक एवं प्रेरक गद्य साहित्य काव्य की दृष्टि से और भी अधिक महत्व पूर्ण है। अभ्युदय काल के पूर्व भी गद्य काव्य की भांति सुषमा प्रस्तुत करने वाला गद्य कुछ जैन रचनाओं में मिला है जिस पर इसी अध्याय में आगे प्रकाश डाला जायगा।परन्तु जैन रचनाओं में गद्य काव्य का उद्भव और विकास प्रस्तुत करने वाले आध्यात्मिक भावा में परिचित होते है।

यहां गद्य काव्य शब्द का अर्थ समझ लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है। काव्य के दृश्य और श्रव्य दो प्रमुख प्रकार होते है। जिनमें दृश्य काव्य में नाटक और श्रव्य काव्य में पद्यात्मक गद्यात्मक तथा मिश्र रचनायें आती है।पद्य में जितने काव्य रचे गए है उनमें अधिकांश काव्य छंद प्रधान होते हैं।गद्यात्मक विभाग के

अन्तर्गत प्रबन्ध और मुक्तक होते हैं और प्रबन्ध के महाकाव्य, खंड काव्य तथा चंपू काव्य भेद किए जा सकते हैं तथा मुक्त के स्तोत्रस्तवन एवं सुभाषित होते हैं पद्य काव्य की ही भाँति गद्य काव्य भीकाव्य प्रधान होता है पर उसको छन्द के बंधन में बाँधना अनिवार्य नहीं है। छन्द को छोड़कर शेष सब काव्य के गुण उसमें देखे जासकते हैं। वामन ने गद्य के वृत्तगन्धि, उत्कलिका प्रायः और चूर्णक तीन प्रकार तथा साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने मुक्तक गद्य और कहकर चार भेद किए हैं। जिनमें पाद या पद के अर्थ किस छन्द में मिलते हैं उसे वृत्तगन्धि, लम्बे लम्बे समास प्रधान गद्य को उत्कलिका प्रायः और छोटे छोटे समस्त पद को चूर्णक और समस्त पदों के अभाव वाले गद्य को मुक्तक नाम दिए गए हैं।

गद्य काव्य के कथा और आख्यायिका दो भेद किए गए हैं जैसे कादम्बरी को कथा और हर्ष चरित को आख्यायिका के नाम से अभिहित किया गया है चम्पू काव्य मिश्र काव्य का एक भेद है। चम्पू काव्य के साथ साथ मिश्र काव्य के विरुद्ध और करम्भक ये दो भेद और भी होते हैं। वर्णनात्मक मिश्रकाव्य को चम्पू काव्य, गद्य पद्यात्मक राजस्तुति को विरुद और अनेक भाषा प्रधान मिश्र काव्य को करम्भक कहते हैं।[१]

प्रश्न है कि पद्य और गद्य में से पद्य को प्रधानता क्यों मिली।कारणों की व्यवस्था करते हुए कहा जा सकता है कि एक तो पद्य याद करने या कंठस्थ करने में सरलता होती है पद्य लोकप्रिय शीघ्र बनता है अर्थात् उसका जन साधारण में महत्व तथा प्रचार बढ़ता है।अतः इसकी उपयोगिता अधिक रहती होगी।और सम्भवतः यही कारण है कि हमारे प्राचीन अध्येताओं और विद्वानों द्वारा जिन जिन ग्रन्थों का उदाहरणार्थ- कोष,गणित, वैद्यक ज्योतिष छंद आदि-प्रणयन हुआ है वे सब पद्यबद्ध ही अधिक हैं।साथ ही पद्य प्रधान तथा काव्य प्रधान होने से वे मधुर रोचक कल्पना प्रधान, प्रभावक भी हो जाते हैं। यही कारण है किहमारा अधिकांश साहित्यपद्यबद्ध अधिक है। धीरे धीरे गद्य का भी विकास हुआ। प्रकाशन

---

१. देखिए कल्पनाः मार्च १९५६ पृ० २१०-२१७।

यंत्रों और मुद्रक प्रेसों ने गद्य के विकास में अभूतपूर्व योग दिया। वस्तुतः यह कहा जासकता है कि पद्य का विकास में जितना योग लोक भाषाओं ने दिया उतना गद्य के विकास में नहीं दिया और यही कारण है कि प्रादेशिक भाषाओंमें पद्य की तुलना में गद्य नहीं के बराबर ही मिलता है। हिन्दी भाषा में भी मैथिली के गद्य ग्रन्थ से प्राचीन कोई गद्य रचना अभी तक नहीं उपलब्ध होती। हां राजस्थानी और जूनी गुजराती में इस प्रकार का गद्य साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुआ है अतः हिन्दी के गद्य साहित्य की श्रीवृद्धि इन्हीं प्रदेशों का गद्य साहित्य करता है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी,कन्नौजी आदि प्रादेशिक भाषाओं में भी गद्य अवश्य ही लिखा गया होगा। ऐसा अनुमान किया जा सकता है परन्तु संभवतः यह आक्रमण कारियों द्वारा, सुरक्षा ठीक प्रकारसे होने की व्यवस्था के अभावके कारण तथा प्राकृतिक व्याघातों द्वारा नष्ट हो गया होगा। अद्यावधि इन प्रदेशों से गद्य की वर्णरत्नाकर की भांति कोई भी प्रति नहीं मिली है परन्तु वर्ण रत्नाकर के गद्य की सम्पन्नता के आधार पर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अन्य प्रादेशिक भाषाओंमें गद्य की ऐसी सम्पन्न कृतियां अवश्य हुई होंगी जो आज अनुपलब्ध है। कई विभाषाओं में तो सम्यक्बोध का अभाव ही इसका कारण हुआ है। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि आदिकाल की गद्य साहित्य परम्परा पर्याप्त प्राचीन है।गद्य और गद्य काव्य में भी अन्तर है। गद्य के सम्पन्न होने के पश्चात् ही गद्य काव्य का प्रश्न सम्भव है।गद्य काव्य रस पेशल होता है। वह रसात्मक काव्य गुणोपेत विशिष्ट गद्य संयत रूप पर छन्दों के बन्धनों से रहित रचना गद्य काव्य के नाम से अभिहित है साधारण गद्य को इसमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।मद्य में होते हुए भी जिसके पढ़ने और सुनने में पद्य का आनन्द या रस मिले वही गद्य काव्य है।[1]

अतः गद्य काव्य में पद्य का आनन्द अनुभूत कराने की शक्ति होती है। इसमें छन्दोनुबंध अनावश्यक होता है और सरसता एक रस विद्यमान रहती है।

१- देखिए राजस्थानी गद्य काव्य परम्परा: शीर्षक श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

अतः यहाँ इसी गद्य काव्य की परम्परा के इतिहास पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

जिस तरह गद्य का विकास पद्यके साथ ही साथ हुआ प्रतीत होता है ठीक वैसे ही गद्य काव्य का विकास भी पद्य काव्य के साथ ही साथ हुआ रहा होगा। गद्य काव्य की प्राचीनता भी पद्य की प्राचीनता की भाँति ही पुरातन कहा जायगी।वेदोंमें कहीं कहीं जो सरस वाणी मिलती है वाक्य मैत्रि, व्यंग्यात्मक और रस पेशल पद्य की अनुभूति कराने वाले मिलते हैं। वेदों के पश्चात् महाभारत में भी गद्य काव्य को विकास मिला ऐसा प्रतीत होता है। महाभारत के पश्चात् जैन आगमों में गद्य काव्य के व्यवस्थित उदाहरण मिलने लगते हैं।इसके पश्चात् नाटकों को लिया जा सकता है। नाटकों के गद्य ने भी गद्य काव्य के उत्कर्ष में पूरी सहायताकी है भास कालिदास भवभूति आदि के नाटकों के सुन्दर गद्यांशों में सुन्दर गद्य काव्य के दर्शन होते हैं।संस्कृत ग्रन्थों में दण्डी का दशकुमार चरित, जो ईसा की छठी शताब्दी के आसपास में रचा गया है, गद्य काव्य की उत्कृष्ट रचना है। सुबंधु की वासवदत्ता को भी नहीं भुलाया जासकता।इस रचना का प्रत्येक शब्द ही सरस तथा श्लेष का बेजोड़ निर्वाह है। वासवदत्ता के पश्चात् गद्य काव्य के महान प्रणेता बाणभट्ट हैंजिनके प्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बरी और हर्ष चरित हैं। कादम्बरी सुन्दर सरस और उत्कृष्ट रचना है जिसमें बाण का सारा कवि हृदय उभर आया है। लम्बे लम्बे आलंकारिक वाक्यों में गुंथी हुई मधुर वर्णन की सुषमा कवि ने गद्य काव्य प्रणेताओं में प्रेरणा ही थी। और बाण के ग्रन्थ की ही भाँति उत्कृष्ट गद्य काव्यात्मक रचना धनपाल की तिलकमंजरी कही जायगी। तिलक मंजरी कादम्बरी की ही भाँति गद्य काव्य का उत्कृष्ट ग्रन्थ है और विश्व के किसी भी साहित्य की समता में रखी जा सकने वाली अनूठी कृति है। श्री अगर चन्द नाहटा ने अपने लेख में धनपाल की इस गद्य काव्य की अनूठी रचना के विषय

में लिखे श्री मुनिजिनविजय जी के विचारों को उद्धृत किया है।[1] गद्य काव्य के क्षेत्र में, गद्य काव्य की परम्परा को आगे बढ़ाने में वास्तव में धनपाल की तिलक मंजरी ने असाधारण योग दिया है।मुनिजी का मत धनपाल के इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में पर्याप्त महत्व का है- समस्त संस्कृत साहित्य के अनन्त ग्रन्थ संग्रह में बाण की कादम्बरी के सिवाय इस कथा की तुलना में खड़ा हो सके, ऐसा कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है। बाण पुरोगामी है।उसकी कादम्बरी की प्रेरणा से ही तिलक मंजरी रची गई है पर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि धनपाल की प्रतिभा बाण से च़ढ़ती हुई न हो तो उतरती हुई भी नहीं है।अतः पुरोगामी ज्येष्ठ बन्धु होने पर भी गुण धर्म की अपेक्षा दोनों गद्य महाकवि समान आसन पर बैठाने के योग्य है।धनपाल का जीवन भी बाण के ही समान गौरवशाली रहा है। इस कथन में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है।[2] तिलक मंजरी का अनुगमन गद्य काव्य के क्षेत्र में दिगम्बर जैन कवि वादीभसिंह के ग्रन्थ गद्य चिन्तामणि ने किया। इस रचना के पश्चात् लगभग ४०० वर्षों तक श्रृंखलाबद्ध गद्य काव्य लिखे जाने की धारा सूख सी गई। मुक्तकों के रूप में गद्य काव्य के यत्र तत्र उद्धरण मिलते अवश्य हैं पर वे परम्परा निर्वाह के लिए भी अपर्याप्त कहे जायेंगे। १५वीं शताब्दी में वामन भट्ट का वेम भूपाल चरित गद्य काव्य का ग्रन्थ मिलता है।इसका पद्य विन्यास,माधुर्य सरस अलंकार योजना विप्रलंभ श्रृंगार बाण के अनुरूप माने गये हैं। भाषा सरल और मधुर है कवि ने अपने लिए सार्वभौम विशेषण प्रयुक्त किया है।[3]

संस्कृत के पश्चात् गद्य काव्य की झलक प्राकृत भाषा में कहीं कहीं देखने को मिलती है। इन ग्रन्थों में वस्तु योजना की विलक्षणता मिलती है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के शिलालेखों के गद्य में भी काव्य का सा आनन्द मिलता है जिसे गद्य काव्य के पूर्वरूप कहा जा सकता है।[4] अपभ्रंश में गद्य का स्वरूप

१- कल्पना: मार्च, १९५७ पृ० २१०।
२- कल्पना मार्च, १९५७ पृ० २११। ३- वही। ४- वही लेख, वही० पृ०।

ही मिलता ही है। इन प्राचीन ग्रन्थों में गद्य जिन जिन रूपों में जैसा जैसा भी सुरक्षित मिलता है उनके उद्धरण गद्य रचनाओं के इसी अध्याय में परम्परा के रूप में दिए गए हैं। इन ग्रन्थों में सबसे प्रमुख ग्रन्थ कुवलयमाला के कथानक, प्रबन्धचिन्तामणि के भाषा कथानक तथा उक्ति व्यक्ति प्रकरण में उद्धृत गद्यांश है। अपभ्रंश में पूर्ण गद्य काव्य की अलग से कोई रचना अभी तक उपलब्ध नहीं होती पर भंडारों की शोध होने पर इस प्रकार की गद्य काव्यात्मक कई कृतियों के मिलने की आशा है क्योंकि यह कहना एकदम बहुत कठिन होगा कि अपभ्रंश जैसी भाषा के पास जितने उत्कृष्ट महा काव्य साहित्य को दिए है, गद्य काव्य का अभाव है।

अपभ्रंश के उत्तर काल में गद्य काव्य की रचनाएं मिलने लगती है। प्राचीन राजस्थानी तथा जूनी गुजराती में गद्य काव्य के सुन्दर नमूने उपलब्ध हुए हैं। १०वीं शताब्दी का बम्बई के प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय में स्थित एक शिला लेख में राउल के नखशिख वर्णन में कवि ने उत्कृष्ट मौलिक विषय उपमानों से युक्त सुन्दर गद्य काव्य लिखा है।अद्यावधि आदि कालीन हिन्दी गद्य काव्य मूलक रचनाओं में सबसे अधिक प्राचीन यही रचना है जिसका रचना काल या लेख काल १०वीं शताब्दी का है। इस शिलालेख पर जैनेतर लौकिक काव्यों के प्रमुख भाग में प्रकाश डाला गया है। यह रचना गद्यकाव्य की परम्परा का प्रारम्भिकरने वाली सबसे प्राचीन कृति है। साथ इसी अध्याय में मैथिली की रचना वर्ण रत्नाकर पर भी प्रकाश डाला गया है। इन अजैन रचनाओं द्वारा बहुत सम्भव है गद्य काव्य की परम्पराके उद्भव और विकास को समझाने में सहायता मिलेगी।हिन्दी की प्रादेशिक भाषाओं, लोक प्रचलित परम्पराओं और मौखिक या अलिखित साहित्य में इस प्रकार की अनेक अजैन रचनाएं अभी छिपी पड़ी होंगी जो सम्भवतः धीरे धीरे प्रकाश में आयें। मैथिली की ही भांति मालवी की, अवधी, ब्रज मगही, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी और कालपी आदि बोलियों में भी सम्भवतः गद्य काव्य की और भी रचनाएं प्राप्य हों। पर इस समय तक हिन्दी की इन प्रादेशिक विभाषाओं में प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती की कृतियों ने पर्याप्त

हस्तलिखित प्रतियों के रूप में भी इस समय उपलब्ध है।

यों हिन्दी भाषा में गद्य काव्य की परम्परा प्राचीन नहीं प्रतीत होती है। हिन्दी में वैसे गद्य की रचना ही विद्वानों ने १७वीं शताब्दी के मे मानी है। गोरखनाथ की कुछ रचनाओं का गद्य में होना मिलता है तथा उसका काल १३वीं से १५वीं शताब्दी तक बताया गया है पर गोरखनाथ की कृतियों की हस्तलिखित ग्रन्थ १८वीं शती के पहले के उपलब्ध नहीं है।अतः यह स्थिति असंदिग्ध नहीं कही जा सकती। अतः शोध की प्राप्त सामग्री के आधार पर वल्लभ सम्प्रदाय के ब्रजभाषा ग्रन्थों को ही हिन्दी का प्राचीन गद्य ग्रन्थ माना जाता रहा है परन्तु इस तथ्य का परिहार भी इस अध्याय में पूर्व वर्णित आदिकालीन हिन्दी जैन गद्य की प्राचीन रचनाओं के द्वारा हो जाता है।ये रचनाएं १४वीं

शताब्दी से ही मिलने लगीत है।यों यदि बम्बई के उस शिला लेख की काव्या -त्मक गद्य को इसका मूल उद्गम कहा जाय तो हिन्दी में गद्य की परम्परा १०वीं शताब्दी से ही मानी जा सकती है। हिन्दी साहित्यमें १७वीं शताब्दी में लिखी कुतुबुद्दीन आत (सं० १६३१) गद्य काव्य की रचना उल्लेखनीय है जो बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी मेंसुरक्षित है।[1]

अस्तु हिन्दी की प्रादेशिक विभाषाओं में प्राचीन राजस्थानी या पुरानी गुजराती की हिन्दी जैन रचनाओं में गद्य काव्य के प्रणयन में महत्वपूर्ण योग दिया है।ताड़पत्रीय प्रति से उपलब्ध सं० १३३६ का बालशिक्षा ग्रन्थ है। इसका मूल रूप संस्कृत में है जिसकी लेखक ने राजस्थानी गद्य में टीका की है इस रचना पर गद्य साहित्य के प्रारम्भिक काल में इसी अध्याय के पूर्व पृष्ठों में विचार किया जा चुका है।यों राजस्थानी में गद्य का शिल्प दो रूप में उपलब्ध होता है:-

(१) वचनिका और

(२) दवावैत-

[illegible] छंद विन होय
एक तुकांत बन्ध होत है एक अतुकांत बन्ध होय-देखिए कविमंछ द्वारा विरचित रघुनाथ रूपक गीतारो।

१- देखिए कल्पना- मार्च, १९५१- पृ० ३१२।

इन दोनों के दो दो भेद हो गए हैं:-

१- शुद्ध बंध

२- गद्यबंध

<u>वचनिका के भेद हैं:-</u>

१- पदबन्ध

२- गद्य बंध

इसको ऐसा चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।
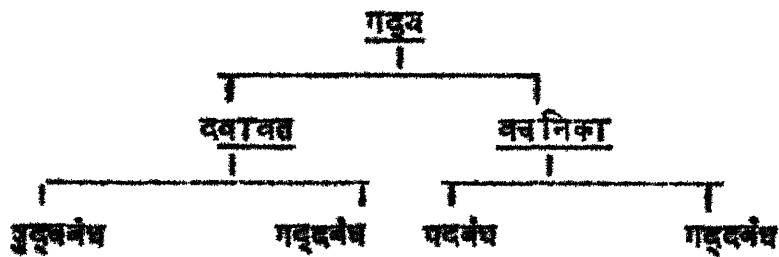
वचनिका व दवावैत के शिल्प पर आलोचकों ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। दवावैत कोई छन्द नहीं है जिसमें मात्राओं वर्णों तथा गणों का विचारहो। यह अन्त्यानुप्रास युक्त गद्य मात्र है।अन्त्यानुप्रास मध्यानुप्रास और किसी प्रकार वाक्यानुप्रास या यमक लिखा हुआ गद्य का प्रकार है।यह संस्कृत, प्राकृत, फारसी उर्दू और हिन्दी भाषा में अनेककवियों और ग्रन्थकारों द्वारा प्रयोग में लाया हुआ मिलता है।आधुनिक लल्लूलाल के प्रेम सागर आदि ग्रन्थों में तथा उर्दू के बहार बेहिश्त, गौवहन आदि ग्रन्थों में तथा फारसी के ग्रन्थों में देखा जाता है यह दवावैत दो प्रकार की होती है एक शुद्ध बंध अर्थात् पदबंध जिसमें अनुप्रास मिलाया जाता है और दूसरी गद्य बंध, जिसमें अनुप्रासनहीं मिलते हैं।

१- पद बंध का उदाहरण:-
(अ) प्रथम ही अयोध्याम्बरं जिसका बनाव
सारे योजन को चौड़े सौले योजन की घाव
चौहरफ के कैलाश चौहठ योजन के फिराव
जिसके को हरिताहरिद्र के पाट
सब कुशावक धूंघटे, जोसर कोसो के पाट।।
गद्यबन्ध का उदाहरण:-
हाथियों के झल्के बंधू बनाये होते, अमरापत के साथी मदजारी के टोले।

इसी प्रकार राजस्थानी के गद्य काव्य के रचना प्रकार वचनिका के भेदों का अध्ययन किया जा सकता है।[१]

इन रचनाओं के शिल्प से संस्कृत और राजस्थानी के गद्य काव्यों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। राजस्थानी के इस गद्य काव्य में तुक को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। वचनिका हिन्दी में विवेचनात्मक टीका को कहते हैं जब कि राजस्थानी में यह गद्य काव्य का स्वरूप तुकान्त प्रकार की रचना के लिए आता है।राजस्थानी भाषा में गद्य काव्यात्मक शैली में लिखी दवावैत और वचनिका संज्ञक रचनाएं यथा- (१) जिनलाभ सूरि दवावैत (२) नरसिंहदास दास गौडरी दवावैत (३) अचलदास खीची री वचनिका (४) रतनमहेश दासोतरी वचनिका[२] आदि थोड़ी ही मिलती हैं। राजस्थानी

अब देहु के दिग्गज विन्ध्याचल के सुजाव,रंगरंग चित्रे सुंडा डंडके बणाव।
धूल की धमूल और घंटू के ठणके, बादलों की जगमग मेरे मेरे मोरो की मकी बणके।
काल कदमू के मेहर भारी कनक की झुंब,जवाहर के जेहर दीपमाला की रूब।

१- वचनिका के दो प्रकार हैं-

दोय भेद वचन कारा, एक पद बंध दूजी गद बंध, सुपद बंध
होय भेद एक तो बारता दूजी बारता में मोहरा राखणा। दोय
गद बंध वचन का है एक तो आठ मात्रा रो पद हुवे दूजी गद बंध बीस
मात्रारो पद हुवे।

टीका कार श्री महताब चन्द खारेड ने इसके विशेष विवरण में लिखा है कि ये वचनिकाएं दवावैत की ही भेद मालूम होती है।इतना सा भेद मालूम होता है कि वचनिका कुछ लम्बी और विस्तृत होती है और गद्य बंध में जो कई छन्दों के जोड़े अर्थात् तुक है वचनिका के रूप में जुड़ते चले जाते है।

पद्य बन्ध का उदाहरण देखिए:

तिण सभा में श्रीमुखवाणी जिनमणी हारीफ आणी
जाडी जरजरी जाण पाई, इम आदू औरां में दीठा आई।।

गद्य बन्ध वचनिका:

(अ) ज्योतिर्मान रघुवर निवास, जी वचन सुन अरजपूर
इम्मंत पद इण सुन कहैव, जैसा सुहेम किनी कपेव
मे जठू जैन, सुन लिनत जैन पंकजदी जीव रहती सुरीव
इम हाथ आम अववाम पाव, बाबुर अमीत तिण हरी सीव

गद्य बंध वचनिका के दूसरे भेद को त्रिलोक कहा गया है:- रघुनाथ रूपक संस्कृत- तथा कल्पना- मार्च १९५६ पृ० २१२ में श्री नाहटा जी का लेख।

(ब) जोते दीवानखे इस डीवी आणी, सुन्दर मायां में लगे सुहाणी
देवाकाज इम्मंत जिनकी वरचाई, बीरां अनरारी कीधी कठाइ

२- रतन महेश दासोतरी वचनिका:सम्पादक डा० एल०पी० टेस्सीटोरी:प्रकाशक- रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल।अभयजैन ग्रन्थालय में रचना की प्रकाशित

गद्य काव्य को कहीं कहीं वार्ता या वार्तिक नाम से अभिहित भी किया गया है। कई रचनाएं देवी देवताओं के गुण वर्णन अर्थात् सलोका नाम से भी मिलती है। वार्तिक के रूप में सिखर वंशोत्पत्ति काव्य प्रकाशित है। केहर प्रकाश ग्रन्थ में तुकान्त गद्य को वार्ता कहा गया है।[१]

अस्तु राजस्थानी के इनगद्य काव्यों की परम्परावचनिका और वचनिका के रूप में २०वीं शताब्दी तक पाई जाती है।जिसमें प्रमुख ग्रन्थ १६वीं शताब्दी का जैसलमेर से प्राप्त पृथ्वीचन्द्र तथा १७वीं शताब्दी की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी से प्राप्त कुतुबुद्दीन साहिजादे री वारता १८वीं शताब्दी की नरसिंहदास गौड की वचनिका तथा सं० १७७२ की जिनसुखसूरि वचनिका १८वीं शताब्दी अर्थात् सं०१७८८ का रतनसिंह महेसदासौत री वचनिका(प्रकाशित) , १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वाचक जिनसमुद्र विरचित जिनलाभसूरि दवावैत तथा २०वीं शताब्दी का (सं० १९२१ का) कविया गोपाल द्वारा विरचित सिखर वंशोत्पत्ति ऐतिहासिक गद्य काव्य जिसका दूसरा नाम पीढ़ी वार्तिक है इस प्रकार राजस्थानी की गद्य काव्य परम्परा अद्यावधि सुरक्षित है। हिन्दी में भी २०वीं शताब्दी में रायकृष्ण दास की साधना गद्य काव्य की उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है।वचनिका शैली में ही आदिकाल का हिन्दी जैन गद्य काव्य लिखा गया है।अतः इसीलिए उक्त विवेचन में गद्य काव्य की इन राजस्थानी शैलियों का परिचय दिया गया है।

आदि काल के हिन्दी जैन साहित्य में गद्य काव्य की सर्व प्रथमऔर सर्वोत्कृष्ट रचनाओं का यहां अध्ययन प्रस्तुत करना गद्य काव्य के शिल्प भाषा, वर्णन आदि सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

४

:: पृथ्वीचन्द्र चरित्र ::

जैन धारा में गद्य काव्य के स्वरूप को पुष्ट करने वाली रचनाओं में पृथ्वीचन्द्र चरित्र सर्वोत्कृष्ट रचना है। इस रचना का दूसरा नाम लेखक ने वाग्विलास भी दिया है

यदि रचनाकार का कौशल, काव्य प्रतिमा तथा वर्णन चमत्कार को देखा जाय तो पृथ्वीचन्द्र चरित्र लेखक का विदग्ध वाणी विलास ही लगता है।कवि ने पूरी रचना में एक सुन्दर प्रेम कथा का वर्णन किया है।इस कृति का वृत्त प्रेमाख्यान मूलक है। कवि ने प्रणय कथा को माध्यम बनाकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है। कथानक के स्तंभ पृथ्वीराज और रत्नमंजरी हैं।

पृथ्वीचन्द्र चरित्र आख्यान के लेखक आचार्य श्री माणिक्यसुन्दर सूरि हैं। १५वीं शताब्दी के प्रसिद्ध महाकवि जयशेखर सूरि के येभाई थे।माणिक्य सुन्दर सूरि अंचलगच्छ के थे तथा इनके गुरु का नाम संभवतः मेरुतुंग था। माणिक्य सुन्दर ने मूल में कवि हृदय पाया था। सूरिजी का जीवनवृत्त अभी तक अज्ञात ही रहा है। कृति में कहीं भी माणिक्य सुन्दर सूरि ने अपने लिए कुछ नहीं कहा है अतः रचनाकार ने समय, स्थान, और जन्म का कोई ज्ञातव्य उपलब्ध नहीं होता।सहायक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि माणिक्य सुन्दर सूरि ने गुण वर्मा चरित्र मलयसुन्दरी कथा संविभाग व्रत चतुष्पर्वी कथा पृथ्वीचन्द्र चरित्र आदि कई ग्रन्थों की रचना की थी।

आलोच्य रचना पृथ्वीचन्द्र चरित्र पर्याप्त बड़ी रचना है जिसमें लेखक का काव्यात्मक वाग्विलास है। इस रचना बहुत पहले प्रकाशित की जा चुकी थी प्रसिद्ध गुजराती विद्वान श्री सी०डी० दलाल ने इसका सम्पादन किया था।इस प्रणय गाथा को कवि ने विस्तृत घटनाओं में उलझा कर लिखा है। कथा का विस्तार न होकर रचना में वर्णन का विस्तार ही अधिक है। प्रत्येक वर्णन में परिगणना शैली ही अधिक मिलती है।

रचना की कथा संक्षेप में इस प्रकार है:-

पृथ्वीचन्द्र महाराष्ट्र के पइठाणपुर के नरेश थे।अयोध्या के राजा सोमदेव और उनकी कन्या रत्नमंजरी। रत्नमंजरी अनुपम सौन्दर्यमयी थी। एक बार देवताओं की शक्ति के प्रभाव से उसे स्वप्न आता है और स्वप्न में वह रत्नमंजरी को देखता है। स्वप्न के इस मिलन से पृथ्वीचन्द्र उसे प्राप्त करने की लालसा से विह्वल हो जाता है। इधर रत्नमंजरी का स्वयंवर आयोजित होता है।पृथ्वीचन्द्र को इसकी

सूचना मिलते ही एक विशाल सेना साथ में लेकर रत्नमंजरी को वरण करने की कामना से वहां पहुंचता है। उसका प्रेम रत्नमंजरी को भी पिघला देता है। पृथ्वीचन्द्र की कीर्ति, शक्ति से परिचय होकर वह भी उसे प्राप्त करना चाहती है परन्तु बीच में अनेक व्यवधान उठ खड़े होते हैं। वेताल अपनी माया फैला देता है और रत्नमंजरी को उठाकर ले जाता है। परन्तु पृथ्वीचन्द्र के प्रति उसका प्रेम दृढ़ होता है।इधर पृथ्वीचन्द्र भी देवी की आराधना करता है और देवी प्रसन्न होकर उसे रत्नमंजरी को प्राप्त कराने में पूरी सहायता करती है अन्त में दोनों को एक दूसरे की प्राप्ति होकर पाणिग्रहण का आनन्द प्राप्त होता है।

कथा इतनी ही है परन्तु कवि ने इस छोटी सी प्रणय गाथा को विविध वर्णनों से संजोया है। वर्णन के इस स्थूल रूप में उलझ कर लेखक ने कहीं कहीं रचना का अर्थ गौरव शिथिल सा कर दिया है।कहीं कहीं नाम परिगणन में फूल कर कृति की कथा वस्तु दुबलाने सी लगती है और कथा का सारा ढांचा ही लड़खड़ाने लगता है। कहींकहीं लेखक के वर्णन बड़े ही भावुकतापूर्ण और सरस बन पड़े हैं।

पूरी रचना को कवि ने पंच उल्लासों में विभक्त किया है और प्रत्येक उल्लास विविध वर्णनों द्वारा संवारा गया है। सबूच वचन अनुप्रासात्मक है। रचना का गुण उसके तुकान्त होने में, काव्यात्मक होने तथा शब्द विन्यास के नादात्मक होने में है। शब्दों की ध्वन्यात्मकता एक अनूठे अनुरणन का उन्मेष करती है। वर्णनों के अन्तराल में जहां कवि का मन डूब रमा है वहां उसकी काव्यात्मकता ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की ऐसी सुन्दर मालायें अन्यत्र मिलना कठिन है।कवि ने कथा के माध्यम से वर्णन चमत्कार दिखाया है।

रचना का प्रारम्भ ही जैन भारती से वाग्विलास की याचना द्वारा किया गया है[1] कृति का रचनाकार मुख्यः कवि था अतः उसके गद्यकार पर कवि

१- वां विरच करच करती कवीकथा कल्पित सदा
प्रबंध वाग्विलास में सामिल्यें जैन भारती-प्रा०गु०का०सं०पृ० ९३१।

की विजय स्पष्ट दिखाई पड़ता है।वर्णन का सामर्थ्य देखिए:-

पुण्य की महत्ता का कितना उत्कृष्ट चित्र खींचा है:-

पुण्य लगइ पृथ्वी पीठि प्रसिद्ध, पुण्यलगइ मन वांछित सिद्धि,पुण्य लगइ निर्मल बुद्धि, पुण्यलगइ घर रिधिसिद्धि, पुण्य लगइ शरीरनीरोग पुण्य लगइ अभंगुरभाग पुण्यलगइ कुटुंब परिवार तणा संयोग, पुण्य लगइ पखाणीयइ तुरंग पुण्यलगइ मन नवारंग, पुण्यलगइ धरिगज घटा, चालता दीसइ चंदन छटा, पुण्य लगइ निरुपम रूप, अक्षय स्वरूप पुण्य लगइ वसिवा प्रधान आवास, तुरंगमवणीलास, पूजइ मन चींतवी आस, पुण्यलगइ आनंददायिनी मूर्ति अद्भुत स्फूर्ति पुण्य लगइ भला आहार, अद्भुत शृंगार पुण्य लगइ सर्वत्र बहुमान, घणुं किस्युं कहीयइ पामीयइ केवल ज्ञान[१]

रचनाकार ने अनेक वर्णनों द्वारा अपने बहुगुणी होने का परिचय दिया है। राज्य, राजा, दण्डनीति, सातद्वीप, भोजन, शकुन,वर्षा,वसंत, शिशिर, सात क्षेत्र,युद्ध स्वयंवर, बत्तीस हजार देश, नगर सभा, प्रजा, नायिका, नायक, स्वप्न, संयोग वध, रितु, प्रकृति संग्राम, आनन्द, हाथी घोड़ा, उत्सव तथा शृंगार आदि के विविध काव्यात्मक और परिगणनात्मक अनुप्रासांत वर्णन पृथ्वीचन्द्र चरित की बहुत बड़ी विशेषता है।रचना के वर्णन शिल्प में पृथ्वीचन्द्र चरित मैथिली के वर्णरत्नाकर से पर्याप्त साम्य रखता है। नीचे तुलनात्मक दृष्टि से कुछ वर्णन दिए जाते हैं उनके आधार पर प्रस्तुत गद्य काव्य के काव्य सौष्ठव अर्थ गांभीर्य और कलात्मकता का सहज अनुमान लगाया जा सकेगा।

<u>मरहट्ठ देश का वर्णन देखिए:</u>

तीह माहि वखाणीयइ मरहट्ठ देश,जीणइ देखि ग्राम अनेक अभिराम भला नगर, जिहां न जाणीयइ कर, /दुर्ग, जिस्यां हुइ स्वर्ग, धान्य, न जीयइ सामान्य, आकर, सोना रुपानां आकर मेक वेलगति नदी वहई, लोक सुखइं निर्वहइं दक्षिण देश, सुष्टु वेष निवेश, मध्यम प्रदेश।तीणि देशि पइठाणपुर पाटण वर्तइं जिहां अन्याय न वर्त्तइं।[१]

राजा एवं राज सभा वर्णन-

राजसभा किसी छइ।वीथि राजसभा कुंकम जलि छटा दीधी छइ।विविध मुक्ताफली चतुष्क पूरिया छई, कर्पूर तणा वेस आलिम्या छई, कृष्णा गरज बाधितण परिमल महमहई छई मोती तणी थिरि लहलहई छई फूल पगर भरिया छई, कठि प्रमाण पाय पीठ संयुक्त पुरुष प्रमाण सुवर्णमय सिंहासणि राजा बइठा। किसउ राजा दीसइ छइ, मस्तकि श्वेतातपत्र छई, पासई ढलई चामर पवित्र वाजई विविध वादित्र, मस्तगि मुगट, कानि कुण्डल कण्ठि हारार्द्धहार, महाउदार चन्दतण्उ अवतार, रूपतणु भन्डार, घणई किसिउ कहीयइ।जिसउ पृथ्वी लोकतणउ इन्द्र जिसउ सोलकला सम्पूर्ण चन्द्र इसउ दीसइ छइ पृथ्वीचन्द्र नरेन्द्र।[१]

वर्णनकी धारावाहिता शब्दों का प्रवाह तथा अभिव्यक्ति की चित्रात्मकता स्पष्ट परिलक्षित होती है।इसी की तुलना में नाम परिगणन शैली में लिखा तत्कालीन वर्ण रत्नाकर ग्रन्थ का देश वर्णन देखा जा सकता है:-

कहउ देश।नागल, सौंगल, तापचितेलि तावि तिवर तुरिआ तुरुक तुक्कटाक्ष वेओल पंगल धावल धानुक धोआर गुनिआ धलिकार डौंब डोमटाक्ष सांगि पमार हाडि डावि मल चहुढार चमार गोण्ठि गोन्हि मोआर--।[२]

वस्तुतः इन ग्रन्थों की शैली तथा वर्णन परम्पराओं में पर्याप्त साम्य परिलक्षित होता है।प्रकृति वर्णन में भी दोनों ही रचनाकारों ने नाम परिगणना शैली का अधिक आश्रय लिया है।कवि ने वर्षा काल का आरम्भ ही राजकुमारी रत्नमंजरी के यौवन की पंक्ति किया है:-

तिम ते कुमारि वडी यौवनि भरि, सखिसी परिकरि क्रीड़ा करइ मन गमी परि।इसिइं आवसरि आविउ आषाढ़ ---- विस्तरिउ वर्षाकाल, जे पंथी जन काल, नाठउ दुकाल, वीजिइ वर्षाकालि मधुर ध्वनि मेह गाजइ दुर्भिक्ष तणा भय भाजइ, जाणे सुभिक्ष भूपति आवतां जयढक्का वाजइ बहुं दिसि वीज झबकइ पंथी घरभणी गुडइ, विपरीत आकाश,चन्द्र सूर्य परिवास

१- वही, पृ० ७०
२- वर्णरत्नाकर:सुनीतिकुमार चटर्जी द्वारा सम्पादित-पृ० १ प्रथम कल्लोल।

राति अंधारी लवई तिमिरी, उलटनइ उनयण, छायउ, गयण, दिसि घोर,
नाचई मोर सघर वरसइ धाराधर, पाणीतणा प्रवाह खलहलइ वाडि ऊपरि
वेला वलइ-- पर्वत सउ नीझरण विछूटई, भरियां सरोवर फूटइ।[1]

<u>वर्ण रत्नाकर का वर्षा वर्णन देखिए:-</u>

मेघक गर्ज्ज, आकाशक मेघकला, विद्युल्लताक तरंग, कदम्ब सौरभ विस्तरक संचार, दर्दुरक कोलाहल, धाराक संपात, आदित्यक दुःखता, पृथ्वीक सौहित्य, कर्षणक संचार, औषधीक उपचय, नदीक समुद्रिय मिरडीक उत्कण्ठा, नदीक चतुष्पथिया, पथिकक, दुःसंचार आगम्य तीव वैदेशिकक विलम्ब, कन्दर्पक प्रेमाधिक, युवती सौहृद एवम्विधं सर्व्वगुण सम्पूर्ण वर्षा देखु।[2]

वर्णन के इस क्रम में कथा का प्रवाह भी आगे बढ़ता रहता है।कथा की धारावाहिकता देखिए:

तिसिइ रत्नमंजरी कुंअरि राजा रहई वीनती करावी तिहां कुशिा जोइवा आवी।तेह तणइ परिवार सखी अनेक प्रकारि कस्तूरिका कर्पूरिका, लीलावती पद्मावती चंद्रावती-- अनेक सखी वर्त्तइ।तीहं सहति तिहां आवी पितारहई प्रणाम नीपजावी उत्संगि बइठी दिव्य रूप देखी रायतणइ मनि चिंता बइठी।एह योग्य कवण वर, किंनर, किं विद्याधर इसीइं चीतवइ नरेश्वर सरोवर भणी दृष्टि दीधी।[3]

--- --- ---

इसी वार्त्ता सांभली दूत हुई बहुमान देउ कटक लेइ राजा पृथ्वीचन्द्र स्वयंवर भणी चालिउ, कटक भरि पातालि शेष नाग सालिउ।[4]

तिह समरकेतु राजा ते वार्त्ता सांभली मनि वैराग्य पामिउं, राजा पृथ्वीचन्द्र प्रति पिउ लागिउ।जणइ इसी भाषा कही सापउ पुरुष मनुष्य भवी भुरहिड कोइ बहुल्ट वैस्ता सामिप्य करइ, सर्व विघ्न हरइ।[5]

१-प्रा०गु०का०सं०पृ० १००, द्विवेदीसोलका। २- वर्णरत्नाकर: सुनीतिकुमार चटर्जी संपादित पृ० १९ चतुर्थ कल्लोल। ३- प्रा०गु०का०सं०, पृ० १०१। ४- वही, पृ० १०३
५- वही, पृ० १०८ तृतीय कल्लोल।

जिमारइ पृथ्वीचंद्र राजा तणइ कंठि वरमाला पडी, तेतलइ धूम केतु
राजा हुई रीस चडी, रोसँ हुउ विकराल,धूमकेतु देवता तणउ भेज स्मरीनइ
ऊछालिउं करवाल।[1]

पांचों उल्लासों के वर्णन उल्लास प्रधान हैं। प्रकृति का परिगणनात्मक स्वरूप वर्णन देखिए:-

जेह अटवी माहि तमाल ताल हंताल, मालूर खर्जूर, अर्जुन चंदन चंपक बकुल।
तिंतिणि सहकार कांचनार जांबू जंबीर वानीर कणवीर कीर केलि कंदब
निंब नारिंग नालीइर द्राख दाडिमी देवदारु संकुल कंकिल्लि नाग पुन्नागवल्ली
यूथिका मालती माधवी जपा मरुमक दमनक पाडलि केतकी मुचकुंद कुंद मंदार तणइ
सेवत्री राजगिरि।[2]

प्रकृति वर्णन के इस स्थूल स्वरूप में रचनाकार का काव्यात्मक वसन्त वर्णन दृष्टव्य है जहाँ उसे पूरी प्रकृति हंसती खिलती दिखाई पड़ती है।वसन्त में प्रकृति का सारा वातावरण ही राग की इन्द्र धनुषी कल्पनाओं में डूब जाता है रचनाकार के काव्य कौशल का निखार देखिए:-

तिसिइ आविउ वसंत, हूउ सीतलणउ अंत, दक्षिण दिसितणउ सीतल वाउ वाई
विहसइ वनराई।-- फलरिया सहकार, चंपक उदार, बेउल बकुल भ्रमर कुल संकुल,
कलरव करई कोकिल कुलाकुल।प्रवर प्रियंगु पाडल, निर्मल जल विकसित कमल,
राता पलास सेवंत्रीवास,कुंद मुचकुंद महमहई, नाग पुन्नाग गहगहइ।वारवनी
श्रेणि।विचि वावीइ कुसुम रेणि, लोकनी हाथि वीणा,तवहंबर भणा, धवल
शृंगारं सार, मुक्ताफल तणाहार, सर्वांग सुन्दर वन माहि रमइ भोग पुरंदर।
वलि गीत गवारई दान दिवारई विविध वाजित्र वाजइ, रमलि तणा रंग
छाजई वलि वादिई फूल खूटई पुरवणा पत्रण खूंटई, हीडोलई हींचई, कीलता
वावि ई जलिई सींचई, केलिकरी कामिम जो भई श्रीसंत होयइ।[3]

रचनाकार नेवर्णन में आलंकारिकता की मात्रा ही थिरोधी है।अत्यानुप्रास/ तथा वर्णन कीप्रयासनात्मकता तथा विविध उदाहरणों से रचना की सुन्दरता में पर्याप्त योग दिया है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा-

---

१- प्राक्कुलकाव्यसंग्रह पृ० ११५ चतुर्थ उल्लास। २- वही पृ० १०४ ३- वही० पृ०१०२।

संपमलउ अनेते वर्णवीइ जे कुलवंत, नदी ते जे नीरवंत, कटक ते जे वीरवंत, सरोवर ते जे कमल वंत, मेघ ते जे समार्वत, महात्मा ते जे क्षमावंत, प्रासाद ते जे ध्वजावंत, भाट ते जे सूघवंत, हाट ते जे वस्तुवंत, घाट ते जे सुवर्णवंत, भाट ते जे वचनवंत, मठ ते जे मुनिवंत, मढूते जे अनंग वंत, देव ते जे अरागवंत, गुरु ते जे क्रियावंत वचन ते जे सत्यवंत, शिष्य ते जे विनय वंत मनुष्य ते जे धर्मवंत, तुरंगमते जे ते जंवत, हस्ती ते जे भद्रजाति वंत, प्रधान तेवि बुद्धिवंत, करते जे दायवंत, रायते जे न्यायवंत, व्यवहारीय ते जे मर्यावंत, धर्मीते जे दयावंत।[1]

इस प्रवाह वचनिका शैली का सफल निर्वाह उत्तर उद्धरण में परिलक्षित होता है। पृथ्वीचन्द्र चरित्र की शैली समास बहुला है। ऐसा प्रतीत होता है मानो रचनाकार के हृदय में शब्द ठूंस ठूंस कर भरे हों। शब्दों के निर्झर को बस वर्णन प्रवाह के लिए अवसर मात्र चाहिए। समास प्रधान अभिव्यक्ति का एक उदाहरण देखिए:-

हयबीहउ वृषभ। किसउ ते वृषभ, निर्मल धारा धरधवल, विकसित काश कुसुम समुज्ज्वल, विशाल कुमुद, चन्द्रकिरण तणी परिचिइद सूक्ष्म सुकुमाल रो मराजि विराजमान, स्निग्ध कांति देदीप्यमान, अभंगश्यामलशृंग सुन्दर समस्त अंगोपांग विशुद्धवर्तत- पंक्ति शोभित, प्रमुख प्रदेश, वाचरण संनिवेश।-- कुम्भ पिंड पांडुर, मधुर प्रमार्जवर, रक्तोत्पल सुकुमाल ताल, शालूकादि आरक्त जिह्वा विचित्र इक्षलोक प्रताप। विस्तीर्ण केसरटाशोभित स्कंध, वज्रसार शरीरबंध, प्रवर पीवर प्रकोष्ठ, कमलदल रक्तोष्ठ, तीक्ष्ण दाढा विडंबित वदन, पराक्रम सदन-- वर्णवित सीहउ सीह।[2]

प्रत्येक वर्णन में भी कवि की उपमेयाकृति अनुभव ज्ञान तथा विवेक की छाप लगी हुई है। रत्नमंजरी का मंडप में विद्यमान होना कवि की अनुभूति में विविध उदाहरणों का मनोन्मेष करता है। वर्णन की प्रासादिकता उल्लेखनीय है:-

ते मंडप रत्नमंजरी पाखइ निःशीक दीसिवा लागउ। जिम लवण ही न रसवती, व्याकरणहीन सरस्वती, हुंकरहित मंडन, घृतरहित भोजन, खांड रहित पक्वान्न भावरहित दान, छन्दरहित कवि, शकरहित पवि, विवेक रहित मनु वेद रहित

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ० १०९ २- वही, पृ० ११९।

> अबइमणु स्वर्ग रहित ऐरावण,लंका रहित रावण,शास्त्ररहित पाठक,न्यायरहित नायक, फलरहित वृक्ष तपोरहित भिक्षु, वेग रहित तुरंगम, प्रेमरहित संगम-- वस्त्र रहित शृंगार, सुवर्ण रहित अलंकार,-- चरण रहित बाल,राज्य रहित भूपाल, स्तंभ रहित प्रासाद, दान रहित मान,मुष्टि रहित कृपाण।जिम पाणी रहित सरोवर, तिम रत्नमंजरी पाखइ हे न शोभइ लोक समउ व्यतिकार, ते सभा, हुई निष्प्रभा।[1]

इस तरह रचनाकार ने वस्त्र शस्त्र, राजनीति, युद्ध, शृंगार,वीर, सौन्दर्य,रत्न स्वप्न आदि के विविध वर्णन किए है।वर्णनों की अधिकता तथा अनावश्यक विस्तार से कहीं कहींपाठक का मन उचटने तथा ऊबने लगता है पर भी सूरिजी ने परंपरागत शैली का पूरा निर्वाह किया है।कवि का बहुविज्ञतापना उसकी प्रखर प्रतिभा का परिचायक है।रचनाकार के जातिज्ञान का एक उदाहरण देखिए:-

> जिम कलिकाल प्रवर्तमानि चउराशी ज्ञाति बोलीयई।किसी ते ज्ञाति श्री श्रीमाली उसवाल, वायेरवाल, डीडू,पुष्पकवाल, डीसावाल पेढ़वाल, भाभू सुराणा, छत्रवाल,दोहिल, सोनी, कडवड, खंडेलवाल,पोरुआड, गूजर, मोढ, नागर, जालहटा, खडाइता, कपोल, जांबू वाउडा, वाम, दसउरा, करहीया, नागद्रहा, मेवाड़ा पटेवरा, कवरा, नरसिंह, उरा हारल,पंचमर्ण, चित्रकंडला, कमोड, रोडकी,अगरवाल, चित्तोडी, नाम वीच वालमावलउ उचित नागदू, अहिछत्रवाल, श्रीमल वाल्मीकि, डाकी टेकटा,विखरा-- पद्मावती माथा ते हरासा माथुर धाकड पल्ली वाल हरसउरा अजमेरा, काकल हलवडा विहूरा वेलणाल नागौरा बाडलवाल वागेल।पणि सविहु ज्ञाति कुल वंश माहि न वाणीइ सु वारक कुल।[2]

वस्तुतः कवि अन्य अनेक वर्णन सफलता के साथ करता है।गद्य काव्य की इसी वचनिका शैली पर लिखी गई इसी शताब्दी की एक रचना अचल दास खीची री वचनिका मिलती है।यह रचना जैनेतर है।तुलना के लिए इस समकालीन रचना के एक दो गद्य काव्य के उद्धरण नीचे दिए जा रहे है:-

---

1- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ० ११६ 2- वही पृ० १२५। 3- देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ अध्याय ५ का "जैनेतर लौकिक गद्य" अंश।

घगि घगि पडलि पडलि हरवी की गज घटा, ती ऊपरि सत सात सइ धनक घर बैठा। सात सात ओलिपाइक की बइठी, सात ओलिपाइक की उठी। बेडा उडण मुख फरफरी झुंझकी ठाई ठाई ठरी इसी पक त्यापट हढि वन दिवि घड़ी तिण वाजित्रकइ निनादि घर आकाशि घड़हड़ी।

२- इसा एक से पातसाह रा कटक बंध अनले सबर ऊपरि तूटा, वाटका वह ईधण खूटा, वह का पाणी खूटा। परबंता सिरि पंथ लागा, खुणा टै घट भागा सूर सूके नहीं सेइ आगा।

इस प्रकार अचलदास खीचीरी वचनिका में सर्वत्र तुक का निर्वाह नहीं मिलता परन्तु वचनिका शैली की राजस्थानी भाषा में जैनेतर यही सबसे प्राचीन रचना है।

इस प्रकार इन रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनके वस्तु वर्णन, शिल्प, तथा शैली में पर्याप्त साम्य है। वर्णरत्नाकर में मैथिली के शब्द अधिक हैं। कर्ता कर्म और क्रिया भी मैथिली के हैं ठीक इसी प्रकार पृथ्वीचन्द्र चरित्र के शब्द कर्ता, क्रिया कर्म आदि प्राचीन राजस्थानी के हैं। वर्णन पद्धति भी तीनों रचनाओं की समान है।

पृथ्वी चन्द्र चरित्र को लेखक ने वर्णन की इन्हीं पद्धतियों में ५ उल्लासों में समाप्त किया है। रचनाकार ने बीच बीच में श्लोक भी दिए हैं। इसकृति में अनेक शब्द संस्कृत के हैं अतः कवि का संस्कृत ज्ञान स्पष्ट होता है। पूरी रचना आद्योपान्त तुकान्त है। कवि ने विविध वर्णनों में तात तथा दैविक शक्तियों के सफल रस चित्रों को काव्यात्मक प्रवाह में ढाला है। वाक्य छोटे हैं तथा कलापूर्ण हैं। कवि की बहुज्ञता तथा प्रवाह को यद्यपि शिथिल कर देती है परन्तु फिर भी रचना आद्योपान्त गद्य काव्य की परम्परा का सम्यक निर्वाह करती है। अन्त में लेखक ने पुष्पिका में रचनाकार का स्थान व काव्य प्रयोजन स्पष्ट किया है और दोश्लोक भी दे दिए हैं[१]।

१- [illegible] श्री गुरु माणिक्य सूरिणा
पृथ्वीचंद्र [illegible] चरित्र कृत निर्मितं
संवत् १४७८ वर्षे श्रावण सुदि ५ रवौ पृथ्वीचन्द्र चरित्रं पवित्रं पुण्यावरकृते निर्मित [illegible]।
[illegible] श्री [illegible] रामचन्द्र [illegible]
[illegible] [illegible] सुदि [illegible]-
प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह पृ० १३०।

कहना न होगा अभ्युदयकाल की गद्य काव्यात्मक रचनाओं में पृथ्वीचन्द्र चरित्र अथवा वाग्विलास अपूर्व योग देती है।

शोकाधिकार[1]

गद्य काव्य की परम्परा में १५वीं शताब्दी में पृथ्वीचन्द्र चरित के पश्चात् एक महत्वपूर्ण रचना शोकाधिकार मिली है।यह रचना भी पृथ्वीचन्द्र चरित की भांति प्रासबद्ध शैली में रची गई है। रचना की प्रति मुनि जिनविजय जी को उपलब्ध हुई[1]। प्रति में रचना संवत् नहीं उपलब्ध होता ।प्रति की लिखावट, पड़ी मात्रायें, अं के बदले उ का प्रयोग आदि तथ्यों से अनुमानकिया जा सकता है कि यह १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम दशक में लिखी गई होगी।रचनाकार का नाम भी अज्ञात है।

रचना कथा प्रधान है।यद्यपि वस्तु अद्यावधि उपलब्ध रचनाओं में एकदम मौलिक तथा सुन्दर है।रचना प्रकाशित रूप में प्राप्त है।हाल ही जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस के प्रमुख पत्र जैन युग में डा० ह०चु० भायाणी ने इसे प्रकाशित किया है।रचना की कथा वस्तु केआधार पर इसका नामकरण भी डा० भायाणी ने शोकाधिकार किया है जो पर्याप्त संगत है।[1]

शोकाधिकार का कथा प्रसंग बहुत ही करुण तथा संक्षिप्त है।संक्षेप में कथा सार इस प्रकार है:-

गर्भ में मां त्रिशला को भार से परेशान देखकर ५ महीनेके भ्रूण महावीर ने अपना भार हल्का कर लिया और गर्भ में अंग स्फुरण और हलचल बंद करदी।अंग स्फुरण माता को कष्टप्रद होगा यही जानकर वे बिल्कुल शून्य बन गए। मां ने सोचा किसी ने मेरा गर्भ नष्ट कर दिया है।यह जान कर अत्यन्त शोकविह्वला हो गई। सारे राजप्रासाद में शोक की लहर व्याप्त हो गई।सारी स्थिति विषम हो गई।महावीर के मां को सुख पहुंचाने वाले इस कार्य ने मां को अत्यधिक कष्ट दे दिया।यह जानकर महावीर ने धीरे से अपनी उंगली फड़काई।स्पन्दन से मां का शोक दूर होकर पुनः आनन्द हो गया।संक्षेप में रचनाकी यही कथा है। कल्पसूत्र, सुबोध टीका आदि ग्रन्थों में यह वर्णन विस्तार से मिलता है।

१- जैन युग, अप्रैल, १९५८ पृ० ९ -१२।

रचना का प्रारम्भ ही लेखक ने मां त्रिशला के कारुण्यपूर्ण उद्गारों से किया है।शोकाधिकार की भाषा प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती है।वर्णन प्राय शैली में है जिसका दूसरा नाम वचनिका है।काव्य गद्य काव्य की दृष्टि से शोकाधिकार का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। रचना आद्योपान्त दुखान्त है तथा कुल ५१ गद्य काव्यात्मक कड़ियों में समाप्त होती है।कृति में करुण रस की धारा लेखक ने प्रारम्भ में ही बहाई है:-

अहो।आ किसउ अकालि उत्पात, हुसिइ किसिउ वज्रपात

अहो सखी।माहरइ गर्भि थंभिउ विलखु, हुसिइ किसिउं विवसा त्रिविधप्रलय[1]

गर्भ के हल्के हो जाने से मां का विलाप कारुण्य रुदन में परिवर्तित हो जाता है। मां को उसके वस्त्र आभूषण तथा सारा श्रृंगार ही काटने को दौड़ता है वह आभूषण वस्त्र और श्रृंगार सबको कोसने लगती है।वर्णन की अनुप्रासबद्धता,प्रवाह आलंकारिकता तथा काव्यात्मकता दृष्टव्य है:-

हिव माहरइ मस्तकि जे आछई मउड,पउ प्रत्यक्ष कउड

पउ हार, साक्षात संहार।बाहुवल्लरी वर्ण जे अछई वलय

ते दुःख तणा दीसई निलय।पउ अपूर्व पट्ट दुकूल

ते वेखतां संतापनउं मूल।पउ अछइ सर्वांगीण श्रृंगार ते वेखता संपूर्ण अंगार[2]

विविध उदाहरणों द्वारा कवि ने मां त्रिशला के आत्म पश्चात्ताप को स्पष्ट किया है।गद्य की काव्यात्मकता उसे और अधिक गतिशील और सशक्त बना देती है:

मइ किसिउं कीधउ पापु, जेह कारण दैखिइ पाखिउ एवड संतापु।

— — —

कय सरोवर पाळी, कंचन फूं कि टाली।किसिं वन प्रजाली बीचइं कोडि बाळी।कय गति मैली बाळी, बाळ दीधउं दुरुप बाळी।कलकीय विवलि, बाळकीयइं अपाळी।जविउ गमइ गाडूं पिंड बोकिइं कपाडुं।रचइ गति निवाडुं साथ दिइ फूल काडुं मधुर विहरि पाडुं नहीमकलइ डीचजाडूं।किसिउं पई कमाडूं देखि वै दुख [illegible]।

१- जैन युग: अप्रैल, १९५८।कड़ी २-३   २- वही,पृ०१० कड़ी ४-८
३- वही, पृ० १० कड़ी १६-१९।

जे हुंता बडूआ, ते थया कडूआ।जेगीत गान करता गंधर्व,
तेह तणा गल्या गर्व।------।जे हुता पंडित ते थिया दुख
मंडित।जे राग रहई अमस्य कुत्य, ते न दीसई कर्तकी नृत्य।[1]

--- --- ---

जेहुंता मावरिया, ते थया ढाढरिया।
जे लोकरई करावइ जुहार, ते हुयानिर्सचला प्रतिहार
जेहे निरंतर जीम वावरी,ते मौन करी रहिया टावरी
जे करता नगर नी करमवार ते वहती रहिया लार[2]

अन्त में लेखक ने मां को गर्भ स्फुरण का पुनः ज्ञान होने पर दो पंक्तियों में वर्णन कर रचना समाप्त की है:-

नाजियाल (गा) मांगलिक तणी प्रबंध
राजभवन माहि संपूर्ण आनन्द[3]

इस प्रकार १५वीं शताब्दी में गद्य काव्य जन्य उक्त रचनाएं उपलब्ध होती हैं जो भाषा की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण है और गद्य क्षेत्र में नये सोपान प्रस्तुत करती हैं।१०वीं शताब्दी के बम्बई के प्रिंस आफवेल्स म्यूजियम के शिलालेख के गद्य की भाषा भी पर्याप्त गद्य काव्यात्मक है।[4] अतः गद्य काव्य का उद्‌गम १०वीं शताब्दी से ही माना जा सकता है।१५वीं शताब्दी के पश्चात् तो इस धारा में अनेक प्रौढ़ राजस्थानी भाषा में कृतियां उपलब्ध होने लगती हैं।

वस्तुतः ऊपर हमने सम्मुक्त काल की गद्य काव्य की उद्भावक एवं प्रेरक आदिकालीन गद्य रचनाओं की मुख्यप्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है।अद्यावधि गद्य काव्य मुक्त कथनिका शैली में उक्त तीन रचनाएं ही उपलब्ध होती है।विविध प्रादेशिक भाषाओं में सम्यक् शोध होने पर बहुत संभव है कि मैथिली के वर्ण-रत्नाकर की भांति गद्य काव्य की प्रेरक कुछ और अनूठी रचनाएं उपलब्ध हों। यों अभी तो राजस्थान के अनेक जैन भंडार सुदूर बंद पड़े हैं।अतः शोध की वर्तमान

~~१-- वही, पृ० ४०, पंक्ति ४१-४२।~~ २- वही, पंक्ति २१-२७ ३- वही पंक्ति ३३-३६।
३- वही पृ०११ पंक्ति ९१ ४- देखिए प्रस्तुत ग्रंथ अध्याय ५ का जैनेतर (लौकिक) गद्य भाग।

स्थिति में प्राप्त उक्त गद्य काव्य मूलक रचनाओं का ही विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

(६) अन्य विविध विषयक गद्य साहित्य:

आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य में गद्य काव्य मूलक रचनाओं के अतिरिक्त इतर विषय की रचनाएं भी उपलब्ध होती है। यद्यपि इन रचनाओं की भाषा इतनी अधिक सशक्त और प्रवाहपूर्ण नहीं है फिर भीतुलनात्मक दृष्टि सेविवेचन करने पर गद्य साहित्य का तत्कालीन वैविध्य स्पष्टहो जाता है।विषय की दृष्टि से इन रचनाओं में पर्याप्त वैविध्य है।कोई बात शैली में है, तो कोई वचनिका शैली में। कुछ चारण शैली में है तो कुछ जैन शैली की।शैली में जिस प्रकार अन्तरपरिलक्षित होता है ठीक वैसे ही इनके वर्ण्य विषय में भी ।कुछ रचनाएं गणित की मिलती हैं तो कुछ ज्योतिष शास्त्र की, कुछ अर्थ शास्त्र की है तो कुछ नीति तथा राजनीति की।इस प्रकार विविध वस्तु विषयक अनेक रचनाएं उपलब्ध होती हैं नागोर, मेरठ, बड़ौत,सहारनपुर, दिल्ली,मुजफ्फरनगर,आदि स्थानों के जैन भंडारों की सम्यक् शोध होने पर आशा की जाती है कि इनसे जैनेतर विषयों पर लिखी तत्कालीन अनेक गद्य रचनाएं उपलब्ध हों।

बालावबोध शैली में लिखी गई इस काल में मिलने वाली कुछ गणित की रचनाओं की भाषा का यहाँ परिचय दिया जायगा।गणित के अतिरिक्त पुरातन नाट तौल नाप (मिजरमेन्ट) सम्बन्धी गद्य ग्रन्थ भी मिले है।इन ग्रन्थों की वर्णन पद्धति में वैज्ञानिकता कितनी है यह कहना तो कठिन है, परन्तु इस गद्य को वैज्ञानिक गद्य सिर्फ इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि इसका वर्ण्य विषय एक निश्चित विज्ञान से सम्बन्धित रखता है।

इस प्रकार की इस काल में जो रचनाएं मिलती है, उनमें प्रमुख निम्नांकित है। इनका वर्ण्य विषय गणित विज्ञान से सम्बन्धित है:-

१- गणितसार[1]

२- षट्त्रिंशिका बालावबोध[2]

१- अभय जैन ग्रन्थालय,बीकानेर(हस्तलिखित प्रति विभाग) २- वही भंडार।

गणितसार की मूलरचना संस्कृत में हुई। रचनाकार राजकीर्ति मिश्र है जिन्होंने सं० १४४९ में अणहिलपुर (पाटण) में इसकी रचना की। फिर राजस्थानी में इस पर टीका की गई|टीकाकार श्री श्रीधर है। प्रस्तुत रचना का विषय गणित के कुछ सिद्धान्तों के आधारपर कुछ सिक्कों का परिचय दिया गया है।साथ गुर्जर प्रदेश के तोलों और नापों के उपकरणों तथा उपादानों का भी महत्वपूर्ण विश्लेषण है।उदाहरण देखिए:-

> किसा जु परमेश्वर कैलाश शिखर मंगुजु पार्वती हृदय रमणु विश्वनाथु। तिणि विश्वनीय जाणिउ तसु नमस्कार करीउ।बालावबोधनार्थ बाल मणीति अज्ञान दीह अवबोध जाणिका तणउ अर्थि, अलीय मम बुद्धयर्थु श्रीधराचार्य गणितु प्रकटीकुरु।

इसी प्रकार एक उदाहरण गणित पंच विंशतिका बालावबोध का देखा जा सकता है।इस रचना सं० १४८५ की है।मूल प्रति बीकानेर अभयजैन ग्रन्थालय[1] में है।रचनाकार ने इसके संस्कृत रूप की टीका प्रस्तुत की है साथ ही साथ बीच बीच में संस्कृत के श्लोक भी दे दिए है।इसमें दिनमान, वर्षों, पर्वों आदि को जानने के आंकड़ों तथा उनको निकालने के लिए विविध प्रकार की गणितविज्ञान की पद्धतियोंका परिचय दिया गया है:-

> मकर संक्रांति थकी घस्त्र राशि दिन सकल करी त्रिगुणा कीजइ। पछइ समरस- इगीसी मांहि भाजीइभजइ राशि मास दीजइ दिन मास ला भइ।

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर इन रचनाओं की भाषा में भी पर्याप्त साम्यपरिलक्षित होता है।विविध विषयों के अन्तर्गत आनेवाली इनरचनाओं में एक प्रसिद्ध रचना संग्रहणी बालावबोध मिली है। यहरचना अनेक नामों और पदार्थों का कोश है।इसमें विविध नामों, द्रव्यों और पदार्थों का बृहत् परिचय

1- - अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर (हस्तलिखित विभाग)

दिया गया है। शैली बालावबोध की है।एक उदाहरण देखिए :-

असुर कुमार माहीं वि इन्द्र केहा एक चमरेन्द्र बीजू बलेन्द्र नाम कुमार माहीं वि इंद्र केहा धरणेन्द्र बीजू भूतानंद सुवर्णकुमार मांही वि इन्द्र केहा वेणु देव १ वेणुदाली[1] ।विद्युत कुमार माहीं विइन्द्रकेहा हरिकन्त २ हरिस्सहर।

वस्तुतः इन विविध विषय-की गद्य रचनाओं से हिन्दी जैन गद्य साहित्य के विकास क्रम के सोपान निर्धारित किए जा सकते हैं इन रचनाओं में पद्य की ही भांति वैविध्य मिलता है।इस प्रकार उक्त विवेचन में आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की उपलब्ध गद्य रचनाओं के विकास काल की लगभग सभी धाराओं का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है तथा तुलनात्मक विवेचन करने का भी आंशिक प्रयास किया गया है।~~[struck out]~~ जैन गद्य परम्परा का यही इतिहास है।

१- अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर (हस्तलिखित विभाग)।

तृतीय भाग

:: अध्याय - १० ::

‖ आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की कथा /- परम्परायें (CYCLES) और कथा-रूढ़ियाँ (मोटिफ्स) ‖

- आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की कथा परंपराएं और कथा रूढ़ियाँ-

आदिकाल के हिन्दी जैन साहित्य की इन नवीन उपलब्धियों का मूल्यांकन करने पर यह सरलता से ज्ञात हो जाता है कि ये कृतियाँ अनेक प्रकार से रची जाती रही हैं और इनके मूल में कई तत्वों का योग है। रचनाओं के सृजन के इस क्रम में ध्यान से अनुशीलन करने पर एक निश्चित परंपरा के दर्शन होते हैं। तत्कालीन स्थितियों ने, लेखन पद्धति ने, जैन साधुओं के अव्याहत अध्ययन और उपदेशों ने तथा जनता की धर्म प्राण रुचि ने मिलकर ही इन रचनाओं के सृजन में परंपरा बनकर योग दिया होगा। पाठ विज्ञान में जिस प्रकार एक ही प्रति की विभिन्न विभिन्न शाखाएं प्रशाखाएं विभिन्न स्थानों तथा केन्द्रों में मिल जाती है ठीक उसी प्रकार जैन रचनाओं के निर्माण में परंपरा की पुष्टि करने वाली अनेक परिपाटियाँ हैं।

अध्ययन, उपदेश, लेखन, अजैन ग्रन्थों का परिशीलन, लेखन कला जैन श्रमण संस्कृति, भंडारों की व्यवस्था और स्थापना आदि कारणों से जैन कवियों ने लेखन परंपरा को प्रादुर्भावित किया। इस परंपरा क्रम ने इतना जोर पकड़ा कि उपलब्ध कृतियों में इसका वैविध्य पूर्ण [रूप से] बारम्बार दिखाई पड़ने लगा।

यों तो परंपरा शब्द का अर्थ प्रारम्भ से लेकर आगे तक निरंतर चलने वाली किसी शृंखला विशेष से लिया जाता है परन्तु यहाँ परम्परा शब्द से जिन प्रतियों पर प्रकाश डाला जा रहा है उसका अर्थ मूल परंपरा शब्द से थोड़ा हटकर रचनाओं की कथात्मक स्थिति से अधिक संबंधित है। यद्यपि इस कथात्मकता में भी एक शृंखलाबद्धता अवश्य विद्यमान रहती है।

उपलब्ध हिन्दी जैन काव्यों में अनेक कथा कृतियाँ मिलती है, जिनमें कथातत्व का समुचित विकास और प्रसार हुआ है। परन्तु इन रचनाओं में से भी कुछ कृतियाँ ऐसी भी हैं कि जो शुद्ध कथातत्व के विकास के लिए ही लिखी गई हैं। इनमें वर्णनों और कथा सूत्रों की धारा किसी निश्चित परंपरा अव्याहतक्रम या निरंतर चक्र (CYCLIC ORDER) की भाँति चलती रहती है। अतः परंपरा से

यहाँ तात्पर्य निरंतर कथात्मक क्रम अथवा (CYCLIC) स्थिति से है।

चाहे काव्य हो अथवा चरित प्रधान रचना , अथवा अन्य कोई, परंपरा का सम्बन्ध कृति की कथात्मकता से सदैव रहता है। बिना किसी निश्चित परंपरा और क्रम के कोई भी रचना कथा का सम्यक् विकास नहीं कर सकती। कथा के इस विषय में वर्णन की अनेक भूमों का, अनेक घटनाओं का तथा अनेक कुतूहलों का परिवर्द्धन करते हैं। अतः कथा तत्व के साथ इन निरन्तर परिवर्तित होने वाली कथा परम्पराओं (CYCLES) से गहरा संबंध होता है। कथा तत्वों में विभिन्न परम्पराओं (CYCLES) का यह क्रम हमें प्राकृत के कथा काव्यों से प्रारम्भ होकर पुरानी हिन्दी की अनेक रचनाओं में उपलब्ध हो जाता है। इस प्रकार से परंपरायें (CYCLES) कथात्मकता से गहरा सम्बन्ध रखती है।

यह भी बहुत सम्भव है कि किसी परिवर्तन विशेष के कारण ही इन परंपराओं का निर्माण हो जाता होगा अथवा वर्णन क्रम में वैचित्र्य प्रस्तुत करने के लिए ही विविध रूपों में इनमें कथा को ढाला जाता होगा। अथवा यह घटनाओं में वैचित्र्य तथा मौलिकता प्रस्तुत करने के कारण बन जाती होगी।

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की इन रचनाओं का सिंहावलोकन करने पर हमें अनेकों कथा-कृतियाँ मिल जाती हैं। जैन कवियों ने अधिकतर जितने भी काव्य लिखे हैं उनमें अधिकांशतः कथा काव्य हैं। इन काव्यों को या तो किसी तीर्थंकर या महापुरुष अथवा शैलाका का पुरुष अथवा किसी वीरोद्धार नायक को कवियों ने अपना विषय बनाया है। वस्तुतः जितने काव्य उपलब्ध हुए हैं उनमें कुछ ही काव्य ऐसे कहे जा सकते हैं कि जिनमें अभिनूतनता अथवा मौलिकता का समावेश हो। यों सामान्यतः अधिकांश रचनाओं का वस्तु विषय, विवेचन तथा घटनाक्रम लगभग समान ही होता है। वर्णन का यह क्रम भी किसी प्राचीन परंपरा को लेकर चलता है परन्तु इससे परंपराओं के क्षेत्र में अधिक योग नहीं मिलता। परंपरायें निरन्तर गति प्रगतिशील तथा विविधता से पूर्ण कथात्मक रचनाओं में इन परंपराओं (CYCLES) के विशेष जिनके दर्शन होते हैं। ये क्यों बन जाती हैं इसके सम्बन्ध में बहुत दृढ़ता से तो नहीं कहा जासकता परन्तु

यह कहा जा सकता है कि कृतियों में वैविध्य कुतूहल, मौलिकता और जीवट का समावेश करने के कारण ही ये परंपराए (CYCLES) बन जाती रहती होगी। अथवा यह भी कह सकते है कि वर्णन शैली रचना प्रकार तथा छंद आदि की दृष्टि से भी कविगण जान बूझकर कथा को दूसरे ढंगसे रचना चाहते होंगे। अतः रचना क्रम तथा वर्णन पद्धतियों में मौलिकता प्रस्तुत करने के विचार से ही इन कथात्मक परंपराओं (CYCLES) का विवर्द्धन कराता हो। यह भी सम्भव है कि वैविध्य के कारण ही इनकीकथात्मकता रुचिकर प्रतीत होती हो। अस्तु एक ही विषय पर जब अनेक रचनाएं रची जाती है, अथवा एक ही कथा को जब विभिन्न विभिन्न रूपों में ढाला जाता है तब वर्णनक्रम, वस्तु संयोजन और कथा शिल्प में विविध परंपराओं (CYCLES) का जन्म हो जाता है।

आदिकाल की इन हिन्दी जैन कृतियों में अनेक रचनाएं ऐसी है जिनमें कथा एक है, नायक वही है, कथा वस्तु के विभिन्न तत्व भी वही है परन्तु उनकी वर्णन परंपराये (CYCLES) वैविध्य से परिपूर्ण है अतः ऐसी स्थिति में कथा में एक नियमितता, परिवर्तन विविधता तथा मौलिकता का होना आवश्यक है। वस्तुतः एक ही विषय पर जब अनेक प्रकार के विभिन्न काव्य या कथाएं अथवा अन्य चरित ग्रन्थ या प्रबंध काव्य आदि लिखे जाते है तब रचनाओं की कथात्मकता में विविधता और नवीनता के दर्शन होते हैं तथा ऐसी स्थिति में कथा में अनेक परंपराएं (CYCLES) बन जाती है। इस दृष्टि से इन कृतियों की कथात्मक परंपराओं (CYCLES) का अध्ययन करना रुचिकर तथा आवश्यक विषय बन जाता है।

आदिकालीन इन कृतियों में एक ही महापुरुष पर अनेक नामों वाली अनेक प्रकार की कृतियां मिल जाती है इसका फल यह होता है कि उनमें रचनाकारों को वैविध्य का समावेश करना पड़ता है परन्तु इसके मूल में जिन प्रभावशाली तत्वों का प्रभाव होता है वे ही इन कृतियों की विभिन्न कथात्मक परंपराएं (CYCLES) है। ये परंपराएं (CYCLES) एक ही विषय पर विभिन्न रूपों में लिखी जाने वाली रचनाओं और उनके निर्माण में योग देती है।

वर्णन शिल्प की इस प्रवृत्ति से फलतः अनेक कथात्मक परंपराएं बन जाती होंगी। इन cycles या कथा परंपराओं के बनने के अनेक कारण हो सकते हैं उनमें से कुछ निम्नांकित हैः-

प्रत्येक कवि अपने भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से किसी वस्तु को देखता है। प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न भिन्न अध्ययन और दृष्टिकोण होने से एक ही वस्तु विभिन्न मस्तिष्कों में भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया करती है अतः प्रत्येक काव्य के नायक के जीवन को विभिन्न रूप रंग देकर विभिन्न आकृति में ढालना प्रत्येक कवि या लेखक की अपनी विशेषता होती है। रचना में इस दृष्टिकोण को कवि की अपनी मौलिकता कहा जा सकता है।अतः प्रत्येक कवि की इस मानसिक प्रतिक्रिया में वैचित्र्य और वैभिन्न्य होना स्वाभाविक है। अतः प्रत्येक काव्य के सृजन में कवि के व्यक्तित्व का (Personality in Literature) का पर्याप्त महत्व है। प्रत्येक व्यक्तित्व घटनाओं की परंपराओं के निर्माण तथा उनमें वैविध्य प्रस्तुत करने के लिए भी उत्तरदायी है।

मौलिकता भी घटना परंपराओं के निर्माण में योग देती है कवि अथवा लेखक किसी पूर्व प्रचलित किसी चरितनायक, अथवा किसी अन्यकथा को लेकर उसमें यथा सम्भव परिवर्तन कर घटना क्रम में वैविध्य अथवा मौलिकता प्रस्तुत करता है। इस तरह कुछ अभिनूतन अद्भुत नवीन घटनाओं की परंपरा का सृजन करते सकते हैं।

मौखिक अथवा अनुश्रुतिमूलक परंपरा भी कथा परंपराओं (Cycles) को निर्मित करती रहती है।प्राय: से अनेकों कथानक कथा का स्वरूप कैसा था? साहित्यिक तथा सांस्कृतिक गति विधि क्या थी? घटनाओं, चरित्रों तथा प्रबन्ध नायकों से सम्बन्धित काव्यों एवं कृतियों में किस प्रकार का वर्णन क्रम प्रचलित था इन सबके लिए एक अनवरत परिवर्तन इस अनुश्रुतिमूलक परंपरा ने किया है तथा समय समय पर यह क्रम (cyclic Order) घटनाओं के विकास और कारण रूपों के वैविध्य में अपना स्थान बनाता रहा है और इस प्रकार अनेक कृतियाँ इन विविध कथा परंपराओं तथा वर्णन परंपराओं की कड़ियाँ लगती हैं।

वातावरण और जनसमाज भी कथा परंपरा क्रम में सहायक होता है। कभी कभी एक ही व्यक्ति पर बनी कथा परंपरायें अनुश्रुतिबद्धता के कारण अपना रूप बदलती रहती है तथा जितनी उस पर नवीन रचनायें लिखी जाती है उनमें आंशिक अन्तर के साथ मूल कथा अवश्य उसी प्राचीन परंपराओं (cycles) पर आधारित होती है। कई बार ऐसे कथायें और परंपराओं में विभिन्न प्रक्षेपों तथा विभिन्न रूपों में परिवर्तित हुई मिलती है। यद्यपि इन परंपराओं में यह परिवर्तन समसामयिक होता था और मूल कथा उन्हीं कथा सूत्रों पर आधारित होती थी।

जो भी हो, इन कथा परंपराओं (cycles) में निर्माण किस तरह होता रहता है, इनमें परिवर्तन कैसे होते है, कथाक्रम किन घटनाओं एवं सूत्रों में उलझा रहता है तथा विभिन्न काल में नवीन नवीन रूपों में वे कथायें किस प्रकार आती रहती है, आदि सभी बातों के सम्बन्ध में बहुत निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। हां संभाव्य स्थिति पर विचार करने के लिए ही कथा परंपराओं (cycles) के सम्बन्ध में होने वाले संबंधों को स्पष्ट करने के लिए उक्त कारणों पर प्रकाश डाला गया है।

:उपलब्ध प्रमुख कथायें और घटनायें:

आदिकाल के इस साहित्य में अद्यावधि उपलब्ध जितने काव्य है अथवा कथा कृतियां है वे दो प्रकार की है उनको-

१- चरित्र प्रधान, और

२- घटना प्रधान- में बांट सकते है।

चरित्र प्रधान जितनी रचनायें है उनमें सबसे अधिक रचनायें जिन महापुरुषों पर लिखी गई है उनमें से प्रधान तथा प्रमुख तीन है:-

१- नेमिनाथ

२- जंबू स्वामी

३- स्थूलिभद्र

इन्हीं तीनों महापुरुषों को नायक बनाकर लिखे गए काव्यों की परंपरा प्राकृत से ही चली आ रही है। जिस पर अन्यत्र प्रकाश डाला गया है। अपभ्रंश में भी थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ वे स्वीकार कर ली गई है। पुरानी हिन्दी में आकर इनका अनुशीलन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन कृतियों की कुछ परंपराएं (cycles) बन गई है, जिनपर ये रचनाएं आधारित है और वर्णन की इन विविधताओं ने इस कथा परंपरा क्रम को कहीं भी शिथिल नहीं होने दिया है। इन उक्त तीन नायकों को लक्ष्य कर जैन कवियों ने शृंगार, करुण और निर्वेद प्रधान अनेक रास फागु, प्रबन्ध चरित आदि अनेक काव्य रचे हैं। इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि इनसे इतर विषयों पर जैन कवियों ने उस समय कुछ लिखा ही नहीं और कथा परंपराएं (cycles) बनी ही नहीं। ऐसे अनेक जैन काव्य मिल जाते है जिनके चरितनायक विभिन्न है जैसे प्रद्युम्न चरित, शालिभद्ररास, जिनदत्त चउपइ, भरतेश्वर बाहुबली रास, पंच पाण्डव चरित रास, विद्याविलास पवाड़ो आदि। परन्तु औसतन नेमिनाथ, जंबू स्वामी और स्थूलिभद्र पर लिखी रचनाएं असंख्य है। नेमिनाथ जंबूस्वामी तथा स्थूलिभद्र तीनों का जीवन प्रारम्भ में शृंगार का साक्षी रहा है। अतः इन पर लिखे काव्यों की परंपरा बड़ी दीर्घ तथा स्पृहणीय है।

घटना प्रधान रचनाओं में अन्य कई रचनाएं आती हैं। जिनमें चरित होता तो है पर जिनके वस्तु संयोजन में घटनाओं का विशेष चमत्कार होता है। जिनदत्त चउपइ, प्रद्युम्न चरित, सत्यपुरीतीर्थरास, चंदनबाला रास, सुभद्रासती, चउपइ, मृगापुत्रकुलक आदि अनेक ऐसे काव्य हैं। इन रचनाओं में कथा की परंपरा (cycles) क्रम समान नहीं है परन्तु फिर भी कवि ने आंशिक विषय परिवर्तन करके इनमें थोड़ा सा अन्तर प्रस्तुत कर दिया है। अतः सारी रचना के पारंपरिक वर्णन क्रम (cycles) में भी थोड़ा अन्तर आ गया है। इस अन्तर को समझना बहुत आवश्यक है परन्तु इसे सरलता से समझा जा सकता है। अनेक कृतियाँ स्थान वर्णन, तीर्थ-क्षेत्र वर्णन तथा विविध उपदेश और धार्मिकता से सम्बन्धित विषयों पर भी रची गई है कई आध्यात्मिक काव्य भी है कई

बारहमासे भी है। उदाहरणार्थ रेवंतगिरिरास, समरारास, आर्णदो, तथा गीतस्तोत्र और स्तवन आदि।

इन रचनाओं में भी वर्णन की कई परंपराए (cycles) है जो इनमें अद्यावधि प्राण फूंकती रहती है। कथा की इन लेखन परंपराओं (cycles) की स्थितियों को समझाने के लिए हमें उक्त रचनाओं में से कुछ का अनुशीलन करना पड़ेगा। इन परंपराओं की सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि क्या कारण है कि एक ही व्यक्ति पर कथाक्रम (cyclic order) में अनेक काव्य लिखे गए, जिनके नाम, वस्तुसंयोजन आदि एक दम भिन्न रखे गए है, परन्तु जिनका कथा क्रम वही पुरातन है। उदाहरणार्थ नेमिनाथ चतुष्पदिक, नेमिनाथ फाग नेमिनाथ रास, नेमिरास, नेमिचरित, स्थूलिभद्र रास, स्थूलिभद्र फाग स्थूलिभद्रचरित जम्बू स्वामी फाग, जंबूस्वामी का रास, जंबूस्वामी चरित तथा जम्बूस्वामी को विवाहलो।

एक ही जीवन चरित को नायक बनाकर विभिन्न नामों से उसी कथा का नामकरण कवि ने अलग अलग क्यों किया है, साथ ही जब इन कृतियों में कथा परम्परा समान है तब कवियों ने इनका नामकरण विभिन्न विभिन्न क्यों रखा है। ऐसे प्रश्न सहसा ही उठ जाते है परन्तु गहराई में जाने पर ये अन्तर स्पष्ट हो जाते है। वस्तुतः जैन कवियों ने इन काव्यों में जो कथा तत्व रखा है उससे वर्णन क्रम में परंपराओं का दामन बचाकर कोई काव्य नहीं रह सका है। वर्णन परंपराओं (cycles) का यह अन्तर विभिन्न नामोंवाली कुछ निम्नांकित कृतियों की तुलना से सम्भवतः स्पष्ट हो सके:-

रास और फागु :

रास और फागु संज्ञक अनेक रचनाएं उपलब्ध होती है। एक ही चरित नायक पर कईरचनाएं रास नाम से मिलती है तथा उसी चरित नायक पर लिखी कुछ रचनाएं फागु मिलती है। यद्यपि इन रचनाओं में कथा सूत्र तो वही होता है परन्तु इनके शिल्प में अन्तर होता है।इन विभिन्न नामों से लिखी जाने वाली कृतियों में मौलिकता कवि का व्यक्तित्व तथा उसका अपना मनोवांछित परिवर्तन

भी होता है। उदाहरणार्थ नेमिनाथ रास (सं० १२९०) का उपलब्ध होता है। और पद्म जिनपद्म तथा समुधर तीनों कवियों के नेमिनाथ पर लिखे हुए नेमिनाथ फागु मिलते है। यही नहीं, रास और फागु के अतिरिक्त उसी चरित नायक पर लिखी अन्य कई रचनाएं यथा चतुष्पदिका, प्रबन्ध चरित, आदि भी मिल जाते है। इन रचनाओं में मूल कथा में चरित नायक होता है लेकिन कवि इनके नामकरण में रचना के शिल्प के आधार पर आंशिक अन्तर करदेते है। इस आंशिक अन्तर को समझना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्यक है। उदाहरणार्थ रास और फागु में जो कथा परंपराएं है उनमें इस आंशिक अन्तर को समझना होगा। रास गेय रूपक होता है जबकि फागु मनोविनोद प्रधान उल्लास गान।यदि कवि को नेमिनाथ के चरित को गेय रूपक के रूप में प्रस्तुत करना हुआ, तो उस रचना का नामकरण रास कर दिया। यदि उसे नेमिनाथ का गीत उल्लास प्रधान मधुर करना हुआ तो नामकरण फागु कर दिया साथ ही रास में रास छन्द की प्रधानता होती है और फागु में फागु छन्द की। एक कवि चरित नायक का चरित प्रस्तुत कर सकता है दूसरा मधुमास का उल्लास प्रधान मादक गीत होता है। एक की कथा में विस्तार होता है फागु मधुर काव्य होने से विस्तार और वर्णनात्मकता उसकी मिठास में बाधक होते है। उसकी कथा अनेक घटनाओं द्वारा कुण्ठित रहती है और फागु में घटनाओं का विस्तार, कुतूहल तथा अधिक आरोह अवरोह नहीं रहते ।

सामान्यतः एक ही चरित को लेकर विभिन्न नामों से लिखी गई इन रचनाओं की कथा में भी अन्तर होता है। उदाहरणार्थ पंचपांडव चरित रासु (शालिभद्रसूरि सं० १४१०) और पंच पाण्डव फागु (सं० १५०० अज्ञात कवि कृत) रचनाओं की घटनाओं में अन्तर है।यथा पांडवों के चरित की अनेक कथाओं को छोड़कर फागु में उद्धृत गेय रूपक के रूप में कवि ने कोमल बनाकर प्रस्तुत किया है। उसमें अधिक विस्तारपूर्ण घटनायें है एवंदूसरे में संक्षिप्त । दोनों में छंद भी विभिन्न है।

यह भी सम्भव है कि कवि ने विस्तृत रचनाओं में समय अधिक लगने के कारण ही इन संक्षिप्त उद्धृत मधुर गेय रचनाओं का सृजन किया हो। साथ ही

क्योंकि एक ही शलाका पुरुष को अनेक कवि अपने काव्य का विषय बनाते थे। अतः विषय में मौलिकता प्रस्तुत कर जन समाज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ही कवि ने विस्तृत घटनाओं का कथन न कर छोटी घटना और विभिन्न नाम को एतदर्थ चुना हो। इस तरह वर्णन के इसी क्रम में अनेक कथा परंपराएं धीरे धीरे बनती गई होंगी। ये परंपराएं (cycles) केवल कथा के रूप में ही नहीं मिलती, वर्णनक्रम और कला पक्ष में भी होती है। वर्णन के इस अव्याहत क्रम (cyclic order) कथा के तत्वों का दर्शन, छन्द, शिल्प, तथा कथा की शैली में भी मिल जाता है। कई रचनाएं विषय प्रधान परंपराओं (cycles) के बनाने और परिवर्तित होने में योग देती है। कई रचनाएं छंदों के क्षेत्र में विभिन्न cycles प्रस्तुत करती है जो कई छंदों तथा शैली के क्षेत्र में। कथा के क्षेत्र में घटनाओं के कौतूहल भी इन कथाओं की परंपराओं का निर्माण करते है और यही कारण है कि एक ही नायक को आधार मान कर अनेक प्रकार की विविध रचनाएं मिल जाती है, जो कथा परंपराओं, वर्णन परंपराओं तथा अन्य कलात्मक परंपराओं में विभिन्न सोपान स्थापित करती रहती है। निस्संदेह आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की इन परंपराओं (cycles) का अध्ययन महत्वपूर्ण है-

प्रबन्ध और चरित-

रास और फागु के अतिरिक्त कुछ विभिन्न चरित नायकों पर लिखी हुई अनेक रचनाएं- प्रबन्ध, चरित और चतुष्पदिका या चउपइ संज्ञक मिलती है। ये रचनाएं भी कथा परंपराओं के कारण ही वैविध्य प्रस्तुत करती है।उदाहरणार्थ भरतेश्वर बाहुबली रास और भरतेश्वर बाहुबली प्रबन्ध, नेमिनाथरास, नेमिनाथ चरित, नेमिनाथ विवाहलो तथा नेमिनाथ चउपइ, भरतेश्वर बाहुबली घोर और भरतेश्वर बाहुबली चरित, स्थूलिभद्ररास और स्थूलिभद्र फागु- जंबू स्वामी चरित, जंबूस्वामी विवाहलो, नेमिनाथ फागु और नेमिश्वर चरित फागु बंध, नेमिनाथ धवल और नेमिनाथ बारहमासा- आदि अनेक रचनाओं को लिया जासकता है।

इन रचनाओं के शिल्प पर विचार करने पर यह स्पष्टता से कहा जा सकता है कि इनके नाम में जो कवियों ने वैविध्य प्रस्तुत किया है उसके मूल में अवश्य ही कोई दृष्टि विशेष होगी। वास्तव में गम्भीरता से अनुशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि इन रचनाओं के वर्णन के मूल में निश्चित परंपरायें (cycles) बनी हुई है जिनका उद्भव प्राकृत से ही चला आता है। हां यह देखा गया है कि कहीं कहीं कवि ने वर्णनक्रम परंपराओं में नवीनता प्रस्तुत कर नई विधाओं की सृष्टि की है।यों तो प्रत्येक रचना के मूल में कथा और चरित तो रहता ही है और यदि उसमें सुसंबद्ध शृंखला मूलक विचारधारा हुई, तो वह एक प्रबंध भी हो जाती है परन्तु एक ही चरित को लेकर जब उस पर विभिन्नरचनायें लिखी जाती है तब उनमें कई परंपराओं का आधार होता है, कई नई परम्पराओं का सृजन होता है तथा कई अन्य आंशिक अन्तर भी होते है उदाहरणार्थ यहां उक्त रचनाओं के सामान्य अन्तर का स्पष्टीकरण किया जा सकता है। वर्णन के इन रूपों में भी एक निश्चित संक्रांति के दर्शन होते है। कईस्थानों पर तो वर्णन में भी विभिन्न पुरातन दृष्टियों को छोड़कर नई परंपराओं को अपनाया गया है यह भी सम्भव है कि एक ही चरित नायक पर लिखी हुईदो रचनाओं का अलग नाम रखकर सामान्य जनता के लिए बरदान स्वरूप समझते होंगे। अन्यथा इस समय एक ही प्रकार की रचनाओं से जनसाधारण को भ्रम भी होती होगी। पहले उसमें विस्तार चरित, कथा, कथा व्याख्यान आदि सभी चीजों में नये वर्णनक्रम और परंपराओं की आलोचना मिल जाती है।

एक ही व्यक्ति पर लिखी हुई विभिन्न रचनाओं में विभिन्न परंपराओं के बनने आदि के लिए उक्त कृतियों पर संक्षेप में विचार किया जासकता है —

प्रबन्ध और चरित काव्य में विस्तार यद्यपि समान होता है, दोनो काव्य खंड काव्य से ऊपर उठकर महा काव्य की सीमाओं का स्पर्श करते हैं परन्तु इनकी घटना और कथा परंपराओं में अन्तर भी होता है। कवि का अभीष्ट अन्तर यद्यपि आंशिक होता है।उदाहरणार्थ नेमिनाथ फागु और नेमिश्वर चरित फागु बंध, नेमिनाथ विवाहलो आदि रचनायें नेमिनाथ को चरित नायक मानकर

भी विभिन्न नामों से प्रस्तुत की गई है।इसी तरह जंबूस्वामी और स्थूलिभद्र सम्बन्धी विभिन्न नाम संज्ञक रचनाओं पर भी विचार किया जा सकता है।इन परिवर्तनों के मूल से केवल वर्णन परंपरायें और कथाजन्य मौलिकता तथा नवीनता अवश्य होती है। ये कवि परंपराक्रम का निर्वाह भी श्रम के साथ करते हैं। उदाहरणार्थ जंबू स्वामी रास गेय रूपक है, तो जंबू स्वामी फागु गेय मधुमासगीत, तथा जंबूस्वामी विवाहलो एक विवाह सम्बन्धी कथा काव्य है। यद्यपि इस रचना में कोई विशिष्टवैभिन्य परिलक्षित नहीं होता, तथापि विवाह में रीति मूलक वर्णनों तथा चरितमूलक परंपराओं का यथा सम्भव निर्वाह कवि ने प्रचलित परंपराओं के कारण ही किया है। विवाह के छोटे छोटे काव्य है, इनमें कवि द्वारा प्रतिपादित घटना बाहुल्य नहीं होता, चरित आख्यान इनमें पूरा नहीं होकर तत्कालीन प्रचलित रूढ़ियों तथा परम्पराओं के आधार पर किया गया।विवाह का संक्षिप्त वर्णन है।इसमें चरित और प्रबन्ध काव्यों का विस्तार नहीं होता। साथ ही प्रत्येक कवि अपनी लेखन परंपरा को सशक्त रखना चाहता है अतः उस परंपरा का सम्यक निर्वाह उसका कर्तव्य है। अतःइन लेखन परंपराओं की सीमा में बंधा हुआ भी वह विभिन्न नामों से काव्य सृजन कर जनता में लोक प्रियता उत्पन्न करते हैं। साथ ही उनके कृति सृजन करने के मूल में यह भी बात रहती होगी कि किस प्रकार संक्षिप्त रचना द्वारा जनता को कथा और चरित दोनों से परिचय कराया जाय। और यही कारण है कि जंबू स्वामी का रास, जंबूस्वामी का फागु तथा विवाहलो में आंशिक अन्तर है। परन्तु फिर भी यह अन्तर ही रचनाओं में कथा परंपरा के अभ्यासक्रम में निरंतर वृद्धि करता है।

जहाँ तक प्रबन्ध और चरित संज्ञक रचनाओं का प्रश्न है इन रचनाओं में अन्तर स्पष्ट करना बहुत सरल नहीं है। चरित और प्रबन्ध दोनों ही एक ही अंग के पूरक है। दोनों में वर्णन, छंद, कथा, काव्य, तथा भाषा शैली परंपरा रीति के दर्शन तो मिलते ही है परन्तु घटनाओं के क्रम में अन्तर मिल जाता है। छंदो तथा भाषा शैली की दृष्टि से भी इन रचनाओं में नवीन परंपराएं निर्मित हुई मिलती है। यों प्रबन्ध मूलक चरित कथा लिखने की परम्परा तो प्राकृत से

मिलने लगती है परन्तु रचनाओं में कुछ मौलिक घटनाएं प्रस्तुत कर उन्हें नई परंपराओं द्वारा पुष्ट करना वर्णन परंपरा में नया अध्याय जोड़ना है। अस्तु प्रबन्ध और चरित काव्य तथा रास और फागु तथा विवाहलो आदि काव्यों में कथा सूत्र अन्यपरंपराएं तो मिलती है परन्तु घटनाओं की विविधता, उत्साह पूलक वर्णन क्रम तथा मौलिक सृजन के लिए कहीं छंद परिवर्तन कर देता है तो कहीं शैली गत परंपराओं की ओर अग्रसर है। ताकि उनमें वर्णन क्रम में एक पिसा पिटापन न रहकर मौलिकता आ जाय। यह परंपरा वर्णन तथा कथा की प्राचीन और पिटी-पिटी परंपराओं में एक आंदोलन प्रस्तुत करती है।परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी यह वर्णन क्रम में प्राचीन परंपराओं का पूर्णतः निर्वाह भी करती है। अर्थात् कवि एक ही व्यक्ति पर लिखी अनेक रचनाओं के कारण बनी विभिन्न परंपराओं की उपेक्षा न कर,उनका यथावत् पालन करता है।

प्रबन्ध और चरित काव्यों की भांति ही स्थूलिभद्र और नेमिनाथ पर अनेकों रचनायें अलग अलग नामों से लिखी मिल जाती है। कई नेमिनाथ के बारहमासे मिल जाते है और कई चउपई। इनके रचना क्रम में प्राचीन परंपराओं का तो अनुगमन है ही परन्तु फिर भी नवीन नामकरण करने से यह कहा जा सकता है कि कवि प्राचीन परंपरा के होने पर भी कथा सम्बद्ध रूढ़ियों को छोड़ कर नई परंपराओं और मानदण्डों की स्थापना, कर रहा है।उदाहरणार्थ नेमिनाथ बारहमासे राजुल के विरह काव्य है स्थूलिभद्र फागु एक शृंगारिक खण्ड काव्य है बारहमासों में विप्रलम्भ परंपराओं की, विरह वर्णन की वर्ष के १२ महीनों की तथा अन्य घटनाओं की काव्यात्मक व्याख्या है जबकि नेमिनाथ चतुष्पदिका चउपई संज्ञक रचना होते हुए भी सुन्दर बारहमासा काव्य है। उसमें कोमल भावनाएं हैं, विरह जन्य घटनाओं का आक्रोश है, कारुण्य है तथा छंद मात्र पूर्वविकल्पजन्य परम्पराओं से पर्याप्त अन्तर है। साथ ही कवि कथा में भी थोड़े में अधिक सारपूर्ण कहने की प्रवृत्ति ग्रहण करता हुआ परिलक्षित होता है। यही कारण है कि विभिन्न नामों से एक ही व्यक्ति पर लिखी जाने वाली कृतियों की परंपरा मिलती है। तथा ये परंपराएं भी समय समय पर बदलती रहती है। इनमें कवि वैचित्र्य तथा कौतिविधान में डालकर जनता के उत्साह विस्मय के लिए लिख देता है परन्तु

वास्तव में ये परंपरायें ही इनके मूल में होती हैं।और यही कारण है कि एक ही व्यक्ति पर अनेक नामों से यदि रचनायें लिखी जाय तो कथा परंपराओं से लेकर वर्णन, शिल्प, छंद एवं मौलिकता सम्बन्धी अनेक परंपराओं का सृजन हो जाता है तथा काव्य के लिए इन कथा परंपराओं का बड़ा महत्व होता है।

परवर्तीकाल में भी इन कथा परंपराओं का विकास सर्वत्र परिलक्षित होता है। मध्य युगीन कवियों में उदाहरणार्थ जायसी, तुलसी, आदि में इन जैन कथाकारों की लगभग इस प्रकार की अनेक जैन वर्णन परंपराओं का प्रभाव पड़ा है। जायसी की प्रेमाख्यानकता और कथातत्व, तुलसी की प्रबन्धात्मकता, सूर का गीति काव्य आदि सभी के मूल में जैन कवियों की इन कथा परम्पराओं वर्णन परंपराओं तथा शिल्प शैलीजन्य परंपराओं ने पृष्ठ भूमि के रूप में पर्याप्त सहायता की होगी। घटनाक्रम, कुतूहल वस्तु संयोजन, रस परिपाक छन्द और शिल्प जन्य अनेक प्रभाव हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल तक में भी देखे जा सकते हैं। इन परंपराओं का यह तारतम्य प्राकृत से लेकर आज तक अव्याहत रूप में मिलता है।

(ख) काव्य रूढ़ियाँ-

काव्य रूढ़ियों का इतिहास चिर प्राचीन है। संस्कृत के कुछ काव्यों में जैसे माघ, बाणभट्ट और हर्ष में कथा रूढ़ियों का वर्णन मिल जाता है। कथा परंपराओं की भाँति कथा रूढ़ियाँ भी काव्य का शृंगार प्रवर्द्धन करती हैं। तुलनात्मक दृष्टि से कालिदास और उससे पूर्व यदि आदि कवि के काव्य में काव्य रूढ़ियों को खोजा जाय तो इनका आंशिक स्वरूप ही मिलता है। प्राकृत में इनका प्रचार धीरे धीरे बढ़ा और अपभ्रंश साहित्य में तो इनकी परंपरा अत्यन्त पुष्ट हो गई।

अपभ्रंश के अनेक काव्यों में कथात्मक रूढ़ियों का वर्णन है। अपभ्रंश काल ने ही परवर्ती हिन्दी रचनाओं में वर्णन रूढ़ियों को पुष्ट किया है। उत्तर अपभ्रंश के इन ग्रन्थों में वर्णित इन कथा रूढ़ियों को अपभ्रंश काल की रूढ़ि परंपराओं ने प्रभावित किया है। इन रूढ़ियों के निर्माण में ऐतिहासिक काव्यों ने बड़ा

योग दिया है। आदिकाल के ऐतिहासिक कथाकाव्यों की चर्चा करते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन कथानक रूढ़ियों पर सर्व प्रथम प्रकाश डाला है। इन कथानक रूढ़ियों की परंपरा और उद्देश्य के विषय में बतलाते हुए वे कहते हैं- भारतीय कवि इतिहास प्रसिद्ध पात्र को भी निजंधरी कथानकों की ऊंचाई तक ले जाना चाहता है। इस कार्य के लिए वह कुछ ऐसी कथानक रूढ़ियों का प्रयोग करता है जो कथानक को अभिलषित ढंग से मोड़ देने के लिए दीर्घ काल से भारत की निजंधरी कथाओं में स्वीकृत होते हुए आए हैं और कुछ ऐसे विश्वासों का आश्रय लेता है जो इस देश के पुराणों में और लोक कथाओं में दीर्घ काल से चले आ रहे हैं। इन कथानक रूढ़ियों से काव्य में सरसता आती है और घटना प्रवाह में लोच आ जाती है। मध्यकाल में ये कथानक रूढ़िया बहुत लोकप्रिय हो गई थी और हमारे आलोच्यकाल में भी इनका प्रभाव बहुत व्यापक रहा है।[१]

अस्तु आदिकाल में जैन स्त्रोत में उपलब्ध इन रचनाओं में अनेक प्रकार की कथा रूढ़िया उपलब्ध होती है इनका विभाजन अधोंकित रूपों में किया जा सकता है:-

१- काव्य रूढ़ियां
२- कथा रूढ़ियां
३- अनुश्रुतिमूलक रूढ़ियां
४- काल्पनिक रूढ़ियां
५- विविध रूढ़ियां -

१- काव्य रूढ़ियां

१- काव्य रूढ़ियों में वर्णित रूढ़ियां काव्य के प्रारम्भ में ही देखी जासकती है इन रूढ़ियों में काव्य के प्रारम्भ में होने वाले:

(१) मंगलाचरण, सरस्वतीवंदना अथवा जिनवंदन

(२) कविवंश परिचय, कवि की लघुता और आत्मनिवेदन

(३) प्रारम्भ में साधु पुरुषों और काव्य रसज्ञ पाठकों तथा श्रोताओं की प्रशंसा।

(४) खलनिंदा, तथा अनिष्टकारी तत्वों का बहिष्कार

(५) कवि की पदों के अन्त में उसके नामकी छाप मिलना-

काव्य सम्बन्धी इन रूढ़ियों का साहित्यिक अभिप्राय काव्य को सरस बनाना है। घटनाओं में चमत्कार और कौतूहल वर्णन काव्य के कलात्मक पक्ष को मजबूत बनाता है। यही अभिप्राय इन काव्यात्मक रूढ़ियों में बैठकर आगे चलकर अलौकिक बन जाता है तथा ये अभिप्राय (motives) परंपरित रूढ़ि का रूप धारण कर लेते है। प्रत्येक देश के अपने अपने रूढ़ि अभिप्राय होते है। द्विवेदी जी का कथन है कि ऐतिहासिक चरित को काव्य का माध्यम बनाने पर कवि को अनेक संभावनाएं करनी पड़ती है और ये संभावनाएं अनेक अभिप्रायों (motives) के कारण बनती है तथा अनेक अभिप्राय भी इनके कारण बनते जाते है और इन्हीं से आगे चलकर कथा रूढ़ियां प्रचलित हो जाती है। डा० द्विवेदी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि- ऐतिहासिक चरित का लेखक संभावनाओं पर अधिक बल देता है। संभावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय दीर्घकाल से व्यवहृत होते आ रहे है जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रूढ़ि में बदल गए है।[1] इन अभिप्रायों के अनेक अर्थ किए गए है[2] पर यहां उनके विषय का सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः यहां लेखक रूढ़ियों के साहित्य सौन्दर्य और अभिप्राय का ही विश्लेषण करना चाहता है। अतः मोटिफ

१- हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ७४, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

२- देखिए-पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियां- पृ० १९-२० द्वारा श्री ब्रजविलास श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन।

और [१] टाइप वस्तुओं का मिलना सामान्यतः प्रत्येक देश के कथा और काव्य रूढ़ियों में सम्भव है। साथ ही हमारी कहानियों का अध्ययन करने के लिए इन अभिप्रायों के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है।[२]

कथा परंपराओं की भांति काव्य रूढ़ियां भी काव्य में अतिनूतन, मौलिक तथा नए वातावरण की सृष्टि कर काव्य के कथा तत्व को प्राणवान बनाती हैं। प्रत्येक काव्य वैवर्णित रूढ़ियों में वहां के देशकाल का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए अन्यथा उनमें एक स्वाभाविकता नहीं आ सकती। विस्मयकारी मौलिक घटनाओं का सृजन, नये वातावरण का निर्माण, विविध रूढ़ियों द्वारा कथा में उत्थान का प्रयत्न तथा इन छोटी छोटी घटनाओं द्वारा काव्य की मुख्य संवेदना को बल मिलना आदि सब बातें इन काव्य और कथा रूढ़ियों का प्रमुख लक्ष्य होता है।

आदिकालीन जैन कृतियों में काव्य रूढ़ियों का अध्ययन प्रारम्भ करने वाली पृष्ठ भूमि में प्राप्त सर्व प्रथम रचना- कथा सरित्सागर- है। साथ ही साथ जैन कथा कोश पंचतंत्र, पार्श्वनाथ चरित, समराइच्चकहा, और यशकुमार चरित्र भी उल्लेख योग्य देते हैं। अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान मारिस ब्लूमफील्ड ने सर्वप्रथम इन प्रसिद्ध ग्रन्थों में उपलब्ध कथा रूढ़ियों पर प्रकाश डाला है। पश्चात उनके अनेक लेख भी निकल चुके हैं। पेन्जर ने भी उनके बाद इन रूढ़ियों

१(i)The Motif is the smallest recognisable element that goes to make up a complete story. Shiple-Dictionary of World Literature Folk tale page 246.
(ii) Research has been fostered by recognition of two complementary tary concepts 'Type' and 'Motif'. Its importance for comparative study is to show that material of a particular type is common to other types. The importance of the 'Type is to show the way in which narrative motifs form into conventional clusters Same- page 246-48.
२-(i)American JOURNAL of oriental society Volume 36 page 52-54.
(ii) Settled conventions in this regard are of prime technical help in the systematical study of fiction more important than personal preferences however justified these may be when taken up singly by themselves-See life & Stories of the Jain Savior; Parsvanatha-page 193-194.

पर पर्याप्त कार्य किया है।[1]

इस प्रकार जैन काव्यों में उपलब्ध जिन काव्य रूढ़ियों में से कुछ पर ऊपर विचार किया गया है उनका उत्तर अपभ्रंश अथवा पुरानी हिन्दी के काव्यों में सफल रूप से निर्वाह किया गया है। प्रारंभिक रूढ़ियों के अतिरिक्त कई काव्यात्मक रूढ़ियां रूपविधान सम्बन्धी भी मिलती है जिनपर कथानक रूढ़ियों के अन्तर्गत विचार किया जायगा। उक्त रूढ़ियों में कुछ का परीक्षण किया जा सकता है:-

१- प्रत्येक जैन काव्य प्रारम्भ में जिनवंदना, अथवा सरस्वती वंदना से प्रारम्भ होता है- उदाहरणार्थ- भरतेश्वर बाहुबली रास- रेवंतगिरि रास, नेमिनाथ फागु, जिनदत्त चउपइ आदि ग्रन्थों में जिनवंदना अथवा सरस्वती वंदना मिल जाती है। इनमें पद्मावती देवी अथवा चक्रेश्वरी देवी अथवा अंबिकादेवी का नमन भी मिल जाता है।

२- अनेक प्रबन्ध और चरित काव्यों में कवि ने स्वयं अपना परिचय दिया है इन कवियों में त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध के रचयिता शालिभद्र सूरि, नेमिनाथ चतुष्पदिका के निर्माता, विनयचन्द्रसूरि, प्रद्युम्नचरित के निर्माता सधारु तथा जिनदत्त चउपइ के प्रणेता श्री रल्ह आदि कवियों ने अपने ग्रन्थों के अन्त में अपने नाम की छाप, प्रारंभ में सज्जन प्रशंसा स्वयं की लघुता तथा खल निंदा आदि करके पुरातन काव्य रूढ़ियोंका निर्वाह किया है।

२:- कथा रूढ़ियां

प्रत्येक काव्य कृति में प्रयुक्त कथा में अनेक प्रकार की कथा रूढ़ियां उपलब्ध होती है। इनमें कई तो कल्पित होती है और कई अनुश्रुतिबद्ध तथा लोक परम्परा से अनुस्यूत। कथा रूढ़ियों में मिलने वाली अनेक रूढ़ियां है जिका

१- Ocean of story Volum I. page 30 by PENZER.

जिनका चयन आदिकालीन इन रचनाओं द्वारा किया जा सकता है:-

१- रूपविधान सम्बन्धी

२- विविध वर्णन सम्बन्धी

३- सामाजिक परंपराओं सम्बन्धी

४- अति प्राकृतिक तत्वों से युक्त

१- रूप विधान सम्बन्धी रूढ़ियाँ-

रूपविधान सम्बन्धी रूढ़ियों के पीछे कोई विस्तृत इतिहास नहीं है।काव्य का प्रारम्भ करने पर जिस प्रकार प्रातःकाल वर्णन, उषा वर्णन, रितु वर्णन, अथवा संध्या वर्णन, नदी, नद, उद्यान, उपवन आदि वर्णन भी इन्हीं रूप विधान सम्बन्धीरूढ़ियों के अन्तर्गत आयेंगें।

प्रकृति वर्णन में नाम परिगणनात्मक वर्णन बहुधा इसी का प्रतीक है।साथ ही पेड़ों का फूलों का तथा अन्य वनस्पतियों का वर्णन भी इसी के अन्तर्गत लिए जायेंगे।

युद्ध वर्णन में शस्त्रों की गणना,बरात वर्णन में भोजन आदि व्यंजनों के वर्णन आदि में भी यही रूढ़ियां मिलती है।

जैन रचनाओं में यदि इन्हें देखा जाय तो अधिकांश कृतियों में उक्त रूढ़ियों का सम्यक् निर्वाह मिलता है।

रास, फागु, चरित, स्तवन गीत, प्रबन्ध आदि कोई भी काव्य ले लीजिए, उनमें प्रातःकाल वर्णन,नदी नद वर्णन, प्राकृतिक छटा आदि मिल जायेंगें। फागु संज्ञक रचनायें तो प्राकृतिक वर्णनों से परिपूर्ण ही है। परन्तु ये रूप सम्बन्धी रूढ़ियां अधिकतर बड़े प्रबन्ध काव्यों में ही मिलती है।इसी प्रकार त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध और नेमिनाथ फागु, पेथड़रास, देवसुंदर सूरि फाग, तथा नेमिनाथ चउपइ आदि ग्रन्थों में रितु वर्णन आदि मिल जाते है।

षट् रितु वर्णन का विधान भी नेमिनाथ चतुष्पदिका में मिल जाता है। रितुओं में बसन्त वर्णन पर तो कवियों ने पूरे के पूरे फागु ही लिखे है। बसन्त फागु इसका उदाहरण है यों फागु स्वयं भी मधुमास का महोत्सव गान होता है।

प्रकृति में नाम गणनात्मक प्रवृत्ति, प्रद्युम्न चरित और जिनदत्त चउपइ में मिल जाती है। प्रद्युम्न चरित में भी कवि सधारु ने अनेक पेड़ों को गिनाया है। साथ ही शस्त्रों की गणना भरतेश्वर बाहुबली रास में मिल जाती है। जिनदत्त चउपई, प्रद्युम्न चरित विद्याविलास पवाड़ों आदि रचनाओं में बरात वर्णन तथा भोजन की विविध वस्तुओं का वर्णन मिल जाता है। [1]

इसके अतिरिक्त भी रूपकात्मक रूढ़ि विधान में पूरा ग्रन्थ त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध पर्याप्त मौलिकता प्रस्तुत करता है। कवि ने उसके सारे पात्र ही मौलिक रखे हैं। ज्ञान, मन, तन, माया, आदि सब प्रतीक रूढ़ि रूपक हैं। साथ ही बरात वर्णन में मांगलिक कलशों द्वारा नमक उतारने आदि की क्रियाएं और रूढ़ियां जैन कवियों की कृतियों में उनकी अपनी हैं। नेमिनाथ फागु, नारीनिरास फागु आदि रचनाओं में ये रूढ़ियां देखी जा सकती हैं। [2]

(ब) विविध वर्णन सम्बन्धी रूढ़ियां:

विविध वर्णनों की एक लम्बी परंपरा जैन काव्यों में मिल जाती है। हाथी वर्णन, घोड़ों का वर्णन, बरात का वर्णन, जैवनार वर्णन, नगर वर्णन, दिग्विजय वर्णन, नगारों का वर्णन, युद्ध वर्णन [3] विद्याओं का वर्णन [4] नामवर्णन [5] आदि वर्णनों की लम्बी रूढ़ियां इन काव्यों में मिल जाती हैं। ये विविध वर्णन काव्य के कथानक में वैचित्र्य तथा मौलिकता का समावेश करते हैं। इनमें पहले किसी भाव अथवा दर्शन अथवा अथवा विचार विशेष का प्रतिपादन अवश्य रहता होगा। परन्तु कालान्तर में धीरे धीरे ये वर्णन रूढ़ियों में परिवर्तित हो गए हैं। भरतेश्वर बाहुबली रास, में युद्ध वर्णन, नगारों, नगरों घोड़ों एवं हाथियों आदि

१- देखिए- प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्याय ६, ७ और ८।
२- देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्याय ६, ७ और ८।
३- देखिए भरतेश्वर बाहुबली रास-श्री लालचंद गांधी द्वारा सम्पादित
४- प्रद्युम्न चरित (अप्रकाशित), आमेर भंडार, जयपुर
५- जिनदत्त चउपइ (,,) आमेर भंडार, जयपुर।

के वर्णन, प्रद्युम्न चरित में सोलह विद्याओं के वर्णन जिनदत्त चउपइ में विद्याधरों की रानियों के प्रवेशों के नामों पर रखे गए नाम वर्णन काव्य में कथात्मकता को विशेष द्युति प्रदान करते हैं।

(ख) <u>सामाजिक परंपराओं सम्बन्धी रूढ़ियाँ</u>-

सामाजिक परंपराओं में अनेक रूढ़ियाँ मिल जाती हैं। साहित्य समाज का अविभाज्य अंग है अतः समाज की प्रत्येक हलचल की रक्षा साहित्य में होती है। सामाजिक संगठन, विवाह परंपरा, वर्ण व्यवस्था, रीतिरिवाज,राजा प्रजा, व्यापार तत्कालीन स्थिति जुआ वर्णन, वैश्या वर्णन, नखशिख वर्णन बहु-विवाह आदि लगभग सभी सामाजिक रूढ़ियों का जैन कवियों ने वर्णन किया है। अतः ये रूढ़ियाँ समाज के यथार्थ में डूबी रहती थीं।

बहुविवाह प्रथा प्रद्युम्न चरित तथा जिनदत्त चउपइ में नखशिख वर्णन बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स के राउल सम्बन्धी शिलालेख में, पंचपाण्डव चरित रासु, वसन्त फागु, स्थूलिभद्र फागु तथा विद्याविलास पवाड़ो, और रंग सागर नेमिफागु, में परहित बलिदान की भावना जैन तीर्थंकरों से सम्बन्धित लगभग सभी काव्यों यथा- भरतेश्वर बाहुबली रास, स्थूलिभद्र फागु, नेमिनाथ फागु, आदिनाथ चरित, नारीविक्रय, वैश्या तथा जुआ आदि वर्णन क्रमशः चंदनबालारास, कुमरावली चतुष्पदिका, प्रद्युम्न-चरित तथा जिनदत्त चउपई में, परनारी गमन,सुदर्शन सेठशील प्रबन्ध, तथा चंदनबालारास में, परस्त्री सास द्वारा बहू को कष्ट देना, सांसारिक वैभव का त्याग, शालिभद्र रास और चंदनबाला रास में निम्न श्रेणी की स्त्री पर मुग्ध हो उससे विवाह करना पंच पांडव चरित रासु में, दुष्ट वधात्मा आदि का वध, सार्थवाहक का पतन सम्बन्धी रूढ़ियाँ जिनदत्त चउपई व सत्ययुगीन उत्पात में, मिल जाती हैं। इस तरह अनेकरचनाओं में तत्कालीन समाज रीति रिवाज परंपरा और गृह त्याग आदि सम्बन्धी रूढ़ियाँ इन कृतियों में मिल जाती हैं।

(ग) <u>अति प्राकृतिक तत्वों से युक्त घटनाओं वाली कथा रूढ़ियाँ</u>:-

अनेक अप्राकृतिक घटनाओं का वर्णन भी जैन कवियों की वर्णन परंपरा

रही है। इन अति प्राकृतिक घटनाओं में जिन मुनियों का प्रभाव, विद्याधरों और यक्षों का प्रभाव, विद्याओं का प्रभाव, बलवती शक्तियों द्वारा आत्मा रक्षा, विभिन्न वस्त्रों का प्रयोग तथा उनका अलौकिक प्रभाव सरस्वती, दुर्गा और विभिन्न देवियों का प्रकट होकर वरदान देना, स्त्री के सतीत्व के प्रभाव से जहाज का डूबना, विभिन्न रूप बनाना चक्र रत्न का प्रकट होना और कैवल्य प्राप्ति से पूर्वभव बतलाना, सेना ध्वस्त करना, नगर उजाड़ना, पुरुष का तोता बना देना, मरे हुए तथा मूर्छितों को पुनः जिन्दा कर देना आदि अनेक कथा रूढ़ियाँ इन जैन कृतियों में उपलब्ध होती है। इनमें अति प्राकृतिक घटनाओं और तत्वों का समावेश मिलता है। उदाहरणार्थ कुछ अलौकिक घटनाओं से युक्त कथा रूढ़ियाँ देखिए--

सत्यपुरीय महावीर उत्साह में सारी यवन सेना का स्तंभित होना, जम्बूस्वामी चरित में प्रभव चोर का तालोद्घाटन, अवस्वापन और स्तंभन, गयसुकुमाल रास में सिर पर अंगारे जलाने से वहीं आत्म बलिदान हो जाना, विद्याधरों और यक्षों की शक्ति और विद्याओं के प्रभाव से प्रद्युम्न चरित में प्रद्युम्न को पत्थर के नीचे दबा देना, विद्याओं द्वारा सबको मूर्छित कर हराना, विभिन्न वस्त्रों का अलौकिक प्रभाव, तथा प्रद्युम्न का अदृश्य होना, विभिन्न रूप परिवर्तन करना, जिनदत्त चउपई में सागर में नारी के शील से जहाज का डूबना, भरतेश्वर बाहुबली रास में चक्ररत्न का प्रकट होना, जिनदत्त चउपई में सरस्वती का प्रकट होकर कवि को वरदान देना, विद्याविलास पवाड़ों में राजकुमारी का एक सम्मानहीन व्यक्ति से प्रेम होना, राजकुमारियों का जिनदत्त पर मुग्ध होना, प्रद्युम्न द्वारा अलौकिक कार्यों का अज्ञात शक्तियों की सहायता से सम्पन्न करना, विद्याविलास पवाड़ों में विद्याविलास का वेश्या द्वारा तोता बना दिया जाना आदि अनेक अलौकिक घटनाओं का वर्णन है। इन्हीं कृतियों में योगियों का वर्णन दुष्ट व्यक्तियों का पर पीड़न वर्णन,

आकाशवाणी करके भावी की सूचना दे देना आदि सभी रूढ़ियों का समावेश किया जा सकता है।[1] वस्तुतः अनेक रचनाओं में ये अलौकिक घटनाएं मिलती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि रूढ़ियां तत्कालीन कथाकारों तथा काव्यकारों में बहुत ही अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय रही होंगी। वस्तुतः ये अलौकिक घटनाएं और अलौकिक तत्व इन आलोच्य काव्यों के नायकों से घनिष्टता रखते होंगे। अथवा नायक ही अपनी क्षमता से इन पर शासन करता रहा होगा। युद्ध में विविध विद्याओं का प्रभाव दिखाने करने के बाद मनुष्यों को पुनः जीवित करना, असंख्य व्यक्तियों को धराशायी करके भी मरने नहीं देना, आदि अनेक मौलिक रूढ़ियां जैन कवियों की अपनी हैं। साथ ही इन रूढ़ियों में मंत्र बल का जादू[2] भी देखने को मिलता है। पंच पांडव-चरित में मुनि का कुपित होना, प्रद्युम्न और जिनदत्त, विद्याविलास, जंबूस्वामी तथा असंभव कार्यों का सम्पादन विद्या बल और मंत्र द्वारा मार्गावरोध कर देना, तथा स्वयं का रूप परिवर्तन कर जादू से उसके पति का रूप धारण करके सती स्त्री को चमत्कृत करना प्रद्युम्नद्वारा मृतक व्यक्ति को जीवित कर देना, और जिनदत्त चउपई में जिनदत्त का समुद्र संतरण करना तथा विमान पर आरूढ़ होकर चम्पापुरी पहुंचना, देवी के प्रभाव से विद्याविलास पवाड़ों में विद्याधर का सभी विद्याओं में प्रवीण होना आदि सभी रूढ़ियां मिल जाती हैं जिनका सम्बन्ध अलौकिक घटनाओं से स्पष्ट होता है।

इन रूढ़ियों के वर्णन से काव्यों के कथानकों की सरसता में अपूर्व वृद्धि हुई है तथा अद्भुत रस और हास्य का समिश्रण रचना के वर्णन क्रम को प्रवाह पूर्ण बनाता है।

१- विस्तार के लिए देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ के भाग २ के अध्याय ६,७ और ८।

२-(अ) देखिए-प्रद्युम्न चरित्र, डॉ॰ विरचित तथा हिन्दी अनुशीलन वर्ष ११ अंक ३ में लेखक "परमेश्वर बाहुबली रास: एक अध्ययन"-लेख

(ब) हिन्दुस्तानी भाग १९ अंक ४, पृ० ९०-१०० में लेखक का प्रद्युम्न चरित पर लेख।

(१) अनुश्रुतिबद्ध रूढ़ियाँ-

अनुश्रुतिबद्ध रूढ़ियों की परंपरा मौखिक होती है ये कथानक रूढ़ियाँ लोक आख्यानों और श्रुतियों से समन्वित होती है इनमें पूर्व जन्म वर्णन, शकुन वर्णन, आकाश वाणी, मंत्र तंत्र द्वारा युद्ध, देवी का प्रसन्न होकर वरदान देना, तपस्या से संतान प्राप्ति, भविष्य सूचक प्रतीकात्मक रहस्यपूर्ण स्वप्न, रूप परिवर्तन, स्वप्न में प्रिय दर्शन, पर स्त्रीहरण, नायक की उदारता, बारहमासों के कारण विरह वेदना का प्रकाशन, राह भटक कर दूसरे मार्ग में निकलना और वहां सुन्दरियों का उस पर मुग्ध हो जाना आदि सब लोक आख्यानक रूढ़ियों का वर्णन मिल जाता है। इन रूढ़ियों की परंपरा लोक आख्यानों से पूर्ण रही है। पूर्व जन्म वर्णन बहुधा सभी रचनाओं में मिल जाता है।पूर्व भव और पूर्व जन्म की यह वर्णन परंपरा कथा सरित्सागर तथा कथाकोश में मिल जाती है। यों उपलब्ध रचनाओं में चंदनबाला रास, जंबूस्वामी चरित, जंबूस्वामी सत्कवस्तु, प्रद्युम्न चरित, अंबिकादेवी पूर्वभव वर्णन तलहरा,नेमिनाथ चतुष्पदिका, पंच पाण्डव चरित रास में पूर्वजन्म वर्णन, भरतेश्वर बाहुबली रास, प्रद्युम्न चरित तथा विद्याविलास पवाड़ों में शकुन अपशकुन वर्णन खूब मिलता है। शकुन अपशकुन भारतीय काव्यों की एक प्रमुख परंपरा रही है। इन शकुन अपशकुनों के द्वारा मनुष्य के कुछ निश्चित विश्वास बन जाते है। ये विश्वास किसी बुद्धिवाद पर नहीं चलते तथा इनके पीछे किसी निश्चित सत्य के दर्शन भी नहीं होते अपितु इनमें अंधविश्वास होता है जिन्हें भ्रम कहा जाय, रूढ़िवादिता कही जाय तो भी अनुचित नहीं है। ये शकुन अपशकुन कई है। जैन रचनाओं में उदाहरणार्थ भरतेश्वर बाहुबली रास में अपशकुन के रूप में लोमड़ी, सियार सर्प आदि मिल जाते है, कवि ने इन्हें, कायक काल बिड़ाल हर हर हर रव, भैरव धूक पुकारे,देवी, वामपुरीय शिवा आदि रूपों में वर्णित किया है। इसी तरह के वर्णन प्रद्युम्न चरित में मिल जाते है। लोक साहित्य में शकुन अपशकुन वर्णन परंपरा बड़ी प्रसिद्ध परंपरा है। ये शकुन कई प्रकार के होते है और जैन कवियों ने इनका खुलकर निर्वाह

किया है। जिनदत्त चउपइ में कवि रल्ह को सरस्वती का प्रसन्न होकर वरदान देना, भरतेश्वर बाहुबली रास में चक्ररत्न के लिए भविष्य या आकाशवाणी होना, महावीर, जंबूस्वामी नेमिनाथ, स्थूलिभद्र आदि सभी महापुरुषों के जन्म के पूर्व उनकी माताओं को अद्भुत स्वप्न जिनमें अनेक पशु जैसे हाथी, शेर, देवता तथा कमल आदि अनेक कई चीजें उनके मुंह में प्रविष्ट होती हुई लिखी गई है। अतः जन्म के पूर्व आये इन स्वप्नों का रूढ़ि वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तपस्या से संतान प्राप्ति जिनदत्त चउपइ में, नेमिनाथ चतुष्पदिका बारहमासा में राजुल का बारहमासा के रूप में संदेश रासक की नायिका की भाँति विप्रलंभ निवेदन, नायक विद्या विलास और जिनदत्त का भटक जाना और विभिन्न सुन्दरियों का उन पर मुग्ध होना, नायक प्रद्युम्न पर उसकी कृत्रिम माता कनकमाला का मुग्ध हो उसे आंचल से चिपकाना आदि प्रद्युम्न चरित में अनेक रूढ़ियों का सफल निर्वाह मिलता है। इस प्रकार ये रूढ़ियां लोक श्रुति के आधार पर मौखिक परंपरा के द्वारा प्रचलित होने वाली है अतः लोक परंपराओं ने इन कथा रूढ़ियों को जीवित कर रखा है। आदिकालीन हिन्दी जैन काव्यों में ये रूढ़ियां विस्तार से वर्णित हुई है।

(४) काल्पनिक रूढ़ियां-

मौलिक उद्भावनाओं का कथा काव्य में प्रयोग भी ब्लूमफील्ड ने परम आवश्यक बतलाया है। अपभ्रंश के काव्यों में अनेक ग्रन्थ ऐसे उपलब्ध होते है जिनमें कवि द्वारा रचित मौलिक घटनाओं का प्रचलन मिल जाता है। अतः कवि की कल्पना इन कथारूढ़ियों को भी उत्प्रावित करने में सक्षम है। कल्पना के माध्यम से ही कवि अथवा कथाकर इन रूढ़ियों का सृजन करता है। भारतीय साहित्य में ऐसे कवि के काल्पनिक अभिप्राय बहुत अधिक मिलते है। इन काल्पनिक रूढ़ियों में अनेक महत्वपूर्ण रूढ़ियां हो सकती है जैसे कोई जीवटपूर्ण कार्य करके किसी की प्राणरक्षा करना, वन में किसी सुन्दरी को भयानक पशु से बचाना किसी दैत्य द्वारा नगर को उजाड़ने पर दैत्यको हराना, सेनाओं को निर्बल कर देना, अद्भुत श्रवण द्वारा आकर्षण, सिंहलद्वीप का विशेषमहत्व, पुजारियों की

संगति द्वारा प्रेमोद्भव, कामदेव का संपूर्ण विश्व पर कुपित हो आक्रमण करना, प्रिय प्राप्ति के लिए जिन वंदन, नायिका का अवतार होना आदि कवि कल्पित कई कथानक जैन रचनाओं में मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ भरतेश्वर बाहुबली रास में कवि द्वारा दोनों भाइयों में जल नेत्र आदि युद्धों की उद्भावना, प्रद्युम्न चरित में प्रद्युम्न का सब सेना को निर्बल कर मूर्छित कर देना, राजुल का नेमिनाथ के गुण श्रवण कर आकर्षित होना जिनदत्त चउपई में व्यापारियों के लिए सिंहल द्वीप भारी सौन्दर्य और आकर्षण का केन्द्र होना, तथा उसमें हीरे मोती और जवाहरातों का क्रय विक्रय होना, कठपुतली का चित्र दिखाकर जिनदत्त चउपई में जुआरियों द्वारा जिनदत्त को कामुकता की ओर झुकाना, गाड़ियों द्वारा व्यापार करना, जहाज द्वारा माल लेकर विदेश यात्रा करना, लौटते समय मार्ग में भारी व्याघात होना, विद्याधर कुमारी के नगर में उसके पेट में से निकलकर लोगों को खाने वाले भयंकर विषधर को मारकर राजकुमारी से विवाह करना, रास्ते में जिनदत्त पर समुद्र में भारी संकट पड़ना और जिनदत्त की भांति विद्याविलास पवाड़ो में विद्याविलास पर भारी आपत्ति आना, मियुक्त दीपक प्रबन्ध में काम द्वारा कुपित होकर सम्पूर्ण विश्व पर आक्रमण करना आदि अनेक काल्पनिक कथा कड़ियाँ मिलती हैं। इन कथा कड़ियों का ग्रहण कर कवियों ने अपनी मौलिक कल्पना का परिचय दिया है। शालिभद्रसूरि द्वारा विरचित विराटपर्व और शालिभद्रसूरि विरचित पंचपाण्डव चरित रासों में तो अनेक घटनाएँ जैन कवियों की मौलिक सर्जना है। जिनमें विभिन्न लोक अनुश्रुतिजन्य कथाकड़ियाँ देखी जा सकती हैं। अतः ये कथानक को प्रवाहपूर्ण लोकरुचिपूर्ण तथा सरस बनाती हैं।

(५) विविध कड़ियाँ-

इन कड़ियों के अतिरिक्त भी आदिकालीन हिन्दी जैन काव्य में अन्य कई कड़ियाँ मिलती हैं जिनका विषय उक्त वर्णित कड़ियों से भिन्न है। इन विविध कड़ियों में:-

(अ) आध्यात्मक सम्बन्धी रूढ़ियाँ

(ब) मनोवेगों सम्बन्धी रूढ़ियाँ

(स) नियति के आधार पर चलने वाली रूढ़ियाँ

(द) मानव शरीर सम्बन्धी रूढ़ियाँ- उल्लेखनीय है।

(अ) इन रूढ़ियों में आध्यात्मिकक सम्बन्धी रूढ़ियों का सम्बन्ध ईश्वर पर विश्वास कर्मफल तथा पुनर्जन्म से है। ऐसी रचनाओं में आर्षकृो तथा पुगापुतकम रचनाओं को लिया जा सकता है।

(ब) मनोवेगों से तात्पर्य मनोविज्ञान की पुष्टि करने वाली रचनाओं से है। इनमें स्वप्न सम्बन्धी रूढ़ियाँ अधिक आती है। जैन काव्यों में स्वप्नों से सम्बन्धित इन रूढ़ियों का बड़ा महत्व है। इन पर ऊपर के पृष्ठों में विचार किया जा चुका है। उदाहरणार्थ माँ के पेट में स्वप्न में चंद्र, माथा, श्वेत हाथी प्रविष्ट होता था तो माँ का यह स्वाभाविक मनोविज्ञान था कि उसको पुत्र प्राप्ति होगी।

(स) नियति के आधार पर चलने वाली भी अनेक कथारूढ़ियाँ मिल जाती है। इनमें भाग्यवादिता पर अधिक बल दिया जाता है। भारतीय लेखक ही नहीं, प्लेटो जैसे दार्शनिक भी भाग्य का महत्व स्वीकार करते है। अतः जैन रचनाओं में नियतिवाद सम्बन्धी कुछ रूढ़ियाँ विद्याविलास पवाड़ों में पाई जाती है। अम्बटा मुई विद्याविलास का प्रकट भाग्य ही बदल देते है। लक्ष्मीहीन विद्याविलास लक्ष्मी की कृपा से भाग्यवान हो जाता है। इसी प्रकार जिनदत्त चउपइ और सुदर्शन सेठ शील प्रबंध और विराट पर्व जैसे कृतियों को देख सकते है कि इन रचनाओं में भाग्यवादी रूढ़ियाँ यथोचित वर्णित हुई है।

(द) शरीर सम्बन्धी कुछ रूढ़ियाँ भी मिल जाती है। इन रूढ़ियों में स्त्री की दोहद कामना, लिंग परिवर्तन, पुत्र न होने पर यक्ष द्वारा सन्तान प्राप्ति किंक कन्या आदि लिए गए है। इनमें से जैन कृतियों में पुत्र न होने पर माता पिताओं की चिन्तना में रत हो जाना बतलाया गया

है जो बहुधा अनेक कवियों ने वर्णन किया है। शेष रूढ़ियां उपलब्ध आलोच्य जैन रचनाओं में नहीं मिलती है।

इस प्रकार आदिकाल के हिन्दी जैन काव्यों में उक्त विविध रूढ़ियों का वर्णन मिल जाता है। आलोचकों ने कथा और काव्य रूढ़ियों को कविसमय भी कहा है। जो भी हो, इन वर्णन रूढ़ियों से काव्य की प्राचीन परंपराओं का सम्यक् निर्वाह तथा कथा में प्रवेग प्रवाह और लालित्य आ जाता है।

आदिकालीन काव्यों की इन कथारूढ़ियों का सीधा सम्बन्ध अपभ्रंश कृतियों तथा संस्कृत रचनाओं से है। कथानक रूढ़ियों का उपयोग संस्कृत काव्यों में इतना नहीं मिलता जितना अपभ्रंश काव्यों में मिलता है। उदाहरणार्थ पउमकुमार चरिउ, करकंड चरिउ, जसहर चरिउ, सन्देश रासक आदि अनेक रचनाएं मिलती है जिनसे बहुत सम्भव है कि परवर्ती रचनाओं ने अभिप्राय ग्रहण किया होगा। हिन्दी के अजैन काव्यों जैसे पृथ्वीराज रासो, जायसी का पद्मावत और कान्हड़दे प्रबन्ध, ढोलाउली, बीसलदेवरास तथा बसन्त विलास फागु आदि कितनी ही Motif सम्बन्धी रचनाएं है जिनपर पर्याप्त प्रकाश यहां संभव नहीं। इनरचनाओं के मूल में भी रूढ़ियों का उपयोग कराने वाली बहुत बड़ी प्रेरक शक्तियां ये जैन काव्य है।

कथा रूढ़ियां तथा Motif और Type के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते है जिनमें ब्लूमफील्ड, विन्टर नित्ज, डा० बेनिफी, ब्राउन के साथ साथ जेकोबी आदि विद्वानों द्वारा लिखी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। हिन्दी साहित्य में इस सम्बन्ध में सर्व प्रथम विचार करने वालों में से डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी है।

जो भी हो, कथा रूढ़ियों द्वारा काव्यों की परंपरा उनका ऐतिहासिक स्वरूप, लोक कथात्मक रूप, सामाजिक रीति रिवाज, आदि लौकिक अलौकिक विविध रूपों का परिचय मिलता है। आदिकालीन हिन्दी जैन काव्यों में इन रचनाओं द्वारा इन कृतियों का ऐतिहासिक सांस्कृतिक तथा साहित्यिक स्वरूपों का सम्यक् मूल्यांकन हो सकता है।

वस्तुतः कथा परंपराओं (Cycles) तथा कथा रूढ़ियों का जब तक

सम्यक् अध्ययन नहीं हो जाय तब तक इन रचनाओं का निरपेक्ष दृष्टिकोण से मूल्यांकन कर सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अतः इन आदिकालीन हिन्दी जैन काव्यों की कथा परंपराओं (cycles) तथा कथा रूढ़ियों Motifs and Types का अनुशीलन अत्यावश्यक है।

अध्याय - ११

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रयुक्त छंद

। आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रयुक्त छंद ।

आदिकालीन हिन्दी जैन रचनाओं में अनेक प्रकार के छंद भी पाए जाते है जिनमें अधिकतर मात्रिक और वर्णिक ही है। अधिकांश छंद प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य से ज्यों के त्यों वर्णित हुए है परन्तु फिर भी कई छन्द ऐसे है जो मौलिक तथा जैन कवियों की अपनी नूतन देन है। इन नवीन छंदों की परम्परा और उनके परिचय करने से पूर्व इन रचनाओं में प्रयुक्त प्रमुख मात्रिक और वर्णिक छंदों को जान लेना आवश्यक है। वर्णिक छंदों में वर्णों की गणना होती है ये छंद अक्षरों की गिनती द्वारा और मात्रिक मात्राओं की गणना द्वारा जाने जाते है। वैदिक छंदों से लेकर प्राकृत छंदों तक वर्ण और मात्रा गणना की यह परंपरा अव्याहत चली आ रही है। वर्ण वृत्तों का संस्कृत में पर्याप्त प्रयोग हुआ है। संस्कृत की इसपरम्परा को हमारे आलोच्य काल के कवियों ने खूब निबाहा है साथ ही मात्रिक वृत्त में यति और ताल का सम्यक् निर्वाह करके इनरचनाओं द्वारा संगीत में भी योग दिया है।मात्रिक वृत्त वर्णिक वृत्तों की अपेक्षा अधिक मुक्त तथा संगीत प्रधान होते है। संगीत प्रधान छंदों में ताल का मूल्य नहीं भुलाया जासकता। अतः मात्रिक छंद ताल प्रधान है और ताल मात्रा प्रधान होती है। किसी भी छंद की ताल का निर्धारण वर्णों द्वारा हो सकना कठिन है।वस्तुतः ताल प्रधान इन छंदों को तालवृत्त भी कहा जासकता है। प्राकृत और अपभ्रंश के छंदों पर विचार करते हुए प्रो० एच०डी० वेलणकर ने ताल [1] और वर्ण वृत्तों

१- I find it rather difficult to define 'Tala', but I may make an attempt and define it as the regulation with the help of time-element of the recurring rest - in a metrical line by means of a stress. This rest regulating stress is indicated by means of vocal accentuation, but in addition to it also by the stroke of the Palm or a similar movement of any other part of the body or by the strokes of the time-keeping musical instrument like the hand drum or a pair of cymbals. The music which is produced by this rest regulating stress is the music which under lies all the "Tala Vrttas" and is the chief source of delight in them.

देखिए- भारत कौमुदी, पृ० १०६ प्रो० एच०डी० वेलणकर एम०ए०डी०लिट०, का "अपभ्रंश मीटर्स" पर लेख।

पर विस्तृत प्रकाश डाला है। यही ताल वृत्त आगे कई विभिन्न गणों में विभक्त हो जाते है और तब इन प्रत्येक अक्षरों की मात्राएं समय के आधार पर निर्धारित कर दी जाती है।[1] इस प्रकार ताल में निर्मित विभिन्न ताल गणों में विभिन्न विभिन्न मात्राओं का नियमन होता है। यह नियमन मात्रा गणना से स्पष्ट होता है। इस तरह इन छंदों में मात्रागण और तालगण ये दो प्रकार के गण होते है। वास्तव में प्राकृत और अपभ्रंश के छंद का शिल्प संस्कृत वर्ण वृत्तों से प्रकृत्या भिन्न होता है क्योंकि इन दो प्रकार के वृत्तों में जो भी संगीत होताहै वह छंद की दृष्टि से भिन्न होता है। यह संगीत ताल वृत्तों में अधिक मुखरित हुआ है। ताल वृत्त विभिन्न ताल और मात्राओं [2] पर आधारित होते है। प्रत्येक तालगण मात्रागण के शिल्प से भिन्न होता है। प्रत्येकताल का प्रारम्भ प्रारम्भिक शब्द से अंतिम शब्द तक होता है जब तक नया ताल प्रारंभ नहीं हो जाता। ये ताल, वृत्त कई प्रकार के होते है जिनमें ४,५,६,७ और सामान्यतः ८ मात्राओं का क्रम होता है। मात्राएं शब्द परिमाण अथवा (measurement) के लिए प्रयुक्त होती है तथा इन छंदों में यह समय निर्धारण भी करती है।

इन मात्रिक और तालवृत्तों में संगीत का समावेश होता है या यों कहें कि ये छंद संगीत के उपयुक्त है।[3] इन तालवृत्तों पर विस्तृत प्रकाश इसीलिए डाला जा रहा है क्योंकि उत्तर अपभ्रंश की इन रचनाओं में ये मात्रिक वृत्त ही अधिक प्रयुक्त हुए है तथा उनका संगीत की दृष्टि से भी शिल्प विशेष है। अनेक रागों के आधार पर कवियों ने छंदों को बांधा है।विभिन्न रागों से विभिन्न रसों

१- देखिए- भारत कौमुदी पृ० १०१७-प्रो० एच०डी०वेलणकर का अपभ्रंश मीटर्स,नामक लेख।

२- The word 'Matra is derived from the root 'ma' to measure and means ' a unit of measuring', here of measuring time. There are many diffirent Talas, but the chief among them, so far as the 'tal' vrattas are concerned, are those in which the rest is regularly stressed after the lapse of 4 or 5 or 6 or 7 Matras or their multiples. But even among these the commonest is the Tala of 8 Matras which may or may not be divisible into two parts of 4 matras each.- H.D.Velankar.

की निष्पत्ति होती है तथा उसमें ये ताल वृत्त अधिक योग देते हैं। वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि संगीत के अधिक उपयुक्त होने के कारण ही इन वृत्तों में काव्य रचना अधिक हुई और ये मात्रिक वृत्त लोक प्रचलित भी खूब हुए। जैन साधुओं को तो गा गा कर साहित्य निर्माण तथा धर्म प्रचार करना था अतः ये मात्राओं वाले छंद ही जन साधारण की वस्तु बने। समय और जोर (Time element and stress) पर ही इन ताल वृत्तों का संगीत निर्भर था। अतः ताल संगीत के उद्भव के मूल में ये तालवृत्त ही थे। इस तथ्य की पुष्टि प्रो० वेलणकर ने भी की है।[1] अपभ्रंश तथा अपभ्रंशेतर काल में तालवृत्तों से पुष्ट ताल संगीत जन समाज में बहुत अधिक प्रचलित था इन छंदों द्वारा रसोद्रेक शीघ्र हो सकता था। अतः गेय और निश्चित तालगण एवं मात्रागणों में बंधे होने से जनता ने ताल संगीत को जल्दी अपना लिया। इन तालवृत्तों में गायक का समय समय पर रुकना यति कहलाता है।[2] यह तालवृत्तों में मात्राओं द्वारा निर्मित होती है जिसमें समय तत्व (Time-element) का पूर्ण ध्यान रखा जाता है। ये तालवृत्त अनेक तालगणों में बंट जाते हैं। प्रत्येक अक्षर की अपनी मात्रा होती है और प्रत्येक मात्रा द्वारा ये तालगण निर्धारित होते हैं। समय का उपयोग इन मात्राओं में जोर तथा ताल के आधार पर संगीत की सृष्टि करता है। मात्राओं के द्वारा गतिमान होने के कारण ही इन वृत्तों को मात्रावृत्त कहा गया है।

१- The origin of the Tala sangita and the Tala vrattas which are adapted to it is necessarily populer. They both being to the massed. The main sources of delight in this Tala Sangit is the stressing or accentuation of the regularly recurring rest and this is done with the help of time element.

भारतीय कौमुदी : पृ० १०५१ पर प्रो० वेलणकर के लेख से उद्धृत।

२- The bard who sings metrical lines must naturally have occasional rest in the middle of it, this is known as 'Yati' in Sanskrit metres. In Sanskrit and Prak at metres which are not amenable to Tala, it occurs at irregular intervals, though these letters are fixed by the practice of the poets and the rules of the metricians. In the Tala vrattas on the other hand this rest recurs after the lapse of a definite number of time movements called the Matras.

वही पृ० १०५६

मात्रावृत्तों के अतिरिक्त अपभ्रंश कवियों ने भी कहीं कहीं वर्ण वृत्त और अक्षर गण प्रयुक्त किए है। पुष्पदन्त का जसहर चरिउ इसका उदाहरण है। परन्तु उसके इन वृत्तों का समाहार भी ताल में हो जाता है। ये वृत्त ६ मात्राओं के ताल में गाए जा सकते है तथा उनमें प्रत्येक पंक्ति में २ ताल गण है। परन्तु इन छंदों से इतर भी प्राकृत और अपभ्रंश में ऐसे छंद भी हैं जो न तालवृत्त ही कहे जाते है और न वर्णवृत्त ही। ऐसे छन्दों में संस्कृत की भांति लघुगुरु और विभिन्न मात्राओं का समावेश होता है।[1]

अपभ्रंश में इन छन्दों के शिल्प का विश्लेषण करने वाले ग्रन्थ हेमचन्द का छंदोनुशासन, प्राकृत पैंगलम, विरहांक का वृत्तजाति समुच्चय, स्वयंभू का स्वयंभूछंदस नदीयाढ्य का गाथालक्षण तथा रत्नशेखर का कवि दर्पण और छंद कोश। इन्हीं ग्रन्थों में उत्तर अपभ्रंश में प्रयुक्त छंदों की परम्परा पूर्णतया सुरक्षित मिल जाती है। अतः अपभ्रंश के छन्दों की इसी शास्त्रीय परम्परा (क्लैसिकल ट्रेडीशन) का निर्वाह पुरानी हिन्दी में मिलता है। मात्रिक और वार्णिक दोनों प्रकार के छन्दों में अनेक छन्द तो इन कृतियों मे अपभ्रंश की तरह ही मिलते है परन्तु फिर भी अनेक छन्द ऐसे है जो अपभ्रंश से भिन्न है। अतः स्वतंत्र रूप से उनका परिशीलन आवश्यक है। अपभ्रंश के इन छन्दों का अध्ययन अनेक विद्वानों ने विस्तार से प्रस्तुत किया है।[2] परन्तु अभी उत्तर अपभ्रंश के मिश्र ग्रंथों पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है जो नहीं के बराबर है। वस्तुतः संस्कृत और वैदिक छन्दों की संगीत परम्परा

१- भारत कौमुदी, अपभ्रंश छन्द लेख, पृ० १००५ श्री वेलणकर

२- प्रो०वेलणकर के जनरल आव दी यूनिवर्सिटी बम्बई मे छन्द सम्बन्धी प्रकाशित लेख भाग्स० २, ५।

(क) संदेश रासक: भूमिका भाग पृ० ४८ से ७५ डा० हरिवल्लभ, चुन्नीलाल भायाणी सम्पादित।
(ख) पउमचरिउ: पृ० ७२ भूमिका भाग डा० भायाणी द्वारा सम्पादित

(ग) चंदबरदायी और उनका काव्य: डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी पृ० २१६-२८९।

(घ) हिन्दी साहित्य का आदिकाल:डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पंचम व्याख्यान ९०-११३।

को इन ृतियों ने तालवृत्तों के रूप में ताल संगीत सुरक्षित रक्खा है।[१] इन पुरानी हिन्दी की कृतियों में मर्दुक्त ताल और मात्रावृत्तों में ताल संगीत सुरक्षित रहा है जिसमें समय तत्व के आधार की पूरी पूरी रक्षा हुई है। साथ ही उच्चारण सम्बन्धी महत्वपूर्ण बातों का सामंजस्य समय (Time) के आधार पर बिठाया गया है

वास्तव में इन छंदों को देश की प्रचलित लोक परम्पराओं ने पुष्ट किया है।लोक गीतिकार चारणों ने भी गा गा कर इन अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी के ताल तथा मात्रिक वृत्तों को सुरक्षित रक्खा है। भाट और चारणों ने इन छंदों को गाने तथा मनोविनोद के लिए लिखा था अतः ये समस्त छंद संगीत प्रधान रहे थे। चारणों के पश्चात् अपभ्रंश की इसी कड़ी में जैन साधुओं ने आगे बढ़ाया। जैन साधु संस्कृत और प्राकृत के छंदों में तो लिखते ही थे साथ में मात्रिक वृत्त ताल वृत्त और ताल संगीत में भी लिखते थे। इसके अतिरिक्त जैन साधुओं ने मात्रा बंध के साथ कई मिश्र बंधों का प्रयोग भी किया।अनेक छंद इन्होंने गाने के लिए ही लिखे। अपभ्रंश का चउपई,अड़िल्ल तथा पज्झटिका छंदों को यहाँ उद्धृत किया जा सकता है। प्रो० वेलणकर ने तो कई ऐसे अपभ्रंश छंदों का उल्लेख भी किया है जिनका प्रयोग नृत्य में किया जाता था। ऐसे छंदों में बहुत अधिक प्रयुक्त होने वाले चच्चर छंद का प्रयोग किया जा सकता है।[२]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इन रचनाओं में अनेक छंद प्रयुक्त हुए है इनमें नये और पुराने मात्रिक और वार्णिक छंद है तो मिश्रबंध भी अनेक

१- It is thus that neither the Prakrit metricians nor the Prakrit bards could have formulated the theory of the Matra. And yet the matra has clearly a reference to the Tala Sangita i.e. music in which time is kept as opposed to the swar sangita of the Vedas where no time is kept. Popular music is the Tala sangita and popular metres are the Tala metres. See Journal of the University of Bombay - page 52- APBHRANSA METRES II - By Prof. H.D. Velankar.

२- देखिए- अपभ्रंश मीटर्स- एच०डी० वेलणकर, बम्बई यूनिवर्सिटी जर्नल सन् १९३३-३५ भाग २ पृ० ३२-३४।

देशी ढालें हैं तो देशी छंद भी तथा साथ ही कई मिश्रबंधों के प्रयोग भी दृष्टव्य हैं। देशी छंदों के रूप में आदिकाल की इन रचनाओं का अपूर्व योगदान है। इन रचनाओं में समद्विपदी, विषम द्विपदी, समचतुष्पदी, अर्द्धसमचतुष्पदी, विषमचतुष्पदी, पंचपदी, षटपदी, अष्टपदी, द्विभंगी, त्रिभंगी, चतुर्भंगी, पंचभंगी आदि अनेक प्रकार के छंद मिल जाते हैं। अद्यावधि हमारे आलोच्य काल में जितनी रचनाओं का विश्लेषण किया गया है, उनमें प्रयुक्त प्रमुख छंद इसप्रकार हैं:-

१- रास २- फागु ३- दोहा ४- चौपाई
५- चौपाया ६- सोरठा ७- रोला ८- उल्लाला
९- झूलणा १०- छप्पय ११- रड्डा १२- वस्तु
१३- प्लवंग १४- हरिगीतिका १५- पद्धटिका १६- आंदोल
१७- सवैया १८- त्रूटक १९- त्रिभंगी २०- पादाकुल
२१- दुर्मिल २२- गीति २३- जाति २४- षाट्पद
२५- चहुपदि २६- मरहट्ठ २७- चरणाकुल २८- धवल
२९- सरस्वती धवल ३० सारसी ३१- कवित्त ३२- कुंडलिया
३३- मौक्तिकदाम ३४- अनुष्टुप ३५- श्लोक ३६- द्विपदी
३७- उपजाति ३८- इन्द्रवज्रा ३९- उपेन्द्रवज्रा ४०- द्रुतविलम्बित
४१- रथोद्धता ४२- स्रग्धरा ४३- वंशस्थविलका ४४- शार्दूलविक्रीडित
४५- मालिनी ४६- नाराच ४७- गाथा ४८- आर्या
४९- वीरायण ५०- चच्चरी ५१- अर्द्धनाराच ५२- त्रिपदी
५३- ध्रुवद (ध्रुपद)

इन छंदों का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं:-

१- मात्रिक

२- वार्णिक

३- देशी छंद

(रागों तथा विविध ढालों से संयुक्त)

१- मात्रिक:

१- दोहा	२- चौपाई	३- रास	४- चौपाया
५- रोला	६- उल्लाला	७- सोरठा	८- झूलणा
९- छप्पय	१०- कवित्त	११- रड्डा	१२-वस्तु
१३- कुंडलियाँ	१४- प्लवंग	१५- हरिगीतिका	१६- पद्धटिका
१७- रासक	१८- दुर्मिल	१९- आंदोल	२०- अडैया
२१- त्रूटक	२२-त्रिभंगी	२३- पादाकुल	२४- गीत
२५- जाति	२६- भाखटूट	२७- पद्धरि	२८-मरहट्ठ
२९- चरणाकुल	३०- गाथा	३१- आर्या	३२- गीतायन
३३- अडिल्ला	३४- द्विपदी	३५- चच्चरी	३६- त्रिपदी
३७- ध्रुपद (ध्रुपद)			

२- वर्णवृत्त-

१- उपजाति	२- इन्द्रवज्रा	३- उपेन्द्रवज्रा	४- द्रुतविलंबित
५- रथोद्धता	६- स्वागता	७- वसंततिलका	८- शार्दूलविक्रीड़ित
९- मालिनी	१०-नाराच	११- अर्द्धनाराच	१२- मौक्तिकदाम
१३- अनुष्टुप	१४- श्लोक	१५- चंचल	१६- सरस्वतीचंचल
१७- शारदी			

इन वृत्तों में अनेक प्रसिद्ध छंदों पर विस्तार में विद्वानों ने प्रकाश डाला है। अतः इन पर अधिक विश्लेषण यहाँ नहीं किया जा रहा है। कुछ चुने हुए छंदों के शिल्प का ही परिचय दिया जायगा तथा जैन कवियों ने देशी छंदों में जो मौलिकता प्रस्तुत की है विभिन्न कृतियों के द्वारा उन्हीं छंदों का परीक्षण और परिचय प्रस्तुत अध्याय में किया जा रहा है।

इन देशी छंदों में अधिकांश छंद, ताल,वृत्त और संगीत पर आधारित हैं। अतः प्रमुख कृतियों में इन देशी छंदों की क्या स्थिति रही है इनकी विकास परम्परा क्या है आदि का अध्ययन अपेक्षित है।आदिकालीन इन रचनाओं में जितनी मौलिकता इन मिश्रबन्धों की मिलती है उतनी अन्यछंदों की नहीं मिलती।

देशी छंदों की परम्परा का अनुशीलन भी इस प्रसंग में आवश्यक प्रतीत होता है।राजस्थान में लोक साहित्य ने इन देशी छंदों को जीवित रखा है। जितनी भी संगीतात्मक ढालें, जो ये कवि गाते थे, छन्द प्रधान हैं।ये ढाले अपूर्वपूर्ण सरसता से ओतप्रोत तथा तालवृत्त एवं मात्रावृत्त से अनुस्यूत हैं। जैन कवि जन कवि थे। नगर नगर में ग्राम ग्राम में उनका विहार होने के कारण उन्होंने जितना और जो कुछ लिखा वह सब जन भाषा में लिखा है। जन भाषा में लोक संगीत का प्रवाह होता है। संगीत से जन साधारण को प्रभावित भी शीघ्र किया जा सकता है अतःउन्होंने कई रागों को इन छंदों का माध्यम चुना है।कई छंदों से उन्होंने नई रागें ~~कोइन~~ निर्मित की और कई रागों से उन्होंने नये छंद बनाये। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में शास्त्री शिल्प के आधार पर छन्द रचना होती थी इन अपभ्रंशेतर काल के कवियों को शास्त्रीयता का यह छंद बंधन नहीं रुचा। उन्होंने इसलिए स्ट्रोफिक वृत्त (Strophic metres) अथवा मिश्रबन्ध खूब लिखे, जैसा चाहा वैसा छंद में तोड़ मरोड़ किया। उनका अपना यह परिवर्तन लगभग अनेक छंदों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। छंदों में किए गए इस परिवर्तन से छंद के शास्त्रीय शिल्प की रक्षा कहाँ तक हुई, यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता परन्तु सत्य तो यह था कि उन्हें इसके शास्त्रीय पक्ष की अधिक चिन्ता ही नहीं थी। वे तो कुछ भी लिखना चाहते थे जन भाषा से मिला हुआ, कुछ सरल और किसी की मिठास लिए हुए।इसके अतिरिक्त ऐसे छंद जन साधारण की समझ व रुचि की वस्तु भी बन गए थे, क्योंकि उनमें संगीत का माधुर्य भरा रहता था,अतः इन कवियों ने जन भाषा में घुलकर काव्य रचना की। इसका प्रभाव आगे चलकर यह हुआ कि कविगण पूरी पूरी रचनाएं ही

उन्हीं छंदों के नाम पर करने लगे। अनेक कृतियों का तो नामकरण ही इन छंदों के आधार पर किया गया है। छंदों की ये ढालें आज भी राजस्थान में अनेक रूप से गाई जाती हैं। ढाल शब्द का अर्थ ही संगीत की विभिन्न तर्जों से लिया जाता है। यह राजस्थान का संगीत की विभिन्न रागों और उनके शिल्प से लिया जा सकता है। अतः विभिन्न छंदों में कवियों ने विभिन्न रागों में ये लोक प्रचलित ढालें प्रस्तुत की हैं। ये ढालें यहां विभिन्न प्रकार से गाई जाती हैं। संगीत तत्व का सम्मिश्रण होने से ये देशी छन्द लोक प्रचलित हो गए हैं तथा सहजग्राह्य हैं। छंदों की इन देशी ढालों का स्वरूप राजस्थान के विभिन्न रागों और फागों में देखा जा सकता है। गुजरात में प्रचलित गरबा गीत रूपक है। राजस्थानमें प्रचलित डफ के गीतों में भी ये ढालें अपना चमत्कार दिखाती हैं। वस्तुतः इन देशी छंदों की एक लोकप्रचलित परम्परा रही है। ये ढालें मुक्त होती हैं तथा इनमें किसी शास्त्रीय शिल्प का बंधन नहीं होता। परन्तु फिर भी इनका अपना निबंधन विवेक है जिसके आधार पर अनेक वर्षों से ये लोक गीतों की भांति प्राणवान और जन प्रचलित हैं।

देशी छंदों की परम्परा हमें संस्कृत से ही मिलने लगती है। इन देशी बंधों का उद्गम कहां से है, यह सही सही बताना तो कठिन है परन्तु संस्कृत में इनका मूल रूप कालिदास के विक्रमोर्वशी में मिल जाता है। इन देशी छंदों के उद्गम केलिए रास को नहीं भुलाया जा सकता। वास्तव में देशी बंधरास में अनुस्यूत था। भरत ने नाट्यशास्त्र में ध्रुवक के अनेक प्रकार दिए हैं। कालिदास ने विक्रमोर्वशी में कई प्रकारके मात्रावृत्त दिए हैं। विक्रमोर्वशी में वर्णित अपभ्रंश के छंदों में अनेक मात्रावृत्त मिल जाते हैं जिन्हें तालवृत्त कहा जा सकता है इनमें दोहा, चौपाई और प्लवंग छंदों का प्रयोग हुआ है। दो उदाहरण देखिए:-

प्लवंग- जलहर संहर एहु कोपि आढत्तओ
अविरल धारा सारदिसा मुहकन्तओ
ए महि पुहवि भमन्तो जइ पिअ पेक्खिहिमि
सव्वे जं जु करीहिसि तंहु सहीहिमि - १

चरणाकुल- हउपई पुण्हिमि अल्हहि गअवह
लहि अपहाराणाहिउ सक्कह
दूरविभिज्जि अह सहककन्हि
दिट्ठ पिअ पई संमुह जन्ती

ये छंद देशी छंदों के रूप में खूब प्रचलित हुए। हेमचन्द्र के छंदानुशासन में भी ये छंद मिलते हैं। हेमचन्द्र के पश्चात् जयदेव ने गीत गोविन्द में इन छंदों का खुलकर प्रयोग किया है। उनका गीत गोविन्द देशी छंदों में लिखी रचना है।हेमचन्द्र ने दोहा और प्लवंग का प्रयोग नहीं किया। जयदेव ने सवैया और चौपाई का मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत किया तथा हरिगीतिका और झूलणा के विविध प्रयोग किए। उनके गीत गोविंद में झूलणा छंद ३४ मात्राओं तथा (२०, १७, ३७) मात्राओं का भी झूलणा उपलब्ध होता है। साथ ही उसने हरिगीतिका की ही भांति चौपाई भी प्रस्तुत की है। उनके विभिन्न प्रबन्धों में इन देशी छंदों का आनन्द लिया जा सकता है। उदाहरणार्थ झूलणा को ही लीजिए- उसमें ३४, २० और १७ मात्राओं के छंद मिल जाते हैं। सवैया की ही भांति उन्होंने चौपाई को भी विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। झूलणा तथा सवैया की ही भांतिचौपाई के कुछ प्रसिद्ध उद्धरण देखिए:-

वदसि यदि किंचिदपि दन्त रुचि कौमुदी हरति दरतिमिर मति
स्फुरदधर सीधवे तव वदन चन्द्रमा रोचयतु लोचन चकोरम
प्रिय चारुशीले, मुंचमयि मान मनिदानम् [२]
उक्त छंद में ३४ मात्राओं का झूलणा है। १७ मात्राओं का झूलणा देखिए:
मंजुतर कुंजतलकेलि सदने, विलसरति रभसहसित वदने
प्रविश राधे माधव समीपमिह- ३

१- वही छंद - २९।
२- गीत गोविन्द प्रबन्ध १९ पद १।
३- गीत गोविन्द- जयदेव प्रबन्ध ११

सवैया की ही भांति चौपाई का एक उदाहरण उल्लेखनीय है:-

ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे
मधुकर निकर करंबितकोकिल कूजित कुंज कुटीरे
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहि जनस्य दुरंते [१]

--- --- ---

रति सुख सारे गतमभिसारे मदन मनोहर वेशम्
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बन मनुसर तं हृदयेशम्
धीर समीरे यमुनातीरे वसति वने वन माली
गोपी पीन पयोधर मर्दन चंचल कर युग शाली- [२]

इन छंदों के अतिरिक्त पुरानी हिन्दी में प्रयुक्त कई छंद जयदेव ने प्रयुक्त किए है,जो सब देशी ढालों के है। १२वीं शताब्दी में विभिन्न रागों में प्रयुक्त इन देशी छंदों का प्रभाव आदि-कालीन जैन अजैन दोनों कवियों पर अवश्य ही पड़ा होगा। संस्कृत में ये देशी छंद नहीं उपलब्ध होते ।जयदेव ने जो रागों में अष्टपदियां तक लिखी है वे अष्टपादियां संस्कृत में नहीं मिलती है। जयदेव के इन छंदों की प्रिय रागों के नाम भी विभिन्न प्रदेशों के नाम पर ही है उदाहरणार्थ- गौडकरी,गुर्जरी, मालवगौड़, कर्णाट, वसंत, देशी बराडी, भैरवी आदि।

जयदेव के इन छंदों का प्रभाव परवर्ती काल की रचनाओं पर खूब पड़ा है। इन आदि कालीन रचनाओं में देशी छंदों का खूब प्रयोग जयदेव की गीतिविधान और देशी रागों के चमत्कार के कारण ही कियागया होगा। देशी छंदों का यह प्रयोग आजकल गुजराती गरबी, गरबो में भी पर्याप्त रूप में मिल जाता है। हमारे आलोच्य काल की रचनाओं में जो कई छंदों की रचना देशी ढालों के आधार पर ही होने लगी थी।अतः गीत गोविन्द के लिए देशी रागों में गाने के लिए ये छंद उपलब्ध

१- वही, प्रबन्ध पद १
२- वही, प्रबन्ध पद ९

से "अयं सर्वेषु रागेषु गायते गीत गोविंदे"- सूत्र इसी बात की पुष्टि करता है।

अतः देशी छंदों का यह क्रम जयदेव से प्रारम्भ होकर पुरानी हिन्दी प्राचीन राजस्थानी तथा जूनी, गुजराती की रचनाओं में खूब प्रचरित हुआ है। राजस्थानी में देशी ढालें, तथा गुजरात की प्रसिद्ध गरबियां इन लय ताल समन्वित छंदों के आधुनिक प्रतिनिधि स्वरूप हैं।

इन रचनाओं में प्रयुक्त कुछ प्रसिद्ध प्रकार के छंदों में वैविध्य बहुत है।एक सबसे बड़ी विशेषता इन देशी छंदों में इनकी गेयता है। गेयता केलिए कवियों ने छंद के पीछे -एकार- और उकार का खूब प्रयोग किया है। अपभ्रंश का संदेश रासक इन छंदों का सुन्दर ग्रन्थ है तथा आदिकालिन इन कृतियों में परवर्तीकाल में लिखा गया अजैन ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो में भी इन ताल वृत्तों की भरमार मिलतीहै है। इन छंदों में उक्त वर्गीकरण के अनुसार लगभग सभी प्रकार के छंदों का परिचय विभिन्न छंद ग्रन्थों में विस्तार से मिल जाता है। इनमें समद्विपदी में गीतिका बब्बरी एवं झूलणा, विषम द्विपदी में गाथा, समचतुष्पदी में नाराच पादाकुलक, पंकटिका चतुष्पदी, रासक अडिल्ल, सरस्वती, प्लवंग, रास,रोला, द्विपदी,मरहट्टा, त्रिभंगी और दुर्मिल,अर्द्धसम चतुष्पदी में रास, दोहक, छड्डणिका, सारसिका, विषम चतुष्पदी में छड्डणिका, पंचपदी में मात्रा, षट्पदी, अष्टपदी तथा द्विभंगी में क्रमशः उपजाति, झूलणा, धवल, द्विभंगी छंद अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिनका वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रो० वेलणकर ने प्रस्तुत किया है।[१]

इस प्रकार इन रचनाओं में जितने भी मात्रिक,मिश्रबंध या तालवृत्त तथा वार्णिक और देशी छंद प्रयुक्त हुए हैं उनका संक्षिप्त परिचय प्रत्येक शताब्दी की रचना के आधार पर यहाँ किया जा रहा है। इस प्रकार कुछ विशिष्ट कृतियों में प्रयुक्त इन छंदों के देशी वृत्तों के विषय का सरलता सेअध्ययन हो सकेगा। कुछ कृतियों के देशी तथा वर्णवृत्तों का परिचय अंकित है:-

---

१- परमेश्वर काकुमली रोडः श्री लालचंद भगवान गांधी पृ० २।

(अ) भरतेश्वर बाहुबली रास- (१३वीं शताब्दी)-

मिश्रबंध में रचना का प्रारम्भ किया गया है। तथा (१६ १६ १३) (१६ १६ १३) मा त्रों की तीन पदों की १५ कड़ियों में मिश्रबंध है। कवि ने इस छंद को रासछंद कहा है। कवि ने अपने छंद में स्पष्ट कहा है:-

(१) रास या रासक छंद-

हूं हिव पभणिसु रासह छंदिहि
जं मण हर मन आणंदहि
भविहि मवीयण संभलओ [१]

डा० भायाणी ने संदेश रासक की भूमिकामें रास छंद में दोहा, अडिल्ल,घत्ता, दुल्हअ, मात्रा रड्डा, ढोसा, डहुडणिया, मडुपड़िया आदि सब को सम्मिलित किया है, पर संदेशरासक के रास छंदों के लक्षण इससे नहीं मिलते। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी रासक छंद को २१ मा त्रों का कहते हैं।[२] संदेशरासक का एक रासक छंद देखिए:-

तं जि पहिय पिक्खेविणु पिअ उक्कंखिरिय
मंथरगय सरलाइवि उत्तावलि चलिय
तुह मणहर चल्लंतिय चंचल रमण भरि
छुडवि खिसिय रसणावलि किंकिण रव पसरि [३]

भरतेश्वर बाहुबली रास का रास छंद देखिए-

गुण गणहर गणहर ज्ञान भंगारु शालिभद्रसूरि आणीइय
कीधउं प छीधि चरिउ भरह नरेसर राउ छंदिहिं [४]

इसछंद में द्विपदी मिलती है। विरहांक ने अपने वृत्त जाति समुच्चय मेंदो प्रकार के रासक छंदों का उल्लेख किया है। एक में द्विपदी और दूसरे में विदारीवृत्त।[५] अतः

१- भरतेश्वर बाहुबली रास: श्री लालचंद भगवान गांधी पृ० ९।
२- हिन्दी साहित्य का आदिकाल डा० द्विवेदी पृ० १००।
३- वही पृ० ८३- ९०
४- भरतेश्वर बाहुबली रास, पृ० ८९
५- हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० १००।

बहुत सम्भव है कि यह द्विपदी वाला ही रास छंद हो।

पृथ्वीराज रासो में रासा के विभिन्न रूप मिलते है। जिनमें २१, २३, २४, २६ आदि मात्रायें मिल जाती है साथ ही यति का भी[१] कोई निश्चित क्रम नहीं। संदेश रासक में इस छंद को आभाणक या आहाणक भी कहा गया है।[२] प्रो० वेलणकर ने इसमें १७ (६ + ४ + ४ + ३) गण योजना दी है यह भी रासा में ठीक नहीं लगती। जर्मन विद्वान याकोबी ने रासा को नागर अपभ्रंश का प्रधान छन्द बताया है।[३] जो भी हो, इस सम्बन्ध में स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं है। यों यह छंद कड़वक आदि विभिन्न रूपों में बहुत ही प्रचलित रहा है।

(२) वस्तु--

यह छंद बहुत ही प्रसिद्ध छंद है जो भरतेश्वर बाहुबली रास में (१६-१७, ७७-७८, ९५, १३७, १३८)[४] के अतिरिक्त और भी अनेक रचनाओं यथा प्रद्युम्नचरित, जिनदत्त चउपइ, (३७, ४५, ६९, ९०, १५३, २६०, ४०३)[५] जिनेश्वर सूरि, वीवाहलउ, कच्छूलीरास, पंच पाण्डवचरित रासु (२८, ३८, ११४, १४१, १५५)[६] गौतमरास

१- (i) This is the principal Metre employed in building up the frame of Sandesh Rasak.
(ii) The 'Rasa' metre used in the

body of

संदेश रासक डा० भायाणी, भूमिका भाग पृ०५३

२- (i) This is the principal Metre employed in building up the frame of Sandesh Rasak.
(ii) The metre used in the body of - वस्तु

संदेश रासक: डा० भायाणी, भूमिका भाग पृ०५३

३- देखिए भविसयत्तकहा : सम्पादक याकोबी - पृ० ७१-७९।

४- भरतेश्वर बाहुबली रास: भीखाचंद भगवान गांधी।

५- जिनदत्त चउपइ: जैन शोध संस्थान जयपुर में संग्रहीत (अप्रकाशित)

६- गुर्जर रासावली पृ० १-३४।

७- देखिए त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध-सुधारा श्री जयशेखरसूरि, सम्पादक श्री लाल चंद भगवान गांधी पृ० १-३९ प्रकाशक अमयचंद भगवान गांधी जै० आ०ग्र० माला (२) बड़ौदा।

(कड़ी ७,३७,४४,५०), त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध (४,८,४७,१०४,१५१,२२६,-३७,३७७)[1] विद्याविलासपवाड़ो (१४१)[2] आदि अनेक कृतियों में प्रयुक्त हुआ है। इसके अन्य नाम वस्त या वस्तु भी मिलता है।[3] यह संयुक्त वृत्त है तथा रोला और उल्लाला के संयोग से बना है इसके प्रत्येक पद में २४ मात्राएं होती हैं। यह छंद अपभ्रंश में भी खूब प्रयुक्त हुआ है। इसको संदेश रासक में काव्य या वत्थुअ (वस्तुक) भी कहा गया है[4]। एक उदाहरण देखिए:

राउ जंपइराउजंपइ सुणिन सुणि सूउ
भरह खंड भूमि भरह राउ अम्ह सहोदर
सवा कोडि कुमारिहिं सहीय सुरकुमर तेहि अवर नर
पंमिमहाधर मंडलिय अंतेउर परिवार
सामंतह सामाजसह कहि न सकुकल विचार

इस छंद में पांच चरण होता है और नीचे के दो चरणों की मात्रा तो दोहे की ही भांति २४ होती है। प्रथम चरण के अन्त में और १५ मात्राएं द्वितीय एवं तृतीय चरण में १३ १५ २८ मात्राएं तथा चतुर्थ और पंचम चरण में २२ मात्राएं होती हैं। कुल मात्राओं की संख्या ११९ होती है। प्रथम चरण की सात मात्राओं की प्रायः आवृत्ति कर दी जाती है। श्री नरोत्तमदास स्वामी इसका दूसरा नाम रड्डा भी बतलाते हैं।[5] डा० भायाणी ने इसकी गण गणना इसप्रकार दी है:

२ गण —
१० ६ १ १

४ गण ६ ७ ३ २ [6]

वस्तुतः छंद प्राचीन राजस्थानी साहित्य में विशेषतः जैन साहित्य में खूब प्रयुक्त हुआ है।

(३) <u>त्रोटक या तूटक</u>-[7]

यह भी ४ चरणों का छंद होता है।भरतेश्वर बाहुबली रास (१४४-१५२)

---

१ त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, श्री जयशेखर सूरि, पृ १-४६
२- गुर्जर रासावली पृ० ८८-१००
३- चंदबरदायी और उनका काव्य डा०विपिन बिहारी त्रिवेदी पृ०२५२-२५५
४- संदेश रासक: डा० भायाणी पृ० ५८
५- देखिए राजस्थान भारती अंक १ भाग ४ परिशिष्ट २ पृ० ५५ तथा हिन्दी अनुशीलन वर्ष ११ अंक ३ पृ० १८ (६) संदेश रासक भूमिका भाग सम्पादक डा० भायाणी पृ०५८।
७- मन वारल मैच समाधित ही, तजि वैर प्रमोद भरे तिसही (कु०पु०उ०)

में घवल त्रुटक के रूप में खूब प्रयुक्त हुआ है। यह भी मिश्र ताल वृत्त है। यह अगण रहित ४ सगणों वाला छंद है। यह छंद मात्रिक न होकर वर्णिक वृत्त है। इसमें आलोचकों ने ४ ही चरण बताए हैं अन्त में दो लघु और एक गुरु है। एक पंक्ति में कुल १२ वर्ण होते हैं। परन्तु भरतेश्वर बाहु बली रास में धवल के साथ मिश्र करदेने से इसमें ६ चरण हो गए हैं जिसमें एक चरण में कुंडलिया की भाँति उसी द्वितीय चरण की पुनरावृत्ति होती है यथा-

वर वरई सयंवर वीर, आरंभि साहस धीर,
मंडलीय मिलिया जान हय हींस मंगल गान
हयहींस मंगल गाजि गाजिय गयण गिरि गुहट गुम गुमइ
धम धमीय धायल खसीय न सकइ केसकुलगिरि कमकमइ
धस धसीय धायई धारधा बलि धीर वीर विहंडय
सामंत समहरि समुंन लहई मंडलीक न मंडप- [१]

इसमें अन्तिम चारचरण धवल या सरस्वती धवल के हैं। कवि ने दोनों को इसमें मिला दिया है। धवल या सरस्वती धवल पर आगे विचार किया गया है।

(४) सरस्वती धवल-

इस छंद को धवल भी कहते हैं। धवल और मंगल दो शब्द अपभ्रंश के छंदों में खूब प्रयुक्त हुए हैं।[२] यह छंद भरतेश्वर बाहुबलीरास (ठवणि १२ पद १४४-१५२) त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध (७२-७४, ११०-१६, १५८-१६१) [३] सुंदर वेली चौपाई सहित

जिनमंच कुटी जुत है जिस की,मम तोटक लागि रहयो तिसकी- रचयिता: श्री वृन्दावन लाल, पृ० ८-छंद शतक- सम्पादक अमनालाल जैन,प्रकाशक भाग्यसेट जैन संस्थान मलसेडे (निजाम)

१- भारतीय विद्या सम्पादक मुनि जिनविजय वर्ष ३ अंक १ पृ० १४ पद १४५

२- The following two peculiarities of the APBHRNSA metres deserve to be noted. The first of them is the appendage of the terms Dhaval and Mangala to the names of these metres, when a particular metre is employed to praise or favourably describe a hero (Dhawala) in the popular language i.e. Apbhramsa it gets the appendage 'Dhaval' to it. Thus on Utsaha metre when thus employed will be called Utsaha dhaval, a doha will be Doha dhawal and so on. When on the other hand, the same metres are employed in describing some auspicious occasion, they will get the appendage of the name Mangal attached to them at the end Jhusve may have Utsah Mangal - Doha Mangal, and so on - H.D. Velankar. Journal of the Bombay University - Vol. 5 Part III - page 66.

मिश्रबंध के रूप में मिलता है। धवलछंद में चार चरण होते हैं। यह ताल वृत्त मात्रिक है।धवल की प्रत्येक पंक्ति चौपाई और दोहे का समचरण है। इस प्रकार यह चार चरणों की योजना है। एक उदाहरण देखिए-

रोही उ राउत आइ घावलि विज्जाहर विज्जा बलिहि
चक्क पहूचय पुठितिमि तालि बोलय बलवीय सहवजेरवा
रे रे रहि रहि कुपीउ राउ, जिम्ह जाइसि तिम्ह मारिसुय
तिहुयण कोइ न अवइ अपाय जय जोखिम जीवइ जीवइ य [१]

(५) दोहा चौपाई सोरठा- [२]

ये तालवृत्त लगभग सभी कृतियों में मिलते हैं। दोहा और चौपाई संज्ञक तो रचनाएं तक मिलती हैं यथा- मातृका दोहा, बारक्खरी, दोहा, नेमिनाथ चतुष्पदिका, चिहुंगति चउपइ, मातृका चउपइ, जिनदत्त चउपइ। सोरठा छंद भी बहुधा प्रयुक्त हुआ है।भरतेश्वर बाहुबली रास के साथ साथ तीनोंछंद प्रत्येक रचना में मिलता है। इन पर विस्तृत प्रकाश नहीं डाला गया है। ये छंद किसी अन्य छंदों के साथ मिलकर जब मिश्रछंद बन जाते हैं तब इनका मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है।अतः यत्र तत्र जहां इनका विभिन्न कृतियों में मिश्रबंध के रूप में प्रयोग हुआ होगा वहां इन पर स्वतंत्र प्रकाश डाला जायगा।

(६) वस्तानुल-

यह छंद भरतेश्वर बाहुबली रास में मिश्रबंध के रूप में खूब प्रयुक्त हुआ है।कवि ने चौपाई और वस्तुल का मिश्रण किया है। भरतेश्वर बाहुबली में यह छंद बहुत प्रयुक्त

१- भरतेश्वर बाहुबली रास: श्री गांधी पद १५०

२- Doha is similarly a purely Apbhransa Metre, but is a Tal Vratta, as I have shown above and has been employed since very old days both for lyric and narrative poetry. -

देखिए भारत कौमुदी- अपभ्रंश मीटर्स पृ० १०८० द्वारा प्रो० एच०डी०वेलणकर, तथा हिन्दी साहित्य का आदिकाल: डा० द्विवेदी पृ० १०३।

हुआ है। ठवणि ३ पद ८०-८४ तक की चार कड़ी, ठवणि ८ पद (१०५-१०६)में, यह छंद प्रयुक्त हुआ है। समरारासु में भी ११वीं भाषा में चरणाकुल के १६ १६ मात्राओं के चरण फिर १३ मात्राओं का इकाई चरण, कच्छूली रास तथा बुद्धिरास (२-१४) में भी चरणाकुल छंद प्रयुक्त हुआ है। यह गेयता प्रधान है तथा आदिकालीन हिन्दी जैन कवियों की मौलिक विशेषता है। तीन कृतियों के उद्धरण देखिए-

१- भरतेश्वर बाहुबली रास- (i) जंबूदीवि उवझाउर नयरो,

धणकण कंचणरयणिहि भवरो

अवर पवर किरि अमरपुरो (२)

२- समरारास- (ii) हरखिउ हरपालु बीतिउ पहुतउ ए संघुमोलविकरे

पयपंइ दीवइ नारि संघइ,ए जोवण उतावलीए [1]

आउला वहिन मणिइ मगुलइ ए वालणि प्रियमेगुलीए (२)

३- कच्छूली रासः (iii) अनलकुंड संभम परमार,राजुकरई तहिं है हमिवार

आबू गिरिवर तहिं पवरो [2]

इसप्रकार इस रचना को कवि ने चौपाई से मिश्रबंध करके प्रयुक्त किया है। य छंद इसकी सरसता और गेयता का प्रतीक है।

देशी छन्दः

भरतेश्वर बाहुबली रास में विभिन्न ठवणियों में प्रयुक्त कुछ देशी बंध और उनकी कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

(१) ठवणिं १ में आदिपद के अन्त में -इ- का प्रयोग होता है

(२) ठवणि २ में धकार का प्रयोग सोरठा (४३-७६) तक

(३) ठवणि ३,४,५,६ में चौपाई चरणाकुल का मिश्रण (७२-११३)

(४) ठवणि ८ में चरणाकुल चौपाई (१०५) धवल त्रुटक,आदि देशी छंद है।

(५) ठवणि १२ में सरस्वती धवल (१३४:१५२)

१- प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रहः सी०डी० दलाल पृ० २६

२- वही, पृ० ५९

(७) रोला-

यह छंद चिर प्रचलित है। इसको काव्य भी कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ तथा ११, १३ पर यति होती है। यह छंद भरतेश्वर बाहुबली रास में ठवणि १० में (११८), ठवणि ११(१३९-१४३), रेवंतगिरि रास [१]में तीन कडवक क्रमशः रोला में, उपदेशमाला कहाणय छप्पय में संग्रामसिंहरासु[२] में (१९-५४, ११३-११८)[३] पेथडरास में, समरारासु में तीसरी भाषा में स्थूलिभद्रफागु (रोला में), पंचपाण्डव चरितरासु में [४] ठवणि ३-५ में) गौतम रास में (भाषा १ कड़ी १-६ तक), में प्रयुक्त हुआ है। इसके सम पदों में १३ (३+२+४+४ अथवा ३+२+३+३+२) और विषम पदों में ११ (४+४+३ अथवा ३+३+२+३) मात्राएं होती हैं।देखिए:

> धूलमइय गुरु चवणि कोस वेसाहरि पत्तउ
>
> विरहवालि बलमालि रहिउ रयविगह निफ्फलउ
>
> पुव्वबेर संभारि समर समरंगणि जित्तउ,
>
> जिणशासणि जयवंत थुलउ समरंगणि जित्तउ
>
> (उपदेश माला कहाणय छप्पयः २३)

(क) बुद्धिरास- में देसी छंद-

चरणाकुल चौपई (१-१४ कड़ी) तक, ठवणि १ में चकार वाले सोरठा का देसी रूप (१५-२३) ठवणि २ में (१३ + १३ + १३) का चरणाकुल (२४- ४५) तथा ठवणि ३ में विषम पद के अंत में चकार वाला दोहा तालवृन्त प्रचलित है। ये तालवृन्त गेय है। दोनों के अन्त में कवि ने एकार्थ य और इ का प्रयोग किया है।

(ख) रेवंतगिरि रासु-

(८) झूलणा छंद-

जैन रचनाओं का बड़ा ही लोकप्रिय छंद है। यह छंद रेवंतगिरि रासु की (१-४)

१: वही पृ० ४

२- वही, पृ० ११

३- वही पृ० ३८

४- गूर्जर रासावली, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, पृ० १-३४।

पक्तियों में, जिनेश्वर सूरि वीवाहलउ मेंवस्तु छंद के साथ फूलणा, समरारासु (भाषा ८ में फूलणा की ९ कड़ियों का एक पद (१-३) जिनोदय सूरि विवाहलउ में (कड़ी २०-२४ ३४, ३६-३९ तथा ४१-५४ तक ३७ मात्राओं का फूलणा छंद) प्रयुक्त हुआ है। यह छंद जैन कृतियों में प्रयुक्त मौलिक तालावृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में ३७ मात्राएं होती है तथा १०, १७, पर यति होती है। यह सम मात्रिक वृत्त है। अपभ्रंश में यह छंद नहीं प्रयुक्त हुआ है। एक उदाहरण देखिए-

वलउ वलउ वडियंडे हेतुजि वडियए आदिजिण पसीठ अम्हिजोइसउर्य
महामुणि चउदसि सुर दसंतरि संघ मिलिया तहि अविल आह।।१ ।।
माणिके मोतिए चउक पूर पूरइ रतन मइ बेइ सोवन जवारा
अशोक वृक्ष अनुभाम पल्लव दलिहि रिहुपतेरचियले तोरणमाला
देवकन्या मिलिय मवले मंगल दियइ किंनर गायहि जगह गुरो
लगन महूरत सुरगुरो साधए पसीठ करइ जिन सूरि गुरो ।।३।।[१]

(२) अवर नर आसुरि पुन्यवर भासुरे मूल नक्षत्रिवउपइ सु सारो
सुणई सुर नमई नर चरण चूड़ामणि जायउ पुत्र नरवय कुमारो [२]

वस्तुतः जिनेश्वर सूरिवीवाहलउमें फूलणा का वस्तु छंद के साथ सर्व प्रथम ही प्रयोग मिलता है। यह छंद मौलिक है।

(ख) वुच्छलेणी रास-

देशी ढालें:

यह रचना विविध देशी ढालों में लिखी गई है।इनमें विभिन्न विभिन्न मेय तालवृत्त है। उदाहरणार्थ:-

(१ से १८) तक एक कड़ी द्विपदी एक कड़ी चौपाया की, १८वीं कड़ी में सवैया,
५५वीं कड़ी में सवैया।

५६-६८ कड़ी में विविध मेवाड़ प्रधान ढाल का दोहा, ६९ से ९५
(६९ ९५) माषा का मिश्र चौपाई।९५ से ११५ कड़ी में रोला और ११५ वीं कड़ी

१- सूरि रासावली, अगरचंद नाहटा, पृ० ३४

२- देखिए ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पृ० ६।
(पल्हक कृत जिनपति सूरि धवल गीत पद ७)

में सवैया की दो पंक्तियाँ ११६-११८ रोला तथा ११९ में प्लवंग छंद प्रयुक्त हुआ है।

(९) प्लवंग:-

यह छंद सप्तक्षेत्री रासु [1] (११९ कड़ी में) त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध में प्रयुक्त हुआ है।जैन कवियों द्वारा प्रयुक्त यह देशीबद्ध तथा विविध ढालों में गाया जाता है। प्लवंग छंद का प्रयोग कालिदास के विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक के अपभ्रंश के अंशों में प्रयुक्त हुआ है। अतः कवि ने सप्त क्षेत्रीरासु में इस मौलिक छंद का पुरानी हिन्दी में सर्वप्रथम प्रयोग किया है। उदाहरण देखिए:-

जं ससि रवि गयणंगणिहि उगइ महिमंडलि

ता वरतउ एउ रासु भविय जिण सासिणि

निम्मल जं ग्रह नखत्र तारिका व्यापई

मयमंतु श्रीसंघ भणइ जिण सासणु (सप्तक्षेत्रिय रासु- पद ११९)

(ग) पेथड़ तथा कच्छुलीरास-

इस कृति में रोला, दोहा, चौपई और चौपाया प्रचलित छंद है। इसमें प्रयुक्त सवैया देशी ढालों के है। रचनाकार ने प कार वाला दोहा प्रयुक्त किया है।देशी छंदों की परम्परा में यह कृति बड़ा योग देती है।इस रचना में ४२ से अन्तिम कड़ी तक दोहा छंद मिलता है पर अन्त की देशी पद्धति उल्लेखनीय है, जिसमें कवि रचना के उत्तरार्द्ध में समय में तीन बार आवर्तन करता है।[2] रचना में प्रयुक्त ४ देशी छंद दृष्टव्य है जिनमें प्रथम दो का वैचित्र्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गेय तत्व इनकी प्रधान विशेषता है। चारों में से दो के उदाहरण यहां दिए जा रहे है:-

(अ)- आवइ मधुपीय पेथड़ बहिय ढकीय टोडर संघपति मोक्लावए

समरसंघो भडइ पाठीडाणए परिपरि बाहणी बच्छल कारए

मायीय मिलइ तिहि कमल विठ्ठ देवे अन्य फल लेहओ

बहुधर्मवसइ रुपावटी बहीय पीवाणए

१- प्रा०गु० का०सं० श्री प्रकाश की पृ० ४७।

२- थोकइ डूंगर दूरिविषम वडीय सरोवर पाले संघपति वई वधामणी हरषीउए हरिषीउए हरिषीउ नयणि निहाले।।४२।।पेथड़ रास पृ० २४-३०।

मडउ संघातिपवि लोक बवामय सेलडीया संघ पडत तहि

मलयउ अखंड पीआणय

आगे की दो देशी ढालों में २७ मात्राओं के सवैया का देशी रूप है। जयदेव के गीत गोविन्द में प्रयुक्त लोक प्रचलित इन देशी छंदों की परंपरा का निर्वाह सर्वप्रथम पेथड रास के रचनाकार मंडलिक ने इस कृति में किया है। ये देशी छंद गीत गोविन्द की ही भांति मीठे हैं। दूसरा बंध तालवृत्त देखिए। सवैया की यह देशी अपूर्व संगीत से ओतप्रोत है:-

(अ) सवैया की देशी ढाल-

रायलकंद, ।।तहि माचिनए ए सहिलडी ए ललागीय गिरनारे

रायलिवर फलियामबउ सामलडउ संसारे।।तहि माचिन ए

अंग परवलि कुमकंबमह, ए अल पहरीय घोती प्रवीत

इन्द्र महोत्सव मंगायरंमी तहिं मगठलि बहु धनवंत ।तहि मा० [1]

आगे इसी सवैया की देशी की भांति दोहरों की देशी भी दृष्टव्य है।इनमें प्रचलित देशी छंद अत्यन्त सरस हैं। कवि हरियाला सुडारे- मनीला सूडा रे- आदि मधुर शब्दों द्वारा रचना का महत्व और अधिक बढ़ा जाता है देखिए-

(ब) दोहरों की देशी ढाल-

अंबिवि नाव मनोरह पूरी अवलोईय जगन्नाथ

सीख पूजन पुजारीय वलीयउ पेथ कम्म कुकीयाथ

तहि मडहलली ए चलीयड गई गिरनारि

सोमनाथ संघपह मंदीय देवीय वलीउ नाम

किउ पीआर्ण हिव मन रहिसउ, मंडलिक भणइ ईम ।तहि मा

किउ पीआर्ण केमि तहि हरीयाला सूडारे सूडा हे संघह मनीला सूडारे। [2]

१- प्रा०गु० का० संग्रह पृ० २८-२९

२- वही ग्रन्थ (प्रा०गु०का० संग्रह) पृ० २८-२९।

इसमें तहि नाचिन प ध्रुवों की पुनरावृत्ति इसकी गेयता का प्रमाण है।वस्तुतः इन प्राचीन देशी ढालों और विभिन्न देशी छंदों के विकास में पेथड़रास का महत्व अविस्मरणीय रहेगा।

पेथड़ रास की ही भांति कच्छूलीरास में दो महत्वपूर्ण देशी ढालें है जिनमें एक दोहे की तथा दूसरी कोई द्विपदी है। ये द्विपदियां सप्तक्षेत्रीय रासु (कड़ी १-१८) समरा रासु (भाषा ३ में १४ द्विपदी, पंच पाण्डव चरित रासु में (ठवणी दो में एक मिश्रबंध १ द्विपदी और एक चौपाई) आदि काव्यों में प्रयुक्त हुई है। इनमें ध्रुवों का बार बार आवर्तन इनकी प्रमुख विशेषता है।एक उदाहरण यहाँ अलम् होगा:-

(ख) द्विपदी ढाल-

देवेंमरउ हिम रहिवे वे गुरु विद्दिघर्हिं बैठो

विसहक आवस परवलिवे,

लंघीउ प लंघीउप लंघीउ मंडु पयंठो

तउ गुरि मुहंता मिल्हिकरि होइ गरहु कमेण

धाइस लीधउ मंडुपडे

मिलीउ प मिलीउप मिलीउ-उाछुभेगी

मापपिल्लि वि संघुडीय डर डरंतु मीउ मायी

वोबनहार हवि सड महीय

होयाई प डीयाइ पडीउ मायो

सउ गुरु कुहीउ रयाउतु कीधउ दीहु कराठो

नायक वेसा धुरि वीउ,

हरिवीउ प हरिवीउ प हरिवीउ नमउखनाठो [1]

द्विपदी के सम्बन्ध में प्रो० वेलणकर ने इसकी गेयता गति और संगीतात्मकता के

१- प्रा०गु० का० संग्रह पृ० ६०-६१

सम्बन्ध में पर्याप्त विश्लेषण किया है।[1] यह द्विपदी प्राकृत के गाथा या गाहा छंद का ही एक देशी गेय उपभेद है। अपभ्रंश के विरहांक को छोड़कर लगभग सभी कवियों ने खूब प्रयोग किया था। इसका नाम दुवइ भी मिलता है। डा० ह०च० भायाणी ने इसकी गण स्कीम को संदेश रासक की भूमिका में इस प्रकार स्पष्ट किया है:-

(६+∪ ⏓ ⏓∪ + ४ + ४ + ४+∪ ⏓∪ + – ´ ॥)

दुवई तथा द्विपदी छंद के पदों के विषय में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है।[2] इसका स्वरूप विश्लेषण प्रो० वेलणकर ने ठीक प्रकार से किया है। जिसमें इसका चतुष्पदी रूप भी मिलता है।[3]। वास्तव में देशी ढालों में द्विपदी की यह ढाल पर्याप्त सरस है

---

1. There can be no doubt that the Yati that is mentioned in the case of the Dvipadis is of a musical nature. It cannot be a mere narrative pause, which is always a short one and is introduced in the middle of a line for the convenience of the narration to allow some breathing time -

 Journal of the University of Bombay page 48 - APBHRANS METERES - By Prof. Valenkar.

2. A few words on the name 'Duvai' Alsdorf finds it strange that in the face of the name 'Duvai' (Dwipaddi) defines it as a metre of four 'Pads' In his com. Vanshidhar discusses for a different reason whether 'Duvai' is a two lined metre or it is four lined. - संदेश रासक, भूमिका, पृ. ६० - ६१

3(i). Even from very old days, there exists a difference of opinion as to whether the Gatha should be considered as a Dvipadi or a catuspadi. There are however a few points which help to decide in favour of its being considered a Dvipadi. The chief among them is the last quarter of the metre. Had the Gatha been conceived as a catuspadi of the Ardharsama type, the last quarter would have been always equal to the second, as the third is equal to the first. Nor can it be regarded as a Visam Catuspadi as the first and the third quarters are similar. It is therefore evident that the Gatha was conceived as a Dvipadi of the Visam like the Sikha and the Mala." —

तथा इसकी गेयता एवं ताल ही इसे लोकप्रिय बनाने में सहायक हुई होगी।

(१९) त्रिभंगी-

यह छंद भी जैन कवियों में अति प्रचलित रहा है। पेथड़ रास में सवैया की देशी ढालों में कुछ मात्राओं को घटा बढ़ाकर त्रिभंगी का प्रयोग मिलता है। त्रिभंगी मात्रिक और वर्णिक दोनों रूपों में मिलता है। प्रस्तुत कृति पेथड़रास में इसका मात्रिक रूप ही मिलता है। मात्रिक वृत्त या तालवृत्त त्रिभंगी में (१०+८+८+६) ३२ मात्राएं मिलती हैं। यह छंद अद्यावधि प्राप्त पुरानी हिन्दी की कृतियों में केवल पेथड़रास में ही मिलता है। कालान्तर में चंदबरदायी ने पृथ्वीराज रासो में इसका प्रयोग किया था।[1] त्रिभंगी छंद के उदाहरण देखिए।

धम्मिय निसुणउ लोयमणिक संघहुणउ पभाहउ भवीयणउ
आपूम दीजइ परिहजटिह भवीया लहइ लाहई धणकणउ
मैलसि स्त्रीयई रंगि राय हवं भवरद भवरंग भवीयघरे
कुपि सामहणी संघहणी जोकरेहिं निरंतर घरेहि घरे।[2]

--- --- ---

देवालय बालीय मवणि बिसालीय विंतीय तालीय रंगि फिरंती हरिस भरे
रवि नाचइ बेला मधुवय मेला बाला भोला छाडा रवि रमई[3]

---

(11) One more curious thing about the name Dvipadi is that from very old times. It is applied to metres which admittedly contain more than two lines in them. Thus VJS II 1.) defines a Dvipadi as a strophe made with four Vastukas of 4 lines each and 4 Gities of the Bhadrika type coming at the end of each one of the four Vastukas. This is ver unusual, though this is the meaning of the Text even according to the commentator. वही पृ० ४६-५०

1 चन्दबरदाई और उनका काव्य - डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी पृ० २४६

2 प्रा० गुर्जर का० सं० श्री दलाल पृ० २५ परिशिष्ट १०

3 वही पृ० २५

इस प्रकार यह त्रिभंगी ताल का महत्व स्पष्ट करता है। गेयता इस छंद का प्रधान गुण है। देशी ढालों में ढल जाने से ही यह छंद अप्रचलित हो गया।

समरा रास:

(११) त्रिपदी-

इस रास में दोहा, चरणाकुल तथा झूलणा छंद मिलते हैं। एक विशेष तथा मौलिक देशी छंद "त्रिपदी" मिलता है।यह सिर्फ इसी रास में प्रयुक्त हुआ है रासकार ने सम्भवतः तीन पदों को मिलाकर इस मौलिक देशी छंद की सृष्टि की है। अतः इसछंद का शिल्प अज्ञात है।त्रिपदी समरारास की ११वीं भाषा में ही प्रयुक्त हुआ है। त्रिपदी का यह छंद पूर्व वर्णित काव्यों में नहीं मिलता। समरारासु में कवि ने ६ कड़ियों में इसका प्रयोग किया है:-

किसउ प्रद्युम्न पुरिसु जोइउ ए नमणुलो सफलकरउ
निसढिया नेत्रि करेसु उतारिसु एकपुरि अबारणाए
मेढीय मेढीय जोडि बलियउ ए कीधई बंधियारो ।।३।।
लेउ देवालउ माहि बइठउ ए संघपति धडिव
लहर लागइ आगसि प्रवहणु ए आइ विमान जिम
झलमट नाटकु जोइ मयरंग ए राय ठवडारबए ।।४।।[1]

(समरारासु भाषा ११वीं)

छंदों को देखने पर इसकें तीन तीन पदों दुवारा यह कहा जा सकता है कि कवि ने इसका त्रिपदी नामकरण संभवतः इसीलिए किया होगा। यह भी बहुत सम्भव है कि गेयता तथा प्रचार के लिए कवि ने इसे अन्य प्रचलित छंदों से लोकप्रिय बनाने अथवा काव्य में छंद वैचित्र्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से इसका प्रयोग किया हो।

पंच पाण्डव चरित रासु-

इस रासमें मिश्रछंदकुलकों का प्रयोग किया गया है। ठवणि क्रम से छंदों का परिचय इस प्रकार है:- ठवणि १ में (१६+ १६ + १६)का चरणाकुल, फिर

१- समरा रासु, भाषा ११वीं देखिए प्रा०गु० का० संग्रह।

(१२) वस्तु, ठवणि २ में मिश्रबंध में (द्विपदी चौपाई) ठवणि (३-५) में

देशी सोरठा तथा सोरठ्ठा- दोहा, चौपाई, रोला वस्तु, ठवणि ६ में विषम चरण चौपाई तथा समचरण में दोहा तथा अन्त में गेयता के लिए एकार का प्रयोग। देशी सवैया की ४ कड़ियां फिर दोहा के समचरण में ४ चरण तथा १ हरिगीतिका। इसमें देशी ढाल (३२८-३३५, ३४२, ३४९, ३५६-३६३ में (१५+१३) मात्राएं मिलती हैं। यह ढाल सरस्वती धवल नाम से है तथा भरतेश्वर बाहुबली रास में पद १४४, ४६, ४८, ५० और ५२ में तथा जयशेखर के त्रिभुवन दीपक प्रबंध में सरस्वती धउल के नाम से मिलती है। ठवणि ७

(अ) सोरठा में (१३ +११) का देशी सोरठा मिलताहै+ जिसमें ए की आवृत्ति है। सोरठा की यह देशी रेवंतगिरि रासु में भी प्रयुक्त की गई है।[१] इससे स्पष्ट होता है कि देशी छंदों कीयहदेशी विक्रम सं० १२८८ से पूर्व भी प्रसिद्ध थी।[२] यही सोरठा की देशी ढाल समरारासु (१३७०) में भी प्रयुक्त होती है।

(ब) सोरट्ठा- पंचपाण्डव चरित रासु की ७वीं ठवणि में यह छंद प्रयुक्त हुआ है। यह छंद दोहा का बिल्कुल उल्टा है तथा (११ +१३) मात्राओं का होता है। प्राकृत पिंगल में सोरट्ठअ नाम से दोहा विपरीत किआ।पअ पअ जमक बरवाण भाइरा अ पिंगल कहीं [३]इसके लक्षण दिए हैं। यहसोरठा से साम्य रखता है।एक उदाहरण देखिए-

मइ मूरति अजाणि अविचड कीयउ कुम्हार बई

तू कोटी मुझकाणि कुम्भ समउ समराइ मुह (१२)

(पंच पाण्डव चरित रासु)

इस रास की ठवणि ९ में प्रत्येक १६ मात्राओं की चौपाई है तथा १० से १५ तक रोला चौपाई और वस्तु का संयोग है।

१- समरारासु भाषा ११वीं देखिए प्रा०गु०का०संग्रह।
२- डी.भो.एस.डी० १८,पृ० ३५४
३- देखिए प्राकृत पिंगल,पृ० २८१-८०।

(१३)- हरिगीतिका-

यह छंद पंच पाण्डव चरित रासु के ठवणि ५ के ३३८-३४१, ३५२, तथा ३५५ में प्रयुक्त हुआ है।प्राकृत पिंगल में इस मात्रावृत्त के लक्षण दिए हुए हैं।[1] उसके अनुसार इसके प्रत्येक पद में २८ मात्राएं तथा इसका (५+४+५+५+५+दो मात्रा) २८ मात्राओं का मात्रा विधान है यह छंद केवल पंच पाण्डव चरित रास और सोमकुंअर की रचना खरतरगच्छ पट्टावली में ही मिलता है- उदाहरण-

> तुरक पायक सायक पुं सरियां
>
> सुहड धर्म ति फोडई सुंबरां
>
> गज गजिई रथ रथु रथ गा धणी
>
> तुरग सिउ तुरगे रथ मांडणी [2]

इस प्रकार इसमें १६ १२ पर यति तथा अन्तमें (।ऽ) या नगण आवश्यक है इसकी गति प्रत्येक चरण की ५वीं,१२वीं, १९वीं तथा २६वीं मात्राओं को लघु रखने से ठीक रहती है।

(१४) पादाकुल-

यह १६ मात्राओं का छंद है तथा प्रयुक्त देशी छंदों में मौलिक है।यह छंद विशुद्ध देशी है तथा उपलब्ध हिन्दी जैन कृतियों में मेरुनंदनगणि विरचित० श्री जिनोदय सूरि विवाहलउ- [3] नामक काव्य में ही मिलता है। इस काव्य में (१:२० कड़ी) फूलणा में (२४-२८) पादाकुल में तथा (३०-५४) शुद्ध फूलणा में लिखी गई है। पाद के ऊपर वस्तु छंद (८,२१,२२,२३,२८,३४,४९) में प्रयुक्त हुआ है।

पादाकुल छंद सबसे पहली बार इसी कृति में प्रयुक्त हुआ है।तथा समकालीन अजैन रचनाओं में भी कहीं उपलब्ध नहीं होता। उदाहरण देखिए-

> बाहु बाहु हल हली बेगिहिं बामहि
>
> चारक नैबन बर परिणय यहि

१- देखिए: प्राकृत पैंगलम् पृ० १६६-१७

२- गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज, पी०१८

३- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह श्री नाहटा- पृ० ३९०

इम पमर्मंतिय सुललिय सुंदरी

गायई महुर सरि गीय हरिसभरि (२४)

(ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह)

--- --- ---

तरल तुरंगमि चडियउ लाडणु

मागण मंडिय दान दियइ घणु

कीरहुम अणवरिसंड समरिमवर

जिम सरहइ गिरि कालिम कुमर। (२६) (ऐ०जै० का० सं०)

इस प्रकार इस छंद में चार चरण होते हैं तथा यह गेयता इसका प्रधान लक्षण है। अन्यत्र इस छंद के सम्बन्ध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

(१५) फागु-

रास की भाँति फागु काव्य इतना प्रचलित हुआ कि फागु नाम से स्वतंत्र काव्य फागु छंद में प्रणीत किए जाने लगे। फागु छंद जंबू स्वामी फागु में, रंग सागर नेमि फागु (खंड १ कड़ी ७-१४, २०-२१, २७-३०, खंड २ कड़ी ६-९, १५-१९, २५+२६, २८-३० तथा ३६-३७) में खंड ३ कड़ी ३-७, १३, १६-१७, २४+२९ तथा ३४ कड़ियों में प्रयुक्त हुआ है। १३वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी तक फागु संज्ञक अनेक कृतियाँ प्राप्त हुई हैं। वस्तुतः फागु एक प्रकार का छंद विशेष ही हो गया है। कवि ने इसमें दोहा के साथ मात्रा बंध करके मिश्र प्रयोग से इसको फागु छंद बनाया है। इस प्रकार की श्रृंखला कवीश्वरसूरि में भी मिलती है। उदाहरण देखिए-

सिणगार रंग समाणीय पाणीय हारि सुरंग

कातरण बाली घड बारणा बासा तोरणवंत

मकरंद चंदा काली मालिय मेलइ नारि

अमर उपमालियातरु बाटलई हेमनारि

रयण कंगरे तोरणिहिं पोलिहिं कनक कपाट

माणिक मय तोरण ऊपरि ऊपरि मणिमय पाट

(रंगसागर नेमिफागु)

इस प्रकार अनुप्रास शैली मेंफागु छंद प्रयुक्त हुआ है। फागु छंदों में लिखी जाने वाली अनेक फागु संज्ञक कृतियाँ- जंबूस्वामी फागु, नेमिनाथ फागु, रावणि पार्श्वनाथ फागु, भरतेश्वर चक्रवर्ती फागु, नारीनिरास फागु, वसंतफागु, स्थूलिभद्र फागु आदि अनेक है।[1] वस्तुतः गेय तालवृत्त के रूप में यह देशी बंध खूब प्रयुक्त हुआ है।

वर्णिक वृत्त-

वर्णिक वृत्तों का प्रतिनिधित्व करने वाली रचनाएं त्रिभुवन दीपक प्रबंध, रंगसागर नेमिफागु तथा विराट पर्व है। इनमें विराट पर्व (शालिसूरि द्वारा विरचित सं० १४७८) में खूब वर्णिक वृत्तों का प्रयोग हुआ है। त्रिभुवन दीपक प्रबंध तथा रंगसागर नेमिफागु में १ या २ ही वर्णिक वृत्त प्रयुक्त हुए है। सम्पूर्ण काव्य विराटपर्व वर्णिक वृत्तों का प्रयोग मिलता है। जिनमें कवि ने भिन्न वर्णिक वृत्तों का भी प्रयोग किया है। ये वर्णिक वृत्त इस प्रकार प्रत्येक भाग में प्रयुक्त हुए है:-[2]

			कुल
स्वागता भाग १	५५ भाग २-	३४	८९
रथोद्धता भाग १	- भाग २-	२	२
उपजाति भाग १	९ भाग २-	१९	२८
इन्द्रवज्रा भाग १	३ भाग २-	५	८
उपेन्द्रवज्रा भाग १	१ भाग २-	१	२
वसंततिलका भाग १	- भाग २-	६	६
द्रुतविलंबित भाग १	२८ भाग २-	५	३३
मालिनी भाग १	२ भाग २-	४	६
विविध भाग १	३ भाग २-	६	९
	१०१	८२	१८३

१- प्राचीन फागु संग्रह: डा० भोगीलाल सांडेसरा।

२- गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, सी० १८ पृ० ३५-९४ तथा ८-९

३- [illegible]

मिश्र वर्णिक छंदों में भी कवि का मौलिक प्रयास द्रष्टव्य है। इन मिश्र छंदों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।[१] :-

<u>प्रथम दोपंक्तियों में</u>	<u>अन्तिम दो पंक्तियों में-</u>
प्रथम भाग - १ पद	४८ रथोद्धता इन्द्रवज्रा
	६३ रथोद्धता स्वागता
	७१ रथोद्धता स्वागता
द्वितीय भाग-	१४ रथोद्धता स्वागता
	२० रथोद्धता स्वागता
	३६ रथोद्धता स्वागता
	३८ स्वागता रथोद्धता
	४६ रथोद्धता स्वागता
	८० द्रुतविलंबित स्वागता

इस कृति में सबसे प्रमुख छंद स्वागता है।

इन वर्णिक छंदों के अतिरिक्त जिनदत्त चउपइ में नाराच और अर्द्ध नाराच तथा उपेन्द्र वज्रा और अक्षुद्रविलक्रिनंती में (१ से ९ तक) द्रुतविलंबित तथा रंगसागर नेमिफागु में अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीडित (कड़ी ३१) आदि प्रयुक्त हुए हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से इन छंदों का पर्याप्त विश्लेषण अनेक विद्वानों ने किया है। अतः यहां इन छंदों पर विश्लेषण को विस्तार देना अपेक्षित है। निश्चित इस दृष्टि से प्राप्त हिन्दी जैन कृतियों में विराट पर्व ही अकेली कृति है, जो सबका प्रतिनिधित्व करती है। इस कृति में भी वर्णों में माने उच्चारण करने औरलिखने में अन्तर होने के कारण वर्णिक छंदों में कुछ कठिनाई उपस्थित

१- वही पृ०- ८९१

हो जाती है।[1] जैन रचनाओं का इस दृष्टि ऐतिहासिक महत्व है। मात्रिक वर्ण और ताल का अन्तर इस कृति द्वारा स्पष्ट होता है। वर्णिक वृत्तों का संबंध गणों से होता है तथा उनमें मात्राओं की गिनती नहीं होकर अक्षरों की गिनती की जाती है। वस्तुतः जैन रचनाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण योग इन वर्णिक वृत्तों का न होकर मात्रिक वृत्तों अथवा तालवृत्तों का ही देशी रागों के आधार पर इन तालवृत्तों की तोड़मोड़ करके लिखने वाले आदिकालीन जैन कवियों का देशी ढालों रागों तथा तालवृत्तों के रूप में ही अधिक योगदान है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने मात्रिक वर्णों का प्रयोग ही नहीं किया। विराट पर्व इस तथ्य की पूर्ण पुष्टि करता है। मात्रिक वृत्तों का प्रतिनिधि जैन काव्यविराट पर्व है।

कुछ विभिन्न विभिन्न रचनाओं में प्रयुक्त वर्णवृत्तों के कुछ उदाहरण देखिए-

(१६) द्रुतविलंबित-

बदन चंद महारस लेइ पडिउं
अमीय पहवणी रसना जडिउं
पवन चंदनगंध हरावउ
नयनि वाति वहइ वहइ दिवि वासउ

१- The last point is that the stanzas do not observe the exact syllabic form of metre. In this sense, the exact Prosodic metrical form is affected by the difference in the length and shortness of the vowel pronunciation from the written form and the distance that came into being between the sun and the written stanza. Even 'Matra' structure came to be contaminated in 'Bhal' which came to be based on heard son,formed and did not possess the exactness in writing. This effect is found even in this poem which uses syllabic metres entirely. xxxxx This is due to a great gap that came into being between the actually sung song and the song transcribed. The transcription was always a little in exact and had only a pragmatic value. The poem was ment for singing and that was the dominating idea. The importance of 'VIRATPARVA" as a long poem in syllabic metres is indeed great.

G.O.S. CXVIII - page 11-12.

टलवलइ जिम निर्जलि माछिलो

वलवलइ करि अंगि वली वली

मकइ लोचइ लावर आकुल

विरहि विहूवल मोहर बाउलइ (जी०ओ०एस० २२, ३१

इसके लक्षण हैं- वर्ण १२, प्र० १२ प्र० (ईं म० २ म०र०)

(१७) मालिनी-

निरुपम कुलवाली रूपनी चित्रशाली

अभिकुल गुणवल्ली काम भूपाल भल्ली

करहुइ सुरराणी मानवी भइन बाणी

अहह हुइ किनारी होइ सुंदर गंधारी

इसके लक्षण हैं:- (न,न,म,य,य युतेयं मालिनी भोगि लोका:)

(१८) उपजाति-

ए गंधकारी मिचि रूप दासी

रही अलइ उत्तम नारि नासी

किमइ न जाणिइ फल नैव वाजइ

अमवाणु अंध उपाडि वाचइ (२५)

(१९) वसंत तिलका-

ममराट उत्तर परवई कुवावधायक

अक्षौहिणी चकवणी रथ सूर छायक

मीवाणने वहति भंवर वीर गायइ

ए वीरा वीरण समर किरि मेघु गाजइ (१)

लक्षण - (उक्ता वसन्ततिलका त भ ज ज गौ ग)
वर्ण १४ (त भ ज ज २ गु)

(२०) रुपोद्धता - स्वागता -

देखि कुपथिक राति वीसली

हाथि लेइ हथियार वीभिली

भीमु भीड इम कीचक कूटइ

लेइ आगलि न कोइ छूटइ

इसके लक्षण है- वर्ण ११, प्र० (र०न० र०ल०गु०)

(२१) नाराच-

माणहु सुरवइ, भिंदइ सुरतउ जाणइ न काइ
बोलइ वीरु रावल धीरु यह मुक्ख निहु वाइ
करिकर सन्धु कालउ सन्धु लागुयो डइहु वाघि
वीरे पच्चारिवि दीनी गालीपि इवनल कइ याम [१] (२२४)

इसके लक्षण है: वर्ण १६ प्र० (ज०र०ज०र०ज०गु०)

(२२) अर्द्ध नाराच-

हंसा गमणी चंदा वइणी करइ पलाव
मोडी आगर देसइ पेरवइ कलायउ नाइ
आवउ मरणू नाहि सरणू कहा कहा करावउ
कंठी रोहिणुवालि कुमावणु कंपावेहइ मराउ [२]

इन छंदों के अतिरिक्त इन्द्रवज्रा, उपेन्द्र वज्रा शार्दूलविक्रीडित, मौक्तिकदाम, अनुष्टुप श्लोक, सरस्वती धवल आदि वर्णवृत्त प्रयुक्त हुए है। प्रमुख छंदों के उदाहरण दे दिए गए है।

-रासों से पुष्ट देशी छंद तथा उनका विकास करने वाली महत्वपूर्ण कृतियां-

मात्रिक और तालवृत्तों में अनेक छंद ऐसे है जिन्हें इन जैन कवियों ने अपनाया है तथा अनेक देशी छंदों को रासों के आधार पर रचा गया है। देशी छंदों के विकास का यह प्रसार दूसरा चरण कहा जा सकता है।इन छंदों में गेयता होने से विभिन्न रागों का समावेश होता है।संगीत तत्वकी परिपुष्टि होने के कारण इन कृतियों का संगीत के क्षेत्र में भी योगदान है तथा संगीत की शोध में विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकती है। लोक गीतों की शैलियों में अनेकरागों

१- देखिए- अमरकांति- जिनदत्त सउपई जैन शोध संस्थान, जयपुर में संग्रहीत प्रति।
२- वही, पद १५१।

में देशी छंद लिखे गए हैं ताकि जन समाज संगीत तत्व के आधार पर रचनाओं में प्रस्तुत किए साहित्य दर्शन और आध्यात्मज्ञान में प्रवृत्त हो सके। इन जैन कवियों ने छंदो को अनेक रागों से पुष्ट किया है अतः देशी छंदों के विकास में महत्वपूर्ण योग देने वाली कृतियां क्रमशः त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध, रंगसागर नेमिफागु, खरतर गच्छ पट्टावली तथा विद्याविलास पवाडो हैं।

मात्रामेल और अक्षर मेल छंदों के प्रकार,[1] उनकी परंपरा, यति चर्चा, गणव्यवस्था, लघु गुरु विवेक[2] आवृत्त संधि, अक्षरमेल वृत्त,[3] मात्रामेल जाति छंदों[4] तथा देशी छंदों पर विस्तृत प्रकाश श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक ने अपने छंद विषयक बृहद ग्रन्थ में किया है। इस ग्रन्थ में लेखक ने छंदों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। मात्रावृत्त और ताल छंदों की परंपरा और उनके विद्यमान संगीत का छंदों में उपयोग, छंदों के लक्षण उनकी मात्रा तथा गणों की व्यवस्था का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है। उदाहरणार्थ ताल और स्वर का यह संगम लेखक के शब्दों में देखिए-

"आ रीते ताल तत्व संगीत मां प्रवेश पामी संगीत ना स्वरों ने कालमां मर्यादित करे छे कोई पणराग मां गवाता गीतमां संगीतना स्वरो होय छे पटहुं ज नहीं, पणतेनो दरेक स्वर अमुक मात्रावाळो प्रयोजायेलो होय छे पणतेनो दरेक स्वर अमुक मात्रा सुधी प्रयोजायेलो छे अने रागनी आकृति आ रीते स्वर अने ए स्वरनी काळ मात्रा ए बन्नेथी नियत थाय छे"[5]।

लेखक ने आदिकालीन अक्षर मेल वृत्तों की गण योजना भी अपने ही ढंग से की है। देखिए-

---

१- देखिए बृहद पिंगल पृ० ६४ श्री विश्वनाथ रामनारायण पाठक।
२- वही पृ० ९६।
३- वही पृ० १०९।
४- वही पृ० ११९-३३८।
५- देखिए बृहद पिंगलः श्री विश्वनाथ रामनारायण पाठक, पृ० ३४२।

अक्षर संख्या

(१) दोधक छंद की अक्षर योजना-

गालल गालल गालल गागा — ११[1]

(२) तोटकछंद की अक्षर योजना-

ललगा ललगा ललगा ललगा - — १२[2]

(३) नाराच छंद की अक्षर योजना-

लगा लगा लगा लगा लगा लगा लगा लगा - — १६[3]

(४) झूलणा छंद की अक्षर योजना-

लल गाल गालल गाल गालल गाल गालल गाल - — १९[4]

इसी प्रकार इन छंदों का श्री पाठक ने वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। छंदों के एक दूसरे आलोचनात्मक ग्रन्थ में[5] श्री पाठक ने मात्रा छंदों का स्वरूप[6] अपभ्रंश के कड़वाबद्ध प्रबन्धों में प्रयुक्त छंदों का विश्लेषण[7], देशी छंदों का स्वरूप, उनकी परम्परा[8], चौपाई, रोला, सवैया तथा अन्य छंदों की परम्परा और विश्लेषण[9] प्रस्तुत किया है। इस आलोचनात्मक ग्रन्थ ने देशी छंदों के इतिहास में अपूर्व योग दिया है।

देशी छंदों का स्वरूप स्पष्ट करते हुए श्री पाठक ने अनेक महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला है। देशी ढाल गरबी पद, मुक्तक आदि की सामान्य चर्चा में

१- वही, पृ० ११२। २- वही पृ० ११९

३- वही, पृ० ११३ ४- वही, पृ० ११३

५- देखिए-प्राचीन गुजराती छंदो-श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक: प्रकाशक गुजरात विद्यासभा अहमदाबाद सन् १९४८।

६- वही, पृ० ३०।

७- वही, पृ० ९८

८- वही, पृ० २९९-२५५

९- वही, पृ० २६३-३००।

देशी छंदों का स्वरूप स्पष्ट किया है। देशी छंदों के साथ संगीत का अटूट संबंध है। संगीत रत्नाकर में भी देशी की परिभाषा स्पष्ट की है।[1] छंदों के इन देशी स्वरूपों में संगीत ताल और राग का विधान समन्वित है- "अहीं ग्रन्थाकार संगीतना मार्ग अने देशी एवा बे प्रकारो कहे छे।मार्ग ने अहीं गान्धर्व पण कहेल छे तेने रागने आश्रये आधारे तेने देशमा रचायेलां गीतो नी गणियों के गणतो। राग तरंगिणी मार्ग संगीतनो ग्रन्थ छे एटले देशीओ ए तेना विषय नथी-।[2] राजस्थान में आज भी ये देशी छंद विविध रूपों में प्रचलित है।

देशी छंदों का स्वरूप समझने में अनेक प्रकार की रागों का विधान भी किया गया है। इन रागों में गीत लय ताल आदि काआयोजन किया गया है। यह देशी छंदों का ही प्रभाव है कि आधुनिक काल में गीतों को जन्म मिला है।अतः देशी शब्द इस प्रकार के निश्चित रागों में गाया जाना छन्दवाचक शब्द है।[3] इन देशियों में निश्चित रागों का विधान है। जैन कवियों ने दोहा, सवैया,

---

१- (अ) देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम्
मानं च वादनं च नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते -संगीत रत्नाकर पृ० ६-७
(ब) यत्तु वागेय कारैश्च रचितं लक्षणान्वितम्
देशी रागादिषु प्रोक्तं तद्गानं रंजकम्' (वही प्रथम भाग चतुर्थ प्रबंध,पृ० ३०१)

२- देखिए प्राचीन गुजराती छंदः श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक पृ० २००।
३- देशी शब्द आ रीते अमुक तरेह मां गवाता अमुक छंद नो वाचक छे।ते शुद्ध पिंगल नो शब्द नथी, तेम ज मात्र संगीतनो शब्द पण नथी।एक बीजी रीते पण देशीओनुं स्वरूप सिद्ध थाय छे।कहुवा वगेरे प्रबंधों जोता जणाशे के घणाखरां कडुवांना प्रारंभ मां अमुक राग नुं नाम लखेलुं होय छे।तेमा केदारो गोडी रामगिरि मारुणी आशावरी, धन्याश्री, देशाख मल्हार वगेरे शिष्ट संगीत मां जे रागो होय छे तेना नामो आवे छे क्वचित हुं बापड कही गयो तेम शिष्ट संगीत मां नहि जाणीतां एवा सामेरी जेवा नामो पण आवे छे।आ शिष्ट संगीतना रागो छे छतां पण ए बधा देशिओ ज छे।अर्थात् ए बधा आपणी गुजराती कविता मां रुढिथयेली अमुक नियत तालबद्ध स्वरावली अने छंदो रचना छे।शिष्ट संगीत मां घणुं एकजगीत एकना एकज रागनां तालमां एनो एनीजयों गातो होय तो पण तेमा फेर पडे।एक ज राग अने तालना आलाप तान पलटा वगेरे मां गवैया ने अनेक प्रकारनी स्वरावली लाववानो हक्क छे।एटलुं ज नहिं,नवी नवी स्वरावली लाववामा ज एनी कुशलता मूकी अने खर्चकता रहेली होय छे।आपणा प्रबंधोना कडवा आवी रीते गवातां नथी।एमा आलाप तान पलटा ने स्थान नथी ज कहिए तो चाले।ए कडुवा तो अमुक तलकार थी रुढि पडूयाविए ज गवातां छे ए पद्धति ने लरीरीते तेमा आवेला राग साथे अनुसंधान हेतु जोइए पणहुं मानुं छुं के आ गीतों मां जे अनवस्था प्रवर्तती हती ते जोतां, कदाच ए रुढ देशी ने ए राग साथे अनुसंधान पण नहि रहूयं होय, कदाच एमां राग धारववा ने आवश्यक पांच स्वरो पण नहीं रहूया होय, अने देशफेरे, गायक फेरे अने लहिया फेरे पण एकज देशी मां जुदाजुदा नामो बोलातां हशे।। वही ग्रन्थ पृ० २०१।

चउपइ सब की देशी ढालें बनाली थीं, जिनकी तुलना विविध ढालों से मिलती है। जैन रासों में दूहों और चउपई की देशी का प्रयोग हुआ है। इन देशी छंदों की मात्रा व वर्णों का स्वर्गीय ध्रुव ने महत्वपूर्ण विश्लेषण किया है।[1]

इस प्रकार इन देशी छंदों के शिल्प का सम्यक् अध्ययन किया जा सकता है। वस्तुतः इन संगीत प्रधान ताल तथा मात्रिक वृत्तों की विधि रागों और ढालों का परिचय इस प्रकार है:-

:: त्रिभुवन दीपक प्रबंध ::

इस रचना में अनेक मौलिक छंदों का प्रणयन हुआ है।रागों के आधार पर देशी छंदों का प्रयोग इस रचना की सबसे बड़ी विशेषता है। इसमें तालवृत्तों में मधुघरि वरषाकुल, मरहट्ट, द्रुमिल तथा गीति छंद प्रयुक्त हुए है। इन छंदों के अतिरिक्त सरस्वती धउल काव्यट्ट सलहार और पंखिल तथा छप्पय छंदों को प्रयोग में लिया है।वस्तु छंद इस रचना में सर्वत्र परिलक्षित होता है। वस्तु छंद को कवि ने राग मल्हारी तथा चउपइ तथा ध्रुपद छंदों को मिश्रबंध करके प्रयुक्त किया है। रचनाकार ने शिव वस्तु (४, ८, ४७, १०४, १५१, २२७, २७७, ४१५), शिव दूहा(७, ९२,-१०२, १४०,-१४३, १५३-१६१, १८८-१९७, २०३-२१०, २३४-२३५, २४०-२४३, ३०९-३१६, ३६२-३६६), शिव चउपई(९-११, ५५,७७, १०५, १३३,१३९, १४४-१५०, १६२-१६७, १६९-१८५, १९८-२०२, २४४-२४९, २७५, २९२-३०८, ३१७, ३३७, ३६७-३७८, ३८९-३९९, ४०१-१७), शिव सरस्वती धउल (७२-७४, ३२९-३३६, ३५८-३६१) आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया है।

रागों के क्रम में कवि ने विभिन्न देशी छंदों में कल्याणी (१-३) मल्हारी(४७) सलक, गुर्जरी (२७८-२८६) आदि रागों को प्रयुक्त किया है। उदाहरणार्थ एक मल्हारी राग का वस्तुछंद में प्रयोग देखिए:-

---

१- वही पृ० २३१।

सुणिन राणी,सुणिन राणी।हि यह बालंभि
सउं विहू अण सामिणी सोमवयणि गुणरयणि रिद्धिधय
बहु बुद्धिपहि सउंनि तउ दुब्टदैवि पुणदूरि किद्धिधय
उंगउ अधिकउं सहू कपी करि अम्ह भणी पसाउ
गमि संपूरिय मोरडी यह जिम देवाउ (त्रि०दी०प्र०पद ४७पृ० ६)

उलहरा गुजरी

ते मणइ प कीधी बीर हो आवउ सवि मिलीय
ते उले गयउ सो प्रवचन मगरीय मन रलीय
गुणरंग पावलि अरि दल अवरिया प
ते धरिया ये शिहां रहमा आलवि तेय वणपरि घडया
मड मणई काहूं महंगि कीजइ रावर ते सवि गडया
फिरि फिरि या कार कम्मार फुरकई रीस-रेलिहि छल्लिया
गडमड मंदिर वाधि बाडी वेगि पाडी बल्लिया (२७८)(त्रि०बी०प्रबंध पृ०३१)

इन रागों के अतिरिक्त कवि ने देशी ढालों का प्रयोग भी किया है। इन ढालों में ढाल अन्याभिषेक (२११-२२९) तथा पालिली ढाल (२२८-२३३) का प्रयोग हुआ है।ढाल अन्याभिषेक का यक उदाहरण देखिये-

मयअट्ठ सुडिसमवयर करंग
पर करिय पम इंदिय तुरंग
कवि कम्प महारथ मैगि तेय
ते सात व्यसन पायक अभेय (२१५)

तथा पालिली ढाल में-

प कहीय चतुर्दश भवन स्वामि,
दानव कुल कंपइ यह नामि
प पुढइ की सघुड नीरि
कुंडलिय देव-कोमल शरीर (२३२)

(२३) फाबट्ट-

कवि ने फाबट्ट छंद का मौलिक प्रयोग किया है। यह तालबुद्ध गेय है। रचनाकार ने इसका प्रयोग (३५४-३५८) कड़ियों में किया है-

पाट् साडी कापडा अनइ नवरंग थाट
य अन्इ कन्हइ मागिवि एमनिइ उचाट
दीजइ जइ पोसइ हुई पोसउं दैवह हाथि
तउ ही अहउं हेठउं करी, लागा भरडा साथि (३५४-३५५)

फाबट्ट छंद अन्य कृतियों में उपलब्ध नहीं होता।

(२४) हुपद-

फाबट्ट के अतिरिक्त एक प्रसिद्ध छंद हुपद या ध्रुपद मिलता है ध्रुपद राग प्रसिद्ध है। कवि ने इसी राग के नाम से अनेक कड़ियों में प्रयुक्त छंद को हिव हुपद के नाम से प्रयुक्त किया है। त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध में यह हुपद (९-४६, ४८-५४, ५६-७१, १०६-१२८, २३६-२३९, २४८-२५३, ३१८-३२८, ३३९-३५७, ४०४१४१४ तथा ३१८ से ४३२) कड़ियों में प्रयुक्त किया है। रचना में सबसे प्रमुख छंद यही है। यों चौपाई, दोहा, छप्पय, तथा वस्तु छंद का भी बहुत प्रयोग किया है। इस कृति में प्रयुक्त इन छंदों में कवि ने चउल और सरस्वती चउल के अन्तर्गत देसी चौपाई का प्रयोग किया है। हिव काव्य के अन्तर्गत उपजाति छंद मिलता है। पद्धरि में उपेन्द्र वज्रा और इन्द्रवज्रा सम्मिलित है। रचनाकार श्री जयशेखरसूरि ने संस्कृत के प्रकांड विद्वान होने से अवर येल वर्णिक वृत्तों का मात्रावृत्तों के साथ सफल प्रयोग किया है।

इस प्रकार रागों और ढालों के आधार पर कवि ने देसी छंदों के साथ साथ वर्णिक वृत्तों का भी सफल निर्वाह किया है। त्रिभुवन दीपक प्रबंध छंद वैविध्य तथा रागों और ढालों से वैविध्य प्रस्तुत करता है।

:- रंगसागर नेमिफागु-: (१५वीं शताब्दी)

इस रचना को कवि ने तीन खंडों में लिखा है।तीनों खंडों में छंदों का विश्लेषण इस प्रकार है:-

खंड १- <u>रासक</u>- स्थिति- (३-४, १६-१७, २३-२४, ३२-३३)

<u>आंदोल</u>- (५-६, १८-१९, २५-२६, ३४-३५)

<u>फागु</u> (७-१४, २०-२१, २७-३०, ३६)

<u>शार्दूलविक्रीडित</u>- (३१)

खंड-२ रासक- (१-३, ११-१२, २१-२२, ३२-३३), आंदोल, शार्दूलविक्रीडित, फागु, तथा अडैया छंदों का प्रयोग है।

खंड-३ में भी लगभग यही छन्द हैं। इस भाषा ने कवि ने नूतन छन्द प्रयुक्त किया है। जिसको कवि ने सवैया की देशी ढाल द्वारा पुष्ट किया है।

(२५) <u>आंदोल</u>-

जैन कृतियों में रंगसागर नेमिफागु में एक महत्वपूर्ण छंद आंदोल प्रयुक्त हुआ है। आंदोल की स्थिति इस कृति में मौलिक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

कोइलि विरहवणी, मदिराजनयणी

नाटकि मरहठी य, नमिवनि अहरी य

पंचीप्राण पतंग, कालउ काजल भुंग

चंपक दीप कूप, कनवर दीय क्ष

कुसुमित य कलणी, जाणे किरि छत्नी

मधुकर प्रेमिय तेह शिरि मीणी य (रंगसागर नेमिफागु)

(२६) <u>भाषा</u>-

छंद में कवि ने नया छंद भाषा प्रयुक्त किया है तथा इसी में सवैया का विनियोग किया है। एक उदाहरण देखिए-

नाकनी चंपक कूकली रे उपरि चळक नवेरो रे

माणिक मोती करे रे मढ़िया सोवन पाटे सुंदर रे

तेह उपरिहरणि शाखिट मोटी पनि झमाको रे

थाक गणिगय सोहिरे मोती अडे मेघाव्रइ कुंभ्छ रे।

इसी सवैया की देशी ढाल इस छंद की पहली कड़ी में प्रयुक्त किया है।

अनुप्रासांत चरण को भी कवि ने निबाहा है।

(२७) अढइया-

अढैया छंद के ऊपर कवि ने (१६+१६+१३) मात्रा का प्रयोग किया है। अढैया अति नूतन मौलिक छंद है। एक उदाहरण जिसमें पुरानी देशी का प्रयोग है देखिए:-

वन खंड मंडन अखंड बढो बली मलयानील
पीडित जलजकली उकली चतुर दुमारिछु।
विलसतई सखि अलेवसरि विम काजल
कुंकुम केसरि -
आवृति है- घन घन देह वलि हसरि छीहरि नारिछु

इस प्रकार रंगसागर नेमिफागु एक महत्वपूर्ण छंद कृति है। दूसरे अद्भुत साथ में नई भक्ति का एक चरण अनुप्रास युक्त बनता है। दोनों में विषम चरण है अतः कवि का पूरा छंद मौलिक है।इस रचना में अवर वृत्त में शार्दूलविक्रीडित है तथा साथ साथ में संस्कृत के अंशों का भी प्रयोग है जिसमें संस्कृत के ही छंद हैं।

::विद्याविलास पवाडो::

देशी छंदों का विभिन्न रागों द्वारा प्रचार व प्रयास कर मौलिक छंदों का प्रचलन प्रस्तुत करने वाली विद्याविलास पवाड़ो एक उत्कृष्ट हिन्दी जैन रचना है। निस्संदेह विद्याविलास पवाड़ो ने देशी छंदों तथा रागों के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है।परिचय अंकित है:-

(२८) विविध देशी छंद-

इसके छंदों में सवैया चौपाई और दोहे का देशी स्वरूप मिलता है। सवैया देशी का यह स्वरूप पवाड़ा कहा जाता है। कान्हड़दे प्रबन्ध में इस सवैया का देशी स्वरूप मिल जाता है।अतः सवैया के इस देशी स्वरूप को पवाड़ा कहते हैं। विभिन्न रागों के आधार पर इस रचना के देशी तथा लोक प्रचलित छंदों का विश्लेषण इस प्रकार है:-

कड़ी- १-२१ सवैया की देशी ढाल मात्रा (१६ + १२)

२२-२७ दोहा मात्रा (१३ + ११)

२८ वस्तु

२९-३७ राग देशाख की सवैया की देशी प्रयुक्त है।जयदेव के गीत गोविन्द में इस प्रकार की पंक्तियाँ मिल जाती है।

३८-९५ वस्तु, दोहा तथा चौपाई।

९६-११३ दोहा और चौपाई मालवी गुड़ तथा पवाड़ु के विभिन्न रूप (१५+१३) मात्रायें अन्त में रगण और य का प्रयोग। य का प्रयोग ही इसे देशी राग देशाख में गाये जाने के लिए परिवर्तित कर देता है।

११४-१२२ रागसंकल दूहों की देशी, के का प्रयोग विषमपदांत

१२३-१४१ राग रामगिरि की चउपइ, वस्तु।

१४२-१५४ सवैया कीदेशी राग भीम पलासी

१५५-१६२ हिव मधामणामउ ढाल राग देशाख सवैया की देशी

१६३-१८३ राग बसंत में सवैया की देशी।

१८४-१८९ राग बसंत (ढाल) देशी ढालों में अपूर्व वैविध्य।

१९०-२३९ चउपइ।प्रत्येक पद में १५ मात्रायें। एक मात्रा कम।

२४०-२७५ दोहा- राग मालवी गुड़

२७६-२८० वस्तु

२८१-२९७ राग धुंधुड़ में गाये जाने वाला एक गीत।परन्तु यह (१३ + ११) मात्रा के दूहे का ही रूपान्तर लगता है।

२९८-३३३ हिव विवाहलानउ ढाल। यह ढाल प्रथम पाद की आवृत्ति अर्थात् १४ १४ मात्राओं के संयोग और हर १४ मात्रा में अन्त में य के प्रयोग से निर्मित होती है।

३३४-३८४ वस्तु, तथा (१६ + १२) मात्राओं का राग भीमपलासी में गाया जाने वाला पवाड़ा। वस्तु, हिव मधामणामउ ढाल, राग देशाख, इस पद के (१६ +१३) मात्राओं के रूपान्तर से भी गाया जाता है।

३८५-४४० पवाड़ू, राग बसंत में मात्रा (१६ + १२) गाये जाने के लिए।राग बसंत में गाये जाने वाला पद, ढाल वीवाहलउ की है तथा जिसमें मात्राओं का क्रम (१४ + १४) है।

यद्यपि देशी छंदों में रागों का विधान जयदेव से ही मिलता है परन्तु पुरानी हिन्दी की कृतियों में इसकी परम्परा बीच में कमजोर हो गई थी।इधर इन प्राचीन राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती में इन देशी छंदों का कवियों ने खूब प्रयोग किया तथा इनकी परंपरा अव्याहत बनी रही। रागों का प्रयोग करके कवि ने इनदेशी छंदों का प्रयोग पूर्ण शास्त्रीयकर दिया है। निस्संदेह इन कृतियों में छंद और संगीत दोनोंका सफल समन्वय है। गेय और सरस होने से ये देशियां खूब जन प्रचलित रहीं। वस्तुतः विद्याविलास पवाडो का मात्रा विधान [1]अत्यन्त महत्व का है उसका विद्वानों ने विश्लेषण किया है। यह रचना आदिकालीन रचनाओं के देशी छंदों के विकास की प्रतिनिधि रचना है।जिसमें लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत का अच्छा समन्वय हुआ है। संगीत शास्त्र की दृष्टि से भी इन रागों का योगदान स्पष्ट है।विद्याविलास पवाड़ों में प्रयुक्त लोक संगीत से पूर्ण देशी रागों और छंदों के कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे:-

---

1. The detailed analysis of the metrical forms used in this poem is of great importance in pointing how at the basis there were 'Matra' metres which became losse as the musical consideration began to enter its form. The syllables of one 'Matra' or two 'Matras' did not remain regidly so and where lanthened out or shortened according to the musical or singing requirements. Even the 'Pads' has originally at the basis the well known 'Matra' metre forms. The musical syllables are added and then the poetic narrations were composed by taking 'Dhal' and 'Desh's without any consideration of 'Matra' metre basis. All these matters concerning the changes of metrical forms through APBHRAMSA, OG. to MG. 'Akhayan & poems and 'Path' are of great importance - See - G.O. S. CXVIII page 371.

भीम पलासी-

(५) गयवर गुड़िया रथ पारवरिया झुडे लीया सनाह

माडो माडईं बाडईं भाटक्वाडइ रुधिर प्रवाह।।१४९।।विद्या०

पारि मवरि कड़ी इक ऊठइं कंपाविड करवाल

रोषि चडिआ राउत झूझईं जिमजेहा विकराल।।१५०।। विद्या०

हिव वधामणानउ ढाल।।राग देशाख।।

(६) ऊजेणी नयरी हर्षी नरनारी है रंग धरेवि

ऊलट आवईं आपणि मणि मोतीय थाल भरेवि

ऊजेणी पुरि सोहिलउ सार ।।१५६।।

जगि मलिआ प लोक अपार विद्याविलास वधावीइ

जनु महीअलि जसु अवतार जिणि जगि नाम रहाविउ पं

सुरजंपइ के जय जय जयकार

ऊजेणी पुरि सोहिलउं प ।।१५८।।ऑकणी ।।

इसी प्रकार अनेक रागें और भी है उदाहरणार्थ पवाडु (सवैया की देशी, चउपइ) तथा दोहा सोरठा कादेशी प्रयुक्त हुई है। इस प्रकार विद्याविलास पवाडो देशी छंदों का रागों से समन्वय प्रस्तुत करने वाली सबसे महत्वपूर्ण कृति है।

: खरतरगच्छ पट्टावली :

१५वीं शताब्दी में छंदों के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण अंतिम कृति सोमकुंवर कृत ग्रन्थ खरतरगच्छ पट्टावली है। रचना में प्रत्येक पद के ऊपर हरिगीतिका छंद है।रागों और छंदों के विकास में खरतरगच्छ पट्टावली का भी महत्वपूर्ण योग है।रागों को माध्यम बनाकर कवि ने विविध देशी छंदों का अनुक्रम किया है:-

प्रथम श्री धवल राग

जय जय जिण शासन, पासक नासन, त्रिभुवन गुरुअउं गहगहए

जसु क्षमउ जसु माउ गंगाजल निरमल महिमले महमहए।।१।।

श्रीवयर स्वामी गुरु अनुक्रमि चिहु दिसे चंद्रकुल चउपट जाणिए ए
गच्छ चउरासीय मति गच्छउ खरतर गच्छ वखाणिइए ।।२ ।।[१]

रचना के पदों का छंद तथा राग विश्लेषण इस प्रकार है:-

कड़ी १-२ राग देशाख।

३ चौपाई, राग देशाख की छाया।

३-४ राग राजवल्लभ, सवैया की देशी।

६-२३ सोरठा का एक पद, ध्रुव पद साथ तथा राग धन्याश्री

२४-२९ राग धन्याश्री साहेली ध्रुव का महत्वपूर्ण प्रयोग

छंद

वखाणियइ गिरिमाहिं गरूअउ जेम मेरु महीधरो
मणि माहि गिरूअउ जेमसुरमणि जेम ग्रहगणि दिणयरो
जिम देव दानव मांहि गरूअउ गरूअए अमरेसरो
तिम सयल गच्छह मांहि गरूअउ राजगच्छ सु खरतरो।।[२]

ध्रुव पद

ध्रुव पद वाले पदों में ए का प्रयोग द्रष्टव्य है।गेयता के लिए यह प्रयोग किया गया है।संगीत और छंद के समन्वय करने में ए कार का प्रयोग द्रष्टव्य है:

जाणियइ सुविहित सिरोमणि ए
बहु जन ए पाटि सिंगार गुरुविहि पिंड विशुद्धिकरो
इणि सुगी ए सच्चोभिंद श्री जिनवल्लभसूरि गुरो।।१९।।

"साहेली" ध्रुव के आवर्तन ने तो इन पदों को बहुत मधुर बना दिया है:

साहेली ए नयरि देराउरि सुरह सुगुणमए श्री जिनकुशलसूरे
साहेली ए सुणिहिं प्रणमइ सहुयण,भविय जन मणाहि उगाहि पूरे

१: ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह: अगरचन्द नाहटा- पृ० ४१
२- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ४१

धाहेली प दीहतंमे जाइहि दोहग दुरिय दालिद्द दुह सयल दूरे

धाहेली य दीह तणइ मंदिर विलसइ संपति सय वत्थु भरि पूरो।।[1]

उक्त रचनाओं में प्रयुक्त मात्रिक और वर्णिक वृत्तों में से कुछ प्रमुख छंदों का विश्लेषण किया गया है। जैन रचनाओं में ही नहीं तत्कालीन आदिकालीन अजैन रचनाओं में बीसलदेव रासो, श्रीधर व्यास रचित रणमल छंद, असाइत विरचित हंसाउली, भीम विरचित सदयवत्स चरित तथा बसंत विलास फागु (अज्ञात कवि कृत) पद्मनाभकृत कान्हड़ दे प्रबंध, तथा चंदकृत पृथ्वी राज रासो, जैसे जैन अजैन अनेक ग्रन्थों में प्रयुक्त छंदों के साथ तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि इन छंदों में से कुछ ही देशी छंदों को छोड़कर शेष लगभग सभी छंदों की परंपरा चारणी शैली की जैन तथा अन्य अजैन कृतियों में मिल जाती है। इनमें गाथा और वस्तु सबसे प्रमुख है।[2] गाथा (आर्या) और वस्तु की परंपरा प्राकृत से आज तक सुरक्षित रही है। इन कवियों के छंदों से इन उक्त अजैन कृतियोंकी तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन कवि गा गा कर विविध रागों द्वारा विभिन्न देशी मिश्र बंधों का प्रयोग करते थे। देशी बंधो की सृष्टि इन कवियों की प्रमुख विशेषता है। इसके अतिरिक्त भी चर्चरी, चामर आदि अनेक देशी बंध मिल जाते हैं।

शोध करने पर और अनेक मौलिक छंद प्रकाश में आ सकेंगे। अद्यावधि उपलब्ध रचनाओं में जो प्रमुख प्रमुख छंद थे उनमें से कुछ का परिचय दिया गया

१- वही पृ० ४३।

२- (1) The Matra Vratta which is next in importance to the Gatha both in point of antiquity and popularity is the Matra which I have fully described at Apabhransa metre I para 28. This metre is of course a purely prakrit and Apbhransa metre and was evidently used for stray religious, didactic or lyric poetry Doha is a similarly a purely Apbhransa metre but it is a Tal Vratta as I have shown above and has been employed since very old days both for lyric and narrative poetry. Of the remaining Prakrit and Ap. metres which I have described in my two articles, a Vast majority are Matra vrattas, while comparatively a few are Tala Vrattas.

(ii) गाथा(आर्या) और वस्तु चिर प्रचलित छंद होने से इनका विस्तार में विश्लेषण इस अध्याय में नहीं किया गया।

है।आदिकालीन हिन्दी जैन रचनाओं में प्रयुक्त विविध शास्त्रीय छंद, देशी मिश्रबंध, ताल वृत्त या मात्रावृत्त और वर्णवृत्तों का अध्ययन शोध का विषय है।मात्रिक और देशी ताल वृत्तों के मूल में गायक चारणों का भी महत्वपूर्ण योग रहा होगा। क्योंकि वे भी विभिन्न रागों में देशी छंदों को गाया कर रचना किया करते थे। अतः इसका प्रचार चारणी शैली के जैन अजैन काव्यों द्वारा खूब हुआ। मात्रा और ताल वृत्तों में यद्यपि पर्याप्त समानता है परन्तु फिर भी मौलिक अन्तर है[1] इस सूक्ष्म अन्तर का गण, यति, तथा अन्य शास्त्रीय तत्वों का विश्लेषण करने के लिए इन रचनाओं के विविध छंदों से बड़ी सहायता मिलती है।

अन्तिम और एक बहुत महत्वपूर्ण बात इन छंदों के विषय में है इनका परवर्ती कालों पर प्रभाव।ये प्रभाव दो रूपों में मिलते हैं:-

१- काव्य पद्धति में तथा

२- छंद पद्धति में-

१- काव्य पद्धतियों में- दोहा-पद्धति, दोहा-चौपाई-पद्धति, छप्पय-पद्धति तथा पद और गीति पद्धतियां हैं।

२- छंद पद्धति में- वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छंद आ जाते हैं।इन दोनों पद्धतियों का प्रभाव परवर्ती हिन्दी कालों भक्तिकाल, रीतिकाल तथा यहां तक कि आधुनिक काल तक देखा जा सकता है। इन पद्धतियों और छंदों के प्रयोग के लिए परंपरा के उद्गम का श्रेय अपभ्रंश

---

1. A person with a trained ear can easily distinguish between a Tala Vratta and a Matra Vratta merely by singing them. The nature of the particular Tala can also be similarly known. I have said above that the matra Vrattas owe their origin and development of the literate bards, but this need not be too strictly understood, the more cultured and less gifted among the popular bards too may have substantially helped in this direction.

को तथा उसके उत्तर काल को है।

गाथा, दोहा, वस्तु, चौपाई आदि से निर्मित जिन विविध काव्य रूपों का परवर्तीकाल की काव्यपद्धतियों पर प्रभाव पड़ा है उनमेंदोहा पद्धति सबसे प्रमुख है। मध्यकालीन कवियों में कबीर, तुलसी, जायसी, केशव, बिहारी, मतिराम, घनानंद, रहीम आदि कवियों ने इसका प्रयोग किया है। दोहा चौपाई का प्रयोग तुलसी और जायसी ने, गीत तथा पद पद्धति का विद्यापति तुलसी मीरा तथा सूर ने, छप्पय पद्धति का प्रयोग चंद, भूषण आदि ने वीर काव्यों में तथा पादाकुलक, हरिगीत, भुजंग प्रयात ताटंक, छप्पय, रोला, दोहा, सोरठा आदि छंदों का प्रयोग संत और भक्त कवियों में मिल जाता है। कविताओं के अन्त में कवि का नाम लिखने की प्रणाली भी इसी काव्य का प्रभावहै। देशी छंदों में ए का प्रयोगतु का प्रयोग परिवर्ती रास तथा फागु काव्यों में मिलता है। शेष काव्यों में उत्तर अपभ्रंश के छंदों के ये लक्षण सर्वत्र परिलक्षित हो जाते हैं। इस तरह अपभ्रंशके ये छंद परवर्ती हिन्दी साहित्य रचना में प्रयुक्त छंद -चौपाई, सवैया, घनाक्षरी, कुन्डलियां आदि-प्रबन्ध काव्यों के लिए निश्चित कर लिए गए तथा दोहा मुक्तक और प्रबंध दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ। दोहा से प्रगीत मुक्तक को जन्म मिला। निराला और प्रसाद की कविताओं पर यह प्रभाव देखा जा सकता है रीतिकाल इनसे प्रभावित है।उत्तर अपभ्रंश की लोकगीति तथा पद परंपरा मीरा के गीतों में उत्प्रावित है। दोहा कोष के गीतों की परम्परा, महाप्राण कबीर, गोरख, सूरदास, तुलसी, दादू नानक, आदि के पदों में सुरक्षित है। अपभ्रंश के ग्रन्थ स्वयंभू की रामायण की छंद शैली का तुलसी के रामायण पर पूर्ण प्रभाव है। सारे सूर साहित्य में अपभ्रंश के गेय छंदों का समावेश है। अपभ्रंश के छन्द कोष की छाया दीनदयाल की कुन्डलियों में ज्यों की त्यों देखी जा सकती है। प्राकृत अपभ्रंश की गाथा छंद हिन्दी के परवर्ती काव्यों- पृथ्वीर रासो और सुजान चरित में देखा जा सकता है। इसी प्रकार अपभ्रंश की गीत पद्धति महादेवी, प्रसाद,पंत तथा निराला अ आधुनिक लगभग सभी कवियों में मिलती है। ये छंदों की देशी लोक परंपराएं

आधुनिक काल के कवियों ने उत्तर अपभ्रंश से ज्यों की त्यों ग्रहण की है।

इस प्रकार पुरानी हिन्दी की इन आदिकालीन कृतियों का परवर्ती हिन्दी साहित्य के तीनों कालों- भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल की काव्य पद्धतियों तथा छंदों में पूरे पूरे रूपों में देखा जा सकता है।

निष्कर्षतः ये छंद बड़े महत्व के हैं अतः इन कृतियों का छंद विषयक अध्ययन स्वतंत्र शोध की अपेक्षा रखता है।

अध्याय - १९

उ प सं हा र

उपसंहार

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य के परिशीलन से जो तथ्य हमारे सामने प्रमुख रूप से आए हैं, वे निम्नलिखित हैं:-

(१) जैन कृतियों के अध्ययन की अपेक्षा:-

इस निबन्ध के प्रथम अध्याय से यह प्रकट हुआ होगा कि आदिकालीन हिन्दी साहित्य में जैन कृतियों का बाहुल्य होते हुए भी हिन्दी विद्वानों और साहित्य के इतिहासकारों द्वारा उसकी कितनी उपेक्षा हुई है। इस दिशा में जो कुछ कार्य हुआ है वह गुजराती और कुछ राजस्थानी विद्वानों द्वारा ही किया गया है। आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी के विद्वान और इतिहासकार आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन करें और आदिकालीन हिन्दी साहित्य के विकास में जैन कृतियों का जो योग है, उसका यथेष्ट रूप से निरूपण करें। प्रस्तुत प्रबन्ध इसी उद्देश्य से समस्त प्राप्त प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री को लेते हुए लिखा गया है।

(२) युग और प्रभाव

युग और प्रभाव शीर्षक इस निबंध के दूसरे अध्याय से यह ज्ञात हुआ होगा कि जैन धर्म को पर्याप्त राज्याश्रय प्राप्त रहा। साथ ही देश की तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं होने पर भी जैन कवि नगर नगर ग्राम ग्राम घूमघूमकर उपदेश देते रहे और काव्य रचना करते रहे तथा राजस्थान और गुजरात के भंडारों में वे रचनायें किस प्रकार सुरक्षित रह सकीं।

(३) जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त:

जैन धर्म विषयक इस निबंध के तीसरे अध्याय से यह स्पष्ट हो गया होगा कि जैन कवियों ने जैन धर्म और दर्शन के इन सिद्धान्तों के प्रचार के लिए सरस कथाओं और काव्यात्मक कृतियों का आधार लिया है इस तरह आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य जैन दर्शन के गूढ सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए भी सरस काव्य कोटि में आती है।

(४) अपभ्रंश का जैन साहित्यः

प्रस्तुत निबंध के अपभ्रंश जैन साहित्य विषयक चतुर्थ अध्याय से ज्ञात होगा कि पुरानी हिन्दी की साहित्यतथा भाषाविषयक पृष्ठ भूमि को समझने के लिए अपभ्रंश की जैन रचनाओं का भी अध्ययन आवश्यक है। जैन अपभ्रंश के साहित्य के अध्ययन से हमें आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य तथा जैनेतर लौकिक के साहित्य के सम्यक अध्ययन में प्रचुर सहायता मिलती है।

(५) आदिकालीन हिन्दी जैनेतर (लौकिक) साहित्यः

आदिकालीन जैनेतर हिन्दी साहित्य से जिसका एक संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत निबंध के पांचवे अध्याय में किया गया है।इससे जैन रचनाओं की भाषा, भाव, कला तथा वस्तु विन्यास की सहज तुलना की जा सकती है। इस संक्षिप्त अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ होगा कि हंसाउली, कान्हड़ दे प्रबंध, बसन्त विलास फागु, ढोला मारुरा दोहा, रणमल छन्द, सदयवत्स चरित आदि अनेक कृतियाँ ऐसी हैं,जो काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है और जिनका यथेष्टअध्ययन हिन्दी के विद्वानों द्वारा अभी तक नहीं किया गया है और न जिन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहासों में उचित स्थान मिला है।

(६) काव्य परंपरायेंः

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य के अध्ययन से, जो कि इस प्रबन्ध के अध्याय ६, ७, ८ तथा ९ में प्रस्तुत किया गया है। यह भली भाँति ज्ञान हुआ होगा कि यह साहित्य काव्य रूपों के सम्बन्ध में अत्यन्त समृद्ध है। बल्कि यों कहा जा सकता है कि काव्य-रूपों का इतिह इतना वैविध्य न केवल हिन्दी के ही आदिकालीन साहित्य में अन्यत्र है, वरन् किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा के आदि के साहित्य में नहीं मिल सकता है।

अद्यावधि हिन्दी में काव्य रूपों का विस्तृत अध्ययन बिल्कुल नहीं हो सका है। सामान्यतः काव्य रूपों का परिचय विद्वानों ने काव्य भेदों को दृष्टि से रखकर ही दिया है।अतः प्रायः प्रबन्ध काव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक आदि ही काव्य

रूपों के भेद समझे गए है। परन्तु आदिकालीन जैन रचनाओं में काव्य रूपों की विशिष्ट परंपराएं मिलती है। ये काव्य रूप छंद प्रधान ~~छंद प्रधान~~ और विषय प्रधान दोनों ही प्रकार के है। इनमें एक ही काव्य रूप को सम्पन्न बनाने वाली कृतियां बहुत अच्छी संख्या में उपलब्ध हो जाती है। वास्तव में इन्हीं जैन कृतियों के काव्य रूपों का प्रभाव हिन्दी साहित्य के परवर्तीकाल की काल की काव्य कृतियों और काव्य-धाराओं पर अबेष्ट परिमाण में पड़ा है। इनमें प्रमुख काव्य रुप रास, फागु, चउपई, चर्चरी, प्रबन्ध, चरित, पवाड़ा, विवाहला, संधि, कक्क मातृका, तलहरा, बावनी सज्झाय, गीत, स्तवन, कुलक, कलश आदि मिल जाते हैं। जिनका अध्ययन और भी विस्तार के साथ किया जासकता है।

(७) <u>कथा परंपराएं और कथा रूढ़ियां:</u>

आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य का इस दृष्टि से अध्ययन करने पर जो कि प्रस्तुत निबन्ध के अध्याय १० में किया गया है, ज्ञात होता है कि यह साहित्य इन दोनों विषयों में अत्यन्त सम्पन्न है और इन विषयों में हिन्दी साहित्य की किसी भी धारा से आदिकालीन हिन्दी साहित्य की यह धारा टक्कर ले सकती है।

(८) <u>आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रयुक्त छंद:</u>

प्रस्तुत निबंध के अध्ययन से ज्ञात हुआ होगा कि आदिकालीन जैन हिन्दी कृतियों के छंदों का विवेक विरल है। इन कृतियों के छंद मात्रावृत्त और तालवृत्त दो प्रकार के है। वार्णिक वृत्तों का प्रयोग इन हिन्दी जैन कवियों में बहुत कम किया गया है। तालवृत्तों और मात्रिक वृत्तों में संगीत और देशी ढालों के आधार पर कुछ मौलिक छंदों का निर्माण किया है। दो विभिन्न मात्रा या तालवृत्तों की कुछ पंक्तियों मिलाकर उसे एक बनाने के लिए इस साहित्य के जनवादी कवियों ने उनमें विभिन्न रागों का सम्मिश्रण करके नये छंदों की सृष्टि भी की है और इसलिए ये देशी छन्द संगीत के क्षेत्र मैंभी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। इन रचनाओं में संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के परंपरित छंदों के निर्वाह के ~~निर्वाह के~~ साथ साथ मौलिक देशी छंदों का प्रणयन किया है।

प्रस्तुत अध्याय के बाद इस प्रबन्ध में तीन महत्व पूर्ण परिशिष्ट रखे गए हैं। प्रथम परिशिष्ट में आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की प्रतियों में प्रयुक्त कुछ अक्षर और अंकों के चित्र दिए गए हैं। इन अक्षरों से जैनियों की तत्कालीन प्रतियों की लिखावट का सामान्य ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। साथ ही कुछ महत्वपूर्ण प्रतियों के चित्र परिचय सहित दे दिए गए हैं जिनसे प्रतियों की प्राचीनता को समझी जा सकती है और जैन प्रतियों में प्रयुक्त अक्षरों, अंकों और विशेष चिन्हों को देखा जा सकता है। ये प्रतियां विभिन्न भंडारों की हैं। दूसरा परिशिष्ट जैन और जैनेतर गद्य तथा पद्य की हस्तलिखित प्रतियों की सूची का है जिससे यह स्पष्ट होगा कि ये कृतियां काव्य रूपों में कितना अधिक वैविध्य लिए हैं तथा संख्या में कितनी विशाल है। तीसरा परिशिष्ट संदर्भ ग्रन्थों की सूची तथा विभिन्न जैन भंडारों की नामावली का है जिससे अजैन एवं जैन साहित्य पर आगे कार्य हो सकने में सहायता मिलेगी। इस तरह पूरा प्रबन्ध तीन भागों में विभक्त कर दिया गया है। प्रथम भाग में प्रथम पांच अध्याय हैं। द्वितीय भाग में काव्य रूपों के विस्तृत विश्लेषण वाले ६, ७, ८ और ९ अध्याय हैं। अन्तिम अथवा तृतीय भाग में अध्याय १०, ११ तथा १२ हैं। जिनमें कथा परंपराओं और प्रयुक्त छंदों का मौलिक विवेचन है। इन विभिन्न अध्यायों के अध्ययन द्वारा शोध की अभिप्रेरित अनेक दिशाओं की ओर संकेत किया जा सकता है।

(१) शोध की नई दिशाएं:

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर संबंधित अनेक कई दिशाओं की ओर इंगित किया जा सकता है। पुरानी हिन्दी का उद्भव और विकास आदिकालीन हिन्दी रचनाओं की भाषा, हिन्दी के आदिकाल के रास, फागु, प्रबन्ध, चरित काव्य, मुक्तक काव्य, शृंगारिक काव्य तथा इन रचनाओं का वैज्ञानिक रूप में सम्पादन शोध के नवीन क्षेत्र हैं, जिन पर कार्य किया जाना परम आवश्यक है। साथ ही आदिकाल के साथ साथ मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य पर भी शोध का कार्य होना अपेक्षित है।

प्रस्तुत अध्ययन की सीमाओं के अन्तर्गत भी फलतः यह आसानी से देखा जा सकता है कि आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य का योग हिन्दी साहित्य के इतिहास में असाधारण है। यह और भी पूर्ण और व्यवस्थित अध्ययन की अपेक्षा करता है और किसी भी दृष्टि से देखा नहीं है कि इसकी उपेक्षा की जा सके। वस्तुतः यह हिन्दी के ज्वलंत युग का एक अत्यन्त उपयोगी अंश है, जो जैन महात्माओं, श्रेष्ठियों और उदार व्यक्तियों के प्रयास से सुरक्षित रह सका है और यह उस आशा की एक उज्जवल किरण है जो हिन्दी सेवियों को आदिकालीन हिन्दी साहित्य के जैनेतर अंशों की खोज और परिशीलन के लिए साहस प्रदान करती है।

(१०) हिन्दी साहित्य को इन कृतियों की देन:

प्रस्तुत अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आदि कालीन हिन्दी जैन कृतियों ने हिन्दी साहित्य के प्रत्येक काल की काव्यधाराओं को प्रभावित किया है। प्रेमाख्यानक काव्य, भक्ति काव्य निर्गुण काव्य तथा साहित्य की विविध काव्य धाराओं और काव्य रूपों को इन रचनाओं ने प्रभावित किया है। साथ ही कला पक्ष के विविध तत्वों छन्द, अलंकार, प्रकृति चित्रण, रस आदि दृष्टियों से भी इन कृतियों की हिन्दी साहित्य को विशेष देन है। वस्तुतः आदिकालीन इन कृतियों ने विशेष काव्य रूपों में साहित्य सृजन हुआ है वह अपने में पर्याप्त वैविध्य और जीवन्त तत्वों का समावेश लिए हुए है। साथ ही इनरचनाओं ने देशी भाषाओं की मिठास घोली है। निष्कर्षतः क्या काव्य और क्या गद्य एवं क्या विविध काव्यरूप आदि सभी रूपों में इन कृतियों ने हिन्दी साहित्य का भंडार भरा है। वास्तव में हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करने में इन रचनाओं का अपना अनूठा योग है।

इस प्रकार इन रचनाओं के अनुशीलन से आदिकाल की जैन कृतियों की साहित्यिक सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। अद्यावधि अजमेर, नागौर, दिल्ली, मेरठ, बड़ौत, सहारनपुर, अम्बाला तथा बुंदेलखंड मध्यप्रदेश, एवं दक्षिण भारत के अहिन्दी भाषी प्रदेशों के भंडारों की सम्यक् शोध होने पर हिन्दी जैन रचनाओं की सम्पन्नता में और श्रीवृद्धि हो सकेगी अभी राजस्थान

के ही अनेक जैन ग्रंथ भंडार बंद पड़े हैं। उनके खुलने पर एवं उनकी कृतियों की शोध होने पर आदिकाल सम्बन्धी अनेक नये तथ्य और ज्ञातव्य और स्पष्ट हो सकेंगे।

------::०::------